

ऋग्वेद संहिता

(सरल हिन्दी भावार्थ सहित)

भाग-१

(मण्डल १-२)



सम्पादक

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं. श्रीराम शर्मा आचार्य



ऋग्वेद संहिता

[सरल हिन्दी भावार्थ सहित]

भाग- १

[मण्डल १-२]

संपादक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

भगवती देवी शर्मा

*

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०११ मूल्य : १७५.०० रुपये



• **प्रकाशक**

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

• संपादक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

भगवती देवी शर्मा



• **पुनरावृत्ति सन् २०११**

• **मुद्रक**

युग निर्माण योजना प्रेस

गायत्री तपोभूमि, मथुरा (उ. प्र.)



धर्म-तंत्र से लोकशिक्षण की प्रक्रिया द्वारा
घर-घर संस्कारों को पहुँचाने वाले युग प्रवर्त्तक



समर्पित साधिका स्नेह से अभिपूरित सत्ता— माता भगवती देवी



ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्



अपने आराध्य के चरणों में

परम पूज्य गुरुदेव ने जो गुरुतर भार कन्धों पर डाला, उनमें अपने वेदों का आज के परिप्रेक्ष्य में बुद्धिसंगत एवं विज्ञानसम्मत प्रतिपादन सर्वथा दुःसाध्य कार्य था। लोगों के पास योग्यता रहती होगी, जिससे वे बड़े-बड़े कार्य सम्भव कर पाते होगें; पर मुझ अकिंचन के लिए तो यह सौभाग्य ही क्या कुछ कम था कि अपने आराध्य के चरणों पर स्वयं को सर्वतोभावेन समर्पित करने का सन्तोष प्राप्त हुआ। होंठ कौन सा गीत निकालेंगे, भला बाँसुरी को क्या पता? कौन सा राग आलापित होगा - यह पता वादक को हो सकता है, सितार बेचारा उसे क्या समझे?

वेदों के भाष्य जैसे कठिन कार्य में मेरी स्थिति ऐसे ही वाद्य यंत्र की रही। यदि गायन सुन्दर हो, तो श्रेय उन्हीं को मिलना चाहिए, जिन्होंने इनका भाषानुवाद प्रारम्भ(सन् १९६० ई०) में किया और दुबारा करने का आदेश मुझे दिया। कलम मेरी हो सकती है, पर चलाई उन्होंने ही। अक्षर मेरे हो सकते हैं, पर भावाभिव्यक्ति एक मात्र उन्हीं की है।

आज यह सुरभित पुष्प अपने उन्हीं आराध्य गुरुदेव-आचार्य जी के चरणों में समर्पित कर स्वयं को कृत-कृत्य हुआ अनुभव करती हूँ।

जिन मनीषियों के ग्रन्थ हमने इस अवधि में पढ़े, उनसे कुछ दिशा बोध मिला, उनका तथा जिन्होंने इस गुरुतर कार्य के संकलन से प्रकाशन तक में सहयोग दिया, उनका मैं विशेष रूप से आभार मानती हूँ। आशा करती हूँ कि इस सृजन से अपनी संस्कृति और इस महान् देश की विराट् बौद्धिक, आत्मिक तथा आध्यात्मिक सम्पदा गौरवान्वित होगी।

— भगवती देवी शर्मा



अनुक्रमणिका

संकेत-विवरण

अथर्व० = अथर्ववेद
आ० गृ० सू० = आश्वलायन गृह्यसूत्र
उत्त० = उत्तरार्द्ध
ऋ० सर्वा० = ऋक् सर्वानुक्रमणी
ऋ० = ऋग्वेद
ऋ० अ० = ऋग्वेद अनुक्रमणी
ऐत० आ० = ऐतरेय आरण्यक
ऐत० ब्रा० = ऐतरेय ब्राह्मण
कौषि० ब्रा० = कौषीतकि ब्राह्मण
गा० र० = गायत्री रहस्योपनिषद्
छा० उप० = छान्दोग्य उपनिषद्
जय० भा० = जयदेव शर्मा भाष्य
जै० ब्रा० = जैमिनि ब्राह्मण
जै० सू० = जैमिनि सूत्र
ता० म० = ताण्ड्य महाब्राह्मण
तैत्ति० सं० = तैत्तिरीय संहिता
नि० = निरुक्त
नि० दु० निरुक्त दुर्गवृत्ति
पूर्वा० = पूर्वार्द्ध
पृ० = पृष्ठ
बृह० = बृहद्देवता
मनु० = मनुस्मृति
महा० शा० प० = महाभारत शान्तिपर्व
मै०सं० = मैत्रायणी संहिता
यजु० = यजुर्वेद
वा० = वाचस्पत्यम्
वै०को० = वैदिक कोश
शत० ब्रा० = सायण भाष्य
श० क० = शब्दकल्पद्रुम
शां० श्रौ० सू० = शांख्यायन श्रौतसूत्र
सात० भा० = सातवलेकर भाष्य
साम० = सामवेद
सा० भा० = सायण भाष्य



भूमिका

वेद की अतुलनीय महिमा

वेदों को अपौरुषेय कहा गया है। भारतीय धर्म, संस्कृति एवं सभ्यता का भव्य प्रासाद जिस दृढ़ आधारशिला पर प्रतिष्ठित है, उसे वेद के नाम से जाना जाता है। भारतीय आचार-विचार, रहन-सहन तथा धर्म-कर्म को भली-भाँति समझने के लिए वेदों का ज्ञान बहुत आवश्यक है। सम्पूर्ण धर्म-कर्म का मूल तथा यथार्थ कर्त्तव्य-धर्म की जिज्ञासा वाले लोगों के लिए 'वेद' सर्वश्रेष्ठ प्रमाण हैं। **'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्', 'धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः'** (मनु० २.६, १३) जैसे शास्त्रवचन इसी रहस्य का उद्घाटन करते हैं। वस्तुतः 'वेद' शाश्वत-यथार्थ ज्ञान राशि के समुच्चय हैं, जिसे साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों ने अपने प्रातिभ चक्षु से देखा है- अनुभव किया है।

ऋषियों ने अपने मन या बुद्धि से कोई कल्पना न करके एक शाश्वत अपौरुषेय सत्य की, अपनी चेतना के उच्चतम स्तर पर अनुभूति की और उसे मंत्रों का रूप दिया। वे चेतना क्षेत्र की रहस्यमयी गुत्थियों को अपनी आत्मसत्ता रूपी प्रयोगशाला में सुलझाकर सत्य का अनुशीलन करके उसे शक्तिशाली काव्य के रूप में अभिव्यक्त करते रहे हैं। वेद स्वयं इनके बारे में कहता है-**"सत्यश्रुतः कवयः"** (ऋ० ५.५७.८) अर्थात् "दिव्य शाश्वत सत्य का श्रवण करने वाले द्रष्टा महापुरुष।"

इसी आधार पर वेदों को 'श्रुति' कहकर पुकारा गया। यदि श्रुति का भावात्मक अर्थ लिया जाय, तो वह है स्वयं साक्षात्कार किये गये ज्ञान का भाण्डागार। इस तरह समस्त धर्मों के मूल के रूप में माने जाने वाले, देवसंस्कृति के रत्न-वेद हमारे समक्ष ज्ञान के एक पवित्र कोष के रूप में आते हैं। ईश्वरीय प्रेरणा से अन्तःस्फुरणा (इलहाम) के रूप में "आत्मवत् सर्वभूतेषु" की भावना से सराबोर ऋषियों द्वारा उनका अवतरण सृष्टि के आदिकाल में हुआ।

वेदों की ऋचाओं में निहित ज्ञान अनन्त है तथा उनकी शिक्षाओं में मानव-मात्र ही नहीं, वरन् समस्त सृष्टि के जीवधारियों-घटकों के कल्याण एवं सुख की भावना निहित है। उसी का वे उपदेश करते हैं। इस प्रकार वे किसी धर्म या सम्प्रदाय विशेष को दृष्टिगत रख अपनी बात नहीं कहते। उनकी शिक्षा में छिपे मूल तत्त्व अपरिवर्तनीय हैं, हर काल-समय-परिस्थिति में वे लागू होते हैं तथा आज की परिस्थितियों में भी पूर्णतः व्यावहारिक एवं विशुद्ध विज्ञान सम्मत हैं।

भारतीय परम्परा 'वेद' के सर्व ज्ञानमय होने की घोषणा करती है - **'भूतं भव्यं भविष्यञ्च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति।'** (मनु० १२.९७) अर्थात् भूत, वर्तमान और भविष्यत् सम्बन्धी सम्पूर्ण ज्ञान का आधार वेद है। आचार्य सायण ने कृष्ण यजुर्वेद की तैत्ति० सं० के उपोद्घात में स्वयमेव लिखा है -

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥

अर्थात् - प्रत्यक्ष अथवा अनुमान प्रमाण से जिस तत्त्व (विषय) का ज्ञान प्राप्त नहीं हो रहा हो, उसका ज्ञान भी वेदों के द्वारा हो जाता है। यही वेदों का वेदत्व है।

द्रष्टाओं का मत है कि वेद श्रेष्ठतम ज्ञान-पराचेतना के गर्भ में सदैव से स्थित रहते हैं। परिष्कृत-चेतना-सम्पन्न ऋषियों के माध्यम से वे प्रत्येक कल्प में प्रकट होते हैं। कल्पान्त में पुनः वहीं समा जाते हैं।

आचार्य शंकर ने अपने 'शारीरक-भाष्य' में वेदान्त सूत्र-**'अतएव च नित्यत्वम्'** की व्याख्या में महाभारत का यह श्लोक उद्धृत किया है -



युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः । लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयंभुवा ॥ 'युग के अन्तमें वेदों का अन्तर्धान हो जाता है । सृष्टि के आदि में स्वयंभू के द्वारा महर्षि लोगों ने उन्हीं वेदों को इतिहास के साथ अपनी तपस्या के बल पर प्राप्त किया ।'

ऐसी भी प्रसिद्धि है कि परमात्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में ही 'वेद' के रूप में अपेक्षित ज्ञान का प्रकाश कर दिया । महाभारत में ही महर्षि वेदव्यास ने इस सत्य का उद्घाटन करते हुए लिखा है -**अनादि निधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा । आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः** (महा० शा० प० २३२. २४)। अर्थात् - सृष्टि के प्रारम्भ में स्वयंभू परमात्मा से ऐसी दिव्य वाणी (वेद) का प्रादुर्भाव हुआ, जो नित्य है और जिससे संसार की गतिविधियाँ चलीं । स्थूल बुद्धि से यह अवधारणा अटपटी सी-कल्पित सी लगती है, किन्तु है सत्य । आज के विकसित विज्ञान के सन्दर्भ से उसे समझने का प्रयास करें, तो बात कुछ स्पष्ट हो सकती है ।

कम्प्यूटर तंत्र के अन्तर्गत मास्टर कम्प्यूटर के साथ माइक्रोवेव टावर्स (सूक्ष्म तरंग प्रणाली) द्वारा विभिन्न कम्प्यूटर केन्द्र जुड़े रहते हैं । रेलवे टिकिट बुकिंग से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय आँकड़ों के तन्त्रों में आज यह प्रणाली प्रयुक्त है । प्रत्यक्ष में कम्प्यूटरों के पर्दे पर इच्छित आँकड़े या सूत्र उभरते रहते हैं । यदि कोई कम्प्यूटर केन्द्र बिगड़ जाए अथवा नष्ट हो जाए तो उस पर अंकित आँकड़े नष्ट या लुप्त हो गये से लगते तो हैं, किन्तु वास्तव में वे मास्टर कम्प्यूटर में समा जाते हैं, वहाँ सुरक्षित रहते हैं । कालान्तर में कम्प्यूटर केन्द्र पुनः स्थापित होने पर वे ही सूत्र पुनः पर्दों पर आने लगते हैं ।

उक्त विधा के अनुरूप ही पराचेतना में मास्टर कम्प्यूटर की तरह समस्त ज्ञान स्थित है । विभिन्न लोकों और विभिन्न कालों में वहाँ विकसित उच्च-परिष्कृत मानस कम्प्यूटर केन्द्रों की भूमिका निभाते रहते हैं । कभी भूलोक आदि किसी लोक का तन्त्र नष्ट या अस्त-व्यस्त हो जाने से वह ज्ञान नष्ट नहीं होता । यह अवधारणा चेतना-विज्ञान का **क, ख, ग** समझने वालों को भी अटपटी नहीं लगनी चाहिए ।

नेति-नेति

उपनिषद् की यह अवधारणा कि वह पूर्ण है और यह भी पूर्ण है । पूर्ण से ही पूर्ण का उदय-विकास होता है । उस पूर्ण में से यह पूर्ण प्राप्त कर लेने पर भी वह पूर्ण ही रहता है -

पूर्णमदः पूर्णमिदं, पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय, पूर्णमेवावशिष्यते ॥

अस्तु, वेद का वह सनातन भाण्डागार पूर्ण है । उससे प्रकट यह वेद भी पूर्ण हैं, क्योंकि समकालीन सृष्टि तन्त्र का पूर्ण ज्ञान इसमें रहता है । सनातन वेद में से प्रत्यक्ष वेद के प्रकट होने या न होने से उस सनातन की पूर्णता में कोई अन्तर नहीं पड़ता । पदार्थ से उत्पन्न ज्ञान (पाश्चात्य-विज्ञान) पदार्थ के साथ नष्ट हो सकता है, किन्तु चेतना अनश्वर है, इसलिए चेतना से उद्भूत ज्ञान को भी अनश्वर कहा गया है । ऋषियों ने यह ज्ञान समाधि द्वारा परमात्म तत्त्व से एकाकार होकर पाया था । ऋषियों का ज्ञान 'साक्षात्कार का ज्ञान' नॉलेज बाय आयडेन्टिटी (Knowledge by Identity) है । देख-पढ़कर, बौद्धिकता, तार्किक विश्लेषण द्वारा अथवा बाह्य प्रेरणा द्वारा ऐसा ज्ञान उपलब्ध नहीं होता । यह हमारी संस्कृति की ही अनादिकालीन परम्परा रही है कि ज्ञान-प्राप्ति हेतु ऋषि-गण आत्मसत्ता की प्रयोगशाला में जाकर अन्तर्मुखी हो मनन, निदिध्यासन तथा फिर समाधि की स्थिति में जाकर चेतना जगत् के सूत्रों को खोज लाते थे । उन ज्ञान सूत्रों का क्रमबद्ध संकलन हमें वेद मंत्रों के रूप में उपलब्ध है ।

ऋषियों ने वेद को पूर्ण तो कहा, किन्तु उसी के साथ **नेति-नेति** (यही-अंतिम नहीं है) भी कहा । 'पूर्णमिदं' के साथ नेति-नेति कहना उनके तत्त्व द्रष्टा और स्पष्ट वक्ता होने का प्रमाण है । अंतर्दृष्टि की परिपक्वता के बिना कोई व्यक्ति ऐसी उक्ति कह नहीं सकता । ऋषियों ने लोक एवं काल की आवश्यकता के अनुरूप चेतना के समग्र सूत्र प्रकट कर दिये । इसलिए उन्हें पूर्ण तो कहा, किन्तु वे देख रहे थे कि



यह पूर्ण ज्ञान भी इस दिव्य ज्ञान भाण्डागार का एक अंश मात्र है । इसलिए उन्होंने नेति (यही अन्तिम नहीं) कह दिया । आवश्यकता के अनुरूप जिस ज्ञान का बोध उन्होंने किया, उसे जन-जन तक पहुँचाने के लिए उसे भाषा में व्यक्त करना आवश्यक हुआ । अनुभूति को व्यक्त करने में भाषा सामान्य व्यवहार में भी अक्षम सिद्ध होती है, सो वेदानुभूति को व्यक्त करने में तो वह समर्थ हो ही कैसे सकती थी ? अस्तु, ऋषियों ने स्पष्टता से कह दिया कि जितना कुछ व्यक्त किया जा सका, तथ्य केवल उतना ही नहीं है । उसे पूर्णतया समझने के लिए तो स्वानुभूति की क्षमता ही विकसित करनी होती है ।

देवसंस्कृति के मर्मज्ञ ऋषियों ने इसी कारण से वेदाध्ययन करने वालों के लिए दो तत्त्व अनिवार्य बताए हैं - **श्रद्धा एवं साधना ।** श्रद्धा की आवश्यकता इसलिए पड़ी कि आलंकारिक भाषा में कहे गए रूपकों के प्रतिमान- शाश्वत सत्यों को पढ़कर बुद्धि भ्रमित न हो जाय । साधना इस कारण आवश्यक है कि श्रवण-मनन-निदिध्यासन की परिधि से भी ऊपर उठकर मन **"अनन्तं निर्विकल्पम्"** की विकसित स्थिति में जाकर इन सत्यों का स्वयं साक्षात्कार कर सके । मंत्रों का गुह्यार्थ तभी जाना जा सकता है ।

'वेद' अध्ययन का अनुशासन और अधिकार

वेद विशिष्ट ज्ञान-विज्ञान के भाण्डागार हैं । किसी भी विशिष्ट विद्या को प्राप्त करने के लिए उसके विशिष्ट अनुशासनों का पालन करते हुए एक न्यूनतम स्तर तक व्यक्तित्व को ले जाना पड़ता है । उससे कम में हर कोई, किसी मनचाहे ढंग से उसका उपयोग करने अथवा लाभ पाने में समर्थ नहीं हो सकता ।

बाँस की पोली नली से अग्नि को फूँक मारकर प्रज्वलित करने का ढंग थोड़े से संकेत से कोई भी सीख सकता है, किन्तु पोले बाँस को बाँसुरी के रूप में विकसित करने तथा उससे संगीत की मधुर ध्वनियाँ निकालने का कार्य संगीत का ज्ञाता ही कर सकता है । बाँसुरी सुरीली बने, इसके लिए छेदों के आकार तथा उनकी परस्पर दूरियों का निर्धारण कितनी सावधानी से करना पड़ता है और उसका कितना महत्त्व है ; यह बात कोई कनसुरा (जिसके कान स्वरों का अंतर ही नहीं समझते-ऐसा) व्यक्ति नहीं समझ सकता । इसी प्रकार कद्दू के खोल, प्लाई और तार के संयोग से सितार की और उसके जादू भरे संगीत की बात कोई ऐसा व्यक्ति कैसे समझ सकता है, जो संगीत विद्या से सर्वथा दूर ही रहा हो ?

वेद मंत्रों में पराचेतना के गूढ़ अनुशासनों का समावेश है । शब्दार्थ और व्याकरण आदि तो उसके कलेवर मात्र हैं । वे मंत्रों के भाव समझने में सहायक तो होते हैं, किन्तु केवल उन्हीं के सहारे गूढ़ तत्त्वों को समझा जाना संभव नहीं । स्वयं वेद में इस तथ्य को प्रकट किया गया है । जैसे - ऋग्वेद १. १६४. ३९ में कहा गया है - **"ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः"** अर्थात् ऋचाएँ परम व्योम में रहती हैं, जिसका देवत्व अपरिवर्तनीय है । आगे कहा गया है - **"यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति"** जो उस अपरिवर्तनीय सत्य को नहीं समझता, उसके लिए मात्र ऋचा क्या करेगी ? यह कथन उसी तरह सत्य है, जिस प्रकार यह कथन कि 'जो संगीत का ज्ञाता नहीं, उसके लिए मात्र बाँसुरी क्या करेगी ?' इसी प्रकार भाषा की सीमा बतलाते हुए ऋ० १०. ७१. १ में कहा गया है - **बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत् प्रैरत नामधेयं दधानाः । यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत् प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः ॥** हे बृहस्पते ! सर्वप्रथम पदार्थों के नाम आदि का भाषा ज्ञान प्राप्त होता है । यह वाणी का प्रथम सोपान है । ज्ञान का जो दोष रहित-श्रेष्ठ-शुद्ध स्वरूप है, वह गुफा में छिपा है, जो दिव्य प्रेरणा से प्रकट होता है ।

भाषा ज्ञान वाणी का प्रथम सोपान है । उससे प्रेरित होकर पदार्थों को देखा-पहचाना जा सकता है, किन्तु विचारों और भावनाओं की गहराई (गुफा) तक पहुँचने के लिए तो विशेष अन्तःस्फुरणा आवश्यक होती है । यदि किसी प्रभावशाली राग की सरगम (स्वरलिपि) लिख दी जाये, तो उससे राग को समझने में सहायता तो मिलेगी, किन्तु संगीत-निपुण व्यक्ति के निर्देशन में साधना करके ही उसे पाया जा सकता है ।



वेदवाणी के संदर्भ में भी ऋषियों का यही मत है **यज्ञेन वाचः पदवीयमायन् तामन्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम्। तामाभृत्या व्यदधुः पुरुत्रा तां सप्त रेभा अभि सं नवन्ते** (ऋ० १०.७१.३) । ज्ञानी लोग श्रेष्ठ वाणी को यज्ञ से ही प्राप्त करते हैं । उन्होंने तत्वज्ञानी ऋषियों के अन्तःकरण में प्रविष्ट वाणी को प्राप्त करके उस ज्ञान को सम्पूर्ण विश्व में प्रसारित किया । इसी वाणी (दिव्य ज्ञान) को सात छन्दों में स्तुति रूप में प्रस्तुत किया । **वेद वाणी को यज्ञ के माध्यम से पाया गया--** यह वाक्य गूढ़ार्थक है ।

यज्ञ-यजन का अर्थ है - देवपूजन, संगतिकरण, दान...... । विद्या के विशेषज्ञ - दाता, देवता का पूजन - श्रद्धा युक्त अनुगमन पहली शर्त है। उसके निर्देशानुसार स्वयं साधना - अभ्यास रूप में संगतिकरण करके ही व्यक्ति विद्याविद् बनता है। इससे कम में किसी विशेषज्ञ के अन्तःकरण में संचित अनुभवजन्य विद्या को प्राप्त करना संभव नहीं है। इतना करके ही कोई व्यक्ति दान रूप में विद्या का विस्तार करके उसे सार्थक बना सकता है ।

यहाँ एक बात और भी ध्यान देने योग्य है — वेद वाणी जड़ नहीं है। वह चेतन का प्रतिनिधित्व करती है और स्वयं भी चेतन है। **चेतन में स्वयं भी चयन करने की क्षमता होती है।** वह सत्पात्रों को पहचान कर स्वयं अपना प्रभाव उसके सामने खोल देती है । ऋ० १०.७१.४ के अनुसार- **उत त्वः पश्यन् न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन् न शृणोत्येनाम्। उतो त्वस्मै तन्वं वि सस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥** कुछ लोग उस वाणी को सुनने के पश्चात् (अर्थ न समझ पाने के कारण) न सुने के समान ही रह जाते हैं । कुछ (धारणा शक्ति के अभाव में) मन से देखने पर भी न देख पाने (अद्रष्टा) जैसे रह जाते हैं । वह वाणी किसी अधिकारी के पास ही अपने स्वरूप को वैसे ही स्पष्ट करती है, जैसे सुन्दर वस्त्रों में लिपटी पत्नी अपने पति के पास ही अपना शरीर (वास्तविक रूप) प्रकट करती है । जो लोग तप द्वारा श्रद्धा एवं मानस के परिष्कार के बिना वेदज्ञान का अनुभव करना चाहते हैं, वे शब्द जंजाल की माया में ही भटककर रह जाते हैं । यह भाव उक्त मंत्र से अगले (१०.७१.५) में स्पष्ट किया गया है । कहा है **'कोई-कोई स्थिर मति वाला ही वेद वाणी को ठीक से समझ पाता है । अन्य तो पुष्प एवं फल रहित शब्दों की माया में ही भटकते रह जाते हैं ।**

यही कारण है कि बड़ी संख्या में शौकिया वेद अध्येता मंत्रों के तत्त्व तक नहीं पहुँच पाते । श्री अरविन्द ने वेद रहस्य में यह बात स्पष्ट करते हुए लिखा है कि उपनिषद् काल (जब साधकों के अन्तःकरण पर्याप्त शुद्ध थे) में भी उन्हें तत्त्वज्ञान प्राप्त करने के लिये तप करने और दीक्षित होने के लिए कहा जाता था । अब, जब जीवन लगभग पूरी तरह पदार्थोन्मुख हो गया है, तब पराचेतन के सूत्र स्वरूप वेदवाणी की गहराई कैसे समझ में आये ? इसका अर्थ यह नहीं कि वेदों में दिये गये सारे मंत्र सामान्य बुद्धि से परे हैं। कहीं-कहीं ऋषिगण व्यावहारिक- अध्यात्म के जीवन निर्माण के, मार्मिक सूत्र प्रकट करते हुए कहते हैं - **'जिह्वाया अग्रे ......भूयासं मधुसंदृशः"** (अथर्व० १.३४) अर्थात् "मेरी जिह्वा के अग्र भाग में मधु हो, जिह्वा का मूल मधुर हो, मेरा आचरण और व्यवहार मधुर हो । मैं वाणी से मीठा बोलूँ और मधुर बन जाऊँ ।" इसी प्रकार ऋषिगण लोकशिक्षण का महत्व समझाते हुए कहते हैं - **'यदन्तरं तद् बाह्यं यद् बाह्यं तदन्तरम्'** (अथर्व० २.३०.६) अर्थात् "जो तुम बाहर से हो, वही अन्दर से भी बन जाओ, जो अंदर हो, वही बहिरंग में प्रकट हो" । इस प्रकार व्यक्तित्व को कैसे सुव्यवस्थित रखा जाय, यह एक महत्त्वपूर्ण सूत्र भी वे दे देते हैं ।

इस प्रकार सर्वसुलभ मंत्रों का भाव समझने में भी यदि मधु का अर्थ मात्र शहद लिया जाये, तो जिह्वा के अग्र भाग पर मधु का अर्थ शहद चाटने के संदर्भ में चला जायेगा और आगे का क्रम बकवास जैसा लगेगा । मधु का अर्थ मधुरता ही लेने से बात बनेगी । कथन की काव्यात्मकता को ध्यान में रखकर ही चलना होगा ।

उक्त संदर्भों से यह स्पष्ट होता है कि पाश्चात्य विद्वान् वेदार्थ के अनुशीलन में एक सीमा तक ही सफल हो सके। उन्होंने एक ओर जहाँ वेद को प्रकाशित करके उस ओर विज्ञ समाज का ध्यान खींचने का स्तुत्य प्रयास किया, वहीं दूसरी ओर वे उसके गूढ़ तत्त्व तक न पहुँच सकने के कारण स्वयं तो भटके ही, अन्य भोले-भाले जिज्ञासुओं के मन में भ्रामक धारणा पैदा कर दी । अपनी बौद्धिक क्षमता



के नशे में गूढ़ अर्थों में सायण जैसे आचार्यों की निन्दा करने में भी वे नहीं चूके। जबकि वैदिक साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् आचार्य बलदेव उपाध्याय लिखते हैं कि "हमारा तो यह निश्चित मत है कि वैदिक सम्प्रदाय के सच्चे ज्ञाता होने के कारण सायण का वेदभाष्य वास्तव में वेदार्थ की कुंजी है और वेद के दुर्गम दुर्ग में प्रवेश कराने के लिए यह विशाल सिंह द्वार है" — (वैदिक साहित्य और संस्कृति पृ० ५३)।

इसी कारण कई भारतीय विद्वान् उन पाश्चात्य विद्वानों पर यह आक्षेप लगाने लगे कि वे वेद के प्रति छद्मरूप से अश्रद्धा उत्पन्न करना चाहते हैं। पाश्चात्य विद्वानों की नीयत क्या थी ? इस झमेले में न पड़ें, तो भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि वेदाध्ययन के लिए ऋषियों की दृष्टि का ही अनुगमन करना आवश्यक है।

अध्ययन की मूल अवधारणा

वेद अध्ययन के संदर्भ में कहा जाता है कि ऋषि, देवता एवं छन्द को जाने बिना मंत्रार्थ खुलते नहीं हैं। महर्षि कात्यायन प्रणीत सर्वानुक्रमणी (१, १) तथा महर्षि शौनक कृत बृहद्देवता (८. १३२) में स्पष्ट लिखा है कि ऋषि, देवता एवं छन्द समझे बिना वेदार्थ का प्रयास करने वाले का श्रम निरर्थक जाता है अथवा पापमूलक हो जाता है।

यहाँ ऋषि का अभिप्राय है -कहने वाले (**यस्य वाक्यं स ऋषिः**) का व्यक्तित्व। देवता का भाव है - प्रकृति की किस शक्तिधारा को लक्ष्य करके बात कही गयी है (**या तेनोच्यते सा देवता**)। छन्द का अर्थ है कि इसमें काव्यात्मकता किस शैली की है (**यद् अक्षर-परिमाणं तच्छन्दः** - ऋ० सर्वा० २.६)।

ऋषि - यह अभिव्यक्ति किसकी है, यह बात बहुत महत्त्व रखती है। **'मत्समः पातकी नास्ति'** (मेरे जैसा पापी कोई नहीं) यह वाक्य किसी अपराधी या कुण्ठित व्यक्ति का है तो बात और है; किन्तु जब जगद्गुरु आचार्य शंकर यह वाक्य बोलते हैं, तो अध्येता एकदम चौंकता है। आचार्य के स्तर को वह जानता है, इसलिए वाक्य का अर्थ हीन प्रसंग में नहीं, उच्च आध्यात्मिक संदर्भ में निकालता है। यदि वक्ता का स्तर पता न हो, तो गूढ़ उक्तियों के बारे में मतिभ्रम स्वाभाविक है। वेद गड़रियों के गीत हैं या तत्त्वदर्शियों के कथन ? इस अवधारणा से हमारी अन्तः -चेतना की जागरूकता में जमीन-आसमान जितना अंतर पड़ जाता है।

देवता - प्रत्येक गूढ़ क्रिया के मूल में स्थित दिव्य शक्ति प्रवाह को समझे बिना सूत्र कैसे समझ में आ सकते हैं। किसी देवता से यह प्रार्थना करें कि 'हे देव ! सैकड़ों योजन दूर उत्पन्न ताप को लाकर हमारा आवास गर्म कर दें।' तो यह बात पागल का प्रलाप जैसी लगेगी; किन्तु विद्युत् के शक्ति प्रवाह को 'देवता' कहकर यह प्रार्थना की जाए तो एक सर्वमान्य सत्य प्रकट होता है। दूरस्थ ताप विद्युत् गृह में जल रहे कोयले की गर्मी से हमारे घर गर्म होते ही हैं। अस्तु ऋषि जिस देवता (शक्तिधारा) को लक्ष्य कर रहे हैं, उसका आभास हुए बिना उक्ति निरर्थक लगती है। किसी ने सूर्य या अग्नि से भयभीत होकर प्रार्थना की है अथवा उस दिव्य कल्याणकारी देवशक्ति का साक्षात्कार करके सूत्र दिये हैं ? इस मान्यता से चिन्तन का आधार ही बदल जाता है।

छन्द - काव्य के छन्द विशेष में किसी भाव विशेष को व्यक्त करने की सामर्थ्य होती है। वीर रस के छन्द से करुण रस के भाव नहीं जगते। छन्द की सामर्थ्य शब्दों से भिन्न है। वे भावों को स्पष्ट करने में कहीं-कहीं शब्दों से अधिक प्रभावी सिद्ध होते देखे जाते हैं। अस्तु, भावों की गहराई तक पहुँचने में छन्द भी सहायक होते हैं। **'चींटी पाँवे हाथी बाँध्यो'** उक्ति सामान्य रूप से एक उपहास जैसी लगती है; किन्तु यह कबीर की उलटबासी है, यह सोचते ही बुद्धि के कपाट स्वतः खुल जाते हैं।

अधिकार - अधिकार सम्बन्धी बात भी अनुशासनपरक ही है। किसी अनुभवी से उसके अनुभव प्राप्त करने के लिए उसके अनुशासन में दीक्षित (संकल्प पूर्वक प्रवृत्त) होना पड़ता है। ब्राह्मी चेतना के अनुशासन को समझकर तदनुसार जीवन जीने के संकल्प के साथ समर्थ गुरु का वरण करने पर



साधक को 'द्विज' की संज्ञा दी जाती थी।'द्विज' का अर्थ होता है- दुबारा जन्म लेने वाला। माँ के गर्भ से शरीर के जन्म के साथ शारीरिक शक्तिधाराओं का विकास होने लगता है। जब साधक अन्तःकरण की शक्तिधाराओं के विकास के लिए समर्थ गुरु से जुड़ता है, तब वह उसका दूसरा जन्म कहलाता है। वेद ब्रह्मविद्या के संवाहक हैं। उन्हें समझने के लिए ब्रह्मनिष्ठ जीवन का संकल्प आवश्यक है।

उक्त संदर्भ में द्विजों को ही वेद अध्ययन फलेगा, यह बात विवेकसंगत एवं सार्थक है। जन्म-जाति विशेष से उसे जोड़ने से ही भ्रम फैले हैं। वे प्रसंग सर्वविदित है कि 'जाबाला' के पुत्र सत्यकाम तथा इतरा के पुत्र ऐतरेय को ब्रह्मविद्या में प्रवेश भी मिला और वे ऋषि स्तर तक पहुँचने में सफल भी हुए। इसलिये किसी को जन्म-जाति गत भ्रमों में न उलझ कर पात्रता के विकास द्वारा वेदाधिकार प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।

वेद ज्ञान को ऋषियों ने नेति-नेति कहकर अपनी श्रद्धा व्यक्त की है। उसे पूरा न समझ पाने से न तो निराश होना चाहिए और न उसे निरर्थक कहकर तिरस्कृत करना चाहिए। निरुक्तकार यास्क ने भी वेद के लगभग ४०० ऐसे शब्द गिनाये, जिनका अर्थ उन्हें नहीं पता था। जब शब्दार्थ का यह हाल है, तो भावार्थ तो और भी गूढ़ होते हैं। वे तो साधना के अनुपात से ही खुलते हैं। अस्तु, विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि ऋषियों के निर्धारित अनुशासन के अनुसार वेद का अध्ययन करने वालों को वेद भगवान के अनुग्रह से जीवनोपयोगी सूत्र प्राप्त होते रहे हैं और सदैव प्राप्त होते रहेंगे।

वेद में प्रतीक एवं रूपक

वेद में जिन पात्रों का उल्लेख होता है, वे रूपक के रूप में प्रयुक्त हैं। उन्हें शरीरधारियों से जोड़ने के प्रयास में हर जगह सफलता नहीं मिलती। ऐसा मानने से वेद की स्वाभाविक गरिमा की रक्षा भी नहीं हो पाती। अस्तु, वे वेद के पात्र भले ही लौकिक संदर्भ में भी सिद्ध हो जाते हैं; किन्तु उन्हें वहीं तक सीमित नहीं रखा जा सकता। उनका प्रयोग रूपक के रूप में करने से ही बात बनती है। जैसे- ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में कहा गया है- **सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे। जुहूमसि द्यविद्यवि** (ऋ० १.४.१)। (गोदोहन करने वाले के द्वारा) प्रतिदिन मधुर दूध प्रदान करने वाली गाय को जिस प्रकार बुलाया जाता है, उसी प्रकार हम अपने संरक्षण के लिए सौंदर्यपूर्ण यज्ञकर्म सम्पन्न करने वाले इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं। इसी प्रकार इन्द्र के संदर्भ में कहा गया है कि वे सभी रूपों को बनाने वाले हैं और दुहने वाले के लिए भरपूर दूध देने वाली गौ के समान हैं- **इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामीद्धृदा मनसा चिदिन्द्रम्** (ऋ०६. २८. ५)। हे मनुष्यों! ये गौएँ ही इन्द्र रूप हैं। उन्हीं इन्द्र को हम श्रद्धा के साथ पाना चाहते हैं।

इन्द्र को गौ की तरह दुहा जा सकता है, तो वे इन्द्र कोई पुरुष तो नहीं ही हो सकते, किसी शक्तिधारा के रूप में ही उन्हें समझा- जाना जा सकता है।

इससे भी बढ़कर कहा जाता है:- वही गौ है, वही अश्व है- **इन्द्रो वा अश्वः** (कौषी० ब्रा० १५.४); (इन्द्र अश्व रूप हैं।) इन वाक्यों का सही अर्थ निकालने के लिए गौओं-अश्वों और इन्द्र को शक्ति-प्रवाहों के रूप में ही स्वीकार करना पड़ेगा।

अस्तु, वेदों के प्रतीकवाद को दृष्टिगत रखकर ही वेदमंत्रों का ठीक-ठीक अर्थ किया जा सकता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी इस दृष्टिकोण का समर्थन किया गया है। उन्होंने ऋषियों एवं देवताओं को 'प्राण की धाराएँ' अर्थात् चेतनायुक्त शक्ति माना है। **के तऽऋषय इति प्राणा वाऽ ऋषयस्ते।** "वे ऋषि कौन थे? प्राण ही वे ऋषि थे" (शत० ब्रा० ६.१.१.१), **प्राणो वै वसिष्ठ ऋषिर्यद्वै नु श्रेष्ठस्तेन वसिष्ठो।** "प्राण ही वसिष्ठ ऋषि हैं। श्रेष्ठ होने से वसिष्ठ कहा गया है" (शत० ब्रा० ८.१.१.६), **प्राणा वै देवाः "प्राण ही देव हैं"**(शत० ब्रा० ६.७.२.३), **कतम एको देव इति प्राण इति** - एक देव कौन है? 'प्राण'(शत० ब्रा० ११.६.३.१०)।

श्री अरविन्द ने वेदरहस्य में विभिन्न उदाहरण देकर यह सिद्ध किया है कि वेद के पात्र गुह्य रूपकों के रूप में ही समझे जा सकते हैं। वेद के मूल उद्देश्य के बारे में उनका कथन है कि वेद का केन्द्रभूत विचार है- "अज्ञान के अन्धकार में से सत्य की विजय करना



और सत्य की विजय के साथ ही अमरता की भी विजय कर लेना; क्योंकि वैदिक 'ऋतम्' जहाँ मनोवैज्ञानिक विचार है, वहाँ आध्यात्मिक विचार भी है। यह 'ऋतम्' परमात्म सत्ता का सत्, सत्य चेतन और सत्य आनन्द है, जो इस शरीररूपी पृथ्वी इस प्राण शक्तिरूप अन्तरिक्ष एवं मनरूप सामान्य आकाश या द्यौ से परे है। हमें इन सब स्तरों को पार कर आगे जाना है; ताकि हम उस पराचेतन सत्य के उच्चस्तर में पहुँच सकें, जो देवों का स्वकीय घर है और अमरता का मूल है।"

श्री अरविन्द का मत है कि इस यात्रा में सहायक शक्तियाँ देवता एवं ऋषिगण हैं तथा उक्त यात्रा में बाधक-अवरोधक शक्ति धाराएँ दस्यु-दानव आदि हैं। विभिन्न पात्रों- रूपकों के सन्दर्भ में उनके निष्कर्ष कुछ इस प्रकार हैं-- अंगिरस् और वृत्र ऐसे रूपक हैं, जो वेद में बार-बार आते हैं- **इमे भोजा अङ्गिरसो विरूपा** (ऋ० १.५३.७), **वृत्रस्य यद् बद्बधानस्य रोदसी** (ऋ० १.५२.१०)। उन्होंने अग्नि को दिव्यज्ञान से उद्दीप्त वह ज्वाला कहा है, जो सत्य एवं अमरत्व की यात्रा अथवा संघर्ष में विजय के लिये प्रज्वलित की जाती है- **कविर्देवानां परिभूषसि व्रतम्** (ऋ० १.३१.२), **स्वग्नयो हि वार्यं देवासो** (ऋ० १.२६.८), **रुक्मी त्वेषः समत्सु** (ऋ० १.६६.६)। अंगिरस् उस ज्वाला को प्रज्वलित करने वाली द्रष्टा संकल्प की शक्तियाँ हैं।

वृत्र, पणि, दस्यु आदि उक्त यात्रा में बाधा पहुँचाने वाली हीन शक्तियों को कहा गया है, जैसे- **इन्द्रो यद् वृत्रमवधीन्नदीवृतं** (ऋ० १.५२.२), **निरुद्धा आपः पणिनेव गावः** (ऋ० १.३२.११), **वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेनं** (ऋ० १.३३.४)। बृहस्पति सर्जनकारी शब्द के अधिपति हैं—**मन्द्रजिह्वं बृहस्पतिं वर्धया** (ऋ० १.१९०.१)। सरस्वती को दिव्य शब्द की धारा या सत्य की अन्तःप्रेरणा कह सकते हैं— **महो अर्णः सरस्वती प्रचेतयति केतुना। धियो विश्वा वि राजति** (ऋ० १.३.१२)। उषा दिव्य अरुणोदय है, वह दिव्य स्फुरणा है, जिसके पीछे पराचेतन सत्य का सूर्य उदित होता है- **व्यञ्जते दिवो अन्तेष्वक्तून् विशो न युक्ता उषसो यतन्ते। सं ते गावस्तम आ वर्तयन्ति ज्योतिर्यच्छन्ति सवितेव बाहू** (ऋ० ७.७९.२) अर्थात् उषा देवियाँ अपने तेज को अन्तरिक्ष में फैलाती हैं एवं प्रजाओं की तरह परस्पर मिलकर अन्धकार को विनष्ट करने की चेष्टा करती हैं और सूर्यदेव की भुजा रूपी किरणों की ज्योति द्वारा अन्धकार का विनाश करती हैं।

इससे स्पष्ट होता है कि **गौ** दिव्य ज्ञान की वे रश्मियाँ हैं, जो सत्य का बोध कराती हैं। **अश्व** उस सनातन सत्य की संचरण क्षमता है। **घृत** गौओं- दिव्य किरणों- से उत्पन्न वह तेजस् है, जो आत्मशक्ति को- देव शक्तियों को पुष्ट बनाता है। उस पराचेतन सत्य का प्रवाह अखण्डित रहता है, तो देवशक्तियों का उद्भव और विकास होता है; इसलिए **अदिति** (जो खण्डित नहीं) देवों की माता है। इसके विपरीत इस दिव्य प्रवाह के खण्डित होने से अज्ञान-भ्रम आदि दोषों की उत्पत्ति होती है। अस्तु, **दिति** (खण्डित होने वाली) दैत्यों की माता है।

अश्व (शक्ति-प्रवाहों) तथा गौ (प्रकाश देने वाली पोषक धाराओं) का अपहरण दानव कर लेते हैं, तब आर्यों (दिव्य अनुशासन का अनुगमन करने वालों) के हित में इन्द्र, मरुत्, मित्र, वरुण आदि देव शक्तियाँ युद्ध करती हैं। वे **दानवों** (अनृत-अज्ञान-पाप की शक्तियों) के दुर्ग को तोड़कर गौओं और अश्वों को मुक्त कराते हैं।

अश्विनीकुमारों को जुड़वाँ (यमल) माना गया है। उन्हें देववैद्य की संज्ञा भी प्राप्त है। **अश्विनी** का अर्थ होता है— अश्वों (किरणों) से युक्त। उन्हें आनन्द, आरोग्य एवं पुष्टिदायक कहा गया है। आरोग्य एवं पुष्टि देने वाले दो प्रवाह प्रकृति में एक साथ उपलब्ध हैं— १. पदार्थों, जल, अन्न, वनस्पतियों आदि में आरोग्य एवं पुष्टि भरने वाले अन्तरिक्षीय प्रवाह तथा २. पदार्थों से उभरने वाले आरोग्य एवं पुष्टिदायक प्रवाह। ये दोनों प्रवाह एक साथ रहने वाले अभिन्न होते हुए भी अपनी अलग-अलग विशिष्टताएँ भी रखते हैं— **प्र वां निचेरुः ककुहो वशाँ अनु पिशङ्गरूपः सदनानि गम्याः। हरी अन्यस्य पीपयन्त वाजैर्मथ्ना रजांस्यश्विना वि घोषैः** (ऋ० १.१८१.५) 'हे अश्विनीकुमारो! आप दोनों में से एक का पीतवर्ण युक्त (सूर्य के समान स्वर्णिम) तथा सर्वत्र गमनशील रथ, इच्छित दिशाओं एवं आवासों में पहुँचता है। दूसरे का, मन्थन से उत्पन्न घोड़े (अग्नि) अन्नों एवं उद्घोषों (मन्त्रों) सहित सम्पूर्ण लोकों को पुष्टि प्रदान करते हैं।'



प्र वां शरद्वान्वृषभो न निष्षाट् पूर्वीरिषश्चरति मध्व इष्णन्। एवैरन्यस्य पीपयन्त वाजैर्वेषन्तीरूर्ध्वा नद्यो न आगु: (ऋ० १.१८१.६) "हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों में से एक प्राचीन सामर्थ्यशाली शत्रुसेना को पराजित करने वाले हैं और अन्न में मधुर रस की उत्पत्ति हेतु सर्वत्र विचरण करते हैं। दूसरे अन्नों को समृद्ध करने वाली ऊर्ध्वगामी नदियों को वेगपूर्वक प्रवाहित करते हैं। आप दोनों हमारे समीप आएँ ।" वेद मन्त्रों के अर्थ ऐसे प्रतीकात्मक अनुभूतिजन्य रूपकों के आधार पर ही समझे जा सकते हैं।

वेद एवं यज्ञ

वेद एवं यज्ञ का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। यज्ञ का कर्मकाण्ड पक्ष ही लें, तो भी देव पूजन के क्रम में ऋग्वेद के मन्त्रों से स्तुतियाँ करने, यजुर्वेद के मंत्रों से यजन प्रयोग करने, सामगान द्वारा यज्ञीय उल्लास को संवर्धित और प्रसारित करने तथा अथर्ववेद से स्थूल-सूक्ष्म परिष्कार की वैज्ञानिक प्रक्रिया चलाने की मान्यता सर्वविदित है। यदि यज्ञ का विराट् रूप लें, तो पुरुष सूक्त के अनुसार उस विराट् यज्ञ द्वारा ही सृष्टि का निर्माण हुआ तथा उसी से उसके पोषण का चक्र चल रहा है। उसी विराट् यज्ञीय प्रक्रिया के अंतर्गत सृष्टि के संचालन एवं पोषण के लिए उत्कृष्ट ज्ञान-वेद का प्रकटीकरण हुआ। यथा- **ततो विराळजायत विराजो अधिपूरुष:। सजातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुर:** (ऋ० १०.९०.५) अर्थात्-' उस विराट् पुरुष से यह ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ। उसी से समस्त जीव प्रकट हुए। देह-धारियों के रूप में वही श्रेष्ठ पुरुष स्थित है। उसने पहले पृथ्वी और फिर प्राणियों को उत्पन्न किया।' **तस्मात् यज्ञात् सर्वहुत ऽऋच: सामानि जज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तमादजायत** (ऋ० १०.९०.९) ' उस विराट् यज्ञ पुरुष से ऋग् एवं साम का प्रकटीकरण हुआ। उसी से छन्दों की और यजु एवं अथर्व की उत्पत्ति हुई।'

वेद यज्ञीय प्रक्रिया से प्रकट हुए हैं और यज्ञीय अनुशासन में जीवन को गतिशील बनाने के लिए हैं। वेद मंत्र परा-चेतन और प्रकृतिगत गूढ़ अनुशासनों-रहस्यों का बोध कराते हैं। उन्हें समझकर ही प्रकृतिगत चेतन प्रवाहों तथा स्थूल- पदार्थों का प्रगतिशील एवं कल्याणकारी प्रयोग किया जाना सम्भव है, जैसे अग्नि या विद्युत् के स्वाभाविक गुण-धर्मों को समझे बिना व्यक्ति उनका उपयोग भली प्रकार नहीं कर सकता। अग्नि को धारण करने के लिए अज्वलनशील (नॉनइन्फ्लेमेबिल) पदार्थ ही चाहिए तथा उसे प्रज्वलित रखने के लिए ज्वलनशील (इन्फ्लेमेबिल) पदार्थों की ही संगति बिठानी पड़ेगी। विद्युत् को इच्छित उपकरणों तक ले जाने के लिए विद्युत् सुचालक (इलैक्ट्रिकल कंडक्टर्स) तथा फैलकर नष्ट हो जाने से बचाने के लिए विद्युत् कुचालक (इलैक्ट्रिकल इन्सुलेटर्स) का व्यवस्थित क्रम बिठाना अनिवार्य है। जो व्यक्ति विद्युत् एवं पदार्थों का गुणधर्म ही नहीं समझता, वह कैसे विद्युत् तंत्र (इलैक्ट्रिकल नैटवर्क) स्थापित कर सकता है?

अस्तु, वेद ने प्रकृति के गूढ़ तत्त्वों को प्रकट करते हुए कहा है कि ये प्रवाह एवं पदार्थ यज्ञार्थ हैं, इन्हें यज्ञीय अनुशासनों में प्रयुक्त करने से सत्पुरुष, देवों के समान ही स्वर्गीय परिस्थितियाँ प्राप्त कर सकते हैं। इसी यज्ञीय आचरण प्रणाली को उन्होंने यज्ञ कहा- **यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्। ते ह नाकं महिमान: सचन्त यत्र पूर्वे साध्या: सन्ति देवा:।** (ऋ०१०.९०.१६) " देवों ने यज्ञ (प्रक्रिया) से या (विराट् पुरुष जिनका धर्मकृत्यों में प्रथम स्थान है) का यजन किया। (जो सत्पुरुष) इस पूर्व प्रयुक्त प्रक्रिया का अनुसरण करते हैं, वे देवों के आवास स्वर्ग के अधिकारी बनते हैं।" उक्त संदर्भों से स्पष्ट होता है कि वेदोक्त 'यज्ञ' मात्र अग्निहोत्र परक कर्मकाण्ड ही नहीं है, वह स्रष्टा के अनुशासन में भावना, विचारणा, पदार्थ एवं क्रिया के संयोग से उत्पन्न होने वाला एक अद्भुत पुरुषार्थ है। वेद में इसके अनेक रूप परिलक्षित होते हैं--

* पहला यज्ञ, पराचेतन(विराट् पुरुष या ब्रह्म) के संकल्प से सृष्टि के उद्भव के रूप में दिखाई देता है।

* दूसरा स्वरूप यज्ञ का वह है, जिसके अन्तर्गत उत्पन्न स्थूल एवं सूक्ष्म तत्त्व, अनुशासन विशेष का अनुपालन करते हुए सृष्टि चक्र को सतत प्रवहमान बनाये हुए हैं।

* यज्ञ का तीसरा स्वरूप यह है कि जिस क्रम में प्राणि जगत् प्रकृति के प्रवाहों को आत्मसात् करते हुए उत्पन्न ऊर्जा से स्वधर्मरत रहता है और प्रकृतिगत यज्ञीय प्रवाहों को अस्त-व्यस्त नहीं होने देता।

* मनुष्यों द्वारा किये जाने वाले कर्मकाण्ड युक्त देवयज्ञ उस वैज्ञानिक प्रक्रिया के अंग हैं, जिसके अन्तर्गत मनुष्य प्रकृति के पोषक प्रवाहों को पुष्टि प्रदान करने का प्रयास करता है। यह यज्ञ का चौथा स्वरूप है।

अब प्रश्न उठता है कि इस यज्ञीय कर्मकाण्ड के लिए ऋषियों ने मनुष्यों को क्यों प्रेरित किया? जब कि अन्य प्राणियों से यह अपेक्षा नहीं की जाती। सभी प्राणी प्रकृतिगत प्रवाहों का स्वाभाविक उपयोग करते हुए अपना निर्वाह भर करते रहते हैं। उनमें से कोई भी 'प्रकृति का दोहन' नहीं करता। मनुष्य में प्रकृति का दोहन करने की क्षमता है। उसका दायित्व बनता है कि यदि प्रकृति का दोहन करता है, तो उसके पोषण के भी विशेष प्रयास करे। हर मादा अपने बच्चों के पोषण के लिए दूध उत्पन्न करती है। यदि मनुष्य 'गाय' का दोहन अपने लिए करता है, तो उसका दायित्व बनता है कि गाय के पोषण की ऐसी व्यवस्था भी बनाये, जिससे दोहन के बाद भी उसके बच्चे के लिए पर्याप्त दूध पैदा होता रहे।

आज मनुष्य प्रकृति का केवल दोहन ही करना चाहता है, उसके पोषण के दायित्व और उसकी उपयुक्त प्रक्रिया दोनों को वह भुला चुका है। यही कारण है कि मनुष्य को प्रकृतिगत असंतुलन (इकॉलाजिकल अनबैलेन्सिग) के कारण उत्पन्न प्रदूषण से लेकर अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूकम्प जैसे प्राकृतिक विप्लवों को दण्ड के रूप में झेलना पड़ रहा है। वेद द्वारा निर्दिष्ट यज्ञीय जीवन शैली अपनाकर मनुष्य परम पिता के प्रतिनिधि के रूप में अपनी स्थूल एवं सूक्ष्म सामर्थ्यों के यज्ञीय सुनियोजन से भूमण्डल पर स्वर्गीय परिस्थितियाँ उत्पन्न कर सकता है।

यज्ञ के विवादित प्रसङ्ग

यज्ञीय प्रक्रिया का विशेष उल्लेख तो यजुर्वेद खण्ड में किया गया है। अस्तु, उससे सम्बन्धित भ्रान्तियों का समाधान भी उसी में दिया गया है, किन्तु यज्ञ और वेद परस्पर एक दूसरे से गुँथे हुए हैं। इसलिए उससे सम्बन्धित समाधानों का आवश्यक उल्लेख यहाँ भी किया जा रहा है।

यह तथ्य ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है कि वेद में यज्ञ, अग्निहोत्र परक कर्मकाण्ड से परे और भी बहुत कुछ है। वेदार्थ के क्रम में उन सभी सन्दर्भों में दृष्टि खुली रखनी चाहिए।

मेध:- मेध शब्द को लेकर अनेक भ्रान्तियाँ फैली हुई हैं। वेद में यह शब्द बार-बार प्रयुक्त भी हुआ है, इसलिए उस सन्दर्भ में दृष्टि स्पष्ट कर लेनी चाहिए। निघण्टु में यज्ञ के १५ (पन्द्रह) नाम गिनाए गये हैं, उनमें एक नाम 'मेध' भी है। अस्तु, वेद में 'मेध' का अर्थ 'यज्ञ' ही मानना उचित है।

यहाँ लोग यज्ञ में 'मेध' का अर्थ 'हिंसा' करने का प्रयास करते हैं, किन्तु स्मरणीय है कि निघण्टु में यज्ञ का एक नाम 'अध्वर' (हिंसा रहित कर्म) भी है। अस्तु, हिंसा रहित कर्म में मेध का अर्थ हिंसा परक करना अनुचित है।

'मेध' का व्याकरण परक अर्थ होता है- **(मेधा हिंसनयो: संगमे च)** मेधा संवर्धन, हिंसा एवं एकीकरण- संगतिकरण। अध्वर के नाते हिंसापरक अर्थ अमान्य कर देने पर मेधा संवर्धन तथा एकीकरण-संगतिकरण ही मान्य अर्थ रह जाते हैं, जो यज्ञ एवं वेद दोनों की गरिमा के अनुरूप हैं।

वेदोक्त यज्ञीय सन्दर्भ में 'बलि' एवं 'आलभन' यह दो शब्द भी प्रयुक्त होते हैं, जिनके हिंसापरक अर्थ करने के प्रयास किये जाते हैं। मेध की तरह उनका भी एक अर्थ यदि हिंसापरक है, तो भी 'अध्वर' हिंसा रहित कर्म में हिंसा परक अर्थ नहीं किये जाने चाहिए। उनके शेष अर्थों के साथ यज्ञीय संगति बहुत ठीक बैठ जाती है।

बलि- यह शब्द बल् - इन् से बना है, जिसके कई अर्थ होते हैं, जैसे- (१) आहुति, भेंट, चढ़ावा (२) भोज्य,



पदार्थ अर्पित करना । प्रचलन की दृष्टि से देखें तो भी उक्त भाव ही सिद्ध होते हैं- सद्गृहस्थ के नित्यकर्मों में बलिवैश्वदेव यज्ञ का विधान है । उसके अन्तर्गत भोज्य पदार्थों को यज्ञार्थ अर्पित किया जाता है, किसी प्रकार की हिंसा की प्रक्रिया प्रचलित नहीं है । श्राद्ध कर्म में गो बलि, कुक्कुर बलि, काक बलि, पिपीलिकादि बलि आदि का विधान है। उसके अन्तर्गत सम्बन्धित प्राणियों का वध नहीं किया जाता, उनके लिए भोज्य पदार्थ ही भेंट किया जाता है ।

आलभन- इसका भी हिंसा परक अर्थ छोड़ देने पर अन्य अर्थ होते हैं, स्पर्श करना, प्राप्त करना आदि । **'ब्रह्मणे ब्राह्मणं आलभेत । क्षत्राय राजन्यं आलभेत'** (यजु० ३०.५) का अर्थ हिंसा परक करने से होता है, ब्राह्मणत्व के लिए ब्राह्मण का वध करे और क्षात्रत्व के लिए क्षत्रिय का वध करें । यह अर्थ सर्वथा असंगत लगता है । विवेक संगत अर्थ होता है - ब्राह्मणत्व के लिए ब्राह्मण तथा शौर्य के लिए क्षत्रिय को प्राप्त करे या संगति करे । अस्तु, यज्ञ एवं वेद की गरिमा परक स्वाभाविक अर्थों को ही लिया जाना चाहिए ।

यज्ञीय कर्मकाण्ड के अन्तर्गत अश्वमेध, गोमेध, नरमेध, पितृमेध आदि प्रकरणों की संगति ऊपर वर्णित सिद्धान्तों के आधार पर ही ठीक प्रकार बैठती है । इन प्रकरणों का उल्लेख यजुर्वेद में विशेषरूप से किया गया है । यहाँ तो मात्र इतना आग्रह किया जा रहा है कि सुधीजन वेदार्थ के क्रम में यज्ञ की विराट् प्रक्रिया को ही ध्यान में रखकर चलें ।

वैदिक - स्वर

वैदिक ऋचाओं में अक्षरों के ऊपर और नीचे विभिन्न प्रकार की खड़ी और आड़ी रेखाएँ देकर उनके नियमानुसार अक्षरों के उच्च, मध्यम एवं मन्द स्वर में उच्चारित करने के नियम विद्वान् ऋषियों ने बनाये हैं । इन्हें स्वर कहा जाता है । इनको तीन भागों में बाँटा गया है- १. उदात्त २. अनुदात्त और ३. स्वरित; किन्तु इनमें से भी प्रत्येक स्वर अधिक या न्यून रूप में बोला जा सकता है । इसीलिए हर एक के दो-दो भेद हो जाते हैं, जैसे- उदात्त-उदात्ततर, अनुदात्त-अनुदात्ततर, स्वरित-स्वरितोदात्त । इन स्वरों के अलावा एक स्वर और माना गया है- 'एक श्रुति, ' इसमें तीनों स्वरों का मिलन हो जाता है । इस तरह से इनकी संख्या सात मानी गई है । इन स्वरों की व्याख्या भाष्यकार पतंजलि ऋषि ने ' **स्वयं राजन्त इति स्वराः** इत्यादि शब्दों में विस्तार से की है । इन सात भेदों में भी एक -दूसरे का आपस में मिलन होने से कई तरह के भेद हो जाते हैं, जिनके लिए स्वर चिह्नों में कुछ परिवर्तन किया जाता है ।

स्वरों के लिए जिन चिह्नों को प्रयोग में लाया जाता है , उनके सम्बन्ध में भी बड़ा मतभेद दिखाई पड़ता है । सामान्यतः अनुदात्त के लिए अक्षर के नीचे आड़ी लकीर देने तथा स्वरित के लिए अक्षर के ऊपर खड़ी रेखा बनाने का नियम है । उदात्त का अपना कोई चिह्न नहीं, उसका इन्हीं दो स्वरों की स्थिति के अनुरूप उच्चारण किया जाता है; ये चिह्न भी प्रत्येक स्थान में एक से नहीं हैं । इस विषय में स्वर शास्त्र की खोज करने वाले एक विद्वान् श्री युधिष्ठिर मीमांसक ने अपनी पुस्तक में लिखा है - ' वैदिक वाङ्मय के जितने ग्रन्थ प्राप्त होते हैं , उनमें उदात्त , अनुदात्त और स्वरित स्वरों का अंकन एक जैसा नहीं है । उनमें परस्पर अत्यन्त वैलक्षण्य है । एक ग्रन्थ में जो स्वरित का चिह्न देखा जाता है , वही दूसरे ग्रन्थ में उदात्त का चिह्न माना जाता है । इसी प्रकार किसी ग्रन्थ में जो अनुदात्त का चिह्न है , वह अन्य ग्रन्थ में उदात्त का चिह्न हो जाता है । **'सामसंहिता'** का स्वरांकन प्रकार सभी से विलक्षण है । उसके पदपाठ का स्वरांकन संहिता के स्वरांकन से भी पूर्णरूपेण मेल नहीं खाता है । इसीलिए वेद के पाठक को पदे-पदे संदेह और कठिनाई उपस्थित होती है ' ।

इन तथ्यों के अतिरिक्त स्वर-चिह्न युक्त छपी वेद की पुस्तकों में एक नई समस्या प्रेस सम्बन्धी हमारे अनुभव में आई है । इनके कारण एक सामान्य पाठक के लिए मन्त्रों के पढ़ने में असुविधा होती है और अनेक बार वे गलती कर जाते हैं । इसी प्रकार जिस अक्षर के नीचे 'अनुदात्त' की आड़ी रेखा लगाई गई है और उसमें 'छोटे उ' की मात्रा भी लगी हो तो वह भी प्रायः आँखों से ओझल हो जाती है ।

उक्त कारणों से हमने प्रस्तुत संस्करण में स्वर चिह्नों का प्रयोग नहीं किया है। इनकी आवश्यकता सस्वर वेद पाठ करने में होती है और इस कार्य के लिए कई स्थानों से मूल संहिता की पुस्तकें छपी हैं। हमारा मुख्य उद्देश्य वेदों के पठन-पाठन को प्रेरणा देने का है, जिससे सामान्य से सामान्य लोग भी इस सार्वभौम धर्म के इस "मूल" को स्वयं पढ़ कर तात्पर्य समझ सकें।

इस प्रकार "स्वरों" का परित्याग कोई नई बात नहीं है, आज से लगभग १०० वर्ष पूर्व बिहार की एक धार्मिक संस्था की ओर से 'ऋग्वेद' का भाष्य आठ खण्डों में प्रकाशित किया गया था, जिसके लेखक "भारत धर्म महामण्डल" के महोपदेशक पं० रामगोविन्द वेदान्त शास्त्री थे। आप ने असामयिक जानकर उसमें स्वरों का प्रयोग नहीं किया था। ठीक इसी प्रकार अहमदाबाद के परमहंस श्री भगवदाचार्य ने सामवेद संहिता का भाष्य बिना स्वरों के ही किया था। प्राचीन काल में भी उपनिषद् आदि ग्रन्थों में जहाँ वेद-मंत्रों के उद्धरण दिये हैं, वहाँ स्वर चिह्न नहीं लगाये गये हैं। इन सभी का सबसे स्पष्ट उदाहरण तो **"ईशावास्योपनिषद्"** है, जो पूर्णत: "यजुर्वेद" के अन्तिम अध्याय की प्रतिलिपि है, जिसे सभी जगह बिना स्वर चिह्नों के ही लिखा व छापा गया है।

वैदिक साहित्य का वर्गीकरण

'वेद' ज्ञान निधि के समुच्चय हैं, जिन्हें ऋषियों ने अपनी अन्त: प्रज्ञा से प्रकट किया है। वह वेदराशि स्वरूप भेद के कारण वस्तुत: चार विभागों में प्रविभक्त है -संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद्। संहिता में वैदिक स्तुतियाँ संगृहीत हैं। ब्राह्मण में मंत्रों की व्याख्या तथा तत्समर्थक - प्रतिपादक प्रवचन हैं, आरण्यक में वानप्रस्थ आश्रम में कर्मरत लोकसेवियों के लिए उपयोगी अरण्यगान व विधि-विधान हैं तथा उपनिषदों में दार्शनिक व्याख्याओं का प्रस्तुतीकरण है। कालक्रम के प्रवाह में इस वर्गीकरण का लोप हो जाने से इनमें से प्रत्येक को स्वतन्त्र इकाई मान लिया गया और आज यह स्थिति है कि वेद शब्द सिर्फ संहिता के अर्थों में प्रयुक्त होता है। इन संहिताओं में ऋक् को प्रार्थना, यजुष् को यज्ञ- यागादि विधान, साम को शांति-मंगलमयगान तथा अथर्व को धर्म दर्शन तथा लोक जीवन के लिए उपयोगी जानकारी-परक माना जाता है।

एक मान्यता यह भी रही है कि वेद पहले एक ही संहिता में थे, बाद में महर्षि वेद व्यास ने उसे चार भागों में वर्गीकृत किया। वेदों का वर्गीकरण करने के कारण ही उन्हें वेदव्यास कहा गया — (**वेदान् विव्यास यस्मात् स वेदव्यास इति स्मृत:** – महा० १.६३.८८)। इस आधार पर वेदों के वर्ण्य-विषय के सन्दर्भ में श्रीमद्भागवत का यह श्लोक उद्धृत किया जाता है— **ऋक्-यजु:-सामाथर्वाख्यान्वेदान् पूर्वादिभिर्मुखै: शस्त्रमिज्यां स्तुतिस्तोमं प्रायश्चित्तं व्यधात् क्रमात्** (श्रीमद्भागवत ३. १२. ३७)।

अर्थात् ऋक् का विषय है- शस्त्र (होता द्वारा सामान्य ढंग से प्रयुक्त किये जाने वाले मन्त्र), यजु: का विषय है - इज्या (यज्ञ कर्म), साम का विषय है- स्तुतिस्तोम (गेय ऋचाएँ) तथा अथर्व का विषय है- प्रायश्चित्त (साधकों के निमित्त आन्तरिक एवं बाह्य शोधन- प्रक्रिया के उपचार सूत्र)।

इस सन्दर्भ में अनके विद्वानों का कथन यह है कि महर्षि व्यास के पिता, पितामह सभी वेद चतुष्टयी के ज्ञाता थे। 'पुरुषसूक्त' ऋ०१०.९०९ तथा यजु०३१. ७ में कहा गया है-

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतऽऋच: सामानि जज्ञिरे।
छन्दाँसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥

अर्थात्- 'उस विराट् यज्ञ पुरुष से ऋक्, साम आदि प्रकट हुए। उसी से यजु, अथर्वादि के छन्दों का प्रकटीकरण हुआ। अस्तु, ऐसा प्रतीत होता है कि वेद का यह विभागक्रम भी अति-प्राचीन है। सम्भव है, इस विभाग क्रम का संशोधित रूप वेदव्यास ने दिया हो।

एक प्रश्न यह भी उठाया जाता है, कि वेदत्रयी है कि वेदचतुष्टयी ? इसे यों समझ सकते हैं कि ज्योतिर्विज्ञान के अनुसार आकाश का विभाजन २७ नक्षत्रों के रूप में भी है और १२ राशियों के रूप में भी। वर्गीकरण के अपने-अपने ढंग हैं। वेद की चार संहिताओं के सम्बन्ध में ऊपर उल्लेख किया ही जा चुका है। वेदत्रयी की मान्यता इस प्रकार है—



(१) पद्यात्मक मन्त्रों को ऋचा कहा गया है— **तेषामृग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था** (जै० सू० २.१.३५)।

(२) यजु गद्यात्मक हैं। उनमें वर्णों की संख्या का कोई बन्धन नहीं है **(गद्यात्मको यजुः। अनियताक्षरःवसानो यजुः)** ।

(३) साम गान परक है **'गीतिषु सामाख्या** (जै० सू० २.१.३६)। उसमें ऋचाओं को संगीत विद्या के साथ जोड़कर अधिक सरस तथा अधिक प्रभावशाली बनाया गया है।

वेद के सभी मंत्र पद्य, गद्य एवं गान इन्हीं तीन धाराओं में विभक्त हैं, इसीलिए उसे वेदत्रयी कहा जाता है। वेद की चारों संहिताओं के मन्त्रों के वर्गीकरण भिन्न-भिन्न ढंग से किये गये हैं। यहाँ केवल ऋग्वेद के विभाग क्रम को स्पष्ट किया जा रहा है। यजु०, साम० एवं अथर्व० के क्रम विभाग क्रमशः उनके भूमिका प्रकरण में दिये गये हैं।

ऋग्वेद विभाग-क्रम

वर्तमान में उपलब्ध संहिताओं को देखने से ज्ञात होता है कि ऋग्वेद को दो क्रमों में प्रविभक्त किया गया है-

(१) अष्टक क्रम और (२) मण्डल क्रम।

(१) अष्टक क्रम-- यह क्रम विभाजन प्राचीन प्रतीत होता है। इसके अनुसार सम्पूर्ण ऋक् संहिता आठ अष्टकों में विभक्त है। प्रत्येक अष्टक आठ अध्यायों के हैं तथा प्रत्येक अध्याय कुछ वर्गों से युक्त हैं। प्रत्येक वर्ग में कुछ ऋचाएँ हैं। ये ऋचाएँ (मन्त्र) प्रायः पाँच-पाँच हैं, परन्तु एक मन्त्र से लेकर ९ तक के वर्ग भी मिलते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण ऋक् संहिता में २००६ वर्ग हैं।

(२) मण्डल क्रम-- यह विभाजन अपेक्षाकृत नवीन और अधिक सुसंगत प्रतीत होता है। इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण ऋक् संहिता १० मण्डलों में प्रविभक्त है। प्रत्येक मण्डल में अनेक अनुवाक, प्रत्येक अनुवाक में अनेक सूक्त और प्रत्येक सूक्त में एकाधिक ऋचाएँ या मन्त्र हैं। ऋग्वेद के दसों मण्डलों में पच्चासी (८५) अनुवाक और एक हजार सत्रह (१०१७) सूक्त हैं। इसके अतिरिक्त ११ सूक्त बालखिल्य के नाम से जाने जाते हैं। इस प्रकार कुल संख्या १०२८ हो जाती है। सुगमता को ध्यान में रखकर यहाँ मण्डल, सूक्त एवं मंत्र के विभाजन को मान्यता दी गई है।

वेदों में किसी प्रकार की मेल-मिलावट न हो सके, इसके लिए ऋषियों ने ऋचाओं को कौन कहे ? शब्दों-अक्षरों तक गिनकर उसे लिपिबद्ध कर दिया है।

कात्यायन प्रभृति ऋषियों ने अनुक्रमणी नामक ग्रन्थों में इसका विवेचन प्रस्तुत किया है। सम्पूर्ण ऋक् संहिता में ऋचाओं की संख्या १०५८० .१/४ है- **ऋचां दशसहस्राणि ऋचां पञ्चशतानि च। ऋचामशीतिः पादश्च पारणं सम्प्रकीर्तितम्** (अनुवाकानुक्रमणी)। सम्पूर्ण ऋचाओं के पदों (शब्दों) की गणना भी उपलब्ध होती है। अनुक्रमणी में यह संख्या १५३८२६ दी गई है—**शाकल्यदृष्टेः पदलक्षमेकं सार्धं च वेदे त्रिसहस्रयुक्तम्। शतानि चाष्टौ दशकद्वयं च पदानि षट् चेति हि चर्चितानि** (अनुक्रमणी ४५)।

यही नहीं, ऋषियों ने एक-एक अक्षर तक की गणना कर डाली थी। शतपथ ब्राह्मण आदि में उल्लेख मिलता है कि प्रजापति ने ऋचाओं को गणना के लिए पृथक् किया। प्रजापति ने जिन ऋचाओं को सृजा, उनकी (अक्षर) संख्या बारह सहस्र बृहती अर्थात् १२००० x ३६(बृहती छन्द के वर्ण) = ४३२००० है-- **स ऋचो व्यौहत्। द्वादश बृहतीसहस्राण्येतावत्यो हऽर्चो याः प्रजापतिसृष्टाः** (शत० ब्रा० १०. ४. २.२३), **चत्वारिंशतसहस्राणि द्वात्रिंशच्चाक्षरसहस्राणि** — (शौनककृत अनुवाकानुक्रमणी।)

ये सभी निर्धारण अति प्राचीनकाल के हैं। आज जो 'शाकल संहिता' के रूप में ऋग्वेद उपलब्ध है, उसमें मन्त्रों- ऋचाओं की संख्या १०५५२ ही उपलब्ध है।

ऋग्वेद की ऋचाओं एवं पदों (शब्दों) की गणना में प्राचीन तथा अर्वाचीन दोनों काल के मनीषियों में पारस्परिक मत - वैभिन्य पाया जाता है। प्राचीन ऋषियों की गणना में भिन्नता शाखा-भेद के कारण थी। भिन्न-भिन्न शाखा- परम्परा में ऋचाओं की संख्या में भिन्नता स्वाभाविक है, परन्तु अर्वाचीन विद्वानों (भारतीय एवं पाश्चात्य) में जो भिन्नता दिखाई देती है, उसका प्रधान कारण भ्रामक अवधारणा है। भारतीय परम्परा से अनभिज्ञ मैक्समूलर, मैकडानल जैसे मूर्धन्य विद्वानों से यही भूल हो गई है।

ऋग्वेद में कुछ ऐसी ऋचाएँ हैं, जो अध्ययन काल में चतुष्पदा और प्रयोगकाल में द्विपदा मानी जाती हैं। ऐसी ऋचाएँ 'नैमित्तिक द्विपदा' कही जाती हैं। इनकी संख्या१४० मानी गई है। कुछ ऋचाएँ नित्य द्विपदा हैं, जो संख्या में १७ हैं। इस प्रकार पद गणना के समय प्रयोग काल में जो १४० रहती हैं, वही अध्ययन काल में ठीक आधी रह जाती है। इन्हीं सब कारणों से अर्वाचीन विद्वानों द्वारा मन्त्र संख्या गणना में पर्याप्त मत वैभिन्य दिखाई देता है।

वैदिक वाङ्मय का नव्य भारत में अनुशीलन

प्रो० मैक्समूलर के प्रयासों के साथ-साथ भारतवर्ष में तत्कालीन समाज में दो समाज सुधारक धार्मिक संगठनों की स्थापना से वैदिक वाङ्मय के पुनरुद्धार के क्षेत्र में एक नया मोड़ आया। एक था राजा राममोहनराय द्वारा स्थापित ब्रह्म समाज तथा दूसरा स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा बनाया गया आर्य समाज। पहला बंगाल में जन्मा, दूसरा गुजरात में। दोनों ने ही वैदिक सिद्धान्तों को हिन्दू अध्यात्म का मौलिक धर्म बताया एवं बहुसंख्य भारतीयों का ध्यान आकर्षित किया। राजा राममोहनराय जिन्हें उपनिषदों का एक फटा पन्ना रास्ते चलते मिलने के बाद इस क्षेत्र में अध्ययन की एवं इसके विस्तार की प्रेरणा मिली; ने ब्रह्म समाज के द्वारा औपनिषदिक शिक्षाओं के प्रचार-प्रसार का तंत्र बनाया। आर्य समाज ने वैदिक संहिताओं के अध्ययन- अध्यापन को प्रधानता दी। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने यजुर्वेद एवं ऋग्वेद के कुछ सूक्तों पर अपनी पद्धति में संस्कृत में भाष्य प्रकाशित किया, जो आज भी प्रामाणिक संदर्भ ग्रन्थ है। शंकर पाण्डुरंग पण्डित ने सायण भाष्य के साथ अथर्ववेद का विशुद्ध संस्करण बम्बई से चार जिल्दों में प्रकाशित किया। लोकमान्य तिलक ने **'ओरायन'** तथा **'आर्कटिक होम इन दि वेदाज्'** नामक दो समीक्षात्मक ग्रंथ वैदिक साहित्य पर लिखे। मौलिक गवेषणा के कारण आज भी हरेक के लिए वे पठनीय हैं। सामवेद के मार्मिक विद्वान् शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने साम संहिता एवं गान संहिता के पाँच भागों में कलकत्ता से सन् १८७७ ई० में प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित कर वस्तुतः देव संस्कृति की एक बड़ी सेवा की है। श्रीपाद दामोदर सातवलेकर (औंध-सतारा तथा पारडी-बलसाड़) ने चारों वेदों की संहिताओं को श्रमपूर्वक एक विशद् अनुक्रमणिका के साथ स्वाध्याय मण्डल से प्रकाशित कर प्रामाणिक अध्ययन को जन-जन तक पहुँचाया। इसी प्रकार तिलक विद्यापीठ पुणे से पाँच जिल्दों में प्रकाशित ऋग्वेद के सायण भाष्य को विज्ञान सम्मत एवं नितान्त शुद्ध माना जाता है। विशेष रूप से इस कारण कि यह मैक्समूलर के उपलब्ध प्रख्यात संस्करण से भी अधिक शुद्ध है।

वैदिक संहिताओं के भाषानुवाद क्रम में श्री रमेशचन्द्र दत्त का बंगाल में, रामगोविन्द त्रिवेदी एवं जयदेव विद्यालंकार का हिन्दी में तथा श्रीधर पाठक का मराठी में ग्रन्थों का प्रकाशन यहाँ उल्लेखनीय है। इन सभी अनुवादों में एक कमी यह है कि गुह्य अर्थों वाले वैदिक मंत्रों की व्यापकता एवं वैज्ञानिकता का अभाव है। साथ ही वैदिक देवी-देवताओं के विस्तृत अनुशीलन एवं रूपकों की व्याख्या के न हो पाने के कारण इनसे वह मार्गदर्शन नहीं मिल पाता, जो एक जिज्ञासु पाठक को अपेक्षित रहता है। पूज्य गुरुदेव ने आर्ष ग्रन्थों के भाष्य क्रम में सबसे प्रथम संस्करण जो वेदों के अनूदित भाष्य के रूप में लिखा, वह सायण भाष्यावलम्बी सरल हिन्दी भावार्थ के साथ गायत्री तपोभूमि मथुरा से गायत्री जयंती सन्१९६० ई० को प्रकाशित किया। इस भाष्य की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि यह चारों वेदों पर ८ जिल्दों में प्रकाशित, सरल-सुगम भाषा में अनूदित तथा सर्वांगपूर्ण था।



वेदार्थ की पद्धतियाँ

वेद व्याख्या की भारतीय यास्क निरुक्त पद्धति के अतिरिक्त पाश्चात्य (भाषा शास्त्रीय) तथा आध्यात्मिक दो और पद्धतियाँ हैं, जिनके प्रकाश में ही मन्त्रों में निहित भावार्थ को समझा जा सकता है। निघण्टु तथा यास्क विरचित निरुक्त वे प्रथम प्रयास हैं, जिनके माध्यम से विद्वानों ने देववाणी (वेद वाणी) को समझने की कोशिश की।

पाश्चात्य पद्धति कम्पेरेटिव फिलालॉजी (तुलनात्मक भाषा विज्ञान) व इतिहास की आवश्यकता वेदार्थ अनुशीलन के लिए जरूरी बताती है, इसी कारण इसे 'हिस्टॉरिकल मेथड (ऐतिहासिक पद्धति) भी कहते हैं; किन्तु जिन वेदों का आविर्भाव भारतवर्ष में हुआ, उन्हें भारतीय परम्परा व परिवेश की परिधि से बाहर निकालकर तुलनात्मक भाषा विज्ञान एवं भारतेतर धर्मों की सहायता से समझने का प्रयास बचकाना ही कहा जाएगा। हुआ भी यही कि कई वेद मन्त्रों के अर्थों में अनर्थ का समावेश पाश्चात्य पद्धति के कारण हो गया है। उदाहरणार्थ- यहाँ ऋग्वेद में दो जगह उद्धृत लिंग पूजा के सम्बन्ध में एक शब्द की व्याख्या दोनों पद्धतियों से प्रस्तुत है।

ऋग्वेद में ७.२१.५ तथा १०.९९.३ में "शिश्नदेव" की पूजा का प्रकरण आया है। स्थूल लौकिक अर्थों में पश्चिमी विद्वानों ने इसे लिंग पूजा का प्रमाण बताते हुए जगह-जगह उद्धृत किया है, जबकि वास्तविकता यह नहीं है। "देव" एक आलंकारिक शब्द है, जिसका अर्थ है **"देवतावद् उपास्या एते इत्यर्थः"** अर्थात् "देवता की तरह मानो व उपासना करो"। ऐसी स्थिति में यास्क व सायण दोनों ने इस शब्द का अर्थ **"अब्रह्मचर्य"** (कामक्रीड़ा में निरत नरपशुस्तर के पुरुष की व्याख्यात्मक संज्ञा) के रूप में किया है। यही युक्तियुक्त भी है।

वेदों के भाष्यकार

इतिहास के पृष्ठों पर दृष्टि डालने पर भट्ट भास्कर मिश्र, भरत स्वामी,वेंकट माधव, उद्‌गीथ, स्कन्दस्वामी, नारायण, रावण, मुद्‌गल, उवट, महीधर, सायण आदि अनेक भाष्यकारों के नाम देखने को मिलते हैं ; किन्तु उनके भाष्यों पर जब हम गहन दृष्टि डालते हैं, तो एक ही बात समझ में आती है कि वेदों के भाष्य क्रम में जब-जब पाण्डित्य हावी हुआ है , तब -तब वेदों के मर्म व रहस्यों को समझने - समझाने में गड़बड़ी हुई है। यास्क ने एक कोषकार के नाते जो वैदिक शब्दों के अर्थ दिए- वहाँ से लेकर सायण के समय तक अनेकानेक व्यक्तियों ने, भाष्य के प्रयास अपने-अपने ज्ञान एवं विवेक के आधार पर किए हैं। यास्क जहाँ पूर्वकाल के एक ऐसे विद्वान् हैं, जिनने व्याकरण प्रणालियों को आधार बनाकर वैदिक कालीन कोष हमारे समक्ष रखा है, वहाँ सायण की गणना उन उत्तरकालीन पण्डितों में होती है, जिनने एक प्रामाणिक भाष्य हम सबके समक्ष रखा। सायणाचार्य ही एक ऐसे भाष्यकार हैं, जिनके चारों वेदों के भाष्य पूर्णरूप में मिलते हैं और जिनका आधार लेकर ही देश-विदेश के विद्वानों ने वेदों को उस रूप में प्रस्तुत किया है, जैसे कि हम सबको आज दिखाई देते हैं।

यूरोप के प्रारंभकाल के वैदिक विद्वानों से लेकर श्री अरविंद एवं पूज्य गुरुदेव भी सायण द्वारा किये गये वेद भाष्य की भूरि-भूरि सराहना करते हैं।

यद्यपि इस भाष्य में कर्मकाण्ड पक्ष की प्रधानता है; परन्तु फिर भी मन्त्रों के स्पष्ट अर्थों में छिपी सरलता-प्रामाणिकता सायण को एक पण्डित के अतिरिक्त बिना लाग-लपेट वाला एक सरल हृदयी भाष्यकार ठहराती है।

सायण की एक ही कमी रही कि उन्होंने कर्मकाण्ड के साँचे के अन्दर ही वेद के भाष्य को ढाला और एक-एक शब्द का अर्थ उसी परिप्रेक्ष्य में किया। इतने पर भी श्री अरविंद 'वेद रहस्य' में लिखते है कि "सायण के ग्रन्थ ने एक ऐसी चाबी का काम किया है, जिससे वेद की शिक्षाओं पर दोहरा ताला लगाने के साथ स्वयं को वैदिक शिक्षा की प्रारंभिक कोठरियाँ खोलने के लिए अत्यन्त अनिवार्य बना दिया है।"सायण के भाष्य द्वारा वस्तुतः हम अपने आपको वेद की ऋचाओं के गुह्यतम आंतरिक अर्थ की गहराई में गोता लगाने के योग्य बना पाते हैं।



चूँकि विदेशी संस्कृति के विद्वानों ने जिनमें वेदों के प्रति जिज्ञासा थी, परन्तु ऋषि प्रज्ञा के अभाव में वैदिक रूपकों को मात्र अपनी विश्लेषणात्मक बुद्धि के सहारे पढ़ने व प्रतिपादित करने की कोशिश की, वे भाष्य के साथ न्याय नहीं कर पाये। यही कारण था कि उन्होंने वेदों को "एक आदिम, जंगली और अत्यधिक बर्बर समाज की स्तोत्र संहिता" नाम दिया। यहाँ तक कहा कि वेद तो "गड़रियों के गीत" मात्र हैं, जो अनगढ़, नैतिक व पुरातन धार्मिक विचारों से भरे हुए हैं।

श्री बाल गंगाधर तिलक **(आर्कटिक होम इन द वेदाज)**, श्री युत टी० परम शिव अय्यर **(द ऋक्स)** तथा स्वामी दयानन्द सरस्वती **(ऋग्वेदादि भाष्य०)** ऐसे तीन विद्वान् हैं, जिनने ऋग्वेद में निहित अर्थों को पाश्चात्य एवं पौर्वात्य परिप्रेक्ष्य में तुलनात्मक दृष्टि से देखते हुए उनकी प्राचीनता व विलक्षणता पर अपने विचार व्यक्त किए हैं।

ऋग्वेद के भाष्यकार और उनका काल निर्धारण

"वेदों के भाष्यकार" क्रम में चारों वेदों के भाष्यकारों का उल्लेख किया जा चुका है। यहाँ ऋग्वेद के प्रसिद्ध भाष्यकारों के विषय में विचार किया जा रहा है —

१. स्कन्द स्वामी-- ऋग्वेद पर सबसे पहला भाष्य किसने और कब लिखा? यह निश्चित नहीं है, परन्तु वर्तमान में उपलब्ध भाष्यों में सबसे पहला भाष्य स्कन्द स्वामी विरचित प्राप्त होता है। इतिहास ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि वेदों के अर्थ समझने और समझाने की प्रवृत्ति विशेष रूप से "कुमारिल- शंकर" के समय से जागरूक हुई। स्कन्द स्वामी का आविर्भाव काल यही माना जाता है। यह समय वि० सं० ६८२ अर्थात् ६२५ ई० के आस-पास का होना चाहिए, क्योंकि ऐसी प्रसिद्धि है कि शतपथ ब्राह्मण के प्रसिद्ध भाष्यकार हरि स्वामी (६३८ ई०) को स्कन्द स्वामी ने अपना ऋग्भाष्य पढ़ाया था--**व्याख्यां कृत्वाऽऽध्यापयन्मां श्रीस्कन्दस्वाम्यस्ति मे गुरुः।**

ऋग्वेद भाष्य के प्रथमाष्टक के अन्त में प्राप्त श्लोक से पता चलता है कि स्कन्द स्वामी गुजरात की तत्कालीन राजधानी 'वलभी' के रहने वाले थे तथा इनके पिता का नाम भर्तृध्रुव था -- **वलभी विनिवा स्येतामृगर्थागमसंहतिम्। भर्तृध्रुवसुतश्चक्रे स्कन्दस्वामी यथास्मृतिः॥**

स्कन्दस्वामीकृत ऋग्भाष्य बड़ा ही सुन्दर और समग्र है। इसमें प्रत्येक सूक्त के आरम्भ में उस सूक्त के ऋषि -देवता छन्द का उल्लेख किया गया है, साथ ही अनुक्रमणियों, निघण्टु, निरुक्त आदि वैदिक अर्थोपयोगी ग्रन्थों से आवश्यक उद्धरण-प्रमाण स्थान-स्थान पर दिए गये हैं। स्कन्द स्वामी के इस भाष्य का पर्याप्त प्रभाव सायण पर भी पड़ा है। स्कन्द स्वामी का यह भाष्य सम्पूर्ण ऋग्वेद पर उपलब्ध नहीं होता।

ऐसी मान्यता है कि स्कन्द स्वामी ने अपना भाष्य आधे ऋग्वेद (चार अष्टक) पर ही लिखा था, शेष भाग को नारायण एवं उद्गीथ ने मिलकर पूरा किया था -

स्कन्दस्वामी नारायण उद्गीथ इति क्रमात्।
चक्रुः सहैकमृग्भाष्यं पदवाक्यार्थगोचरम्॥

-- वेंकटमाधवकृत ऋग्भाष्य

२. माधव भट्ट- ऋग्वेद के प्रसिद्ध भाष्यकारों में 'माधव' नाम के चार भाष्यकार ज्ञात हुए हैं। इनमें से एक तो 'सामवेद- संहिता' के भाष्यकार के रूप में प्रसिद्ध हैं, शेष तीन ऋग्वेद भाष्यकार के रूप में; परन्तु इन तीनों की ठीक-ठीक पहिचान नहीं हो पाती। एक माधव तो आचार्य सायण ही हैं। आचार्य सायण ने अपने बड़े भाई (माधव) की प्रेरणा एवं सहयोग से तैयार किये ऋग्भाष्य को 'माधवीय भाष्य' की संज्ञा प्रदान की है।

कतिपय विद्वान् वेंकट माधव को ही माधव भट्ट मानते हैं, परन्तु अनेक प्रमाणों-उदाहरणों से यह सिद्ध हो गया है कि माधव भट्ट नामक महान् वेदविद् वेंकट माधव से काफी पहले हुए हैं, जिनकी छाप वेंकट माधव तथा अन्य ऋग्भाष्यकारों पर भी पड़ी है। माधव भट्ट कृत ऋग्भाष्य, जिसका थोड़ा सा अंश उपलब्ध होता है, उससे ज्ञात होता है कि उनका वेदार्थ ज्ञान बहुत ही उच्चकोटि का था। जिसका अनुकरण सायणाचार्य तथा वेंकटमाधव ने ही नहीं किया, अपितु स्कन्द स्वामी



ने भी किया है । इससे यह भी सिद्ध होता है कि माधव भट्ट का समय स्कन्दस्वामी (सप्तम शती) से भी सुतरां प्राचीन है, जिसका सुनिश्चित रूप आज भी इतिहासकारों के लिए एक पहेली बनकर रह गया है ।

३. **वेंकट माधव** - सीमित शब्दों में भाष्य लिखने के लिए प्रसिद्ध वेंकट माधव का समय कतिपय प्रमाणों के आधार पर १०५०- ११५० ई० के मध्य माना जाता है । इसकी पुष्टि स्कन्द स्वामी कृत ऋग्भाष्य की भूमिका पृ०७ पर पं० साम्बशिव शास्त्री ने की है। वेंकट माधव कृत ऋग्भाष्य अत्यधिक संक्षिप्त है । इसमें न व्याकरणात्मक टिप्पणी है और न अन्य कोई टिप्पणी ; केवल पदों की व्याख्या पर्यायवाची शब्दों को देकर की गई है । एक विशेषता इसमें विशेष रूप से पायी जाती है, वह है ब्राह्मणग्रन्थों से सुन्दर रीति से प्रस्तुत किये गये प्रमाण ।

४. **धानुष्कयज्वा** - विक्रम की १६वीं शती से पूर्व विद्यमान रहने वाले 'धानुष्कयज्वा' नामक वेद-भाष्यकार का उल्लेख प्राय: इतिहास ग्रन्थों में पाया जाता है । इनके द्वारा तीन वेदों के भाष्य किये जाने का संकेत 'त्रिवेदी -भाष्यकार ' तथा 'त्रयीनिष्ट वृद्ध' संज्ञाओं से प्राप्त होता है । इससे अधिक न तो इनके विषय में और न ही इनके भाष्य के विषय में ज्ञात हो सका है । इतिहास इस सन्दर्भ में प्राय: मौन ही है ।

५. **आनन्दतीर्थ** - चौदहवीं सदी के मध्य विद्यमान रहने वाले वैष्णवाचार्य आनन्दतीर्थ जी ने ऋग्वेद के कुछ मन्त्रों पर अपना भाष्य लिखा है । यह द्वैतवादी चिन्तन धारा से ओत-प्रोत है, साथ ही छन्दोबद्ध भी है । यह भाष्य ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के प्राय: चालीस सूक्तों पर उपलब्ध होते हैं -- **ऋक् शाखागतैकोत्तर-सहस्र- सूक्त मध्ये कानिचित् चत्वारिंशत् सूक्तानि भगवत्पादैः व्याख्यातानि** (राघवेन्द्र यति) । इसे ही 'मध्वभाष्य' भी कहा जाता है, यही 'माध्व वैष्णव सम्प्रदाय' का मूल श्रोत माना जाता है ।

६. **आत्मानन्द** - ऋग्वेद के उपलब्ध भाष्यों में अधिकतर भाष्य यज्ञपरक और देवपरक ही मिलते हैं, किन्तु आत्मानन्द जी के भाष्य की यह विशेषता है कि वह आध्यात्मिक स्तर का है। यह केवल **'अस्यवामीय- सूक्त '** पर ही है । इस भाष्य में अन्य वेदभाष्यकारों — स्कन्द स्वामी, भास्कर आदि का उल्लेख तो है, परन्तु सायणाचार्य का उल्लेख न होने से ऐसा सिद्ध होता है कि ये सायणाचार्य के पूर्व-वर्ती रहे हैं । अन्य अनेक प्रमाणों के आधार पर इनका समय चौदहवीं सदी सिद्ध होता है । इस भाष्यकार के प्रत्येक मन्त्र का लक्ष्य 'परमात्मा' है- यही इस भाष्य की महती विशेषता है ।

७. **सायण** - वेद के दुर्गम द्वार में प्रवेश कराने के लिए यह विशाल सिंहद्वार है- आचार्य बलदेव उपाध्याय का सायण-भाष्य के सन्दर्भ में यह कथन सत्य ही है । ऋग्वेद ही क्या ? चारों वेदों पर जितना समग्र भाष्य 'सायण' का प्राप्त होता है, उतना अन्यत्र देखने को कौन कहे, सुनने को भी नहीं मिलता है । चौदहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में अपनी प्रखर प्रतिभा का परिचय देकर वेदभाष्यकारों की परम्परा में अपना विशेष स्थान सुरक्षित कर लेने वाले 'आचार्य सायण' माधवाचार्य की प्रेरणा एवं सहयोग से वेदभाष्य के दुष्कर कार्य में प्रवृत्त हुए । ऐसी प्रसिद्धि है कि महाराज वुक्कराय ने अपने आध्यात्मिक गुरु तथा राजनीतिज्ञ अमात्य ' माधवाचार्य ' को वेदों के सुन्दर और प्रामाणिक भाष्य करने का आदेश दिया था, परन्तु माधवाचार्य ने वेदभाष्य के इस गुरुतर दायित्व को अपने छोटे भाई 'सायण' को सौंप दिया --

तत्कटाक्षेण यद्रूपं दधद् बुक्कमहीपतिः ।
अन्वशान्माधवाचार्यं वेदार्थस्य प्रकाशने ॥
स प्राह नृपतिं राजन् सायणार्यो ममानुजः ।
सर्वं वेत्त्येष वेदानां व्याख्यातृत्वे नियुज्यताम् ॥
इत्युक्तो माधवार्येण वीरबुक्क महीपतिः ।
अन्वशात् सायणाचार्यं वेदार्थस्य प्रकाशने ॥

- सायणकृत कृष्ण यजुर्वेद- उपोद्घातः

सायण ने इस गुरु-गम्भीर दायित्व का निर्वाह अपनी अलौकिक विद्वत्ता, व्यापक पाण्डित्य तथा विस्मयकारी अध्यवसाय से सहज ही किया, साथ ही विजय नगर के संस्थापक महाराज वुक्क तथा महाराज हरिहर के अमात्यत्व तथा सेनापतित्व का भी दायित्व २४ वर्षों तक निभाया । आचार्य सायण ने अपने अग्रज 'माधवाचार्य' के द्वारा इस महनीय कार्य में प्रेरित किये जाने के कारण इस अपने भाष्य का नाम 'माधवीय भाष्य' रखा ।

ऋग्वेद का शाखा विस्तार

ऐसी प्रसिद्धि है कि महर्षि वेदव्यास ने यज्ञीय अनुष्ठानों की सविधि सम्पन्नता के लिए अर्थात् ऋत्विजों के उपयोगार्थ वेदों का चार प्रकार से वर्गीकरण किया, साथ ही वेदाध्ययन की यह परम्परा निरन्तर प्रवर्द्धमान रहे, इसलिए सर्वप्रथम उसे अपने चार पटु शिष्यों को पढ़ाया। वे शिष्य थे— पैल, कवि जैमिनि, वैशम्पायन तथा दारुण मुनि सुमन्तु । इन्हें क्रमशः ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद पढ़ाया। इन चारों मुनियों ने अपने- अपने शिष्यों-प्रशिष्यों तक यह परम्परा विस्तारित की। यह विस्तार प्रक्रिया ही शाखाएँ बन गईं—

चातुर्होत्रं कर्मशुद्धं प्रजानां वीक्ष्य वैदिकम्।
व्यदधाद्यज्ञसन्तत्यै वेदमेकं चतुर्विधम् ॥
ऋग्यजुः सामाथर्वाख्या वेदाश्चत्वार उद्धृताः।
तत्रर्ग्वेदधरः पैलः सामगो जैमिनिः कविः ॥
वैशम्पायन एवैको निष्णातो यजुषामुत ।
अथर्वाङ्गिरसामासीत् सुमन्तुर्दारुणो मुनिः ॥
त एत ऋषयो वेदं स्वं स्वं व्यस्यन्ननेकधा।
शिष्यैः प्रशिष्यैस्तच्छिष्यैः वेदास्ते शाखिनोऽभवन्

-- श्रीमद्भागवत १.४.१९-२३

चारों वेदों की शाखाओं का जो विस्तार हुआ, उनमें परस्पर कहीं-कहीं उच्चारण के विषय में मतभेद रहा और कहीं-कहीं मन्त्रों के विषय में। इन शाखाओं की संख्या के विषय में भी पर्याप्त मत-वैभिन्य पाया जाता है। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने चारों वेदों की शाखाओं का उल्लेख करते हुए लिखा है--

'चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्या बहुधा भिन्नाः। एक शतमध्वर्युशाखाः । सहस्रवर्त्मा सामवेदः। एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्। नवधाथर्वणो वेदः (पस्पशाह्निक) अर्थात् चारों वेद अंगोपांग सहित अनेक रूपों (शाखाओं) में विस्तृत हो गये। यजुर्वेद की १०१ शाखा, सामवेद की १००० शाखा, ऋग्वेद की २१ शाखा तथा अथर्ववेद की ९ शाखाएँ हैं'। चरणव्यूह नामक ग्रन्थ में शाखाओं की गणना इससे भिन्न है। महाभाष्यकार द्वारा ऊपर जिन शाखाओं की गणना प्रस्तुत की गई है, आज उनमें से कुछ ही शाखाओं का अस्तित्व प्राप्त होता है। जो प्राप्त भी होती हैं, वे भी समग्र नहीं हैं। समग्र शाखा वह मानी जाती है, जिसकी अपनी संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, श्रौत तथा गृह्यसूत्र हों, परन्तु वर्तमान में उपलब्ध शाखाओं में से कोई भी इन सब सामग्रियों से युक्त नहीं है, किसी की संहिता है, तो किसी का ब्राह्मण, किसी शाखा का श्रौतसूत्र है, तो किसी का गृह्यसूत्र।

ऋग्वेद की जिन २१ शाखाओं का ऊपर उल्लेख हुआ, चरणव्यूह नामक ग्रन्थानुसार उनमें ५ ही प्रमुख हैं- १. शाकल २. वाष्कल ३. आश्वलायन ४. शांखायन और ५. माण्डूकायन। इन्हें 'चरण' भी कहा जाता है।

१. शाकल शाखा- ऋग्वेद की वर्तमान प्रचलित संहिता शाकल शाखा की ही संहिता मानी जाती है। ऐसी मान्यता है कि शाकल ऋषि ने ही सर्वप्रथम ऋक्संहिता को सूक्तों और मण्डलों में विभक्त किया। इस सन्दर्भ में ऋक् प्रातिशाख्य द्रष्टव्य है —

ऋचां समूह ऋग्वेदस्तमभ्यस्य प्रयत्नतः।
पठितः शाकलेनादौ चतुर्भिस्तदनन्तरम् ॥

महाभाष्यकार पतञ्जलि ने शाकल शाखा का उल्लेख इस प्रकार किया है- **शाकल्यस्य संहिता मनु प्रावर्षत्..। शाकल्येन सुकृतां संहिता मनु निशम्य देवः प्रावर्षत्** (शाकल्य संहिता का पाठ सुनकर मेघ बरसा)। कात्यायन सर्वानुक्रमणी के प्रारम्भ में भी उल्लेख पाया जाता है- **अथ ऋग्वेदाम्नाये शाकलके....**। ऐसी प्रसिद्धि है कि वेदमित्र शाकल्य के पाँच शिष्य हुए। उन्होंने भी इस शाखा को उपबृंहित किया, जो आगे चल कर उन्हीं के नाम पर मुद्गल, गालव, शालीय, वात्स्य और शैशिर नाम से शाखाएँ प्रसिद्ध हुईं।

२. वाष्कल शाखा - कात्यायन प्रणीत अनुवाकानुक्रमणी श्लोक-२१ से ज्ञात होता है कि प्रथम मण्डल के मन्त्रों में शाकल्य क्रम (मण्डल- सूक्त-मन्त्र) से वाष्कल क्रम कुछ भिन्न है। वर्तमान में इस शाखा की कोई भी संहिता उपलब्ध न होने से इसके सन्दर्भ में कुछ अधिक नहीं कहा जा सकता। थोड़ी-बहुत जानकारी आचार्य महीदास ऐतरेय कृत चरण व्यूह, नामक ग्रन्थ के परिशिष्ट से प्राप्त होती है। ऐसी प्रसिद्धि है कि वाष्कल ने चार संहिताएँ बनाकर



अपने चार शिष्यों को पढ़ाई। (**बौध्यं तु प्रथमा शाखां द्वितीयामग्निमाठरम्। पराशरं तृतीयां तु जातूकर्ण्यमथापराम् ॥**) उन चारों शिष्यों ने उसे इस प्रकार विस्तारित किया कि उन्हीं के नाम से शाखाएँ प्रसिद्ध हो गईं। उनके नाम हैं—बौध्य, अग्नि-माठर, पराशर और जातूकर्ण्य।

शाकलशाखा की संहिता की तुलना में वाष्कल शाखा की संहिता में ८ सूक्त अधिक पाये जाते हैं। शाकल संहिता में १११७ सूक्त हैं, जब कि वाष्कल में ११२५ सूक्त। इन आठ सूक्तों में एक तो संज्ञान सूक्त है, शेष ७ सूक्त बालखिल्य सूक्तों में से हैं (**एतत् सहस्त्रं दश सप्त चैवाष्टावतो बाष्कलकेऽधिकानि। तान्पारणे शाकले शैशिरीये वदन्ति शिष्टा न खिलेषु विप्राः** -अनु० ३६) इतना अवश्य है कि शाकल की तुलना में वाष्कल संहिता का क्रम अव्यवस्थित है और इसी कारण वैदिकों के बीच अस्त-व्यस्तता के लिए 'वाष्कल' संज्ञा प्रचलित हो गई है।

३. आश्वलायन शाखा - इस शाखा की संहिता, ब्राह्मण ग्रन्थ तो आज उपलब्ध नहीं है, केवल श्रौत तथा गृह्य सूत्र ही उपलब्ध हैं, १७वीं शताब्दी तक इस शाखा के अन्य ग्रन्थ अवश्य उपलब्ध थे, तभी तो 'कवीन्द्राचार्य' (१७ वीं सदी) ने अपनी सूची में उनका उल्लेख किया था। इस शाखा की अन्य उपशाखाओं आदि की जानकारी अभी अज्ञात के गर्भ में विलीन ही है।

४. शांखायन शाखा - प्रायः लोगों की मान्यता है कि शांखायन तथा कौषीतकि शाखा एक ही है, परन्तु विशेष अध्ययन से ज्ञात होता है कि दोनों अलग-अलग हैं। शांखायन शाखा की अपनी कोई संहिता तो नहीं है, परन्तु ब्राह्मण और आरण्यक ग्रन्थ अवश्य हैं, जो प्रकाशित भी हो चुके हैं।

इस शाखा की तीन अन्य शाखाएँ भी हैं- कौषीतकि, महाकौषीतकि और शाम्बव्य; किन्तु इन सबके विषय में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं होती, थोड़ी-बहुत ही जानकारी मिल पाती है, वह भी अन्यान्य ग्रन्थों आदि में उल्लेख के आधार पर।

५. माण्डूकायन शाखा - इस शाखा के सन्दर्भ में भी कुछ ज्ञात नहीं हो पाता। पहले इस शाखा से सम्बद्ध कुछ साहित्य उपलब्ध भी था, अब वह भी उपलब्ध नहीं है।

ऋषि, देवता, छन्दादि का निर्धारण

पिछले पृष्ठों में ऋषि-देवता-छन्द का सैद्धान्तिक प्रतिपादन प्रस्तुत किया गया है। यहाँ उसका व्यावहारिक स्वरूप ऋग्वेद के ऋषि-देवता-छन्द का निर्धारण प्रस्तुत किया जा रहा है --

ऋषि- ऋग्वेद में ऋषियों की तीन श्रेणियाँ प्राप्त होती हैं। **प्रथम श्रेणी** के अन्तर्गत वे ऋषिगण आते हैं, जिनके विषय में निरुक्त के प्रसिद्ध वृत्तिकार दुर्गाचार्य ने लिखा है- 'वे विशिष्ट व्यक्ति ऋषि शब्द वाच्य हैं,

जिन्होंने मन्त्रों का विविध अवसरों पर,विविध प्रयोजनों के लिए प्रयोग किया और उसका सुपरिणाम प्राप्त किया— **ऋषन्ति.. अमुष्मात् कर्मणः एवम् अर्थवता मंत्रेण संयुक्ताद् अमुना प्रकारेण एवं लक्षणं फलं (विपरिणामो) भवति इति ऋषयः** (नि०दु०१. २०)।

द्वितीय श्रेणी उन ऋषियों की है, जिनके लिए आचार्य सायण ने अपने ऋक्भाष्य के प्रथम मन्त्र-भाष्य में लिखा है ---'**यस्य वाक्यं स ऋषिः** (ऋ०सा० भा० १.१.१) अर्थात् मन्त्र रूप वाक्यों के वक्ता 'ऋषि' कहे जाते हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जिस-जिस व्यक्ति ने अपनी कामना पूर्ति के लिए विविध देवताओं की स्तुति, विशेष रूप से की और पूर्ण काम हुए, वे 'ऋषि' कहलाये, जैसा कि निरुक्त ७.१ में आया है - **यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायाम् आर्थपत्यम् इच्छन् स्तुतिं प्रयुंक्ते.......।** यही भाव 'वैदिक ऋषि- एक परिशीलन' के विद्वान् लेखक ने अपने शब्दों में व्यक्त किया है - "जो भी जिस मन्त्र का वक्ता है, चाहे वह चेतन हो, हमारी दृष्टि में कितना ही निकृष्ट हो, मनुष्येतर प्राणी हो अथवा अचेतन हो, वह उस वाक्य का ऋषि है। इस दृष्टि से नदी, सरमा,पणि आदि का ऋषित्व सुसंगत है " (पृ०३-४)।



ऋषियों की **तृतीय श्रेणी** उनकी है, जिन्हें 'अलौकिक दृष्टि सम्पन्न' या क्रन्तद्रष्टा या सर्वज्ञ कहा जा सकता है । इस श्रेणी में प्राय: देव स्तर के ऋषि आते हैं, यथा- अग्नि, वायु, इन्द्र इत्यादि । इस ऋग्वेद संहिता में ऋषियों का निर्धारण अनेक प्रामाणिक ग्रन्थों के आधार पर किया गया है । जिन ऋषियों के उपनाम (अपत्यार्थक या सम्मानार्थक) उपलब्ध हुए उन्हें नाम के पीछे दिया गया है (जैसे-अगस्त्य मैत्रावरुणि, देवरात वैश्वामित्र आदि) । ऋषियों की सूची प्रत्येक सूक्त के प्रारम्भ में मन्त्रानुसार दी गई है । इन ऋषियों का संक्षिप्त परिचय परिशिष्ट -१ में अकारादि क्रम से प्रस्तुत किया गया है ।

देवता - मन्त्र द्रष्टा ऋषियों ने अपने साक्षात्कृत मन्त्रों में जिसकी स्तुति की है - जिसका वर्णन किया है, वे उस मन्त्र के देवता कहे जाते है (**या तेनोच्यते (ऋषिणोच्यते) सा देवता** -अनु० २. ५, **तद्यानि नामानि प्राधान्यस्तुतीनां तद्दैवतम्**--नि० ७. १) । ऋग्वेद में मुख्यतया देवताओं की स्तुतियाँ ही की गयी हैं- **ऋग्भि: (एनं महादेवं) शंसन्ति** --ऋचाओं के द्वारा (परब्रह्म परमात्मा की) स्तुतियाँ की जाती हैं (का० सं० २७.१) । ऋग्वेद के प्रारम्भिक भाष्य में आचार्य सायण लिखते है - **ऋचन्ति स्तुवन्ति वर्णयन्ति वा सत्तत्त्वमिति ऋच: , स एव ऋग्वेद:** अर्थात् 'एकमेव सत् तत्व (परब्रह्म) की स्तुति करने से ऋचाएँ ऋक् कहलाती हैं, उन्हीं को ऋग्वेद कहा जाता है ।' आचार्य सायण आगे लिखते हैं- **दीव्यतीति देव: । मन्त्रेण द्योतते इत्यर्थ:** अर्थात् जो मन्त्रों के माध्यम से प्रकाशमान हुए , वे ही देव हैं। यहाँ देवताओं के निर्धारण में कई मान्य ग्रन्थों (क- वैदिक संशोधन मण्डल, पूना से प्रकाशित सर्वानुक्रम सूत्र । ख- ऋग्वेद - सायण भाष्य । ग - ऋक् सर्वानुक्रमणी । घ- ऋग्वेद संहिता - स्वाध्याय मण्डल-पारडी । ङ - ऋग्वेद संहिता- मैक्समूलर सम्पादित, १८९० ई० । च—ऋग्वेद संहिता - वैदिक यन्त्रालय, अजमेर, १९४३ई०) को आधार बनाया गया है । देवताओं की सूची प्रत्येक सूक्त के प्रारम्भ में दी गई है तथा उनका संक्षिप्त परिचय परिशिष्ट-२ में अकारादि क्रम से दिया गया है ।

छन्द- ऋषियों के अन्त:करण में प्रस्फुटित मन्त्र जिस निश्चित परिमाण में, वर्णों - शब्दों द्वारा अभिव्यक्त हुए, वे नियत परिमाण वाले वर्ण समूह 'छन्द' कहे गये - **यद् अक्षरपरिमाणं तच्छन्द:** (ऋ० सर्वा० २. ६) । ऐसी प्रसिद्धि है कि मृत्यु के भय से देवगण वेदों में प्रविष्ट हो गये और मन्त्रों से अपने को आच्छादित कर लिया, उन छन्दों से अपने को आच्छादित किया, अत: यही छन्दों का छन्दत्व है-- **देवा वै मृत्योर्बिभ्यतस्त्रयीं विद्यां प्राविशंस्ते छन्दोभिरात्मानमच्छादयन्यदेभिरच्छादयंस्तच्छन्दसां छन्दस्त्वम्** (छा०उ०१. ४. २) । इसी प्रकार की कुछेक और मान्यताएँ ऋग्वेद के प्रारम्भिक भाष्य में आचार्य सायण ने उल्लिखित की हैं, जिनका एक ही अभिप्राय प्रकट होता है कि मन्त्रों को मूर्त रूप देने का कार्य जिन वर्ण समूहों द्वारा सम्पन्न हुआ, वह छन्द कहलाया, यह बात दूसरी है कि ऋषि चेतना ने उसमें भी देवत्व के प्रविष्ट होने की अनुभूति की ।

प्रत्येक मन्त्र किस छन्द में है, इसका निर्धारण मान्य ग्रन्थों से मिलान करके किया है और उसकी सूची प्रत्येक सूक्त के प्रारम्भ में ऋषि देवता के साथ प्रस्तुत की गई है । प्रत्येक छन्द का संक्षिप्त परिचय परिशिष्ट - ३ में अकारादि क्रम से प्रस्तुत किया गया है, परन्तु छन्दों के उपभेदों को उसी छन्द के साथ रखा गया है, जिसके वे उपभेद हैं ।

— भगवती देवी शर्मा







भूर्भुवः स्वः
तत्सवितुर्वरेण्यं
भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्॥

***

उस प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुख स्वरूप,
श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को
हम अन्तरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा
हमारी बुद्धि को सन्मार्ग की ओर
प्रेरित करे।

*

— ऋग्वेद ३.६२.१०





ऋग्वेद - संहिता

* * *

॥ अथ प्रथमं मण्डलम् ॥

[सूक्त - १]

[ऋषि- मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । देवता - अग्नि । छन्द -गायत्री]

१. ॐ अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम् ॥ १ ॥

हम अग्निदेव की स्तुति करते हैं । (कैसे अग्निदेव ?) जो यज्ञ (श्रेष्ठतम पारमार्थिक कर्म) के पुरोहित (आगे बढ़ाने वाले), देवता (अनुदान देने वाले), ऋत्विज् (समयानुकूल यज्ञ का सम्पादन करने वाले), होता (देवों का आवाहन करने वाले) और याजकों को रत्नों से (यज्ञ के लाभों से) विभूषित करने वाले हैं ॥१ ॥

२. अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत। स देवाँ एह वक्षति ॥ २ ॥

जो अग्निदेव पूर्वकालीन ऋषियों (भृगु, अंगिरादि) द्वारा प्रशंसित हैं । जो आधुनिक काल में भी ऋषि कल्प वेदज्ञ विद्वानों द्वारा स्तुत्य हैं, वे अग्निदेव इस यज्ञ में देवों का आवाहन करें ॥२ ॥

३. अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवेदिवे। यशसं वीरवत्तमम् ॥ ३ ॥

(स्तोता द्वारा स्तुति किये जाने पर) ये बढ़ाने वाले अग्निदेव मनुष्यों (यजमानों) को प्रतिदिन विवर्धमान (बढ़ने वाला) धन, यश एवं पुत्र-पौत्रादि वीर पुरुष प्रदान करने वाले हैं ॥३ ॥

४. अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि। स इद्देवेषु गच्छति ॥ ४ ॥

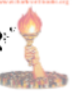
हे अग्निदेव ! आप सबका रक्षण करने में समर्थ हैं । आप जिस अध्वर (हिंसारहित यज्ञ) को सभी ओर से आवृत किये रहते हैं, वही यज्ञ देवताओं तक पहुँचता है ॥४ ॥

५. अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः। देवो देवेभिरा गमत् ॥ ५ ॥

हे अग्निदेव ! आप हवि -प्रदाता, ज्ञान और कर्म की संयुक्त शक्ति के प्रेरक, सत्यरूप एवं विलक्षण रूप युक्त हैं । आप देवों के साथ इस यज्ञ में पधारें ॥५ ॥

६. यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि। तवेत्तत् सत्यमङ्गिरः ॥ ६ ॥

हे अग्निदेव ! आप यज्ञ करने वाले यजमान का धन, आवास, संतान एवं पशुओं की समृद्धि करके जो भी कल्याण करते हैं, वह भविष्य में किये जाने वाले यज्ञों के माध्यम से आपको ही प्राप्त होता है ।



७. उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्। नमो भरन्त एमसि ॥ ७ ॥

हे जाज्वल्यमान अग्निदेव ! हम आपके सच्चे उपासक हैं । श्रेष्ठ बुद्धि द्वारा आपकी स्तुति करते हैं और दिन-रात, आपका सतत गुणगान करते हैं । हे देव ! हमें आपका सान्निध्य प्राप्त हो ॥७ ॥

८. राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्। वर्धमानं स्वे दमे ॥ ८ ॥

हम गृहस्थ लोग दीप्तिमान्, यज्ञों के रक्षक, सत्यवचनरूप व्रत को आलोकित करने वाले, यज्ञस्थल में वृद्धि को प्राप्त करने वाले अग्निदेव के निकट स्तुतिपूर्वक आते हैं ॥८ ॥

९. स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये ॥ ९ ॥

हे गार्हपत्य अग्ने ! जिस प्रकार पुत्र को पिता (बिना बाधा के) सहज ही प्राप्त होता है, उसी प्रकार आप भी (हम यजमानों के लिये) बाधारहित होकर सुखपूर्वक प्राप्त हों । आप हमारे कल्याण के लिये हमारे निकट रहें ॥९ ॥

[सूक्त - २]

[**ऋषि** -मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । **देवता**-१-३ वायु, ४-६-इन्द्र-वायु ; ७-९ मित्रावरुण । **छन्द**-गायत्री ।]

१०. वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः। तेषां पाहि श्रुधी हवम् ॥ १ ॥

हे प्रियदर्शी वायुदेव ! हमारी प्रार्थना को सुनकर आप यज्ञस्थल पर आयें । आपके निमित्त सोमरस प्रस्तुत है, इसका पान करें ॥१ ॥

११. वाय उक्थेभिर्जरन्ते त्वामच्छा जरितारः। सुतसोमा अहर्विदः ॥ २ ॥

हे वायुदेव ! सोमरस तैयार करके रखने वाले, उसके गुणों को जानने वाले स्तोतागण स्तोत्रों से आपकी उत्तम प्रकार से स्तुति करते हैं ॥२ ॥

१२. वायो तव प्रपृञ्चती धेना जिगाति दाशुषे। उरूची सोमपीतये ॥ ३ ॥

हे वायुदेव ! आपकी प्रभावोत्पादक वाणी, सोमयाग करने वाले सभी यजमानों की प्रशंसा करती हुई एवं सोमरस का विशेष गुण-गान करती हुई, सोमरस पान करने की अभिलाषा से दाता (यजमान) के पास पहुँचती है ॥३ ॥

१३. इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरा गतम्। इन्दवो वामुशन्ति हि ॥ ४ ॥

हे इन्द्रदेव ! हे वायुदेव ! यह सोमरस आपके लिये अभिषुत किया (निचोड़ा) गया है । आप अन्नादि पदार्थों के साथ यहाँ पधारें, क्योंकि यह सोमरस आप दोनों की कामना करता है ॥४ ॥

१४. वायविन्द्रश्च चेतथः सुतानां वाजिनीवसू। तावा यातमुप द्रवत् ॥ ५ ॥

हे वायुदेव ! हे इन्द्रदेव ! आप दोनों अन्नादि पदार्थों और धन से परिपूर्ण हैं एवं अभिषुत सोमरस की विशेषता को जानते हैं । अत: आप दोनों शीघ्र ही इस यज्ञ में पदार्पण करें ॥५ ॥

१५. वायविन्द्रश्च सुन्वत आ यातमुप निष्कृतम्। मक्ष्वि१त्था धिया नरा ॥ ६ ॥

हे वायुदेव ! हे इन्द्रदेव ! आप दोनों बड़े सामर्थ्यशाली हैं । आप यजमान द्वारा बुद्धिपूर्वक निष्पादित सोम के पास अति शीघ्र पधारें ॥६ ॥

१६. मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम्। धियं घृताचीं साधन्ता ॥ ७ ॥

घृत के समान प्राणप्रद वृष्टि-सम्पन्न कराने वाले मित्र और वरुण देवों का हम आवाहन करते हैं। मित्र हमें बलशाली बनायें तथा वरुणदेव हमारे हिंसक शत्रुओं का नाश करें ॥७ ॥

१७. ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा। क्रतुं बृहन्तमाशाथे ॥ ८ ॥

सत्य को फलितार्थ करने वाले सत्ययज्ञ के पुष्टिकारक देव मित्रावरुणो ! आप दोनों हमारे पुण्यदायी कार्यों (प्रवर्त्तमान सोमयाग) को सत्य से परिपूर्ण करें ॥८ ॥

१८. कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया। दक्षं दधाते अपसम् ॥ ९ ॥

अनेक कर्मों को सम्पन्न कराने वाले विवेकशील तथा अनेक स्थलों में निवास करने वाले मित्रावरुण हमारी क्षमताओं और कार्यों को पुष्ट बनाते हैं ॥९ ॥

[सूक्त - ३]

[**ऋषि**-मधुच्छन्दा वैश्वामित्र। **देवता**-१-३ अश्विनीकुमार, ४-६ इन्द्र, ७-९ विश्वेदेवा, १०-१२ सरस्वती। छन्द-गायत्री।]

१९. अश्विना यज्वरीरिषो द्रवत्पाणी शुभस्पती। पुरुभुजा चनस्यतम् ॥ १ ॥

हे विशालबाहो ! शुभ कर्मपालक, द्रुतगति से कार्य सम्पन्न करने वाले अश्विनीकुमारो ! हमारे द्वारा समर्पित हविष्यान्नों से आप भली प्रकार सन्तुष्ट हों ॥१ ॥

२०. अश्विना पुरुदंससा नरा शवीरया धिया। धिष्ण्या वनतं गिरः ॥ २ ॥

असंख्य कर्मों को सम्पादित करने वाले,धैर्य धारण करने वाले, बुद्धिमान् हे अश्विनीकुमारो ! आप अपनी उत्तम बुद्धि से हमारी वाणियों (प्रार्थनाओं) को स्वीकार करें ॥२ ॥

२१. दस्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तबर्हिषः। आ यातं रुद्रवर्तनी ॥ ३ ॥

रोगों को विनष्ट करने वाले, सदा सत्य बोलने वाले रुद्रदेव के समान (शत्रु संहारक) प्रवृत्ति वाले, दर्शनीय हे अश्विनीकुमारो ! आप यहाँ आयें और बिछी हुई कुशाओं पर विराजमान होकर प्रस्तुत संस्कारित सोमरस का पान करें ॥३ ॥

२२. इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः। अण्वीभिस्तना पूतासः ॥ ४ ॥

हे अद्‌भुत दीप्तिमान् इन्द्रदेव ! अँगुलियों द्वारा स्रवित, श्रेष्ठ पवित्रतायुक्त यह सोमरस आपके निमित्त है। आप आयें और सोमरस का पान करें ॥४ ॥

२३. इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः। उप ब्रह्माणि वाघतः ॥ ५ ॥

हे इन्द्रदेव ! श्रेष्ठ बुद्धि द्वारा जानने योग्य आप, सोमरस प्रस्तुत करते हुये ऋत्विजों के द्वारा बुलाये गये हैं। उनकी स्तुति के आधार पर आप यज्ञशाला में पधारें ॥५ ॥

२४. इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः। सुते दधिष्व नश्चनः ॥ ६ ॥

हे अश्वयुक्त इन्द्रदेव ! आप स्तवनों के श्रवणार्थ एवं इस यज्ञ में हमारे द्वारा प्रदत्त हवियों का सेवन करने के लिये यज्ञशाला में शीघ्र ही पधारें ॥६ ॥



२५. ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आ गत। दाश्वांसो दाशुषः सुतम् ॥ ७ ॥

हे विश्वेदेवो ! आप सबकी रक्षा करने वाले, सभी प्राणियों के आधारभूत और सभी को ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हैं। अतः आप इस सोम युक्त हवि देने वाले यजमान के यज्ञ में पधारें ॥ ७ ॥

२६. विश्वे देवासो अप्तुरः सुतमा गन्त तूर्णयः। उस्रा इव स्वसराणि ॥ ८ ॥

समय-समय पर वर्षा करने वाले हे विश्वेदेवो ! आप कर्म - कुशल और द्रुतगति से कार्य करने वाले हैं। आप सूर्य-रश्मियों के सदृश गतिशील होकर हमें प्राप्त हों ॥८ ॥

२७. विश्वे देवासो अस्रिध एहिमायासो अद्रुहः। मेधं जुषन्त वह्नयः ॥ ९ ॥

हे विश्वेदेवो ! आप किसी के द्वारा बध न किये जाने वाले, कर्म-कुशल, द्रोहरहित और सुखप्रद हैं। आप हमारे यज्ञ में उपस्थित होकर हवि का सेवन करें ॥९ ॥

२८. पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती। यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ १० ॥

पवित्र बनाने वाली, पोषण देने वाली, बुद्धिमत्तापूर्वक ऐश्वर्य प्रदान करने वाली देवी सरस्वती ज्ञान और कर्म से हमारे यज्ञ को सफल बनायें ॥१० ॥

२९. चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्। यज्ञं दधे सरस्वती ॥ ११ ॥

सत्यप्रिय (वचन) बोलने की प्रेरणा देने वाली, मेधावी जनों को यज्ञानुष्ठान की प्रेरणा (मति) प्रदान करने वाली देवी सरस्वती हमारे इस यज्ञ को स्वीकार करके हमें अभीष्ट वैभव प्रदान करें ॥११ ॥

३०. महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना। धियो विश्वा वि राजति ॥ १२ ॥

जो देवी सरस्वती नदी-रूप में प्रभूत जल को प्रवाहित करती हैं। वे सुमति को जगाने वाली देवी सरस्वती सभी याजकों की प्रज्ञा को प्रखर बनाती हैं ॥१२ ॥

[सूक्त - ४]

[ऋषि-मधुच्छन्दा वैश्वामित्र। देवता-इन्द्र। छन्द-गायत्री।]

३१. सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे। जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥

(गो दोहन करने वाले के द्वारा) प्रतिदिन मधुर दूध प्रदान करने वाली गाय को जिस प्रकार बुलाया जाता है, उसी प्रकार हम अपने संरक्षण के लिये सौन्दर्यपूर्ण यज्ञकर्म सम्पन्न करने वाले इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं ॥१ ॥

३२. उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब। गोदा इद्रेवतो मदः ॥ २ ॥

सोमरस का पान करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप सोम ग्रहण करने हेतु हमारे सवन-यज्ञों में पधार कर, सोमरस पीने के बाद प्रसन्न होकर याजकों को यश, वैभव और गौएँ प्रदान करें ॥२ ॥

३३. अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम्। मा नो अति ख्य आ गहि ॥ ३ ॥

सोमपान कर लेने के अनन्तर हे इन्द्रदेव ! हम आपके अत्यन्त समीपवर्ती श्रेष्ठ प्रज्ञावान् पुरुषों की उपस्थिति में रहकर आपके विषय में अधिक ज्ञान प्राप्त करें। आप भी हमारे अतिरिक्त अन्य किसी के समक्ष अपना स्वरूप प्रकट न करें (अर्थात् अपने विषय में न बताएँ) ॥३ ॥

३४. परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम्। यस्ते सखिभ्य आ वरम् ॥ ४ ॥

हे ज्ञानवानो ! आप उन विशिष्ट बुद्धि वाले, अपराजेय इन्द्रदेव के पास जाकर मित्रों-बन्धुओं के लिये धन-ऐश्वर्य के निमित्त प्रार्थना करें ॥४ ॥

३५. उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत। दधाना इन्द्र इद्दुवः ॥ ५ ॥

इन्द्रदेव की उपासना करने वाले उपासक उन (इन्द्रदेव) के निन्दकों को यहाँ से अन्यत्र निकल जाने को कहें; ताकि वे यहाँ से दूर हो जायें ॥५ ॥

३६. उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः। स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥ ६ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम आपके अनुग्रह से समस्त वैभव प्राप्त करें, जिससे देखने वाले सभी शत्रु और मित्र हमें सौभाग्यशाली समझें ॥६ ॥

३७. एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम्। पतयन्मन्दयत् सखम् ॥ ७ ॥

(हे याजको !) यज्ञ को श्रीसम्पन्न बनाने वाले, प्रसन्नता प्रदान करने वाले, मित्रों को आनन्द देने वाले इस सोमरस को शीघ्रगामी इन्द्रदेव के लिये भरें (अर्पित करें) ॥ ७ ॥

३८. अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः। प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ८ ॥

हे सैकड़ों यज्ञ सम्पन्न करने वाले इन्द्रदेव ! इस सोमरस को पीकर आप वृत्र-प्रमुख शत्रुओं के संहारक सिद्ध हुए हैं, अत: आप संग्राम-भूमि में वीर योद्धाओं की रक्षा करें ॥८ ॥

३९. तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो। धनानामिन्द्र सातये ॥ ९ ॥

हे शतकर्मा इन्द्रदेव ! युद्धों में बल प्रदान करने वाले आपको हम धनों की प्राप्ति के लिये श्रेष्ठ हविष्यान्न अर्पित करते हैं ॥९ ॥

४०. यो रायो३वनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा। तस्मा इन्द्राय गायत ॥ १० ॥

हे याजको ! आप उन इन्द्रदेव के लिये स्तोत्रों का गान करें,जो धनों के महान् रक्षक, दु:खों को दूर करने वाले और याज्ञिकों से मित्रवत् भाव रखने वाले हैं ॥१० ॥

[सूक्त - ५]

[ऋषि - मधुच्छन्दा वैश्वामित्र। देवता-इन्द्र। छन्द -गायत्री]

४१. आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत। सखायः स्तोमवाहसः ॥ १ ॥

हे याज्ञिक मित्रो ! इन्द्रदेव को प्रसन्न करने के लिये प्रार्थना करने हेतु शीघ्र आकर बैठो और हर प्रकार से उनकी स्तुति करो ॥१ ॥

४२. पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम्। इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ २ ॥

(हे याजक मित्रो ! सोम के अभिषुत होने पर) एकत्रित होकर संयुक्तरूप से सोमयज्ञ में शत्रुओं को पराजित करने वाले ऐश्वर्य के स्वामी इन्द्रदेव की अभ्यर्थना करो ॥२ ॥



४३. स घा नो योग आ भुवत् स राये स पुरन्ध्याम्। गमद् वाजेभिरा स नः ॥ ३ ॥

वे इन्द्रदेव हमारे पुरुषार्थ को प्रखर बनाने में सहायक हों, धन-धान्य से हमें परिपूर्ण करें तथा ज्ञान प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करते हुये पोषक अन्न सहित हमारे निकट आयें ॥३ ॥

४४. यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः। तस्मा इन्द्राय गायत ॥ ४ ॥

(हे याजको !) संग्राम में जिनके अश्वों से युक्त रथों के सम्मुख शत्रु टिक नहीं सकते, उन इन्द्रदेव के गुणों का आप गान करें ॥४ ॥

४५. सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये। सोमासो दध्याशिरः ॥ ५ ॥

यह निचोड़ा और शुद्ध किया हुआ दही मिश्रित सोमरस, सोमपान की इच्छा करने वाले इन्द्रदेव के निमित्त प्राप्त हो ॥५ ॥

४६. त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः। इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ॥ ६ ॥

हे उत्तम कर्मवाले इन्द्रदेव ! आप सोमरस पीने के लिये देवताओं में सर्वश्रेष्ठ होने के लिये तत्काल वृद्ध रूप हो जाते हैं ॥६ ॥

४७. आ त्वा विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः। शं ते सन्तु प्रचेतसे ॥ ७ ॥

हे इन्द्रदेव ! तीनों सवनों में व्याप्त रहने वाला यह सोम, आपके सम्मुख उपस्थित रहे एवं आपके ज्ञान को सुखपूर्वक समृद्ध करे ॥ ७ ॥

४८. त्वां स्तोमा अवीवृधन् त्वामुक्था शतक्रतो। त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥ ८ ॥

हे सैकड़ों यज्ञ करने वाले इन्द्रदेव ! स्तोत्र आपकी वृद्धि करें। यह उक्थ (स्तोत्र) वचन और हमारी वाणी आपकी महत्ता बढ़ायें ॥८ ॥

४९. अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम्। यस्मिन् विश्वानि पौंस्या ॥ ९ ॥

रक्षणीय की सर्वथा रक्षा करने वाले इन्द्रदेव बल-पराक्रम प्रदान करने वाले विविध रूपों में विद्यमान सोम रूप अन्न का सेवन करें ॥९ ॥

५०. मा नो मर्ता अभि द्रुहन् तनूनामिन्द्र गिर्वणः। ईशानो यवया वधम् ॥ १० ॥

हे स्तुत्य इन्द्रदेव ! हमारे शरीर को कोई भी शत्रु क्षति न पहुँचाये। हमें कोई भी हिंसित न करे, आप हमारे संरक्षक रहें ॥१० ॥

[सूक्त - ६]

[**ऋषि** - मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । **देवता**-१-३ इन्द्र ; ४, ६, ८, ९ मरुद्गण; ५-७ मरुद्गण और इन्द्र ; १० इन्द्र । **छन्द**-गायत्री ।]

५१. युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः। रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १ ॥

(वे इन्द्रदेव) द्युलोक में आदित्य रूप में,भूमि पर अहिंसक अग्नि रूप में, अन्तरिक्ष में सर्वत्र प्रसरणशील वायु रूप में उपस्थित हैं। उन्हें उक्त तीनों लोकों के प्राणी अपने कार्यों में देवत्वरूप से सम्बद्ध मानते हैं।

द्युलोक में प्रकाशित होने वाले नक्षत्र-ग्रह आदि उन्हीं (इन्द्रदेव) के ही स्वरूपांश हैं। (अर्थात् तीनों लोकों की प्रकाशमयी- प्राणमयी शक्तियों के वे ही एक मात्र संगठक हैं।) ॥१ ॥

५२. युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे। शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ २ ॥

इन्द्रदेव के रथ में दोनों ओर रक्तवर्ण, संघर्षशील, मनुष्यों को गति देने वाले दो घोड़े नियोजित रहते हैं ॥२ ॥

५३. केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथाः ॥ ३ ॥

हे मनुष्यो ! तुम रात्रि में निद्राभिभूत होकर, संज्ञा शून्य निश्चेष्ट होकर, प्रातः पुनः सचेत एवं सचेष्ट होकर मानों प्रतिदिन नवजीवन प्राप्त करते हो। (प्रति-दिन जन्म लेते हो) ॥३ ॥

५४. आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे। दधाना नाम यज्ञियम् ॥ ४ ॥

यज्ञीय नाम वाले,धारण करने में समर्थ मरुत् वास्तव में अन्न की (वृद्धि की) कामना से बार-बार (मेघ आदि) गर्भ को प्राप्त होते हैं ॥४ ॥

[यज्ञ में वायुभूत पदार्थ मेघ आदि के गर्भ में स्थापित होकर उर्वरता को बढ़ाते हैं।]

५५. वीळु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः। अविन्द उस्त्रिया अनु ॥ ५ ॥

हे इन्द्रदेव ! सुदृढ़ किले बन्दी को ध्वस्त करने में समर्थ, तेजस्वी मरुद्गणों के सहयोग से आपने गुफा में अवरुद्ध गौओं (किरणों) को खोजकर प्राप्त किया ॥५ ॥

५६. देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद्वसुं गिरः। महामनूषत श्रुतम् ॥ ६ ॥

देवत्व प्राप्ति की कामना वाले ज्ञानी ऋत्विज्, महान् यशस्वी, ऐश्वर्यवान् वीर मरुद्गणों की बुद्धिपूर्वक स्तुति करते हैं ॥६ ॥

५७. इन्द्रेण सं हि दृक्षसे सञ्जग्मानो अबिभ्युषा। मन्दू समानवर्चसा ॥ ७ ॥

सदा प्रसन्न रहने वाले, समान तेज वाले मरुद्गण निर्भय रहने वाले इन्द्रदेव के साथ (संगठित हुए) अच्छे लगते हैं ॥ ७ ॥

[विभिन्न वर्गों के समान प्रतिभा - सम्पन्न व्यक्ति परस्पर सहयोग करें, तो समाज सुखी होता है।]

५८. अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति। गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ ८ ॥

इस यज्ञ में निर्दोष, दीप्तिमान्, इष्ट प्रदायक, सामर्थ्यवान् मरुद्गणों के साथी इन्द्रदेव के सामर्थ्य की पूजा की जाती है ॥८ ॥

५९. अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि। समस्मिन्नृञ्जते गिरः ॥ ९ ॥

हे सर्वत्र गमनशील मरुद्गणो ! आप अन्तरिक्ष से, आकाश से अथवा प्रकाशमान द्युलोक से यहाँ पर आयें, क्योंकि इस यज्ञ में हमारी वाणियाँ आपकी स्तुति कर रहीं हैं ॥९ ॥

६०. इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि। इन्द्रं महो वा रजसः ॥ १० ॥

इस पृथ्वी लोक, अन्तरिक्ष लोक अथवा द्युलोक से - कहीं से भी प्रभूत धन प्राप्त कराने के लिये, हम इन्द्रदेव की प्रार्थना करते हैं ॥१० ॥



[सूक्त - ७]

[ऋषि- मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । देवता- इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

६१. इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ १ ॥

सामगान के साधकों ने गाये जाने योग्य बृहत्साम की स्तुतियों (*गाथा) से देवराज इन्द्र को प्रसन्न किया है । इसी तरह याज्ञिकों ने भी मन्त्रोच्चारण के द्वारा इन्द्रदेव की प्रार्थना की है ॥१ ॥

[* गाथा शब्द गान या पद्य के अर्थ में आया है इसे मंत्र या ऋक् के स्तर का नहीं माना जाता ।]

६२. इन्द्र इद्धर्योः सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ २ ॥

संयुक्त करने की क्षमता वाले, वज्रधारी, स्वर्ण-मण्डित इन्द्रदेव , वचन मात्र के इशारे से जुड़ जाने वाले अश्वों के साथी हैं ॥२ ॥

['वीर्यं वा अश्वः ' के अनुसार पराक्रम ही अश्व है । जो पराक्रमी समय पर संकेत मात्र से संगठित हो जायें, इन्द्र देवता उनके साथी हैं, जो अहंकारवश बिखरे रहते हैं, वे इन्द्रदेव के प्रिय नहीं हैं ।]

६३. इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ३ ॥

(देवशक्तियों के संगठक) इन्द्रदेव ने विश्व को प्रकाशित करने के महान् उद्देश्य से सूर्यदेव को उच्चाकाश में स्थापित किया, जिनने अपनी किरणों से पर्वत आदि समस्त विश्व को दर्शनार्थ प्रेरित किया ॥३ ॥

६४. इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च । उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ ४ ॥

हे वीर इन्द्रदेव ! आप सहस्रों प्रकार के धन - लाभ वाले छोटे-बड़े संग्रामों में वीरतापूर्वक हमारी रक्षा करें ॥४ ॥

६५. इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे । युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥ ५ ॥

हम छोटे - बड़े सभी (जीवन) संग्रामों में वृत्रासुर के संहारक, वज्रपाणि इन्द्रदेव को सहायतार्थ बुलाते हैं ॥५ ॥

६६. स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि । अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ॥ ६ ॥

सतत दानशील, सदैव अपराजित हे इन्द्रदेव ! आप हमारे लिये मेघ से जल की वृष्टि करें ॥६ ॥

६७. तुञ्जेतुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः । न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ॥ ७ ॥

प्रत्येक दान के समय , वज्रधारी इन्द्रदेव के सदृश दान की (दानी की) उपमा कहीं अन्यत्र नहीं मिलती । इन्द्रदेव की इससे अधिक उत्तम स्तुति करने में हम समर्थ नहीं हैं ॥ ७ ॥

६८. वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा । ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥ ८ ॥

सबके स्वामी, हमारे विरुद्ध कार्य न करने वाले, शक्तिमान् इन्द्रदेव अपनी सामर्थ्य के अनुसार , अनुदान बाँटने के लिये मनुष्यों के पास उसी प्रकार जाते हैं, जैसे वृषभ गायों के समूह में जाता है ॥८ ॥

६९. य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति । इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् ॥ ९ ॥

इन्द्रदेव, पाँचों श्रेणियों के मनुष्यों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद) और सब ऐश्वर्यों- सम्पदाओं के अद्वितीय स्वामी हैं ॥९ ॥



७०. इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः। अस्माकमस्तु केवलः ॥ १० ॥

हे ऋत्विजो ! हे यजमानो ! सभी लोगों में उत्तम, इन्द्रदेव को, आप सब के कल्याण के लिये हम आमंत्रित करते हैं, वे हमारे ऊपर विशेष कृपा करें ॥१० ॥

[सूक्त - ८]

[**ऋषि-** मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** गायत्री ।]

७१. एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम्। वर्षिष्ठमूतये भर ॥ १ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे जीवन संरक्षण के लिये तथा शत्रुओं को पराभूत करने के निमित्त हमें ऐश्वर्य से पूर्ण करें ॥१ ॥

७२. नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणधामहै। त्वोतासो न्यर्वता ॥ २ ॥

उस ऐश्वर्य के प्रभाव और आपके द्वारा रक्षित अश्वों के सहयोग से हम मुक्के का प्रहार करके (शक्ति प्रयोग द्वारा) शत्रुओं को भगा दें ॥२ ॥

७३. इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं घना ददीमहि। जयेम सं युधि स्पृधः ॥ ३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके द्वारा संरक्षित होकर तीक्ष्ण वज्रों को धारण कर हम युद्ध में स्पर्धा करने वाले शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें ॥३ ॥

७४. वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयम्। सासह्याम पृतन्यतः ॥ ४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके द्वारा संरक्षित कुशल शस्त्र-चालक वीरों के साथ हम अपने शत्रुओं को पराजित करें ॥४ ॥

७५. महाँ इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे। द्यौर्न प्रथिना शवः ॥ ५ ॥

हमारे इन्द्रदेव श्रेष्ठ और महान् हैं। वज्रधारी इन्द्रदेव का यश द्युलोक के समान व्यापक होकर फैले तथा इनके बल की प्रशंसा चतुर्दिक् हो ॥५ ॥

७६. समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ। विप्रासो वा धियायवः ॥ ६ ॥

जो संग्राम में जुटते हैं, जो पुत्र के निर्माण में जुटते हैं और बुद्धिपूर्वक ज्ञान-प्राप्ति के लिए यत्न करते हैं, वे सब इन्द्रदेव की स्तुति से इष्टफल पाते हैं ॥६ ॥

७७. यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्र इव पिन्वते। उर्वीरापो न काकुदः ॥ ७ ॥

अत्यधिक सोमपान करने वाले इन्द्रदेव का उदर समुद्र की तरह विशाल हो जाता है। वह (सोमरस) जीभ से प्रवाहित होने वाले रसों की तरह सतत द्रवित होता रहता है। (सदा आर्द्र बनाये रहता है।) ॥ ७ ॥

७८. एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही। पक्वा शाखा न दाशुषे ॥ ८ ॥

इन्द्रदेव की अति मधुर और सत्यवाणी उसी प्रकार सुख देती है, जिस प्रकार गो धन के दाता और पके फल वाली शाखाओं से युक्त वृक्ष यजमानों (हविदाता) को सुख देते हैं ॥८ ॥

७९. एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते। सद्यश्चित् सन्ति दाशुषे ॥ ९ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमारे लिये इष्टदात्री और संरक्षण प्रदान करने वाली जो आपकी विभूतियाँ हैं, वे सभी दान देने (श्रेष्ठ कार्य में नियोजन करने) वालों को भी तत्काल प्राप्त होती हैं ॥९ ॥



८०. एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या। इन्द्राय सोमपीतये ॥ १० ॥

दाता की स्तुतियाँ और उक्थ वचन अति मनोरम एवं प्रशंसनीय हैं। ये सब सोमपान करने वाले इन्द्रदेव के लिये हैं ॥१०॥

[सूक्त - ९]

[ऋषि - मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । देवता-इन्द्र । छन्द- गायत्री ।]

८१. इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः। महाँ अभिष्टिरोजसा ॥ १ ॥

हे इन्द्रदेव ! सोमरूपी अन्नों से आप प्रफुल्लित होते हैं, अतः अपनी शक्ति से दुर्दान्त शत्रुओं पर विजय श्री वरण करने की क्षमता प्राप्त करने हेतु आप (यज्ञशाला में) पधारें ॥१॥

८२. एमेनं सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने। चक्रिं विश्वानि चक्रये ॥ २ ॥

(हे याजको !) प्रसन्नता देने वाले सोमरस को (निचोड़कर) तैयार करो तथा सम्पूर्ण कार्यों के कर्त्ता इन्द्र देव के लिये सामर्थ्य बढ़ाने वाले इस सोम को अर्पित करो ॥२॥

८३. मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभिः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे। सचैषु सवनेष्वा ॥ ३ ॥

हे उत्तम शस्त्रों से सुसज्जित (अथवा शोभन नासिका वाले), सर्वद्रष्टा इन्द्रदेव ! हमारे इन यज्ञों में आकर प्रफुल्लता प्रदान करने वाले स्तोत्रों से आप आनन्दित हों ॥३॥

८४. असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत। अजोषा वृषभं पतिम् ॥ ४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी स्तुति के लिये हमने स्तोत्रों की रचना की है। हे बलशाली और पालनकर्त्ता इन्द्रदेव ! इन स्तुतियों द्वारा की गई प्रार्थना को आप स्वीकार करें ॥४॥

८५. सं चोदय चित्रमर्वाग्राध इन्द्र वरेण्यम्। असदित्ते विभु प्रभु ॥ ५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप ही विपुल ऐश्वर्यों के अधिपति हैं, अतः विविध प्रकार के श्रेष्ठ ऐश्वर्यों को हमारे पास प्रेरित करें; अर्थात् हमें श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान करें ॥५॥

८६. अस्मान्त्सु तत्र चोदयेन्द्र राये रभस्वतः। तुविद्युम्न यशस्वतः ॥ ६ ॥

हे प्रभूत ऐश्वर्य सम्पन्न इन्द्रदेव ! आप वैभव की प्राप्ति के लिये हमें श्रेष्ठ कर्मों में प्रेरित करें, जिससे हम परिश्रमी और यशस्वी हो सकें ॥६॥

८७. सं गोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु श्रवो बृहत्। विश्वायुर्धेह्यक्षितम् ॥ ७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमें गौओं, धन-धान्यों से युक्त अपार वैभव एवं अक्षय पूर्णायु प्रदान करें ॥ ७ ॥

८८. अस्मे धेहि श्रवो बृहद् द्युम्नं सहस्रसातमम्। इन्द्र ता रथिनीरिषः ॥ ८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमें प्रभूत यश एवं विपुल ऐश्वर्य प्रदान करें तथा बहुत से रथों में भरकर अन्नादि प्रदान करें ॥८॥

८९. वसोरिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम्। होम गन्तारमूतये ॥ ९ ॥

धनों के अधिपति, ऐश्वर्यों के स्वामी, ऋचाओं से स्तुत्य इन्द्रदेव का हम स्तुतिपूर्वक आवाहन करते हैं। हमारे यज्ञ में पधार कर, हमारे ऐश्वर्य की रक्षा करें ॥९॥



९०. सुतेसुते न्योकसे बृहद् बृहत एदरिः। इन्द्राय शूषमर्चति ॥ १० ॥

सोम को सिद्ध (तैयार) करने के स्थान यज्ञस्थल पर यज्ञकर्त्ता, इन्द्रदेव के पराक्रम की प्रशंसा करते हैं ॥१० ॥

[सूक्त - १०]

[ऋषि -मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । देवता-इन्द्र । छन्द-अनुष्टुप्]

९१. गायन्ति त्वा गायत्रिणो ऽर्चन्त्यर्कमर्किणः। ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥१ ॥

हे शतक्रतो (सौ यज्ञ या श्रेष्ठ कर्म करने वाले) इन्द्रदेव ! उद्‌गातागण (उच्च स्वर से गान करने वाले) आपका आवाहन करते हैं। स्तोतागण पूज्य इन्द्रदेव का मंत्रोच्चारण द्वारा आदर करते हैं। बाँस के ऊपर कला प्रदर्शन करने वाले नट के समान, ब्रह्मा नामक ऋत्विज् श्रेष्ठ स्तुतियों द्वारा इन्द्रदेव को प्रोत्साहित करते हैं ॥१ ॥

९२. यत्सानोः सानुमारुहद् भूर्यस्पष्ट कर्त्वम्। तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति ॥२ ॥

जब यजमान सोमवल्ली, समिधादि के निमित्त एक पर्वत शिखर से दूसरे पर्वत शिखर पर जाते हैं और यजन कर्म करते हैं, तब उनके मनोरथ को जानने वाले इष्टप्रदायक इन्द्रदेव यज्ञ में जाने को उद्यत होते हैं ॥२ ॥

९३. युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा। अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर ॥३ ॥

हे सोमरस ग्रहीता इन्द्रदेव ! आप लम्बे केशयुक्त, शक्तिमान्, गन्तव्य तक ले जाने वाले दोनों घोड़ों को रथ में नियोजित करें। तत्पश्चात् सोमपान से तृप्त होकर हमारे द्वारा की गई प्रार्थनाएँ सुनें ॥३ ॥

९४. एहि स्तोमाँ अभि स्वराभि गृणीह्या रुव। ब्रह्म च नो वसो सचेन्द्र यज्ञं च वर्धय ॥४ ॥

हे सर्वनिवासक इन्द्रदेव ! हमारी स्तुतियों का श्रवण कर आप उद्‌गाताओं, होताओं एवं अध्वर्युवों को प्रशंसा से प्रोत्साहित करें ॥४ ॥

९५. उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिष्षिधे। शक्रो यथा सुतेषु णो रारणत् सख्येषु च ॥५ ॥

हे स्तोताओ ! आप शत्रुसंहारक, सामर्थ्यवान् इन्द्रदेव के लिये (उनके) यश को बढ़ाने वाले उत्तम स्तोत्रों का पाठ करें, जिससे उनकी कृपा हमारी सन्तानों एवं मित्रों पर सदैव बनी रहे ॥५ ॥

९६. तमित् सखित्व ईमहे तं राये तं सुवीर्ये। स शक्र उत नः शकदिन्द्रो वसु दयमानः ॥६ ॥

हम उन इन्द्रदेव के पास मित्रता के लिये, धन -प्राप्ति और उत्तमबल - वृद्धि के लिये स्तुति करने जाते हैं। वे इन्द्रदेव बल एवं धन प्रदान करते हुए हमें संरक्षित करते हैं ॥६ ॥

९७. सुविवृतं सुनिरजमिन्द्र त्वादातमिद्यशः। गवामप व्रजं वृधि कृणुष्व राधो अद्रिवः ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके द्वारा प्रदत्त यश सब दिशाओं में सुविस्तृत हुआ है। हे वज्रधारक इन्द्रदेव ! गौओं को बाड़े से छोड़ने के समान हमारे लिये धन को प्रसारित करें ॥ ७ ॥

९८. नहि त्वा रोदसी उभे ऋघायमाणमिन्वतः। जेषः स्वर्वतीरपः सं गा अस्मभ्यं धूनुहि ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! युद्ध के समय आप के यश का विस्तार पृथ्वी और द्युलोक तक होता है। दिव्य जल - प्रवाहों पर आपका ही अधिकार है। उनसे अभिषिक्त कर हमें तृप्त करें ॥८ ॥

९९. आश्रुत्कर्ण श्रुधी हवं नू चिद्दधिष्व मे गिरः ।
इन्द्र स्तोममिमं मम कृष्वा युजश्चिदन्तरम् ॥ ९ ॥



भक्तों की स्तुति सुनने वाले हे इन्द्रदेव ! हमारे आवाहन को सुनें। हमारी वाणियों को चित्त में धारण करें। हमारे स्तोत्रों को अपने मित्र के वचनों से भी अधिक प्रीतिपूर्वक धारण करें ॥९ ॥

१००. विद्मा हि त्वा वृषन्तमं वाजेषु हवनश्रुतम्। वृषन्तमस्य हूमह ऊतिं सहस्रसातमाम्॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! हम जानते हैं कि आप बल - सम्पन्न हैं तथा युद्धों में हमारे आवाहन को आप सुनते हैं। हे बलशाली इन्द्रदेव ! आपके सहस्रों प्रकार के धन के साथ हम आपका संरक्षण भी चाहते हैं ॥१० ॥

१०१. आ तू न इन्द्र कौशिक मन्दसानः सुतं पिब ।
नव्यमायुः प्र सू तिर कृधी सहस्रसामृषिम् ॥ ११ ॥

हे कुशिक के पुत्र *इन्द्रदेव ! आप इस निष्पादित सोम का पान करने के लिये हमारे पास शीघ्र आयें। हमें कर्म करने की सामर्थ्य के साथ नवीन आयु भी दें। इस ऋषि को सहस्र धनों से पूर्ण करें ॥११ ॥

[* कुशिक पुत्र विश्वामित्र के समान ही उत्पत्ति के कारण इन्द्रदेव को कुशिक पुत्र सम्बोधन दिया गया है। (विशेष द्रष्टव्य म० अनु०]

१०२. परि त्वा गिर्वणो गिर इमा भवन्तु विश्वतः ।
वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः॥ १२ ॥

हे स्तुत्य इन्द्रदेव ! हमारे द्वारा की गई स्तुतियाँ सब ओर से आपकी आयु को बढ़ाती हुई आपको यशस्वी बनायें। आपके द्वारा स्वीकृत ये (स्तुतियाँ) हमारे आनन्द को बढ़ाने वाली सिद्ध हों ॥१२ ॥

[सूक्त - ११]

[ऋषि- जेतामाधुच्छन्दस। देवता - इन्द्र। छन्द - अनुष्टुप्।]

१०३. इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः। रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम्॥१ ॥

समुद्र के तुल्य व्यापक, सब रथियों में महानतम, अन्नों के स्वामी और सत्प्रवृत्तियों के पालक इन्द्रदेव को समस्त स्तुतियाँ अभिवृद्धि प्रदान करती हैं ॥१ ॥

१०४. सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते। त्वामभि प्र णोनुमो जेतारमपराजितम्॥२ ॥

हे बलरक्षक इन्द्रदेव ! आपकी मित्रता से हम बलशाली होकर किसी से न डरें। हे अपराजेय - विजयी इन्द्रदेव ! हम साधकगण आपको प्रणाम करते हैं ॥२ ॥

१०५. पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्यूतयः।
यदी वाजस्य गोमतः स्तोतृभ्यो मंहते मघम् ॥ ३ ॥

देवराज इन्द्र की दानशीलता सनातन है। ऐसी स्थिति में आज के यजमान भी यदि स्तोताओं को गवादि सहित अन्न दान करते हैं, तो इन्द्रदेव द्वारा की गई सुरक्षा अक्षुण्ण रहती है ॥३ ॥

१०६. पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः॥ ४ ॥

शत्रु के नगरों को विनष्ट करने वाले वे इन्द्रदेव युवा, ज्ञाता, अतिशक्तिशाली, शुभ कार्यों के आश्रयदाता तथा सर्वाधिक कीर्ति -युक्त होकर विविधगुण सम्पन्न हुए हैं ॥४ ॥



१०७. त्वं वलस्य गोमतोऽपावरद्रिवो बिलम् ।
' त्वां देवा अबिभ्युषस्तुज्यमानास आविषुः ॥ ५ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आपने गौओं (सूर्य-किरणों) को चुराने वाले असुरों के व्यूह को नष्ट किया, तब असुरों से पराजित हुए देवगण आपके साथ आकर संगठित हुए ॥५ ॥

१०८. तवाहं शूर रातिभिः प्रत्यायं सिन्धुमावदन् ।
उपातिष्ठन्त गिर्वणो विदुष्टे तस्य कारवः ॥ ६ ॥

संग्रामशूर हे इन्द्रदेव ! आपकी दानशीलता से आकृष्ट होकर हम होतागण पुनः आपके पास आये हैं। हे स्तुत्य इन्द्रदेव ! सोमयाग में आपकी प्रशंसा करते हुए ये ऋत्विज् एवं यजमान आपकी दानशीलता को जानते हैं ॥६ ॥

१०९. मायाभिरिन्द्र मायिनं त्वं शुष्णमवातिरः। विदुष्टे तस्य मेधिरास्तेषां श्रवांस्युत्तिर ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! अपनी माया द्वारा आपने 'शुष्ण' (एक राक्षस) को पराजित किया। जो बुद्धिमान् आपकी इस माया को जानते हैं, उन्हें यश और बल देकर वृद्धि प्रदान करें ॥ ७ ॥

११०. इन्द्रमीशानमोजसाभि स्तोमा अनूषत। सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥८ ॥

स्तोतागण, असंख्यों अनुदान देने वाले, ओजस् (बल-पराक्रम) के कारण जगत् के नियन्ता इन्द्रदेव की स्तुति करने लगे ॥८ ॥

[सूक्त - १२]

[ऋषि - मेधातिथि काण्व । देवता- अग्नि, (छठवीं ऋचा के प्रथम पाद के देवता-निर्मथ्य अग्नि और आहवनीय अग्नि) । छन्द-गायत्री ।]

१११. अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्। अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥१ ॥

हे सर्वज्ञाता अग्निदेव ! आप यज्ञ के विधाता हैं, समस्त देवशक्तियों को तुष्ट करने की सामर्थ्य रखते हैं। आप यज्ञ की विधि-व्यवस्था के स्वामी हैं। ऐसे समर्थ आपको हम देव-दूत रूप में स्वीकार करते हैं ॥१ ॥

११२. अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम्। हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥२ ॥

प्रजापालक, देवों तक हवि पहुँचाने वाले, परमप्रिय, कुशल नेतृत्व प्रदान करने वाले हे अग्निदेव ! हम याजकगण हवनीय मंत्रों से आपको सदा बुलाते हैं ॥२ ॥

११३. अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे। असि होता न ईड्यः ॥३ ॥

हे स्तुत्य अग्निदेव ! आप अरणि मन्थन से उत्पन्न हुए हैं। आस्तीर्ण (बिछे हुए) कुशाओं पर बैठे हुए यजमान पर अनुग्रह करने हेतु आप (यज्ञ की) हवि ग्रहण करने वाले देवताओं को इस यज्ञ में बुलाएँ ॥३ ॥

११४. ताँ उशतो वि बोधय यदग्ने यासि दूत्यम्। देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप हवि की कामना करने वाले देवों को यहाँ बुलाएँ और इन कुशा के आसनों पर देवों के साथ प्रतिष्ठित हों ॥४ ॥



११५. घृताहवन दीदिवः प्रति ष्म रिषतो दह। अग्ने त्वं रक्षस्विनः ॥५ ॥

घृत आहुतियों से प्रदीप्त हे अग्निदेव ! आप राक्षसी प्रवृत्तियों वाले शत्रुओं को सम्यक् रूप से भस्म करें ॥५ ॥

११६. अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा। हव्यवाड् जुह्वास्यः ॥६ ॥

यज्ञ स्थल के रक्षक, दूरदर्शी, चिरयुवा, आहुतियों को देवों तक पहुँचाने वाले, ज्वालायुक्त आहवनीय यज्ञाग्नि को अरणि मन्थन द्वारा उत्पन्न अग्नि से प्रज्वलित किया जाता है ॥६ ॥

११७. कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे। देवममीवचातनम् ॥७ ॥

हे ऋत्विजो ! लोक हितकारी यज्ञ में रोगों को नष्ट करने वाले, ज्ञानवान् अग्निदेव की स्तुति आप सब विशेष रूप से करें ॥७ ॥

११८. यस्त्वामग्ने हविष्पतिर्दूतं देव सपर्यति। तस्य स्म प्राविता भव ॥८ ॥

देवगणों तक हविष्यान्न पहुँचाने वाले हे अग्निदेव ! जो याजक, आप (देवदूत) की उत्तम विधि से अर्चना करते हैं, आप उनकी भली-भाँति रक्षा करें ॥८ ॥

११९. यो अग्निं देववीतये हविष्माँ आविवासति। तस्मै पावक मृळय ॥९ ॥

हे शोधक अग्निदेव ! देवों के लिए हवि प्रदान करने वाले जो यजमान आपकी प्रार्थना करते हैं, आप उन्हें सुखी बनायें ॥९ ॥

१२०. स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाँ इहा वह। उप यज्ञं हविश्च नः ॥१० ॥

हे पवित्र, दीप्तिमान् अग्निदेव ! आप देवों को हमारे यज्ञ में हवि ग्रहण करने के निमित्त ले आएँ ॥१० ॥

१२१. स नः स्तवान आ भर गायत्रेण नवीयसा। रयिं वीरवतीमिषम् ॥११ ॥

हे अग्निदेव ! नवीनतम गायत्री छन्द वाले सूक्त से स्तुति किये जाते हुए आप हमारे लिए पुत्रादि ऐश्वर्य और बलयुक्त अन्नों को भरपूर प्रदान करें ॥११ ॥

१२२. अग्ने शुक्रेण शोचिषा विश्वाभिर्देवहूतिभिः। इमं स्तोमं जुषस्व नः ॥१२ ॥

हे अग्निदेव ! अपनी कान्तिमान् दीप्तियों से देवों को बुलाने के निमित्त हमारी स्तुतियों को स्वीकार करें ॥१२ ॥

[सूक्त - १३]

[**ऋषि** - मेधातिथि काण्व। **देवता**-१-इध्म अथवा समिद्ध अग्नि, २ - तनूनपात्, ३- नराशंस, ४- इळा, ५- बर्हि, ६- दिव्यद्वार, ७-उषासानक्ता, ८-दिव्यहोता प्रचेतस, ९- तीन देवियाँ - सरस्वती, इळा, भारती, १०- त्वष्टा, ११-वनस्पति, १२-स्वाहाकृति। **छन्द** -गायत्री]

१२३. सुसमिद्धो न आ वह देवाँ अग्ने हविष्मते। होतः पावक यक्षि च ॥१ ॥

पवित्रकर्त्ता, यज्ञ सम्पादनकर्त्ता हे अग्निदेव ! आप अच्छी तरह प्रज्वलित होकर यजमान के कल्याण के लिए देवताओं का आवाहन करें और उनको लक्ष्य करके यज्ञ सम्पन्न करें अर्थात् देवों के पोषण के लिए हविष्यान्न ग्रहण करें ॥१ ॥

१२४. मधुमन्तं तनूनपाद् यज्ञं देवेषु नः कवे। अद्या कृणुहि वीतये ॥२ ॥

ऊर्ध्वगामी, मेधावी हे अग्निदेव ! हमारी रक्षा के लिए प्राणवर्द्धक-मधुर हवियों को देवों के निमित्त प्राप्त करें और उन तक पहुँचाएँ ॥२ ॥

१२५. नराशंसमिह प्रियमस्मिन् यज्ञ उप ह्वये। मधुजिह्वं हविष्कृतम् ॥३ ॥

हम इस यज्ञ में देवताओं के प्रिय और आह्लादक (मधुजिह्व) अग्निदेव का आवाहन करते हैं। वह हमारी हवियों को देवताओं तक पहुँचाने वाले हैं, अस्तु, वे स्तुत्य हैं ॥३ ॥

१२६. अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईळित आ वह। असि होता मनुर्हितः ॥४ ॥

मानवमात्र के हितैषी हे अग्निदेव ! आप अपने श्रेष्ठ - सुखदायी रथ से देवताओं को लेकर (यज्ञस्थल पर) पधारें। हम आपकी वन्दना करते हैं ॥४ ॥

१२७. स्तृणीत बर्हिरानुषग् घृतपृष्ठं मनीषिणः। यत्रामृतस्य चक्षणम् ॥५ ॥

हे मेधावी पुरुषो ! आप इस यज्ञ में कुशा के आसनों को परस्पर मिलाकर इस तरह बिछाएँ कि उस पर घृत-पात्र को भली प्रकार रखा जा सके, जिससे अमृततुल्य घृत का सम्यक् दर्शन हो सके ॥५ ॥

१२८. वि श्रयन्तामृतावृधो द्वारो देवीरसश्चतः। अद्या नूनं च यष्टवे ॥६ ॥

आज यज्ञ करने के लिए निश्चित रूप से ऋत (यज्ञीय वातावरण) की वृद्धि करने वाले अविनाशी दिव्य-द्वार खुल जाएँ ॥६ ॥

१२९. नक्तोषासा सुपेशसास्मिन् यज्ञ उप ह्वये। इदं नो बर्हिरासदे ॥७ ॥

सुन्दर रूपवती रात्रि और उषा का हम इस यज्ञ में आवाहन करते हैं। हमारी ओर से आसन रूप में यह बर्हि (कुश) प्रस्तुत है ॥ ७ ॥

१३०. ता सुजिह्वा उप ह्वये होतारा दैव्या कवी। यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥८ ॥

उन उत्तम वचन वाले और मेधावी दोनों (अग्नियों) दिव्य होताओं को यज्ञ में यजन के निमित्त हम बुलाते हैं ॥८ ॥

१३१. इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः। बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ॥९ ॥

इळा, सरस्वती और मही ये तीनों देवियाँ सुखकारी और क्षयरहित हैं। ये तीनों बिछे हुए दीप्तिमान् कुश के आसनों पर विराजमान हों ॥९ ॥

१३२. इह त्वष्टारमग्रियं विश्वरूपमुप ह्वये। अस्माकमस्तु केवलः ॥१० ॥

प्रथम पूज्य, विविध रूप वाले त्वष्टादेव का इस यज्ञ में आवाहन करते हैं, वे देव केवल हमारे ही हों ॥१० ॥

१३३. अव सृजा वनस्पते देव देवेभ्यो हविः। प्र दातुरस्तु चेतनम् ॥११ ॥

हे वनस्पतिदेव ! आप देवों के लिए नित्य हविष्यान्न प्रदान करने वाले दाता को प्राणरूप उत्साह प्रदान करें ॥११ ॥

१३४. स्वाहा यज्ञं कृणोतनेन्द्राय यज्वनो गृहे। तत्र देवाँ उप ह्वये ॥१२ ॥

(हे अध्वर्यु !) आप याजकों के घर में इन्द्रदेव की तुष्टि के लिये आहुतियाँ समर्पित करें। हम होता वहाँ देवों को आमन्त्रित करते हैं ॥१२ ॥



[सूक्त - १४]

[ऋषि - मेधातिथि काण्व । देवता-विश्वेदेवा । छन्द-गायत्री ।]

१३५. ऐभिरग्ने दुवो गिरो विश्वेभिः सोमपीतये । देवेभिर्याहि यक्षि च ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप समस्त देवों के साथ इस यज्ञ में सोम पीने के लिए आएँ एवं हमारी परिचर्या और स्तुतियों को ग्रहण करके यज्ञ कार्य सम्पन्न करें ॥१ ॥

१३६. आ त्वा कण्वा अहूषत गृणन्ति विप्र ते धियः । देवेभिरग्न आ गहि ॥२ ॥

हे मेधावी अग्निदेव ! कण्वऋषि आपको बुला रहे हैं, वे आपके कार्यों की प्रशंसा करते हैं । अतः आप देवों के साथ यहाँ पधारें ॥२ ॥

१३७. इन्द्रवायू बृहस्पतिं मित्राग्निं पूषणं भगम् । आदित्यान् मारुतं गणम् ॥३ ॥

यज्ञशाला में हम इन्द्र, वायु, बृहस्पति, मित्र, अग्नि, पूषा, भग, आदित्यगण और मरुद्गण आदि देवों का आवाहन करते हैं ॥३ ॥

१३८. प्र वो भ्रियन्त इन्दवो मत्सरा मादयिष्णवः । द्रप्सा मध्वश्चमूषदः ॥४ ॥

कूट-पीसकर तैयार किया हुआ, आनन्द और हर्ष बढ़ाने वाला यह मधुर सोमरस अग्निदेव के लिए चमसादि पात्रों में भरा हुआ है ॥४ ॥

१३९. ईळते त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तबर्हिषः । हविष्मन्तो अरङ्कृतः ॥५ ॥

कण्व ऋषि के वंशज अपनी सुरक्षा की कामना से, कुश-आसन बिछाकर हविष्यान्न व अलंकारों से युक्त होकर अग्निदेव की स्तुति करते हैं ॥५ ॥

१४०. घृतपृष्ठा मनोयुजो ये त्वा वहन्ति वह्नयः । आ देवान्त्सोमपीतये ॥६ ॥

अतिदीप्तिमान् पृष्ठ भाग वाले, मन के संकल्प मात्र से ही रथ में नियोजित हो जाने वाले अश्वों (से खींचे गये रथ) द्वारा आप सोमपान के निमित्त देवों को ले आएँ ॥६ ॥

१४१. तान् यजत्राँ ऋतावृधो ऽग्ने पत्नीवतस्कृधि । मध्वः सुजिह्व पायय ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! आप यज्ञ की समृद्धि एवं शोभा बढ़ाने वाले पूजनीय इन्द्रादि देव को सपत्नीक इस यज्ञ में बुलाएँ तथा उन्हें मधुर सोमरस का पान कराएँ ॥ ७ ॥

१४२. ये यजत्रा य ईड्यास्ते ते पिबन्तु जिह्वया । मधोरग्ने वषट्कृति ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! यजन किये जाने योग्य और स्तुति किये जाने योग्य जो देवगण हैं, वे यज्ञ में आपकी जिह्वा से आनन्दपूर्वक मधुर सोमरस का पान करें ॥८ ॥

१४३. आकीं सूर्यस्य रोचनाद् विश्वान् देवाँ उषर्बुधः । विप्रो होतेह वक्षति ॥९ ॥

हे मेधावी होतारूप अग्निदेव ! आप प्रातःकाल में जागने वाले विश्वेदेवों को सूर्य-रश्मियों से युक्त करके हमारे पास लाते हैं ॥९ ॥

१४४. विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्न इन्द्रेण वायुना । पिबा मित्रस्य धामभिः ॥१० ॥

हे अग्निदेव ! आप इन्द्र, वायु, मित्र आदि देवों के सम्पूर्ण तेजों के साथ मधुर सोमरस का पान करें ॥१० ॥

१४५. त्वं होता मनुर्हितोऽग्ने यज्ञेषु सीदसि। सेमं नो अध्वरं यज ॥११ ॥

हे मनुष्यों के हितैषी अग्निदेव ! आप होता के रूप में यज्ञ में प्रतिष्ठित हों और हमारे इस हिंसारहित यज्ञ को सम्पन्न करें ॥११ ॥

१४६. युक्ष्वा ह्यरुषी रथे हरितो देव रोहितः। ताभिर्देवाँ इहा वह ॥१२ ॥

हे अग्निदेव ! आप रोहित नामक रथ को ले जाने में सक्षम, तेजगति वाली घोड़ियों को रथ में जोतें एवं उनके द्वारा देवताओं को इस यज्ञ में लाएँ ॥१२ ॥

[सूक्त - १५]

[**ऋषि** - मेधातिथि काण्व। **देवता**-(प्रतिदेवता ऋतु सहित) १,५ इन्द्र, २ मरुद्‌गण, ३ त्वष्टा, ४, १२ अग्नि, ६ मित्रावरुण, ७, १० द्रविणोदा, ११ अश्विनीकुमार। **छन्द**-गायत्री।]

१४७. इन्द्र सोमं पिब ऋतुना त्वा विशन्त्विन्दवः। मत्सरासस्तदोकसः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! ऋतुओं के अनुकूल सोमरस का पान करें, ये सोमरस आपके शरीर में प्रविष्ट हों; क्योंकि आपकी तृप्ति का आश्रयभूत साधन यही सोम है ॥१ ॥

१४८. मरुतः पिबत ऋतुना पोत्राद् यज्ञं पुनीतन। यूयं हि ष्ठा सुदानवः ॥२ ॥

दानियों में श्रेष्ठ हे मरुतो ! आप पोता नामक ऋत्विज् के पात्र से ऋतु के अनुकूल सोमरस का पान करें एवं हमारे इस यज्ञ को पवित्रता प्रदान करें ॥२ ॥

१४९. अभि यज्ञं गृणीहि नो ग्नावो नेष्टः पिब ऋतुना। त्वं हि रत्नधा असि ॥३ ॥

हे त्वष्टादेव ! आप पत्नी सहित हमारे यज्ञ की प्रशंसा करें, ऋतु के अनुकूल सोमरस का पान करें। आप निश्चय ही रत्नों को देने वाले हैं ॥३ ॥

१५०. अग्ने देवाँ इहा वह सादया योनिषु त्रिषु। परि भूष पिब ऋतुना ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप देवों को यहाँ बुलाकर उन्हें यज्ञ के तीनों सवनों (प्रातः, माध्यन्दिन एवं सायं) में आसीन करें। उन्हें विभूषित करके ऋतु के अनुकूल सोम का पान करें ॥४ ॥

१५१. ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृतूँरनु। तवेद्धि सख्यमस्तृतम् ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप ब्रह्मा को जानने वाले साधक के पात्र से सोमरस का पान करें, क्योंकि उनके साथ आपकी अविच्छिन्न (अटूट) मित्रता है ॥५ ॥

१५२. युवं दक्षं धृतव्रत मित्रावरुण दूळभम्। ऋतुना यज्ञमाशाथे ॥६ ॥

हे अटल व्रत वाले मित्रावरुण ! आप दोनों ऋतु के अनुसार बल प्रदान करने वाले हैं। आप कठिनाई से सिद्ध होने वाले इस यज्ञ को सम्पन्न करते हैं ॥६ ॥

१५३. द्रविणोदा द्रविणसो ग्रावहस्तासो अध्वरे। यज्ञेषु देवमीळते ॥७ ॥

धन की कामना वाले याजक सोमरस तैयार करने के निमित्त हाथ में पत्थर धारण करके पवित्र यज्ञ में धनप्रदायक अग्निदेव की स्तुति करते हैं ॥ ७ ॥



१५४. द्रविणोदा ददातु नो वसूनि यानि शृण्विरे। देवेषु ता वनामहे ॥८ ॥

हे धनप्रदायक अग्निदेव ! हमें वे सभी धन प्रदान करें, जिनके विषय में हमने श्रवण किया है। वे समस्त धन हम देवगणों को ही अर्पित करते हैं ॥८ ॥

[देव-शक्तियों से प्राप्त विभूतियों का उपयोग देवकार्यों के लिये ही करने का भाव व्यक्त किया गया है।]

१५५. द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत। नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत ॥९ ॥

धनप्रदायक अग्निदेव नेष्टापात्र (नेष्टृधिष्ण्या स्थान-यज्ञ कुण्ड) से ऋतु के अनुसार सोमरस पीने की इच्छा करते हैं। अतः हे याजकगण ! आप वहाँ जाकर यज्ञ करें और पुनः अपने निवास स्थान के लिये प्रस्थान करें ॥९ ॥

१५६. यत् त्वा तुरीयमृतुभिर्द्रविणोदो यजामहे। अध स्मा नो ददिर्भव ॥१० ॥

हे धनप्रदायक अग्निदेव ! ऋतुओं के अनुगत होकर हम आपके निमित्त सोम के चौथे भाग को अर्पित करते हैं, इसलिए आप हमारे लिये धन प्रदान करने वाले हों ॥१० ॥

१५७. अश्विना पिबतं मधु दीद्यग्नी शुचिव्रता। ऋतुना यज्ञवाहसा ॥११ ॥

दीप्तिमान्, शुद्ध कर्म करने वाले, ऋतु के अनुसार यज्ञवाहक हे अश्विनीकुमारो ! आप इस मधुर सोमरस का पान करें ॥११ ॥

१५८. गार्हपत्येन सन्त्य ऋतुना यज्ञनीरसि। देवान् देवयते यज ॥१२ ॥

हे इष्टप्रद अग्निदेव ! आप गार्हपत्य के नियमन में ऋतुओं के अनुगत यज्ञ का निर्वाह करने वाले हैं, अतः देवत्व प्राप्ति की कामना वाले याजकों के निमित्त देवों का यजन करें ॥१२ ॥

[सूक्त - १६]

[ऋषि - मेधातिथि काण्व। देवता-इन्द्र। छन्द-गायत्री।]

१५९. आ त्वा वहन्तु हरयो वृषणं सोमपीतये। इन्द्र त्वा सूरचक्षसः ॥१ ॥

हे बलवान् इन्द्रदेव ! आपके तेजस्वी घोड़े सोमरस पीने के लिए आपको यज्ञस्थल पर लाएँ तथा सूर्य के समान प्रकाशयुक्त ऋत्विज् मन्त्रों द्वारा आपकी स्तुति करें ॥१ ॥

१६०. इमा धाना घृतस्नुवो हरी इहोप वक्षतः। इन्द्रं सुखतमे रथे ॥२ ॥

अत्यन्त सुखकारी रथ में नियोजित इन्द्रदेव के दोनों हरि (घोड़े) उन्हें (इन्द्रदेव को) घृत से स्निग्ध हवि रूप धाना (भुने हुए जौ) ग्रहण करने के लिए यहाँ ले आएँ ॥२ ॥

१६१. इन्द्रं प्रातर्हवामह इन्द्रं प्रयत्यध्वरे। इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥३ ॥

हम प्रातःकाल यज्ञ प्रारम्भ करते समय मध्याह्नकालीन सोमयाग प्रारम्भ होने पर तथा सायंकाल यज्ञ की समाप्ति पर भी सोमरस पीने के निमित्त इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं ॥३ ॥

१६२. उप नः सुतमा गहि हरिभिरिन्द्र केशिभिः। सुते हि त्वा हवामहे ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अपने केसर युक्त अश्वों से सोम के अभिषव स्थान के पास आएँ। सोम के अभिषुत होने पर हम आपका आवाहन करते हैं ॥४ ॥

१६३. सेमं नः स्तोममा गह्युपेदं सवनं सुतम्। गौरो न तृषितः पिब ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमारे स्तोत्रों का श्रवण कर आप यहाँ आएँ। प्यासे गौर मृग के सदृश व्याकुल मन से सोम के अभिषव स्थान के समीप आकर सोम का पान करें ॥५ ॥

१६४. इमे सोमास इन्दवः सुतासो अधि बर्हिषि। ताँ इन्द्र सहसे पिब ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! यह दीप्तिमान् सोम निष्पादित होकर कुश-आसन पर सुशोभित है। शक्ति - वर्द्धन के निमित्त आप इसका पान करें ॥६ ॥

१६५. अयं ते स्तोमो अग्रियो हृदिस्पृगस्तु शंतमः। अथा सोमं सुतं पिब ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! यह स्तोत्र श्रेष्ठ, मर्मस्पर्शी और अत्यन्त सुखकारी है। अब आप इसे सुनकर अभिषुत सोमरस का पान करें ॥ ७ ॥

१६६. विश्वमित्सवनं सुतमिन्द्रो मदाय गच्छति। वृत्रहा सोमपीतये ॥८ ॥

सोम के सभी अभिषव स्थानों की ओर इन्द्रदेव अवश्य जाते हैं। दुष्टों का हनन करने वाले इन्द्रदेव सोमरस पीकर अपना हर्ष बढ़ाते हैं ॥८ ॥

१६७. सेमं नः काममा पृण गोभिरश्वैः शतक्रतो। स्तवाम त्वा स्वाध्यः ॥९ ॥

हे शतकर्मा इन्द्रदेव ! आप हमारी गौओं और अश्वों सम्बन्धी कामनायें पूर्ण करें। हम मनोयोगपूर्वक आपकी स्तुति करते हैं ॥९ ॥

[सूक्त - १७]

[**ऋषि**- मेधातिथि काण्व। **देवता**- इन्द्रावरुण। **छन्द** - गायत्री ४ पादनिचृत् गायत्री, ५ हसीयसी गायत्री]

१६८. इन्द्रावरुणयोरहं सम्राजोरव आ वृणे। ता नो मृळात ईदृशे ॥१ ॥

हम इन्द्र और वरुण दोनों प्रतापी देवों से अपनी सुरक्षा की कामना करते हैं। वे दोनों हम पर इस प्रकार अनुकम्पा करें, जिससे कि हम सुखी रहें ॥१ ॥

१६९. गन्तारा हि स्थोऽवसे हवं विप्रस्य मावतः। धर्तारा चर्षणीनाम् ॥२ ॥

हे इन्द्र और वरुणदेवो ! आप दोनों, मनुष्यों के सम्राट्, धारक एवं पोषक हैं। हम जैसे ब्राह्मणों के आवाहन पर सुरक्षा के लिए आप निश्चय ही आने को उद्यत रहते हैं ॥२ ॥

१७०. अनुकामं तर्पयेथामिन्द्रावरुण राय आ। ता वां नेदिष्ठमीमहे ॥३ ॥

हे इन्द्र और वरुणदेवो ! हमारी कामनाओं के अनुरूप धन देकर हमें संतुष्ट करें। आप दोनों के समीप पहुँचकर हम प्रार्थना करते हैं ॥ ३ ॥

१७१. युवाकु हि शचीनां युवाकु सुमतीनाम्। भूयाम वाजदाव्नाम्॥४ ॥

हमारे कर्म संगठित हों, हमारी सद्बुद्धियाँ संगठित हों, हम अग्रगण्य होकर दान करने वाले बनें ॥४ ॥

१७२. इन्द्रःसहस्रदाव्नां वरुणः शंस्यानाम्। क्रतुर्भवत्युक्थ्यः ॥५ ॥

इन्द्रदेव सहस्रों दाताओं में सर्वश्रेष्ठ हैं और वरुणदेव सहस्रों प्रशंसनीय देवों में सर्वश्रेष्ठ हैं ॥५ ॥



१७३. तयोरिदवसा वयं सनेम नि च धीमहि। स्यादुत प्रेरेचनम् ॥६ ॥

आपके द्वारा सुरक्षित धन को प्राप्त कर हम उसका श्रेष्ठतम उपयोग करें । वह धन हमें विपुल मात्रा में प्राप्त हो ॥६ ॥

१७४. इन्द्रावरुण वामहं हुवे चित्राय राधसे। अस्मान्त्सु जिग्युषस्कृतम् ॥७ ॥

हे इन्द्रावरुण देवो ! विविध प्रकार के धन की कामना से हम आपका आवाहन करते हैं । आप हमें उत्तम विजय प्राप्त कराएँ ॥७ ॥

१७५. इन्द्रावरुण नू नु वां सिषासन्तीषु धीष्वा। अस्मभ्यं शर्म यच्छतम् ॥८ ॥

हे इन्द्रावरुण देवो ! हमारी बुद्धियाँ सम्यक् रूप से आपकी सेवा करने की इच्छा करती हैं, अत: हमें शीघ्र ही निश्चयपूर्वक सुख प्रदान करें ॥८ ॥

१७६. प्र वामश्नोतु सुष्टुतिरिन्द्रावरुण यां हुवे। यामृधाथे सधस्तुतिम् ॥९ ॥

हे इन्द्रावरुण देवो ! जिन उत्तम स्तुतियों के लिए (प्रति) हम, आप दोनों का आवाहन करते हैं एवं जिन स्तुतियों को साथ-साथ प्राप्त करके आप दोनों पुष्ट होते हैं, वे स्तुतियाँ आपको प्राप्त हों ॥९ ॥

[सूक्त - १८]

[**ऋषि-** मेधातिथि काण्व । **देवता-** १ - ३ ब्रह्मणस्पति, ४ इन्द्र, ब्रह्मणस्पति, सोम ५ ब्रह्मणस्पति, दक्षिणा, ६-८ सदसस्पति, ९ सदसस्पति या नराशंस । **छन्द** -गायत्री ।]

१७७. सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते। कक्षीवन्तं य औशिजः ॥१ ॥

हे सम्पूर्ण ज्ञान के अधिपति ब्रह्मणस्पति देव ! सोम का सेवन करने वाले यजमान को आप उशिज् के पुत्र कक्षीवान् की तरह श्रेष्ठ प्रकाश से युक्त करें ॥१ ॥

१७८. यो रेवान् यो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्धनः। स नः सिषक्तु यस्तुरः ॥२ ॥

ऐश्वर्यवान्, रोगों का नाश करने वाले, धन प्रदाता और पुष्टिवर्धक तथा जो शीघ्र फलदायक हैं, वे ब्रह्मणस्पतिदेव , हम पर कृपा करें ॥२ ॥

१७९. मा नः शंसो अररुषो धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य। रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ॥३ ॥

हे ब्रह्मणस्पतिदेव ! यज्ञ न करने वाले तथा अनिष्ट चिन्तन करने वाले दुष्ट शत्रु का हिंसक, दुष्ट प्रभाव हम पर न पड़े । आप हमारी रक्षा करें ॥३ ॥

१८०. स घा वीरो न रिष्यति यमिन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः। सोमो हिनोति मर्त्यम् ॥४ ॥

जिस मनुष्य को इन्द्रदेव, ब्रह्मणस्पतिदेव और सोमदेव प्रेरित करते हैं, वह वीर कभी नष्ट नहीं होता ॥४ ॥

[इन्द्र से संगठन की, ब्रह्मणस्पति से श्रेष्ठ मार्गदर्शन की एवं सोम से पोषण की प्राप्ति होती है । इनसे युक्त मनुष्य क्षीण नहीं होता । ये तीनों देव यज्ञ में एकत्रित होते हैं । यज्ञ से प्रेरित मनुष्य दुःखी नहीं होता वरन् देवत्व प्राप्त करता है ।]

१८१. त्वं तं ब्रह्मणस्पते सोम इन्द्रश्च मर्त्यम्। दक्षिणा पात्वंहसः ॥५ ॥

हे ब्रह्मणस्पते ! आप सोमदेव , इन्द्रदेव और दक्षिणादेवी के साथ मिलकर यज्ञादि अनुष्ठान करने वाले मनुष्य की पापों से रक्षा करें ॥५ ॥

१८२. सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्। सनिं मेधामयासिषम् ॥६ ॥

इन्द्रदेव के प्रिय मित्र, अभीष्ट पदार्थों को देने में समर्थ, लोकों का मर्म समझने में सक्षम सदसस्पतिदेव (सत्प्रवृत्तियों के स्वामी) से हम अद्‌भुत मेधा प्राप्त करना चाहते हैं ॥६ ॥

१८३. यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन। स धीनां योगमिन्वति ॥७ ॥

जिनकी कृपा के बिना ज्ञानी का भी यज्ञ पूर्ण नहीं होता, वे सदसस्पतिदेव हमारी बुद्धि को उत्तम प्रेरणाओं से युक्त करते हैं ॥७ ॥

[सदाशयता जिनमें नहीं, ऐसे विद्वानों द्वारा यज्ञीय प्रयोजनों की पूर्ति नहीं होती।]

१८४. आदृध्नोति हविष्कृतिं प्राञ्चं कृणोत्यध्वरम्। होत्रा देवेषु गच्छति ॥८ ॥

वे सदसस्पतिदेव हविष्यान्न तैयार करने वाले साधकों तथा यज्ञ को प्रवृद्ध करते हैं और वे ही हमारी स्तुतियों को देवों तक पहुँचाते हैं ॥८ ॥

१८५. नराशंसं सुधृष्टममपश्यं सप्रथस्तमम्। दिवो न सद्ममखसम् ॥९ ॥

द्युलोक के सदृश अतिदीप्तिमान्, तेजवान्, यशस्वी और मुनष्यों द्वारा प्रशंसित सदसस्पतिदेव को हमने देखा है ॥९ ॥

[सूक्त - १९]

[ऋषि - मेधातिथि काण्व। देवता-अग्नि और मरुद्‌गण। छन्द-गायत्री।]

१८६. प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे। मरुद्भिरग्न आ गहि ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! श्रेष्ठ यज्ञों की गरिमा के संरक्षण के लिए हम आपका आवाहन करते हैं, आपको मरुतों के साथ आमंत्रित करते हैं, अत: देवताओं के इस यज्ञ में आप पधारें ॥१ ॥

१८७. नहि देवो न मर्त्यो महस्तव क्रतुं परः। मरुद्भिरग्न आ गहि ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! ऐसा न कोई देव है, न ही कोई मनुष्य, जो आपके द्वारा सम्पादित महान् कर्म को कर सके। ऐसे समर्थ आप मरुद्‌गणों के साथ इस यज्ञ में पधारें ॥२ ॥

१८८. ये महो रजसो विदुर्विश्वे देवासो अद्रुहः। मरुद्भिरग्न आ गहि ॥३ ॥

जो मरुद्‌गण पृथ्वी पर श्रेष्ठ जल वृष्टि करने की (विधि जानते हैं या) क्षमता से सम्पन्न हैं। हे अग्निदेव ! आप उन द्रोहरहित मरुद्‌गणों के साथ इस यज्ञ में पधारें ॥३ ॥

१८९. य उग्रा अर्कमानृचुरनाधृष्टास ओजसा। मरुद्भिरग्न आ गहि ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! जो अति बलशाली, अजेय और अत्यन्त प्रचण्ड सूर्य के सदृश प्रकाशक हैं। आप उन मरुद्‌गणों के साथ यहाँ पधारें ॥४ ॥

१९०. ये शुभ्रा घोरवर्पसः सुक्षत्रासो रिशादसः। मरुद्भिरग्न आ गहि ॥५ ॥

जो शुभ्र तेजों से युक्त, तीक्ष्ण, वेधक रूप वाले, श्रेष्ठ बल - सम्पन्न और शत्रु का संहार करने वाले हैं। हे अग्निदेव ! आप उन मरुतों के साथ यहाँ पधारें ॥५ ॥



१९१. ये नाकस्याधि रोचने दिवि देवास आसते। मरुद्भिरग्न आ गहि ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! ये जो मरुद्गण सबके ऊपर अधिष्ठित, प्रकाशक, द्युलोक के निवासी हैं, आप उन मरुद्गणों के साथ पधारें ॥६ ॥

१९२. य ईङ्खयन्ति पर्वतान् तिरः समुद्रमर्णवम्। मरुद्भिरग्न आ गहि ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! जो पर्वत सदृश विशाल मेघों को एक स्थान से सुदूरस्थ दूसरे स्थान पर ले जाते हैं तथा जो शान्त समुद्रों में भी ज्वार पैदा कर देते हैं (हलचल पैदा कर देते हैं), ऐसे उन मरुद्गणों के साथ आप यज्ञ में पधारें ॥७ ॥

१९३. आ ये तन्वन्ति रश्मिभिस्तिरः समुद्रमोजसा। मरुद्भिरग्न आ गहि ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! जो सूर्य की रश्मियों के साथ संव्याप्त होकर समुद्र को अपने ओज से प्रभावित करते हैं, उन मरुतों के साथ आप यहाँ पधारें ॥८ ॥

१९४. अभि त्वा पूर्वपीतये सृजामि सोम्यं मधु। मरुद्भिरग्न आ गहि ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! सर्वप्रथम आपके सेवनार्थ यह मधुर सोमरस हम अर्पित करते हैं, अतः आप मरुतों के साथ यहाँ पधारें ॥९ ॥

[सूक्त - २०]

[ऋषि- मेधातिथि काण्व। देवता-ऋभुगण। छन्द-गायत्री।]

१९५. अयं देवाय जन्मने स्तोमो विप्रेभिरासया। अकारि रत्नधातमः ॥१ ॥

ऋभुदेवों के निमित्त ज्ञानियों ने अपने मुख से इन रमणीय स्तोत्रों की रचना की तथा उनका पाठ किया ॥१ ॥

१९६. य इन्द्राय वचोयुजा ततक्षुर्मनसा हरी। शमीभिर्यज्ञमाशत ॥२ ॥

जिन ऋभुदेवों ने अतिकुशलतापूर्वक इन्द्रदेव के लिए वचन मात्र से नियोजित होकर चलने वाले अश्वों की रचना की, वे शमी आदि (यज्ञ पात्र अथवा पाप शमन करने वाले देवों) के साथ यज्ञ में सुशोभित होते हैं ॥२ ॥

[चमस एक प्रकार के पात्र का नाम है, जिसे भी देव भाव से सम्बोधित किया गया है।]

१९७. तक्षन्नासत्याभ्यां परिज्मानं सुखं रथम्। तक्षन्धेनुं सबर्दुघाम् ॥३ ॥

उन ऋभुदेवों ने अश्विनीकुमारों के लिए अति सुखप्रद, सर्वत्र गमनशील रथ का निर्माण किया और गौओं को उत्तम दूध देने वाली बनाया ॥३ ॥

१९८. युवाना पितरा पुनः सत्यमन्त्रा ऋजूयवः। ऋभवो विष्ट्यक्रत ॥४ ॥

अमोघ मन्त्र सामर्थ्य से युक्त, सर्वत्र व्याप्त रहने वाले ऋभुदेवों ने माता-पिता में स्नेहभाव संचरित कर उन्हें पुनः जवान बनाया ॥४ ॥

[यहाँ जरावस्था दूर करने की मन्त्र - विद्या का संकेत है]

१९९. सं वो मदासो अग्मतेन्द्रेण च मरुत्वता। आदित्येभिश्च राजभिः ॥५ ॥

हे ऋभुदेवो ! यह हर्षप्रद सोमरस इन्द्रदेव, मरुतों और दीप्तिमान् आदित्यों के साथ आपको अर्पित किया जाता है ॥५ ॥

२००. उत त्यं चमसं नवं त्वष्टुर्देवस्य निष्कृतम्। अकर्त चतुरः पुनः ॥६ ॥

त्वष्टादेव के द्वारा एक ही चमस तैयार किया गया था, ऋभुदेवों ने उसे चार प्रकार का बनाकर प्रयुक्त किया ॥६ ॥

२०१. ते नो रत्नानि धत्तन त्रिरा साप्तानि सुन्वते। एकमेकं सुशस्तिभिः ॥७ ॥

वे उत्तम स्तुतियों से प्रशंसित होने वाले ऋभुदेव ! सोमयाग करने वाले प्रत्येक याजक को तीनों कोटि के सप्तरत्नों अर्थात् इक्कीस प्रकार के रत्नों (विशिष्ट यज्ञ कर्मों) को प्रदान करें । (यज्ञ के तीन विभाग हैं- हविर्यज्ञ, पाकयज्ञ एवं सोमयज्ञ । तीनों के सात-सात प्रकार हैं । इस प्रकार यज्ञ के इक्कीस प्रकार कहे गये हैं ।) ॥७ ॥

२०२. अधारयन्त वह्नयोऽभजन्त सुकृत्यया। भागं देवेषु यज्ञियम् ॥८ ॥

तेजस्वी ऋभुदेवों ने अपने उत्तम कर्मों से देवों के स्थान पर अधिष्ठित होकर यज्ञ के भाग को धारण कर उसका सेवन किया ॥८ ॥

[सूक्त - २१]

[ऋषि - मेधातिथि काण्व । देवता-इन्द्राग्नी । छन्द-गायत्री ।]

२०३. इहेन्द्राग्नी उप ह्वये तयोरित्स्तोममुश्मसि। ता सोमं सोमपातमा ॥१ ॥

इस यज्ञ स्थल पर हम इन्द्र एवं अग्निदेवों का आवाहन करते हैं, सोमपान के उन अभिलाषियों की स्तुति करते हुए सोमरस पीने का निवेदन करते हैं ॥१ ॥

२०४. ता यज्ञेषु प्र शंसतेन्द्राग्नी शुम्भता नरः। ता गायत्रेषु गायत ॥२ ॥

हे ऋत्विजो ! आप यज्ञानुष्ठान करते हुए इन्द्र एवं अग्निदेवों की शस्त्रों (स्तोत्रों) से स्तुति करें, विविध अलंकारों से उन्हें विभूषित करें तथा गायत्री छन्दवाले सामगान (गायत्र साम) करते हुए उन्हें प्रसन्न करें ॥२ ॥

२०५. ता मित्रस्य प्रशस्तय इन्द्राग्नी ता हवामहे। सोमपा सोमपीतये ॥३ ॥

सोमपान की इच्छा करने वाले मित्रता एवं प्रशंसा के योग्य उन इन्द्र एवं अग्निदेवों को हम सोमरस पीने के लिए बुलाते हैं ॥३ ॥

२०६. उग्रा सन्ता हवामह उपेदं सवनं सुतम्। इन्द्राग्नी एह गच्छताम् ॥४ ॥

अति उग्र देवगण इन्द्र एवं अग्निदेवों को सोम के अभिषव स्थान (यज्ञस्थल) पर आमन्त्रित करते हैं, वे यहाँ पधारें ॥४ ॥

२०७. ता महान्ता सदस्पती इन्द्राग्नी रक्ष उब्जतम्। अप्रजाः सन्त्वत्रिणः ॥५ ॥

देवों में महान् वे इन्द्र-अग्निदेव सत्पुरुषों के स्वामी (रक्षक) हैं । वे राक्षसों को वशीभूत कर सरल स्वभाव वाला बनाएँ और मनुष्य भक्षक राक्षसों को मित्र - बांधवों से रहित करके निर्बल बनाएँ ॥५ ॥

२०८. तेन सत्येन जागृतमधि प्रचेतुने पदे। इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ॥६ ॥

हे इन्द्राग्ने ! सत्य और चैतन्यरूप यज्ञस्थान पर आप संरक्षक के रूप में जागते रहें और हमें सुख प्रदान करें ॥६ ॥



[सूक्त - २२]

[**ऋषि**-मेधातिथि काण्व । **देवता**-१-४ अश्विनी कुमार, ५-८ सविता, ९-१० अग्नि, ११ देवियाँ, १२-इन्द्राणी, वरुणानी, अग्नायी, १३-१४ द्यावा - पृथिवी, १५ पृथिवी, १६ विष्णु अथवा देवगण, १७-२१ विष्णु । **छन्द** - गायत्री ।]

२०९. प्रातर्युजा वि बोधयाश्विनावेह गच्छताम्। अस्य सोमस्य पीतये ॥१ ॥

(हे अध्वर्युगण !) प्रात:काल चेतनता को प्राप्त होने वाले अश्विनीकुमारों को जगायें । वे हमारे इस यज्ञ में सोमपान करने के निमित्त पधारें ॥१ ॥

२१०. या सुरथा रथीतमोभा देवा दिविस्पृशा। अश्विना ता हवामहे ॥२ ॥

ये दोनों अश्विनीकुमार सुसज्जित रथों से युक्त महान् रथी हैं । ये आकाश में गमन करते हैं । इन दोनों का हम आवाहन करते हैं ॥२ ॥

[यहाँ मंत्रशक्ति से चालित, आकाश मार्ग से चलने वाले यान (रथों) का उल्लेख किया गया है ।]

२११. या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती। तया यज्ञं मिमिक्षतम् ॥३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आपकी जो मधुर सत्यवचन युक्त कशा (चाबुक-वाणी) है, उससे यज्ञ को सिंचित करने की कृपा करें ॥ ३ ॥

[वाणी रूपी चाबुक से स्पष्ट होता है कि अश्विनी देवों के यान मंत्र चालित हैं । मधुर एवं सत्यवचन रूप वचनों से यज्ञ का भी सिंचन किया जाता है । कशा - चाबुक से यज्ञ के सिंचन का भाव अटपटा लगते हुए भी युक्ति संगत है ।]

२१२. नहि वामस्ति दूरके यत्रा रथेन गच्छथः। अश्विना सोमिनो गृहम् ॥४ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप रथ पर आरूढ़ होकर जिस मार्ग से जाते हैं, वहाँ से सोमयाग करने वाले याजक का घर दूर नहीं है ॥४ ॥

[पूर्वोक्त मंत्र में वर्णित यान के तीव्र वेग का वर्णन है ।]

२१३. हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुप ह्वये। स चेत्ता देवता पदम् ॥५ ॥

यजमान को (प्रकाश -ऊर्जा आदि) देने वाले हिरण्यगर्भ (हाथ में सुवर्ण धारण करने वाले या सुनहरी किरणों वाले) सवितादेव का हम अपनी रक्षा के लिये आवाहन करते हैं । वे ही यजमान के द्वारा प्राप्तव्य (गन्तव्य) स्थान को विज्ञापित (प्रकाशित) करने वाले हैं ॥५ ॥

२१४. अपां नपातमवसे सवितारमुप स्तुहि। तस्य व्रतान्युश्मसि ॥६ ॥

हे ऋत्विज् ! आप हमारी रक्षा के लिये सवितादेवता की स्तुति करें । हम उनके लिए सोमयागादि कर्म सम्पन्न करना चाहते हैं । वे सवितादेव जलों को सुखाकर पुन: सहस्रों गुना बरसाने वाले हैं ॥६ ॥

[सौर शक्ति से ही जल के शोधन, वर्षण एवं शोषण की प्रक्रिया चलाने की बात विज्ञान सम्मत है ।]

२१५. विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः। सवितारं नृचक्षसम् ॥७ ॥

समस्त प्राणियों के आश्रयभूत, विविध धनों के प्रदाता, मानवमात्र के प्रकाशक सूर्यदेव का हम आवाहन करते हैं ॥७ ॥

२१६. सखाय आ नि षीदत सविता स्तोम्यो नु नः। दाता राधांसि शुम्भति ॥८ ॥

हे मित्रो ! हम सब बैठकर सवितादेव की स्तुति करें । धन-ऐश्वर्य के दाता सूर्यदेव अत्यन्त शोभायमान हैं ॥८ ॥

२१७. अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुशतीरुप। त्वष्टारं सोमपीतये ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! यहाँ आने की अभिलाषा रखने वाली देवों की पत्नियों को यहाँ ले आएँ और त्वष्टादेव को भी सोमपान के निमित्त बुलाएँ ॥९ ॥

२१८. आ ग्ना अग्न इहावसे होत्रां यविष्ठ भारतीम्। वरूत्रीं धिषणां वह ॥१० ॥

हे अग्निदेव ! देवपत्नियों को हमारी सुरक्षा के निमित्त यहाँ ले आएँ । आप हमारी रक्षा के लिए अग्निपत्नी होत्रा, आदित्यपत्नी भारती, वरणीय वाग्देवी धिषणा आदि देवियों को भी यहाँ ले आएँ ॥१० ॥

२१९. अभि नो देवीरवसा महः शर्मणा नृपत्नीः। अच्छिन्नपत्राः सचन्ताम् ॥११ ॥

अनवरुद्ध मार्ग वाली देव-पत्नियाँ मनुष्यों को ऐश्वर्य देने में समर्थ हैं । वे महान् सुखों एवं रक्षण सामर्थ्यों से युक्त होकर हमारी ओर अभिमुख हों ॥११ ॥

२२०. इहेन्द्राणीमुप ह्वये वरुणानीं स्वस्तये। अग्नायीं सोमपीतये ॥१२ ॥

अपने कल्याण के लिए एवं सोमपान के लिए हम इन्द्राणी, वरुणपत्नी (वरुणानी) और अग्निपत्नी (अग्नायी) का आवाहन करते हैं ॥१२ ॥

२२१. मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम्। पिपृतां नो भरीमभिः ॥१३ ॥

अति विस्तारयुक्त पृथ्वी और द्युलोक हमारे इस यज्ञकर्म को अपने-अपने अंशों द्वारा परिपूर्ण करें । वे भरण-पोषण करने वाली सामग्रियों (सुख - साधनों) से हम सभी को तृप्त करें ॥१३ ॥

२२२. तयोरिद्घृतवत्पयो विप्रा रिहन्ति धीतिभिः। गन्धर्वस्य ध्रुवे पदे ॥१४ ॥

गंधर्वलोक के ध्रुव स्थान में - आकाश और पृथ्वी के मध्य में अवस्थित घृत के समान (सार रूप) जलों (पोषक प्रवाहों) को ज्ञानी जन अपने विवेकयुक्त कर्मों (प्रयासों) द्वारा प्राप्त करते हैं ॥१४ ॥

२२३. स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा नः शर्म सप्रथः ॥१५ ॥

हे पृथिवी देवि ! आप सुख देने वाली, बाधा हरने वाली और उत्तमवास देने वाली हैं । आप हमें विपुल परिमाण में सुख प्रदान करें ॥१५ ॥

२२४. अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे। पृथिव्याः सप्त धामभिः ॥१६ ॥

जहाँ से (यज्ञ स्थल अथवा पृथ्वी से) विष्णुदेव ने (पोषण परक) पराक्रम दिखाया, वहाँ (उस यज्ञीय क्रम में) पृथ्वी के सप्तधामों से देवतागण हमारी रक्षा करें ॥१६ ॥

२२५. इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्। समूळ्हमस्य पांसुरे ॥१७ ॥

यह सब विष्णुदेव का पराक्रम है, तीन प्रकार के (त्रिविध-त्रियामी) उनके चरण हैं । इसका मर्म धूलि भरे प्रदेश में निहित है ॥१७ ॥

[त्रिआयामी सृष्टि के पोषण का जो अद्‌भुत पराक्रम दिखाता है । उसका रहस्य अंतरिक्षधूलि - सूक्ष्मकणों, सबएटामिक पार्टिकल्स के प्रवाह में सन्निहित है । उसी प्रवाह से सभी प्रकार के पोषक पदार्थ बनते - बदलते रहते हैं ।]

२२६. त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। अतो धर्माणि धारयन् ॥१८ ॥

विश्वरक्षक, अविनाशी विष्णुदेव तीनों लोकों में यज्ञादि कर्मों को पोषित करते हुए तीन चरणों से जगत् में व्याप्त हैं अर्थात् तीन शक्ति धाराओं (सृजन, पोषण और परिवर्तन) द्वारा विश्व का संचालन करते हैं ॥१८ ॥



२२७. विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥१९ ॥

हे याजको ! सर्वव्यापक भगवान् विष्णु के सृष्टि संचालन सम्बन्धी कार्यों को (प्रजनन, पोषण और परिवर्तन की प्रक्रिया को) ध्यान से देखो । इसमें अनेकानेक व्रतों (नियमों - अनुशासनों) का दर्शन किया जा सकता है । इन्द्र (आत्मा) के योग्य मित्र उस परम सत्ता के अनुकूल बनकर रहें (ईश्वरीय अनुशासनों का पालन करें) ॥१९ ॥

२२८. तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥२० ॥

जिस प्रकार सामान्य नेत्रों से आकाश में स्थित सूर्यदेव को सहजता से देखा जाता है, उसी प्रकार विद्वज्जन अपने ज्ञान-चक्षुओं से विष्णुदेव के (देवत्व के परमपद को) श्रेष्ठ स्थान को देखते (प्राप्त करते) हैं ॥२० ॥

[ईश्वर दृष्टिगम्य भले ही न हो, अनुभूतिजन्य अवश्य है ।]

२२९. तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥२१ ॥

जागरूक विद्वान् स्तोतागण विष्णुदेव के उस परमपद को प्रकाशित करते हैं । (अर्थात् जन सामान्य के लिए प्रकट करते हैं) ॥२१ ॥

[सूक्त - २३]

[**ऋषि** - मेधातिथि काण्व । **देवता**-१ वायु, २-३ इन्द्रवायू, ४-६ मित्रावरुण, ७-९ इन्द्र- मरुत्वान्, १०-१२ विश्वेदेवा, १३- १५ पूषा, १६-२२ तथा २३ का पूर्वार्द्ध - आपः देवता, २३ का उत्तरार्द्ध एवं २४ अग्नि । **छन्द** - १-१८ गायत्री, १९ पुर उष्णिक्, २१ प्रतिष्ठा, २० तथा २२-२४ अनुष्टुप् ।]

२३०. तीव्राः सोमास आ गह्याशीर्वन्तः सुता इमे । वायो तान्प्रस्थितान्पिब ॥१ ॥

हे वायुदेव ! अभिषुत सोमरस तीखा होने से दुग्ध मिश्रित करके तैयार किया गया है, आप आएँ और उत्तर वेदी के पास लाये गये इस सोमरस का पान करें ॥१ ॥

२३१. उभा देवा दिविस्पृशेन्द्रवायू हवामहे । अस्य सोमस्य पीतये ॥२ ॥

जिनका यश दिव्यलोक तक विस्तृत है, ऐसे इन्द्र और वायु देवों को हम सोमरस पीने के लिए आमंत्रित करते हैं ॥२ ॥

२३२. इन्द्रवायू मनोजुवा विप्रा हवन्त ऊतये । सहस्राक्षा धियस्पती ॥३ ॥

मन के तुल्य वेग वाले, सहस्र चक्षु वाले, बुद्धि के अधीश्वर इन्द्र एवं वायु देवों का ज्ञानीजन अपनी सुरक्षा के लिए आवाहन करते हैं । ॥३ ॥

२३३. मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये । जज्ञाना पूतदक्षसा ॥४ ॥

सोमरस पीने के लिए यज्ञस्थल पर प्रकट होने वाले परमपवित्र एवं बलशाली मित्र और वरुणदेवों का हम आवाहन करते हैं ॥४ ॥

२३४. ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती । ता मित्रावरुणा हुवे ॥५ ॥

सत्यमार्ग पर चलने वालों का उत्साह बढ़ाने वाले, तेजस्वी मित्रावरुणों का हम आवाहन करते हैं ॥५ ॥

२३५. वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः । करतां नः सुराधसः ॥६ ॥

वरुण एवं मित्र देवता अपने समस्त रक्षा साधनों से हम सबकी हर प्रकार से रक्षा करते हैं । वे हमें महान् वैभव सम्पन्न करें ॥६ ॥

२३६. मरुत्वन्तं हवामह इन्द्रमा सोमपीतये। सजूर्गणेन तृम्पतु ॥७॥

मरुद्‌गणों के सहित इन्द्रदेव को सोमरस पान के निमित्त बुलाते हैं। वे मरुद्‌गणों के साथ आकर तृप्त हों ॥७॥

२३७. इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः। विश्वे मम श्रुता हवम् ॥८॥

दानी पूषादेव के समान इन्द्रदेव दान देने में श्रेष्ठ हैं। वे सब मरुद्‌गणों के साथ हमारे आवाहन को सुनें ॥८॥

२३८. हत वृत्रं सुदानव इन्द्रेण सहसा युजा। मा नो दुःशंस ईशत ॥९॥

हे उत्तम दानदाता मरुतो ! आप अपने उत्तम साथी और बलवान् इन्द्रदेव के साथ दुष्टों का हनन करें। दुष्टता हमारा अतिक्रमण न कर सके ॥९॥

२३९. विश्वान्देवान्हवामहे मरुतः सोमपीतये। उग्रा हि पृश्निमातरः ॥१०॥

सभी मरुद्‌गणों को हम सोमपान के निमित्त बुलाते हैं। वे सभी अनेक रंगों वाली पृथ्वी के पुत्र महान् वीर एवं पराक्रमी हैं ॥१०॥

२४०. जयतामिव तन्यतुर्मरुतामेति धृष्णुया। यच्छुभं याथना नरः ॥११॥

वेग से प्रवाहित होने वाले मरुतों का शब्द विजयनाद के सदृश गुंजित होता है, उससे सभी मनुष्यों का मंगल होता है ॥११॥

२४१. हस्काराद्विद्युतस्पर्यतो जाता अवन्तु नः। मरुतो मृळयन्तु नः ॥१२॥

चमकने वाली विद्युत् से उत्पन्न हुए मरुद्‌गण हमारी रक्षा करें और प्रसन्नता प्रदान करें ॥१२॥

[विज्ञान का मत है कि मेघों में बिजली चमकने से नाइट्रोजन आदि में उर्वरता बढ़ाने वाले यौगिक बनते हैं। वे निश्चित रूप से जीवन रक्षक एवं हितकारी होते हैं।]

२४२. आ पूषञ्चित्रबर्हिषमाघृणे धरुणं दिवः। आजा नष्टं यथा पशुम् ॥१३॥

हे दीप्तिमान् पूषादेव आप अद्‌भुत तेजों से युक्त एवं धारण - शक्ति से सम्पन्न हैं। अतः सोम को द्युलोक से वैसे ही लाएँ, जैसे खोये हुए पशु को ढूँढ़कर लाते हैं ॥१३॥

२४३. पूषा राजानमाघृणिरपगूळ्हं गुहा हितम्। अविन्दच्चित्रबर्हिषम् ॥१४॥

दीप्तिमान् पूषादेव ने अंतरिक्ष गुहा में छिपे हुए शुभ्र तेजों से युक्त सोमराजा को प्राप्त किया ॥१४॥

२४४. उतो स मह्यमिन्दुभिः षड्युक्ताँ अनुसेषिधत्। गोभिर्यवं न चर्कृषत् ॥१५॥

वे पूषादेव हमारे लिए, याग के हेतुभूत सोमों के साथ वसंतादि षट्‌ऋतुओं को क्रमशः वैसे ही प्राप्त कराते हैं, जैसे यवों (अनाजों) के लिए कृषक बार-बार खेत जोतता है ॥१५॥

२४५. अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम्। पृञ्चतीर्मधुना पयः ॥१६॥

यज्ञ की इच्छा करने वालों के सहायक, मधुर रसरूप जल - प्रवाह, माताओं के सदृश पुष्टिप्रद हैं। वे दुग्ध को पुष्ट करते हुए यज्ञमार्ग से गमन करते हैं ॥१६॥

[यज्ञ द्वारा पुष्टि प्रदायक रस - प्रवाहों के विस्तार का उल्लेख है।]

२४६. अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह। ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥१७॥

जो ये जल सूर्य में (सूर्य किरणों में) समाहित हैं अथवा जिन जलों के साथ सूर्य का सान्निध्य है, ऐसे वे पवित्र जल हमारे यज्ञ को उपलब्ध हों ॥१७॥



[उक्त दो मंत्रों में अंतरिक्ष की कृषि का वर्णन है । खेत में अन्न दिखता नहीं, किन्तु उससे उत्पन्न होता है । पूषा-पोषण देने वाले देवों (यज्ञ एवं सूर्य आदि) द्वारा सोम (सूक्ष्म पोषक तत्त्व) बोया एवं उपजाया जाता है ।]

२४७. अपो देवीरुप ह्वये यत्र गाव: पिबन्ति न: । सिन्धुभ्य: कर्त्वं हवि: ॥१८ ॥

हमारी गायें जिस जल का सेवन करती हैं, उन जलों का हम स्तुतिगान करते हैं । (अन्तरिक्ष एवं भूमि पर) प्रवहमान उन जलों के निमित्त हम हवि अर्पित करते हैं ॥१८ ॥

१९ से २३ तक के मंत्रों में जल के गुणों और उससे शारीरिक एवं मानसिक रोगों के शमन का उल्लेख है—

२४८. अप्स्व१न्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये । देवा भवत वाजिन: ॥१९ ॥

जल में अमृतोपम गुण है , जल में ओषधीय गुण है । हे देवो ! ऐसे जल की प्रशंसा से आप उत्साह प्राप्त करें ॥१९ ॥

२४९. अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा ।
अग्निं च विश्वशम्भुवमापश्च विश्वभेषजी: ॥२० ॥

मुझ (मंत्र द्रष्टा मुनि) से सोमदेव ने कहा है कि जल समूह में सभी ओषधियाँ समाहित हैं । जल में ही सर्व सुख प्रदायक अग्नितत्त्व समाहित है । सभी ओषधियाँ जलों से ही प्राप्त होती हैं ॥२० ॥

२५०. आप: पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे३मम । ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥२१ ॥

हे जल समूह ! जीवन रक्षक ओषधियों को हमारे शरीर में स्थित करें, जिससे हम नीरोग होकर चिरकाल तक सूर्यदेव का दर्शन करते रहें ॥२१ ॥

२५१. इदमाप: प्र वहत यत्किं च दुरितं मयि ।
यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम् ॥२२ ॥

हे जल देवो ! हम याजकों ने अज्ञानवश जो दुष्कृत्य किये हों, जान- बूझकर किसी से द्रोह किया हो, सत्पुरुषों पर आक्रोश किया हो या असत्य आचरण किया हो तथा इस प्रकार के हमारे जो भी दोष हों, उन सबको बहाकर दूर करें ॥२२ ॥

२५२. आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि ।
पयस्वानग्न आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा ॥२३ ॥

आज हमने जल में प्रविष्ट होकर अवभृथ स्नान किया है, इस प्रकार जल में प्रवेश करके हम रस से आप्लावित हुए हैं । हे पयस्वान् ! हे अग्निदेव ! आप हमें वर्चस्वी बनाएँ, हम आपका स्वागत करते हैं ॥२३ ॥

२५३. सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात्सह ऋषिभि: ॥२४ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमें तेजस्विता प्रदान करें । हमें प्रजा और दीर्घ आयु से युक्त करें । देवगण हमारे अनुष्ठान को जानें और इन्द्रदेव ऋषियों के साथ इसे जानें ॥२४ ॥

[सूक्त - २४]

[**ऋषि**-शुन:शेप आजीगर्ति (कृत्रिम देवरात वैश्वामित्र) । **देवता**-१ क (प्रजापति), २ अग्नि, ३-४ सविता, ५ सविता अथवा भग, ६-१५ वरुण । **छन्द**-१,२,६-१५ त्रिष्टुप्, ३-५ गायत्री ।]

२५४. **कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम ।**
को नो मह्या अदितये पुनर्दात्पितरं च दृशेयं मातरं च ॥१ ॥

हम अमर देवों में से किस देव के सुन्दर नाम का स्मरण करें ? कौन से देव हमें महती अदिति पृथिवी को प्राप्त करायेंगे ? जिससे हम अपने पिता और माता को देख सकेंगे ॥१ ॥

२५५. **अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम ।**
स नो मह्या अदितये पुनर्दात्पितरं च दृशेयं मातरं च ॥२ ॥

हम अमर देवों में प्रथम अग्निदेव के सुन्दर नाम का मनन करें । वह हमें महती अदिति को प्राप्त करायेंगे, जिससे हम अपने माता-पिता को देख सकेंगे ॥२ ॥

२५६. **अभि त्वा देव सवितरीशानं वार्याणाम् । सदावन्भागमीमहे ॥३ ॥**

हे सर्वदा रक्षणशील सवितादेव ! आप वरण करने योग्य धनों के स्वामी हैं, अत: हम आपसे ऐश्वर्यों के उत्तम भाग को माँगते हैं ॥३ ॥

२५७. **यश्चिद्धि त इत्था भग: शशमान: पुरा निद: । अद्वेषो हस्तयोर्दधे ॥४ ॥**

हे सवितादेव ! आप तेजस्विता युक्त, निन्दा रहित, द्वेष रहित, वरण करने योग्य धनों को दोनों हाथों से धारण करने वाले हैं ॥४ ॥

२५८. **भगभक्तस्य ते वयमुदशेम तवावसा । मूर्धानं राय आरभे ॥५ ॥**

हे सवितादेव ! हम आपके ऐश्वर्य की छाया में रहकर संरक्षण को प्राप्त करें । उन्नति करते हुए सफलताओं के सर्वोच्च शिखर तक पहुँचकर भी अपने कर्तव्यों को पूरा करते रहें ॥५ ॥

[उच्चपदों पर पहुँचकर भी मानवोचित सहज कर्तव्यों को न भूलने का संकल्प यहाँ व्यक्त हो रहा है ।]

२५९. **नहि ते क्षत्रं न सहो न मन्युं वयश्चनामी पतयन्त आपु: ।**
नेमा आपो अनिमिषं चरन्तीर्न ये वातस्य प्रमिनन्त्यभ्वम् ॥६ ॥

हे वरुणदेव ! ये उड़ने वाले पक्षी आपके पराक्रम, आपके बल और सुनीति युक्त क्रोध (मन्यु) को नहीं जान पाते । सतत गमनशील जलप्रवाह आपकी गति को नहीं जान सकते और प्रबल वायु के वेग भी आपको नहीं रोक सकते ॥६ ॥

२६०. **अबुध्ने राजा वरुणो वनस्योर्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्ष: ।**
नीचीना: स्थुरुपरि बुध्न एषामस्मे अन्तर्निहिता: केतव: स्यु: ॥७ ॥

पवित्र पराक्रम युक्त राजा वरुण (सबको आच्छादित करने वाले) दिव्य तेज पुञ्ज (सूर्यदेव) को, आधारहित आकाश में धारण करते हैं । इस तेज पुञ्ज (सूर्यदेव) का मुख नीचे की ओर और मूल ऊपर की ओर है । इसके मध्य में दिव्य किरणें विस्तीर्ण होती चलती हैं ॥ ७ ॥



२६१. उरुं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ ।

अपदे पादा प्रतिधातवे ऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित् ॥८ ॥

राजा वरुणदेव ने सूर्यगमन के लिए विस्तृत मार्ग निर्धारित किया है, जहाँ पैर भी स्थापित न हो, वे ऐसे अन्तरिक्ष स्थान पर भी चलने के लिए मार्ग विनिर्मित कर देते हैं और वे हृदय की पीड़ा का निवारण करने वाले हैं ॥८ ॥

२६२. शतं ते राजन्भिषजः सहस्रमुर्वी गभीरा सुमतिष्टे अस्तु ।

बाधस्व दूरे निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥९ ॥

हे वरुणदेव ! आपके पास असंख्य उपाय हैं । आपकी उत्तम बुद्धि अत्यन्त व्यापक और गम्भीर है । आप हमारी पाप वृत्तियों को हमसे दूर करें । किये हुए पापों से हमें विमुक्त करें ॥९ ॥

२६३. अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुह चिद्दिवेयुः ।

अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति ॥१० ॥

ये नक्षत्रगण आकाश में रात्रि के समय दीखते हैं, परन्तु ये दिन में कहाँ विलीन होते हैं ? विशेष प्रकाशित चन्द्रमा रात्रि में आता है । वरुणराजा के ये नियम कभी नष्ट नहीं होते ॥१० ॥

२६४. तत्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः ।

अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः ॥११ ॥

हे वरुणदेव ! मन्त्ररूप वाणी से आपकी स्तुति करते हुए आपसे याचना करते हैं । यजमान हविष्यान्न अर्पित करते हुए कहते हैं - हे बहु प्रशंसित देव ! हमारी उपेक्षा न करें, हमारी स्तुतियों को जानें । हमारी आयु को क्षीण न करें ॥११ ॥

२६५. तदिन्नक्तं तद्दिवा मह्यमाहुस्तदयं केतो हृद आ वि चष्टे ।

शुनः शेपो यमह्वद्गृभीतः सो अस्मान् राजा वरुणो मुमोक्तु ॥१२ ॥

रात-दिन में (अनवरत) ज्ञानियों के कहे अनुसार यही ज्ञान (चिन्तन) हमारे हृदय में होता रहा है कि बन्धन में पड़े शुनःशेप ने जिस वरुणदेव को बुलाकर मुक्ति को प्राप्त किया, वही वरुणदेव हमें भी बन्धनों से मुक्त करें ॥१२ ॥

२६६. शुनः शेपो ह्यह्वद्गृभीतस्त्रिष्वादित्यं द्रुपदेषु बद्धः ।

अवैनं राजा वरुणः ससृज्याद्विद्वाँ अदब्धो वि मुमोक्तु पाशान् ॥१३ ॥

तीन स्तम्भों में बँधे हुए शुनःशेप ने अदिति पुत्र वरुणेदव का आवाहन करके उनसे निवेदन किया कि वे ज्ञानी और अटल वरुणदेव हमारे पाशों को काटकर हमें मुक्त करें ॥१३ ॥

२६७. अव ते हेळो वरुण नमोभिरव यज्ञेभिरीमहे हविर्भिः ।

क्षयन्नस्मभ्यमसुर प्रचेता राजन्नेनांसि शिश्रथः कृतानि ॥१४ ॥

हे वरुणदेव ! आपके क्रोध को शान्त करने के लिए हम स्तुति रूप वचनों को सुनाते हैं । हविर्द्रव्यों के द्वारा यज्ञ में सन्तुष्ट होकर हे प्रखर बुद्धि वाले राजन् ! आप हमारे यहाँ वास करते हुए हमें पापों के बन्धन से मुक्त करें ॥१४ ॥

२६८. उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥१५ ॥

हे वरुणदेव ! आप तीनों तापों रूपी बन्धनों से हमें मुक्त करें । आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक पाश हमसे दूर हों तथा मध्य के एवं नीचे के बन्धन अलग करें । हे सूर्य पुत्र ! पापों से रहित होकर हम आपके कर्मफल सिद्धान्त में अनुशासित हों, दयनीय स्थिति में हम न रहें ॥१५ ॥

[सूक्त - २५]

[**ऋषि** -शुन:शेप आजीगर्ति (कृत्रिम देवरात वैश्वामित्र) । **देवता** -वरुण । **छन्द**- गायत्री ।]

२६९. यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम् । मिनीमसि द्यविद्यवि ॥१ ॥

हे वरुणदेव ! जैसे अन्य मनुष्य आपके व्रत-अनुष्ठान में प्रमाद करते हैं, वैसे ही हमसे भी आपके नियमों आदि में कभी-कभी प्रमाद हो जाता है । (कृपया इसे क्षमा करें ।) ॥१ ॥

२७०. मा नो वधाय हत्नवे जिहीळानस्य रीरध: । मा हृणानस्य मन्यवे ॥२ ॥

हे वरुणदेव ! आप अपने निरादर करने वाले का वध करने के लिए धारण किये गये शस्त्र के सम्मुख हमें प्रस्तुत न करें । अपनी क्रुद्ध अवस्था में भी हम पर कृपा करके क्रोध न करें ॥२ ॥

२७१. वि मृळीकाय ते मनो रथीरश्वं न सन्दितम् । गीर्भिर्वरुण सीमहि ॥३ ॥

हे वरुणदेव ! जिस प्रकार रथी वीर अपने थके घोड़ों की परिचर्या करते हैं, उसी प्रकार आपके मन को हर्षित करने के लिए हम स्तुतियों का गान करते हैं ॥३ ॥

२७२. परा हि मे विमन्यव: पतन्ति वस्यइष्टये । वयो न वसतीरुप ॥४ ॥

(हे वरुणदेव !) जिस प्रकार पक्षी अपने घोसलों की ओर दौड़ते हुए गमन करते हैं, उसी प्रकार हमारी चंचल बुद्धियाँ धन प्राप्ति के लिए दूर- दूर दौड़ती हैं ॥४ ॥

२७३. कदा क्षत्रश्रियं नरमा वरुणं करामहे । मृळीकायोरुचक्षसम् ॥५ ॥

बल-ऐश्वर्य के अधिपति सर्वद्रष्टा वरुणदेव को कल्याण के निमित्त हम यहाँ (यज्ञस्थल में) कब बुलायेंगे ? (अर्थात् यह अवसर कब मिलेगा ?) ॥५ ॥

२७४. तदित्समानमाशाते वेनन्ता न प्र युच्छत: । धृतव्रताय दाशुषे ॥६ ॥

व्रत धारण करने वाले (हविष्यान्न) दाता यजमान के मंगल के निमित्त ये मित्र और वरुण देव हविष्यान्न की इच्छा करते हैं, वे कभी उसका त्याग नहीं करते । वे हमें बन्धन से मुक्त करें ॥६ ॥

२७५. वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम् । वेद नाव: समुद्रिय: ॥७ ॥

हे वरुणदेव ! अन्तरिक्ष में उड़ने वाले पक्षियों के मार्ग को और समुद्र में संचार करने वाली नौकाओं के मार्ग को भी आप जानते हैं ॥७ ॥

२७६. वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावत: । वेदा य उपजायते ॥८ ॥

नियमधारक वरुणदेव प्रजा के उपयोगी बारह महीनों को जानते हैं और तेरहवें माह (अधिक मास) को भी जानते हैं ॥८ ॥



२७७. वेद वातस्य वर्तनिमुरोर्ऋष्वस्य बृहतः। वेदा ये अध्यासते ॥९ ॥

वे वरुणदेव अत्यन्त विस्तृत, दर्शनीय और अधिक गुणवान् वायु के मार्ग को जानते हैं। वे ऊपर द्युलोक में रहने वाले देवों को भी जानते हैं ॥९ ॥

२७८. नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्या३स्वा। साम्राज्याय सुक्रतुः ॥१० ॥

प्रकृति के नियमों का विधिवत् पालन कराने वाले, श्रेष्ठ कर्मों में सदैव निरत रहने वाले वरुणदेव प्रजाओं में साम्राज्य स्थापित करने के लिए बैठते हैं ॥१० ॥

२७९. अतो विश्वान्यद्भुता चिकित्वाँ अभि पश्यति। कृतानि या च कर्त्वा ॥११ ॥

सब अद्भुत कर्मों की क्रिया-विधि जानने वाले वरुणदेव, जो कर्म सम्पादित हो चुके हैं और जो किये जाने हैं, उन सबको भली-भाँति देखते हैं ॥११ ॥

२८०. स नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुपथा करत्। प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥१२ ॥

वे उत्तम कर्मशील अदिति पुत्र वरुणदेव हमें सदा श्रेष्ठ मार्ग की ओर प्रेरित करें और हमारी आयु को बढ़ाएँ ॥१२ ॥

२८१. बिभ्रद्द्रापिं हिरण्ययं वरुणो वस्त निर्णिजम्। परि स्पशो नि षेदिरे ॥१३ ॥

सुवर्णमय कवच धारण करके वरुणदेव अपने हृष्ट-पुष्ट शरीर को सुसज्जित करते हैं। शुभ्र प्रकाश किरणें उनके चारों ओर विस्तीर्ण होती हैं ॥१३ ॥

२८२. न यं दिप्सन्ति दिप्सवो न द्रुह्वाणो जनानाम्। न देवमभिमातयः ॥१४ ॥

हिंसा करने की इच्छा वाले शत्रु-जन,(भयाक्रान्त होकर) जिनकी हिंसा नहीं कर पाते, लोगों के प्रति द्वेष रखने वाले, जिनसे द्वेष नहीं कर पाते- ऐसे (वरुण) देव को पापीजन स्पर्श तक नहीं कर पाते ॥१४ ॥

२८३. उत यो मानुषेष्वा यशश्चक्रे असाम्या। अस्माकमुदरेष्वा ॥१५ ॥

जिन वरुणदेव ने मनुष्यों के लिए विपुल अन्न - भंडार उत्पन्न किया है; उन्होंने ही हमारे उदर में पाचन सामर्थ्य भी स्थापित की है ॥१५ ॥

२८४. परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु। इच्छन्तीरुरुचक्षसम् ॥१६ ॥

उस सर्वद्रष्टा वरुणदेव की कामना करने वाली हमारी बुद्धियाँ, वैसे ही उन तक पहुँचती हैं, जैसे गौएँ गोष्ठ (बाड़े) की ओर जाती हैं ॥१६ ॥

२८५. सं नु वोचावहै पुनर्यतो मे मध्वाभृतम्। होतेव क्षदसे प्रियम् ॥१७ ॥

होता (अग्निदेव) के समान हमारे द्वारा लाकर समर्पित की गई हवियों का आप अग्निदेव के समान भक्षण करें, फिर हम दोनों वार्ता करेंगे ॥१७ ॥

२८६. दर्शं नु विश्वदर्शतं दर्शं रथमधि क्षमि। एता जुषत मे गिरः ॥१८ ॥

दर्शन योग्य वरुणदेव को उनके रथ के साथ हमने भूमि पर देखा है। उन्होंने हमारी स्तुतियाँ स्वीकारी हैं ॥१८ ॥

२८७. इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय। त्वामवस्युरा चके ॥१९ ॥

हे वरुणदेव ! आप हमारी प्रार्थना पर ध्यान दें, हमें सुखी बनायें । अपनी रक्षा के लिए हम आपकी स्तुति करते हैं ॥१९ ॥

२८८. त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि। स यामनि प्रति श्रुधि ॥२० ॥

हे मेधावी वरुणदेव ! आप द्युलोक,भूलोक और सारे विश्वपर आधिपत्य रखते हैं, आप हमारे आवाहन को स्वीकार कर 'हम रक्षा करेंगे'- ऐसा प्रत्युत्तर प्रदान करें ॥२० ॥

२८९. उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत। अवाधमानि जीवसे ॥२१ ॥

हे वरुणदेव ! हमारे उत्तम (ऊपर के) पाश को खोल दें, हमारे मध्यम पाश को काट दें और हमारे नीचे के पाश को हटाकर हमें उत्तम जीवन प्रदान करें ॥२१ ॥

[सूक्त-२६]

[**ऋषि** -शुन:शेप आजीगर्ति (कृत्रिम देवरात वैश्वामित्र)। **देवता**-अग्नि। **छन्द**-गायत्री।]

२९०. वसिष्वा हि मियेध्य वस्त्राण्यूर्जां पते। सेमं नो अध्वरं यज ॥१ ॥

हे यज्ञ योग्य, (हवियोग्य) अन्नों के पालक अग्निदेव ! आप अपने तेजरूप वस्त्रों को पहनकर हमारे यज्ञ को सम्पादित करें ॥१ ॥

२९१. नि नो होता वरेण्यः सदा यविष्ठ मन्मभिः। अग्ने दिवित्मता वचः ॥२ ॥

सदा तरुण रहने वाले हे अग्निदेव ! आप सर्वोत्तम होता (यज्ञ सम्पन्न कर्त्ता) के रूप में यज्ञकुण्ड में स्थापित होकर यजमान के स्तुति वचनों का श्रवण करें ॥२ ॥

२९२. आ हि ष्मा सूनवे पितापिर्यजत्यापये। सखा सख्ये वरेण्यः ॥३ ॥

हे वरण करने योग्य अग्निदेव ! जैसे पिता अपने पुत्र के, भाई अपने भाई के और मित्र अपने मित्र के सहायक होते हैं, वैसे ही आप हमारी सहायता करें ॥३ ॥

२९३. आ नो बर्ही रिशादसो वरुणो मित्रो अर्यमा। सीदन्तु मनुषो यथा ॥४ ॥

जिस प्रकार प्रजापति के यज्ञ में "मनु" आकर शोभा बढ़ाते हैं, उसी प्रकार शत्रुनाशक वरुणदेव, मित्र- देव एवं अर्यमादेव हमारे यज्ञ में आकर विराजमान हों ॥४ ॥

२९४. पूर्व्य होतरस्य नो मन्दस्व सख्यस्य च। इमा उ षु श्रुधी गिरः ॥५ ॥

पुरातन होता हे अग्निदेव ! आप हमारे इस यज्ञ से और हमारे मित्रभाव से प्रसन्न हों और हमारी स्तुतियों को भली प्रकार सुनें ॥५ ॥

२९५. यच्चिद्धि शश्वता तना देवन्देवं यजामहे। त्वे इद्धूयते हविः ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! इन्द्र, वरुण आदि अन्य देवताओं के लिए प्रतिदिन विस्तृत आहुतियाँ अर्पित करने पर भी सभी हविष्यान्न आपको ही प्राप्त होते हैं ॥६ ॥

२९६. प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः। प्रियाः स्वग्नयो वयम् ॥७ ॥

यज्ञ सम्पन्न करने वाले प्रजापालक, आनन्दवर्धक, वरण करने योग्य हे अग्निदेद ! आप हमें प्रिय हों तथा श्रेष्ठ विधि से यज्ञाग्नि की रक्षा करते हुए हम सदैव आपके प्रिय रहें ॥७ ॥

२९७. स्वग्नयो हि वार्यं देवासो दधिरे च नः। स्वग्नयो मनामहे ॥८ ॥

उत्तम अग्नि से युक्त होकर देदीप्यमान ऋत्विजों ने हमारे लिए ऐश्वर्य को धारण किया है, वैसे ही हम उत्तम अग्नि से युक्त होकर इनका (ऋत्विज् का) स्मरण करते हैं ॥८ ॥



२९८. अथा न उभयेषाममृत मर्त्यानाम्। मिथः सन्तु प्रशस्तयः ॥९ ॥

अमरत्व को धारण करने वाले हे अग्निदेव ! आपके और हम मरणशील मनुष्यों के बीच स्नेहयुक्त, प्रशंसनीय वाणियों का आदान - प्रदान होता रहे ॥९ ॥

२९९. विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः। चनो धाः सहसो यहो ॥१० ॥

बल के पुत्र (अरणि मन्थन रूप शक्ति से उत्पन्न) हे अग्निदेव ! आप (आहवनीयादि) अग्नियों के साथ यज्ञ में पधारें और स्तुतियों को सुनते हुए हमें अन्न (पोषण) प्रदान करें ॥१० ॥

[सूक्त - २७]

[**ऋषि** - शुनः शेप आजीगर्ति (कृत्रिम देवरात वैश्वामित्र) । **देवता** - १-१२ अग्नि, १३ देवतागण । छन्द-१-१२ गायत्री, १३ त्रिष्टुप्।]

३००. अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः। सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥१ ॥

तमोनाशक, यज्ञों के सम्राट् स्वरूप हे अग्निदेव ! हम स्तुतियों के द्वारा आपकी वन्दना करते हैं। जिस प्रकार अश्व अपनी पूँछ के बालों से मक्खी - मच्छरों को दूर भगाता है, उसी प्रकार आप भी अपनी ज्वालाओं से हमारे विरोधियों को दूर भगायें ॥१ ॥

३०१. स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः। मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात् ॥२ ॥

हम इन अग्निदेव की उत्तम विधि से उपासना करते हैं। वे बल से उत्पन्न, शीघ्र गतिशील अग्निदेव हमें अभीष्ट सुखों को प्रदान करें ॥२ ॥

३०२. स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः। पाहि सदमिद्विश्वायुः ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! सब मनुष्यों के हितचिंतक आप दूर से और निकट से, अनिष्ट चिन्तकों से सदैव हमारी रक्षा करें ॥३ ॥

३०३. इममू षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम्। अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे गायत्री परक प्राण-पोषक स्तोत्रों एवं नवीन अन्न (हव्य) को देवों तक (देव वृत्तियों के पोषण हेतु) पहुँचायें ॥४ ॥

३०४. आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु। शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमें श्रेष्ठ (आध्यात्मिक), मध्यम (आधिदैविक) एवं कनिष्ठ (आधिभौतिक) अर्थात् सभी प्रकार की धन-सम्पदा प्रदान करें ॥५ ॥

३०५. विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ। सद्यो दाशुषे क्षरसि ॥६ ॥

सात ज्वालाओं से दीप्तिमान् हे अग्निदेव ! आप धनदायक हैं। नदी के पास आने वाली जल तरंगों के ᅳᅳश आप हविष्यान्न-दाता को तत्क्षण (श्रेष्ठ) कर्मफल प्रदान करते हैं ॥६ ॥

३०६. यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः। स यन्ता शश्वतीरिषः ॥७ ॥

हे अग्नि देव ! आप जीवन - संग्राम में जिस पुरुष को प्रेरित करते हैं, उनकी रक्षा आप स्वयं करते हैं। साथ ही उनके लिए पो अन्नों की पूर्ति भी करते हैं ॥ ७ ॥

३०७. नकिरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित्। वाजो अस्ति श्रवाय्यः ॥८ ॥

हे शत्रु विजेता अग्निदेव ! आपके उपासक को कोई पराजित नहीं कर सकता, क्योंकि उसकी (आपके द्वारा प्रदत्त) तेजस्विता प्रसिद्ध है ॥८ ॥

३०८. स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता। विप्रेभिरस्तु सनिता ॥९ ॥

सब मनुष्यों के कल्याणकारक वे अग्निदेव जीवन - संग्राम में अश्व रूपी इन्द्रियों द्वारा विजयी बनाने वाले हों। मेधावी पुरुषों द्वारा प्रशंसित वे अग्निदेव हमें अभीष्ट फल प्रदान करें ॥९ ॥

३०९. जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय। स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥१० ॥

स्तुतियों से देवों को प्रबोधित करने वाले हे अग्निदेव ! ये यजमान, पुनीत यज्ञ स्थल पर दुष्टता-विनाश हेतु आपका आवाहन करते हैं ॥१० ॥

३१०. स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः। धिये वाजाय हिन्वतु ॥११ ॥

अपरिमित धूम्र-ध्वजा से युक्त, आनन्दप्रद, महान् वे अग्निदेव हमें ज्ञान और वैभव की ओर प्रेरित करें ॥११ ॥

३११. स रेवाँ इव विश्पतिर्दैव्यः केतुः शृणोतु नः। उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः ॥१२ ॥

विश्वपालक, अत्यन्त तेजस्वी और ध्वजा सदृश गुणों से युक्त दूरदर्शी वे अग्निदेव वैभवशाली राजा के समान हमारी स्तवन रूपी वाणियों को ग्रहण करें ॥१२ ॥

३१२. नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः।
यजाम देवान्यदि शक्नवाम मा ज्यायसः शंसमा वृक्षि देवाः ॥१३ ॥

बड़ों, छोटों, युवकों और वृद्धों को हम नमस्कार करते हैं। सामर्थ्य के अनुसार हम देवों का यजन करें। हे देवो ! अपने से बड़ों के सम्मान में हमारे द्वारा कोई त्रुटि न हो ॥१३ ॥

[सूक्त - २८]

[**ऋषि** - शुनः शेप आजीगर्ति (कृत्रिम देवरात वैश्वामित्र)। **देवता**- १-४ इन्द्र, ५-६ उलूखल, ७- ८ उलूखल- मुसल, ९ प्रजापति, हरिश्चन्द्र; अधिषवणचर्म अथवा सोम। **छन्द**-१-६ अनुष्टुप्, ७-९ गायत्री।]

३१३. यत्र ग्रावा पृथुबुध्न ऊर्ध्वो भवति सोतवे। उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! जहाँ (सोमवल्ली) कूटने के लिए बड़ा मूसल उठाया जाता है (अर्थात् सोमरस तैयार किया जाता है), वहाँ (यज्ञशाला में) उलूखल से निष्पन्न सोमरस का पान करें ॥१ ॥

३१४. यत्र द्वाविव जघनाधिषवण्या कृता। उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! जहाँ दो जंघाओं के समान विस्तृत, सोम कूटने के दो फलक रखे हैं, वहाँ (यज्ञशाला में) उलूखल से निष्पन्न सोम का पान करें ॥२ ॥

३१५. यत्र नार्यपच्यवमुपच्यवं च शिक्षते। उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! जहाँ गृहिणी सोमरस तैयार करने के लिए कूटने (मूसल चलाने) का अभ्यास करती है, वहाँ (यज्ञशाला में) उलूखल से निष्पन्न सोमरस का पान करें ॥३ ॥



३१६. यत्र मन्थां विबध्नते रश्मीन्यमितवा इव। उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! जहाँ सारथी द्वारा घोड़े को लगाम लगाने के समान (मथानी को) रस्सी से बाँधकर मन्थन करते हैं, वहाँ (यज्ञशाला में) उलूखल से निष्पन्न हुए सोमरस का पान करें ॥४ ॥

३१७. यच्चिद्धि त्वं गृहेगृह उलूखलक युज्यसे। इह द्युमत्तमं वद जयतामिव दुन्दुभिः ॥५ ॥

हे उलूखल ! यद्यपि घर-घर में तुमसे काम लिया जाता है, फिर भी हमारे घर में विजय-दुन्दुभि के समान उच्च शब्द करो ॥५ ॥

३१८. उत स्म ते वनस्पते वातो वि वात्यग्रमित्। अथो इन्द्राय पातवे सुनु सोममुलूखल॥६ ॥

हे उलूखल- मूसल रूप वनस्पते ! तुम्हारे सामने वायु विशेष गति से बहती है। हे उलूखल ! अब इन्द्रदेव के सेवनार्थ सोमरस का निष्पादन करो ॥६ ॥

३१९. आयजी वाजसातमा ता ह्यु१च्चा विजर्भृतः। हरी इवान्धांसि बप्सता ॥७ ॥

यज्ञ के साधन रूप पूजन-योग्य वे उलूखल और मूसल दोनों, अन्न (चने) खाते हुए इन्द्रदेव के दोनों अश्वों के समान उच्च स्वर से शब्द करते हैं ॥७ ॥

३२०. ता नो अद्य वनस्पती ऋष्वावृष्वेभिः सोतृभिः। इन्द्राय मधुमत्सुतम् ॥८ ॥

दर्शनीय उलूखल एवं मूसल रूप हे वनस्पते ! आप दोनों सोमयाग करने वालों के साथ इन्द्रदेव के लिए मधुर सोमरस का निष्पादन करें ॥८ ॥

३२१. उच्छिष्टं चम्वोर्भर सोमं पवित्र आ सृज। नि धेहि गोरधि त्वचि ॥९ ॥

उलूखल और मूसल द्वारा निष्पादित सोम को पात्र से निकालकर पवित्र कुशा के आसन पर रखें और अवशिष्ट को छानने के लिए पवित्र चर्म पर रखें ॥९ ॥

[सूक्त - २९]

[ऋषि-शुनः शेप आजीगर्ति (कृत्रिम देवरात वैश्वामित्र)। देवता-इन्द्र। छन्द-पंक्ति।]

३२२. यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥१ ॥

हे सत्य स्वरूप सोमपायी इन्द्रदेव ! यद्यपि हम प्रशंसा पाने के पात्र तो नहीं हैं, तथापि हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! हमें सहस्रों श्रेष्ठ गौएँ और घोड़े प्रदान करके सम्पन्न बनायें ॥१ ॥

३२३. शिप्रिन्वाजानां पते शचीवस्तव दंसना।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप शक्तिशाली, शिरस्त्राण धारण करने वाले, बलों के अधीश्वर और ऐश्वर्यशाली हैं। आपका सदैव हम पर अनुग्रह बना रहे ॥२ ॥

३२४. नि ष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! दोनों दुर्गतियाँ (विपत्ति और दरिद्रता) परस्पर एक दूसरे को देखती हुई सो जायें। वे कभी न



जागें, वे अचेत पड़ी रहें । हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! हमें सहस्रों श्रेष्ठ गौएँ और अश्व प्रदान करके सम्पन्न बनायें ॥३ ॥

[अश्व (पराक्रम) से विपत्ति तथा (पौष्टिक आहार उत्पादक) गौ से दरिद्रता प्रभावहीन होती है ।]

३२५. ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमारे शत्रु सोते रहें और हमारे वीर मित्र जागते रहें । हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! हमें सहस्रों श्रेष्ठ गौएँ और अश्व प्रदान करके सम्पन्न बनायें ॥४ ॥

३२६. समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! कपटपूर्ण वाणी बोलने वाले शत्रु रूप गधे को मार डालें । हे ऐश्वर्यशालिन् इन्द्रदेव ! हमें सहस्रों पुष्ट गौएँ और अश्व देकर सम्पन्न बनायें ॥५ ॥

३२७. पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! विध्वंसकारी बवंडर वनों से दूर जाकर गिरें । हे ऐश्वर्यशालिन् इन्द्रदेव ! हमें सहस्रों पुष्ट गौएँ और अश्व देकर सम्पन्न बनायें ॥६ ॥

३२८. सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम् ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम पर आक्रोश करने वाले सब शत्रुओं को विनष्ट करें । हिंसकों का नाश करें । हे ऐश्वर्यशालिन् इन्द्रदेव ! हमें सहस्रों पुष्ट गौएँ और अश्व देकर सम्पन्न बनायें ॥७ ॥

[सूक्त - ३०]

[**ऋषि** - शुनः शेप आजीगर्ति (कृत्रिम देवरात वैश्वामित्र) । **देवता**-१-१६ इन्द्र, १७-१९ अश्विनीकुमार, २०-२२ उषा । **छन्द** - १-१०, १२-१५ तथा १७-२२ गायत्री, ११ पादनिचृत् गायत्री, १६ त्रिष्टुप् ।]

३२९. आ व इन्द्रं क्रिविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् । मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः ॥१ ॥

जिस प्रकार अन्न की इच्छा वाले, खेत में पानी सींचते हैं, उसी तरह हम बल की कामना वाले साधक उन महान् इन्द्रदेव को सोमरस से सींचते हैं ॥१ ॥

३३०. शतं वा यः शुचीनां सहस्रं वा समाशिराम् । एदु निम्नं न रीयते ॥२ ॥

नीचे की ओर जाने वाले जल के समान सैकड़ों कलश सोमरस, सहस्रों कलश दूध में मिश्रित होकर इन्द्रदेव को प्राप्त होता है ॥२ ॥

३३१. सं यन्मदाय शुष्मिण एना ह्यस्योदरे । समुद्रो न व्यचो दधे ॥३ ॥

समुद्र में एकत्र हुए जल के सदृश सोमरस इन्द्रदेव के पेट में एकत्र होकर उन्हें हर्ष प्रदान करता है ॥३ ॥

३३२. अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् । वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! कपोत जिस स्नेह के साथ गर्भवती कपोती के पास रहता है, उसी प्रकार (स्नेहपूर्वक) यह सोमरस आपके लिये प्रस्तुत है । आप हमारे निवेदन को स्वीकार करें ॥४ ॥



३३३. स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते। विभूतिरस्तु सूनृता ॥५ ॥

जो (स्तोतागण), हे इन्द्र ! हे धनाधिपति ! हे स्तुतियों के आश्रयभूत ! हे वीर ! (इत्यादि) स्तुतियाँ करते हैं, उनके लिये आपकी विभूतियाँ प्रिय एवं सत्य सिद्ध हों ॥५ ॥

३३४. ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतये स्मिन्वाजे शतक्रतो। समन्येषु ब्रवावहै ॥६ ॥

सैकड़ों यज्ञादि श्रेष्ठ कार्यों को सम्पन्न करने वाले हे इन्द्रदेव ! संघर्षों (जीवन - संग्राम) में हमारे संरक्षण के लिये आप प्रयत्नशील रहें। हम आप से अन्य (श्रेष्ठ) कार्यों के विषय में भी परस्पर विचार-विनिमय करते रहें ॥६ ॥

३३५. योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे। सखाय इन्द्रमूतये ॥७ ॥

सत्कर्मों के शुभारम्भ में एवं हर प्रकार के संग्राम में बलशाली इन्द्रदेव का हम अपने संरक्षण के लिये मित्रवत् आवाहन करते हैं ॥७ ॥

३३६. आ घा गमद्यदि श्रवत्सहस्त्रिणीभिरूतिभिः। वाजेभिरुप नो हवम् ॥८ ॥

हमारी प्रार्थना से प्रसन्न होकर वे इन्द्रदेव निश्चित ही सहस्त्रों रक्षा - साधनों तथा अन्न, ऐश्वर्य आदि सहित हमारे पास आयेंगे ॥८ ॥

३३७. अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम्। यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥९ ॥

हम सहायता के लिये स्वर्गधाम के वासी, बहुतों के पास पहुँचकर उन्हें नेतृत्व प्रदान करने वाले इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं। हमारे पिता ने भी ऐसा ही किया था ॥९ ॥

३३८. तं त्वा वयं विश्ववारा शास्महे पुरुहूत। सखे वसो जरितृभ्यः ॥१० ॥

हे विश्ववरणीय इन्द्रदेव ! बहुतों द्वारा आवाहित किये जाने वाले आप स्तोताओं के आश्रय दाता और मित्र हैं। हम (ऋत्विग्गण) आप से उन (स्तोताओं) को अनुगृहीत करने की प्रार्थना करते हैं ॥१० ॥

३३९. अस्माकं शिप्रिणीनां सोमपाः सोमपाव्नाम्। सखे वज्रिन्त्सखीनाम् ॥११ ॥

हे सोम पीने वाले वज्रधारी इन्द्रदेव ! सोम पीने के योग्य हमारे प्रियजनों और मित्रजनों में आप ही श्रेष्ठ सामर्थ्य वाले हैं ॥११ ॥

३४०. तथा तदस्तु सोमपाः सखे वज्रिन्तथा कृणु। यथा त उश्मसीष्टये ॥१२ ॥

हे सोम पीने वाले वज्रधारी इन्द्रदेव ! हमारी इच्छा पूर्ण करें। हम इष्ट-प्राप्ति के निमित्त आपकी कामना करें और वह पूर्ण हो ॥१२ ॥

३४१. रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः। क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥१३ ॥

जिन (इन्द्रदेव) की कृपा से हम धन-धान्य से परिपूर्ण होकर प्रफुल्लित होते हैं। उन इन्द्रदेव के प्रभाव से हमारी गौएँ (भी) प्रचुर मात्रा में दुग्ध-घृतादि देने की सामर्थ्य वाली हों ॥१३ ॥

३४२. आ घ त्वावान्त्मनाप्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः। ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥१४ ॥

हे धैर्यशाली इन्द्रदेव ! आप कल्याणकारी बुद्धि से स्तुति करने वाले स्तोताओं को अभीष्ट पदार्थ अवश्य प्रदान करें। आप स्तोताओं को धन देने के लिए रथ के चक्रों को मिलाने वाली धुरी के समान ही सहायक हैं ॥१४ ॥

३४३. आ यद्दुवः शतक्रतवा कामं जरितृणाम्। ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥१५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप स्तोताओं द्वारा इच्छित धन उन्हें प्रदान करें। जिस प्रकार रथ की गति से उसके अक्ष (धुरे के आधार) को भी गति मिलती है, उसी प्रकार स्तुतिकर्त्ताओं को धन की प्राप्ति हो ॥१५ ॥



३४४. शश्वदिन्द्रः पोप्रुथद्भिर्जिगाय नानदद्भिः शाश्वसद्भिर्धनानि ।
स नो हिरण्यरथं दंसनावान्त्स नः सनिता सनये स नोऽदात् ॥१६ ॥

सदैव स्फूर्तिवान्, सदैव (शब्दवान्) हिनहिनाते हुए तीव्र गतिशील अश्वों के द्वारा जो इन्द्रदेव शत्रुओं के धन को जीतते हैं; उन पराक्रमशील इन्द्रदेव ने अपने स्नेह से हमें सोने का रथ (अकूत-वैभव) दिया है ॥१६ ॥

३४५. आश्विनावश्वावत्येषा यातं शवीरया । गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ॥१७ ॥

हे शक्तिशाली अश्विनीकुमारो ! आप बलशाली अश्वों के साथ अन्नों, गौओं और स्वर्णादि धनों को लेकर यहाँ पधारें ॥१७ ॥

३४६. समानयोजनो हि वां रथो दस्रावमर्त्यः । समुद्रे अश्विनेयते ॥१८ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों के लिए जुतने वाला एक ही रथ आकाश मार्ग से जाता है । उसे कोई नष्ट नहीं कर सकता ॥१८ ॥

३४७. न्य१घ्न्यस्य मूर्धनि चक्रं रथस्य येमथुः । परि द्यामन्यदीयते ॥१९ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप के रथ (पोषण प्रक्रिया) का एक चक्र पृथ्वी के मूर्धा भाग में (पर्यावरण चक्र के रूप में) स्थित है और दूसरा चक्र द्युलोक में सर्वत्र गतिशील है ॥१९ ॥

३४८. कस्त उषः कधप्रिये भुजे मर्तो अमर्त्ये । कं नक्षसे विभावरि ॥२० ॥

हे स्तुति-प्रिय, अमर, तेजोमयी उषे ! कौन मनुष्य आपका अनुदान प्राप्त करता है ? किसे आप प्राप्त होती हैं ? (अर्थात् प्राय: सभी मनुष्य आलस्यादि दोषों के कारण आप का लाभ पूर्णतया नहीं प्राप्त कर पाते) ॥२० ॥

३४९. वयं हि ते अमन्मह्याऽन्तादा पराकात् । अश्वे न चित्रे अरुषि ॥२१ ॥

हे अश्व (किरणों) युक्त चित्र-विचित्र प्रकाश वाली उषे ! हम दूर अथवा पास से आपकी महिमा समझने में समर्थ नहीं हैं ॥२१ ॥

३५०. त्वं त्येभिरा गहि वाजेभिर्दुहितर्दिवः । अस्मे रयिं नि धारय ॥२२ ॥

हे द्युलोक की पुत्री उषे !आप उन (दिव्य) बलों के साथ यहाँ आयें और हमें उत्तम ऐश्वर्य धारण करायें ॥२२ ॥

[सूक्त - ३१]

[**ऋषि**-हिरण्यस्तूप आङ्गिरस । **देवता**-अग्नि । **छन्द**-जगती ८,१६,१८ त्रिष्टुप् ।]

३५१. त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषिर्देवो देवानामभवः शिवः सखा ।
तव व्रते कवयो विद्मनापसोऽजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप सर्वप्रथम अंगिरा ऋषि के रूप में प्रकट हुए, तदनन्तर सर्वद्रष्टा, दिव्यतायुक्त, कल्याणकारी और देवों के सर्वश्रेष्ठ मित्र के रूप में प्रतिष्ठित हुए । आप के व्रतानुशासन से मरुद्गण क्रान्तदर्शी कर्मों के ज्ञाता और श्रेष्ठ तेज आयुधों से युक्त हुए हैं ॥१ ॥

३५२. त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरस्तमः कविर्देवानां परि भूषसि व्रतम् ।
विभुर्विश्वस्मै भुवनाय मेधिरो द्विमाता शयुः कतिधा चिदायवे ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप अंगिराओं में आद्य और शिरोमणि हैं । आप देवताओं के नियमों को सुशोभित करते हैं । आप संसार में व्याप्त तथा दो माताओं वाले दो अरणियों से समुद्भूत होने से बुद्धिमान् हैं । आप मनुष्यों के हितार्थ सर्वत्र विद्यमान रहते हैं ॥२ ॥



३५३. त्वमग्ने प्रथमो मातरिश्वन आविर्भव सुक्रतूया विवस्वते ।
अरेजेतां रोदसी होतृवूर्येऽसघ्नोर्भारमयजो महो वसो ॥३ ॥

हे अग्निदेव! आप ज्योतिर्मय सूर्यदेव के पूर्व और वायु के भी पूर्व आविर्भूत हुए । आपके बल से आकाश और पृथ्वी काँप गये । होता रूप में वरण किये जाने पर आपने यज्ञ के कार्य का सम्पादन किया । देवों का यजनकार्य पूर्ण करने के लिए आप यज्ञ वेदी पर स्थापित हुए ॥३ ॥

३५४. त्वमग्ने मनवे द्यामवाशयः पुरूरवसे सुकृते सुकृत्तरः ।
श्वात्रेण यत्पित्रोर्मुच्यसे पर्या त्वा पूर्वमनयन्नापरं पुनः ॥४ ॥

हे अग्निदेव! आप अत्यन्त श्रेष्ठ कर्म वाले हैं । आपने मनु और सुकर्मा-पुरूरवा को स्वर्ग के आशय से अवगत कराया । जब आप मातृ-पितृ रूप दो काष्ठों के मंथन से उत्पन्न हुए, तो सूर्यदेव की तरह पूर्व से पश्चिम तक व्याप्त हो गये ॥४ ॥

३५५. त्वमग्ने वृषभः पुष्टिवर्धन उद्यतस्रुचे भवसि श्रवाय्यः ।
य आहुतिं परि वेदा वषट्कृतिमेकायुरग्रे विश आविवाससि ॥५ ॥

हे अग्निदेव! आप बड़े बलिष्ठ और पुष्टिवर्धक हैं । हविदाता, स्रुवा हाथ में लिये स्तुति को उद्यत हैं, जो वषट्कार युक्त आहुति देता है, उस याजक को आप अग्रणी पुरुष के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं ॥५ ॥

३५६. त्वमग्ने वृजिनवर्तनिं नरं सक्मन्पिपर्षि विदथे विचर्षणे ।
यः शूरसाता परितक्म्ये धने दभ्रेभिश्चित्समृता हंसि भूयसः ॥६ ॥

हे विशिष्ट द्रष्टा अग्निदेव ! आप पापकर्मियों का भी उद्धार करते हैं । बहुसंख्यक शत्रुओं का सब ओर से आक्रमण होने पर भी थोड़े से वीर पुरुषों को लेकर सब शत्रुओं को मार गिराते हैं ॥६ ॥

३५७. त्वं तमग्ने अमृतत्व उत्तमे मर्तं दधासि श्रवसे दिवेदिवे ।
यस्तातृषाण उभयाय जन्मने मयः कृणोषि प्रय आ च सूरये ॥७ ॥

हे अग्निदेव! आप अपने अनुचर मनुष्यों को दिन-प्रतिदिन अमरपद का अधिकारी बनाते हैं, जिसे पाने की उत्कट अभिलाषा देवगण और मनुष्य दोनों ही करते रहते हैं । वीर पुरुषों को अन्न और धन द्वारा सुखी बनाते हैं ॥ ७ ॥

३५८. त्वं नो अग्ने सनये धनानां यशसं कारुं कृणुहि स्तवानः ।
ऋध्याम कर्मापसा नवेन देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥८ ॥

हे अग्निदेव! प्रशंसित होने वाले आप हमें धन प्राप्त करने की सामर्थ्य दें । हमें यशस्वी पुत्र प्रदान करें । नये उत्साह के साथ हम यज्ञादि कर्म करें । द्यावा, पृथिवी और देवगण हमारी सब प्रकार से रक्षा करें ॥८ ॥

३५९. त्वं नो अग्ने पित्रोरुपस्थ आ देवो देवेष्वनवद्य जागृविः ।
तनूकृद्बोधि प्रमतिश्च कारवे त्वं कल्याण वसु विश्वमोपिषे ॥९ ॥

हे निर्दोष अग्निदेव! सब देवों में चैतन्य रूप आप हमारे मातृ-पितृ रूप (उत्पन्न करने वाले) हैं । आप ने हमें बोध प्राप्त करने की सामर्थ्य दी, कर्म को प्रेरित करने वाली बुद्धि विकसित की । हे कल्याणरूप अग्निदेव ! हमें आप सम्पूर्ण ऐश्वर्य भी प्रदान करें ॥९ ॥

**३६०. त्वमग्ने प्रमतिस्त्वं पितासि नस्त्वं वयस्कृत्तव जामयो वयम् ।
संत्वा रायः शतिनः सं सहस्रिणः सुवीरं यन्ति व्रतपामदाभ्य ॥१० ॥**

हे अग्निदेव ! आप विशिष्ट बुद्धि -सम्पन्न, हमारे पिता रूप, आयु प्रदाता और बन्धु रूप हैं । आप उत्तमवीर, अटलगुण-सम्पन्न, नियम-पालक और असंख्यों धनों से सम्पन्न हैं ॥१० ॥

**३६१. त्वामग्ने प्रथममायुमायवे देवा अकृण्वन्नहुषस्य विश्पतिम् ।
इळामकृण्वन्मनुषस्य शासनीं पितुर्यत्पुत्रो ममकस्य जायते ॥११ ॥**

हे अग्निदेव ! देवताओं ने सर्वप्रथम आपको मनुष्यों के हित के लिये राजा रूप में स्थापित किया । तत्पश्चात् जब हमारे (हिरण्यस्तूप ऋषि) पिता अंगिरा ऋषि ने आपको पुत्र रूप में आविर्भूत किया, तब देवताओं ने मनु की पुत्री इळा को शासन-अनुशासन (धर्मोपदेश) कर्त्री बनाया ॥११ ॥

**३६२. त्वं नो अग्ने तव देव पायुभिर्मघोनो रक्ष तन्वश्च वन्द्य ।
त्राता तोकस्य तनये गवामस्यनिमेषं रक्षमाणस्तव व्रते ॥१२ ॥**

हे अग्निदेव ! आप वन्दना के योग्य हैं । अपने रक्षण साधनों से धनयुक्त हमारी रक्षा करें । हमारी शारीरिक क्षमता को अपनी सामर्थ्य से पोषित करें । शीघ्रतापूर्वक संरक्षित करने वाले आप हमारे पुत्र-पौत्रादि और गवादि पशुओं के संरक्षक हों ॥१२ ॥

**३६३. त्वमग्ने यज्यवे पायुरन्तरोऽनिषङ्गाय चतुरक्ष इध्यसे ।
यो रातहव्योऽवृकाय धायसे कीरेश्चिन्मन्त्रं मनसा वनोषि तम् ॥१३ ॥**

हे अग्निदेव ! आप याजकों के पोषक हैं, जो सज्जन हविदाता आपको श्रेष्ठ, पोषक हविष्यान्न देते हैं, आप उनकी सभी प्रकार से रक्षा करते हैं । आप साधकों (उपासकों) की स्तुति हृदय से स्वीकार करते हैं ॥१३ ॥

**३६४. त्वमग्न उरुशंसाय वाघते स्पार्हं यद्रेक्णः परमं वनोषि तत् ।
आध्रस्य चित्प्रमतिरुच्यसे पिता प्र पाकं शास्सि प्र दिशो विदुष्टरः ॥१४ ॥**

हे अग्निदेव ! आप स्तुति करने वाले ऋत्विजों को धन प्रदान करते हैं । आप दुर्बलों को पिता रूप में पोषण देने वाले और अज्ञानी जनों को विशिष्ट ज्ञान प्रदान करने वाले मेधावी हैं ॥१४ ॥

**३६५. त्वमग्ने प्रयतदक्षिणं नरं वर्मेव स्यूतं परि पासि विश्वतः ।
स्वादुक्षद्मा यो वसतौ स्योनकृज्जीवयाजं यजते सोपमा दिवः ॥१५ ॥**

हे अग्निदेव ! आप पुरुषार्थी यजमानों की कवच के रूप में सुरक्षा करते हैं । जो अपने घर में मधुर हविष्यान्न देकर सुखप्रद यज्ञ करता है, वह घर स्वर्ग की उपमा के योग्य होता है ॥१५ ॥

[यज्ञीय आचरण से घर में स्वर्गतुल्य वातावरण बनता है ।]

**३६६. इमामग्ने शरणिं मीमृषो न इममध्वानं यमगाम दूरात् ।
आपिः पिता प्रमतिः सोम्यानां भृमिरस्यृषिकृन्मर्त्यानाम् ॥१६ ॥**

हे अग्निदेव ! आप यज्ञ कर्म करते समय हुई हमारी भूलों को क्षमा करें, जो लोग यज्ञ मार्ग से भटक गये हैं, उन्हें भी क्षमा करें । आप सोमयाग करने वाले याजकों के बन्धु और पिता हैं । सद्बुद्धि प्रदान करने वाले और ऋषि-कर्म के कुशल प्रणेता हैं ॥१६ ॥

५



३६७. मनुष्वदग्ने अङ्गिरस्वदङ्गिरो ययातिवत्सदने पूर्ववच्छुचे।
अच्छ याह्या वहा दैव्यं जनमा सादय बर्हिषि यक्षि च प्रियम् ॥१७॥

हे पवित्र अंगिरा अग्निदेव ! (अंगों में संव्याप्त अग्नि) आप मनु, अंगिरा (ऋषि), ययाति जैसे पुरुषों के साथ देवों को ले जाकर यज्ञ स्थल पर सुशोभित हों। उन्हें कुश के आसन पर प्रतिष्ठित करते हुए सम्मानित करें ॥१७॥

३६८. एतेनाग्ने ब्रह्मणा वावृधस्व शक्ती वा यत्ते चकृमा विदा वा।
उत प्र णेष्यभि वस्यो अस्मान्त्सं नः सृज सुमत्या वाजवत्या ॥१८॥

हे अग्निदेव ! इन मंत्र रूप स्तुतियों से आप वृद्धि को प्राप्त करें। अपनी शक्ति या ज्ञान से हमने जो यजन किया है, उससे हमें ऐश्वर्य प्रदान करें। बल बढ़ाने वाले अन्नों के साथ शुभ मति से हमें सम्पन्न करें ॥१८॥

[सूक्त - ३२]

[**ऋषि** - हिरण्यस्तूप आङ्गिरस। **देवता**-इन्द्र। **छन्द**- त्रिष्टुप्।]

३६९. इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत्पर्वतानाम् ॥१॥

मेघों को विदीर्ण कर पानी बरसाने वाले, पर्वतीय नदियों के तटों को निर्मित करने वाले, वज्रधारी, पराक्रमी इन्द्रदेव के कार्य वर्णनीय हैं। उन्होंने जो प्रमुख वीरतापूर्ण कार्य किये, वे ये ही हैं ॥१॥

३७०. अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः ॥२॥

इन्द्रदेव के लिये त्वष्टादेव ने शब्द चालित वज्र का निर्माण किया, उसी से इन्द्रदेव ने मेघों को विदीर्ण कर जल बरसाया। रँभाती हुई गौओं के समान वे जलप्रवाह वेग से समुद्र की ओर चले गये ॥२॥

३७१. वृषायमाणोऽवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्य।
आ सायकं मघवादत्त वज्रमहन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ॥३॥

अतिबलशाली इन्द्रदेव ने सोम को ग्रहण किया। यज्ञ में तीन विशिष्ट पात्रों में अभिषव किये हुए सोम का पान किया। ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ने बाण और वज्र को धारण कर मेघों में प्रमुख मेघ को विदीर्ण किया ॥३॥

३७२. यदिन्द्राहन्प्रथमजामहीनामान्मायिनाममिनाः प्रोत मायाः।
आत्सूर्यं जनयन्द्यामुषासं तादीत्ना शत्रुं न किला विवित्से ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! आपने मेघों में प्रथम उत्पन्न मेघ को बेध दिया। मेघरूप में छाए धुन्ध (मायावियों) को दूर किया, फिर आकाश में उषा और सूर्य को प्रकट किया। अब कोई भी अवरोधक शत्रु शेष न रहा ॥४॥

३७३. अहन्वृत्रं वृत्रतरं व्यंसमिन्द्रो वज्रेण महता वधेन।
स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णाऽहिः शयत उपपृक्पृथिव्याः ॥५॥

इन्द्रदेव ने घातक दिव्य वज्र से वृत्रासुर का वध किया। वृक्ष की शाखाओं को कुल्हाड़े से काटने के समान उसकी भुजाओं को काटा और तने की तरह उसे काटकर भूमि पर गिरा दिया ॥५॥

३७४. अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे महावीरं तुविबाधमृजीषम्।
नातारीदस्य समृतिं वधानां सं रुजानाः पिपिष इन्द्रशत्रुः ॥६ ॥

अपने को अप्रतिम योद्धा मानने वाले मिथ्या अभिमानी वृत्र ने महाबली, शत्रुबेधक, शत्रुनाशक इन्द्रदेव को ललकारा और इन्द्रदेव के आघातों को सहन न कर, गिरते हुए, नदियों के किनारों को तोड़ दिया ॥६ ॥

३७५. अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रमास्य वज्रमधि सानौ जघान।
वृष्णो वध्रिः प्रतिमानं बुभूषन्पुरुत्रा वृत्रो अशयद्व्यस्तः ॥७ ॥

हाथ और पाँव के कट जाने पर भी वृत्र ने इन्द्रदेव से युद्ध करने का प्रयास किया। इन्द्रदेव ने उसके पर्वत सदृश कन्धों पर वज्र का प्रहार किया। इतने पर भी वर्षा करने में समर्थ इन्द्रदेव के सम्मुख वह डटा रहा। अन्ततः इन्द्रदेव के आघातों से ध्वस्त होकर वह भूमि पर गिर पड़ा ॥७ ॥

३७६. नदं न भिन्नममुया शयानं मनो रुहाणा अति यन्त्यापः।
याश्चिद् वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत्तासामहिः पत्सुतः शीर्बभूव ॥८ ॥

जैसे नदी की बाढ़ तटों को लाँघ जाती है, वैसे ही मन को प्रसन्न करने वाले जल (जल अवरोधक) वृत्र को लाँघ जाते हैं। जिन जलों को 'वृत्र' ने अपने बल से आबद्ध किया था, उन्हीं के नीचे 'वृत्र' मृत्यु-शैय्या पर पड़ा सो रहा है ॥८ ॥

३७७. नीचावया अभवद् वृत्रपुत्रेन्द्रो अस्या अव वधर्जभार।
उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीद्दानुः शये सहवत्सा न धेनुः ॥९ ॥

वृत्र की माता झुककर वृत्र का संरक्षण करने लगीं, इन्द्रदेव के प्रहार से बचाव के लिये वह वृत्र पर सो गयीं, फिर भी इन्द्रदेव ने नीचे से उस पर प्रहार किया। उस समय माता ऊपर और पुत्र नीचे था, जैसे गाय अपने बछड़े के साथ सोती है ॥९ ॥

३७८. अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम्।
वृत्रस्य निण्यं वि चरन्त्यापो दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः ॥१० ॥

एक स्थान पर न रुकने वाले अविश्रान्त (मेघरूप) जल-प्रवाहों के मध्य वृत्र का अनाम शरीर छिपा रहता है। वह दीर्घ निद्रा में पड़ा रहता है, उसके ऊपर जल प्रवाह बना रहता है ॥१० ॥

[जल युक्त बादलों के नीचे निष्क्रिय बादलों को वृत्र का अनाम शरीर कहा गया प्रतीत होता है।]

३७९. दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन्निरुद्धा आपः पणिनेव गावः।
अपां बिलमपिहितं यदासीद् वृत्रं जघन्वाँ अप तद्ववार ॥११ ॥

'पणि' नामक असुर ने जिस प्रकार गौओं अथवा किरणों को अवरुद्ध कर रखा था, उसी प्रकार जल-प्रवाहों को अगतिशील वृत्र ने रोक रखा था। वृत्र का वध करके वे प्रवाह खोल दिये गये ॥११ ॥

३८०. अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र सृके यत्त्वा प्रत्यहन्देव एकः ।
अजयो गा अजयः शूर सोममवासृजः सर्तवे सप्त सिन्धून् ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव ! जब कुशल योद्धा वृत्र ने वज्र पर प्रहार किया, तब घोड़े की पूँछ हिलाने की तरह, बहुत आसानी से आपने अविचलित भाव से उसे दूर कर दिया। हे महाबली इन्द्रदेव ! सोम और गौओं को जीतकर आपने (वृत्र के अवरोध को नष्ट करके) गंगादि सातों सरिताओं को प्रवाहित किया ॥१२ ॥



३८१. नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिषेध न यां मिहमकिरद्धादुनिं च।
इन्द्रश्च यद्युयुधाते अहिश्चोतापरीभ्यो मघवा वि जिग्ये ॥१३ ॥

युद्ध में वृत्रद्वारा प्रेरित भीषण विद्युत्, भयंकर मेघ गर्जन, जल और हिम वर्षा भी इन्द्रदेव को नहीं रोक सके। वृत्र के प्रचण्ड घातक प्रयोग भी निरर्थक हुए। उस युद्ध में असुर के हर प्रहार को इन्द्रदेव ने निरस्त करके उसे जीत लिया ॥१३ ॥

३८२. अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र हृदि यत्ते जघ्नुषो भीरगच्छत्।
नव च यन्नवतिं च स्रवन्तीः श्येनो न भीतो अतरो रजांसि ॥१४ ॥

हे इन्द्रदेव ! वृत्र का वध करते समय यदि आपके हृदय में भय उत्पन्न होता, तो किस दूसरे वीर को असुर वध के लिये देखते ?(अर्थात् कोई दूसरा न मिलता) । (ऐसा करके) आपने निन्यानवे (लगभग सम्पूर्ण) जल - प्रवाहों को बाज पक्षी की तरह सहज ही पार कर लिया ॥१४ ॥

३८३. इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः।
सेदु राजा क्षयति चर्षणीनामरान्न नेमिः परि ता बभूव ॥१५ ॥

हाथों में वज्रधारण करने वाले इन्द्रदेव मनुष्य, पशु आदि सभी स्थावर-जंगम प्राणियों के राजा हैं। शान्त एवं क्रूर प्रकृति के सभी प्राणी उनके चारों ओर उसी प्रकार रहते हैं, जैसे चक्र की नेमि के चारों ओर उसके 'अरे' होते हैं ॥१५ ॥

[सूक्त- ३३]

[ऋषि - हिरण्यस्तूप आङ्गिरस । देवता - इन्द्र । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

३८४. एतायामोप गव्यन्त इन्द्रमस्माकं सु प्रमतिं वावृधाति।
अनामृणः कुविदादस्य रायो गवां केतं परमावर्जते नः ॥१ ॥

गौओं को प्राप्त करने की कामना से युक्त मनुष्य इन्द्रदेव के पास जायें। ये अपराजेय इन्द्रदेव हमारे लिए गोरूप धनों को बढ़ाने की उत्तम बुद्धि देंगे। वे गौओं की प्राप्ति का उत्तम उपाय करेंगे ॥१ ॥

३८५. उपेदहं धनदामप्रतीतं जुष्टां न श्येनो वसतिं पतामि।
इन्द्रं नमस्यन्नुपमेभिरर्कैर्यः स्तोतृभ्यो हव्यो अस्ति यामन् ॥२ ॥

श्येन पक्षी के वेगपूर्वक घोंसले में जाने के समान हम उन धन दाता इन्द्रदेव के समीप पहुँचकर, स्तोत्रों से उनका पूजन करते हैं। युद्ध में सहायता के लिए स्तोताओं द्वारा बुलाये जाने पर अपराजेय इन्द्रदेव अविलम्ब पहुँचते हैं ॥२ ॥

३८६. नि सर्वसेन इषुधीँरसक्त समर्यो गा अजति यस्य वष्टि।
चोष्कूयमाण इन्द्र भूरि वामं मा पणिर्भूरस्मदधि प्रवृद्ध ॥३ ॥

सब सेनाओं के सेनापति इन्द्रदेव तरकसों को धारण कर गौओं एवं धन को जीतते हैं। हे स्वामी इन्द्रदेव ! हमारी धन-प्राप्ति की इच्छा पूरी करने में आप वैश्य की तरह विनिमय जैसा व्यवहार न करें ॥३ ॥

३८७. **वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेनँ एकश्चरन्नुपशाकेभिरिन्द्र ।
धनोरधि विषुणक्ते व्यायन्नयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः ॥४ ॥**

हे इन्द्रदेव ! आपने अकेले ही अपने प्रचण्ड वज्र से धनवान् दस्यु 'वृत्र' का वध किया । जब उसके अनुचरों ने आप के ऊपर आक्रमण किया, तब यज्ञ विरोधी उन दानवों को आपने (दृढ़तापूर्वक) नष्ट कर दिया ॥४ ॥

३८८. **परा चिच्छीर्षा ववृजुस्त इन्द्रायज्वानो यज्वभिः स्पर्धमानाः ।
प्र यद्दिवो हरिवः स्थातरुग्र निरव्रताँ अधमो रोदस्योः ॥५ ॥**

हे इन्द्रदेव ! याजकों से स्पर्धा करने वाले अयाज्ञिक मुँह छिपाकर भाग गये । हे अश्व-अधिष्ठित इन्द्रदेव ! आप युद्ध में अटल और प्रचण्ड सामर्थ्य वाले हैं । आपने आकाश, अन्तरिक्ष और पृथ्वी से धर्म-व्रतहीनों को हटा दिया है ॥५ ॥

३८९. **अयुयुत्सन्ननवद्यस्य सेनामयातयन्त क्षितयो नवग्वाः ।
वृषायुधो न वध्रयो निरष्टाः प्रवद्भिरिन्द्राच्चितयन्त आयन् ॥६ ॥**

उन शत्रुओं ने इन्द्रदेव की निर्दोष सेना पर पूरी शक्ति के साथ प्रहार किया, फिर भी हार गये । उनकी वही स्थिति हो गयी, जो शक्तिशाली वीर से युद्ध करने पर नपुंसक की होती है । अपनी निर्बलता स्वीकार करते हुए वे सब इन्द्रदेव से दूर चले गये ॥६ ॥

३९०. **त्वमेतान्रुदतो जक्षतश्चायोधयो रजस इन्द्र पारे ।
अवादहो दिव आ दस्युमुच्चा प्र सुन्वतः स्तुवतः शंसमावः ॥७ ॥**

हे इन्द्रदेव ! आपने रोने या हँसने वाले इन शत्रुओं को युद्ध करके मार दिया, दस्यु वृत्र को ऊँचा उठाकर आकाश से नीचे गिराकर जला दिया । आपने सोमयज्ञ करने वालों और प्रशंसक स्तोताओं की रक्षा की ॥ ७ ॥

३९१. **चक्राणासः परीणहं पृथिव्या हिरण्येन मणिना शुम्भमानाः ।
न हिन्वानासस्तितिरुस्त इन्द्रं परि स्पशो अदधात्सूर्येण ॥८ ॥**

उन शत्रुओं ने पृथ्वी के ऊपर अपना आधिपत्य स्थापित किया और स्वर्ण-रत्नादि से सम्पन्न हो गये, परन्तु वे इन्द्रदेव के साथ युद्ध में न ठहर सके । सूर्यदेव के द्वारा उन्हें दूर कर दिया गया ॥८ ॥

३९२. **परि यदिन्द्र रोदसी उभे अबुभोजीर्महिना विश्वतः सीम् ।
अमन्यमानाँ अभि मन्यमानैर्निर्ब्रह्मभिरधमो दस्युमिन्द्र ॥९ ॥**

हे इन्द्रदेव ! आपने अपनी सामर्थ्य से द्युलोक और भूलोक का चारों ओर से उपयोग किया । हे इन्द्रदेव ! आपने अपने अनुचरों द्वारा विरोधियों पर विजय प्राप्त की । आपने मन्त्र-शक्ति से (ज्ञानपूर्वक किये गये प्रयासों से) शत्रु पर विजय प्राप्त की ॥९ ॥

३९३. **न ये दिवः पृथिव्या अन्तमापुर्न मायाभिर्धनदां पर्यभूवन् ।
युजं वज्रं वृषभश्चक्र इन्द्रो निर्ज्योतिषा तमसो गा अदुक्षत् ॥१० ॥**

मेघ रूप वृत्र के द्वारा रोक लिये जाने के कारण जो जल द्युलोक से पृथ्वी पर नहीं बरस सके एवं जलों के अभाव से भूमि शस्यश्यामला न हो सकी, तब इन्द्रदेव ने अपने जाज्वल्यमान वज्र से अन्धकार रूपी मेघ को भेदकर गौ के समान जल का दोहन किया ॥१० ॥



३९४. अनु स्वधामक्षरन्नापो अस्यावर्धत मध्य आ नाव्यानाम्।
सध्रीचीनेन मनसा तमिन्द्र ओजिष्ठेन हन्मनाहन्नभि द्यून् ॥११ ॥

जल इन ब्रीहि यवादि रूप अन्न वृद्धि के लिए (मेघों से) बरसने लगे । उस समय नौकाओं के मार्ग पर (जलों में) वृत्र बढ़ता रहा । इन्द्रदेव ने अपने शक्ति-साधनों द्वारा एकाग्र मन से अल्प समयावधि में ही उस वृत्र को मार गिराया ॥११ ॥

३९५. न्याविध्यदिलीबिशस्य दृळहा वि शृङ्गिणमभिनच्छुष्णमिन्द्रः।
यावत्तरो मघवन्यावदोजो वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम् ॥१२ ॥

इन्द्रदेव ने गुफा में सोये हुए वृत्र के किलों को ध्वस्त करके उस सींगवाले शोषक वृत्र को क्षत-विक्षत कर दिया । हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! आपने सम्पूर्ण वेग और बल से शत्रु सेना का विनाश किया ॥१२ ॥

३९६. अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून्वितिग्मेन वृषभेणा पुरोऽभेत्।
सं वज्रेणासृजद्वृत्रमिन्द्रः प्र स्वां मतिमतिरच्छाशदानः ॥१३ ॥

इन्द्रदेव का तीक्ष्ण और शक्तिशाली वज्र शत्रुओं को लक्ष्य बनाकर उनके किलों को ध्वस्त करता है । शत्रुओं को वज्र से मारकर इन्द्रदेव स्वयं अतीव उत्साहित हुए ॥१३ ॥

३९७. आवः कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्प्रावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम्।
शफच्युतो रेणुर्नक्षत द्यामुच्छ्वैत्रेयो नृषाह्याय तस्थौ ॥१४ ॥

हे इन्द्रदेव ! 'कुत्स' ऋषि के प्रति स्नेह होने से आपने उनकी रक्षा की और अपने शत्रुओं के साथ युद्ध करने वाले श्रेष्ठ गुणवान् 'दशद्यु' ऋषि की भी आपने रक्षा की । उस समय अश्वों के खुरों से धूल आकाश तक फैल गई, तब शत्रुभय से जल में छिपने वाले 'श्वैत्रेय' नामक पुरुष की रक्षाकर आपने उसे जल से बाहर निकाला ॥१४ ॥

३९८. आवः शमं वृषभं तुग्र्यासु क्षेत्रजेषे मघवञ्छ्वित्र्यं गाम्।
ज्योक् चिदत्र तस्थिवांसो अक्रञ्छत्रूयतामधरा वेदनाकः ॥१५ ॥

हे धनवान् इन्द्रदेव ! क्षेत्र प्राप्ति की इच्छा से सशक्त जल - प्रवाहों में घिरने वाले 'श्वित्र्य' (व्यक्तिविशेष) की आपने रक्षा की । वहाँ जलों में ठहरकर अधिक समय तक आप शत्रुओं से युद्ध करते रहे । उन शत्रुओं को जलों के नीचे गिराकर आपने मार्मिक पीड़ा पहुँचायी ॥१५ ॥

[सूक्त - ३४]

[ऋषि - हिरण्यस्तूप आङ्गिरस । देवता-अश्विनीकुमार । छन्द-जगती, ९,१२ त्रिष्टुप् ।]

३९९. त्रिश्चिन्नो अद्या भवतं नवेदसा विभुर्वां याम उत रातिरश्विना।
युवोर्हि यन्त्रं हिम्येव वाससोऽभ्यायंसेन्या भवतं मनीषिभिः ॥१ ॥

हे ज्ञानी अश्विनीकुमारो ! आज आप दोनों यहाँ तीन बार (प्रातः, मध्याह्न,सायं) आयें । आप के रथ और दान बड़े महान् हैं । सर्दी की रात एवं आतपयुक्त दिन के समान आप दोनों का परस्पर नित्य सम्बन्ध है । विद्वानों के माध्यम से आप हमें प्राप्त हों ॥१ ॥

४००. **त्रयः पवयो मधुवाहने रथे सोमस्य वेनामनु विश्व इद्विदुः ।**
त्रयः स्कम्भासः स्कभितास आरभे त्रिर्नक्तं याथस्त्रिर्वश्विना दिवा ॥२ ॥

मधुर सोम को वहन करने वाले रथ में वज्र के समान सुदृढ़ तीन पहिये लगे हैं । सभी लोग आपकी सोम के प्रति तीव्र उत्कंठा को जानते हैं । आपके रथ में अवलम्बन के लिये तीन खम्भे लगे हैं । हे अश्विनीकुमारो ! आप उस रथ से तीन बार रात्रि में और तीन बार दिन में गमन करते हैं ॥२ ॥

४०१. **समाने अहन्त्रिरवद्यगोहना त्रिरद्य यज्ञं मधुना मिमिक्षतम् ।**
त्रिर्वाजवतीरिषो अश्विना युवं दोषा अस्मभ्यमुषसश्च पिन्वतम् ॥३ ॥

हे दोषों को ढँकने वाले अश्विनीकुमारो ! आज हमारे यज्ञ में दिन में तीन बार मधुर रसों से सिंचन करें । प्रातः , मध्याह्न एवं सायं तीन प्रकार के पुष्टिवर्धक अन्न हमें प्रदान करें ॥३ ॥

४०२. **त्रिर्वर्तिर्यातं त्रिरनुव्रते जने त्रिः सुप्राव्ये त्रेधेव शिक्षतम् ।**
त्रिर्नान्द्यं वहतमश्विना युवं त्रिः पृक्षो अस्मे अक्षरेव पिन्वतम् ॥४ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! हमारे घर आप तीन बार आयें । अनुयायी जनों को तीन बार सुरक्षित करें, उन्हें तीन बार तीन विशिष्ट ज्ञान करायें । सुखप्रद पदार्थों को तीन बार इधर हमारी ओर पहुँचायें । बलप्रदायक अन्नों को प्रचुर परिमाण में देकर हमें सम्पन्न करें ॥४ ॥

४०३. **त्रिर्नो रयिं वहतमश्विना युवं त्रिर्देवताता त्रिरुतावतं धियः ।**
त्रिः सौभगत्वं त्रिरुत श्रवांसि नस्त्रिष्ठं वां सूरे दुहितारुहद्रथम् ॥५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों हमारे लिए तीन बार धन इधर लायें । हमारी बुद्धि को तीन बार देवों की स्तुति में प्रेरित करें । हमें तीन बार सौभाग्य और तीन बार यश प्रदान करें । आपके रथ में सूर्य-पुत्री (उषा) विराजमान हैं ॥५ ॥

४०४. **त्रिर्नो अश्विना दिव्यानि भेषजा त्रिः पार्थिवानि त्रिरु दत्तमद्भ्यः ।**
ओमानं शंयोर्ममकाय सूनवे त्रिधातु शर्म वहतं शुभस्पती ॥६ ॥

हे शुभ कर्मपालक अश्विनीकुमारो ! आपने तीन बार हमें (द्युस्थानीय) दिव्य ओषधियाँ, तीन बार पार्थिव ओषधियाँ तथा तीन बार जलौषधियाँ प्रदान की हैं । हमारे पुत्र को श्रेष्ठ सुख एवं संरक्षण दिया है और तीन धातुओं (वात-पित्त-कफ) से मिलने वाला सुख, आरोग्य एवं ऐश्वर्य भी प्रदान किया है ॥६ ॥

४०५. **त्रिर्नो अश्विना यजता दिवेदिवे परि त्रिधातु पृथिवीमशायतम् ।**
तिस्रो नासत्या रथ्या परावत आत्मेव वातः स्वसराणि गच्छतम् ॥७ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप नित्य तीन बार यजन योग्य हैं । पृथ्वी पर स्थापित वेदी के तीन ओर आसनों पर बैठें । हे असत्यरहित रथारूढ़ देवो ! प्राणवायु और आत्मा के समान दूर स्थान से हमारे यज्ञों में तीन बार आयें ॥७

४०६. **त्रिरश्विना सिन्धुभिः सप्तमातृभिस्त्रय आहावास्त्रेधा हविष्कृतम् ।**
तिस्रः पृथिवीरुपरि प्रवा दिवो नाकं रक्षेथे द्युभिरक्तुभिर्हितम् ॥८ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! सात मातृभूत नदियों के जलों से तीन बार तीन पात्र भर दिये हैं । हवियों को भी तीन भागों में विभाजित किया है । आकाश में ऊपर गमन करते हुए आप तीनों लोकों की दिन और रात्रि में रक्षा करते हैं ॥८ ॥



४०७. क्व१त्री चक्रा त्रिवृतो रथस्य क्व१त्रयो वन्धुरो ये सनीळाः ।
कदा योगो वाजिनो रासभस्य येन यज्ञं नासत्योपयाथः ॥९ ॥

अश्विनीकुमारों के रहस्यमय रथ - यान का वर्णन करते हुए कहा गया है—

हे सत्यनिष्ठ अश्विनीकुमारो ! आप जिस रथ द्वारा यज्ञ-स्थल में पहुँचते हैं, उस तीन छोर वाले रथ के तीन चक्र कहाँ हैं ? एक ही आधार पर स्थापित होने वाले तीन स्तम्भ कहाँ हैं ?और अति शब्द करने वाले बलशाली (अश्व या संचालक यंत्र) को रथ के साथ कब जोड़ा गया था ? ॥९ ॥

४०८. आ नासत्या गच्छतं हूयते हविर्मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिः ।
युवोर्हि पूर्वं सवितोषसो रथमृताय चित्रं घृतवन्तमिष्यति ॥१० ॥

हे सत्यशील अश्विनीकुमारो ! आप यहाँ आएँ । यहाँ हवि की आहुतियाँ दी जा रही हैं । मधु पीने वाले मुखों से मधुर रसों का पान करें । आप के विचित्र पुष्ट रथ को सूर्यदेव उषाकाल से पूर्व, यज्ञ के लिये प्रेरित करते हैं ॥१० ॥

४०९. आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना ।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥११ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों तैंतीस देवताओं सहित हमारे इस यज्ञ में मधुपान के लिये पधारें । हमारी आयु बढ़ायें और हमारे पापों को भली-भाँति विनष्ट करें । हमारे प्रति द्वेष की भावना को समाप्त करके सभी कार्यों में सहायक बनें ॥११ ॥

४१०. आ नो अश्विना त्रिवृता रथेनार्वाञ्चं रयिं वहतं सुवीरम् ।
शृण्वन्ता वामवसे जोहवीमि वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥१२ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! त्रिकोण रथ से हमारे लिये उत्तम धन-सामर्थ्यों को वहन करें । हमारी रक्षा के लिए आवाहनों को आप सुनें । युद्ध के अवसरों पर हमारी बल-वृद्धि का प्रयास करें ॥१२ ॥

[सूक्त - ३५]

[**ऋषि-** हिरण्यस्तूप आङ्गिरस । **देवता-** प्रथम मन्त्र का प्रथम पाद- अग्नि, द्वितीय पाद-मित्रावरुण, तृतीय पाद- रात्रि, चतुर्थ पाद- सविता, २-११ सविता । **छन्द-** त्रिष्टुप्, १,९ जगती ।]

४११. ह्वयाम्यग्निं प्रथमं स्वस्तये ह्वयामि मित्रावरुणाविहावसे ।
ह्वयामि रात्रीं जगतो निवेशनीं ह्वयामि देवं सवितारमूतये ॥ १ ॥

कल्याण की कामना से हम सर्वप्रथम अग्निदेव की प्रार्थना करते हैं । अपनी रक्षा के लिए हम मित्र और वरुण देवों को बुलाते हैं । जगत् को विश्राम देने वाली रात्रि और सूर्यदेव का हम अपनी रक्षा के लिए आवाहन करते हैं ॥१ ॥

४१२. आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ २ ॥

सवितादेव गहन तमिस्रा युक्त अन्तरिक्ष पथ में भ्रमण करते हुए, देवों और मनुष्यों को यज्ञादि श्रेष्ठ-कर्मों में नियोजित करते हैं । वे समस्त लोकों को देखते (प्रकाशित करते) हुए स्वर्णिम (किरणों से युक्त) रथ से आते हैं ॥२ ॥

४१३. याति देवः प्रवता यात्युद्वता याति शुभ्राभ्यां यजतो हरिभ्याम्।
आ देवो याति सविता परावतोऽप विश्वा दुरिता बाधमानः ॥ ३ ॥

स्तुत्य सवितादेव ऊपर चढ़ते हुए और फिर नीचे उतरते हुए निरन्तर गतिशील रहते हैं। वे सविता देव तमरूपी पापों को नष्ट करते हुए अतिदूर से इस यज्ञशाला में श्वेत अश्वों के रथ पर आसीन होकर आते हैं ॥३ ॥

४१४. अभीवृतं कृशनैर्विश्वरूपं हिरण्यशम्यं यजतो बृहन्तम् ।
आस्थाद्रथं सविता चित्रभानुः कृष्णा रजांसि तविषीं दधानः ॥ ४ ॥

सतत परिभ्रमणशील, विविध रूपों में सुशोभित, पूजनीय, अद्भुत रश्मि-युक्त सवितादेव गहन तमिस्रा को नष्ट करने के निमित्त प्रचण्ड सामर्थ्य को धारण करते हैं तथा स्वर्णिम रश्मियों से युक्त रथ पर प्रतिष्ठित होकर आते हैं ॥४ ॥

४१५. वि जनाञ्छ्यावाः शितिपादो अख्यन्रथं हिरण्यप्रउगं वहन्तः ।
शश्वद्विशः सवितुर्दैव्यस्योपस्थे विश्वा भुवनानि तस्थुः ॥ ५ ॥

सूर्यदेव के अश्व श्वेत पैर वाले हैं, वे स्वर्णरथ को वहन करते हैं और मानवों को प्रकाश देते हैं। सर्वदा सभी लोकों के प्राणी सवितादेव के अंक में स्थित हैं, अर्थात् उन्हीं पर आश्रित हैं ॥५ ॥

४१६. तिस्रो द्यावः सवितुर्द्वा उपस्थाँ एका यमस्य भुवने विराषाट् ।
आणिं न रथ्यममृताधि तस्थुरिह ब्रवीतु य उ तच्चिकेतत् ॥ ६ ॥

तीनों लोकों में द्यावा और पृथिवी ये दोनों लोक सूर्य के समीप हैं, अर्थात् सूर्य से प्रकाशित हैं। एक अंतरिक्ष लोक यमदेव का विशिष्ट द्वार रूप है। रथ के धुरे की कील के समान सूर्यदेव पर ही सब लोक (नक्षत्रादि) अवलम्बित हैं। जो यह रहस्य जानें, वे सबको बतायें ॥६ ॥

[द्युलोक में सूर्यदेव स्थित हैं, पृथ्वी पर उनके द्वारा विकिरित ऊर्जा का प्रभाव है, इसलिए यह दो लोक उनके पास कहे गये हैं। बीच में अंतरिक्ष उनसे दूर क्यों है? विज्ञान का नियम है कि विकिरित किरणें जब पदार्थ पर पड़ती हैं, तभी अपनी ऊर्जा उसे देती हैं, बीच के वायुमण्डल को प्रभावित नहीं करतीं, इसलिए बीच का अन्तरिक्ष लोक सौर ऊर्जा से अप्रभावित रहता है, अन्यथा वायुमण्डल इतना गर्म हो जाता कि सहन करना संभव नहीं होता, इस अनुशासन के अन्तर्गत- अन्तरिक्ष यम (अनुशासन के देवता) का द्वार कहा गया है।]

४१७. वि सुपर्णो अन्तरिक्षाण्यख्यद्गभीरवेपा असुरः सुनीथः ।
क्वे३दानीं सूर्यः कश्चिकेत कतमां द्यां रश्मिरस्या ततान ॥ ७ ॥

गम्भीर, गतियुक्त, प्राणरूप, उत्तम प्रेरक, सुन्दर, दीप्तिमान् सूर्यदेव अन्तरिक्षादि को प्रकाशित करते हैं। ये सूर्यदेव कहाँ रहते हैं? उनकी रश्मियाँ किस आकाश में होंगी? यह रहस्य कौन जानता है? ॥७ ॥

४१८. अष्टौ व्यख्यत्ककुभः पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून् ।
हिरण्याक्षः सविता देव आगाद्दधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि ॥ ८ ॥

हिरण्य दृष्टि युक्त (सुनहली किरणों से युक्त) सवितादेव पृथ्वी की आठों दिशाओं (४प्रमुख ४ उपदिशाएँ) उनसे युक्त तीनों लोकों, सप्त सागरों आदि को आलोकित करते हुए दाता (हविदाता) के लिए वरणीय विभूतियाँ लेकर यहाँ आएँ ॥८ ॥



४१९. हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते ।
अपामीवां बाधते वेति सूर्यमभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति ॥ ९ ॥

स्वर्णिम रश्मियों रूपी हाथों से युक्त विलक्षण द्रष्टा सवितादेव द्यावा और पृथ्वी के बीच संचरित होते हैं। वे रोगादि बाधाओं को नष्ट कर अन्धकारनाशक दीप्तियों से आकाश को प्रकाशित करते हैं ॥९ ॥

४२०. हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् ।
अपसेधन्रक्षसो यातुधानानस्थाद्देवः प्रतिदोषं गृणानः ॥ १० ॥

हिरण्य हस्त (स्वर्णिम तेजस्वी किरणों से युक्त) प्राणदाता, कल्याणकारक, उत्तम सुखदायक, दिव्यगुण सम्पन्न सूर्यदेव, सम्पूर्ण मनुष्यों के समस्त दोषों को, असुरों और दुष्कर्मियों को नष्ट करते (दूर भगाते) हुए उदित होते हैं। ऐसे सूर्यदेव हमारे लिये अनुकूल हों ॥१० ॥

४२१. ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे ।
तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव ॥ ११ ॥

हे सवितादेव ! आकाश में आपके ये धूलरहित मार्ग पूर्व निश्चित हैं। उन सुगम मार्गों से आकर आज आप हमारी रक्षा करें तथा हम (यज्ञानुष्ठान करने वालों) को देवत्व से युक्त करें ॥११ ॥

[सूक्त - ३६]

[**ऋषि** - कण्व घौर । **देवता** - अग्नि, १३-१४ यूप । **छन्द**- बार्हत प्रगाथ - विषमा बृहती, समासतो बृहती, १३ उपरिष्टाद् - बृहती ।]

४२२. प्र वो यह्वं पुरूणां विशां देवयतीनाम् ।
अग्निं सूक्तेभिर्वचोभिरीमहे यं सीमिदन्य ईळते ॥ १ ॥

हम ऋत्विज् अपने सूक्ष्म वाक्यों (मंत्र शक्ति) से व्यक्तियों में देवत्व का विकास करने वाली महानता का वर्णन करते हैं, जिस महानता का वर्णन (स्तवन) ऋषियों ने भली प्रकार किया था ॥१ ॥

४२३. जनासो अग्निं दधिरे सहोवृधं हविष्मन्तो विधेम ते ।
स त्वं नो अद्य सुमना इहाविता भवा वाजेषु सन्त्य ॥ २ ॥

मनुष्यों ने बलवर्धक अग्निदेव का वरण किया। हम उन्हें हवियों से प्रवृद्ध करते हैं। अन्नों के दाता हे अग्निदेव ! आज आप प्रसन्न मन से हमारी रक्षा करें ॥२ ॥

४२४. प्र त्वा दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।
महस्ते सतो वि चरन्त्यर्चयो दिवि स्पृशन्ति भानवः ॥ ३ ॥

देवों के दूत, होतारूप, सर्वज्ञ हे अग्निदेव ! आपका हम वरण करते हैं, आप महान् और सत्यरूप हैं। आपकी ज्वालाओं की दीप्ति फैलती हुई आकाश तक पहुँचती है ॥३ ॥

४२५. देवासस्त्वा वरुणो मित्रो अर्यमा सं दूतं प्रत्नमिन्धते ।
विश्वं सो अग्ने जयति त्वया धनं यस्ते ददाश मर्त्यः ॥ ४ ॥

हे अग्निदेव ! मित्र, वरुण और अर्यमा ये तीनों देव आप जैसे पुरातन देवदूत को प्रदीप्त करते हैं। जो याजक आपके निमित्त हवि समर्पित करते हैं, वे आपकी कृपा से समस्त धनों को उपलब्ध करते हैं ॥४ ॥

४२६. मन्द्रो होता गृहपतिरग्ने दूतो विशामसि ।
त्वे विश्वा संगतानि व्रता ध्रुवा यानि देवा अकृण्वत ॥ ५ ॥

हे अग्निदेव ! आप प्रमुदित करने वाले, प्रजाओं के पालक, होतारूप, गृहस्वामी और देवदूत हैं। देवों के द्वारा सम्पादित सभी शुभ कर्म आपसे सम्पादित होते हैं ॥५ ॥

४२७. त्वे इदग्ने सुभगे यविष्ठ्य विश्वमा हूयते हविः ।
स त्वं नो अद्य सुमना उतापरं यक्षि देवान्त्सुवीर्या ॥ ६ ॥

हे चिरयुवा अग्निदेव ! यह आपका उत्तम सौभाग्य है कि सब हवियाँ आपके अन्दर अर्पित की जाती हैं। आप प्रसन्न होकर हमारे निमित्त आज और आगे भी सामर्थ्यवान् देवों का यजन किया करें। (अर्थात् देवों को हमारे अनुकूल बनायें।) ॥६ ॥

४२८. तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते ।
होत्राभिरग्निं मनुषः समिन्धते तितिर्वांसो अति स्त्रिधः ॥ ७ ॥

नमस्कार करने वाले उपासक स्वप्रकाशित इन अग्निदेव की उपासना करते हैं। शत्रुओं को जीतने वाले मनुष्य हवन-साधनों और स्तुतियों से अग्नि को प्रदीप्त करते हैं ॥७ ॥

४२९. घ्नन्तो वृत्रमतरन्रोदसी अप उरु क्षयाय चक्रिरे ।
भुवत्कण्वे वृषा द्युम्न्याहुतः क्रन्ददश्वो गविष्टिषु ॥ ८ ॥

देवों ने प्रहार कर वृत्र का वध किया। प्राणियों के निवासार्थ उन्होंने द्यावा-पृथिवी और अन्तरिक्ष का बहुत विस्तार किया। गौ, अश्व आदि की कामना से कण्व ने अग्नि को प्रकाशित कर आहुतियों द्वारा उन्हें बलिष्ठ बनाया ॥८ ॥

४३०. सं सीदस्व महाँ असि शोचस्व देववीतमः ।
वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥ ९ ॥

यज्ञीय गुणों से युक्त प्रशंसनीय हे अग्निदेव ! आप देवताओं के प्रीतिपात्र और महान् गुणों के प्रेरक हैं। यहाँ उपयुक्त स्थान पर पधारें और प्रज्वलित हों। घृत की आहुतियों द्वारा दर्शन योग्य तेजस्वी होते हुए सघन धूम्र को विसर्जित करें ॥९ ॥

४३१. यं त्वा देवासो मनवे दधुरिह यजिष्ठं हव्यवाहन ।
यं कण्वो मेध्यातिथिर्धनस्पृतं यं वृषा यमुपस्तुतः ॥ १० ॥

हे हविवाहक अग्निदेव ! सभी देवों ने पूजने योग्य आपको मानव मात्र के कल्याण के लिए इस यज्ञ में धारण किया। मेध्यातिथि और कण्व ने तथा वृषा (इन्द्र) और उपस्तुत (अन्य यजमान) ने धन से संतुष्ट करने वाले आपका वरण किया ॥१० ॥

४३२. यमग्निं मेध्यातिथिः कण्व ईध ऋतादधि।
तस्य प्रेषो दीदियुस्तमिमा ऋचस्तमग्निं वर्धयामसि ॥११ ॥

जिन अग्निदेव को मेध्यातिथि और कण्व ने सत्यरूप कर्मों से प्रदीप्त किया, वे अग्निदेव देदीप्यमान हैं। उन्हीं को हमारी ऋचायें भी प्रवृद्ध करती हैं। हम भी उन अग्निदेव को संवर्धित करते हैं ॥११ ॥



४३३. रायस्पूर्धि स्वधावोऽस्ति हि तेऽग्ने देवेष्वाप्यम् ।
त्वं वाजस्य श्रुत्यस्य राजसि स नो मृळ महाँ असि ॥१२॥

हे अन्नवान् अग्ने ! आप हमें अन्न - सम्पदा से अभिपूरित करें । आप देवों के मित्र और प्रशंसनीय बलों के स्वामी हैं । आप महान् हैं । आप हमें सुखी बनाएँ ॥१२॥

४३४. ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता ।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥१३॥

हे काष्ठ स्थित अग्निदेव ! सर्वोत्पादक सवितादेव जिस प्रकार अन्तरिक्ष से हम सबकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप भी ऊँचे उठकर, अन्न आदि पोषक पदार्थ देकर हमारे जीवन की रक्षा करें । मन्त्रोच्चारणपूर्वक हवि प्रदान करने वाले याजक आपके उत्कृष्ट स्वरूप का आवाहन करते हैं ॥१३॥

४३५. ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना विश्वं समत्रिणं दह ।
कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः ॥१४॥

हे यूपस्थ अग्ने ! आप ऊँचे उठकर अपने श्रेष्ठ ज्ञान द्वारा पापों से हमारी रक्षा करें, मानवता के शत्रुओं का दहन करें, जीवन में प्रगति के लिए हमें ऊँचा उठाएँ तथा हमारी प्रार्थना देवों तक पहुँचाएँ ॥१४॥

४३६. पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः ।
पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य ॥१५॥

हे महान् दीप्तिवाले, चिरयुवा अग्निदेव ! आप हमें राक्षसों से रक्षित करें, कृपण धूर्तों से रक्षित करें तथा हिंसकों और जघन्यों से रक्षित करें ॥१५॥

४३७. घनेव विष्वग्वि जह्यराव्णस्तपुर्जम्भ यो अस्मध्रुक् ।
यो मर्त्यः शिशीते अत्यक्तुभिर्मा नः स रिपुरीशत ॥१६॥

अपने ताप से रोगादि कष्टों को मिटाने वाले हे अग्ने ! आप कृपणों को गदा से विनष्ट करें । जो हमसे द्रोह करते हैं, जो रात्रि में जागकर हमारे नाश का यत्न करते हैं, वे शत्रु हम पर आधिपत्य न कर पाएँ ॥१६॥

४३८. अग्निर्वव्ने सुवीर्यमग्निः कण्वाय सौभगम् ।
अग्निः प्रावन्मित्रोत मेध्यातिथिमग्निः साता उपस्तुतम् ॥१७॥

उत्तम पराक्रमी ये अग्निदेव, जिन्होंने कण्व को सौभाग्य प्रदान किया, हमारे मित्रों की रक्षा की तथा 'मेध्यातिथि' और 'उपस्तुत' (यजमान) की भी रक्षा की है ॥१७॥

४३९. अग्निना तुर्वशं यदुं परावत उग्रादेवं हवामहे ।
अग्निर्नयन्नववास्त्वं बृहद्रथं तुर्वीतिं दस्यवे सहः ॥१८॥

अग्निदेव के साथ हम 'तुर्वश' 'यदु' और 'उग्रदेव' को बुलाते हैं । वे अग्निदेव 'नववास्तु', 'बृहद्रथ' और 'तुर्वीति' (आदि राजर्षियों) को भी ले चलें, जिससे हम दुष्टों के साथ संघर्ष कर सकें ॥१८॥

४४०. नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।
दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः ॥१९॥



हे अग्निदेव ! विचारवान् व्यक्ति आपका वरण करते हैं । अनादिकाल से ही मानव जाति के लिए आपकी ज्योति प्रकाशित है । आपका प्रकाश आश्रमों के ज्ञानवान् ऋषियों में उत्पन्न होता है । यज्ञ में ही आपका प्रज्वलित स्वरूप प्रकट होता है । उस समय सभी मनुष्य आपको नमन-वन्दन करते हैं ॥१९ ॥

४४१. त्वेषासो अग्नेरमवन्तो अर्चयो भीमासो न प्रतीतये।
रक्षस्विनः सदमिद्यातुमावतो विश्वं समत्रिणं दह ॥ २० ॥

अग्निदेव की ज्वालाएँ प्रदीप्त होकर अत्यन्त बलवती और प्रचण्ड हुई हैं । कोई उनका सामना नहीं कर सकता । हे अग्ने ! आप समस्त राक्षसों, आततायियों और मानवता के शत्रुओं को नष्ट करें ॥२० ॥

[सूक्त - ३७]

[ऋषि - कण्व घौर । देवता - मरुद्‌गण । छन्द- गायत्री ।]

४४२. क्रीळं वः शर्धो मारुतमनर्वाणं रथेशुभम् । कण्वा अभि प्र गायत ॥१ ॥

हे कण्व गोत्रीय ऋषियो ! क्रीड़ा युक्त, बल सम्पन्न, अहिंसक वृत्तियों वाले मरुद्‌गण रथ पर शोभायमान हैं । आप उनके निमित्त स्तुतिगान करें ॥१ ॥

४४३. ये पृषतीभिर्ऋष्टिभिः साकं वाशीभिरञ्जिभिः । अजायन्त स्वभानवः ॥२ ॥

ये मरुद्‌गण स्वदीप्ति से युक्त धब्बों वाले मृगों (वाहनों) सहित और आभूषणों से अलंकृत होकर गर्जना करते हुए प्रकट हुए हैं ॥२ ॥

४४४. इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद्वदान् । नि यामञ्चित्रमृञ्जते ॥३ ॥

मरुद्‌गणों के हाथों में स्थित चाबुकों से होने वाली ध्वनियाँ हमें सुनाई देती हैं, जैसे वे यहीं हो रही हों । वे ध्वनियाँ संघर्ष के समय असामान्य शक्ति प्रदर्शित करती हैं ॥३ ॥

४४५. प्र वः शर्धाय घृष्वये त्वेषद्युम्नाय शुष्मिणे । देवत्तं ब्रह्म गायत ॥४ ॥

(हे याजको ! आप) बल बढ़ाने वाले, शत्रु नाशक, दीप्तिमान् मरुद्‌गणों की सामर्थ्य और यश का मंत्रों से विशिष्ट गान करें ॥४ ॥

४४६. प्र शंसा गोष्वघ्न्यं क्रीळं यच्छर्धो मारुतम् । जम्भे रसस्य वावृधे ॥५ ॥

(हे याजको ! आप) किरणों द्वारा संचरित दिव्य रसों का पर्याप्त सेवन कर बलिष्ठ हुए उन मरुद्‌गणों के अविनाशी बल की प्रशंसा करें ॥५ ॥

४४७. को वो वर्षिष्ठ आ नरो दिवश्च ग्मश्च धूतयः । यत्सीमन्तं न धूनुथ ॥६ ॥

द्युलोक और भूलोक को कम्पित करने वाले हे मरुतो ! आप में वरिष्ठ कौन है ? जो सदा वृक्ष के अग्रभाग को हिलाने के समान शत्रुओं को प्रकम्पित कर दे ॥६ ॥

४४८. नि वो यामाय मानुषो दध्र उग्राय मन्यवे । जिहीत पर्वतो गिरिः ॥७ ॥

हे मरुद्‌गणो ! आपके प्रचण्ड संघर्षक आवेश से भयभीत मनुष्य सुदृढ़ सहारा ढूँढ़ता है, क्योंकि आप बड़े पर्वतों और टीलों को भी कँपा देते हैं ॥७ ॥

४४९. येषामज्मेषु पृथिवी जुजुर्वाँ इव विश्पतिः । भिया यामेषु रेजते ॥८ ॥

उन मरुद्‌गणों के आक्रमणकारी बलों से यह पृथ्वी जरा-जीर्ण नृपति की भाँति भयभीत होकर प्रकम्पित हो उठती है ॥८ ॥



४५०. स्थिरं हि जानमेषां वयो मातुर्निरेतवे। यत्सीमनु द्विता शवः ॥९ ॥

इन वीर मरुतों की मातृभूमि आकाश स्थिर है। ये मातृभूमि से पक्षी के वेग के समान निर्बाधित होकर चलते हैं। उनका बल दुगुना होकर व्याप्त होता है ॥९ ॥

४५१. उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा अज्मेष्वत्नत। वाश्रा अभिज्ञु यातवे ॥१० ॥

शब्द नाद करने वाले मरुतों ने यज्ञार्थ जलों को निः सृत किया। प्रवाहित जल का पान करने के लिये रँभाती हुई गौएँ घुटने तक पानी में जाने के लिए बाध्य होती हैं ॥१० ॥

४५२. त्यं चिद्धा दीर्घं पृथुं मिहो नपातममृध्रम्। प्रच्यावयन्ति यामभिः ॥११ ॥

विशाल और व्यापक, न बिंध सकने वाले, जल वृष्टि न करने वाले मेघों को भी वीर मरुद्‌गण अपनी तेजगति से उड़ा ले जाते हैं ॥११ ॥

४५३. मरुतो यद्ध वो बलं जनाँ अचुच्यवीतन। गिरीँरचुच्यवीतन ॥१२ ॥

हे मरुतो ! आप अपने बल से लोगों को विचलित करते हैं, आप पर्वतों को भी विचलित करने में समर्थ हैं ॥१२ ॥

४५४. यद्ध यान्ति मरुतः सं ह ब्रुवतेऽध्वन्ना। शृणोति कश्चिदेषाम् ॥१३ ॥

जिस समय मरुद्‌गण गमन करते हैं, तब वे मध्य मार्ग में ही परस्पर वार्ता करने लगते हैं। उनके शब्द को भला कौन नहीं सुन लेता है ? (सभी सुन लेते हैं।) ॥१३ ॥

४५५. प्र यात शीभमाशुभिः सन्ति कण्वेषु वो दुवः। तत्रो षु मादयाध्वै ॥१४ ॥

हे मरुतो ! आप तीव्र वेग वाले वाहन से शीघ्र आएँ। कण्ववंशी आपके सत्कार के लिए उपस्थित हैं। वहाँ आप उत्साह के साथ तृप्ति को प्राप्त हों ॥१४ ॥

४५६. अस्ति हि ष्मा मदाय वः स्मसि ष्मा वयमेषाम्। विश्वं चिदायुर्जीवसे ॥१५ ॥

हे मरुतो ! आपकी प्रसन्नता के लिए यह हवि- द्रव्य तैयार है। हम सम्पूर्ण आयु सुखद जीवन प्राप्त करने के लिए आपका स्मरण करते हैं ॥१५ ॥

[सूक्त - ३८]

[ऋषि - कण्व घौर । देवता - मरुद्‌गण । छन्द - गायत्री ।]

४५७. कद्ध नूनं कधप्रियः पिता पुत्रं न हस्तयोः। दधिध्वे वृक्तबर्हिषः ॥१ ॥

हे स्तुति प्रिय मरुतो ! आप कुश के आसनों पर विराजमान हों। पुत्र को पिता द्वारा स्नेहपूर्वक गोद में उठाने के समान, आप हमें कब धारण करेंगे ? ॥१ ॥

४५८. क्व नूनं कद्वो अर्थं गन्ता दिवो न पृथिव्याः। क्व वो गावो न रण्यन्ति ॥२ ॥

हे मरुतो ! आप कहाँ हैं ? किस उद्देश्य से आप द्युलोक में गमन करते हैं ? पृथ्वी में क्यों नहीं घूमते ? आपकी गौएँ आपके लिए नहीं रँभातीं क्या ? (अर्थात् आप पृथ्वी रूपी गौ के समीप ही रहें।) ॥२ ॥

४५९. क्व वः सुम्ना नव्यांसि मरुतः क्व सुविता। क्वो३विश्वानि सौभगा ॥३ ॥

हे मरुद्‌गणो ! आपके नवीन संरक्षण साधन कहाँ हैं ? आपके सुख - ऐश्वर्य के साधन कहाँ हैं ? आपके सौभाग्यप्रद साधन कहाँ हैं ? आप अपने समस्त वैभव के साथ इस यज्ञ में आएँ ॥३ ॥

४६०. यद्यूयं पृश्निमातरो मर्तासः स्यातन। स्तोता वो अमृतः स्यात् ॥४॥

हे मातृभूमि की सेवा करने वाले आकाशपुत्र मरुतो ! यद्यपि आप मरणशील हैं, फिर भी आपकी स्तुति करने वाला अमरता को प्राप्त करता है ॥४॥

[प्राणियों के अंगों में रूपान्तरित हो जाने के कारण वायु को मरणशील कहा है, किन्तु वायु सेवन करने वाला मृत्यु से बच जाता है।]

४६१. मा वो मृगो न यवसे जरिता भूदजोष्यः। पथा यमस्य गादुप ॥५॥

जैसे मृग, तृण को असेव्य नहीं समझता, उसी प्रकार आपकी स्तुति करने वाला आपके लिये अप्रिय न हो (अर्थात् उस पर कृपालु रहें), जिससे उसे यमलोक के मार्ग पर न जाना पड़े ॥५॥

४६२. मो षु णः परापरा निर्ऋतिर्दुर्हणा वधीत्। पदीष्ट तृष्णया सह ॥६॥

अति बलिष्ठ पापवृत्तियाँ हमारी दुर्दशा कर हमारा विनाश न करें, प्यास (अतृप्ति) से वे ही नष्ट हो जायें ॥६॥

४६३. सत्यं त्वेषा अमवन्तो धन्वञ्चिदा रुद्रियासः। मिहं कृण्वन्त्यवाताम् ॥७॥

यह सत्य ही है कि कान्तिमान्, बलिष्ठ रुद्रदेव के पुत्र वे मरुद्गण, मरुभूमि में भी अवात (वायु शून्य) स्थिति से वर्षा करते हैं ॥७॥

[मौसम विशेषज्ञों के अनुसार जहाँ वायु का कम दबाव वाला (लो प्रेसर) क्षेत्र बन जाता है, वहाँ बादल इकट्ठे होकर बरस जाते हैं।]

४६४. वाश्रेव विद्युन्मिमाति वत्सं न माता सिषक्ति। यदेषां वृष्टिरसर्जि ॥८॥

जब वह मरुद्गण वर्षा का सृजन करते हैं, तो विद्युत् रँभाने वाली गाय की तरह शब्द करती है (और जिस प्रकार) गाय बछड़ों को पोषण देती है, (उसी प्रकार) वह विद्युत् सिंचन करती है ॥८॥

[वायु द्वारा बादलों में घर्षण होने पर रगड़ से विद्युत् पैदा होती है, उसी से गर्जन ध्वनि पैदा होती है। विद्युत् के चमकने से नाइट्रोजन आदि गैसें कृषि पोषक रसायनों में बदल जाती हैं। इस तरह विद्युत् पोषक सिंचन करती है।]

४६५. दिवा चित्तमः कृण्वन्ति पर्जन्येनोदवाहेन। यत्पृथिवीं व्युन्दन्ति ॥९॥

मरुद्गण जल प्रवाहक मेघों द्वारा दिन में भी अँधेरा कर देते हैं, तब वे वर्षा द्वारा भूमि को आर्द्र करते हैं ॥९॥

४६६. अध स्वनान्मरुतां विश्वमा सद्म पार्थिवम्। अरेजन्त प्र मानुषाः ॥१०॥

मरुतों की गर्जना से पृथ्वी के निम्न भाग में अवस्थित सम्पूर्ण स्थान प्रकम्पित हो उठते हैं। उस कम्पन से समस्त मानव भी प्रभावित होते हैं ॥१०॥

४६७. मरुतो वीळुपाणिभिश्चित्रा रोधस्वतीरनु। यातेमखिद्रयामभिः ॥११॥

हे मरुतो ! (अश्वों को नियन्त्रित करने वाले) आप बलशाली बाहुओं से, अविच्छिन्न गति से शुभ्र नदियों की ओर गमन करें ॥११॥

४६८. स्थिरा वः सन्तु नेमयो रथा अश्वास एषाम्। सुसंस्कृता अभीशवः ॥१२॥

हे मरुतो ! आपके रथ बलिष्ठ घोड़ों, उत्तम धुरी और चंचल लगाम से भली प्रकार अलंकृत हों ॥१२॥

४६९. अच्छा वदा तना गिरा जरायै ब्रह्मणस्पतिम्। अग्निं मित्रं न दर्शतम् ॥१३॥

हे याजको ! आप दर्शनीय मित्र के समान ज्ञान के अधिपति अग्निदेव की, स्तुति युक्त वाणियों द्वारा प्रशंसा करें ॥१३॥



४७०. मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततनः। गाय गायत्रमुक्थ्यम् ॥१४॥

हे याजको ! आप अपने मुख से श्लोक रचना कर मेघ के समान इसे विस्तारित करें। गायत्री छन्द में रचे हुए काव्य का गायन करें ॥१४॥

४७१. वन्दस्व मारुतं गणं त्वेषं पनस्युमर्किणम्। अस्मे वृद्धा असन्निह ॥१५॥

हे ऋत्विजो ! आप कान्तिमान्, स्तुत्य, अर्चन योग्य मरुद्गणों का अभिवादन करें। यहाँ हमारे पास इनका वास रहे ॥१५॥

[सूक्त - ३९]

[**ऋषि** - कण्व घौर। **देवता** - मरुद्गण। **छन्द** - बार्हत प्रगाथ (विषमा बृहती, समासतो बृहती)।]

४७२. प्र यदित्था परावतः शोचिर्न मानमस्यथ।
कस्य क्रत्वा मरुतः कस्य वर्पसा कं याथ कं ह धूतयः ॥१॥

हे कँपाने वाले मरुतो ! आप अपना बल दूरस्थ स्थान से विद्युत् के समान यहाँ पर फेंकते हैं, तो आप (किसके यज्ञ की ओर) किसके पास जाते हैं? किस उद्देश्य से आप कहाँ जाना चाहते हैं? उस समय आपका क्या लक्ष्य होता है? ॥१॥

४७३. स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः ॥२॥

आपके हथियार शत्रु को हटाने में नियोजित हों। आप अपनी दृढ़ शक्ति से उनका प्रतिरोध करें। आपकी शक्ति प्रशंसनीय हो। आप छद्म वेषधारी मनुष्यों को आगे न बढ़ायें ॥२॥

४७४. परा ह यत्स्थिरं हथ नरो वर्तयथा गुरु।
वि याथन वनिनः पृथिव्या व्याशाः पर्वतानाम् ॥३॥

हे मरुतो ! आप स्थिर वृक्षों को गिराते, दृढ़ चट्टानों को प्रकम्पित करते, भूमि के वनों को जड़ विहीन करते हुए पर्वतों के पार निकल जाते हैं ॥३॥

४७५. नहि वः शत्रुर्विविदे अधि द्यवि न भूम्यां रिशादसः।
युष्माकमस्तु तविषी तना युजा रुद्रासो नू चिदाधृषे ॥४॥

हे शत्रुनाशक मरुतो ! न द्युलोक में और न पृथ्वी पर ही, आपके शत्रुओं का अस्तित्व है। हे रुद्र पुत्रो ! शत्रुओं को क्षत-विक्षत करने के लिए आप सब मिलकर अपनी शक्ति विस्तृत करें ॥४॥

४७६. प्र वेपयन्ति पर्वतान्वि विञ्चन्ति वनस्पतीन्।
प्रो आरत मरुतो दुर्मदा इव देवासः सर्वया विशा ॥५॥

हे मरुतो ! मदमत्त हुए लोगों के समान आप पर्वतों को प्रकम्पित करते हैं और पेड़ों को उखाड़ कर फेंकते हैं, अतः आप प्रजाओं के आगे-आगे उन्नति करते हुए चलें ॥५॥

४७७. उपो रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं प्रष्टिर्वहति रोहितः।
आ वो यामाय पृथिवी चिदश्रोदबीभयन्त मानुषाः ॥६॥

हे मरुतो ! आपके रथ को चित्र-विचित्र चिह्नों युक्त (पशु आदि) गति देते हैं, (उनमें) लाल रंग वाला अश्व

धुरी को खींचता है। तुम्हारी गति से उत्पन्न शब्द भूमि सुनती है, मनुष्यगण उस ध्वनि से भयभीत हो जाते हैं ॥६ ॥

[वायु मण्डल की गति आकाश में दिखाई देने वाले चित्र-विचित्र नक्षत्रों से प्रभावित होती है। उनमें से लोहित वर्ण का सूर्य मुख्य भूमिका निभाता है।]

४७८. आ वो मक्षू तनाय कं रुद्रा अवो वृणीमहे।
गन्ता नूनं नोऽवसा यथा पुरेत्था कण्वाय बिभ्युषे ॥७ ॥

हे रुद्रपुत्रो ! अपनी संतानों की रक्षा के लिए हम आपकी स्तुति करते हैं। जैसे पूर्व समय में आप भययुक्त कण्वों की ओर रक्षा के निमित्त शीघ्र गये थे, उसी प्रकार आप हमारी रक्षा के निमित्त शीघ्र पधारें ॥७ ॥

४७९. युष्मेषितो मरुतो मर्त्येषित आ यो नो अभ्व ईषते।
वि तं युयोत शवसा व्योजसा वि युष्माकाभिरूतिभिः ॥८ ॥

हे मरुतो ! आपके द्वारा प्रेरित या अन्य किसी मनुष्य द्वारा प्रेरित शत्रु हम पर प्रभुत्व जमाने आयें, तो आप अपने बल से, अपने तेज से और रक्षण साधनों से उन्हें दूर हटा दें ॥८ ॥

४८०. असामि हि प्रयज्यवः कण्वं दद प्रचेतसः।
असामिभिर्मरुत आ न ऊतिभिर्गन्ता वृष्टिं न विद्युतः ॥९ ॥

हे विशिष्ट पूज्य, ज्ञाता मरुतो ! कण्व को जैसे आपने सम्पूर्ण आश्रय दिया था, वैसे ही चमकने वाली बिजलियों के साथ वेग से आने वाली वृष्टि की तरह आप सम्पूर्ण रक्षा साधनों को लेकर हमारे पास आयें ॥९ ॥

४८१. असाम्योजो बिभृथा सुदानवोऽसामि धूतयः शवः।
ऋषिद्विषे मरुतः परिमन्यव इषुं न सृजत द्विषम् ॥१० ॥

हे उत्तम दानशील मरुतो ! आप सम्पूर्ण पराक्रम और सम्पूर्ण बलों को धारण करते हैं। हे शत्रु को प्रकम्पित करने वाले मरुद्गणो ! ऋषियों से द्वेष करने वाले शत्रुओं को नष्ट करने वाले बाण के समान आप शत्रुघातक (शक्ति) का सृजन करें ॥१० ॥

[सूक्त - ४०]

[**ऋषि**- कण्व घौर। **देवता**- ब्रह्मणस्पति। **छन्द**-बार्हत प्रगाथ (विषमा बृहती, समासतोबृहती)।]

४८२. उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे।
उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा ॥१ ॥

हे ब्रह्मणस्पते ! आप उठें, देवों की कामना करने वाले हम आप की स्तुति करते हैं। कल्याणकारी मरुद्गण हमारे पास आयें। हे इन्द्रदेव ! आप ब्रह्मणस्पति के साथ मिलकर सोमपान करें ॥१ ॥

४८३. त्वामिद्धि सहसस्पुत्र मर्त्य उपब्रूते धने हिते।
सुवीर्यं मरुत आ स्वश्व्यं दधीत यो व आचके ॥२ ॥

साहसिक कार्यों के लिये समर्पित हे ब्रह्मणस्पते ! युद्ध में मनुष्य आपका आवाहन करते हैं। हे मरुतो! जो धनार्थी मनुष्य ब्रह्मणस्पति सहित आपकी स्तुति करता है, वह उत्तम अश्वों के साथ श्रेष्ठ पराक्रम एवं वैभव से सम्पन्न हो ॥२ ॥



४८४. प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता।
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥३ ॥

ब्रह्मणस्पति हमारे अनुकूल होकर यज्ञ में आगमन करें। हमें सत्यरूप दिव्यवाणी प्राप्त हो। मनुष्यों के हितकारी देवगण हमारे यज्ञ में पंक्तिबद्ध होकर अधिष्ठित हों तथा शत्रुओं का विनाश करें ॥३ ॥

४८५. यो वाघते ददाति सूनरं वसु स धत्ते अक्षिति श्रवः।
तस्मा इळां सुवीरामा यजामहे सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥४ ॥

जो यजमान ऋत्विजों को उत्तम धन देते हैं, वे अक्षय यश को पाते हैं। उनके निमित्त हम (ऋत्विग्गण) उत्तम पराक्रमी, शत्रु-नाशक, अपराजेय मातृभूमि की वन्दना करते हैं ॥४ ॥

४८६. प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम्।
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे ॥५ ॥

ब्रह्मणस्पति निश्चय ही स्तुति योग्य (उन) मंत्रों को विधि से उच्चारित कराते हैं, जिन मंत्रों में इन्द्र, वरुण, मित्र और अर्यमा आदि देवगण निवास करते हैं ॥५ ॥

४८७. तमिद्वोचेमा विदथेषु शम्भुवं मन्त्रं देवा अनेहसम्।
इमां च वाचं प्रतिहर्यथा नरो विश्वेद्वामा वो अश्नवत् ॥६ ॥

हे नेतृत्व करने वालो ! (देवताओ !) हम सुखप्रद, विघ्ननाशक मंत्र का यज्ञ में उच्चारण करते हैं। हे नेतृत्व करने वाले देवो ! यदि आप इस मन्त्र रूप वाणी की कामना करते हैं, (सम्मानपूर्वक अपनाते हैं) तो ये सभी सुन्दर स्तोत्र आपको निश्चय ही प्राप्त हों ॥६ ॥

४८८. को देवयन्तमश्नवज्जनं को वृक्तबर्हिषम्।
प्रप्र दाश्वान्पस्त्याभिरस्थितान्तर्वावत्क्षयं दधे ॥७ ॥

देवत्व की कामना करने वालों के पास भला कौन आयेंगे ? (ब्रह्मणस्पति आयेंगे।) कुश-आसन बिछाने वाले के पास कौन आयेंगे ? (ब्रह्मणस्पति आयेंगे।) आपके द्वारा हविदाता याजक अपनी संतानों, पशुओं आदि के निमित्त उत्तम घर का आश्रय पाते हैं ॥७ ॥

४८९. उप क्षत्रं पृञ्चीत हन्ति राजभिर्भये चित्सुक्षितिं दधे।
नास्य वर्ता न तरुता महाधने नार्भे अस्ति वज्रिणः ॥८ ॥

ब्रह्मणस्पतिदेव, क्षात्रबल की अभिवृद्धि कर राजाओं की सहायता से शत्रुओं को मारते हैं। भय के सम्मुख वे उत्तम धैर्य को धारण करते हैं। ये वज्रधारी बड़े युद्धों या छोटे युद्धों में किसी से पराजित नहीं होते ॥८ ॥

[सूक्त - ४१]

[**ऋषि**-कण्व घौर। **देवता**- वरुण, मित्र एवं अर्यमा ; ४-६ आदित्यगण। **छन्द**-गायत्री ।]

४९०. यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा। नू चित्स दभ्यते जनः ॥१ ॥

जिस याजक को, ज्ञान सम्पन्न वरुण, मित्र और अर्यमा आदि देवों का संरक्षण प्राप्त है, उसे कोई भी नहीं दबा सकता ॥१ ॥

४९१. यं बाहुतेव पिप्रति पान्ति मर्त्यं रिषः। अरिष्टः सर्व एधते ॥२ ॥

अपने बाहुओं से विविध धनों को देते हुए, वरुणादि देवगण जिस मनुष्य की रक्षा करते हैं, शत्रुओं से अहिंसित होता हुआ वह वृद्धि पाता है ॥२ ॥

[जब देवगण साधक को सत्पात्र मानकर उसे दैवी सम्पदा प्रदान करते हैं, तो अहितकर प्रवृत्तियों से वह अप्रभावित रहकर सतत प्रगतिशील रहता है।]

४९२. वि दुर्गा वि द्विषः पुरो घ्नन्ति राजान एषाम्। नयन्ति दुरिता तिरः ॥३ ॥

राजा के सदृश वरुणादि देवगण, शत्रुओं के नगरों और किलों को विशेष रूप से नष्ट करते हैं। वे याजकों को दुःख के मूलभूत कारणों (पापों) से दूर ले जाते हैं ॥३ ॥

४९३. सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते। नात्रावखादो अस्ति वः ॥४ ॥

हे आदित्यो ! आप के यज्ञ में आने के मार्ग अतिसुगम और कण्टकहीन हैं। इस यज्ञ में आपके लिए श्रेष्ठ हविष्यान्न समर्पित है ॥४ ॥

४९४. यं यज्ञं नयथा नर आदित्या ऋजुना पथा। प्र वः स धीतये नशत् ॥५ ॥

हे आदित्यो ! जिस यज्ञ को आप सरल मार्ग से सम्पादित करते हैं, वह यज्ञ आपके ध्यान में विशेष रूप से रहता है। वह भला कैसे विस्मृत हो सकता है ? ॥५ ॥

४९५. स रत्नं मर्त्यो वसु विश्वं तोकमुत त्मना। अच्छा गच्छत्यस्तृतः ॥६ ॥

हे आदित्यो ! आपका याजक किसी से पराजित नहीं होता। वह धनादि रत्न और सन्तानों को प्राप्त करता हुआ प्रगति करता है ॥६ ॥

४९६. कथा राधाम सखायः स्तोमं मित्रस्यार्यम्णः। महि प्सरो वरुणस्य ॥७ ॥

हे मित्रो ! मित्र, अर्यमा और वरुण देवों के महान् ऐश्वर्य साधनों का किस प्रकार वर्णन करें ? अर्थात् इनकी महिमा अपार है ॥७ ॥

४९७. मा वो घ्नन्तं मा शपन्तं प्रति वोचे देवयन्तम्। सुम्नैरिद्व आ विवासे ॥८ ॥

हे देवो ! देवत्व प्राप्ति की कामना वाले साधकों को कोई कटुवचनों से और क्रोधयुक्त वचनों से प्रताड़ित न करने पाये। हम स्तुति वचनों द्वारा आपको प्रसन्न करते हैं ॥८ ॥

४९८. चतुरश्चिद्ददमानाद्बिभीयादा निधातोः। न दुरुक्ताय स्पृहयेत् ॥९ ॥

जैसे जुआ खेलने में चार पाँसे गिरने तक (हार-जीत का) भय रहता है, उसी प्रकार बुरे वचन कहने से भी डरना चाहिये। उससे स्नेह नहीं करना चाहिए ॥९ ॥

[सूक्त - ४२]

[ऋषि- कण्वघौर। देवता- पूषा। छन्द- गायत्री।]

४९९. सं पूषन्नध्वनस्तिर व्यंहो विमुचो नपात्। सक्ष्वा देव प्र णस्पुरः ॥१ ॥

हे पूषादेव ! हम पर सुखों को न्योछावर करें। पाप मार्गों से हमें पार लगाएँ। हे देव ! हमें आगे बढ़ाएँ ॥१ ॥

५००. यो नः पूषन्नघो वृको दुःशेव आदिदेशति। अप स्म तं पथो जहि ॥२ ॥

हे पूषादेव ! जो हिंसक, चोर, जुआ खेलने वाले हम पर शासन करना चाहते हैं, उन्हें हम से दूर करें ॥२ ॥



५०१. अप त्यं परिपन्थिनं मुषीवाणं हुरश्चितम्। दूरमधि स्रुतेरज ॥३ ॥

हे पूषादेव ! मार्ग में घात लगाने वाले तथा लूटनेवाले कुटिल चोर को हमारे मार्ग से दूर करके विनष्ट करें ॥३ ॥

५०२. त्वं तस्य द्वयाविनोऽघशंसस्य कस्य चित्। पदाभि तिष्ठ तपुषिम् ॥४ ॥

आप हर किसी दुहरी चाल चलने वाले कुटिल हिंसकों के शरीर को पैरों से कुचलकर खड़े हों, अर्थात् उन्हें दबाकर रखें, उन्हें बढ़ने न दें ॥४ ॥

५०३. आ तत्ते दस्र मन्तुमः पूषन्नवो वृणीमहे। येन पितॄनचोदयः ॥५ ॥

हे दुष्ट-नाशक, मनीषी पूषादेव ! हम अपनी र५ा के निमित्त आप-ी स्तुति करते हैं। आपके संरक्षण ने ही हमारे पितरों को प्रवृद्ध किया था ॥५ ॥

५०४. अधा नो विश्वसौभग हिरण्यवाशीमत्तम। धनानि सुषणा कृधि ॥६ ॥

हे सम्पूर्ण सौभाग्ययुक्त और स्वर्ण - आभूषणों से युक्त पूषादेव ! हमारे लिए सभी उत्तम धन एवं सामर्थ्यों को प्रदान करें ॥६ ॥

५०५. अति नः सश्चतो नय सुगा नः सुपथा कृणु। पूषन्निह क्रतुं विदः ॥७ ॥

हे पूषादेव ! कुटिल दुष्टों से हमें दूर ले चलें। हमें सुगम-सुपथ का अवलम्बन प्रदान करें एवं अपने कर्त्तव्यों का बोध करायें ॥७ ॥

५०६. अभि सूयवसं नय न नवज्वारो अध्वने। पूषन्निह क्रतुं विदः ॥८ ॥

हे पूषादेव ! हमें उत्तम जौ (अन्न) वाले देश की ओर ले चलें। मार्ग में नवीन संकट न आने पायें। हमें अपने कर्त्तव्यों का ज्ञान करायें। (हम इन कर्त्तव्यों को जानें।) ॥८ ॥

५०७. शग्धि पूर्धि प्र यंसि च शिशीहि प्रास्युदरम्। पूषन्निह क्रतुं विदः ॥९ ॥

हे पूषादेव ! हमें सामर्थ्य दें। हमें धनों से युक्त करें। हमें साधनों से सम्पन्न करें। हमें तेजस्वी बनाएँ। हमारी उदरपूर्ति करें। हम अपने इन कर्त्तव्यों को जानें ॥९ ॥

५०८. न पूषणं मेथामसि सूक्तैरभि गृणीमसि। वसूनि दस्ममीमहे ॥१० ॥

हम पूषादेव को नहीं भूलते। सूक्तों से उनकी स्तुति करते हैं। प्रकाशमान सम्पदा हम उनसे माँगते हैं ॥१० ॥

[ऐसी सम्पदा, जो प्रकाशित की जा सके और जो जीवन को प्रकाशित करे, कलंकित न करे। ऐसी सम्पदा की ही कामना की जानी चाहिए।]

[सूक्त - ४३]

[**ऋषि-** कण्व घौर। **देवता-** रुद्र- ३ रुद्र, मित्रावरुण, ७-९ सोम। **छन्द-** गायत्री,९ अनुष्टुप्।]

५०९. कद्रुद्राय प्रचेतसे मीळ्हुष्टमाय तव्यसे। वोचेम शन्तमं हृदे ॥१ ॥

विशिष्ट ज्ञान से सम्पन्न, सुखी एवं बलशाली रुद्रदेव के निमित्त किन सुखप्रद स्तोत्रों का पाठ करें ? ॥१ ॥

५१०. यथा नो अदितिः करत्पश्वे नृभ्यो यथा गवे। यथा तोकाय रुद्रियम् ॥२ ॥

अदिति हमारे लिये और हमारे पशुओं, सम्बन्धियों, गौओं और सन्तानों के लिये आरोग्य -वर्धक ओषधियों का उपाय (अन्वेषण-व्यवस्था) करें ॥२ ॥

५११. यथा नो मित्रो वरुणो यथा रुद्रश्चिकेतति। यथा विश्वे सजोषसः ॥३ ॥

मित्र, वरुण और रुद्रदेव जिस प्रकार हमारे हितार्थ प्रयत्न करते हैं, उसी प्रकार अन्य समस्त देवगण भी हमारा कल्याण करें ॥३ ॥

५१२. गाथपतिं मेधपतिं रुद्रं जलाषभेषजम्। तच्छंयोः सुम्नमीमहे ॥४ ॥

हम सुखद जल एवं ओषधियों से युक्त, स्तुतियों के स्वामी तथा यज्ञ के स्वामी, रुद्रदेव से आरोग्य सुख की कामना करते हैं ॥४ ॥

[स्तुत्य विचार, श्रेष्ठकर्म एवं रस से पुष्ट ओषधियों के संयोग से आरोग्य सुख प्राप्त हो सकता है।]

५१३. यः शुक्र इव सूर्यो हिरण्यमिव रोचते। श्रेष्ठो देवानां वसुः ॥५ ॥

सूर्य सदृश सामर्थ्यवान् और स्वर्ण सदृश दीप्तिमान् रुद्रदेव सभी देवों में श्रेष्ठ और ऐश्वर्यवान् हैं ॥५ ॥

५१४. शं नः करत्यर्वते सुगं मेषाय मेष्ये। नृभ्यो नारिभ्यो गवे ॥६ ॥

हमारे अश्वों, मेढ़ों, भेड़ों, पुरुषों, नारियों और गौओं के लिये वे रुद्रदेव सब प्रकार से मंगलकारी हैं ॥६ ॥

५१५. अस्मे सोम श्रियमधि नि धेहि शतस्य नृणाम्। महि श्रवस्तुविनृम्णम् ॥७ ॥

हे सोमदेव ! हम मनुष्यों को सैकड़ों प्रकार का ऐश्वर्य, तेजयुक्त अन्न, बल और महान् यश प्रदान करें ॥७ ॥

५१६. मा नः सोम परिबाधो मारातयो जुहुरन्त। आ न इन्दो वाजे भज ॥८ ॥

सोमयाग में बाधा देने वाले शत्रु हमें प्रताड़ित न करें। कृपण और दुष्टों से हम पीड़ित न हों। हे सोमदेव ! आप हमारे बल में वृद्धि करें ॥८ ॥

५१७. यास्ते प्रजा अमृतस्य परस्मिन्धामन्नृतस्य।
मूर्धा नाभा सोम वेन आभूषन्तीः सोम वेदः ॥९ ॥

हे सोमदेव ! यज्ञ के श्रेष्ठ स्थान में प्रतिष्ठित आप अमृत से युक्त हैं। यजन कार्य में सर्वोच्च स्थान पर विभूषित प्रजा को आप जानें ॥९ ॥

[सूक्त - ४४]

[**ऋषि**-प्रस्कण्व काण्व । **देवता**-अग्नि,१-२अग्नि, अश्विनीकुमार, उषा। **छन्द**-बार्हत प्रगाथ (विषमा बृहती, समासतो बृहती)।]

५१८. अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य।
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ॥१ ॥

हे अमर अग्निदेव ! उषा काल में विलक्षण शक्तियाँ प्रवाहित होती हैं, यह दैवी सम्पदा नित्यदान करने वाले व्यक्ति को दें। हे सर्वज्ञ ! उषाकाल में जाग्रत् हुए देवताओं को भी यहाँ लायें ॥१ ॥

५१९. जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम्।
सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप सेवा के योग्य देवों तक हवि पहुँचाने वाले दूत और यज्ञ में देवों को लाने वाले रथ के समान हैं। आप अश्विनीकुमारों और देवी उषा के साथ हमें श्रेष्ठ, पराक्रमी एवं यशस्वी बनायें ॥२ ॥



५२०. अद्या दूतं वृणीमहे वसुमग्निं पुरुप्रियम्।

धूमकेतुं भाऋजीकं व्युष्टिषु यज्ञानामध्वरश्रियम् ॥३ ॥

उषाकाल में सम्पन्न होने वाले यज्ञ, जो धूम्र की पताका एवं ज्वालाओं से सुशोभित हैं, ऐसे सर्वप्रिय देवदूत, सबके आश्रय एवं महान् अग्निदेव को हम ग्रहण करते हैं और श्री सम्पन्न बनते हैं ॥३ ॥

५२१. श्रेष्ठं यविष्ठमतिथिं स्वाहुतं जुष्टं जनाय दाशुषे।

देवाँ अच्छा यातवे जातवेदसमग्निमीळे व्युष्टिषु ॥४ ॥

हम सर्वश्रेष्ठ, अतियुवा, अतिथिरूप, वन्दनीय, हविदाता, यजमान द्वारा पूजनीय, आहवनीय, सर्वज्ञ अग्निदेव की प्रतिदिन स्तुति करते हैं। वे हमें देवत्व की ओर ले चलें ॥४ ॥

५२२. स्तविष्यामि त्वामहं विश्वस्यामृत भोजन।

अग्ने त्रातारममृतं मियेध्य यजिष्ठं हव्यवाहन ॥५ ॥

अविनाशी, सबको जीवन (भोजन) देने वाले, हविवाहक, विश्व का त्राण करने वाले, सबके आराध्य, युवा हे अग्निदेव ! हम आपकी स्तुति करते हैं ॥५ ॥

५२३. सुशंसो बोधि गृणते यविष्ठ्य मधुजिह्वः स्वाहुतः।

प्रस्कण्वस्य प्रतिरन्नायुर्जीवसे नमस्या दैव्यं जनम् ॥६ ॥

मधुर जिह्वावाले, याजकों की स्तुति के पात्र, हे तरुण अग्निदेव ! भली प्रकार आहुतियाँ प्राप्त करते हुए आप याजकों की आकांक्षा को जानें। प्रस्कण्व (ज्ञानियों) को दीर्घ जीवन प्रदान करते हुए आप देवगणों को सम्मानित करें ॥६ ॥

५२४. होतारं विश्ववेदसं सं हि त्वा विश इन्धते।

स आ वह पुरुहूत प्रचेतसोऽग्ने देवाँ इह द्रवत् ॥७ ॥

होता रूप सर्वभूतों के ज्ञाता, हे अग्निदेव !आपको मनुष्यगण सम्यक् रूप से प्रज्वलित करते हैं। बहुतों द्वारा आहूत किये जाने वाले हे अग्निदेव ! प्रकृष्ट ज्ञान सम्पन्न देवों को तीव्र गति से यज्ञ में लायें ॥७ ॥

५२५. सवितारमुषसमश्विना भगमग्निं व्युष्टिषु क्षपः।

कण्वासस्त्वा सुतसोमास इन्धते हव्यवाहं स्वध्वर ॥८ ॥

श्रेष्ठ यज्ञों को सम्पन्न करने वाले हे अग्निदेव ! रात्रि के पश्चात् उषाकाल में आप सविता, उषा, दोनों अश्विनीकुमारों, भग और अन्य देवों के साथ यहाँ आयें। सोम को अभिषुत करने वाले तथा हवियों को पहुँचाने वाले ऋत्विग्गण आपको प्रज्वलित करते हैं ॥८ ॥

५२६. पतिर्ह्यध्वराणामग्ने दूतो विशामसि।

उषर्बुध आ वह सोमपीतये देवाँ अद्य स्वर्दृशः ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! आप साधकों द्वारा सम्पन्न होने वाले यज्ञों के अधिपति और देवों के दूत हैं। उषाकाल में जाग्रत् देव आत्माओं को आज सोमपान के निमित्त यहाँ यज्ञस्थल पर लायें ॥९ ॥



५२७. अग्ने पूर्वा अनूषसो विभावसो दीदेथ विश्वदर्शतः ।
असि ग्रामेष्वविता पुरोहितो ऽसि यज्ञेषु मानुषः ॥१० ॥

हे विशिष्ट दीप्तिमान् अग्निदेव ! विश्वदर्शनीय आप उषाकाल के पूर्व ही प्रदीप्त होते हैं । आप ग्रामों की रक्षा करने वाले तथा यज्ञों, मानवों के अग्रणी नेता के समान पूजनीय हैं ॥१० ॥

५२८. नि त्वा यज्ञस्य साधनमग्ने होतारमृत्विजम् ।
मनुष्वद्देव धीमहि प्रचेतसं जीरं दूतममर्त्यम् ॥११ ॥

हे अग्निदेव ! हम मनुष्यों की भाँति आप को यज्ञ के साधन रूप, होता रूप, ऋत्विज् रूप, प्रकृष्ट ज्ञानी रूप, चिर-पुरातन और अविनाशी रूप में स्थापित करते हैं ॥११ ॥

५२९. यद्देवानां मित्रमहः पुरोहितोऽन्तरो यासि दूत्यम् ।
सिन्धोरिव प्रस्वनितास ऊर्मयोऽग्नेर्भ्राजन्ते अर्चयः ॥१२ ॥

हे मित्रों में महान् अग्निदेव ! आप जब यज्ञ के पुरोहित रूप में देवों के बीच दूत कर्म के निमित्त जाते हैं, तब आपकी ज्वालायें समुद्र की प्रचण्ड लहरों के समान शब्द करती हुई प्रदीप्त होती हैं ॥१२ ॥

५३०. श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः ।
आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम् ॥१३ ॥

प्रार्थना पर ध्यान देने वाले हे अग्निदेव ! आप हमारी स्तुति स्वीकार करें । दिव्य अग्निदेव के साथ समान गति से चलने वाले, मित्र और अर्यमा आदि देवगण भी प्रातःकालीन यज्ञ में आसीन हों ॥१३ ॥

५३१. शृण्वन्तु स्तोमं मरुतः सुदानवोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।
पिबतु सोमं वरुणो धृतव्रतोऽश्विभ्यामुषसा सजूः ॥१४ ॥

उत्तम दानशील, अग्निरूप जिह्वा से यज्ञ को प्रवृद्ध करने वाले मरुद्गण इन स्तोत्रों का श्रवण करें । नियमपालक वरुणदेव, अश्विनीकुमारों और देवी उषा के साथ सोम -रस का पान करें ॥१४ ॥

[सूक्त - ४५]

[**ऋषि**- प्रस्कण्व काण्व । **देवता**-अग्नि,१० उत्तरार्द्ध-देवगण । **छन्द**- अनुष्टप् ।]

५३२. त्वमग्ने वसूँरिह रुद्राँ आदित्याँ उत । यजा स्वध्वरं जनं मनुजातं घृतप्रुषम् ॥१ ॥

वसु, रुद्र और आदित्य आदि देवताओं की प्रसन्नता के निमित्त यज्ञ करने वाले हे अग्निदेव ! आप घृताहुति से श्रेष्ठ यज्ञ सम्पन्न करने वाले मनु - संतानों (मनुष्यों) का (अनुदानादि द्वारा) सत्कार करें ॥१ ॥

५३३. श्रुष्टीवानो हि दाशुषे देवा अग्ने विचेतसः । तान्रोहिदश्व गिर्वणस्त्रयस्त्रिंशतमा वह ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! विशिष्ट ज्ञान - सम्पन्न देवगण, हविदाता के लिए उत्तम सुख देते हैं । हे रोहित वर्ण अश्व वाले (अर्थात् रक्तवर्ण की ज्वालाओं से सुशोभित) स्तुत्य अग्निदेव ! उन तैंतीस कोटि देवों को यहाँ यज्ञस्थल पर लेकर आयें ॥२ ॥

५३४. प्रियमेधवदत्रिवज्जातवेदो विरूपवत् । अङ्गिरस्वन्महिव्रत प्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम् ॥३ ॥

हे श्रेष्ठकर्मा, ज्ञान - सम्पन्न अग्निदेव ! जैसे आपने प्रियमेधा, अत्रि, विरूप और अंगिरा के आवाहनों को सुना था, वैसे ही अब प्रस्कण्व के आवाहन को भी सुनें ॥३ ॥



५३५. महिकेरव ऊतये प्रियमेधा अहूषत। राजन्तमध्वराणामग्निं शुक्रेण शोचिषा ॥४ ॥

दिव्य प्रकाश से युक्त अग्निदेव यज्ञ में तेजस्वी रूप में प्रदीप्त हुए। महान् कर्मवाले प्रियमेधा ऋषियों ने अपनी रक्षा के निमित्त अग्निदेव का आवाहन किया ॥४ ॥

५३६. घृताहवन सन्त्येमा उ षु श्रुधी गिरः। याभिः कण्वस्य सूनवो हवन्तेऽवसे त्वा॥५ ॥

घृत - आहुति - भक्षक हेअग्निदेव ! कण्व के वंशज, अपनी रक्षा के लिये जो स्तुतियाँ करते हैं, उन्हीं स्तुतियों को आप सम्यक् प्रकार से सुनें ॥५ ॥

५३७. त्वां चित्रश्रवस्तम हवन्ते विक्षु जन्तवः। शोचिष्केशं पुरुप्रियाग्ने हव्याय वोळहवे॥६ ॥

प्रेमपूर्वक हविष्य को ग्रहण करने वाले हे यशस्वी अग्निदेव ! आप आश्चर्यजनक वैभव से सम्पन्न हैं। सम्पूर्ण मनुष्य एवं ऋत्विग्गण यज्ञ सम्पादन के निमित्त आपका आवाहन करते हुए हवि समर्पित करते हैं ॥६ ॥

५३८. नि त्वा होतारमृत्विजं दधिरे वसुवित्तमम्।
श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं विप्रा अग्ने दिविष्टिषु ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! होता रूप, ऋत्विज्‌रूप, धन को धारण करने वाले, स्तुति सुनने वाले, महान् यशस्वी आपको विद्वज्जन स्वर्ग की कामना से, यज्ञों में स्थापित करते हैं ॥७ ॥

५३९. आ त्वा विप्रा अचुच्यवुः सुतसोमा अभि प्रयः।
बृहद्भा बिभ्रतो हविरग्ने मर्ताय दाशुषे ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! हविष्यान्न और सोम को तैयार करके रखने वाले विद्वान्, दानशील याजक के लिये महान् तेजस्वी आपको स्थापित करते हैं ॥८ ॥

५४०. प्रातर्याव्णः सहस्कृत सोमपेयाय सन्त्य। इहाद्य दैव्यं जनं बर्हिरा सादया वसो ॥९ ॥

हे बल उत्पादक अग्निदेव ! आप धनों के स्वामी और दानशील हैं। आज प्रातःकाल सोमपान के निमित्त यहाँ यज्ञस्थल पर आने को उद्यत देवों को बुलाकर कुश के आसनों पर बिठायें ॥९ ॥

५४१. अर्वाञ्चं दैव्यं जनमग्ने यक्ष्व सहूतिभिः।
अयं सोमः सुदानवस्तं पात तिरोअह्न्यम् ॥१० ॥

हे अग्निदेव ! यज्ञ के समक्ष प्रत्यक्ष उपस्थित देवगणों का उत्तम वचनों से अभिवादन कर यजन करें। हे श्रेष्ठ देवो ! यह सोम आपके लिए प्रस्तुत है, इसका पान करें ॥१० ॥

[सूक्त - ४६]

[**ऋषि**- प्रस्कण्व काण्व। **देवता**- अश्विनीकुमार। **छन्द**-गायत्री।]

५४२. एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः। स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥१ ॥

यह प्रिय अपूर्व (अलौकिक) देवी उषा आकाश के तम का नाश करती हैं। देवी उषा के कार्य में सहयोगी हे अश्विनीकुमारो ! हम महान् स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं ॥१ ॥

५४३. या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम्। धिया देवा वसुविदा ॥२ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप शत्रुओं के नाशक एवं नदियों के उत्पत्तिकर्त्ता हैं। आप विवेकपूर्वक कर्म करने वालों को अपार सम्पत्ति देने वाले हैं ॥२ ॥

५४४. वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि। यद्वां रथो विभिष्पतात् ॥३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जब आपका रथ पक्षियों की तरह आकाश में पहुँचता है, तब प्रशंसनीय स्वर्गलोक में भी आप के लिये स्तोत्रों का पाठ किया जाता है ॥३ ॥

५४५. हविषा जारो अपां पिपर्ति पपुरिर्नरा। पिता कुटस्य चर्षणिः ॥४ ॥

हे देवपुरुषो ! जलों को सुखाने वाले, पिता रूप, पोषणकर्त्ता, कार्यद्रष्टा सूर्यदेव (हमारे द्वारा प्रदत्त) हवि से आपको संतुष्ट करते हैं, अर्थात् सूर्यदेव प्राणिमात्र के पोषण के लिये अन्नादि पदार्थ उत्पन्न करके प्रकृति के विराट् यज्ञ में आहुति दे रहे हैं ॥४ ॥

५४६. आदारो वां मतीनां नासत्या मतवचसा। पातं सोमस्य धृष्णुया ॥५ ॥

असत्यहीन, मननपूर्वक वचन बोलने वाले हे अश्विनीकुमारो ! आप अपनी बुद्धि को प्रेरित करने वाले एवं संघर्ष शक्ति बढ़ाने वाले इस सोमरस का पान करें ॥५ ॥

५४७. या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः। तामस्मे रासाथामिषम् ॥६ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जो पोषक अन्न हमारे जीवन के अन्धकार को दूर कर प्रकाशित करने वाला हो, वह हमें प्रदान करें ॥६ ॥

[अन्न में दो गुण होते हैं। १-शारीरिक पोषण २-प्रवृत्तियों का पोषण। कहावत है-'जैसा खाये अन्न, वैसा बने मन। कुसंस्कार युक्त अन्न से, कुसंस्कारी मन बनने से जीवन अंधकारमय बनता है। इसलिये पोषण के साथ यज्ञीयभाव - सम्पन्न सुसंस्कार युक्त अन्न के लिये कामना की गयी है।]

५४८. आ नो नावा मतीनां यातं पाराय गन्तवे। युञ्जाथामश्विना रथम् ॥७ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों अपना रथ नियोजितकर हमारे पास आयें। अपनी श्रेष्ठ बुद्धि से हमें दुःखों के सागर से पार ले चलें ॥७ ॥

५४९. अरित्रं वां दिवस्पृथु तीर्थे सिन्धूनां रथः। धिया युयुज्र इन्दवः ॥८ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आपके आवागमन के साधन द्युलोक (की सीमा) से भी विस्तृत हैं। (तीनों लोकों में आपकी गति है।) नदियों, तीर्थ प्रदेशों में भी आपके साधन हैं, (पृथ्वी पर भी) आपके लिये रथ तैयार है। (आप किसी भी साधन से पहुँचने में समर्थ हैं।) आप के लिये यहाँ विचारयुक्त कर्म द्वारा सोमरस तैयार किया गया है ॥८ ॥

५५०. दिवस्कण्वास इन्दवो वसु सिन्धूनां पदे। स्वं वव्रिं कुह धित्सथः ॥९ ॥

कण्व वंशजों द्वारा तैयार सोम दिव्यता से परिपूर्ण है। नदियों के तट पर ऐश्वर्य रखा है। हे अश्विनीकुमारो ! अब आप अपना स्वरूप कहाँ प्रदर्शित करना चाहते हैं ? ॥९ ॥

५५१. अभूदु भा उ अंशवे हिरण्यं प्रति सूर्यः। व्यख्यज्जिह्वयासितः ॥१० ॥

अमृतमयी किरणों वाले ये सूर्यदेव ! अपनी आभा से स्वर्णतुल्य प्रकट हो रहे हैं। इसी समय श्यामल अग्निदेव, ज्वालारूप जिह्वा से विशेष प्रकाशित हो चुके हैं। हे अश्विनीकुमारो ! यही आपके शुभागमन का समय है ॥१० ॥

५५२. अभूदु पारमेतवे पन्था ऋतस्य साधुया। अदर्शि वि स्रुतिर्दिवः ॥११ ॥

द्युलोक से अंधकार को पार करती हुई, विशिष्ट प्रभा प्रकट होने लगी है, जिससे यज्ञ के मार्ग अच्छी तरह से प्रकाशित हुए हैं। अतः हे अश्विनीकुमारो ! आपको आना चाहिये ॥११ ॥



५५३. तत्तदिदश्विनोरवो जरिता प्रति भूषति। मदे सोमस्य पिप्रतोः ॥१२ ॥

सोम के हर्ष से पूर्ण होने वाले अश्विनीकुमारों के उत्तम संरक्षण का स्तोतागण भली प्रकार वर्णन करते हैं ॥१२ ॥

५५४. वावसाना विवस्वति सोमस्य पीत्या गिरा। मनुष्वच्छंभू आ गतम् ॥१३ ॥

हे दीप्तिमान् (यजमानों के) मनों में निवास करने वाले, सुखदायक अश्विनीकुमारो ! मनु के समान श्रेष्ठ परिचर्या करने वाले यजमान के समीप निवास करने वाले (सुखप्रदान करने वाले हे अश्विनीकुमारो !) आप दोनों सोमपान के निमित्त एवं स्तुतियों के निमित्त इस याग में पधारें ॥१३ ॥

५५५. युवोरुषा अनु श्रियं परिज्मनोरुपाचरत्। ऋता वनथो अक्तुभिः ॥१४ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! चारों ओर गमन करने वाले आप दोनों की शोभा के पीछे-पीछे देवी उषा अनुगमन कर रही हैं। आप रात्रि में भी यज्ञों का सेवन करते हैं ॥१४ ॥

५५६. उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम्। अविद्रियाभिरूतिभिः ॥१५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों सोमरस का पान करें। आलस्य न करते हुए हमारी रक्षा करें तथा हमें सुख प्रदान करें ॥१५ ॥

[सूक्त - ४७]

[**ऋषि**- प्रस्कण्व काण्व। **देवता**- अश्विनीकुमार। **छन्द** - बार्हत प्रगाथ (विषमा बृहती, समासतो बृहती)।]

५५७. अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोम ऋतावृधा।
तमश्विना पिबतं तिरोअह्न्यं धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥१ ॥

हे यज्ञ कर्म का विस्तार करने वाले अश्विनीकुमारो ! अपने इस यज्ञ में अत्यन्त मधुर तथा एक दिन पूर्व शोधित सोमरस का आप सेवन करें। यज्ञकर्त्ता यजमान को रत्न एवं ऐश्वर्य प्रदान करें ॥१ ॥

५५८. त्रिवन्धुरेण त्रिवृता सुपेशसा रथेना यातमश्विना।
कण्वासो वां ब्रह्म कृण्वन्त्यध्वरे तेषां सु शृणुतं हवम् ॥२ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! तीन वृत्त युक्त (त्रिकोण), तीनअवलम्बनवालेअति सुशोभित रथ से यहाँ आयें। यज्ञ में कण्व वंशज आप दोनों के लिये मंत्र-युक्त स्तुतियाँ करते हैं, उनके आवाहन को सुनें ॥२ ॥

५५९. अश्विना मधुमत्तमं पातं सोममृतावृधा।
अथाद्य दस्रा वसु बिभ्रता रथे दाश्वांसमुप गच्छतम् ॥३ ।

हे शत्रुनाशक, यज्ञ-वर्द्धक अश्विनीकुमारो ! अत्यन्त मीठे सोमरस का पान करें। आज रथ में धनों को धारण कर हविदाता यजमान के समीप आयें ॥३ ॥

५६०. त्रिषधस्थे बर्हिषि विश्ववेदसा मध्वा यज्ञं मिमिक्षतम्।
कण्वासो वां सुतसोमा अभिद्यवो युवां हवन्ते अश्विना ॥४ ॥

हे सर्वज्ञ अश्विनीकुमारो ! तीन स्थानों पर रखे हुए कुश-आसन पर अधिष्ठित होकर आप यज्ञ का सिंचन करें। स्वर्ग की कामना वाले कण्व वंशज सोम को अभिषुत कर आप दोनों को बुलाते हैं ॥४ ॥

५६१. याभिः कण्वमभिष्टिभिः प्रावतं युवमश्विना ।
ताभिः ष्व१स्माँ अवतं शुभस्पती पातं सोममृतावृधा ॥५ ॥

यज्ञ को बढ़ाने वाले शुभ कर्मों के पोषक हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने जिन इच्छित रक्षण-साधनों से कण्व की भली प्रकार रक्षा की, उन साधनों से हमारी भी भली प्रकार रक्षा करें और प्रस्तुत सोमरस का पान करें ॥५ ॥

५६२. सुदासे दस्रा वसु बिभ्रता रथे पृक्षो वहतमश्विना ।
रयिं समुद्रादुत वा दिवस्पर्यस्मे धत्तं पुरुस्पृहम् ॥६ ॥

शत्रुओं के लिए उग्ररूप धारण करने वाले हे अश्विनीकुमारो ! रथ में धनों को धारण कर आपने सुदास को अन्न पहुँचाया । उसी प्रकार अन्तरिक्ष या सागरों से लाकर बहुतों द्वारा वाञ्छित धन हमारे लिए प्रदान करें ॥६ ॥

५६३. यन्नासत्या परावति यद्वा स्थो अधि तुर्वशे ।
अतो रथेन सुवृता न आ गतं साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥७ ॥

हे सत्य-समर्थक अश्विनीकुमारो ! आप दूर हों या पास हों, वहाँ से उत्तम गतिमान् रथ से सूर्य रश्मियों के साथ हमारे पास आयें ॥७ ॥

५६४. अर्वाञ्चा वां सप्तयोऽध्वरश्रियो वहन्तु सवनेदुप ।
इषं पृञ्चन्ता सुकृते सुदानव आ बर्हिः सीदतं नरा ॥८ ॥

हे देवपुरुषो अश्विनीकुमारो ! यज्ञ की शोभा बढ़ाने वाले आपके अश्व आप दोनों को सोमयाग के समीप ले आयें । उत्तम कर्म करने वाले और दान देने वाले याजकों के लिये अन्नों की पूर्ति करते हुए आप दोनों कुश के आसनों पर बैठें ॥८ ॥

५६५. तेन नासत्या गतं रथेन सूर्यत्वचा ।
येन शश्वदूहथुर्दाशुषे वसु मध्वः सोमस्य पीतये ॥९ ॥

हे सत्य - समर्थक अश्विनीकुमारो ! सूर्य सदृश तेजस्वी जिस रथ से दाता याजकों के लिए सदैव धन लाकर देते रहे हैं, उसी रथ से आप मीठे सोमरस पान के लिये पधारें ॥९ ॥

५६६. उक्थेभिरर्वागवसे पुरूवसू अर्कैश्च नि ह्वयामहे ।
शश्वत्कण्वानां सदसि प्रिये हि कं सोमं पपथुरश्विना ॥१० ॥

हे विपुल धन वाले अश्विनीकुमारो ! अपनी रक्षा के निमित्त हम स्तोत्रों और पूजा-अर्चनाओं से बार-बार आपका आवाहन करते हैं । कण्व वंशजों की यज्ञ सभा में आप सर्वदा सोमपान करते रहे हैं ॥१० ॥

[सूक्त - ४८]

[ऋषि -प्रस्कण्व काण्व । देवता- उषा । छन्द- बार्हत प्रगाथ (विषमाबृहती, समासतोबृहती) ।]

५६७. सह वामेन न उषो व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
सह द्युम्नेन बृहता विभावरि राया देवि दास्वती ॥१ ॥

हे आकाशपुत्री उषे ! उत्तम तेजस्वी, दान देने वाली, धनों और महान् ऐश्वर्यों से युक्त होकर आप हमारे सम्मुख प्रकट हों, अर्थात् हमें आपका अनुदान - अनुग्रह प्राप्त होता रहे ॥१ ॥



५६८. अश्वावतीर्गोमतीर्विश्वसुविदो भूरि च्यवन्त वस्तवे ।
उदीरय प्रति मा सूनृता उषश्चोद राधो मघोनाम् ॥२ ॥

अश्व, गौ आदि (पशुओं अथवा संचरित होने वाली एवं पोषक किरणों) से सम्पन्न धन-धान्यों को प्रदान करने वाली उषाएँ प्राणिमात्र के कल्याण के लिए प्रकाशित हुई हैं। हे उषे ! कल्याणकारी वचनों के साथ आप हमारे लिए उपयुक्त धन - वैभव प्रदान करें ॥२ ॥

५६९. उवासोषा उच्छाच्च नु देवी जीरा रथानाम् ।
ये अस्या आचरणेषु दध्रिरे समुद्रे न श्रवस्यवः ॥३ ॥

जो देवी उषा पहले भी निवास कर चुकी हैं, वह रथों को चलाती हुई अब भी प्रकट हों। जैसे रत्नों की कामना वाले मनुष्य समुद्र की ओर मन लगाये रहते हैं; वैसे ही हम देवी उषा के आगमन की प्रतीक्षा करते हैं ॥३ ॥

५७०. उषो ये ते प्र यामेषु युञ्जते मनो दानाय सूरयः ।
अत्राह तत्कण्व एषां कण्वतमो नाम गृणाति नृणाम् ॥४ ॥

हे उषे ! आपके आने के समय जो स्तोता अपना मन, धनादि दान करने में लगाते हैं, उसी समय अत्यन्त मेधावी कण्व उन मनुष्यों के प्रशंसात्मक स्तोत्र गाते हैं ॥४ ॥

५७१. आ घा योषेव सूनर्युषा याति प्रभुञ्जती ।
जरयन्ती वृजनं पद्वदीयत उत्पातयति पक्षिणः ॥५ ॥

उत्तम गृहिणी स्त्री के समान सभी का भलीप्रकार पालन करने वाली देवी उषा जब आती हैं, तो निर्बलों को शक्तिशाली बना देती हैं, पाँव वाले जीवों को कर्म करने के लिए प्रेरित करती हैं और पक्षियों को सक्रिय होने की प्रेरणा देती हैं ॥५ ॥

५७२. वि या सृजति समनं व्यर्थिनः पदं न वेत्योदती ।
वयो नकिष्टे पप्तिवांस आसते व्युष्टौ वाजिनीवति ॥६ ॥

देवी उषा सबके मन को कर्म करने के लिए प्रेरित करती हैं तथा धन-इच्छुकों को पुरुषार्थ के लिए भी प्रेरणा देती हैं। ये जीवन दात्री देवी उषा निरन्तर गतिशील रहती हैं। हे अन्नदात्री उषे ! आपके प्रकाशित होने पर पक्षी अपने घोंसलों में बैठे नहीं रहते (अर्थात् वे भी सक्रिय होकर गतिशील हो जाते हैं) ॥६ ॥

५७३. एषायुक्त परावतः सूर्यस्योदयनादधि ।
शतं रथेभिः सुभगोषा इयं वि यात्यभि मानुषान् ॥७ ॥

ये देवी उषा सूर्य के उदयस्थान से दूरस्थ देशों को भी जोड़ देती हैं। ये सौभाग्यशालिनी देवी उषा मनुष्य लोक की ओर सैकड़ों रथों द्वारा गमन करती हैं ॥७ ॥

५७४. विश्वमस्या नानाम चक्षसे जगज्ज्योतिष्कृणोति सूनरी ।
अप द्वेषो मघोनी दुहिता दिव उषा उच्छदप स्रिधः ॥८ ॥

सम्पूर्ण जगत् इन देवी उषा के दर्शन करके झुककर उन्हें नमन करता है। प्रकाशिका, उत्तम मार्गदर्शिका, ऐश्वर्य - सम्पन्न आकाश पुत्री देवी उषा, पीड़ा पहुँचाने वाले हमारे बैरियों को दूर हटाती हैं ॥८ ॥

५७५. **उष आ भाहि भानुना चन्द्रेण दुहितर्दिवः।**
आवहन्ती भूर्यस्मभ्यं सौभगं व्युच्छन्ती दिविष्टिषु ॥९ ॥

हे आकाशपुत्री उषे ! आप आह्लादप्रद दीप्ति से सर्वत्र प्रकाशित हों। हमारे इच्छित स्वर्ग-सुख युक्त उत्तम सौभाग्य को ले आयें और दुर्भाग्य रूपी तमिस्रा को दूर करें ॥९ ॥

५७६. **विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वि यदुच्छसि सूनरि।**
सा नो रथेन बृहता विभावरि श्रुधि चित्रामघे हवम् ॥१० ॥

हे सुमार्ग प्रेरक उषे ! उदित होने पर आप ही विश्व के प्राणियों का जीवन आधार बनती हैं। विलक्षण धन वाली, कान्तिमती हे उषे ! आप अपने बृहत् रथ से आकर हमारा आवाहन सुनें ॥१० ॥

५७७. **उषो वाजं हि वंस्व यश्चित्रो मानुषे जने।**
तेना वह सुकृतो अध्वराँ उप ये त्वा गृणन्ति वह्नयः ॥११ ॥

हे उषादेवि ! मनुष्यों के लिये विविध अन्न-साधनों की वृद्धि करें। जो याजक आपकी स्तुतियाँ करते हैं, उनके इन उत्तम कर्मों से संतुष्ट होकर उन्हें यज्ञीय कर्मों की ओर प्रेरित करें ॥११ ॥

५७८. **विश्वान्देवाँ आ वह सोमपीतयेऽन्तरिक्षादुषस्त्वम्।**
सास्मासु धा गोमदश्वावदुक्थ्य१मुषो वाजं सुवीर्यम् ॥१२ ॥

हे उषे ! सोमपान के लिए अंतरिक्ष से सब देवों को यहाँ ले आयें। आप हमें अश्वों, गौओं से युक्त धन और पुष्टिप्रद अन्न प्रदान करें ॥१२ ॥

५७९. **यस्या रुशन्तो अर्चयः प्रति भद्रा अदृक्षत।**
सा नो रयिं विश्ववारं सुपेशसमुषा ददातु सुग्म्यम् ॥१३ ॥

जिन देवी उषा की दीप्तिमान् किरणें मंगलकारी प्रतिलक्षित होती हैं, वे देवी उषा हम सबके लिए वरणीय, श्रेष्ठ, सुखप्रद धनों को प्राप्त करायें ॥१३ ॥

५८०. **ये चिद्धि त्वामृषयः पूर्व ऊतये जुहूरेऽवसे महि।**
सा नः स्तोमाँ अभि गृणीहि राधसोषः शुक्रेण शोचिषा ॥१४ ॥

हे श्रेष्ठ उषादेवि ! प्राचीन ऋषि आपको अन्न और संरक्षण प्राप्ति के लिये बुलाते थे। आप यश और तेजस्विता से युक्त होकर हमारे स्तोत्रों को स्वीकार करें ॥१४ ॥

५८१. **उषो यदद्य भानुना वि द्वारावृणवो दिवः।**
प्र नो यच्छतादवृकं पृथु च्छर्दिः प्र देवि गोमतीरिषः ॥१५ ॥

हे देवी उषे ! आपने अपने प्रकाश से आकाश के दोनों द्वारों को खोल दिया है। अब आप हमें हिंसकों से रक्षित, विशाल आवास और दुग्धादि युक्त अन्नों को प्रदान करें ॥१५ ॥

५८२. **सं नो राया बृहता विश्वपेशसा मिमिक्ष्वा समिळाभिरा।**
सं द्युम्नेन विश्वतुरोषो महि सं वाजैर्वाजिनीवति ॥१६ ॥

हे देवी उषे ! आप हमें सम्पूर्ण पुष्टिप्रद महान् धनों से युक्त करें, गौओं से युक्त करें। अन्न प्रदान करने वाली, श्रेष्ठ हे देवी उषे ! आप हमें शत्रुओं का संहार करने वाला बल देकर अन्नों से संयुक्त करें ॥१६ ॥



[सूक्त - ४९]

[ऋषि - प्रस्कण्व काण्व । देवता-उषा । छन्द - अनुष्टुप् ।]

५८३. उषो भद्रेभिरा गहि दिवश्चिद्रोचनादधि ।
वहन्त्वरुणप्सव उप त्वा सोमिनो गृहम् ॥१ ॥

हे देवी उषे ! द्युलोक के दीप्तिमान् स्थान से कल्याणकारी मार्गों द्वारा आप यहाँ आयें । अरुणिम वर्ण के अश्व आपको सोमयाग करने वाले के घर पहुँचाएँ ॥१ ॥

५८४. सुपेशसं सुखं रथं यमध्यस्था उषस्त्वम् ।
तेना सुश्रवसं जनं प्रावाद्य दुहितर्दिवः ॥२ ॥

हे आकाशपुत्री उषे ! आप जिस सुन्दर सुखप्रद रथ पर आरूढ़ हैं, उसी रथ से उत्तम हवि देने वाले याजक की सब प्रकार से रक्षा करें ॥२ ॥

५८५. वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपच्चतुष्पदर्जुनि । उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥३ ॥

हे देदीप्यमान उषादेवि ! आपके (आकाशमण्डल पर) उदित होने के बाद मानव, पशु एवं पक्षी अन्तरिक्ष में दूर-दूर तक स्वेच्छानुसार विचरण करते हुए दिखाई देते हैं ॥३ ॥

५८६. व्युच्छन्ती हि रश्मिभिर्विश्वमाभासि रोचनम् ।
तां त्वामुषर्वसूयवो गीर्भिः कण्वा अहूषत ॥४ ॥

हे उषादेवी ! उदित होते हुए आप अपनी किरणों से सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करती हैं । धन की कामना करने वाले कण्व वंशज आपका आवाहन करते हैं ॥४ ॥

[सूक्त - ५०]

[ऋषि- प्रस्कण्व काण्व । देवता- सूर्य (११-१३ रोगघ्न उपनिषद्) । छन्द-गायत्री , १०-१३ अनुष्टुप् ।]

५८७. उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥१ ॥

ये ज्योतिर्मयी रश्मियाँ सम्पूर्ण प्राणियों के ज्ञाता सूर्यदेव को एवं समस्त विश्व को दृष्टि प्रदान करने के लिए विशेष रूप से प्रकाशित होती हैं ॥१ ॥

५८८. अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय विश्वचक्षसे ॥२ ॥

सबको प्रकाश देने वाले सूर्यदेव के उदित होते ही रात्रि के साथ तारा मण्डल वैसे ही छिप जाते हैं , जैसे चोर छिप जाते हैं ॥२ ॥

५८९. अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु । भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥३ ॥

प्रज्वलित हुई अग्नि की किरणों के समान सूर्यदेव की प्रकाश रश्मियाँ सम्पूर्ण जीव - जगत् को प्रकाशित करती हैं ॥३ ॥

५९०. तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य । विश्वमा भासि रोचनम् ॥४ ॥

हे सूर्यदेव ! आप साधकों का उद्धार करने वाले हैं, समस्त संसार में एक मात्र दर्शनीय प्रकाशक हैं तथा आप ही विस्तृत अन्तरिक्ष को सभी ओर से प्रकाशित करते हैं ॥४ ॥



५९१. प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान्। प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥५ ॥

हे सूर्यदेव ! मरुद्‌गणों, देवगणों, मनुष्यों और स्वर्गलोक वासियों के सामने आप नियमित रूप से उदित होते हैं, ताकि तीनों लोकों के निवासी आपका दर्शन कर सकें ॥५ ॥

५९२. येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु। त्वं वरुण पश्यसि ॥६ ॥

जिस दृष्टि अर्थात् प्रकाश से आप प्राणियों को धारण-पोषण करने वाले इस लोक को प्रकाशित करते हैं, हम उस प्रकाश की स्तुति करते हैं ॥६ ॥

५९३. वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः। पश्यञ्जन्मानि सूर्य ॥७ ॥

हे सूर्यदेव ! आप दिन एवं रात में समय को विभाजित करते हुए अन्तरिक्ष एवं द्युलोक में भ्रमण करते हैं, जिससे सभी प्राणियों को लाभ प्राप्त होता है ॥७ ॥

५९४. सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य। शोचिष्केशं विचक्षण ॥८ ॥

हे सर्वद्रष्टा सूर्यदेव ! आप तेजस्वी ज्वालाओं से युक्त दिव्यता को धारण करते हुये सप्तवर्णी किरणोंरूपी अश्वों के रथ में सुशोभित होते हैं ॥८ ॥

५९५. अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः। ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥९ ॥

पवित्रता प्रदान करने वाले ज्ञानसम्पन्न ऊर्ध्वगामी सूर्यदेव अपने सप्तवर्णी अश्वों से (किरणों से) सुशोभित रथ में शोभायमान होते हैं ॥९ ॥

[यहाँ सप्तवर्णी का तात्पर्य सात रंगों से है, जिसे विज्ञान ने बाद में 'वैनीआहपीनाला' के क्रम से दर्शाया है।]

५९६. उद्वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥१० ॥

तमिस्रा से दूर श्रेष्ठतम ज्योति को देखते हुए हम ज्योति स्वरूप और देवों में उत्कृष्टतम ज्योति (सूर्य) को प्राप्त हों ॥१० ॥

५९७. उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ॥११ ॥

हे मित्रों के मित्र सूर्यदेव !आप उदित होकर आकाश में उठते हुए हृदयरोग, शरीर की कान्ति का हरण करने वाले रोगों को नष्ट करें ॥११ ॥

[सूर्य किरणों की रोगनाशक शक्ति का उल्लेख किया गया है।]

५९८. शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि।
अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं नि दध्मसि ॥१२ ॥

हम अपने हरिमाण (शरीर को क्षीण करने वाले रोग) को शुकों (तोतों), रोपणाका (वृक्षों) एवं हरिद्रवों (हरी वनस्पतियों) में स्थापित करते हैं ॥१२ ॥

[शुक, रोपणाका तथा हरिद्रव ओषधियों के वर्ग विशेष भी कहे गये हैं।]

५९९. उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह। द्विषन्तं मह्यं रन्धयन्मो अहं द्विषते रधम् ॥१३ ॥

ये सूर्यदेव अपने सम्पूर्ण तेजों से उदित होकर हमारे सभी रोगों को वशवर्ती करें। हम उन रोगों के वश में कभी न आयें ॥१३ ॥



[सूक्त - ५१]

[ऋषि - सव्य आङ्गिरस । देवता-इन्द्र । छन्द -जगती, १४-१५ त्रिष्टुप् ।]

६००. अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियमिन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम् ।
यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषा भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत ॥१ ॥

हे याजको ! शत्रु को पराजित करने वाले, अनेकों द्वारा प्रशंसित, वैदिक ऋचाओं से स्तुति किये जाने योग्य, धन के सागर इन्द्रदेव की प्रार्थना करो । द्युलोक के विस्तार के समान जिनके कल्याणकारी कार्य चतुर्दिक् संव्याप्त हैं, ऐसे ज्ञानवान् इन्द्रदेव की सुखों की प्राप्ति के लिए अर्चना करो ॥१ ॥

६०१. अभीमवन्वन्त्स्वभिष्टिमूतयोऽन्तरिक्षप्रां तविषीभिरावृतम् ।
इन्द्रं दक्षास ऋभवो मदच्युतं शतक्रतुं जवनी सूनृतारुहत् ॥२ ॥

सहायता करने वाले, कर्मों में कुशल मरुत्देवों ने शत्रु के मद को चूर करने वाले, शतकर्मा, अभीष्ट पदार्थ देने वाले, अंतरिक्ष को तेज से पूर्ण करने वाले तथा अत्यन्त बलवान् इन्द्रदेव की स्तुति की । स्तोताओं की मधुर वाणी से इन्द्रदेव के उत्साह में अभिवृद्धि हुई ॥२ ॥

६०२. त्वं गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरपोतात्रये शतदुरेषु गातुवित् ।
ससेन चिद्विमदायावहो वस्वाजावद्रिं वावसानस्य नर्तयन् ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने अंगिरा ऋषि के लिए गौ समूह को छुड़ाया । अत्रि ऋषि के लिए शतद्वार वाली गुफा से मार्ग ढूँढ़ निकाला । विमद ऋषि के लिए अन्न से युक्त धन प्राप्त कराया और वज्र के द्वारा युद्धों में लोगों की रक्षा की, अतः आपकी महिमा का वर्णन कौन कर सकता है ? ॥ ३ ॥

६०३. त्वमपामपिधानाऽवृणोरपाधारयः पर्वते दानुमद्वसु ।
वृत्रं यदिन्द्र शवसावधीरहिमादित्सूर्यं दिव्यारोहयो दृशे ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने जलों से भरे हुए मेघों को मुक्त कराया । पर्वत के दस्यु वृत्र से धन को (अपहृत करके) धारण किया । बल से वृत्र और अहिरूप मेघों को विदीर्ण किया, जिससे सूर्यदेव आकाश में स्पष्ट दृष्टिगत होकर प्रकाशित हो सकें ॥४ ॥

६०४. त्वं मायाभिरप मायिनोऽधमः स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत ।
त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरः प्र ऋजिश्वानं दस्युहत्येष्वाविथ ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! जो राक्षस यज्ञ की हवियों को अपने मुँह में डाल लेते थे, उन प्रपंचियों को आपनें अपनी माया से मार गिराया । हे मनुष्यों द्वारा स्तुत्य इन्द्रदेव ! आपने अपना ही पेट भरने वाले पिप्रु नामक राक्षस के नगरों को ध्वस्त करके युद्ध में राक्षसों को विनष्ट करके 'ऋजिश्वा' ऋषि की रक्षा की ॥५ ॥

[यहाँ परमार्थ में लगने योग्य साधनों को भी स्वार्थ के लिए प्रयुक्त करने वालों का नाश करके लोक - मंगल का पथ प्रशस्त करने का भाव है ।]

६०५. त्वं कुत्सं शुष्णहत्येष्वाविथारन्धयोऽतिथिग्वाय शम्बरम् ।
महान्तं चिदर्बुदं नि क्रमीः पदा सनादेव दस्युहत्याय जज्ञिषे ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने युद्ध में 'शुष्ण' का नाश कर 'कुत्स' की रक्षा की । 'अतिथिग्व' ऋषि के लिये शम्बरासुर

को पराजित किया । महान् बलशाली अर्बुद को अपने पैरों से कुचल डाला । आप चिरकाल से ही असुरों का नाश करने के लिए उत्पन्न हुए हैं ॥६ ॥

६०६. त्वे विश्वा ताविषी सध्र्यग्घिता तव राधः सोमपीथाय हर्षते ।
तव वज्रश्चिकिते बाह्वोर्हितो वृश्चा शत्रोरव विश्वानि वृष्ण्या ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपमें सम्पूर्ण बल समाविष्ट हैं । आपका मन सोमपान करने के लिए सदा हर्षित रहता है । आपकी बाहों में धारण किया हुआ वज्र सर्वत्र प्रसिद्ध है, जिससे आप शत्रुओं के सम्पूर्ण बलों को काट डालते हैं ॥७ ॥

६०७. वि जानीह्यार्यान्ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान् ।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप आर्यों को जानें और अनार्यों को भी जानें । व्रतहीनों को वशीभूत करके यज्ञ कर्म करने वालों के लिये उन्हें नष्ट करें । हे सामर्थ्यवान् इन्द्रदेव ! आप सभी यज्ञों में यजमान को प्रेरणा प्रदान करें, ऐसा हम चाहते हैं ॥८ ॥

६०८. अनुव्रताय रन्धयन्नपव्रतानाभूभिरिन्द्रः श्नथयन्ननाभुवः ।
वृद्धस्य चिद्वर्धतो द्यामिनक्षतः स्तवानो वम्रो वि जघान संदिहः ॥९ ॥

ये इन्द्रदेव व्रतवानों के निमित्त व्रतहीनों को प्रताड़ित करते तथा आस्तिकों के निमित्त नास्तिकों को विनष्ट करते हैं । वे द्युलोक को क्षति पहुँचाने वाले असुरों को मार डालते हैं । ऐसे प्राचीन पुरुष इन्द्रदेव के बढ़ते हुए यश की 'वम्रऋषि' ने स्तुति की ॥९ ॥

६०९. तक्षद्यत्त उशना सहसा सहो वि रोदसी मज्मना बाधते शवः ।
आ त्वा वातस्य नृमणो मनोयुज आ पूर्यमाणमवहन्नभि श्रवः ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! 'उशना' ऋषि ने अपनी स्तुतियों से आपके बल को तीक्ष्ण किया । आपके उस बल की प्रचण्डता से द्युलोक और पृथ्वी भय से युक्त हुए । मनुष्यों से स्तुत्य हे इन्द्रदेव ! इच्छा मात्र से योजित होने वाले अश्वों द्वारा हमारे निमित्त अन्नादि से पूर्ण होकर यशस्वी होने यहाँ आएँ ॥१० ॥

६१०. मन्दिष्ट यदुशने काव्ये सचाँ इन्द्रो वङ्कू वङ्कुतराधि तिष्ठति ।
उग्रो ययिं निरपः स्रोतसासृजद्वि शुष्णस्य दृंहिता ऐरयत्पुरः ॥११ ॥

'उशना' की स्तुति से प्रसन्न होकर इन्द्रदेव अति वेग वाले अश्वों पर आरूढ़ हुए । तदनन्तर मेघ से जलप्रवाहों को बहाया और 'शुष्ण' (शोषण करने वाले) असुर के दृढ़ नगरों को ध्वस्त किया ॥११ ॥

६११. आ स्मा रथं वृषपाणेषु तिष्ठसि शार्यातस्य प्रभृता येषु मन्दसे ।
इन्द्र यथा सुतसोमेषु चाकनोऽनर्वाणं श्लोकमा रोहसे दिवि ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सोमरसों को पीने के निमित्त रथ पर अधिष्ठित होकर जाते हैं । जिन सोमरसों से आप प्रसन्न होते हैं, वे शार्य्यात द्वारा निष्पन्न हुए थे । आप जैसे ही सोमयज्ञों की कामना करते हैं, वैसे ही आपका उज्ज्वल यश वृद्धि को प्राप्त करता है ॥१२ ॥



६१२. अददा अर्भां महते वचस्यवे कक्षीवते वृचयामिन्द्र सुन्वते ।
मेनाभवो वृषणश्वस्य सुक्रतो विश्वेत्ता ते सवनेषु प्रवाच्या ॥१३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने महान् स्तुति करने एवं सोम अभिषव करने वाले कक्षीवान् राजा के लिए अल्प विवेचन योग्य विद्याओं को अभिव्यक्त किया । हे उत्तम कर्मा इन्द्रदेव ! आपने वृषणश्व राजा के निमित्त प्रेरक वाणियाँ प्रकट कीं । आपके ये सभी कर्म सोम सवनों में बताने योग्य हैं ॥१३ ॥

६१३. इन्द्रो अश्रायि सुध्यो निरेके पज्रेषु स्तोमो दुर्यो न यूपः ।
अश्वयुर्गव्यू रथयुर्वसूयुरिन्द्र इद्रायः क्षयति प्रयन्ता ॥१४ ॥

निराश्रितों के लिए एकमात्र इन्द्रदेव ही आश्रय देने वाले हैं । द्वार में स्थिर स्तम्भ की भाँति इन्द्रदेव के आश्रय के लिए प्रजाओं में इन्द्रदेव की स्तुति अनवरत स्थिर रहती है । अश्वों, गायों, रथों और धनों के शासक इन्द्रदेव ही प्रजाओं को अभीष्ट ऐश्वर्य प्रदान करते रहते हैं ॥१४ ॥

६१४. इदं नमो वृषभाय स्वराजे सत्यशुष्माय तवसेऽवाचि ।
अस्मिन्निन्द्र वृजने सर्ववीराः स्मत्सूरिभिस्तव शर्मन्त्स्याम ॥१५ ॥

हम बलशाली, स्वप्रकाशित, सत्यरूप सामर्थ्यवाले, श्रेष्ठ इन्द्रदेव का स्तुतियों सहित अभिवादन करते हैं । हे इन्द्रदेव ! इस संग्राम में हम सभी शूरवीरों सहित आपके आश्रय में उपस्थित हैं ॥१५ ॥

[सूक्त - ५२]

[ऋषि- सव्य आङ्गिरस । देवता-इन्द्र । छन्द-जगती,१३,१५ त्रिष्टुप् ।]

६१५. त्यं सु मेषं महया स्वर्विदं शतं यस्य सुभ्वः साकमीरते ।
अत्यं न वाजं हवनस्यदं रथमेन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥१ ॥

हे अध्वर्यु ! उन शत्रुओं से स्पर्धा करने वाले, धनदान के निमित्त अभीष्ट स्थल पर जाने वाले इन्द्रदेव का विधिवत् पूजन करो । अश्व के समान शीघ्रता से यज्ञ स्थल पर पहुँचने वाले इन्द्रदेव के श्रेष्ठ यश की, अपनी रक्षा के लिए स्तुति करते हुए हम उन्हें रथ की ओर लौटा रहे हैं ॥१ ॥

६१६. स पर्वतो न धरुणेष्वच्युतः सहस्रमूतिस्तविषीषु वावृधे ।
इन्द्रो यद्वृत्रमवधीन्नदीवृतमुब्जन्नर्णांसि जर्हृषाणो अन्धसा ॥२ ॥

सोमयुक्त हविष्यान्न पाकर हर्षित होते हुए इन्द्रदेव ने जल प्रवाहों के अवरोधक वृत्र को मारकर पानी में बहाया । जल प्रवाहों को संरक्षण प्रदान करने के निमित्त इन्द्रदेव अपने बलों को बढ़ाकर जलों में पर्वत की भाँति अविचल स्थिर हो गये ॥२ ॥

६१७. स हि द्वरो द्वरिषु वव्र ऊधनि चन्द्रबुध्नो मदवृद्धो मनीषिभिः ।
इन्द्रं तमह्वे स्वपस्यया धिया मंहिष्ठरातिं स हि पप्रिरन्धसः ॥३ ॥

वे इन्द्रदेव शत्रुओं के लिए विकराल शत्रुरूप हैं । वे आकाश में व्याप्त आह्लादरूप हैं । विद्वानों द्वारा प्रदत्त सोम से वृद्धि को पाते हैं । महान् ऐश्वर्यदाता इन्द्रदेव को हविष्यान्न से तृप्त करने के निमित्त हम उत्तम स्तुतिरूपी वाणी द्वारा बुलाते हैं ॥३ ॥

६१८. आ यं पृणन्ति दिवि सद्मबर्हिषः समुद्रं न सुभ्व१ स्वा अभिष्टयः ।
तं वृत्रहत्ये अनु तस्थुरूतयः शुष्मा इन्द्रमवाता अह्रुतप्सवः ॥४ ॥

जैसे नदियाँ समुद्र को पूर्ण करती हैं, वैसे ही कुश के आसन पर प्रतिष्ठित हुए द्युलोक निवासक इन्द्रदेव को तृप्त करते हैं । अपनी इच्छा से सुखपूर्वक, बलवान्, संरक्षक, शत्रुरहित, शुभ्र कान्ति वाले मरुद्गण वृत्र हनन करने में उन इन्द्रदेव की सहायता करते हैं ॥४ ॥

६१९. अभि स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यतो रघ्वीरिव प्रवणे सस्रुरूतयः ।
इन्द्रो यद्वज्री धृषमाणो अन्धसा भिनद्वलस्य परिधीँरिव त्रितः ॥५ ॥

सोमपान से हर्षित हुए इन्द्रदेव उत्तम वृष्टि न करने वाले असुर से युद्ध हेतु उद्यत हुए । संरक्षक मरुद्गण भी नदियों के प्रवाह की तरह उनकी ओर अभिमुख हुए । सोम से वृद्धि पाने वाले वज्रधारी इन्द्रदेव ने उस असुर को बलपूर्वक मारकर तीनों सीमाओं को मुक्त किया ॥५ ॥

६२०. परीं घृणा चरति तित्विषे शवोऽपो वृत्वी रजसो बुध्नमाशयत् ।
वृत्रस्य यत्प्रवणे दुर्गृभिश्वनो निजघन्थ हन्वोरिन्द्र तन्यतुम् ॥६ ॥

जब वृत्र - असुर जलों को बाधित कर अंतरिक्ष के गर्भ में सो गया था, तब जलों को मुक्त करने के लिए हे इन्द्रदेव ! आपने कठिनता से वश में आने वाले वृत्र की ठोड़ी पर वज्र से प्रहार किया । इससे आपकी कीर्ति सर्वत्र फैली और बल प्रकाशित हुआ ॥६ ॥

६२१. ह्रदं न हि त्वा न्यृषन्त्यूर्मयो ब्रह्माणीन्द्र तव यानि वर्धना ।
त्वष्टा चित्ते युज्यं वावृधे शवस्ततक्ष वज्रमभिभूत्योजसम् ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! जैसे जलप्रवाह जलाशय को प्राप्त होते हैं, वैसे आपकी वृद्धि करने वाले हमारे मन्त्र रूप स्तोत्र आपको प्राप्त होते हैं । त्वष्टादेव ने अपने बल को नियोजित कर आपके बल को बढ़ाया और शत्रु को पराभूत करने में समर्थ आपके वज्र को तीक्ष्ण किया ॥७ ॥

६२२. जघन्वाँ उ हरिभिः संभृतक्रतविन्द्र वृत्रं मनुषे गातुयन्नपः ।
अयच्छथा बाह्वोर्वज्रमायसमधारयो दिव्या सूर्यं दृशे ॥८ ॥

हे श्रेष्ठ कर्म सम्पादक इन्द्रदेव ! आपने घोड़ों पर चढ़कर, फौलादी वज्र को बाहुओं में धारण कर मनुष्यों के हितों के लिए वृत्र को मारा,जल मार्गों को खोला और दर्शन के लिए सूर्यदेव को द्युलोक में प्रतिष्ठित किया ॥८ ॥

६२३. बृहत्स्वश्चन्द्रममवद्यदुक्थ्य१मकृण्वत भियसा रोहणं दिवः ।
यन्मानुषप्रधना इन्द्रमूतयः स्वर्नृषाचो मरुतोऽमदन्ननु ॥९ ॥

वृत्र के भय से मनुष्यों ने आनन्ददायक, बलप्रद, आह्लादक और स्वर्गिक उक्तियों की रचना की । तब मनुष्यों के हितार्थ युद्ध करने वाले, उनके निमित्त श्रेष्ठ कर्म करने वाले, आकाश - रक्षक इन्द्रदेव की मरुद्गणों ने आकर सहायता की ॥९ ॥

६२४. द्यौश्चिदस्यामवाँ अहेः स्वनादयोयवीद्भियसा वज्र इन्द्र ते ।
वृत्रस्य यद्बद्बधानस्य रोदसी मदे सुतस्य शवसाभिनच्छिरः ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! सोमपान जनित हर्ष से आपने द्युलोक और पृथ्वी को प्रताड़ित करने वाले वृत्र के सिर को अपने वज्र के बलपूर्वक आघात द्वारा काट दिया । व्यापक आकाश भी उस वृत्र के विकराल शब्द से प्रकम्पित हुआ ॥१० ॥



६२५. यदिन्न्विन्द्र पृथिवी दशभुजिरहानि विश्वा ततनन्त कृष्टयः ।
अत्राह ते मघवन्विश्रुतं सहो द्यामनु शवसा बर्हणा भुवत् ॥११ ॥

हे इन्द्रदेव ! जब पृथ्वी दस गुने साधनों से युक्त हो जाय और मनुष्य भी दिनों-दिन वृद्धि को प्राप्त होते रहें, तब हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! आपका बल और पराक्रम भी पृथ्वी से द्युलोक तक सर्वत्र फैलकर प्रसिद्ध हो ॥१॥

६२६. त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः ।
चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसोऽपः स्वः परिभूरेष्या दिवम् ॥१२ ॥

हे संघर्षक मनवाले इन्द्रदेव ! इस अंतरिक्ष के ऊपर रहते हुए आपने अपने ज्योतिर्मय स्वरूप के संरक्षण के लिए इस पृथ्वी को बनाया । स्वयं अन्तरिक्ष और द्युलोक को व्याप्त करके बल की प्रतिमूर्ति के रूप में प्रतिष्ठित हैं ॥१२ ॥

६२७. त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिंर्भूः ।
विश्वमाप्रा अन्तरिक्षं महित्वा सत्यमद्धा नकिरन्यस्त्वावान् ॥१३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप विस्तृत भूमि के प्रतिरूप हैं । आप महान् बलों से युक्त व्यापक आकाश लोक के भी स्वामी हैं और अपनी महत्ता से सम्पूर्ण अन्तरिक्ष को पूर्ण करते हैं । निःसन्देह आपके समान अन्य कोई नहीं है ।१३ ॥

६२८. न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः ।
नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक् ॥१४ ॥

जिनके विस्तार को द्यावा और पृथिवी नहीं पा सकते । अन्तरिक्ष का जल भी जिनके अन्त को नहीं पा सकते । उत्तम वृष्टि में बाधक वृत्र के साथ युद्ध करते हुए जिनके उत्साह की तुलना नहीं की जा सकती, ऐसे हे इन्द्रदेव ! आप अकेले ही सब में व्याप्त होकर अन्यान्य विश्वों को भी प्रकट करते हैं ॥१४ ॥

६२९. आर्चन्नत्र मरुतः सस्मिन्नाजौ विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ।
वृत्रस्य यद्भृष्टिमता वधेन नि त्वमिन्द्र प्रत्यानं जघन्थ ॥१५ ॥

हे इन्द्रदेव ! वृत्र के साथ सभी युद्धों में मरुतों ने आपकी अर्चना की तथा सभी देवों ने आपको उत्साहित किया, तब आपने वृत्र के मुख पर, दुष्ट बुद्धि वालों को मारने वाले वज्र का प्रहार किया ॥१५ ॥

[सूक्त - ५३]

[**ऋषि** - सव्य आङ्गिरस । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - जगती, १०-११ त्रिष्टुप् ।]

६३०. न्यू३ षु वाचं प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः ।
नू चिद्धि रत्नं ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते ॥१ ॥

हम विवस्वान् के यज्ञ में महान् इन्द्रदेव की उत्तम वचनों से स्तुति करते हैं । जिस प्रकार सोने वालों का धन चोर सहजता से ले जाते हैं, उसी प्रकार इन्द्रदेव ने (असुरों के) रत्नों को प्राप्त किया । धन दान करने वालों की निन्दा करना सराहनीय नहीं है ॥१ ॥

६३१. दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः ।
शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः सखा सखिभ्यस्तमिदं गृणीमसि ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप अश्वों, गौवों, धन-धान्यों के देने वाले हैं । आप, सबका पालन-पोषण करते हुए उन्हें उत्तम कर्म की प्रेरणा प्रदान करने वाले तेजस्वी वीर हैं । आप संकल्पों को नष्ट न करने वाले तथा मित्रों के भी मित्र हैं । इस प्रकार हम आपकी स्तुति करते हैं ॥२ ॥

६३२. शचीव इन्द्र पुरुकृद्द्युमत्तम तवेदिदमभितश्चेकिते वसु ।
अतः संगृभ्याभिभूत आ भर मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः ॥३ ॥

शक्तिशाली, बहु-कर्मा, दीप्तिमान् हे इन्द्रदेव ! सम्पूर्ण धन आपका ही है - यह सर्वज्ञात है । वृत्र का पराभव करके उसका धन लेकर, हमें उससे अभिपूरित करें । आप अपने प्रशंसकों की कामना को अवश्य पूर्ण करें ॥३ ॥

६३३. एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना ।
इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि ॥४ ॥

इन तेजस्वी हवियों और तेजस्वी सोमरसों द्वारा तृप्त होकर हे इन्द्रदेव ! हमें गौओं और घोड़ों (पोषण और प्रगति) से युक्त धनों को देकर हमारी दरिद्रता का निवारण करें । सोमरसों से तृप्त होने वाले, उत्तम मन वाले, इन्द्रदेव के द्वारा हम शत्रुओं को नष्ट करते हुए द्वेषरहित होकर अन्नों से सम्यक् रूप से हर्षित हों ॥४ ॥

६३४. समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः ।
सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाश्वावत्या रभेमहि ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम धन-धान्यों से सम्पन्न हों, बहुतों को हर्ष प्रदान करने वाली सम्पूर्ण तेजस्विता तथा बलों से सम्पन्न हों । हम वीर पुत्रों, श्रेष्ठ गौवों एवं अश्वों को प्राप्त करने की उत्तम बुद्धि से युक्त हों ॥५ ॥

६३५. ते त्वा मदा अमदन्तानि वृष्ण्या ते सोमासो वृत्रहत्येषु सत्पते ।
यत्कारवे दश वृत्राण्यप्रति बर्हिष्मते नि सहस्राणि बर्हयः ॥६ ॥

हे सज्जनों के पालक इन्द्रदेव ! वृत्र को मारने वाले संग्राम में आपने बलवर्द्धक सोमरस का पान करके आनन्द एवं उत्साह को प्राप्त किया और तब आपने संकल्प लेकर याजकों के निमित्त दस हजार असुरों का संहार किया ॥ ६ ॥

६३६. युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा ।
नम्या यदिन्द्र सख्या परावति निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम् ॥७ ॥

हे संघर्षशील शक्ति-सम्पन्न इन्द्रदेव ! आप शत्रु योद्धाओं से सर्वदा युद्ध करते रहे हैं, उनके अनेकों नगरों को आपने अपने बल से ध्वस्त किया है । उन नमनशील, योग्य मित्र, मरुतों के सहयोग से आपने प्रपंची असुर 'नमुचि' को मार दिया है ॥७ ॥

६३७. त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीस्तेजिष्ठ यातिथिग्वस्य वर्तनी ।
त्वं शता वङ्गृदस्याभिनत्पुरोऽनानुदः परिषूता ऋजिश्वना ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने 'अतिथिग्व' को प्रताड़ित करने वाले 'करंज' और 'पर्णय' नामक असुरों का तेजस्वी अस्त्रों से वध किया । सहायकों के बिना ही 'वंगृद' के सैकड़ों नगरों को गिराकर घिरे हुए 'ऋजिश्वा' को मुक्त किया ॥८ ॥



६३८. त्वमेताञ्जनराज्ञो द्विर्दशाबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः ।

षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ॥९ ॥

हे प्रसिद्ध इन्द्रदेव ! आपने बन्धु-रहित 'सुश्रवस' राजा के सम्मुख लड़ने के लिये खड़े हुए बीस राजाओं को तथा उनके साठ हजार निन्यानवे सैनिकों को अपने दुष्प्राप्य चक्र (व्यूह- अथवा गतिशील प्रक्रिया) द्वारा नष्ट कर दिया ॥९ ॥

६३९. त्वमाविथ सुश्रवसं तवोतिभिस्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाणम् ।

त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं महे राज्ञे यूने अरन्धनायः ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने अपने रक्षण - साधनों से 'सुश्रवस' की और पोषण साधनों से 'तूर्वयाण' की रक्षा की। आपने इस महान् तरुण राजा के लिये 'कुत्स', ' अतिथिग्व' और 'आयु' नामक राजाओं को वश में किया ॥१० ॥

६४०. य उदृचीन्द्र देवगोपाः सखायस्ते शिवतमा असाम ।

त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥११ ॥

यज्ञ में स्तुत्य हे इन्द्रदेव ! देवों द्वारा रक्षित , हम आपके मित्र हैं । हम सर्वदा सुखी हों । आपकी कृपा से हम उत्तम बलों से युक्त ,दीर्घ आयु को भली प्रकार धारण करते हैं तथा आपकी स्तुति करते हैं ॥११ ॥

[सूक्त - ५४]

[ऋषि-सव्य आङ्गिरस । देवता-इन्द्र । छन्द-जगती, ६,८,९,११ त्रिष्टुप् ।]

६४१. मा नो अस्मिन्मघवन्पृत्स्वंहसि नहि ते अन्तः शवसः परीणशे ।

अक्रन्दयो नद्यो३ रोरुवद्वना कथा न क्षोणीर्भियसा समारत ॥१ ॥

जल एवं नदियों को गतिशील बनाने वाले हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! आप महान् शक्ति सम्पन्न हैं । हमें युद्ध जन्य दुःखों से बचायें एवं हम सबको भय मुक्त करें ॥१ ॥

६४२. अर्चा शक्राय शाकिने शचीवते शृण्वन्तमिन्द्रं महयन्नभि ष्टुहि ।

यो धृष्णुना शवसा रोदसी उभे वृषा वृषत्वा वृषभो न्यृञ्जते ॥२ ॥

हे मनुष्यो ! सर्वशक्तिमान्, साधनों से सम्पन्न, तेजस्वी इन्द्रदेव का आप पूजन करें । स्तुतियों को सुनने वाले इन्द्रदेव की महत्ता का गान करें । प्रचण्ड शक्ति से वर्षा करने वाले इन्द्रदेव अपनी सामर्थ्य से युक्त होकर सबके अभीष्ट की वर्षा करते हैं । अपने बल से 'पृथ्वी ' और 'द्युलोक' को समायोजित करते हैं ॥२ ॥

६४३. अर्चा दिवे बृहते शूष्यं१ वचः स्वक्षत्रं यस्य धृषतो धृषन्मनः ।

बृहच्छ्रवा असुरो बर्हणा कृतः पुरो हरिभ्यां वृषभो रथो हि षः ॥३ ॥

इन्द्रदेव शत्रुओं के विनाश के लिये शारीरिक एवं मानसिक शक्ति से सम्पन्न हैं । ऐसे तेजस्वी और महान् आत्मबल सम्पन्न इन्द्रदेव को आदरयुक्त वचनों द्वारा पूजन करें । वे इन्द्रदेव महान् यशस्वी प्राणशक्ति को बढ़ाने वाले शत्रु-नाशक, अश्वयोजित रथ पर अधिष्ठित हैं ॥३ ॥



६४४. त्वं दिवो बृहतः सानु कोपयोऽव त्मना धृषता शम्बरं भिनत्।
यन्मायिनो व्रन्दिनो मन्दिना धृषच्छितां गभस्तिमशनिं पृतन्यसि ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! आपने प्रपंची असुर के सैन्य दल को उत्साहपूर्वक तीक्ष्ण वज्र के प्रहार से नष्ट कर दिया है। आप विशाल द्युलोक के उच्च स्थान को प्रकम्पित करते हैं और अपने बल से असुर 'शम्बर' को मार गिराते हैं ॥४॥

६४५. नि यद्वृणक्षि श्वसनस्य मूर्धनि शुष्णस्य चिद्व्रन्दिनो रोरुवद्वना।
प्राचीनेन मनसा बर्हणावता यदद्या चित्कृणवः कस्त्वा परि ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! आपने गर्जना करते हुए, जलों को वृष्टि के लिये प्रेरित करने के निमित्त 'शुष्ण' का वध किया। प्राचीन काल से आज तक आप सामर्थ्यवान् मन से यही काम करते आये हैं। आपके ऊपर कौन है, जो आप को रोक सके ? ॥५॥

६४६. त्वमाविथ नर्यं तुर्वशं यदुं त्वं तुर्वीतिं वय्यं शतक्रतो।
त्वं रथमेतशं कृत्व्ये धने त्वं पुरो नवतिं दम्भयो नव ॥६॥

सैकड़ों यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म सम्पन्न करने वाले हे इन्द्रदेव ! आपने युद्ध जन्य कठिन परिस्थितियों में नर्य, तुर्वश, युद्ध तथा वय्य कुलोत्पन्न तुर्वीति की रक्षा की। आपने शत्रुओं के निन्यानवे (अर्थात् अनेकों) नगरों को ध्वस्त करके रथ और एतश नामक ऋषि को संरक्षित किया है ॥६॥

६४७. स घा राजा सत्पतिः शूशुवज्जनो रातहव्यः प्रति यः शासमिन्वति।
उक्था वा यो अभिगृणाति राधसा दानुरस्मा उपरा पिन्वते दिवः ॥७॥

जो राजा सत्कर्मों का पोषक और समृद्धिशाली है, उसके शासन में रहने वाले मनुष्य उत्तम हवि को देने वाले होते हैं। वे हविष्यान्न के साथ उत्तम वचनों द्वारा स्तुतियाँ करते हैं। उसी राज्य के लिये दानशील इन्द्रदेव द्युलोक से मेघों द्वारा वृष्टि करते हैं ॥७॥

६४८. असमं क्षत्रमसमा मनीषा प्र सोमपा अपसा सन्तु नेमे।
ये त इन्द्र ददुषो वर्धयन्ति महि क्षत्रं स्थविरं वृष्ण्यं च ॥८॥

सोम पान करने वाले हे इन्द्रदेव ! आपके बल की, बुद्धि की और हर्षदायक कर्मों की तुलना नहीं की जा सकती। हवि समर्पित करने वाले मनुष्यों को दिये गये आपके अनुदान, महान् पराक्रम की महत्ता और सामर्थ्य को बढ़ाने वाले हैं ॥८॥

६४९. तुभ्येदेते बहुला अद्रिदुग्धाश्चमूषदश्चमसा इन्द्रपानाः।
व्यश्नुहि तर्पया काममेषामथा मनो वसुदेयाय कृष्व ॥९॥

हे इन्द्रदेव! पाषाणों से कूटकर और छानकर बहुत से पात्रों में पेय सोम रखा हुआ है। यह सोम आपके निमित्त है। आप इसे पानकर अपनी इच्छा को तृप्त करें, तत्पश्चात् उत्साहपूर्वक हमें अपार धन-वैभव प्रदान करें ॥९॥

६५०. अपामतिष्ठद्धरुणह्वरं तमोऽन्तर्वृत्रस्य जठरेषु पर्वतः।
अभीमिन्द्रो नद्यो वव्रिणा हिता विश्वा अनुष्ठाः प्रवणेषु जिघ्नते ॥१०॥

जल - प्रवाहों को रोकने वाले पर्वत रूप वृत्र ने अपने उदर में जलों को स्थिर कर लिया, जिससे तमिस्रा व्याप्त हुई, तब इन्द्रदेव ने वृत्र द्वारा रोके हुए जल-प्रवाहों को मुक्त करके नीचे की ओर बहाया ॥१०॥



६५१. स शेवृधमधि धा द्युम्नमस्मे महि क्षत्रं जनाषाळिन्द्र तव्यम्।

रक्षा च नो मघोनः पाहि सूरीन्राये च नः स्वपत्या इषे धाः ॥११ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सुख, यश, सभी लोगों को वशीभूत करने वाला राज्द और प्रशंसित सामर्थ्य हममें स्थापित करें। हमारे धनों की रक्षा करते हुए हमें उत्तम संतान एवं अधिकाधिक धन-धान्य प्रदान कर ऐश्वर्यवान् बनायें ॥११ ॥

[सूक्त - ५५]

[**ऋषि** - सव्य आङ्गिरस । **देवता**-इन्द्र । **छन्द** - जगती]

६५२. दिवश्चिदस्य वरिमा वि पप्रथ इन्द्रं न मह्ना पृथिवी चन प्रति।

भीमस्तुविष्माञ्चर्षणिभ्य आतपः शिशीते वज्रं तेजसे न वंसगः ॥१ ॥

इन्द्रदेव की श्रेष्ठता पृथ्वी से द्युलोक तक विस्तृत है। अपने बल से उन्हें पराजित करने वाला कोई नहीं है। शत्रुओं के प्रति अत्यन्त विकराल, बलवान् शत्रुओं को संतप्त करने वाले इन्द्रदेव अपने वज्र का प्रहार करने के लिये उसे उसी प्रकार तीक्ष्ण करते हैं, जैसे बैल लड़ने के लिये अपने सींगों को तेज करता है ॥१ ॥

६५३. सो अर्णवो न नद्यः समुद्रियः प्रति गृभ्णाति विश्रिता वरीमभिः।

इन्द्रः सोमस्य पीतये वृषायते सनात्स युध्म ओजसा पनस्यते ॥२ ॥

वे इन्द्रदेव अपनी उत्कृष्टता से अन्तरिक्ष में व्याप्त जल - प्रवाहों को, समुद्र द्वारा नदियों को धारण करने के समान धारण करते हैं। वे इन्द्रदेव सोम पीने की तीव्र अभिलाषा रखते हैं। चिरकाल से वे युद्धों में अपनी सामर्थ्य के बल पर प्रशंसा को प्राप्त होते रहे हैं ॥२ ॥

६५४. त्वं तमिन्द्र पर्वतं न भोजसे महो नृम्णस्य धर्मणामिरज्यसि।

प्र वीर्येण देवताति चेकिते विश्वस्मा उग्रः कर्मणे पुरोहितः ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप महान् बलों के धारणकर्त्ता हैं। अपने बल से पर्वत के समान दृढ़, शत्रुओं (मेघों) को विदीर्ण कर, प्रजाओं के भोग के लिये जल देकर उन पर शासन करते हैं। आप सभी कर्मों में अग्रणी और बलों के कारण देवों में श्रेष्ठ माने जाते हैं ॥३ ॥

६५५. स इद्वने नमस्युभिर्वचस्यते चारु जनेषु प्रब्रुवाण इन्द्रियम्।

वृषा छन्दुर्भवति हर्यतो वृषा क्षेमेण धेनां मघवा यदिन्वति ॥४ ॥

मनुष्यों में अपनी सामर्थ्य को प्रकट करते हुए सुन्दर रूप वाले वे धनवान् और बलवान् इन्द्रदेव, विनयशीलों की स्तुतियों को सुनकर प्रसन्न होते हैं तथा धनादि की कामना करने वालों को अभीष्ट पदार्थ प्रदान करते हैं ॥४ ॥

६५६. स इन्महानि समिथानि मज्मना कृणोति युध्म ओजसा जनेभ्यः।

अधा चन श्रद्दधति त्विषीमत इन्द्राय वज्रं निघनिघ्नते वधम् ॥५ ॥

वे वीर इन्द्रदेव मनुष्यों के हित के लिए अपने महान् बल से बड़े-बड़े युद्धों को जीतते हैं। अपने घातक वज्र से शत्रुओं का विनाश करते हैं, जिससे मनुष्य तेजस्वी इन्द्रदेव के आगे श्रद्धा से झुकते हैं ॥५ ॥

६५७. स हि श्रवस्युः सदनानि कृत्रिमा क्ष्मया वृधान ओजसा विनाशयन्।
ज्योतींषि कृण्वन्नवृकाणि यज्यवेऽव सुक्रतुः सर्तवा अपः सृजत्॥६॥

वे यश की इच्छा वाले, उत्तमकर्मा इन्द्रदेव अपने तेजस्वी बलों से शत्रुओं के घरों को नष्ट करते हुए वृद्धि को प्राप्त हुए, सूर्यादि नक्षत्रों के प्रकाश को रोकने वाले आवरणों को दूर किया और याजक के लिए जलों के प्रवाह को खोल दिया ॥६॥

६५८. दानाय मनः सोमपावन्नस्तु तेऽर्वाञ्चा हरी वन्दनश्रुदा कृधि।
यमिष्ठासः सारथयो य इन्द्र ते न त्वा केता आ दभ्नुवन्ति भूर्णयः॥७॥

सोमपान करने वाले हे इन्द्रदेव ! आपका मन दान के लिये प्रवृत्त हो । आप हमारी स्तुतियाँ सुनते हैं । अपने अश्वों को हमारे यज्ञ की ओर अभिमुख करें । हे इन्द्रदेव ! आपके ये सारथी नियंत्रण में पूर्ण कुशल हैं, जिससे ये प्रबल अवरोधों से भी विचलित नहीं होते ॥७॥

६५९. अप्रक्षितं वसु बिभर्षि हस्तयोरषाळ्हं सहस्तन्वि श्रुतो दधे।
आवृतासोऽवतासो न कर्तृभिस्तनूषु ते क्रतव इन्द्र भूरयः॥८॥

हे इन्द्रदेव ! आप अपने दोनों हाथों में अक्षय धन को धारण करते हैं । आपके शरीर में प्रचण्ड बल स्थापित है । स्तुति करने वालों ने आप के शरीरों को बढ़ाया है । मनुष्यों से घिरे कुएँ के समान आपके शरीर प्रसिद्ध कर्मों से घिरे हुए हैं ॥८॥

[इस ऋचा में लिखा है कि श्रेष्ठ कर्मों से इन्द्रदेव के शरीर घिरे रहते हैं । संगठक सत्ता को वेद में इन्द्रदेव कहा गया है । जिन शरीरों में इन्द्रदेव का आधिपत्य है, उनकी शक्तियाँ संगठित रहती हैं । बिखरी हुई शक्ति वाले शरीरों से कर्मों की सिद्धि नहीं होती, संगठित शक्ति युक्त शरीरों से कर्म सिद्ध होते हैं, अतः वे शरीर कर्मों से घिरे रहते हैं ।]

[सूक्त - ५६]

[ऋषि - सव्य आङ्गिरस । देवता- इन्द्र । छन्द -जगती ।]

६६०. एष प्र पूर्वीरव तस्य चम्रिषोऽत्यो न योषामुदयंस्त भुर्वणिः।
दक्षं महे पाययते हिरण्ययं रथमावृत्या हरियोगमृभ्वसम्॥१॥

जगत् का पोषण करने वाले इन्द्रदेव यजमान के बहुसंख्यक सोमपात्रों को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकारते हैं । वे यजमान, सुन्दर अश्वों से योजित, दीप्तिमान् स्वर्णिम रथ में घिरे बैठे महान् बलवान् इन्द्रदेव को सोम प्रिलाते हैं ॥१॥

६६१. तं गूर्तयो नेमन्निषः परीणसः समुद्रं न संचरणे सनिष्यवः।
पतिं दक्षस्य विदथस्य नू सहो गिरिं न वेना अधि रोह तेजसा॥२॥

जिस प्रकार धन के इच्छुक समुद्र की ओर प्रस्थान करते हैं, उसी प्रकार हविदाता यजमान इन्द्रदेव की ओर हवि ले जाते हुए विचरण करते हैं । हे स्तोता ! जैसे नदियाँ पहाड़ को घेरती हुई चलती हैं, वैसे ही आपकी स्तुतियाँ महान् बलों के स्वामी, यज्ञ के स्वामी, संघर्षक इन्द्रदेव को अपनी तेजस्विता से आवृत कर लें ॥२॥

[वैदिक युग में समुद्र से रत्न आदि प्राप्त करने की विद्या का ज्ञान था ।]



६६२. स तुर्वणिर्महाँ अरेणु पौंस्ये गिरेर्भृष्टिर्न भ्राजते तुजा शवः ।

येन शुष्णं मायिनमायसो मदे दुध्र आभूषु रामयन्नि दामनि ॥ ३ ॥

वे महान् इन्द्रदेव शत्रुओं का नाश करने वाले और फौलादी कवच को धारण करने वाले हैं । वे मायावी असुर "शुष्ण" को कारागार में रस्सियों से बाँधकर रखते हैं । उनका निन्दारहित बल संग्राम में पर्वत-शिखर तुल्य प्रतिभासित होता है ॥३ ॥

६६३. देवी यदि तविषी त्वावृधोतय इन्द्रं सिषक्त्युषसं न सूर्यः ।

यो धृष्णुना शवसा बाधते तम इयर्ति रेणुं बृहदर्हरिष्वणिः ॥४ ॥

हे स्तोता ! सूर्यदेव के द्वारा देवी उषा को प्राप्त करने के समान आपके स्तवन द्वारा प्रवृद्ध बल इन्द्रदेव को प्राप्त होता है; तब वे अपने संघर्षशील बल से दुष्कर्म रूपी तमिस्रा का निवारण करते हैं । शत्रुओं को रुलाने में समर्थ इन्द्रदेव संग्राम में (सेना के माध्यम से) बहुत धूलि उड़ाते हैं ॥४ ॥

६६४. वि यत्तिरो धरुणमच्युतं रजोऽतिष्ठिपो दिव आतासु बर्हणा ।

स्वर्मीळ्हे यन्मद इन्द्र हर्ष्याहन्वृत्रं निरपामौब्जो अर्णवम् ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने बादलों द्वारा धारण किये हुए जलों को आकाश की दिशाओं में स्थापित किया । सोम से हर्षित होकर संघर्षक बल से वृत्र को युद्ध में मारा, तब वृत्र द्वारा ढके जलों को नीचे की ओर प्रवाहित किया ॥५ ॥

६६५. त्वं दिवो धरुणं धिष ओजसा पृथिव्या इन्द्र सदनेषु माहिनः ।

त्वं सुतस्य मदे अरिणा अपो वि वृत्रस्य समया पाष्यारुजः ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने अपने महान् बल से जलों को अन्तरिक्ष से पृथ्वी पर स्थापित किया । आपने सोम पीकर उत्साहपूर्वक संघर्षक बल से वृत्र को मारा और पृथ्वी के सब स्थानों को जलों से तृप्त किया ॥६ ॥

[सूक्त - ५७]

[**ऋषि** - सव्य आङ्गिरस । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - जगती ।]

६६६. प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे ।

अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम् ॥१ ॥

अत्यन्त दानी, महान् ऐश्वर्यशाली, सत्य-स्वरूप, पराक्रमी इन्द्रदेव की हम बुद्धिपूर्वक स्तुति करते हैं । नीचे की ओर प्रवाहित जल - प्रवाहों के समान इनके बलों को कोई भी धारण नहीं कर सकता । जिस बल से प्राप्य ऐश्वर्य को मनुष्यों के लिये जीवन भर प्रदान करने का उनका व्रत खुला हुआ है ॥१ ॥

६६७. अध ते विश्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः ।

यत्पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपका स्वर्ण सदृश दीप्तिमान् मारक वज्र मेघों को विदीर्ण करने में तत्पर हुआ, तब हे इन्द्रदेव ! सारा जगत् आपके लिए यज्ञ-कर्मों में संलग्न हुआ । जल के नीचे की ओर प्रवाहित होने के समान याजकों के द्वारा समर्पित सोम आपकी ओर प्रवाहित हुआ ॥२ ॥

६६८. अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे ।
यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे ॥३ ॥

हे दीप्तिमति उषे ! शत्रुओं के प्रति विकराल और प्रशंसनीय उन इन्द्रदेव के लिये नमस्कार के साथ यज्ञ सम्पादन करें, जिनका धाम (स्थान) अन्नादि दान के लिये अत्यन्त प्रसिद्ध है, जिनकी सामर्थ्य और कीर्ति अश्व के सदृश सर्वत्र संचरित होती है ॥३ ॥

६६९. इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत्क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद्वचः ॥४ ॥

हे सम्पत्तिवान् एवं बहुप्रशंसित इन्द्रदेव ! आपके संरक्षण में कार्य करते हुए, निष्ठापूर्वक रहते हुए, आपके समान अन्य स्तुत्य देवता के न रहने के कारण, हम आपकी स्तुति करते हैं । सभी पदार्थों को स्वीकार करने वाली पृथ्वी के समान आप भी हमारे स्तोत्रों को स्वीकार करें ॥४ ॥

६७०. भूरि त इन्द्र वीर्यं१ तव स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन्काममा पृण ।
अनु ते द्यौर्बृहती वीर्यं मम इयं च ते पृथिवी नेम ओजसे ॥५ ॥

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! स्तुति करने वाले इन साधकों की कामनायें पूर्ण करें । आप अत्यन्त बलवान् हैं । यह महान् द्युलोक भी आपके बल पर ही स्थित है और यह पृथ्वी भी आपके बल के आगे झुकती है ॥५ ॥

६७१. त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुं वज्रेण वज्रिन्पर्वशश्चकर्तिथ ।
अवासृजो निवृताः सर्तवा अपः सत्रा विश्वं दधिषे केवलं सहः ॥६ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आपने महान् बलशाली मेघों को अपने वज्र से खण्ड-खण्ड किया और रुके जल-प्रवाहों को बहने के लिए मुक्त किया । केवल आप ही सब संघर्षक शक्तियों को धारण करते हैं, यही सत्य है ॥६ ॥

[सूक्त - ५८]

[**ऋषि** - नोधा गौतम । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - जगती, ६-९ त्रिष्टुप् ।]

६७२. नू चित्सहोजा अमृतो नि तुन्दते होता यद्दूतो अभवद्विवस्वतः ।
वि साधिष्ठेभिः पथिभी रजो मम आ देवताता हविषा विवासति ॥१ ॥

निश्चित रूप से बलों से उत्पन्न (अरणि - मन्थन द्वारा उत्पन्न) यह अमर अग्निदेव कभी संतप्त नहीं होते । वे यजमान के दूत रूप में सहायक होते हैं । वे अपने उत्तम मार्गों से अन्तरिक्ष में प्रकाशित होते हुए गमन करते हैं । देवों को समर्पित हविष्यान्न उन तक पहुँचाकर सम्मानित करते हैं ॥१ ॥

६७३. आ स्वमद्म युवमानो अजरस्तृष्वविष्यन्नतसेषु तिष्ठति ।
अत्यो न पृष्ठं प्रुषितस्य रोचते दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदत् ॥२ ॥

कभी जीर्णता को न प्राप्त होने वाले अग्निदेव, हवियों के साथ मिलकर इनका भक्षण करते हुए समिधाओं पर दीप्तिमान् होते हैं । घृत के सिंचन से ऊपर उठती हुई इनकी ज्वालायें सज्जित अश्व के सदृश सुशोभित होती हैं । ये आकाशस्थ मेघ के गर्जन के समान शब्द करते हुए वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥२ ॥



६७४. क्राणा रुद्रेभिर्वसुभिः पुरोहितो होता निषत्तो रयिषाळमर्त्यः ।
रथो न विक्ष्वृञ्जसान आयुषु व्यानुषग्वार्या देव ऋण्वति ॥३ ॥

यज्ञादि कर्मों के सम्पादन में कुशल, रुद्रों और वसुओं द्वारा अग्रिम रूप में स्थापित, होता रूप, अविनाशी, धन-प्रदाता, प्रतिष्ठित अग्निदेव, याजकों की स्तुतियों से, रथ के समान बढ़ती हुई प्रजाओं में क्रमशः वरण करने योग्य श्रेष्ठ धनों को स्थापित करते हैं ॥३ ॥

६७५. वि वातजूतो अतसेषु तिष्ठते वृथा जुहूभिः सृण्या तुविष्वणिः ।
तृषु यदग्ने वनिनो वृषायसे कृष्णं त एम रुशदूर्मे अजर ॥४ ॥

वायु के संयोग से समिधाओं पर प्रज्वलित अग्निदेव तेजस्वी ज्वालाओं के साथ शब्दायमान होते हुए सुशोभित हो रहे हैं। हे अजर, दीप्तिमान् अग्निदेव ! आप अपनी प्रखर शक्ति से वनों को (समिधाओं को) प्रभावित करते हुए काले धूम्र के रूप में उठकर अपनी उपस्थिति का बोध करा रहे हैं ॥४ ॥

६७६. तपुर्जम्भो वन आ वातचोदितो यूथे न साह्वाँ अव वाति वंसगः ।
अभिव्रजन्नक्षितं पाजसा रजः स्थातुश्चरथं भयते पतत्रिणः ॥५ ॥

वायु द्वारा प्रेरित, प्रज्वलित तेजस्वी ज्वालाओं रूपी दाढ़ वाले अग्निदेव वनों में गो समूह के बीच स्वच्छन्द बैल की तरह घूमते हैं। जब ये अनन्त अन्तरिक्ष में पक्षी के समान वेग से घूमते हैं, तो सारे स्थावर- जंगम भयभीत हो उठते हैं ॥५ ॥

६७७. दधुष्ट्वा भृगवो मानुषेष्वा रयिं न चारुं सुहवं जनेभ्यः ।
होतारमग्ने अतिथिं वरेण्यं मित्रं न शेवं दिव्याय जन्मने ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! मनुष्यों द्वारा सुख प्राप्ति के निमित्त, आहवनीय, होतारूप, अतिथिरूप, पूज्य, वरण करने योग्य, मित्र तुल्य, सुखद, तेजस्वी, धन के सदृश सुन्दर रूप वाले आपको, भृगुओं ने मनुष्यों में देवत्व की प्राप्ति के लिए स्थापित किया ॥६ ॥

६७८. होतारं सप्त जुह्वो३यजिष्ठं यं वाघतो वृणते अध्वरेषु ।
अग्निं विश्वेषामरतिं वसूनां सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ॥७ ॥

आवाहन करने वाले सात ऋत्विज् और होतागण यज्ञों में श्रेष्ठ होता रूप अग्निदेव का वरण करते हैं। उन सम्पूर्ण धनों को देने वाले अग्निदेव की हविष्यान्न द्वारा सेवा करते हुए, हम उनसे रत्नों की याचना करते हैं ॥७ ॥

६७९. अच्छिद्रा सूनो सहसो नो अद्य स्तोतृभ्यो मित्रमहः शर्म यच्छ ।
अग्ने गृणन्तमंहस उरुष्योर्जो नपात्पूर्भिरायसीभिः ॥८ ॥

बल के पुत्र, श्रेष्ठ मित्र रूप हे अग्निदेव ! हम स्तोताओं को आज श्रेष्ठ सुख प्रदान करें। बलों को न क्षीण करने वाले हे अग्निदेव ! आप अपने फौलादी दुर्गों से जैसे हम स्तोताओं की रक्षा करते हैं, वैसे आप हमें पापों से रक्षित करें ॥८ ॥

६८०. भवा वरूथं गृणते विभावो भवा मघवन्मघवद्भ्यः शर्म ।
उरुष्याग्ने अंहसो गृणन्तं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥९ ॥

हे देदीप्यमान् अग्निदेव ! स्तोता के लिये आप आश्रयरूप हों। हे ऐश्वर्यशालिन् अग्निदेव ! आप धन वाले याजक के लिये सुख प्रदायक हों। स्तोताओं को पापों से रक्षित करें। विचारपूर्वक वैभव देने वाले हे अग्निदेव ! आप प्रातःकाल (यज्ञ में) शीघ्र पधारें ॥९ ॥

[सूक्त - ५९]

[ऋषि - नोधा गौतम । देवता - अग्नि वैश्वानर । छन्द - त्रिष्टुप्]

६८१. वया इदग्ने अग्नयस्ते अन्ये त्वे विश्वे अमृता मादयन्ते ।

वैश्वानर नाभिरसि क्षितीनां स्थूणेव जनाँ उपमिद्ययन्थ ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! समस्त अग्नियाँ आपकी ज्वालाएँ हैं । सब देव आपसे आनन्द पाते हैं । हे वैश्वानर ! आप सब प्राणियों का पोषण करने वाले नाभि (केन्द्र) हैं । आप स्तम्भ (यूप) की तरह सभी लोगों के आधार रूप हैं ॥१ ॥

६८२. मूर्धा दिवो नाभिरग्निः पृथिव्या अथाभवदरती रोदस्योः ।

तं त्वा देवासोऽजनयन्त देवं वैश्वानर ज्योतिरिदार्याय ॥२ ॥

ये अग्निदेव आकाश के शिर और पृथ्वी की नाभि हैं । (सूर्य रूप में आकाश के शीर्ष तथा यज्ञ रूप में पृथ्वी की नाभि हैं ।) ये आकाश-पृथ्वी के अधिपति हैं । इन देव को सभी देव प्रकट करते हैं । हे वैश्वानर अग्निदेव ! श्रेष्ठजनों के लिये भी आपने ज्योति रूप प्रकाश दिया है ॥२ ॥

६८३. आ सूर्ये न रश्मयो ध्रुवासो वैश्वानरे दधिरेऽग्ना वसूनि ।

या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु या मानुषेष्वसि तस्य राजा ॥३ ॥

सूर्यदेव से सर्वदा प्रकाश किरणों के निःसृत होने के समान वैश्वानर अग्निदेव से सभी धन प्राप्त होते हैं । हे अग्निदेव ! आप सभी पर्वतों, ओषधियों, जलों और मानवों में स्थित धनों के राजा हैं ॥३ ॥

६८४. बृहती इव सूनवे रोदसी गिरो होता मनुष्यो३न दक्षः ।

स्वर्वते सत्यशुष्माय पूर्वीर्वैश्वानराय नृतमाय यह्वीः ॥४ ॥

द्यावा-पृथिवी इस पुत्र-रूप (गर्भ में रहने वाले) वैश्वानर अग्निदेव के लिये बृहत् स्वरूप को प्राप्त हुई हैं । मनुष्यों में श्रेष्ठ, ये होता प्रकाशित और सत्य बल से युक्त वैश्वानर अग्निदेव के लिये पुरातन स्तुतियों का गायन करते हैं ॥४ ॥

६८५. दिवश्चित्ते बृहतो जातवेदो वैश्वानर प्र रिरिचे महित्वम् ।

राजा कृष्टीनामसि मानुषीणां युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥५ ॥

हे प्राणियों के ज्ञाता, मनुष्यों में व्याप्त अग्निदेव ! आपकी महत्ता व्यापक एवं द्युलोक से भी अधिक बड़ी है । आप मानव मात्र के अधिपति हैं । संघर्षशील हमारा जीवन दैवी सम्पदाओं से अभिपूरित हो ॥५ ॥

६८६. प्र नू महित्वं वृषभस्य वोचं यं पूरवो वृत्रहणं सचन्ते ।

वैश्वानरो दस्युमग्निर्जघन्वाँ अधूनोत्काष्ठा अव शम्बरं भेत् ॥६ ॥

अब उन बलवान् अग्निदेव की महत्ता का वर्णन करते हैं । ये वैश्वानर अग्निदेव जलों के चोर वृत्र का वध करते हैं । सब मनुष्य उस वृत्र नाशक अग्निदेव का आश्रय लेते हैं । दिशाओं को कम्पित करने वाले वे 'शंबर' असुर का भेदन करते हैं ॥६ ॥



६८७. वैश्वानरो महिम्ना विश्वकृष्टिर्भरद्वाजेषु यजतो विभावा।
शातवनेये शतिनीभिरग्निः पुरुणीथे जरते सूनृतावान् ॥७॥

ये वैश्वानर (विश्व पुरुष) अग्निदेव अपनी महिमा से सब मनुष्यों के स्वामी हैं। अन्नदाताओं में अतिपूजनीय और वैभवशाली हैं। 'शतवन' के पुत्र 'पुरुनीथ' के यज्ञ में सत्यवान् अग्निदेव की सैकड़ों स्तोत्रों से स्तुति की जाती है ॥ ७ ॥

[सूक्त - ६०]

[ऋषि - नोधा गौतम । देवता - अग्नि । छन्द- त्रिष्टुप्]

६८८. वह्निं यशसं विदथस्य केतुं सुप्राव्यं दूतं सद्योअर्थम्।
द्विजन्मानं रयिमिव प्रशस्तं रातिं भरद्भृगवे मातरिश्वा ॥१॥

हविवाहक, यशस्वी, यज्ञ पताका सदृश लहराने वाले, उत्तम रक्षक, शीघ्र धन प्रदायक, देवताओं तक हवि पहुँचाने वाले, द्विज (अरणि मंथन और मंत्ररूप विद्या इन दो के द्वारा उद्भूत), धन के समान प्रशंसित अग्निदेव को वायुदेव ने भृगु का मित्र बनाया ॥१ ॥

६८९. अस्य शासुरुभयासः सचन्ते हविष्मन्त उशिजो ये च मर्ताः।
दिवश्चित्पूर्वो न्यसादि होतापृच्छ्यो विश्पतिर्विक्षु वेधाः ॥२॥

देवों को हवि समर्पित करते हुए समुन्नत जीवन जीने वाले तथा सामान्य जीवन जीने वाले मनुष्य दोनों अग्निदेव के शासन में ही रहते हैं। पूजनीय, जलवर्षक, प्रजापालक, होतारूप अग्निदेव सूर्योदय से पहले ही (याजकों द्वारा यज्ञवेदी पर यज्ञाग्नि के रूप में) प्रकट होते हैं ॥२ ॥

६९०. तं नव्यसी हृद आ जायमानमस्मत्सुकीर्तिर्मधुजिह्वमश्याः।
यमृत्विजो वृजने मानुषासः प्रयस्वन्त आयवो जीजनन्त ॥३॥

जीवन-संग्राम में विजयी होते हुए, उन्नति की आकांक्षा करने वाले मनुष्य जिन अग्निदेव को उत्पन्न करते हैं, उन, प्रत्येक हृदय में विराजमान, मधुर वाणी वाले, उत्तम, यशस्वी अग्निदेव को हमारी नवीन स्तुतियाँ प्राप्त हों ॥३ ॥

६९१. उशिक्पावको वसुर्मानुषेषु वरेण्यो होताधायि विक्षु।
दमूना गृहपतिर्दम आँ अग्निर्भुवद्रयिपती रयीणाम् ॥४॥

धन-वैभव प्राप्त करने की कामना से पवित्रता प्रदान करने वाले ये अग्निदेव, याजकों द्वारा होतारूप में वरण किये जाते हैं। दोषों का दमन करने वाले, गृह पालक, श्रेष्ठ ऐश्वर्य के स्वामी, ये अग्निदेव यज्ञों में वेदी पर स्थापित किये जाते हैं ॥४ ॥

६९२. तं त्वा वयं पतिमग्ने रयीणां प्र शंसामो मतिभिर्गोतमासः।
आशुं न वाजम्भरं मर्जयन्तः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥५॥

हे अग्निदेव ! हम गौतम वंशज आपकी अपनी बुद्धि से प्रशंसा करते हैं। अन्न देने वाले, पवित्र करने वाले, अश्व की तरह बल, सम्पन्न आप, हमें धन प्राप्त करने का कौशल प्रदान करें और प्रातःकाल (यज्ञ में) शीघ्र ही पधारें ॥५ ॥

[सूक्त - ६१]

[ऋषि - नोधा गौतम । देवता - इन्द्र । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

६९३. अस्मा इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय ।
ऋचीषमायाध्रिगव ओहमिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा ॥१ ॥

शीघ्र कार्य करने वाले, मंत्रों द्वारा वर्णनीय, महान् कीर्ति वाले, अबाध गति वाले इन्द्रदेव के लिये हम प्रशंसात्मक मंत्रों का गान करते हुए हविष्यान्न अर्पित करते हैं ॥१ ॥

६९४. अस्मा इदु प्रय इव प्र यंसि भराम्याङ्गूषं बाधे सुवृक्ति ।
इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा प्रत्नाय पत्ये धियो मर्जयन्त ॥२ ॥

हम उन इन्द्रदेव के निमित्त हविष्य के समान स्तोत्र अर्पित करते हैं । शत्रुनाशक इन्द्रदेव के लिए हम उत्तम स्तुति गान करते हैं । ऋषिगण उन पुरातन इन्द्रदेव के लिए हृदय, मन और बुद्धि के द्वारा पवित्र स्तुति करते हैं ॥२ ॥

६९५. अस्मा इदु त्यमुपमं स्वर्षां भराम्याङ्गूषमास्येन ।
मंहिष्ठमच्छोक्तिभिर्मतीनां सुवृक्तिभिः सूरिं वावृधध्यै ॥३ ॥

हम महान् विद्वान् इन्द्रदेव को आकृष्ट करने वाली, उनकी महिमा के अनुरूप उत्तम स्तुतियों को निर्मल बुद्धि से नादपूर्वक उच्चारित करते हैं ॥३ ॥

६९६. अस्मा इदु स्तोमं सं हिनोमि रथं न तष्टेव तत्सिनाय ।
गिरश्च गिर्वाहसे सुवृक्तीन्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय ॥४ ॥

जैसे त्वष्टादेव रथ का निर्माण करके इन्द्रदेव को प्रदान करते हैं, वैसे ही हम समस्त कामनाओं को सिद्ध करने वाले, स्तुत्य, मेधावी इन्द्रदेव के लिए अपनी वाणियों से सर्व प्रसिद्ध श्रेष्ठ स्तोत्रों का गान करते हैं ॥४ ॥

६९७. अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्येन्द्रायार्कं जुह्वा३समञ्जे ।
वीरं दानौकसं वन्दध्यै पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम् ॥५ ॥

अश्व को रथ से नियोजित करने के समान हम धन की कामना से इन्द्रदेव के निमित्त स्तोत्रों को वाणी से युक्त करते हैं । हम उन वीर, दानशील, विपुल यशस्वी, शत्रु के नगरों को ध्वस्त करने वाले इन्द्रदेव की वन्दना करते हैं ॥५ ॥

६९८. अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद्वज्रं स्वपस्तमं स्वर्यं१ रणाय ।
वृत्रस्य चिद्विदद्येन मर्म तुजन्नीशानस्तुजता कियेधाः ॥६ ॥

लक्ष्य को भली प्रकार बेधने वाले, शक्तिशाली वज्र को त्वष्टादेव ने युद्ध के निमित्त इन्द्रदेव के लिए तैयार किया । उसी वज्र से शत्रुनाशक, अतिबलवान् इन्द्रदेव ने वृत्र के मर्म स्थान पर प्रहार करके उसे मारा ॥६ ॥

६९९. अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवाञ्चार्वन्ना ।
मुषायद्विष्णुः पचतं सहीयान्विध्यद्वराहं तिरो अद्रिमस्ता ॥७ ॥

वृष्टि के द्वारा माता की भाँति जगत् का श्रेष्ठ निर्माण करने वाले, महान् इन्द्रदेव ने यज्ञों में हवि का सेवन किया और सोम का शीघ्र पान किया । उन सर्व व्यापक इन्द्रदेव ने शत्रुओं के धन को जीता और वज्र का प्रहार करके मेघों का भेदन किया ॥७ ॥



७००. अस्मा इदु ग्नाश्चिद्देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः ।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः ॥८ ॥

'अहि' (गति हीनों) का हनन करने पर देव-पत्नियों ने इन्द्रदेव की स्तुति की । इन्द्रदेव ने फिर पृथ्वीलोक और द्युलोक को वश में किया । दोनों लोकों में उनकी सामर्थ्य के सामने कोई ठहर नहीं सकता ॥८ ॥

७०१. अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् ।
स्वराळिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ॥९ ॥

इन्द्रदेव की महत्ता आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्ष से भी विस्तृत है । स्वयं प्रकाशित, सर्वप्रिय, उत्तम योद्धा, असीमित बल वाले इन्द्रदेव युद्ध के लिए अपने वीरों को प्रेरित करते हैं ॥९ ॥

७०२. अस्येदेव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद्वज्रेण वृत्रमिन्द्रः ।
गा न व्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेताः ॥१० ॥

इन्द्रदेव ने अपने बल से शोषक वृत्र को वज्र से काट दिया और अपहृत गायों के समान रोके हुए जलों को मुक्त किया । हविदाताओं को अन्नों से पूर्ण किया ॥१० ॥

७०३. अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः परि यद्वज्रेण सीमयच्छत् ।
ईशानकृद्दाशुषे दशस्यन्तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः ॥११ ॥

इन्द्रदेव के बल से ही नदियाँ प्रवाहित हुई; क्योंकि इन्होंने ही वज्र से (पर्वतों-भूखण्डों को काटकर, प्रवाह-पथ बनाकर) इन्हें मर्यादित कर दिया है । शत्रुओं को मारकर सभी पर शासन करने वाले इन्द्रदेव हविदाता को धन देते हुए 'तुर्वणि' अर्थात् शत्रुओं से मोर्चा लेने वाले की सहायता करते हैं ॥११ ॥

७०४. अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः ।
गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चेष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव ! अति वेगवान्, सबके स्वामी, महाबली आप इस वृत्र पर वज्र का प्रहार करें और इसके जोड़ों को तिरछे (वज्र के) प्रहार से भूमि के समान (समतल) काट दें । इस प्रकार जलों को मुक्त करके प्रवाहित करें ॥१२ ॥

[जल के प्रवाह में बाधक पर्वत आदि के जोड़ों को काटकर जल प्रवाह के लिए समतल मार्ग बनाने का भाव है ।]

७०५. अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः ।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून् ॥१३ ॥

हे मनुष्य ! इन्द्रदेव के पुरातन कर्मों की आप प्रशंसा करें । युद्ध में वे शीघ्रता से शस्त्रों का प्रहार करके समाज को हानि पहुँचाने वाले शत्रुओं को विनष्ट करते हैं ॥१३ ॥

७०६. अस्येदु भिया गिरयश्च दृळ्हा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते ।
उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद्वीर्याय नोधाः ॥१४ ॥

इन इन्द्रदेव के भय से दृढ़ पर्वत, आकाश, पृथ्वी और सभी प्राणी काँपते हैं । नोधा ऋषि इन्द्रदेव के श्रेष्ठ रक्षण सामर्थ्यों का वर्णन करते हुए उनके अनुग्रह से बलशाली हुए थे ॥१४ ॥

७०७. अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद्वव्ने भूरेरीशानः ।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः ॥१५ ॥

बहुत से धनों के एकमात्र स्वामी इन्द्रदेव जो इच्छा करते हैं, वही स्तोताओं के द्वारा अर्पित किया जाता है । इन्द्रदेव ने स्वश्व के पुत्र 'सूर्य' के साथ स्पर्धा करने वाले तथा सोमयाग करने वाले 'एतश' ऋषि को सुरक्षा प्रदान की ॥१५ ॥

७०८. एवा ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन् ।
ऐषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥१६ ॥

हरे रंग के अश्वों से योजित रथ वाले हे इन्द्रदेव ! गौतम वंशजों ने आपके निमित्त आकर्षक मंत्रयुक्त स्तोत्रों का गान किया है । इनका आप ध्यानपूर्वक श्रवण करें । विचारपूर्वक अपार धन वैभव प्रदान करने वाले इन्द्रदेव हमें प्रात: (यज्ञ में) शीघ्र प्राप्त हों ॥१६ ॥

[सूक्त - ६२]

[**ऋषि** - नोधा गौतम । **देवता**- इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

७०९. प्र मन्महे शवसानाय शूषमाङ्गूषं गिर्वणसे अङ्गिरस्वत् ।
सुवृक्तिभिः स्तुवत ऋग्मियायार्चामार्कं नरे विश्रुताय ॥१ ॥

हम इन्द्रदेव के शक्ति संवर्धक स्तवन से परिचित हैं । शक्ति की आकांक्षा युक्त, श्रेष्ठ वाणियों से सम्पन्न, ज्ञानवान् , शक्ति - पराक्रम से विख्यात इन्द्रदेव की अंगिरा के सदृश स्तुति मंत्रों से अर्चना करते हैं ॥१ ॥

७१०. प्र वो महे महि नमो भरध्वमाङ्गूष्यं शवसानाय साम ।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञा अर्चन्तो अङ्गिरसो गा अविन्दन् ॥२ ॥

हे ऋत्विजो ! आप महान् पराक्रमी इन्द्रदेव की प्रसन्नता के लिए स्तुति एवं सामगान करते हुए उनको नमन करें । हमारे पूर्वज ऋषियों - अंगिरा आदि ने इसी प्रकार अर्चना द्वारा तेजस्विता को प्राप्त किया था ॥२ ॥

७११. इन्द्रस्याङ्गिरसां चेष्टौ विदत्सरमा तनयाय धासिम् ।
बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद्गाः समुस्रियाभिर्वावशन्त नरः ॥३ ॥

इन्द्रदेव और अंगिराओं की इच्छा से 'सरमा' ने अपने पुत्र के निमित्त अन्नों को प्राप्त किया । महान् देवों के स्वामी इन्द्रदेव ने असुरों को मारा और जलधाराओं को मुक्त किया । जल प्रवाहों को पाकर सभी मनुष्य हर्षित हुए ॥३ ॥

७१२. स सुष्टुभा स स्तुभा सप्त विप्रैः स्वरेणाद्रिं स्वर्यो३नवग्वैः ।
सरण्युभिः फलिगमिन्द्र शक्र वलं रवेण दरयो दशग्वैः ॥४ ॥

हे शक्तिशाली इन्द्रदेव ! स्वर युक्त उत्तम स्तोत्रों से प्रशंसित, आपने तीव्र उत्कण्ठा से की गई सप्तऋषियों की नवीन स्तुतियों को सुना । आपने ही बलशाली मेघों को मारा, जिससे दशों दिशाओं में घोर गर्जना हुई ॥४ ॥

७१३. गृणानो अङ्गिरोभिर्दस्म वि वरुषसा सूर्येण गोभिरन्धः ।
वि भूम्या अप्रथय इन्द्र सानु दिवो रज उपरमस्तभायः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने अंगिरा ऋषियों द्वारा वर्णित स्तुतियों को प्राप्त किया । आपने दर्शनीय देवी उषा और सूर्यदेव की दीप्तिमान् रश्मियों द्वारा तमिस्रा को दूर किया । भूमि प्रदेश को विस्तृत किया । द्युलोक और अन्तरिक्ष को स्थिर किया ॥५ ॥



७१४. तदु प्रयक्षतममस्य कर्म दस्मस्य चारुतममस्ति दंस: ।
उपह्वरे यदुपरा अपिन्वन्मध्वर्णसो नद्य१श्चतस्र: ॥६ ॥

इन्द्रदेव के अति प्रशंसनीय, सुन्दरतम और दर्शनीय कर्मों में एक यह है कि उन्होंने भूमि के ऊपरी प्रदेश में प्रवाहित चार नदियों को मधुर जल से पूर्ण किया ॥६ ॥

[यहाँ भूमि के ऊपरी भाग से हिमालय क्षेत्र का बोध होता है । उससे प्रवाहित चार मुख्य नदियाँ सिन्धु, यमुना, गंगा एवं ब्रह्मपुत्र के प्रवाहों में बाधकों (अवरोधों) को वज्र से काटकर इन्द्रदेव ने उन्हें मधुर जल से भर दिया, ऐसा भाव परिलक्षित होता है ।]

७१५. द्विताविं वव्रे सनजा सनीळे अयास्य: स्तवमानेभिरर्कै: ।
भगो न मेने परमे व्योमन्नधारयद्रोदसी सुदंसा: ॥७ ॥

'अयास्य' ऋषि के प्रशंसनीय स्तोत्रों से पूजित इन्द्रदेव ने समान रूप से मिले हुए द्युलोक को दो रूपों, पृथ्वी और आकाश में विभक्त किया । शतकर्मा इन्द्रदेव ने उत्तमरूप से व्याप्त आकाश द्वारा सूर्यदेव को धारण करने के सदृश पृथ्वी और आकाश को धारण किया ॥७ ॥

७१६. सनाद्दिवं परि भूमा विरूपे पुनर्भुवा युवती स्वेभिरेवै: ।
कृष्णेभिरक्तोषा रुशद्भिर्वपुर्भिरा चरतो अन्यान्या ॥८ ॥

विविध रूप वाली दो युवतियाँ उषा और रात्रि अपनी गतियों से आकाश में भूमि के चारों ओर सनातन काल से चलती आती हैं । ये कृष्ण वर्ण रात्रि और दीप्तिमती उषा पृथक्-पृथक् होकर चलती हैं, अर्थात् दोनों कभी एक साथ नहीं दिखाई देती हैं ॥८ ॥

७१७. सनेमि सख्यं स्वपस्यमान: सूनुर्दाधार शवसा सुदंसा: ।
आमासु चिद्दधिषे पक्वमन्त: पय: कृष्णासु रुशद्रोहिणीषु ॥९ ॥

उत्तम वृष्टिकारक, बल के पुत्र, उत्तमकर्मा, स्तोताओं से सर्वदा मित्रता करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप अपरिपक्व गौओं में भी पौष्टिक दूध को स्थापित करते हैं । कृष्ण वर्णा, रोहित वर्ण गौओं में भी श्वेत दूध को स्थापित करते हैं ॥९ ॥

७१८. सनात्सनीळा अवनीरवाता व्रता रक्षन्ते अमृता: सहोभि: ।
पुरू सहस्रा जनयो न पत्नीर्दुवस्यन्ति स्वसारो अह्रयाणम् ॥१० ॥

सदैव साथ रहने वाली अँगुलियाँ अपने बल से अनेकों (सहस्रों) स्थिर और अविनाशी कर्मों को करती हैं । जैसे लोग पत्नी की इच्छा पूर्ण करते हैं, वैसी ही स्वयं संचालित अँगुलियाँ अबाधगति वाले इन्द्रदेव की इच्छा पूर्ति करती हैं ॥१० ॥

७१९. सनायुवो नमसा नव्यो अर्कैर्वसूयवो मतयो दस्म दद्रु: ।
पतिं न पत्नीरुशतीरुशन्तं स्पृशन्ति त्वा शवसावन्मनीषा: ॥११ ॥

हे दर्शनीय इन्द्रदेव ! यज्ञ और वैभव की इच्छा से ज्ञानी जन स्तोत्रों द्वारा आपका पूजन और नमन करते हैं । हे बलवान् इन्द्रदेव ! जैसे पतिव्रता स्त्रियाँ अपने पति को प्रसन्न रखती हैं, वैसे ही की गई स्तुतियाँ आपको प्रसन्नता प्रदान करती हैं ॥११ ॥

७२०. सनादेव तव रायो गभस्तौ न क्षीयन्ते नोप दस्यन्ति दस्म ।

द्युमाँ असि क्रतुमाँ इन्द्र धीरः शिक्षा शचीवस्तव नः शचीभिः ॥१२ ॥

हे दर्शनीय इन्द्रदेव ! सनातन काल से आप अपने हाथों में कभी नष्ट न होने वाले अक्षय ऐश्वर्य को धारण करते हैं । हे इन्द्रदेव ! आप दीप्तिमान्, कर्मवान्, धैर्यवान् और सामर्थ्यवान् हैं । अपनी सामर्थ्यों से हमें धन प्राप्त करने की प्रेरणा प्रदान करें ॥१२ ॥

७२१. सनायते गोतम इन्द्र नव्यमतक्षद्ब्रह्म हरियोजनाय ।

सुनीथाय नः शवसान नोधाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥१३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सनातन काल से ही स्थित हैं, उत्तम मार्गों से गमन करने वाले तथा अश्वों को नियोजित करने वाले हैं। आपकी स्तुति के लिये गौतम ऋषि के पुत्र नोधा ऋषि ने नवीन स्तोत्रों की रचना की है। बलवान्, धन की प्रेरणा देने वाले हे इन्द्रदेव ! आप प्रातः काल हमारे पास शीघ्र ही आयें ॥१३ ॥

[सूक्त - ६३]

[**ऋषि** - नोधा गौतम । **देवता** - इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

७२२. त्वं महाँ इन्द्र यो ह शुष्मैर्द्यावा जज्ञानः पृथिवी अमे धाः ।

यद्ध ते विश्वा गिरयश्चिदभ्वा भिया दृळ्हासः किरणा नैजन् ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप महान् हैं । आपने उत्पन्न होते ही इस द्यावा-पृथिवी को अपने बल से धारण किया । आपके भय से सुदृढ़ पर्वतों के समूह भी किरणों के सदृश काँपते हैं ॥१ ॥

७२३. आ यद्धरी इन्द्र विव्रता वेरा ते वज्रं जरिता बाह्वोर्धात् ।

येनाविहर्यतक्रतो अमित्रान्पुर इष्णासि पुरुहूत पूर्वीः ॥२ ॥

निष्काम भाव से श्रेष्ठ कर्म करने वाले तथा बहुतों के द्वारा स्तुत्य हे इन्द्रदेव ! आप जब अपने रथ से विविध कर्म वाले अश्वों द्वारा आते हैं, तब स्तोता आपके हाथों में वज्र को स्थापित करते हैं । आप उसी वज्र से शत्रुओं के असंख्य नगरों को ध्वस्त करते हैं ॥२ ॥

७२४. त्वं सत्य इन्द्र धृष्णुरेतान्त्वमृभुक्षा नर्यस्त्वं षाट् ।

त्वं शुष्णं वृजने पृक्ष आणौ यूने कुत्साय द्युमते सचाहन् ॥३ ॥

हे सत्यवान् इन्द्रदेव ! आप ऋभुओं और मनुष्यों के कुशल नायक हैं । शत्रुओं को वश में करने वाले, विजेतारूप हैं । आपने महान् संग्राम में तेजस्वी, युवा कुत्स के सहायक होकर 'शुष्ण' को मारा ॥३ ॥

७२५. त्वं ह त्यदिन्द्र चोदीः सखा वृत्रं यद्वज्रिन्वृषकर्मन्नुभ्नाः ।

यद्ध शूर वृषमणः पराचैर्वि दस्यूँर्योनावकृतो वृथाषाट् ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने कुत्स की सहायता कर, प्रसिद्ध विजयरूपी धन प्राप्त किया । जल वर्षण करने वाले, शत्रु विनाशक, वज्रधारी हे इन्द्रदेव ! आपने संग्राम में जब कुत्स के विरोधी वृत्र तथा अन्य शत्रुओं को मार भगाया, तब कुत्स को सम्पूर्ण यश प्राप्त हुआ ॥४ ॥



७२६. त्वं ह त्यदिन्द्रारिषण्यन्दृळ्हस्य चिन्मर्तानामजुष्टौ ।

व्य१स्मदा काष्ठा अर्वते वर्घनेव वज्रिञ्छ्नथिह्यमित्रान् ॥५ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! मनुष्यों पर क्रोध करने वाले सुदृढ़ शत्रु भी आप पर प्रहार नहीं कर पाते । हे इन्द्रदेव ! जैसे हथौड़े से लोहे को पीटते हैं, वैसे ही आप हमारे शत्रुओं पर आघात कर उन्हें मारें । हमारे अश्वों के मार्ग को मुक्त करें अर्थात् हमारी प्रगति का मार्ग बाधाओं से रहित हो ॥५ ॥

७२७. त्वां ह त्यदिन्द्रार्णसातौ स्वर्मीळ्हे नर आजा हवन्ते ।

तव स्वधाव इयमा समर्य ऊतिर्वाजेष्वतसाय्या भूत् ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव !धन-प्राप्ति और सुख-प्राप्ति के निमित्त किये जाने वाले युद्ध में मनुष्य अपनी सहायता के लिए आपका आवाहन करते हैं । हे बलों के धारक इन्द्रदेव !संग्राम में योद्धाओं को आपकी सामर्थ्य प्राप्त होती है ॥ ६ ॥

७२८. त्वं ह त्यदिन्द्र सप्त युध्यन्पुरो वज्रिन्पुरुकुत्साय दर्दः ।

बर्हिर्न यत्सुदासे वृथा वर्गंहो राजन्वरिवः पूरवे कः ॥७ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आपने 'पुरुकुत्स' के लिए युद्ध करते हुये शत्रु के सात नगरों को तोड़ा और सुदास के लिए शत्रुओं को कुश के समान अनायास काट दिया । आपने ही पुरु के लिए धन प्रदान किया ॥७ ॥

७२९. त्वं त्यां न इन्द्र देव चित्रामिषमापो न पीपयः परिज्मन् ।

यया शूर प्रत्यस्मभ्यं यंसि त्मनमूर्जं न विश्वध क्षरध्यै ॥८ ॥

हे महान् बलशाली इन्द्रदेव ! जल को बढ़ाने के सदृश हमारी भूमि में चारों ओर अन्नों की वृद्धि करें । जलों को सर्वत्र बहाने के समान हमें अन्नों को प्रदान करें ॥८ ॥

७३०. अकारि त इन्द्र गोतमेभिर्ब्रह्माण्योक्ता नमसा हरिभ्याम् ।

सुपेशसं वाजमा भरा नः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! गौतम वंशजों ने अश्वों से सम्पन्न आपके निमित्त स्तुति मंत्रों की रचना की । इन श्रेष्ठ स्तोत्रों को गाकर आपका सत्कार किया । हे इन्द्रदेव ! आप हमें श्रेष्ठ बल दें और धनों को प्राप्त करने की बुद्धि दें । प्रातः (यज्ञ की वेला में) हमें आप शीघ्र प्राप्त हों ॥९ ॥

[सूक्त - ६४]

[**ऋषि** - नोधा गौतम । **देवता**- मरुद्गण । **छन्द** - जगती, १५ त्रिष्टुप् ।]

७३१. वृष्णे शर्धाय सुमखाय वेधसे नोधः सुवृक्तिं प्र भरा मरुद्भ्यः ।

अपो न धीरो मनसा सुहस्त्यो गिरः समञ्जे विदथेष्वाभुवः ॥१ ॥

हे नोधा (शोधकर्त्ता) ऋषे ! बल पाने के लिए, बल वृद्धि के लिए, उत्तम यज्ञ - सम्पादन के निमित्त और मेधा प्राप्ति के निमित्त मरुद्गणों की श्रेष्ठ काव्यों से स्तुतियाँ करें । यज्ञों में हम होता हाथ जोड़कर हृदय से उनकी अभ्यर्थना करते हैं और जल सिंचन के सदृश उत्तम वाणियों से मंत्रों का गायन करते हैं ॥१ ॥

७३२. ते जज्ञिरे दिव ऋष्वास उक्षणो रुद्रस्य मर्या असुरा अरेपसः ।
पावकासः शुचयः सूर्या इव सत्वानो न द्रप्सिनो घोरवर्पसः ॥२ ॥

वे महान् सामर्थ्यवान् प्राणों की रक्षा करने वाले, जीवन में पवित्रता का संचार करने वाले, सूर्य सदृश तेजस्वी, सोम पीने वाले, विकराल शरीरधारी मरुद्गण, रुद्रदेव के मरणधर्मा गणों के समान मानो दिव्य लोक से ही प्रकट हुए हैं ॥२ ॥

७३३. युवानो रुद्रा अजरा अभोग्घनो ववक्षुरध्रिगावः पर्वता इव ।
दृळ्हा चिद्विश्वा भुवनानि पार्थिवा प्र च्यावयन्ति दिव्यानि मज्मना ॥३ ॥

युवा शत्रुओं के लिए रुद्ररूप, अजर, कृपणहन्ता, अबाधगति से चलने वाले मरुद्गण पर्वत के सदृश अभेद्य हैं । पृथ्वी और द्युलोक के सभी प्राणियों को अपने बल से ये विचलित कर देते हैं ॥३ ॥

७३४. चित्रैरञ्जिभिर्वपुषे व्यञ्जते वक्षःसु रुक्माँ अधि येतिरे शुभे ।
अंसेष्वेषां नि मिमृक्षुर्ऋष्टयः साकं जज्ञिरे स्वधया दिवो नरः ॥४ ॥

शरीर की शोभा बढ़ाने के उद्देश्य से विविध अलंकारों से सुसज्जित ये मरुद्गण विशेष रूप से आकर्षक हैं । वक्ष पर शोभा के निमित्त ये स्वर्णाभूषण धारण किये हैं । इन मरुतों के कन्धों पर रखे अस्त्रों की दीप्ति सर्वत्र प्रकाशित होती है । ये वीर पुरुष आकाश में अपने बल से उत्पन्न हुए हैं ॥४ ॥

७३५. ईशानकृतो धुनयो रिशादसो वातान्विद्युतस्तविषीभिरक्रत ।
दुहन्त्यूधर्दिव्यानि धूतयो भूमिं पिन्वन्ति पयसा परिज्रयः ॥५ ॥

ऐश्वर्य देने वाले स्वामी, शत्रु को कम्पित करने वाले, हिंसकों का नाश करने वाले ये मरुद्गण अपनी सामर्थ्य द्वारा वायु और विद्युत् को उत्पन्न करते हैं । सर्वत्र गमन कर शत्रुओं पर आघात करने वाले ये वीर आकाशीय मेघों को दुहकर भूमि को वर्षा के जलों से तृप्त करते हैं ॥५ ॥

[मरुद्गण वायु और विद्युत् को उत्पन्न करते हैं, इससे स्पष्ट होता है कि मरुत् एक संकल्प युक्त सूक्ष्म प्रवाह है । विज्ञान के सूक्ष्मकणों (सब एटामिक पार्टिकल्स) के प्रवाह की अवधारणा वेद की इस उक्ति को कुछ स्पष्ट कर सकती है ।]

७३६. पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः पयो घृतवद्विदथेष्वाभुवः ।
अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिनमुत्सं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम् ॥६ ॥

उत्तम दानी, सामर्थ्यवान् मरुद्गण यज्ञों में घृत-दुग्ध आदि रसों और जलों का सिंचन करते हैं । अश्वों को घुमाने के समान वे बलशाली मेघों का सम्यक् रूप से दोहन करते हैं ॥६ ॥

७३७. महिषासो मायिनश्चित्रभानवो गिरयो न स्वतवसो रघुष्यदः ।
मृगा इव हस्तिनः खादथा वना यदारुणीषु तविषीरयुग्ध्वम् ॥७ ॥

हे मरुद्गण ! आप महिमावान् , विभिन्न दीप्तियाँ छोड़ने वाले प्रपंची पर्वतों के समान अभेद्य बल से वेगपूर्वक गमन करने वाले हैं । आप हाथियों और मृगों के समान वनों को खा जाने वाले हैं, क्योंकि अपने बल से लाल वर्ण वाली घोड़ियों (अग्नि ज्वालाओं) को रथ में (यज्ञ में) नियोजित (प्रकट) करते हैं ॥७ ॥

७३८. सिंहा इव नानदति प्रचेतसः पिशाइव सुपिशो विश्ववेदसः ।
क्षपो जिन्वन्तः पृषतीभिर्ऋष्टिभिः समित्सबाधः शवसाहिमन्यवः ॥८ ॥



ये वीर मरुद्‌गण, सिंहों के समान गर्जनशील, प्रकृष्ट ज्ञानी, उत्तम बलवान् पुरुषों के समान सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से सम्पन्न हैं। ये वीर शत्रु को क्षत-विक्षत करने वाले, पीड़ित जनों की रक्षा कर उन्हें सन्तुष्ट करने वाले धब्बेदार घोड़ियों और हथियारों से सुसज्जित होकर चलने वाले, अक्षय बल और उग्ररूप धारण करने वाले हैं ॥८ ॥

७३९. रोदसी आ वदता गणश्रियो नृषाचः शूराः शवसाहिमन्यवः ।

आ वन्धुरेष्वमतिर्न दर्शता विद्युन्न तस्थौ मरुतो रथेषु वः ॥९ ॥

सबकी रक्षा करने वाले, वीर, पराक्रमी, अक्षय उत्साह से सम्पन्न हे शोभायमान मरुद्‌गणो ! आप आकाश और पृथ्वी को अपनी गर्जना की गूँज से भर दें । रथ में विराजित होने से आपका तेजस्वी प्रकाश विद्युत्वत् सर्वत्र फैल गया है ॥९ ॥

७४०. विश्ववेदसो रयिभिः समोकसः संमिश्लासस्तविषीभिर्विरप्शिनः ।

अस्तार इषुं दधिरे गभस्त्योरनंतशुष्मा वृषखादयो नरः ॥१० ॥

अनेक धनों से युक्त, सम्पूर्ण धनों के स्वामी, समान स्थान से उद्‌भूत, विविध बलों से युक्त, विशिष्ट सामर्थ्य वाले, अस्त्र - प्रहारक, अनन्त सामर्थ्यवान् तथा पुष्ट अन्नों के भक्षक वीर मरुद्‌गण अपने बाहुओं में विशिष्ट बल धारण करते हैं ॥१० ॥

७४१. हिरण्ययेभिः पविभिः पयोवृध उज्जिघ्नन्त आपथ्यो३ न पर्वतान् ।

मखा अयासः स्वसृतो ध्रुवच्युतो दुध्रकृतो मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥११ ॥

जलों को बढ़ाने वाले पूजनीय, द्रुतगति वाले, स्पन्दनयुक्त, अडिग, पदार्थों को हिलाने वाले, अबाधगति वाले, तीक्ष्ण अस्त्र धारक वीर मरुद्‌गण, स्वर्णिम रथ के चक्रों से (वात्याचक्र से) मार्ग में आये हुए मेघों को उड़ा देते हैं ॥११ ॥

७४२. घृषुं पावकं वनिनं विचर्षणिं रुद्रस्य सूनुं हवसा गृणीमसि ।

रजस्तुरं तवसं मारुतं गणमृजीषिणं वृषणं सश्चत श्रिये ॥१२ ॥

संघर्ष शक्ति वाले, पवित्रकर्त्ता, वनों में संचरित होने वाले, विशेष चक्षुवाले, रुद्र के पुत्र रूप मरुद्‌गणों की हम स्तुति करते हैं । हम सब अति वेगवान् धूल उड़ाने वाले, बलवान्, वीर्यवान् तथा तीक्ष्ण बुद्धि वाले मरुद्‌गणों के आश्रय को प्राप्त करें ॥१२ ॥

७४३. प्र नू स मर्तः शवसा जनाँ अति तस्थौ व ऊती मरुतो यमावत ।

अर्वद्भिर्वाजं भरते धना नृभिरापृच्छ्यं क्रतुमा क्षेति पुष्यति ॥१३ ॥

हे मरुद्‌गणो ! आपकी रक्षण-सामर्थ्य द्वारा रक्षित मनुष्य सब लोगों से अधिक बल पाकर स्थिर होता है । वह अश्वों द्वारा अन्न और मनुष्यों द्वारा धनों को प्राप्त कर उत्तम यज्ञ द्वारा प्रशंसित होता है ॥१३ ॥

७४४. चर्कृत्यं मरुतः पृत्सु दुष्टरं द्युमन्तं शुष्मं मघवत्सु धत्तन ।

धनस्पृतमुक्थ्यं विश्वचर्षणिं तोकं पुष्येम तनयं शतं हिमाः ॥१४ ॥

हे मरुद्‌गणो ! हम कार्यों में समर्थ, युद्धों में अजेय, दीप्तिमान्, बलों से युक्त तथा वैभवशाली हों । हम श्रेष्ठ धन - वैभव से सम्पन्न सर्व-हितकारी होकर सौ वर्षों तक जीवित रहें तथा पुत्र और पौत्रों के साथ सुख प्राप्त करें ॥१४ ॥

७४५. नू ष्ठिरं मरुतो वीरवन्तमृतीषाहं रयिमस्मासु धत्त ।
सहस्रिणं शतिनं शूशुवांसं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥१५ ॥

हे मरुद्‌गणो ! आप हमें शत्रुओं को जीतने वाली वीरोचित स्थाई सामर्थ्य प्रदान करें । हममें असंख्यों धनों को स्थापित करें । प्रात: काल (यज्ञ में) आप हमें शीघ्र प्राप्त हों ॥१५ ॥

[सूक्त - ६५]

[**ऋषि** - पराशर शाक्त्य । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - द्विपदा विराट् ।]

७४६-४७. पश्वा न तायुं गुहा चतन्तं नमो युजानं नमो वहन्तम् ।
सजोषा धीरा: पदैरनु ग्मन्नुप त्वा सीदन्विश्वे यजत्रा: ॥१-२ ॥

हे अग्निदेव ! पशु चुराने वाले के पद चिह्नों के साथ जाने वाले मनुष्य के समान सभी बुद्धिमान् देवगण आपके अनुगामी हों । सभी याजकगण आपके चारों ओर बैठकर कुण्डरूप गुहा में स्तुतियों के साथ आपको प्रकट करते हैं । आप उनकी हवियों को देवों तक पहुँचाने वाले तथा देवों को उनसे नियोजित करने वाले के रूप में सम्मानित किये जाते हैं ॥१-२ ॥

७४८-४९. ऋतस्य देवा अनु व्रता गुर्भुवत्परिष्टिर्द्यौर्न भूम ।
वर्धन्तीमाप: पन्वा सुशिश्विमृतस्य योना गर्भे सुजातम् ॥३-४ ॥

देवगणों ने अग्निदेव को भूमि में चारों ओर खोजा । अग्निदेव जल प्रवाहों के गर्भ से उत्पन्न हुए, उत्तम स्तोत्रों से उनकी सम्यक् प्रकार से वृद्धि हुई । देवों ने अग्निदेव के कर्मों का, उनकी प्रेरणाओं का अनुगमन किया और भूमि को स्वर्ग के समान सुखकारी बनाया ॥३-४ ॥

[यह तथ्य सर्वमान्य है कि मनुष्य जब से अग्नि (ऊर्जा) को प्रकट कर उसका उपयोग सीखा, तभी से अनेक सुख-सुविधाओं का विकास क्रान्तिकारी ढंग से हुआ ।]

७५०-५१. पुष्टिर्न रण्वा क्षितिर्न पृथ्वी गिरिर्न भुज्म क्षोदो न शंभु ।
अत्यो नाज्मन्त्सर्गप्रतक्त: सिन्धुर्न क्षोद: क ईं वराते ॥५-६ ॥

ये अग्निदेव इष्ट फल प्राप्ति के समान रमणीय, भूमि के समान विस्तीर्ण, पर्वत के समान पोषक तत्त्व प्रदाता, जल के समान कल्याणकारी, अश्व के समान अग्रणी वाहक तथा समुद्र के समान विशाल हैं, इन्हें भला कौन रोक सकता है ? ॥५-६ ॥

७५२-५३. जामि: सिन्धूनां भ्रातेव स्वस्रामिभ्यान्न राजा वनान्यत्ति ।
यद्वातजूतो वना व्यस्थादग्निर्ह दाति रोमा पृथिव्या: ॥७-८ ॥

ये अग्निदेव बहिनों के लिए भाई के समान जलों के भ्राता रूप हैं । शत्रुओं का विनाश करने वाले राजा के समान ये वनों को नष्ट भी कर देते हैं । जब ये वायु से प्रेरित होकर वनों की ओर अभिमुख होते हैं, तो भूमि के बालों के सदृश वृक्ष वनस्पतियों का नाश कर देते हैं ॥७-८ ॥

७५४-५५. श्वसित्यप्सु हंसो न सीदन् क्रत्वा चेतिष्ठो विशामुषर्भुत् ।
सोमो न वेधा ऋतप्रजात: पशुर्न शिश्वा विभुर्दूरेभा: ॥९-१० ॥

ये अग्निदेव जल में बैठकर हंस के समान प्राण को धारण करते हैं । ये उषाकाल में उठकर अपने कर्मों से प्रजाओं को चैतन्य करते हैं । ये सोम की भाँति वृद्धि करने वाले, शिशु के समान चंचल तथा यज्ञ से उत्पन्न होकर दूर तक प्रकाश फैलाने वाले हैं ॥९-१० ॥



[जल में प्राणों को धारण करने की क्षमता है। जल के माध्यम से दिये गये शाप-वरदान में जल ही साधक के प्राण को आरोपित करता है। शरीर के प्रवाहों रक्त - रसों (हारमोन्स) आदि के माध्यम से ही मनुष्य का प्राण सक्रिय होता है। यह क्षमता जल प्रवाहों में स्थित सूक्ष्म अग्नि के कारण ही है।]

[सूक्त - ६६]

[**ऋषि** - पराशर शाक्त्य। **देवता** - अग्नि। **छन्द** - द्विपदा विराट्।]

७५६-५७. **रयिर्न चित्रा सूरो न संदृगायुर्न प्राणो नित्यो न सूनुः।**
तक्वा न भूर्णिर्वना सिषक्ति पयो न धेनुः शुचिर्विभावा ॥१-२॥

ये अग्निदेव स्मरणीय धन के समान विलक्षण, ज्ञानी के समान सम्यक् द्रष्टा, जीवन के समान प्राण प्रदाता, पुत्र के समान हितकारी, अश्व के समान द्रुतगामी तथा गाय के समान उपकारी हैं। ये वन के काष्ठों को जलाकर विशेष प्रकाशयुक्त होते हैं ॥१-२॥

७५८-५९. **दाधार क्षेममोको न रण्वो यवो न पक्वो जेता जनानाम्।**
ऋषिर्न स्तुभ्वा विक्षु प्रशस्तो वाजी न प्रीतो वयो दधाति ॥३-४॥

गृह के समान रमणीय, अन्न के समान परिपक्व, प्रजाजनों पर प्रभुत्व स्थापित करने वाले, ऋषि के समान स्तुत्य तथा प्रजाओं द्वारा प्रशंसित अग्निदेव लोगों के कल्याण के लिए जीवन धारण करते हैं। उत्साहपूर्ण होता के समान प्रजा के हित में ही जीवन समर्पित करते हैं ॥३-४॥

७६०-६१. **दुरोकशोचिः क्रतुर्न नित्यो जायेव योनावरं विश्वस्मै।**
चित्रो यदभ्राट्छ्वेतो न विक्षु रथो न रुक्मी त्वेषः समत्सु ॥५-६॥

असहनीय तेजों से युक्त, कर्मशील के समान नित्य शुभकर्मा, अद्‌भुत दीप्तियुक्त, शुभ्र प्रकाश से प्रकाशमान; प्रजाओं में रथ के समान शोभायमान ये अग्निदेव स्त्रियों द्वारा घर में सुख देने के समान सबके सुखदाता हैं। यज्ञों में स्वर्णिम तेजों से संयुक्त होते हैं ॥५-६॥

७६२-६३. **सेनेव सृष्टामं दधात्यस्तुर्न दिद्युत्त्वेषप्रतीका।**
यमो ह जातो यमो जनित्वं जारः कनीनां पतिर्जनीनाम् ॥७-८॥

ये अग्निदेव आक्रामक सेना के समान बल धारक, विद्युत् अस्त्र के प्रहार के समान प्रचण्ड वेग और तेजों के धारक हैं। जो उत्पन्न हुए हैं या जो उत्पन्न होंगे,उनके नियन्ता अग्निदेव हैं। अग्निदेव कन्याओं का कौमार्य समाप्त करने वाले और विवाहिता के पति हैं ॥७-८॥

[कन्या अग्निदेव की परिक्रमा करने के बाद विवाहिता स्त्री बनती है, इसीलिए अग्निदेव को कौमार्य हर्ता कहा गया है। स्त्रियाँ पति के साथ नित्य ही गार्हपत्य अग्नि का पूजन करती हैं, इस दृष्टि से उन्हें विवाहिता का पति कहा गया है।]

७६४-६५. **तं वश्चराथा वयं वसत्यास्तं न गावो नक्षन्त इद्धम्।**
सिन्धुर्न क्षोदः प्र नीचीरैनोन्नवन्त गावः स्वर्दृशीके ॥९-१०॥

जैसे गौएँ सूर्यास्त होने पर पुनः अपने घर को प्राप्त होती हैं, उसी प्रकार हम सन्तानों और पशुओं से युक्त होकर अग्निदेव को प्राप्त होते हैं। जल के प्रवाहित होने के सदृश अग्नि ज्वालाओं को प्रवाहित करते हैं। उनकी दर्शनीय किरणें आकाश में ऊँची उठती हैं ॥९-१०॥

[सूक्त - ६७]

[ऋषि - पराशर शाक्त्य । देवता - अग्नि । छन्द - द्विपदा विराट् ।]

७६६-६७. **वनेषु जायुर्मर्तेषु मित्रो वृणीते श्रुष्टिं राजेवाजुर्यम्।**
क्षेमो न साधुः क्रतुर्न भद्रो भुवत्स्वाधीर्होता हव्यवाट् ॥१-२ ॥

जैसे राजा सर्वगुण-सम्पन्न वीर पुरुष का वरण करते हैं, वैसे ही अग्निदेव यजमान का वरण करते हैं । जंगल में उत्पन्न, मनुष्यों के मित्र रूप, रक्षक सदृश कल्याण रूप,होता और हविवाहक ये अग्निदेव सम्यक् रूप से कल्याणप्रद हैं ॥१-२ ॥।

७६८-६९. **हस्ते दधानो नृम्णा विश्वान्यमे देवान्धाद्गुहा निषीदन्।**
विदन्तीमत्र नरो धियन्धा हृदा यत्तष्टान्मन्त्राँ अशंसन् ॥३-४ ॥

ये अग्निदेव समस्त धनों को हाथ में धारण करते हैं। गुहा-प्रदेश (यज्ञ कुण्ड) में स्थित हुए इन्होंने देवों को शक्ति - सम्पन्न बनाया। मेधावी पुरुष हृदय से उत्पन्न मन्त्र युक्त स्तुतियों द्वारा इन अग्निदेव को प्रकट करते हैं ॥३-४ ॥

[मंत्रों को प्रभावशाली बनाने के लिए केवल वाणी ही पर्याप्त नहीं है, उसके साथ हृदय - अन्तःकरण की शक्ति जुड़नी चाहिए, जो तप साधना द्वारा जाग्रत् की जाती है।]

७७०-७१. **अजो न क्षां दाधार पृथिवीं तस्तम्भ द्यां मन्त्रेभिः सत्यैः ।**
प्रिया पदानि पश्वो नि पाहि विश्वायुरग्ने गुहा गुहं गाः ॥५-६ ॥

ये अजन्मा अग्निदेव (सूर्य रूप में) पृथ्वी को धारण करते हैं। उन्होंने अन्तरिक्ष को धारण किया। अपने सत्संकल्पों से द्युलोक को भी स्तम्भ सदृश स्थिर किया है। हे अग्निदेव ! आप पशुओं के प्रिय स्थानों को संरक्षित करें। आप सम्पूर्ण प्राणियों के जीवन - आधार होकर गुह्य (अव्यक्त) प्रदेश में सुशोभित हैं ॥५-६ ॥

७७२-७३. **य ईं चिकेत गुहा भवन्तमा यः ससाद धारामृतस्य ।**
वि ये चृतन्त्यृता सपन्त आदिद्वसूनि प्र ववाचास्मै ॥७-८ ॥

जो गुह्य अग्निदेव को जानते हैं, जो यज्ञ में अग्निदेव को प्रज्वलित कर धारण करते हैं और स्तुति करते हैं, उन स्तोताओं को अग्निदेव धन प्राप्त करने की प्रेरणा प्रदान करते हैं ॥७-८ ॥

[जो विभिन्न पदार्थों (काष्ठ, कोयला, अणु आदि) में गुप्तरूप से विद्यमान अग्नि को जानकर प्रज्वलित कर प्रयुक्त कर सकते हैं, वे धन सम्पन्न बनते हैं - यह प्रत्यक्ष देखा जा सकता है ।]

७७४-७५. **वि यो वीरुत्सु रोधन्महित्वोत प्रजा उत प्रसूष्वन्तः ।**
चित्तिरपां दमे विश्वायुः सद्मेव धीराः संमाय चक्रुः ॥९-१० ॥

जो अग्निदेव ओषधियों में अपनी महत्ता स्थापित करते हैं और लताओं से पुष्प-फलादि को प्रकट करते हैं। ज्ञानी पुरुष जलों में अन्तः स्थापित उन अग्निदेव की पूजा कर घर में आश्रय लेने की तरह उनका आश्रय प्राप्त करते हैं ॥९-१० ॥

[यह विज्ञान सम्मत है कि वनस्पतियों - वृक्षों में सूर्य ऊर्जा के प्रभाव से ही रस परिपक्व होता है, तभी उनके गुण (फूल-फल आदि) प्रकट होते हैं।]



[सूक्त - ६८]

[ऋषि - पराशर । देवता - अग्नि । छन्द - द्विपदा विराट् ।]

७७६-७७. श्रीणन्नुप स्थाद्दिवं भुरण्युः स्थातुश्चरथमक्तून्व्यूर्णोत् ।
परि यदेषामेको विश्वेषां भुवद्देवो देवानां महित्वा ॥१-२ ॥

सर्वपालक अग्निदेव स्थावर और जंगम वस्तुओं को परिपक्व करने के लिए आकाश को प्राप्त हुए हैं। उन्होंने रात्रियों को अपनी रश्मियों से प्रकाशित किया और सम्पूर्ण देवों की महत्ता को प्राप्त करके वे अग्रणी हुए ॥१-२ ॥

[सूर्यों (स्व प्रकाशित तारागणों) से उत्पन्न किरणें, ग्रहों, उपग्रहों पर स्थित जड़ - चेतन पदार्थों को परिपक्व करके, परावर्तित होकर आकाश में फैलती हैं । उस परावर्तित प्रकाश से रात्रि प्रकाशित होती है ।]

७७८-७९. आदित्ते विश्वे क्रतुं जुषन्त शुष्काद्यद्देव जीवो जनिष्ठाः ।
भजन्त विश्वे देवत्वं नाम ऋतं सपन्तो अमृतमेवैः ॥३-४ ॥

हे अग्निदेव जब आप सूखे काष्ठ के घर्षण से उत्पन्न हुए, तब सभी देवगणों ने यज्ञ कार्य सम्पन्न किये । हे अविनाशी देव ! आपका अनुगमन करके ही वे देवगण देवत्व को प्राप्त कर सके हैं ॥३-४ ॥

७८०-८१. ऋतस्य प्रेषा ऋतस्य धीतिर्विश्वायुर्विश्वे अपांसि चक्रुः ।
यस्तुभ्यं दाशाद्यो वा ते शिक्षात्तस्मै चिकित्वान्रयिं दयस्व ॥५-६ ॥

ये अग्निदेव यज्ञ की प्रेरणा प्रदान करने वाले और यज्ञ के रक्षक हैं । ये अग्निदेव ही आयु हैं ; इसीलिए सभी यज्ञ कर्म करते हैं । हे अग्निदेव ! जो आपको जानकर आपके निमित्त हवि देता है, उसे आप जानकर हवि प्रदान करें ॥५-६ ॥

७८२-८३. होता निषत्तो मनोरपत्ये स चिन्वासां पती रयीणाम् ।
इच्छन्त रेतो मिथस्तनूषु सं जानत स्वैर्दक्षैरमूराः ॥७-८ ॥

मनुष्य में होतारूप में विद्यमान ये अग्निदेव ही प्रजाओं और धनों के स्वामी हैं । शरीरस्थ अग्नि का वीर्य से सम्बन्ध जानकर मनुष्य ने सन्तानोत्पत्ति की इच्छा प्रकट की और उन अग्निदेव की सामर्थ्य से सन्तान को प्राप्त किया ॥७-८ ॥

[आयुर्वेद में वीर्य से ओज की उत्पत्ति कही गई है । वीर्य में भ्रूण सृजन की प्राण ऊर्जा का रहस्य समझकर इच्छित सन्तान प्राप्त की जा सकती है ।]

७८४-८५. पितुर्न पुत्राः क्रतुं जुषन्त श्रोषन्ये अस्य शासं तुरासः ।
वि राय और्णोद्दुरः पुरुक्षुः पिपेश नाकं स्तृभिर्दमूनाः ॥९-१० ॥

पिता का आदेश मानने वाले पुत्रों के सदृश जिन मनुष्यों ने इन अग्निदेव की आज्ञा को सुनकर शीघ्र ही पालन कर कार्य सम्पन्न किया, उनके लिए अग्निदेव ने विपुल अन्न और धन के भण्डार खोल दिये । यज्ञ कर्मों में, मर्यादित अग्निदेव ने नक्षत्रों से आकाश को अलङ्कृत किया ॥९-१० ॥

[ऊर्जा के जड़-पदार्थ परक प्रयोगों में भी अग्नि - विद्युत् आदि के प्रयोग के कठोर अनुशासन हैं । उनका अनुपालन करने से ही लाभ होता है । उनका अनुपालन तुरंत करने का संकेत है । राकेट संचालन में सैकिण्ड के हजारवें भाग की भी देर असह्य होती है । यज्ञीय चेतन प्रयोगों में भी इसी प्रकार के अनुशासनों का अनुपालन अभीष्ट है ।]

[सूक्त -६९]

[ऋषि - पराशर शाक्त्य । देवता - अग्नि । छन्द - द्विपदा विराट्]

७८६-८७. शुक्रः शुशुक्वाँ उषो न जारः पप्रा समीची दिवो न ज्योतिः ।
परि प्रजातः क्रत्वा बभूथ भुवो देवानां पिता पुत्रः सन् ॥१-२ ॥

हे अग्निदेव ! आप उषा प्रेमी सूर्यदेव के समान दीप्तिमान् हैं । प्रकाशमान सूर्यदेव की ज्योति के समान तेजस्वी होकर अपने तेज से आकाश और पृथ्वी को पूर्ण करते हैं । हे अग्निदेव ! उत्पन्न होकर आपने अपने कर्म से सारे विश्व को व्याप्त किया । आप देवों द्वारा उत्पन्न पुत्र रूप होकर भी उन्हें हवि आदि देकर उनके पिता रूप हो जाते हैं ॥१-२ ॥

७८८-८९. वेधा अदृप्तो अग्निर्विजानन्नूधर्न गोनां स्वाद्मा पितूनाम् ।
जने न शेव आहूर्यः सन्मध्ये निषत्तो रण्वो दुरोणे ॥३-४ ॥

अहंकाररहित बुद्धि से कर्त्तव्यों को जानने वाले, गौ दुग्ध के समान स्वादिष्ट अन्नों को देने वाले अग्निदेव यजमानों द्वारा बुलाने पर आकर, यज्ञ के मध्य में प्रतिष्ठित होकर शोभा पाते हैं और उन याजकों को सुख प्रदान करते हैं ॥३-४ ॥

७९०-९१. पुत्रो न जातो रण्वो दुरोणे वाजी न प्रीतो विशो वि तारीत् ।
विशो यदह्वे नृभिः सनीळा अग्निर्देवत्वा विश्वान्यश्याः ॥५-६ ॥

घर में उत्पन्न हुए पुत्र के समान सुखदायक अग्निदेव हर्षान्वित अश्वों की तरह मनुष्यों को दुःख से पार लगाते हैं । जब मनुष्यों के साथ हम, देवों का आवाहन करते हैं, तब ये अग्निदेव दिव्य प्रेरणाओं से समन्वित होकर दिव्यता को धारण करते हैं ॥५-६ ॥

७९२-९३. नकिष्ट एता व्रता मिनन्ति नृभ्यो यदेभ्यः श्रुष्टिं चकर्थ ।
तत्तु ते दंसो यदहन्त्समानैर्नृभिर्यद्युक्तो विवे रपांसि ॥७-८ ॥

हे अग्निदेव ! जिन मनुष्यों के आप सहायक होते हैं, वे आपके नियमों को तोड़ नहीं सकते । आपने ही मनुष्यों से युक्त होकर पाप रूपी राक्षसों को मार गिराया, यह आपका श्रेष्ठ और प्रशंसनीय कार्य है ॥७-८ ॥

[दैवी शक्तियाँ अपनी ही शर्तों पर सहायता देती हैं, शिष्टाचार अथवा दबाववश उनके नियम बदलते नहीं हैं ।]

७९४-९५. उषो न जारो विभावोस्रः संज्ञातरूपश्चिकेतदस्मै ।
त्मना वहन्तो दुरो व्यृण्वन्नवन्त विश्वे स्व१ र्दृशीके ॥९-१० ॥

उषा प्रेमी सूर्यदेव के समान देदीप्यमान्, प्रकाशित और प्रख्यात अग्निदेव इस हविदाता पुरुष को जानें । हवियुक्त होकर यज्ञ द्वार को खोलकर ये अग्निदेव सम्पूर्ण आकाश में, दशों-दिशाओं में व्याप्त होकर ऊर्ध्वगति प्राप्त करते हैं ॥९-१० ॥

[सूक्त - ७०]

[ऋषि - पराशर शाक्त्य । देवता - अग्नि । छन्द - द्विपदा विराट् ।]

७९६-९७. वनेम पूर्वीरर्यो मनीषा अग्निः सुशोको विश्वान्यश्याः ।
आ दैव्यानि व्रता चिकित्वाना मानुषस्य जनस्य जन्म ॥१-२ ॥



हम अग्निदेव से अपार धन - वैभव की कामना करते हैं । उत्तम तथा प्रकाशित ये अग्निदेव देवों और मनुष्यों के कर्मों को तथा मनुष्य जन्म के रहस्य को जानकर सब में व्याप्त हैं ॥१-२ ॥

७९८-९९. **गर्भो यो अपां गर्भो वनानां गर्भश्च स्थातां गर्भश्चरथाम् ।**
अद्रौ चिदस्मा अन्तर्दुरोणे विशां न विश्वो अमृतः स्वाधीः ॥३-४ ॥

ये अग्निदेव जलों के गर्भ में, वनों के गर्भ में, जंगम और स्थावरों के गर्भ में विद्यमान हैं । ये उत्तमकर्मा और अविनाशी अग्निदेव सभी प्रजाओं को राजा के समान आधार देते हैं । अतः लोग अग्निदेव को घर में और पर्वतों में भी हवि प्रदान करते हैं ॥३-४ ॥

८००-८०१. **स हि क्षपावाँ अग्नी रयीणां दाशद्यो अस्मा अरं सूक्तैः ।**
एता चिकित्वो भूमा नि पाहि देवानां जन्म मर्तांश्च विद्वान् ॥५-६ ॥

अग्निदेव की उत्तम मंत्रों से जो याजक स्तुति करते हैं, उन्हें वे निश्चय ही वैभव प्रदान करते हैं । हे सर्वज्ञ अग्निदेव ! आप देवों और मनुष्यों के जीवन रहस्यों को जानने वाले हैं । आप समस्त प्राणियों की रक्षा करें ॥५-६ ॥

८०२-३. **वर्धान्यं पूर्वीः क्षपो विरूपाः स्थातुश्च रथमृतप्रवीतम् ।**
अराधि होता स्व१र्निषत्तः कृण्वन्विश्वान्यपांसि सत्या ॥७-८ ॥

विविध रूपों वाली देवी उषा और रात्रि जिन अग्निदेव को प्रवृद्ध करती हैं, स्थावर, वृक्षादि और जंगम मनुष्यादि भी यज्ञ रूप उन अग्निदेव को प्रवृद्ध करते हैं । अग्निदेव को होतारूप में प्रतिष्ठित कर लोग उन्हें यज्ञ-अनुष्ठानों द्वारा हवि समर्पित करके पूजते हैं ॥७-८ ॥

८०४-५. **गोषु प्रशस्तिं वनेषु धिषे भरन्त विश्वे बलिं स्वर्णः ।**
वि त्वा नरः पुरुत्रा सपर्यन्पितुर्न जिव्रेर्वि वेदो भरन्त ॥९-१० ॥

हे अग्निदेव ! आप वनों और गौओं में पुष्टिकारक पदार्थों को भी स्थापित करें । सभी मनुष्यों को ग्रहण करने योग्य श्रेष्ठ अन्नों और धनों से पूर्ण करें । हम आपको विविध प्रकार से पूजते हैं । जैसे पिता पुत्र को धन से पूर्ण करता है, वैसे ही हम आपसे धन पाते रहे हैं ॥९-१० ॥

८०६. **साधुर्न गृध्नुरस्तेव शूरो यातेव भीमस्त्वेषः समत्सु ॥११ ॥**

ये अग्निदेव उत्तम देव पुरुष के सदृश पूज्य, अस्त्रों का प्रहार करने वाले के सदृश वीर, आक्रान्ता के सदृश विकराल और संग्राम काल में तेजस्विता की प्रतिमूर्ति होते हैं ॥११ ॥

[सूक्त – ७१]

[**ऋषि**- पराशर शाक्त्य । **देवता**- अग्नि । **छन्द**- त्रिष्टुप् ।]

८०७. **उप प्र जिन्वन्नुशतीरुशन्तं पतिं न नित्यं जनयः सनीळाः ।**
स्वसारः श्यावीमरुषीमजुश्रञ्चित्रमुच्छन्तीमुषसं न गावः ॥१ ॥

पतिव्रता स्त्रियाँ जिस प्रकार अपने पति को प्राप्तकर उन्हें प्रसन्न करती हैं, वैसे ही हमारी अँगुलियाँ मिलकर अग्निदेव को सम्यक् प्रकार से प्रसन्न करती हैं । श्यामवर्ण, पुनः पीतवर्ण और अरुणिम वर्ण वाली विलक्षण उषा की किरणें जैसे सेवा करती हैं, वैसे ही हमारी अँगुलियाँ अग्निदेव की सेवा करती हैं ॥१ ॥

८०८. वीळु चिद्‌ळ्हा पितरो न उक्थैरद्रिं रुजन्नङ्गिरसो रवेण।
चक्रुर्दिवो बृहतो गातुमस्मे अहः स्वर्विविदुः केतुमुस्राः ॥२॥

हमारे पितर अंगिरा ने मंत्रों द्वारा विकराल और सुदृढ़ पर्वताकार अज्ञानान्धकार रूपी असुर को शब्द मात्र से नष्ट किया; तब आकाश मार्ग में ज्योति रूप सूर्य और ध्वज रूप प्रकाश किरणों से सम्पन्न दिवस को हमने प्राप्त किया ॥२॥

८०९. दधन्नृतं धनयन्नस्य धीतिमादिदर्यो दिधिष्वो३ विभृत्राः।
अतृष्यन्तीरपसो यन्त्यच्छा देवाञ्जन्म प्रयसा वर्धयन्तीः ॥३॥

शाश्वत सत्यरूप यज्ञ को धारण करने वाले अंगिरा ने उसकी तेजस्विता को धन के सदृश धारण किया। अनन्तर धन को, तेज और पुष्टि को धारण करने की इच्छुक प्रजाओं ने हवियों से देवों को पुष्ट करते हुए अग्निदेव को प्राप्त किया ॥३॥

८१०. मथीद्यदीं विभृतो मातरिश्वा गृहेगृहे श्येतो जेन्यो भूत्।
आदीं राज्ञे न सहीयसे सचा सन्ना दूत्यं१ भृगवाणो विवाय ॥४॥

वायु के संयोग से उत्पन्न होने वाले अग्निदेव शुभ्र ज्योति के रूप में प्रत्येक गृह अर्थात् शरीर में प्रतिष्ठित हुए। पुन: भृगुवंशीय ऋषि ने देवों तक हवि पहुँचाने वाले दूत (देवत्व प्राप्ति के माध्यम) के रूप में माना, जैसे कोई राजा, मित्र राजा के दूत द्वारा सम्पर्क करता है ॥४॥

[**बाहर अग्नि के प्रज्वलन तथा शरीरों में रस परिपाक (मेटाबॉलिज्म) के लिए वायु के संयोग की अनिवार्यता पदार्थ विज्ञान भी मानता है)**]

८११. महे यत्पित्र ईं रसं दिवे करव त्सरत्पृशन्यश्चिकित्वान्।
सृजदस्ता धृषता दिद्युमस्मै स्वायां देवो दुहितरि त्विषिं धात् ॥५॥

महान् और पोषण प्रदान करने वाले देवों के निमित्त कौन सज्जन और कौन ज्ञानी हव्यरूप सोमरसों को अग्नि में देने से पलायन कर सकता है? ये अस्त्र चलाने में कुशल अग्निदेव अपने धनुष से उन पर बाणों का प्रहार करते हैं और सूर्य रूप में अपनी पुत्री उषा को तेज धारण कराते हैं ॥५॥

८१२. स्व आ यस्तुभ्यं दम आ विभाति नमो वा दाशादुशतो अनु द्यून्।
वर्धो अग्ने वयो अस्य द्विबर्हा यासद्राया सरथं यं जुनासि ॥६॥

हे अग्निदेव! जो याजक आपको घर में प्रदीप्त करता है और प्रतिदिन आपकी कामना करते हुए स्तुति युक्त हवि देता है, उसे आप दुगुने बल और आयु से बढ़ायें, जो आपकी प्रेरणा से रथ सहित युद्ध में जाता है (जीवन-संग्राम में संघर्ष करता है), वह धन से युक्त होता है ॥६॥

८१३. अग्निं विश्वा अभि पृक्षः सचन्ते समुद्रं न स्रवतः सप्त यह्वीः।
न जामिभिर्वि चिकिते वयो नो विदा देवेषु प्रमतिं चिकित्वान् ॥७॥

जैसे सातों महान् नदियाँ समुद्र को प्राप्त होती हैं, वैसे ही हमारा सम्पूर्ण हविष्यान्न अग्निदेव को प्राप्त होता है। अन्य महान् देवों के लिए यह हविष्यान्न पर्याप्त है या नहीं-हम यह नहीं जानते। अत: आप अन्नादि वैभव हमें प्रदान करें ॥७॥



८१४. आ यदिषे नृपतिं तेज आनट् छुचि रेतो निषिक्तं द्यौरभीके ।
अग्निः शर्धमनवद्यं युवानं स्वाध्यं जनयत्सूदयच्च ॥८ ॥

(अग्नि का) जो शुद्ध और प्रदीप्त तेज अन्नादि (के पाचन) के लिए यजमान आदि में व्याप्त है, उस तेज से युक्त रेतस् को (प्रकृति रूपी) उत्पत्ति स्थल में स्थापित करके अग्निदेव अभीष्ट पोषण रूप सन्तानों को जन्म दें और उस बलवान् अनिन्द्य तरुण शोभन कर्मा (सन्तान) को यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों में प्रेरित करें ॥८ ॥

८१५. मनो न योऽध्वनः सद्य एत्येकः सत्रा सूरो वस्व ईशे ।
राजाना मित्रावरुणा सुपाणी गोषु प्रियममृतं रक्षमाणा ॥९ ॥

मन के सदृश गति वाले सूर्यरूप मेधावी अग्निदेव एक सुनिश्चित मार्ग से गमन करते हैं और विविध धनों पर आधिपत्य रखते हैं । सुन्दर भुजाओं वाले मित्रावरुण गौओं में उत्तम और अमृत तुल्य दूध की रक्षा करते हैं ॥९ ॥

८१६. मा नो अग्ने सख्या पित्र्याणि प्र मर्षिष्ठा अभि विदुष्कविः सन् ।
नभो न रूपं जरिमा मिनाति पुरा तस्या अभिशस्तेरधीहि ॥१० ॥

हे अग्निदेव ! मेधावी और सर्वज्ञ रूप आप हमारी पितरों के समय से चली आई मित्रता को विस्मरण न करें । जैसे सूर्य रश्मियाँ अन्तरिक्ष को ढँक देती हैं, वैसे ही बुढ़ापा हमें नष्ट करना चाहता है, अतः हे अग्निदेव ! वह बुढ़ापा हमारा विनाश करने के पूर्व ही समाप्त हो जाये (हमें अमृतत्व की प्राप्ति हो) ॥१० ॥

[सूक्त -७२]

[ऋषि - पराशर शाक्त्य । देवता - अग्नि । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

८१७. नि काव्या वेधसः शश्वतस्कर्हस्ते दधानो नर्या पुरूणि ।
अग्निर्भुवद्रयिपती रयीणां सत्रा चक्राणो अमृतानि विश्वा ॥१ ॥

मनुष्यों के हितैषी ये अग्निदेव बहुत से धनों को हाथ में धारण करते हैं । ये सदा काव्य रूप स्तोत्रों को प्राप्त होते हैं । धनों में श्रेष्ठ धन के स्वामी ये अग्निदेव स्तोताओं को सुखकारी सम्पूर्ण वैभव प्रदान करते हैं ॥१ ॥

८१८. अस्मे वत्सं परि षन्तं न विन्दन्निच्छन्तो विश्वे अमृता अमूराः ।
श्रमयुवः पदव्यो धियंधास्तस्थुः पदे परमे चार्वग्नेः ॥२ ॥

सम्पूर्ण मेधावी और अमर देवगण अग्नि की इच्छा करते हुए भी वे उन सर्वव्यापक अग्निदेव को नहीं पा सके । अन्त में वे बुद्धिमान् देवगण थके पैरों से अग्निदेव के उस सुन्दरतम स्थान को प्राप्त हुए ॥२ ॥

८१९. तिस्रो यदग्ने शरदस्त्वामिच्छुचिं घृतेन शुचयः सपर्यान् ।
नामानि चिद्दधिरे यज्ञियान्यसूदयन्त तन्वः सुजाताः ॥३ ॥

हे पवित्र अग्निदेव ! जब तेजस्वी मनुष्यों ने तीन वर्षों से घृत द्वारा आपका पूजन किया, तब उन्होंने यज्ञ के उपयुक्त नामों को धारण किया । अपने शरीरों का शोधन कर वे देवरूप में उत्पन्न हुए ॥३ ॥

८२०. आ रोदसी बृहती वेविदानाः प्र रुद्रिया जभ्रिरे यज्ञियासः ।
विदन्मर्तो नेमधिता चिकित्वानग्निं पदे परमे तस्थिवांसम् ॥४ ॥



याजकों ने महान् पृथिवी और आकाश का ज्ञान कराते हुए अग्निदेव के लिए उत्तम स्तोत्रों का पाठ किया। मनुष्यों ने उस सर्वोत्तम स्थान में अधिष्ठित अग्निदेव को जानकर ज्ञान प्राप्त किया ॥४ ॥

८२१. संजानाना उप सीदन्नभिज्ञु पत्नीवन्तो नमस्यं नमस्यन्।
रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत स्वाः सखा सख्युर्निमिषि रक्षमाणाः ॥५ ॥

देव मानवों ने पत्नियों के साथ घुटनों के बल बैठकर उन अग्निदेव को भली प्रकार से जानकर पूजन तथा उनका अभिवादन किया। उन्होंने अपने शरीरों को सुरक्षित करते हुए पवित्र किया और सखा अग्निदेव का मित्र भाव से क्षणिक दर्शन प्राप्त किया ॥५ ॥

८२२. त्रिः सप्त यद्गुह्यानि त्वे इत्पदाविदन्निहिता यज्ञियासः।
तेभी रक्षन्ते अमृतं सजोषाः पशूञ्च स्थातॄञ्चरथं च पाहि ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! याजकों ने आपके २१ प्रकार के रहस्यों अर्थात् यज्ञ की विधियों को जानकर उनका प्रयोग किया। यज्ञ से अपनी जीवनी-शक्ति की रक्षा की। आप प्राणिमात्र के प्रति स्नेहयुक्त होकर सबकी रक्षा करें ॥६ ॥

८२३. विद्वाँ अग्ने वयुनानि क्षितीनां व्यानुषक्छुरुधो जीवसे धाः।
अन्तर्विद्वाँ अध्वनो देवयानानतन्द्रो दूतो अभवो हविर्वाट् ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! आप मुनष्यों के व्यवहारों को जानने वाले विद्वान् हैं। जीवन धारण के लिए पोषक अन्नों की व्यवस्था करें। देवगण जिस मार्ग से गमन करते हैं, उसे जानकर आलस्यहीन होकर दूत रूप में हविष्यान्न ग्रहण करें ॥७ ॥

८२४. स्वाध्यो दिव आ सप्त यह्वी रायो दुरो व्यृतज्ञा अजानन्।
विदद्गव्यं सरमा दृळ्हमूर्वं येना नु कं मानुषी भोजते विट् ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! ध्यान से सृष्टि के सत्य को जानने वाले ऋषियों ने आकाश से बहती हुई सप्त-नदियों से ऐश्वर्य के द्वारों को खोलने की विधि जानी। आपकी प्रेरणा से सरमा ने गायों को ढूँढ़ लिया, जिससे सभी मानवी प्रजाएँ सुखपूर्वक पोषण पाती हैं ॥८ ॥

८२५. आ ये विश्वा स्वपत्यानि तस्थुः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम्।
मह्ना महद्भिः पृथिवी वि तस्थे माता पुत्रैरदितिर्धायसे वेः ॥९ ॥

जो देवगण सम्पूर्ण श्रेष्ठ कर्मों का सम्पादन कर अमरत्व को प्राप्त करने का मार्ग बनाते हैं, उन सभी महान् कर्म करने वाले देवपुत्रों के सहित माता अदिति, सम्पूर्ण पृथ्वी (जगत्) को धारण - पोषण के लिए अपनी महिमा से अधिष्ठित हैं। हे अग्ने ! स्वयं आप उन देवगणों द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले याग की हवियों को ग्रहण करें ॥९ ॥

८२६. अधि श्रियं नि दधुश्चारुमस्मिन्दिवो यदक्षी अमृता अकृण्वन्।
अध क्षरन्ति सिन्धवो न सृष्टाः प्र नीचीरग्ने अरुषीरजानन् ॥१० ॥

द्युलोक के अमर देवों ने जब इस विश्व में श्रेष्ठ सुन्दर तेज स्थापित किया और दो आँखें बनाईं, तब प्रेरित नदियों के विस्तार की तरह अवतरित होती देवी उषा को मनुष्य जान सके ॥१० ॥

[**प्रकाश और नेत्रों के संयोग से ही कोई दृश्य दिखाई दे सकता है - यह तथ्य विज्ञान सम्मत है ।**]



[सूक्त - ७३]

[**ऋषि** - पराशर शाक्त्य । **देवता** - अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

८२७. रयिर्न यः पितृवित्तो वयोधाः सुप्रणीतिश्चिकितुषो न शासुः ।
स्योनशीरतिथिर्न प्रीणानो होतेव सद्म विधतो वि तारीत् ॥१ ॥

ये अग्निदेव पैतृक सम्पत्ति की तरह अन्न देने वाले तथा ज्ञानी पुरुष के उपदेश की तरह उत्तम प्रेरणा देने वाले हैं । घर में आए अतिथि के समान प्रिय और होता के समान यजमान को घर (आवास) प्रदान करने वाले हैं ॥१ ॥

८२८. देवो न यः सविता सत्यमन्मा क्रत्वा निपाति वृजनानि विश्वा ।
पुरुप्रशस्तो अमतिर्न सत्य आत्मेव शेवो दिधिषाय्यो भूत् ॥२ ॥

देदीप्यमान सूर्यदेव के सदृश सत्यदर्शी ये अग्निदेव अपने श्रेष्ठ कर्मों से सभी को पापों से रक्षित करते हैं । असंख्यों द्वारा प्रशंसित होने वाले ये उन्नति करते हुए सत्यमार्ग पर चलते हैं । ये आत्मा के सदृश आनन्दप्रद और सबके द्वारा धारण किये जाने योग्य हैं ॥२ ॥

८२९. देवो न यः पृथिवीं विश्वधाया उपक्षेति हितमित्रो न राजा ।
पुरः सदः शर्मसदो न वीरा अनवद्या पतिजुष्टेव नारी ॥३ ॥

दीप्तिमान् सूर्यदेव के सदृश सम्पूर्ण संसार को धारण करने वाले, राजा के सदृश प्रजा के हितैषी, मित्र रूप अग्निदेव पृथिवी पर आसीन हैं । पिता के आश्रय में पुत्रों के रहने के समान लोग इनके आश्रय को पाते हैं । ये अग्निदेव पतिव्रता स्त्री की तरह पवित्र और वन्दनीय हैं ॥३ ॥

८३०. तं त्वा नरो दम आ नित्यमिद्धमग्ने सचन्त क्षितिषु ध्रुवासु ।
अधि द्युम्नं नि दधुर्भूर्यस्मिन्भवा विश्वायुर्धरुणो रयीणाम् ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! उपद्रवरहित घरों में लोग नित्य समिधायें प्रज्वलित कर आपकी परिचर्या करते हैं । आकाशीय देवों ने आपको प्रचण्ड तेज से अभिपूरित किया है । आप सबके प्राणरूप हैं, हमारे लिये आप धन-वैभव प्रदान करें ॥४ ॥

८३१. वि पृक्षो अग्ने मघवानो अश्युर्वि सूरयो ददतो विश्वमायुः ।
सनेम वाजं समिथेष्वर्यो भागं देवेषु श्रवसे दधानाः ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! धन-सम्पन्न यजमान आपकी अनुकम्पा से अन्नों को प्राप्त करें । विद्वान् हविदाता दीर्घ आयु को प्राप्त करें । हम यश के निमित्त देवों को हवि का भाग देते हुए युद्धों में शत्रु के वैभव को जीतें ॥५ ॥

८३२. ऋतस्य हि धेनवो वावशानाः स्मदूध्नीः पीपयन्त द्युभक्ताः ।
परावतः सुमतिं भिक्षमाणा वि सिन्धवः समया सस्रुरद्रिम् ॥६ ॥

सतत दूध (पोषण) देने वाली तेजस्वी गौएँ (किरणें) यज्ञ को पयपान कराती हैं । सुदूर पर्वतों से प्रवाहित नदियाँ (रस प्रवाह) यज्ञ से सद्बुद्धि की याचना करती हैं ॥६ ॥

[प्रकृति यज्ञ में सभी प्रवाहों के यज्ञीय मर्यादा में उपयोग का भाव है ।]



८३३. **त्वे अग्ने सुमतिं भिक्षमाणा दिवि श्रवो दधिरे यज्ञियासः ।**
नक्ता च चक्रुरुषसा विरूपे कृष्णं च वर्णमरुणं च सं धुः ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! यज्ञ में कल्याणकारी बुद्धि की याचना करते हुए पूज्य देवों ने हवि समर्पित करके अन्न को धारण किया । अनन्तर रात्रि और विभिन्न रूपों वाली देवी उषा को स्थापित किया । रात्रि में कृष्ण वर्ण को तथा उषा में अरुणिम वर्ण को धारण कराया ॥७ ॥

८३४. **यान्राये मर्तान्त्सुषूदो अग्ने ते स्याम मघवानो वयं च ।**
छायेव विश्वं भुवनं सिसक्ष्यापप्रिवान्रोदसी अन्तरिक्षम् ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! जिन मनुष्यों को आपने धन प्राप्ति के निमित्त प्रेरित किया है, वे और हम धनवान् हों । आपने आकाश , पृथ्वी और अन्तरिक्ष को प्रकाश से अभिपूरित किया है । समस्त जगत् छाया के सदृश आपके साथ संयुक्त है ॥८ ॥

[दर्पण जब किसी व्यक्ति के शरीर के बिम्ब को परावर्तित करता है, तो उसमें व्यक्ति की छाया दिखाई देती है । अग्नि (सूर्य) का प्रकाश जब विश्व के पदार्थों द्वारा परावर्तित होता है, तभी वे दिखाई देते है, इसीलिए विश्व को अग्नि की छाया सदृश कहा है ।]

८३५. **अर्वद्भिरग्ने अर्वतो नृभिर्नृन्वीरैर्वीरान्वनुयामा त्वोताः ।**
ईशानासः पितृवित्तस्य रायो वि सूरयः शतहिमा नो अश्युः ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! आपके संरक्षण में रहते हुए हम अपने अश्वों से शत्रुओं के अश्वों को, अपने योद्धाओं से शत्रु योद्धाओं को, अपने पुत्रों से शत्रु पुत्रों को दूर करें । पैतृक -सम्पदा को प्राप्त कर हम स्तोतागण शत वर्ष की आयु का पूर्ण उपयोग करें ॥९ ॥

८३६. **एता ते अग्न उचथानि वेधो जुष्टानि सन्तु मनसे हृदे च ।**
शकेम रायः सुधुरो यमं तेऽधि श्रवो देवभक्तं दधानाः ॥१० ॥

हे मेधावी अग्निदेव ! ये हमारे स्तोत्र आपके मन और हृदय को भली प्रकार सन्तुष्ट करें । हम देवों द्वारा प्रदत्त धन, वैभव और यश को धारण करते हुए सुख को प्राप्त करें ॥१० ॥

[सूक्त - ७४]

[**ऋषि**-गोतम राहूगण । **देवता** -अग्नि । **छन्द** - गायत्री ।]

८३७. **उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये । आरे अस्मे च शृण्वते ॥१ ॥**

हमारे कथन (भाव) को सुनने वाले अग्निदेव के निमित्त हम यज्ञ के समीप तथा सुदूर स्थान से भी उपस्थित होते हुए स्तुति मंत्र समर्पित करते हैं ॥१ ॥

८३८. **यः स्नीहितीषु पूर्व्यः संजग्मानासु कृष्टिषु । अरक्षद्दाशुषे गयम् ॥२ ॥**

सदैव जाज्वल्यमान वे अग्निदेव परस्पर स्नेह-सौजन्य युक्त प्रजाओं के एकत्र होने पर दाताओं के ऐश्वर्य की रक्षा करते हैं ॥२ ॥

[यज्ञ की सार्थकता के लिए परस्पर स्नेह और सहयोग अनिवार्य है]

८३९. **उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि । धनञ्जयो रणेरणे ॥३ ॥**

शत्रुनाशक, युद्ध में शत्रुओं को पराजित कर धन जीतने वाले अग्निदेव का प्राकट्य हुआ है, सभी लोग उनकी स्तुति करें ॥३ ॥



८४०. यस्य दूतो असि क्षये वेषि हव्यानि वीतये। दस्मत्कृणोष्यध्वरम् ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! जिस यजमान के घर से दूत रूप में आप देवों के लिए हवि वहन करते हैं, उस घर (यज्ञशाला) को आप उत्तम प्रकार से दर्शनीय बनाते हैं ॥४ ॥

८४१. तमित्सुहव्यमङ्गिरः सुदेवं सहसो यहो। जना आहुः सुबर्हिषम् ॥५ ॥

हे बल के पुत्र (अरणि मन्थन द्वारा बल पूर्वक उत्पन्न होने वाले) अग्निदेव ! आप यजमान को सुन्दर हवि द्रव्य से युक्त, सुन्दर देवों से और श्रेष्ठ यज्ञ से पूर्ण करते हैं, ऐसा लोगों का कथन है ॥५ ॥

८४२. आ च वहासि ताँ इह देवाँ उप प्रशस्तये। हव्या सुश्चन्द्र वीतये ॥६ ॥

हे तेजस्वी अग्निदेव ! उन देवों को हमारे यज्ञ में स्तुतियाँ सुनने और हवि ग्रहण करने के लिए समीप ले आयें ॥६ ॥

८४३. न योरुपब्दिरश्व्यः शृण्वे रथस्य कच्चन। यदग्ने यासि दूत्यम् ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! आप जब कभी भी देवों के दूत बनकर जाते हैं,तब आपके गतिमान रथ के घोड़ों का कोई शब्द सुनाई नहीं पड़ता ॥७ ॥

८४४. त्वोतो वाज्यह्रयोऽभि पूर्वस्मादपरः। प्र दाश्वाँ अग्ने अस्थात् ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! पहले असुरक्षित रहने वाला हविदाता यजमान आपकी सामर्थ्य द्वारा रक्षित होकर बल सम्पन्न बना तथा हीनता से मुक्त हुआ ॥८ ॥

८४५. उत द्युमत्सुवीर्यं बृहदग्ने विवाससि। देवेभ्यो देव दाशुषे ॥९ ॥

हे महान् अग्निदेव ! आप देवों को हवि प्रदान करने वाले यजमान को अतिशय तेज और श्रेष्ठ बल प्राप्त कराते हैं ॥९ ॥

[सूक्त - ७५]

[ऋषि - गोतम राहूगण । देवता - अग्नि । छन्द -गायत्री ।]

८४६. जुषस्व सप्रथस्तमं वचो देवप्सरस्तमम्। हव्या जुह्वान आसनि ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! मुख में हवियों को ग्रहण करते हुए हमारे द्वारा देवों को अत्यन्त प्रसन्न करने वाले स्तुति वचनों को आप स्वीकार करें ॥१ ॥

८४७. अथा ते अङ्गिरस्तमाग्ने वेधस्तम प्रियम्। वोचेम ब्रह्म सानसि ॥२ ॥

अंगिरा (अंगों में स्थापित देवों) में श्रेष्ठ, मेधावियों में उत्कृष्ट हे अग्निदेव ! अब हम आपके निमित्त अति प्रिय मंत्र युक्त स्तोत्रों का पाठ करते हैं ॥२ ॥

८४८. कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः। को ह कस्मिन्नसि श्रितः ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! मनुष्यों में आपका बन्धु कौन है ? श्रेष्ठ दान से कौन आपका यजन करता है ? आपके स्वरूप को कौन जानता है ? आपका आश्रय स्थल कहाँ है ? ॥३ ॥

८४९. त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः। सखा सखिभ्य ईड्यः ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप मनुष्यों से भ्रातृभाव रखने वाले, यजमानों की रक्षा करने वाले, स्तोताओं के लिए प्रिय मित्र के तुल्य हैं ॥४ ॥

८५०. यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत्। अग्ने यक्षि स्वं दमम् ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! हमारे निमित्त मित्र और वरुण का यजन करें। विशाल यज्ञ सम्पादित करें तथा यज्ञशाला में पूजा योग्य भाव से रहें ॥५ ॥

[सूक्त - ७६]

[ऋषि - गोतम राहूगण। देवता - अग्नि। छन्द - त्रिष्टुप्।]

८५१. का त उपेतिर्मनसो वराय भुवदग्ने शंतमा का मनीषा।
को वा यज्ञैः परि दक्षं त आप केन वा ते मनसा दाशेम ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आपके मन को सन्तुष्ट करने का हम क्या उपाय करें ? किस यज्ञ से यजमान बल वृद्धि करें ? कौन सी स्तुति आपके लिए सुखप्रद है ? किस मन से हम आपको हवि प्रदान करें ॥१ ॥

८५२. एह्यग्न इह होता नि षीदादब्धः सु पुरएता भवा नः।
अवतां त्वा रोदसी विश्वमिन्वे यजा महे सौमनसाय देवान् ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे इस यज्ञ में आकर होता रूप में अधिष्ठित हों। आप अविचलित होकर इसमें अग्रणी हों। सर्वव्यापक आकाश और पृथ्वी आपकी रक्षा करें। हमारे लिए अभीष्ट फल- प्राप्ति के निमित्त आप देवकार्य (यज्ञ) सम्पन्न करायें ॥२ ॥

८५३. प्र सु विश्वान्रक्षसो धक्ष्यग्ने भवा यज्ञानामभिशस्तिपावा।
अथा वह सोमपतिं हरिभ्यामातिथ्यमस्मै चकृमा सुदाव्ने ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप श्रेष्ठ कार्यों में बाधा डालने वाले सम्पूर्ण राक्षसों का भली प्रकार दहन करें। हमारे यज्ञ की हिंसा करने वालों से रक्षा करें। अनन्तर सोम पीने वाले इन्द्रदेव को अपने अश्वों सहित यज्ञ में लायें, जिससे हम उन उत्तम दानदाता इन्द्रदेव का अतिथि सत्कार कर सकें ॥३ ॥

८५४. प्रजावता वचसा वह्निरासा च हुवे नि च सत्सीह देवैः।
वेषि होत्रमुत पोत्रं यजत्र बोधि प्रयन्तर्जनितर्वसूनाम् ॥४ ॥

हवि भक्षक अग्निदेव का हम प्रजाजन स्तोत्रों से आवाहन करते हैं। यजन के योग्य हे अग्निदेव ! आप यज्ञ में प्रतिष्ठित और 'पोता' रूप में पोषित किये जाने वाले हैं। आप धनों को उत्पन्न करने वाले हैं। धन के निमित्त हमारी कामना को जानें और उसे पूर्ण करें ॥४ ॥

८५५. यथा विप्रस्य मनुषो हविर्भिर्देवाँ अयजः कविभिः कविः सन्।
एवा होतः सत्यतर त्वमद्याग्ने मन्द्रया जुह्वा यजस्व ॥५ ॥

हे अग्निदेव ! आप होतारूप और सत्य-स्वरूप हैं। आप मेधावियों में श्रेष्ठ मेधावी रूप में ज्ञानी मनुष्यों की हवियों द्वारा देवों के साथ पूजे जाते हैं। आप प्रसन्नता देने वाली आहुतियों को ग्रहण करते हैं ॥५ ॥



[सूक्त - ७७]

[ऋषि - गोतम राहूगण । देवता - अग्नि । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

८५६. **कथा दाशेमाग्नये कास्मै देवजुष्टोच्यते भामिने गीः ।**
यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा होता यजिष्ठ इत्कृणोति देवान् ।।१ ।।

इन अग्निदेव के लिए हम किस प्रकार हवि दें ? इन्हें कौन सी देव-प्रिय स्तुति से प्रकाशित करें ? जो मनुष्यों के बीच रहकर देवों को हविष्यान्न पहुँचाते हैं, ऐसे ये अग्निदेव अविनाशी, पूज्य , यज्ञकर्म सम्पादक और होता रूप हैं ।।१ ।।

८५७. **यो अध्वरेषु शंतम ऋतावा होता तमू नमोभिरा कृणुध्वम् ।**
अग्निर्यद्वेर्मर्ताय देवान्त्स चा बोधाति मनसा यजाति ।।२ ।।

ये अग्निदेव यज्ञों में अत्यन्त सुख प्रदान करने वाले तथा होता रूप में यज्ञ करने वाले हैं । हे मनुष्यो ! उन अग्निदेव का श्रेष्ठ स्तोत्रों से अभिवादन करें । ये अग्निदेव मनुष्यों के हित के लिए देवों के पास जाते हैं । देवों को जानने वाले ये अग्निदेव मन से देवों का यजन करते हैं ।।२ ।।

८५८. **स हि क्रतुः स मर्यः स साधुर्मित्रो न भूदद्भुतस्य रथीः ।**
तं मेधेषु प्रथमं देवयन्तीर्विश उप ब्रुवते दस्ममारीः ।।३ ।।

वे अग्निदेव निश्चय ही यज्ञ रूप हैं, वे ही साधु रूप पर हितकारी हैं । वे ही यजमान और मित्र के समान सहायक भी हैं । वे विलक्षण प्रकार के रथी वीर हैं । देवत्व प्राप्ति की कामना करने वाले लोग यज्ञों में उन दर्शनीय यज्ञदेव की सर्वप्रथम उत्तम स्तुतियाँ करते हैं ।।३ ।।

८५९. **स नो नृणां नृतमो रिशादा अग्निर्गिरोऽवसा वेतु धीतिम् ।**
तना च ये मघवानः शविष्ठा वाजप्रसूता इषयन्त मन्म ।।४ ।।

ये अग्निदेव मनुष्यों में सर्वोत्कृष्ट और शत्रुओं का विनाश करने वाले हैं । वे विचारपूर्वक की गई हमारी स्तुतियों को स्वीकार करते हुए रक्षण साधनों द्वारा हमारी रक्षा करें । ये अत्यन्त ऐश्वर्यशाली और बलशाली अग्निदेव हमारी हविष्यान्न युक्त स्तुतियों को प्राप्त हों ।।४ ।।

८६०. **एवाग्निर्गोतमेभिर्ऋतावा विप्रेभिरस्तोष्ट जातवेदाः ।**
स एषु द्युम्नं पीपयत्स वाजं स पुष्टिं याति जोषमा चिकित्वान् ।।५ ।।

सत्य युक्त , सर्वज्ञ अग्निदेव की मेधा सम्पन्न गोतमों ने स्तुति की । यज्ञ में अग्निदेव ने हविष्यान्न को ग्रहण कर दीप्तिमान् सोम का पान किया । ऋषियों की भक्ति को जानकर उन्होंने उन्हें भली प्रकार पुष्ट किया ।।५ ।।

[सूक्त - ७८]

[ऋषि - गोतम राहूगण । देवता - अग्नि । छन्द -गायत्री ।]

८६१. **अभि त्वा गोतमा गिरा जातवेदो विचर्षणे । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ।।१ ।।**

सृष्टि के समस्त रहस्यों को देखने व जानने वाले हे अग्निदेव ! गोतमवंशी हम उत्तम वाणियों से तेजस्वी मंत्रों का गान करते हुए आपका अभिवादन करते हैं ।।१ ।।

८६२. तमु त्वा गोतमो गिरा रायस्कामो दुवस्यति । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! धन की कामना से गोतम-वंशी आपकी उत्तम वाणियों से परिचर्या करते हैं । तेजस्वी स्तोत्रों से हम भी आपका अभिवादन करते हैं ॥२ ॥

८६३. तमु त्वा वाजसातममङ्गिरस्वद्धवामहे । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥३ ॥

विपुल अन्नों को देने वाले हे अग्निदेव ! हम अंगिराओं के समान आपका आवाहन करते हैं और तेजस्वी मंत्रों से आपको नमस्कार करते हैं ॥३ ॥

८६४. तमु त्वा वृत्रहन्तमं यो दस्यूँरवधूनुषे । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥४ ॥

हम तेजस्वी मंत्रों से राक्षसों को कँपाने वाले अंधकार रूपी असुर का संहार करने वाले अग्निदेव का स्तवन करते हैं ॥४ ॥

८६५. अवोचाम रहूगणा अग्नये मधुमद्वचः । द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥५ ॥

रहूगण वंशी हम लोग अग्निदेव के लिए मधुर स्तुतियाँ प्रस्तुत करते हैं । तेजस्वी मंत्रों से आपको नमस्कार करते हैं ॥५ ॥

[सूक्त - ७९]

[**ऋषि** - गोतम राहूगण । **देवता**-१,३ अग्नि या मध्यम अग्नि,४-१२ अग्नि । **छन्द** - १-३ त्रिष्टुप्, ४-६ उष्णिक्, ७ - १२ गायत्री]

८६६. हिरण्यकेशो रजसो विसारेऽहिर्धुनिर्वात इव ध्रजीमान् ।
शुचिभ्राजा उषसो नवेदा यशस्वतीरपस्युवो न सत्याः ॥१ ॥

ये अग्निदेव स्वर्णिम् ज्वालाओं से युक्त लोकों के विस्तारक, मेघों को कँपाने वाले, वायु के समान वेग वाले हैं । शुभ्र कान्ति से युक्त ये अग्निदेव देवी उषा के लिए अन्तरिक्ष का विस्तार करते हैं । अपने कर्म में रत, सरल यशस्विनी देवी उषा इस बात से अनभिज्ञ हैं ॥१ ॥

८६७. आ ते सुपर्णा अमिनन्तँ एवैः कृष्णो नोनाव वृषभो यदीदम् ।
शिवाभिर्न स्मयमानाभिरागात्पतन्ति मिहः स्तनयन्त्यभ्रा ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आपकी दीप्तिमान् रश्मियाँ नीचे आती हुई मेघों से टकराती हैं, तब वर्षण शील कृष्णवर्ण मेघ गरजने लगते हैं । ये मेघ विद्युत् से युक्त गर्जना करते हुए मानो हास्यमयी वृष्टि करते हैं ॥२ ॥

८६८. यदीमृतस्य पयसा पियानो नयन्नृतस्य पथिभी रजिष्ठैः ।
अर्यमा मित्रो वरुणः परिज्मा त्वचं पृञ्चन्त्युपरस्य योनौ ॥३ ॥

ये अग्निदेव यज्ञ के रसों से चराचर जगत् का पोषण करते हैं, यज्ञ के प्रभाव को सरल मार्गों से अंतरिक्ष में पहुँचाते हैं । तब अर्यमा, मित्र, वरुण एवं मरुद्गण मेघों के उत्पत्ति स्थल पर इनकी त्वचा में जल को स्थापित करते हैं ॥३ ॥

[यज्ञ से पोषक तत्व अन्तरिक्ष में स्थापित करते हैं । प्रकृतिगत देवशक्तियाँ उन्हें जल से संयुक्त करके उर्वरक वर्षा करने वाले मेघों का सृजन करती हैं ।]

८६९. अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो । अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः ॥४ ॥

बल से (अरणि मंथन से) उत्पन्न होने वाले हे जातवेदा अग्निदेव ! आप अन्न एवं गौ आदि पशु धन से सम्पन्न हैं । आप हमारे लिए भी अपार वैभव प्रदान करें ॥४ ॥



८७०. स इधानो वसुष्कविरग्निरीळेन्यो गिरा। रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥५ ॥

ज्वालाओं के रूप में विभिन्न मुखों वाले जाज्वल्यमान हे अग्निदेव ! आप त्रिकालदर्शी एवं सभी के आश्रय स्थल हैं । दिव्य स्तुतियों से संतुष्ट हुए यज्ञ में सर्वप्रथम उपस्थित होने वाले आप हमें अपनी तेजस्विता से अपार धन-वैभव प्रदान करें ॥५ ॥

८७१. क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः। स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥६ ॥

लपटों के रूप में विकराल दाढ़ों वाले हे तेजस्वी अग्निदेव ! अपने तीक्ष्ण स्वभाव से आप असुरों का संहार करने वाले हैं, अतएव हमारे लिए हानिकारक रात्रि और दिन के तथा उषा काल के सभी असुरों (विकारों) को भस्म कर दें ॥६ ॥

८७२. अवा नो अग्न ऊतिभिर्गायत्रस्य प्रभर्मणि। विश्वासु धीषु वन्द्य ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! आप सभी यज्ञों में वन्दनीय हैं । गायत्री छन्द वाले सामगान से स्तुति करने पर प्रसन्न हुए आप, अपने संरक्षण-साधनों से हमारी रक्षा करें ॥७ ॥

८७३. आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यं। विश्वासु पृत्सु दुष्टरम् ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! दरिद्रता को नष्ट करने वाले, शत्रुओं को पराजित करने वाले, वरण करने योग्य आप हमें श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान करें ॥८ ॥

८७४. आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषसम्। मार्डीकं धेहि जीवसे ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! आप उत्तम ज्ञान से युक्त जीवन भर पोषण-सामर्थ्य प्रदान करने वाला सुखदायक धन, हमारे दीर्घ जीवन के लिए हमें प्रदान करें ॥९ ॥

८७५. प्र पूतास्तिग्मशोचिषे वाचो गोतमाग्नये। भरस्व सुम्नयुर्गिरः ॥१० ॥

हे गोतम (गोतम वंशीय याजक गण) ! आप सुख की इच्छा से तीक्ष्ण ज्वालाओं वाले अग्निदेव के लिए पवित्र वचनों वाली स्तुतियों का उच्चारण करें ॥१० ॥

८७६. यो नो अग्नेऽभिदासत्यन्ति दूरे पदीष्ट सः। अस्माकमिद्वृधे भव ॥११ ॥

हे अग्निदेव ! समीपस्थ या दूरस्थ जो शत्रु हमें अपने वश में करके बन्धक बनाना चाहें,उनका पतन हो । आप हमारी वृद्धि करने वाले हों ॥११ ॥

८७७. सहस्राक्षो विचर्षणिरग्नी रक्षांसि सेधति। होता गृणीत उक्थ्यः ॥१२ ॥

हे अग्निदेव ! आप सहस्रों ज्वालाओं रूपी नेत्रों से सबको देखने वाले हैं । आप प्रशंसनीय होता रूप में स्तुतियों से प्रशंसित होते हैं ॥१२ ॥

[सूक्त - ८०]

[**ऋषि**- गोतम राहूगण । **देवता**-इन्द्र । **छन्द**-पंक्ति ।]

८७८. इत्था हि सोम इन्मदे ब्रह्मा चकार वर्धनम्।
शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शशा अहिमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१ ॥

वज्र धारण करने वाले शक्तिशाली हे इन्द्रदेव ! आपने ब्रह्मनिष्ठों द्वारा प्रदत्त दिव्य गुणों से सम्पन्न सोमरस का पान करके अपने उत्साह को बढ़ाया है । अपनी सामर्थ्य से देव समुदाय को हानि पहुँचाने वाले दुराचारियों को पृथ्वी पर से मारकर भगा दिया ॥१ ॥



८७९. स त्वामदद्वृषा मदः सोमः श्येनाभृतः सुतः ।
येना वृत्रं निरद्भ्यो जघन्थ वज्रिन्नोजसार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥२ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! उस श्येन पक्षी द्वारा (तीव्रगति से) लाये हुए अभिषुत, बलवर्धक सोमरस ने आपके हर्ष को बढ़ाया । अनन्तर आपने अपने बल से वृत्र को मारकर जलों से दूर कर दिया । इस प्रकार अपने राज्य क्षेत्र अर्थात् देव समुदाय को सम्मानित किया ॥२ ॥

८८०. प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते ।
इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप शत्रुओं पर चारों ओर से आक्रमण कर उन्हें विनष्ट करें । आपका वज्र अनुपम शक्तिशाली और शत्रुओं को तिरस्कृत करने वाला है । अपने अनुकूल स्वराज्य की कामना करते हुए आप वृत्र का वध करें और विजय प्राप्त कर जल प्राप्त करायें ॥३ ॥

[वर्षा के अवरोध दूर कर वर्षा करायें ।]

८८१. निरिन्द्र भूम्या अधि वृत्रं जघन्थ निर्दिवः ।
सृजा मरुत्वतीरव जीवधन्या इमा अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने वृत्र को पृथ्वी से खींचकर आकाश में उठाकर निःशेष होने तक नष्ट किया । आपने जीवन धारक इन मरुद्‌गणों से युक्त जलों को प्रवाहित होने के लिए छोड़ा और आत्म सामर्थ्य में प्रतिष्ठित हुए ॥४ ॥

८८२. इन्द्रो वृत्रस्य दोधतः सानुं वज्रेण हीळितः ।
अभिक्रम्याव जिघ्नतेऽपः सर्माय चोदयन्नर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥५ ॥

क्रोध में आकर इन्द्रदेव ने भय से काँपने वाले वृत्र की ठुड्डी पर वज्र से प्रहार किया । जल प्रवाहों को बहने के लिए प्रेरित किया । वे इन्द्रदेव इस प्रकार आत्म सामर्थ्य से प्रकाशित हुए ॥५ ॥

८८३. अधि सानौ नि जिघ्नते वज्रेण शतपर्वणा ।
मन्दान इन्द्रो अन्धसः सखिभ्यो गातुमिच्छत्यर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥६ ॥

सोम से आनन्दित हुए इन्द्रदेव सौ तीक्ष्ण शूल वाले वज्र से, वृत्र की ठुड्डी पर आघात करते हैं । मित्रों के आत्म सामर्थ्य से प्रकाशित होते हैं ॥६ ॥

८८४. इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन्वीर्यम् ।
यद्ध त्यं मायिनं मृगं तमु त्वं माययावधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥७ ॥

हे पर्वतवासी, स्वराज्य की अर्चना करने वालों के सहायक वज्रधारी इन्द्रदेव ! आपकी शक्ति शत्रुओं से अपराजेय है । छल-छद्‌मी मृग का रूप धारण करने वाले, वृत्र का हनन करने के लिए आप कूटनीति का भी सहारा लेते हैं ॥७ ॥

[यदि शत्रु छल-छद्‌म करता है,तो उसके लिए कूटनीति का प्रयोग करना भी उचित ठहराया जाता है]

८८५. वि ते वज्रासो अस्थिरन्नवतिं नाव्या३ अनु ।
महत्त इन्द्र वीर्यं बाह्वोस्ते बलं हितमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपका वज्र नब्बे नावों से घिरे वृत्र को विचलित करने में समर्थ है । आपका पराक्रम अति महान् है । आपकी भुजाओं का बल भी अपरिमित है । आप आत्म-सामर्थ्य से प्रकाशित हों ॥८ ॥



८८६. सहस्रं साकमर्चत परि ष्टोभत विंशतिः ।
शतैनमन्वनोनवुरिन्द्राय ब्रह्मोद्यतमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥९ ॥

हे मनुष्यो ! आप सहस्रों की संख्या में मिलकर इन्द्रदेव का स्तवन करें । बीसों स्तोत्रों का गान करें । सैकड़ों अनुनय-अर्चनाएँ उनके निमित्त करें । इन्द्रदेव के लिए श्रेष्ठ मंत्रों का प्रयोग करें । ये इन्द्रदेव अपनी आत्म- सामर्थ्य से प्रकाशित हों ॥९ ॥

८८७. इन्द्रो वृत्रस्य तविषीं निरहन्त्सहसा सहः ।
महत्तदस्य पौंस्यं वृत्रं जघन्वाँ असृजदर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१० ॥

इन्द्रदेव ने अपनी सामर्थ्य से वृत्र की सेना के साथ संघर्ष कर उनके बल को क्षीण किया । वृत्र को मारकर वे अपनी आत्म सामर्थ्य से प्रकाशित हुए ॥१० ॥

८८८. इमे चित्तव मन्यवे वेपेते भियसा मही ।
यदिन्द्र वज्रिन्नोजसा वृत्रं मरुत्वाँ अवधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥११ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आपने बलशाली मरुतों के सहयोग से वृत्र-असुर का वध किया । उस समय आपके मन्यु (दुष्टता के प्रति क्रोध) के सम्मुख व्यापक आकाश और पृथ्वी भय से प्रकम्पित हुए । आप अपनी आत्म सामर्थ्य से प्रकाशित हुए ॥११ ॥

८८९. न वेपसा न तन्यतेन्द्रं वृत्रो वि बीभयत् ।
अभ्येनं वज्र आयसः सहस्रभृष्टिरायतार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१२ ॥

वह असुर वृत्र इन्द्रदेव को अपनी सामर्थ्य से न कँपा सका और न गर्जना से डरा सका । इन्द्रदेव ने उस वृत्र पर फौलादी, सहस्रों तीक्ष्ण धारों वाले वज्र से प्रहार किया । इस प्रकार इन्द्रदेव ने आत्म सामर्थ्य के अनुकूल कर्म सम्पन्न किया ॥१२ ॥

८९०. यद्वृत्रं तव चाशनिं वज्रेण समयोधयः ।
अहिमिन्द्र जिघांसतो दिवि ते बद्बधे शवोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१३ ॥

हे इन्द्रदेव ! वृत्र द्वारा फेंके गये तीक्ष्ण शस्त्र का सामना आपने अपने वज्र से किया । उस वृत्र को मारने की आपकी इच्छा से आपका बल आकाश में स्थापित हुआ । इस प्रकार आपने आत्म - सामर्थ्य के अनुरूप कर्तृत्व प्रदर्शित किया ॥१३ ॥

८९१. अभिष्टने ते अद्रिवो यत्स्था जगच्च रेजते ।
त्वष्टा चित्तव मन्यव इन्द्र वेविज्यते भियार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१४ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आपकी गर्जना से जगत् के सभी स्थावर और जंगम काँप जाते हैं । आपके मन्यु (अनीति संघर्षक क्रोध) के आगे त्वष्टा देव भी काँपते हैं । अपनी सामर्थ्य के अनुकूल आप कर्तृत्व प्रस्तुत करते हैं ॥१४ ॥

८९२. नहि नु यादधीमसीन्द्रं को वीर्या परः ।
तस्मिन्नृम्णमुत क्रतुं देवा ओजांसि सं दधुरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१५ ॥

उन इन्द्रदेव की सामर्थ्य को समझने में कोई समर्थ नहीं । उनके समान पराक्रम-पुरुषार्थ को करने वाला अन्यत्र कोई नहीं । देवों ने उनमें सभी बलों, ऐश्वर्यों और क्षमताओं को स्थापित किया है । अतः वे आत्मानुरूप सामर्थ्य से प्रकाशित हुए हैं ॥१५ ॥



८९३. यामथर्वा मनुष्पिता दध्यङ् धियमत्नत ।

तस्मिन्ब्रह्माणि पूर्वथेन्द्र उक्था समग्मतार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१६ ॥

ऋषि अथर्वा, पालन कर्त्ता मनु और दध्यङ् ऋषि ने पूर्व की भाँति अपनी बुद्धि से उन इन्द्रदेव के निमित्त मंत्र - रूप स्तुतियों का गान किया। वे इन्द्रदेव आत्म - सामर्थ्य के प्रभाव से प्रकाशित (प्रसिद्ध) हुये ॥१६ ॥

[सूक्त - ८१]

[ऋषि --गोतम राहूगण । देवता- इन्द्र । छन्द -पंक्ति ।]

८९४. इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।

तमिन्महत्स्वाजिषूतमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥१ ॥

हर्ष और उत्साहवर्धन की कामना से स्तोताओं द्वारा इन्द्रदेव के यश का विस्तार किया जाता है, अतः छोटे और बड़े सभी युद्धों में हम रक्षक, इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं। वे इन्द्रदेव युद्धों में हमारी रक्षा करें ॥१ ॥

८९५. असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि परादिः ।

असि दभ्रस्य चिद्वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ॥२ ॥

हे वीर इन्द्रदेव ! आप सैन्यबलों से युक्त हैं। आप अनुचरों की वृद्धि करने वाले और उन्हें विपुल धन देने वाले हैं। आप सोमयाग करने वाले यजमान के लिये विपुल धन-प्राप्ति की प्रेरणा देने वाले हैं ॥२ ॥

८९६. यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना ।

युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ॥३ ॥

युद्ध प्रारम्भ होने पर शत्रुजयी ही धन प्राप्त करते हैं। हे इन्द्रदेव ! युद्धारम्भ होने पर मद टपकाने वाले (उमंग में आने वाले) अश्वों को आप अपने रथ में जोड़ें। आप किसका वध करें, किसे धन दें ? यह आपके ऊपर निर्भर है। अत : हे इन्द्रदेव ! हमें ऐश्वर्यों से युक्त करें ॥३ ॥

८९७. क्रत्वा महाँ अनुष्वधं भीम आ वावृधे शवः ।

श्रिय ऋष्व उपाकयोर्नि शिप्री हरिवान्दधे हस्तयोर्वज्रमायसम् ॥४ ॥

भीषण शक्ति से युक्त इन्द्रदेव सोमरस पान कर अपने बल की वृद्धि करते हैं। तदनन्तर सौन्दर्यशाली, श्रेष्ठ शिरस्त्राण धारण करने वाले, रथ में अश्वों को नियोजित करने वाले, इन्द्रदेव दाहिने हाथ में लौह-निर्मित वज्र को अलंकार के रूप में धारण करते हैं ॥४ ॥

८९८. आ पप्रौ पार्थिवं रजो बद्बधे रोचना दिवि ।

न त्वावाँ इन्द्र कश्चन न जातो न जनिष्यतेऽति विश्वं ववक्षिथ ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने अपनी सामर्थ्य से पृथ्वी और अन्तरिक्ष को पूर्ण किया है। आपने आकाश में प्रकाशमान नक्षत्रों को स्थापित किया है। हे इन्द्रदेव ! उत्पन्न हुए या उत्पन्न होने वालों में आपके समान अन्य कोई नहीं है। आप ही सम्पूर्ण विश्व के नियामक हैं ॥५ ॥



८९९. **यो अर्यो मर्तभोजनं परादादाति दाशुषे।**
इन्द्रो अस्मभ्यं शिक्षतु वि भजा भूरि ते वसु भक्षीय तव राधसः ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हविदाता के लिए जो उपयोगी पदार्थ देते हैं, वह हमें भी प्रदान करें। आपके पास जो विपुल धनों के भण्डार हैं, वह हमें भी बाँटें। हम उस भाग का उपयोग कर सकें ॥६ ॥

९००. **मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवामृजुक्रतुः।**
सं गृभाय पुरू शतोभयाहस्त्या वसु शिशीहि राय आ भर ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! यज्ञ कार्यों में सोमरस से अत्यन्त प्रफुल्लित होकर आप हमें गौएँ आदि विपुल धनों को देने वाले हैं। आप हमें दोनों हाथों से सैकड़ों प्रकार का वैभव प्रदान करें। हम वीरता पूर्वक यश के भागीदार बनें ॥७ ॥

९०१. **मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे।**
विद्मा हि त्वा पुरूवसुमुप कामान्त्ससृज्महेऽथा नोऽविता भव ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप बल वृद्धि के लिए, हविष्यान्न ग्रहण करने के लिए और अभिषुत सोम का पान करने के लिए हमारे यज्ञस्थल में पधारें तथा सोमपान करके हर्षित हों। आप विपुल सम्पदाओं के स्वामी माने गये हैं। आप कामनाओं को पूरा करके हमारी रक्षा करने वाले हैं ॥८ ॥

९०२. **एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम्।**
अन्तर्हि ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! ये सभी प्राणी आपके वरण करने योग्य पदार्थों की वृद्धि करने वाले हैं। हे स्वामी इन्द्रदेव ! आप कृपणों के गुप्त धन को जानते हैं, उस धन को प्राप्त कर हमें प्रदान करें ॥९ ॥

[सूक्त - ८२]

[ऋषि - गोतम राहूगण। देवता-इन्द्र। छन्द- पंक्ति, ६ जगती।]

९०३. **उपो षु शृणुही गिरो मघवन्मातथा इव।**
यदा नः सूनृतावतः कर आदर्थयास इद्योजा न्विन्द्र ते हरी ॥१ ॥

हे धनवान् इन्द्रदेव !हमारे स्तोत्रों को निकट से भली प्रकार सुनें। आप हमें सत्यभाषी बनायें। हमारी स्तुतियों को ग्रहण करने वाले आप अश्वों को आगमन के निमित्त नियोजित करें ॥१ ॥

९०४. **अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत।**
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके अन्न से तृप्त हुए ब्राह्मणों ने अपने आनन्द को व्यक्त करते हुए सिर हिलाया और फिर उन्होंने अभिनव स्तोत्रों का पाठ किया। अब आप अपने अश्वों को यज्ञ में प्रस्थान के लिए नियोजित करें ॥२ ॥

९०५. **सुसंदृशं त्वा वयं मघवन्वन्दिषीमहि।**
प्र नूनं पूर्णवन्धुरः स्तुतो याहि वशाँ अनु योजा न्विन्द्र ते हरी ॥३ ॥

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! हम सभी प्राणियों के प्रति अनुग्रह दृष्टि रखने वाले आपकी अर्चना करते हैं। स्तोताओं को देने वाले धन से परिपूर्ण रथ वाले, कामनायुक्त, यजमानों के पास शीघ्र ही आते हैं। हे स्तुत्य इन्द्रदेव ! आप 'हरी' नामक अश्वों को रथ में नियोजित करें ॥३ ॥

९०६. स घा तं वृषणं रथमधि तिष्ठाति गोविदम् ।
यः पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजा न्विन्द्र ते हरी ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप-अन्न सोम आदि से पूर्ण गायों को देने में समर्थ और दृढ़ रथ को भली प्रकार जानते हैं तथा उसी पर आसीन होते हैं । अतः हे इन्द्रदेव !आप अपने घोड़ों को रथ में जोड़ें ॥४ ॥

९०७. युक्तस्ते अस्तु दक्षिण उत सव्यः शतक्रतो ।
तेन जायामुप प्रियां मन्दानो याह्यन्धसो योजा न्विन्द्र ते हरी ॥५ ॥

हे शतकर्मा इन्द्रदेव ! आपके दाहिनी और बायीं ओर दो अश्व रथ में जुते हैं । इन दोनों अश्वों से नियोजित रथ को लेकर प्रिय पत्नी के पास जायें । उसी रथ से आकर हमारे हविष्यान्न को ग्रहण करके हर्षित हों ॥५ ॥

९०८. युनज्मि ते ब्रह्मणा केशिना हरी उप प्र याहि दधिषे गभस्त्योः ।
उत्त्वा सुतासो रभसा अमन्दिषुः पूषण्वान्वज्रिन्त्समु पत्न्यामदः ॥६ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आपके केशयुक्त अश्वों को हम मन्त्रयुक्त स्तोत्रों से रथ में नियोजित करते हैं । आप अपने हाथों में रास (लगाम) धारण कर घर जायें । वेग पूर्वक प्रवाहित होने वाले सोमरस ने आपको हर्षित किया है । घर में पत्नी के साथ सोम से हर्षित होकर आप पुष्टि को प्राप्त हों ॥६ ॥

[सूक्त - ८३]

[**ऋषि** - गोतम राहूगण । **देवता** -इन्द्र । **छन्द**-जगती ।]

९०९. अश्वावति प्रथमो गोषु गच्छति सुप्रावीरिन्द्र मर्त्यस्तवोतिभिः ।
तमित्पृणक्षि वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाभितो विचेतसः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी सामर्थ्यों से रक्षित हुआ आपका उपासक अश्वों और गौओं से युक्त धनों को पाकर अग्रणी होता है । जैसे जल सब ओर से समुद्र को प्राप्त होता है,वैसे ही आपके सम्पूर्ण धन उस उपासक को पूर्ण करके उसे भली प्रकार सन्तुष्ट करते हैं ॥१ ॥

९१०. आपो न देवीरुप यन्ति होत्रियमवः पश्यन्ति विततं यथा रजः ।
प्राचैर्देवासः प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वरा इव ॥२ ॥

होता (के चमस पात्र) को जिस प्रकार जल धाराएँ प्राप्त होती हैं , उसी प्रकार देवगण अन्तरिक्ष से यज्ञ को देखकर अपने प्रिय स्तोताओं के निकट पहुँचकर उनकी मंत्र युक्त प्रिय स्तुतियों को ग्रहण करते हैं । वे उन स्तोताओं को पूर्व की ओर श्रेष्ठ मार्गों से ले जाते हैं ॥२ ॥

९११. अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं१ वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः ।
असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! परस्पर संयुक्त दो अन्नपात्र आपके निमित्त समर्पित हैं । आपने उन पात्रों को स्तुति वचनों के साथ स्वीकार किया है । जो स्तोता आपके नियमों के अनुसार रहता है, उसकी आप रक्षा करते हैं और पुष्टि प्रदान करते हैं । सोमयाग करने वाले यजमान को आप कल्याणकारी शक्ति देते हैं ॥३ ॥

९१२. आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया ।
सर्वं पणेः समविन्दन्त भोजनमश्वावन्तं गोमन्तमा पशुं नरः ॥४ ॥



हे इन्द्रदेव ! अंगिराओं ने अपने उत्तम कर्मों से अग्नि को प्रज्वलित करके सर्वप्रथम हविष्यान्न प्रदान किया है । अनन्तर उन श्रेष्ठ पुरुषों ने सभी अश्वों, गौओं से युक्त पशु रूप धनों और भोज्य पदार्थों को प्राप्त किया ॥४ ॥

९१३. यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि ।

आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे ॥५ ॥

सर्वप्रथम 'अथर्वा' ने 'यज्ञ' के सम्पूर्ण मार्गों को विस्तृत किया । अनन्तर नियमों के दृढ़ पालक सूर्यदेव का प्राकट्य हुआ । फिर 'उशना' ने समस्त गौओं को बाहर निकाला । हम सब इस जगत् के नियामक अविनाशी देव इन्द्र की पूजा करते हैं ॥५ ॥

९१४. बर्हिर्वा यत्स्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि ।

ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्य१स्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति ॥६ ॥

जिसके घर में उत्तम यज्ञादि कर्मों के निमित्त कुश काटे जाते हैं । सूर्योदय के पश्चात् आकाश में जहाँ स्तोत्र पाठ गुंजरित होते हैं । जहाँ उक्ति वचनों सहित सोम कूटने के पाषाणों का शब्द गूँजता है, इन्द्रदेव उनके यहाँ ही हविद्रव (सोमरस) का पान कर आनन्द पाते हैं ॥६ ॥

[सूक्त - ८४]

[**ऋषि**- गोतम राहूगण । **देवता**-इन्द्र । **छन्द**-१-६ अनुष्टुप् ७-९ उष्णिक्, १०-१२ पंक्ति, १३-१५ गायत्री, १६-१८ त्रिष्टुप्, (प्रगाथ) - १९ बृहती, २० सतोबृहती ।]

९१५. असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।

आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥१ ॥

हे शक्तिशाली, शत्रुओं को पराजित करने वाले इन्द्रदेव ! अन्तरिक्ष को अपनी किरणों से परिव्याप्त करने वाले सूर्यदेव के समान आप में भी सोमपान के बाद अपार शक्ति का संचार हो ॥१ ॥

९१६. इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम् ।

ऋषीणां च स्तुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् ॥२ ॥

अपराजेय शक्ति से सम्पन्न इन्द्रदेव को उनके अश्व यज्ञशाला में पहुँचायें, जहाँ याजकों-ऋषियों द्वारा स्तुति गान हो रहा है ॥२ ॥

९१७. आ तिष्ठ वृत्रहन्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी ।

अर्वाचीनं सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ॥३ ॥

शत्रुओं को पराजित करने वाले हे इन्द्रदेव ! आप मंत्रों के द्वारा जोड़े गये घोड़ों वाले अपने रथ पर बैठें । सोम कुचलते हुए पत्थर की ध्वनि आपके मन को उसकी ओर आकर्षित करे (अर्थात् सोमरस पीने की इच्छा से यहाँ आयें) ॥३ ॥

९१८. इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।

शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन्धारा ऋतस्य सादने ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! अविनाशी, श्रेष्ठ, आनन्दवर्धक, सोमरस का पान करें । यज्ञस्थल में शोधित सोमरस आपकी ओर प्रवाहित हो रहा है (आपको समर्पित है ।) ॥४ ॥



९१९. **इन्द्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन।**
सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ॥५॥

हे ऋत्विजो ! आनन्दवर्धक, पवित्र सोमरस समर्पित करके विभिन्न स्तोत्रों से गुणगान करते हुए, आप सभी इन्द्रदेव की ही पूजा करो। सामर्थ्यशाली उन इन्द्रदेव को नमस्कार करो ॥५॥

९२०. **नकिष्ट्वद्रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे।**
नकिष्ट्वानु मज्मना नकिः स्वश्व आनशे ॥६॥

अश्वशक्ति से चालित रथ में बैठने वाले हे इन्द्रदेव ! आपसे अधिक पराक्रमी कोई दूसरा वीर नहीं है। आप जैसा कोई अन्य शक्तिशाली अश्वपालक (घोड़े का स्वामी) नहीं है ॥६॥

९२१. **य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे। ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥७॥**

हे प्रिय याजको ! दानशील होने के कारण मनुष्यों को धन देने वाले, प्रतिकार न किये जाने वाले, वे अकेले इन्द्रदेव ही सभी (प्राणियों) के अधिपति हैं ॥७॥

९२२. **कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत्। कदा नः शुश्रवद्गिर इन्द्रो अङ्ग ॥८॥**

वे इन्द्रदेव हमारी स्तुतियों को कब सुनेंगे ? और आराधना न करने वालों को क्षुद्र पौधे की भाँति कब नष्ट करेंगे ? ॥८॥

[श्रेष्ठ किसान-माली, निराई करके उन पौधों को उखाड़ देते हैं, जो फसल के स्तर के अनुरूप नहीं है। हीन मानस वाले व्यक्ति मनुष्यता को कलंकित न करें, इस हेतु इन्द्रदेव से क्षुद्रता के उन्मूलन की प्रार्थना की गई है।]

९२३. **यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति। उग्रं तत्पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥९॥**

असंख्यों में से जो यजमान सोमयज्ञ करके आपकी आराधना करता है, उसे हे इन्द्रदेव ! आप शीघ्र बल सम्पन्न बना देते हैं ॥९॥

[सोम पोषक तत्व है। उसे यज्ञीय भाव से सभी तक पहुँचाना सोमयज्ञ कहा जाता है। इस प्रकार के यज्ञीय कार्यों में अपनी क्षमता का नियोजन करने वालों को ही शक्ति अनुदान दिये जाते हैं।]

९२४. **स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः।**
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥१०॥

भक्तों पर कृपावृष्टि करने वाले इन्द्र (सूर्य) देव के साथ आनन्दपूर्वक गौएँ (किरणें) शोभा पाती हैं। वे भूमि पर स्वराज्य की मर्यादा के अनुरूप उत्पन्न सुस्वादु मधुर रस का पान करती हैं ॥१०॥

९२५. **ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः।**
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥११॥

इन्द्रदेव (सूर्य) का स्पर्श करने वाली धवल गौएँ (किरणें) दूध (पोषण) प्रदान करती हुईं, उनके वज्र को प्रेरणा देती हुईं स्वराज्य में ही रहती हैं ॥११॥

९२६. **ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः।**
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥१२॥

ज्ञान युक्त वे (किरणें) उन (इन्द्रदेव) के प्रभाव का पूजन करती हैं, पूर्व में हो चुके को समझने वाली वे इन्द्रदेव द्वारा पहले किये गये कार्यों का स्मरण दिलाती हैं, और स्वराज्य के अनुशासन में ही रहती हैं ॥१२॥



[इस सूक्त की उक्त तीन ऋचाओं में इन्द्र की किरणों (प्रतिभाओं) के लिये स्वराज्य (अपने राज्य) में मर्यादित तीन क्रियात्मक अनुशासनों का उल्लेख किया गया है।

(१) स्वराज्य के अनुरूप मधुर रसों का पान करें, औसत नागरिकों का स्तर देखते हुए ही अपने निर्वाह के साधन स्वीकार करें।

(२) इन्द्र (प्रशासन) को पुष्ट बनाते हुए अपराधियों के लिए दण्ड व्यवस्था को प्रभाव पूर्ण बनायें।

(३) व्यवस्थाओं की प्रशंसा करते हुए, पूर्व की जा चुकी व्यवस्थाओं का स्मरण दिलाकर जन-जन को नैष्ठिक बनायें।]

९२७. इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः। जघान नवतीर्नव ॥१३॥

अपराजित इन्द्रदेव ने दधीचि की हड्डियों से (बने हुए वज्र से) निन्यानवे (सैकड़ों-हजारों) राक्षसों का संहार किया ॥१३॥

९२८. इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम्। तद्विदच्छर्यणावति ॥१४॥

इन्द्रदेव ने इच्छा करने से यह जान लिया कि (उस) अश्व का सिर पर्वतों के पीछे शर्यणावत् सरोवर में है और पूर्व मंत्रानुसार उसका वज्र बनाकर असुरों का वध कर दिया ॥१४॥

[आचार्य सायण के मतानुसार शाट्यायन लिखित (वेद) इतिहास में यह कथा है। दधीचि के प्रभाव से असुर पराभूत रहते थे। दधीचि के स्वर्ग गमन के पश्चात् वे उद्दण्ड हो उठे। इन्द्र उन्हें जीतने में असमर्थ रहे, तब उन्होंने दधीचि के किसी अवशेष की कामना की, बतलाया कि जिस अश्वमुख से दधीचि ने अश्विनीकुमारों को विद्या दी थी, वह शर्यणावत् सरोवर में है। इन्द्र ने उसे प्राप्त कर वज्र बनाकर असुरों पर विजय प्राप्त की।]

९२९. अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम्। इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥१५॥

मनीषियों ने त्वष्टा (संसार को तुष्ट करने वाले सूर्यदेव) का दिव्यतेज, गतिमान् चन्द्रमण्डल में अनुभव किया ॥१५॥

[चन्द्रमा सूर्यतेज से ही प्रकाशित होता है, यह तथ्य ऋषियों को विदित था।]

९३०. को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून्। आसन्निषून्हृत्स्वसो मयोभून्य एषां भृत्यामृणधत्स जीवात् ॥१६॥

सामर्थ्यवान्, शत्रुओं पर क्रोध करने वाले, बाण धारण करके लक्ष्य भेद करने वाले इन्द्रदेव के रथ, जिसकी धुरी ऋत (सत्य अथवा यज्ञ) है, उसके साथ अश्वों को आज कौन योजित कर सकता है? जो इन (अश्वों) का पालन-पोषण करता है, वही जीवित (प्राणवान्) रहता है ॥१६॥

[जीवन के शत्रुओं -दोषों को पराजित करने के लिए जो व्यक्ति ऊर्जा (शक्ति) को ऋत के साथ जोड़ने में समर्थ होता है, वही प्राणवान् होकर जीवित रहता है।]

९३१. क ईषते तुज्यते को बिभाय को मंसते सन्तमिन्द्रं को अन्ति। कस्तोकाय क इभायोत रायेऽधि ब्रवत्तन्वे३ को जनाय ॥१७॥

(इन्द्रदेव के सम्मुख युद्ध में) कौन भागता है? कौन मारा जाता है? कौन भयभीत होता है? कौन सहायक होता है? समीपस्थ इन्द्रदेव को कौन जानता है? कौन सन्तान के निमित्त, कौन पशुधन एवं ऐश्वर्य के निमित्त, कौन शारीरिक सुख के निमित्त और कौन सम्बन्धी जनों के हित के निमित्त इन्द्रदेव से उत्तम वचनों द्वारा स्तुति करता है? ॥१७॥



९३२. को अग्निमीट्टे हविषा घृतेन स्रुचा यजाता ऋतुभिर्ध्रुवेभिः ।
कस्मै देवा आ वहानाशु होम को मंसते वीतिहोत्रः सुदेवः ॥१८ ॥

कौन अग्निदेव की स्तुति करते हैं ? कौन सर्वदा स्रुचि पात्र से घृत और हवि से यज्ञ करते हैं ? देवगण किसके निमित्त आहूत धन को लाते हैं ? कौन इन दाता, उत्तम याजक, श्रेष्ठ इन्द्रदेव को जानते हैं ? ॥१८ ॥

९३३. त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥१९ ॥

हे प्रशंसनीय बलवान् इन्द्रदेव ! आप अपने तेज से तेजस्वी होकर साधक की प्रशंसा करते हैं। हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आपके अलावा अन्य कोई सुख प्रदान करने वाला नहीं है, अतः हम सभी आपका स्तवन कर रहे हैं ॥१९ ॥

९३४. मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसोऽस्मान्कदा चना दभन् ।
विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि चर्षणिभ्य आ ॥२० ॥

हे विश्व के आश्रयदाता इन्द्रदेव ! आपके द्वारा प्रदान धन साधन हमारे लिए विनाशकारी न बने । रक्षा के लिए प्रेरित आपके द्वारा दी गई शक्तियाँ विध्वंस न करें । हे मानव हितैषी इन्द्रदेव ! हम सज्जन नागरिकों को सभी प्रकार की (लौकिक एवं दैवी) सम्पत्ति प्रदान करें ॥२० ॥

[सूक्त - ८५]

[ऋषि - गोतम राहूगण । देवता- मरुद्गण । छन्द- जगती , ५ ,१२ त्रिष्टुप् ।]

९३५. प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयो यामन्नुद्रस्य सूनवः सुदंससः ।
रोदसी हि मरुतश्चक्रिरे वृधे मदन्ति वीरा विदथेषु घृष्वयः ॥१ ॥

लोकहित में तीव्रगति से श्रेष्ठ कार्य करने वाले रुद्रदेव के पुत्र मरुद्गण रमणियों के समान सुसज्जित होकर बाहर जाते हैं । ये मरुद्गण शत्रुओं के साथ संघर्ष कर युद्ध क्षेत्र में हर्षित होते हैं । उन्होंने ही आकाश, पृथ्वी को स्थापित कर इसकी वृद्धि की है ॥१ ॥

९३६. त उक्षितासो महिमानमाशत दिवि रुद्रासो अधि चक्रिरे सदः ।
अर्चन्तो अर्कं जनयन्त इन्द्रियमधि श्रियो दधिरे पृश्निमातरः ॥२ ॥

इन शोभावान् और महिमावान् रुद्रदेव के पुत्र मरुद्गणों ने आकाश में अपना श्रेष्ठ स्थान बनाया है। इन्द्रदेव के लिये स्तोत्रों का उच्चारण कर बलों को प्रकट किया है । वे पृथिवीपुत्र मरुद्गण अलंकारों को धारण कर शोभायमान हुए हैं ॥२ ॥

९३७. गोमातरो यच्छुभयन्ते अञ्जिभिस्तनूषु शुभ्रा दधिरे विरुक्मतः ।
बाधन्ते विश्वमभिमातिनमप वर्त्मान्येषामनु रीयते घृतम् ॥३ ॥

वे पृथिवीपुत्र मरुद्गण अलंकारों को शरीर पर विशेष रूप से धारण कर सुशोभित होते हैं। वे मार्ग के शत्रुओं को विदीर्ण करते हैं, जिससे घृत (पोषक सारतत्व) की उपलब्धि के मार्ग खुल जाते हैं ॥३ ॥

९३८. वि ये भ्राजन्ते सुमखास ऋष्टिभिः प्रच्यावयन्तो अच्युता चिदोजसा ।
मनोजुवो यन्मरुतो रथेष्वा वृषव्रातासः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥४ ॥

उत्तम युद्ध करने वाले वीर मरुद्गण दीप्तिमान् अस्त्रों से सज्जित होकर अडिग शत्रुओं को भी अपनी सामर्थ्य से प्रकम्पित करते हैं । हे मरुद्गणो ! आप मन के समान वेग वाले रथों में धब्बेदार मृगों को योजित कर संघबद्ध होकर चलने वाले हैं ॥४ ॥

९३९. प्र यद्रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं वाजे अद्रिं मरुतो रंहयन्तः ।
उतारुषस्य वि ष्यन्ति धाराश्चर्मेवोदभिर्व्युन्दन्ति भूम ॥५ ॥

हे मरुद्गणो ! जब आप युद्ध में वज्र को प्रेरित करते हुए बिन्दुदार (चितकबरे) मृगों को रथ में योजित करते हैं, तब धूमिल (मटमैले) मेघों की जल-धाराएँ वेग से नीचे प्रवाहित होती हैं । वे भूमि को त्वचा के समान आर्द्र (नम) कर देती हैं ॥५ ॥

९४०. आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः ।
सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अंधसः ॥६ ॥

हे मरुद्गणो ! वेगवान् अश्व आपको इस यज्ञस्थल पर ले आयें । आप शीघ्रता पूर्वक दोनों हाथों में धन को धारण कर इधर आयें । आपके निमित्त यहाँ बड़ा स्थान विनिर्मित किया है । यहाँ कुश आसनों पर अधिष्ठित होकर मधुर हवि रूप अन्नों का सेवन कर हर्षित हों ॥६ ॥

९४१. तेऽवर्धन्त स्वतवसो महित्वना नाकं तस्थुरुरु चक्रिरे सदः ।
विष्णुर्यद्धावद्वृषणं मदच्युतं वयो न सीदन्नधि बर्हिषि प्रिये ॥७ ॥

वे मरुद्गण अपनी सामर्थ्य से स्वयं वृद्धि को प्राप्त होते हैं । उन्होंने अपनी महत्ता के अनुरूप स्वर्ग में बड़े विस्तृत स्थान को तैयार किया है । इन इष्टवर्षक और हर्ष प्रदायक मरुतों की रक्षा स्वयं परमात्मा विष्णु करते हैं । हे मरुद्गणो ! हमारे प्रिय यज्ञ स्थान में पक्षियों की भाँति पंक्ति बद्ध होकर पधारें ॥७ ॥

९४२. शूरा इवेद्युयुधयो न जग्मयः श्रवस्यवो न पृतनासु येतिरे ।
भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भ्यो राजान इव त्वेषसंदृशो नरः ॥८ ॥

वीरों के समान संघर्षशील, योद्धाओं के समान आक्रामक , यश के इच्छुक , वीरों के समान अग्रणी, युद्धों में अति प्रयत्नशील ये मरुद्गण राजाओं के समान विशेष तेजस्वी रूप में शोभायमान हैं । इनसे सारे लोक भयभीत हो उठते हैं ॥८ ॥

९४३. त्वष्टा यद्वज्रं सुकृतं हिरण्ययं सहस्रभृष्टिं स्वपा अवर्तयत् ।
धत्त इन्द्रो नर्यपांसि कर्तवेऽहन्वृत्रं निरपामौब्जदर्णवम् ॥९ ॥

अत्यन्त कुशल कर्मवाले त्वष्टादेव ने इन्द्रदेव के लिए स्वर्णमय सहस्र धारों से युक्त वज्र को बनाकर दिया । इन्द्रदेव ने उसे धारण कर मनुष्यों के हितार्थ उससे वीरोचित कर्मों को सम्पन्न किया । जल को बाधित करने वाले वृत्र को मारकर जलों को मुक्त किया ॥९ ॥

९४४. ऊर्ध्वं नुनुद्रेऽवतं त ओजसा दादृहाणं चिद्बिभिदुर्वि पर्वतम् ।
धमन्तो वाणं मरुतः सुदानवो मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे ॥१० ॥

उन मरुद्गणों ने अपने बल से भूमि के जलों को ऊपर की ओर प्रेरित किया और दृढ़ मेघों का विशेष रूप से भेदन किया, तदनन्तर उत्तम दानी पुरुष मरुद्गणों ने सोमों से हर्षित होकर वाद्ययंत्रों से ध्वनि करते हुए उत्तम गान भी किया ॥१० ॥

[पृथ्वी के जल को सोखकर मेघों की उत्पत्ति मरुतों (वायु) के द्वारा ही होती है ।]

९४५. **जिह्मं नुनुद्रेऽवतं तया दिशासिञ्चन्नुत्सं गोतमाय तृष्णजे ।**
आ गच्छन्तीमवसा चित्रभानवः कामं विप्रस्य तर्पयन्त धामभिः ॥११ ॥

मरुद्‌गणों ने जलाशय के जल को तिरछा करके प्रवाहित किया । प्यास से व्याकुल गोतम ऋषि के वंशजों के लिए झरने से सिंचन किया । ये अद्‌भुत दीप्ति वाले संरक्षण साधनों से युक्त होकर उनकी रक्षा के लिये गये, और ऋषि की पिपासा को तृप्त किया ॥११ ॥

९४६. **या वः शर्म शशमानाय सन्ति त्रिधातूनि दाशुषे यच्छताधि ।**
अस्मभ्यं तानि मरुतो वि यन्त रयिं नो धत्त वृषणः सुवीरम् ॥१२ ॥

हे मरुद्‌गणो ! स्तोताओं और दाताओं को जो आप उनकी कामना से तीन गुना अधिक देकर सुखी करते हैं, वह हमें भी दें । हे बलवान् वीरो ! आप उत्तम सन्तान से युक्त धन हमें प्रदान करें ॥१२ ॥

[सूक्त - ८६]

[ऋषि - गोतम राहूगण । देवता- मरुद्‌गण । छन्द-गायत्री ।]

९४७. **मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः । स सुगोपातमो जनः ॥१ ॥**

दिव्य लोक के वासी, विशिष्ट तेजस्विता सम्पन्न हे मरुद्‌गण ! आपके द्वारा जिस यजमान के यज्ञस्थल पर सोमपान किया गया, निश्चित ही वे चिरकाल पर्यन्त आपके द्वारा संरक्षित रहते हैं ॥१ ॥

९४८. **यज्ञैर्वा यज्ञवाहसो विप्रस्य वा मतीनाम् । मरुतः शृणुता हवम् ॥२ ॥**

हे यज्ञ को वहन करने वाले मरुद्‌गणो ! हमारे यज्ञों में ऋषियों द्वारा प्रणीत स्तुतियों का श्रवण करें ॥२ ॥

९४९. **उत वा यस्य वाजिनोऽनु विप्रमतक्षत । स गन्ता गोमति व्रजे ॥३ ॥**

जिस यज्ञ के यजमान को आपने ऋषियों के अनुकूल श्रेष्ठमार्गी बनाया, वह यजमान गौ समूह को प्राप्त करने वाला होता है ॥३ ॥

९५० **अस्य वीरस्य बर्हिषि सुतः सोमो दिविष्टिषु । उक्थं मदश्च शस्यते ॥४ ॥**

स्वर्ग सुख प्राप्ति के इच्छुक लोग इन मरुद्‌गणों के लिए यज्ञों में कुश के आसन पर अभिषुत सोम रखते हैं और स्तोत्रों का गान करते हैं । उससे वे मरुद्‌गण हर्षित होते हुए प्रशंसा प्राप्त करते हैं ॥४ ॥

९५१. **अस्य श्रोषन्त्वा भुवो विश्वा यश्चर्षणीरभि । सूरं चित्सस्रुषीरिषः ॥५ ॥**

हे सर्वद्रष्टा शत्रुविजेता मरुद्‌गण ! आप इस यजमान का निवेदन सुनें । इनके साथ हम स्तोता भी अन्नों को प्राप्त करें ॥५ ॥

९५२. **पूर्वीभिर्हि ददाशिम शरद्भिर्मरुतो वयम् । अवोभिश्चर्षणीनाम् ॥६ ॥**

हे मरुद्‌गणो ! आपके रक्षण सामर्थ्यों से युक्त होकर हम लोग पूर्व के अनेक वर्षों से हव्यादि दान करते आये हैं ॥६ ॥

९५३. **सुभगः स प्रयज्यवो मरुतो अस्तु मर्त्यः । यस्य प्रयांसि पर्षथ ॥७ ॥**

हे पूज्य मरुद्‌गणो ! वे मनुष्य सौभाग्यशाली हैं, जिनके हविष्यान्न का सेवन आप करते हैं ॥७ ॥



९५४. शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः। विदा कामस्य वेनतः ॥८ ॥

हे सत्यबल सम्पन्न पराक्रमी मरुद्‌गणो ! स्तुति करने वाले (श्रम से) पसीने से भीगे हुए याजकों को आप अभीष्ट फल प्रदान करें ॥८ ॥

९५५. यूयं तत्सत्यशवस आविष्कर्त महित्वना। विध्यता विद्युता रक्षः ॥९ ॥

हे सत्यबल युक्त मरुतो ! आप अपनी तेजस्वी सामर्थ्य से राक्षसों को मारने वाले बल को प्रकट करें ॥९ ॥

९५६. गूहता गुह्यं तमो वि यात विश्वमत्रिणम्। ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि ॥१० ॥

हे मरुद्‌गण ! गहन तमिस्रा को आप दूर करें। सभी राक्षसों को हमसे दूर भगायें। हम आपसे ज्योति रूप ज्ञान की याचना करते हैं ॥१० ॥

[सूक्त - ८७]

[**ऋषि** - गोतम राहूगण। **देवता**-मरुद्‌गण। **छन्द**-जगती।]

९५७. प्रत्वक्षसः प्रतवसो विरप्शिनोऽनानता अविथुरा ऋजीषिणः।
जुष्टतमासो नृतमासो अञ्जिभिर्व्यानज्रे के चिदुस्रा इव स्तृभिः ॥१ ॥

शत्रु संहारक, महान् बलशाली वक्ता, अडिग, अविच्छिन्न रहने वाले, सरल व्यवहार वाले जनों के अतिप्रिय, मनुष्यों के शिरोमणि ये मरुद्‌गण देवी उषा के समान अलंकारों से युक्त होकर विशेष प्रकाशित होते हैं ॥१ ॥

९५८. उपह्वरेषु यदचिध्वं ययिं वय इव मरुतः केन चित्पथा।
श्चोतन्ति कोशा उप वो रथेष्वा घृतमुक्षता मधुवर्णमर्चते ॥२ ॥

हे मरुद्‌गणो ! आप पक्षी की भाँति किसी भी पथ से आकर हमारे यज्ञ के समीप एकत्र हों। अपने रथों में विद्यमान धनों के कोश हम पर बरसायें और याजक पर मधुर घृत युक्त अन्नों का वर्षण करें। (अर्थात् जल के साथ पोषक पर्जन्य की वर्षा करें।) ॥२ ॥

९५९. प्रैषामज्मेषु विथुरेव रेजते भूमिर्यामेषु यद्ध युञ्जते शुभे।
ते क्रीळयो धुनयो भ्राजदृष्टयः स्वयं महित्वं पनयन्त धूतयः ॥३ ॥

ये मंगलकारी वीर मरुद्‌गण एकत्र होकर युद्ध स्थल पर आक्रमण की मुद्रा में वेग से जाते हैं, तो पृथ्वी भी अनाथ नारी की भाँति काँपने लगती है। ये क्रीड़ायुक्त, गर्जनयुक्त, चमकीले अस्त्रों से युक्त होकर शत्रुओं को विचलित करके अपनी महत्ता को प्रकट करते हैं ॥३ ॥

९६०. स हि स्वसृत्पृषदश्वो युवा गणो३ या ईशानस्तविषीभिरावृतः।
असि सत्य ऋणयावानेद्योऽस्या धियः प्राविताथा वृषा गणः ॥४ ॥

ये मरुद्‌गण स्वचालित बिन्दुओं से चिह्नित अश्व वाले विविध बलों से युक्त सब पर प्रभुत्व करने में समर्थ हैं। ये सत्यरूप, पापनाशक, अनिन्दनीय, बलशाली, बुद्धि को प्रेरित करने वाले और रक्षा करने वाले हैं ॥४ ॥

९६१. पितुः प्रत्नस्य जन्मना वदामसि सोमस्य जिह्वा प्र जिगाति चक्षसा।
यदीमिन्द्रं शम्यृक्वाण आशतादिन्नामानि यज्ञियानि दधिरे ॥५ ॥



मरुद्गणों के जन्म की कथा हमारे पूर्वज कहते हैं । सोम को देखकर हमारी वाणी उन मरुद्गणों की स्तुतियाँ करती है । जब ये मरुद्गण संग्राम में इन्द्रदेव के सहायक हुए,तो याज्ञिकों ने उन्हें (मरुद्गणों को) प्रशंसनीय (यज्ञार्ह) नामों से विभूषित किया ॥५ ॥

९६२. श्रियसे कं भानुभिः सं मिमिक्षिरे ते रश्मिभिस्त ऋक्वभिः सुखादयः ।
ते वाशीमन्त इष्मिणो अभीरवो विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः ॥६ ॥

उत्तम अलंकारों और अस्त्रों से सज्जित होकर ये मरुद्गण ऋषियों की वाणी से भली प्रकार सुशोभित होते हैं । ये स्तोताओं के निमित्त वृष्टि करने की इच्छा करते हैं, अतएव वेग से जाने वाले ये निडर वीर अपने प्रिय स्थान पर पहुँचते हैं ॥६ ॥

[सूक्त - ८८]

[ऋषि- गोतम राहूगण । देवता- मरुद्गण । छन्द - त्रिष्टुप्,१, ६,प्रस्तार पंक्ति, ५विराड्रूपा ।]

९६३. आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वर्कै रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः ।
आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न पप्तता सुमायाः ॥१ ॥

हे मरुद्गणो ! विद्युत् की भाँति अत्यन्त दीप्तिवाले, अतिशय गति सम्पन्न, अस्त्रों से सज्जित उड़ने वाले, अश्वों से योजित रथों द्वारा यहाँ आयें । आपकी बुद्धि कल्याण करने वाली है । आप श्रेष्ठ अन्नों के साथ पक्षियों के सदृश वेग से हमारे पास आयें ॥१ ॥

[उड़ने वाले अश्वों से युक्त रथ से, उड़ने में समर्थ अश्व शक्ति युक्त यानों का बोध होता है]

९६४. तेऽरुणेभिर्वरमा पिशङ्गैः शुभे कं यान्ति रथतूर्भिरश्वैः ।
रुक्मो न चित्रः स्वधितीवान्पव्या रथस्य जङ्घनन्त भूम ॥२ ॥

वे मरुद्गण अरुणिम आभा वाले, भूरे वर्ण वाले अश्वों से नियोजित स्वर्णमय रथों से कल्याणकारी कर्म सम्पादन करने के लिए त्वरित गति से आते हैं । अद्भुत आयुधों से युक्त होकर रथ पर विराजित ये रथ के पहियों की लौह पट्टिकाओं से भूमि को उखाड़ते जाते हैं ॥२ ॥

९६५. श्रिये कं वो अधि तनूषु वाशीर्मेधा वना न कृणवन्त ऊर्ध्वा ।
युष्मभ्यं कं मरुतः सुजातास्तुविद्युम्नासो धनयन्ते अद्रिम् ॥३ ॥

हे मरुद्गण ! आप अपने शरीरों को आयुधों से सुशोभित करते हैं । वनों में वृक्षों के बढ़ने के समान उपासक अपनी बुद्धि को उच्चकोटि की बनाते हैं । हे भली प्रकार उत्पन्न मरुद्गणो ! अति उत्साह से युक्त यजमान आपको हर्षित करने के निमित्त, सोम कूटने के पाषाणों की ध्वनि करते हैं अर्थात् सोमरस तैयार करते हैं ॥३ ॥

९६६. अहानि गृध्राः पर्या व आगुरिमां धियं वार्कार्यां च देवीम् ।
ब्रह्म कृण्वन्तो गोतमासो अर्कैरूर्ध्वं नुनुद्र उत्सधिं पिबध्यै ॥४ ॥

हे स्तोताओ ! जल की इच्छा वाले आपके शुभ दिन अब आ चुके हैं । गोतमों ने दिव्य बुद्धि से मन्त्र युक्त स्तोत्रों से स्तुतियाँ की हैं, पीने के लिए ऊपर स्थित 'मेघरूप' कुण्ड को आपकी ओर प्रेरित किया है ॥४ ॥



९६७. एतत्त्यन्न योजनमचेति सस्वर्ह यन्मरुतो गोतमो वः ।
पश्यन्हिरण्यचक्रानयोदंष्ट्रान्विधावतो वराहून् ।५ ॥

हे मरुद्गणो ! स्वर्णमय रथ पर अधिष्ठित होकर, तीक्ष्ण धार वाले आयुधों से युक्त होकर विविध भाँति शत्रु पर वार करने वाले, उनका नाश करने वाले, आपको देखकर गोतम ऋषि ने जो छन्दयुक्त स्तुतियाँ वर्णित की हैं, उनका वर्णन सम्भव नहीं था ॥५ ॥

९६८. एषा स्या वो मरुतो ऽनुभर्त्री प्रति ष्टोभति वाघतो न वाणी ।
अस्तोभयद्वृथासामनु स्वधां गभस्त्योः ॥६ ॥

हे मरुतो ! आपके बाहुओं की धारक शक्ति का यशोगान करने वाली ऋषियों की वाणी का अनुकरण कर हम आपकी स्तुति करते हैं । यह स्तुति हमारे द्वारा पूर्व की भाँति सहज स्वभाव से ही की जा रही है ॥६ ॥

[सूक्त - ८९]

[**ऋषि-** गोतम राहूगण । **देवता-** विश्वेदेवा (१ २, ८, ९ देवगण, १० अदिति ।) **छन्द** -जगती, ६ विराट् स्थाना, ८-१० त्रिष्टुप् ।]

९६९. आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः ।
देवा नो यथा सदमिद्वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥१ ॥

कल्याणकारी, किसी के दबाव में न आने वाले, अपराजित, समुन्नतिकारक शुभ कर्मों को हम सभी ओर से प्राप्त करें । प्रतिदिन सुरक्षा करने वाले सम्पूर्ण देवगण हमारा सम्वर्द्धन करते हुए हमारी रक्षा करने में उद्यत हों ॥१ ॥

९७०. देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रातिरभि नो नि वर्तताम् ।
देवानां सख्यमुप सेदिमा वयं देवा न आयुः प्र तिरन्तु जीवसे ॥२ ॥

सन्मार्ग की प्रेरणा देने वाले देवों की कल्याणकारी सुबुद्धि तथा उनका उदार अनुदान हमें प्राप्त होता रहे । हम देवों की मित्रता प्राप्त कर उनके समीपस्थ हों । वे हमारे जीवन को दीर्घ आयु से युक्त करें ॥२ ॥

९७१. तान्पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्त्रिधम् ।
अर्यमणं वरुणं सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥३ ॥

हम उन देवगणों भग, मित्र, अदिति, दक्ष, मरुद्गण, अर्यमा, वरुण, सोम, अश्विनीकुमार और सौभाग्यशालिनी सरस्वती की प्राचीन स्तुतियाँ करते हैं । वे हमें सुख देने वाले हों ॥३ ॥

९७२. तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः ।
तद्ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ॥४ ॥

वायुदेव हमें सुखप्रद ओषधियाँ प्रदान करें । माता पृथिवी, आकाश पिता और सोम निष्पादित करने वाले पाषाण, हमें वह औषधि दें । तीक्ष्ण बुद्धि सम्पन्न हे अश्विनीकुमारो ! आप हमारी प्रार्थना सुनें ॥४ ॥

९७३. तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥५ ॥

स्थावर जंगम जगत् के पालक , बुद्धि को प्रेरणा देने वाले विश्वेदेवों को हम अपनी सुरक्षा के लिये बुलाते हैं । वह अविचलित पूषादेव हमारे ऐश्वर्य की वृद्धि और सुरक्षा में सहायक हों । वे हमारा कल्याण करें ॥५ ॥

९७४. स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥६ ॥

अति यशस्वी इन्द्रदेव हमारा कल्याण करने वाले हों । सर्वज्ञाता पूषादेव हमारा मंगल करें । अप्रतिहतगति वाले गरुड़ हमारे हित कारक हों । ज्ञान के अधीश्वर बृहस्पति देव हमारा कल्याण करें ॥६ ॥

९७५. पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः ।
अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसा गमन्निह ॥७ ॥

बिन्दुवत् चिह्न वाले चितकबरे अश्वों से युक्त भूमिपुत्र, शुभकर्मा, युद्धों में गमनशील, अग्नि की ज्वालाओं के समान तेज सम्पन्न, मननशील ज्ञान सम्पन्न, मरुद्गण अपनी रक्षण सामर्थ्यों से युक्त होकर यहाँ आयें ॥७ ॥

९७६. भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥८ ॥

हे यजन योग्य देवो ! कानों से हम मंगलमय वचनों का ही श्रवण करें । नेत्रों से कल्याणकारी दृश्यों को ही देखें । स्थिर -पुष्ट अंगों से आपकी स्तुति करते हुए, देवों के द्वारा नियत आयु को प्राप्त करके, हम देवहितकारी कार्यों में इसका उपयोग करें ॥८ ॥

९७७. शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् ।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥९ ॥

हे देवो ! सौ वर्ष तक हमारी आयु की सीमा है । हमारे इस शरीर में बुढ़ापा भी आपने दिया है, उस समय हमारे पुत्र भी पिता बन जाते हैं, अतः हमारी आयु मध्य में ही टूट न जाये, ऐसा प्रयत्न करें ॥९ ॥

९७८. अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥१० ॥

अदिति ही द्युलोक है । अन्तरिक्ष, माता, पिता, पुत्र, सम्पूर्ण देवगण, पञ्चजन (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद) नव उत्पन्न और भावी आगे उत्पन्न होने वाले जो भी हैं, वे अदिति के ही रूप हैं ॥१० ॥

[सूक्त - ९०]

[**ऋषि** - गोतम राहूगण । **देवता** - विश्वेदेवा । **छन्द** - गायत्री, ९ अनुष्टुप् ।]

९७९. ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान् । अर्यमा देवैः सजोषाः ॥१ ॥

ज्ञानी देव मित्र और वरुण हमें सरल नीति पथ पर बढ़ाते हैं । देवों के सहचर अर्यमा हमें सरल मार्ग से उन्नतिशील बनायें ॥१ ॥

९८०. ते हि वस्वो वसवानास्ते अप्रमूरा महोभिः । व्रता रक्षन्ते विश्वाहा ॥२ ॥

वे धनों के धारणकर्ता धनपति, प्रकृष्ट बुद्धि सम्पन्न, महान् सामर्थ्यों से सम्पूर्ण शत्रुओं के नाशक नियमों में अटल हैं ॥२ ॥

९८१. ते अस्मभ्यं शर्म यंसन्नमृता मर्त्येभ्यः । बाधमाना अप द्विषः ॥३ ॥

वे अविनाशी देवगण हमारे शत्रुओं का नाश करके हम मनुष्यों को सब भाँति सुख देते हैं ॥३ ॥



९८२. वि नः पथः सुविताय चियन्त्विन्द्रो मरुतः । पूषा भगो वन्द्यासः ॥४ ॥

ये वन्दनीय देवगण इन्द्र, मरुत् , पूषा और भग हमें कल्याणकारी पथ पर प्रेरित करें ॥४ ॥

९८३. उत नो धियो गोअग्राः पूषन्विष्णवेवयावः । कर्ता नः स्वस्तिमतः ॥५ ॥

हे पूषन् ! हे विष्णो ! हे गतिशील मरुतो ! आप हमारी बुद्धि को गो सदृश (पोषक विचार स्रवित करने वाली) बनायें । (इस प्रकार) हमारा कल्याण करें ॥५ ॥

९८४. मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥६ ॥

यज्ञ कर्म करने वालों के लिये वायु एवं नदियाँ मधुर प्रवाह पैदा करें । सभी ओषधियाँ मधुर रस से सम्पन्न हों ॥६ ॥

९८५. मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥७ ॥

पिता की तरह पोषणकर्ता दिव्यलोक हमारे लिए माधुर्य युक्त हो । मातृवत् रक्षक पृथ्वी की रज भी मधु के समान आनन्दप्रद हो । रात्रि और देवी उषा भी हमारे लिये माधुर्ययुक्त हों ॥७ ॥

९८६. मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥८ ॥

सम्पूर्ण वनस्पतियाँ हमारे लिये मधुर सुख प्रदायक हों । सूर्यदेव हमें अपने माधुर्य (तेजस्वी किरणों) से परिपुष्ट करें तथा गौएँ भी हमारे लिये अमृत स्वरूप मधुर दुग्ध रस प्रदान करने में सक्षम हों ॥८ ॥

९८७. शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा ।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥९ ॥

मित्रदेव, श्रेष्ठ वरुणदेव, न्यायकारी अर्यमादेव, ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव, वाणी के स्वामी बृहस्पतिदेव, संसार के पालन करने वाले विष्णुदेव हम सबके लिये कल्याणकारी हों ॥९ ॥

[सूक्त - ९१]

[ऋषि - गोतम राहूगण । देवता- सोम । छन्द - त्रिष्टुप्, ५-१६ गायत्री, १७ उष्णिक् ।]

९८८. त्वं सोम प्र चिकितो मनीषा त्वं रजिष्ठमनु नेषि पन्थाम् ।
तव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः ॥१ ॥

हे सोमदेव ! हम अपनी बुद्धि से आपको जान सकें । आप हमें उत्तम मार्ग पर चलाते हैं । आपके नेतृत्व में आपका अनुगमन करके हमारे पूर्वज, देवों से रमणीय सुख प्राप्त करने में सफल हुए थे ॥१ ॥

९८९. त्वं सोम क्रतुभिः सुक्रतुर्भूस्त्वं दक्षैः सुदक्षो विश्ववेदाः ।
त्वं वृषा वृषत्वेभिर्महित्वा द्युम्नेभिर्द्युम्न्यभवो नृचक्षाः ॥२ ॥

हे सोमदेव ! आप अनेक कर्मों का सम्पादन करने वाले होने से सुकर्मा रूप में प्रसिद्ध हैं । सबको जानने वाले आप अनेक कर्मों में कुशल होने से उत्तम दक्ष हैं । आप अनेक बलों के युक्त होने से महाबली हैं । आप अनेकों तेजस्वी धनों से युक्त वैभव सम्पन्न हैं ॥२ ॥

९९०. राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि बृहद्गभीरं तव सोम धाम ।
शुचिष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम ॥३ ॥

हे सोमदेव ! आप अत्यन्त पवित्र हैं । आपका धाम बड़ा विस्तृत और भव्य है । राजा वरुण के सभी नियमों

से आप मुक्त हैं । आप मित्र के समान प्रीति-कारक और अर्यमा के समान अति कुशल हैं ॥३ ॥

९९१. या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
तेभिर्नो विश्वैः सुमना अहेळन्राजन्त्सोम प्रति हव्या गृभाय ॥४ ॥

हे राजा सोम ! आपके उत्तम स्थान आकाश में, पृथ्वी के ऊपर पर्वतों में, ओषधियों में और जलों में हैं । आप उन सम्पूर्ण स्थानों से द्वेष रहित प्रसन्न मन से यहाँ आकर हमारी हवियों को ग्रहण करें ॥४ ॥

९९२. त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा । त्वं भद्रो असि क्रतुः ॥५ ॥

हे सोमदेव ! आप श्रेष्ठ अधिपति हैं । आप सबके नेतृत्वकर्ता और पोषक हैं । आप वृत्र-नाशक और कल्याणकारी बल के प्रकट रूप हैं ॥५ ॥

९९३. त्वं च सोम नो वशो जीवातुं न मरामहे । प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः ॥६ ॥

हे सोमदेव ! आप हमारे दीर्घजीवन के लिए प्रशंसनीय ओषधिरूप हैं । आपकी अनुकूलता से हम मृत्यु से बच सकेंगे ॥६ ॥

९९४. त्वं सोम महे भगं त्वं यून ऋतायते । दक्षं दधासि जीवसे ॥७ ॥

हे सोमदेव ! आप महान् यज्ञ का सम्पादन करने वाले, तरुण उपासकों को उत्तम जीवन के लिए बल और सौभाग्य प्रदान करते हैं ॥७ ॥

९९५. त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः । न रिष्येत्त्वावतः सखा ॥८ ॥

हे राजा सोमदेव ! आप जिसकी रक्षा करते हैं, वह कभी भी नष्ट नहीं होता । आप दुष्ट पापियों से सब प्रकार हमारी रक्षा करें ॥८ ॥

९९६. सोम यास्ते मयोभुव ऊतयः सन्ति दाशुषे । ताभिर्नोऽविता भव ॥९ ॥

हे सोमदेव ! हविदाता के सुखद जीवन के लिए अपने रक्षण-सामर्थ्यों से उसकी रक्षा करें ॥९ ॥

९९७. इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि । सोम त्वं नो वृधे भव ॥१० ॥

हे सोमदेव ! आप इस यज्ञ में हमारी इन स्तुतियों को स्वीकार करें । हमारे पास आयें और हमारी वृद्धि करें ॥१० ॥

९९८. सोम गीर्भिष्ट्वा वयं वर्धयामो वचोविदः । सुमृळीको न आ विश ॥११ ॥

स्तुति वचनों के ज्ञाता हे सोमदेव ! हम अपनी वाणियों से आपको बढ़ाते हैं । आप हमारे बीच सुख-साधनों को लेकर प्रविष्ट हों ॥११ ॥

९९९. गयस्फानो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्धनः । सुमित्रः सोम नो भव ॥१२ ॥

हे सोमदेव ! आप हमारी वृद्धि करने वाले, रोगों का नाश करने वाले, धन देने वाले, पुष्टि वर्धक और उत्तम मित्र बनें ॥१२ ॥

१०००. सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा । मर्य इव स्व ओक्ये ॥१३ ॥

हे सोमदेव ! गौएँ जैसे जौ के खेत में और मनुष्य जैसे अपने घर में रमण करता है, वैसे आप हमारे हृदय में रमण करें ॥१३ ॥



१००१. यः सोम सख्ये तव रारणद्देव मर्त्यः । तं दक्षः सचते कविः ॥१४ ॥

हे सोमदेव ! जो याजक आपकी मित्रता से युक्त रहता है,वही मेधावी और कुशल ज्ञानी हो जाता है ॥१४ ॥

१००२. उरुष्या णो अभिशस्तेः सोम नि पाह्यंहसः । सखा सुशेव एधि नः ॥१५ ॥

हे सोमदेव ! हमें अपयश से बचायें । पापों से हमें रक्षित करें और हमारे निमित्त सुखकारी मित्र बनें ॥१५ ॥

१००३. आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । भवा वाजस्य सङ्गथे ॥१६ ॥

हे सोमदेव ! आप वृद्धि को प्राप्त हों । आप सभी ओर से बलों से युक्त हों । संग्राम में आप हमारे सहायक रूप हों ॥१६ ॥

१००४. आ प्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरंशुभिः ।
भवा नः सुश्रवस्तमः सखा वृधे ॥१७ ॥

हे अति आह्लादक सोमदेव ! अपने दिव्य गुणों की यश गाथाओं से चतुर्दिक् विस्तार को प्राप्त करें । हमारे विकास के निमित्त मित्र रूप में आप सहयोग करें ॥१७ ॥

१००५. सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ।
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व ॥१८ ॥

हे शत्रु , संहारक सोमदेव ! आप दूध, अन्न बल को धारण करें । अपने अमरत्व के लिए द्युलोक में श्रेष्ठ अन्नों (दिव्य पोषक तत्वों) को प्राप्त करें ॥१८ ॥

१००६. या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम् ।
गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्र चरा सोम दुर्यान् ॥१९ ॥

हे सोमदेव ! यज्ञ करने वाले आपके जिन तेजों के लिए हवियाँ प्रदान करते हैं, वे सभी प्रखर यज्ञ क्षेत्र के चारों ओर रहें । घरों की अभिवृद्धि करने वाले, विपत्तियों से पार करने वाले, पुत्र पौत्रादि श्रेष्ठ वीरों से युक्त करने वाले, शत्रुओं के विनाशक, हे सोमदेव ! आप हमारी ओर आयें ॥१९ ॥

१००७. सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति ।
सादन्यं विदथ्यं सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै ॥२० ॥

जो हवि (द्रव्य) का दान करता है, उसे सोमदेव गौ और अश्व देते हैं । कर्म कुशल, गृह व्यवस्था कुशल, यज्ञाधिकारी, सभा में प्रतिष्ठित, पिता का यश बढ़ाने वाला पुत्र भी सोमदेव के अनुग्रह से प्राप्त होता है ॥२० ॥

१००८. अषाळ्हं युत्सु पृतनासु पप्रिं स्वर्षामप्सां वृजनस्य गोपाम् ।
भरेषुजां सुक्षितिं सुश्रवसं जयन्तं त्वामनु मदेम सोम ॥२१ ॥

हे सोमदेव ! संग्रामों में असहनीय दिखाई देने वाले, शत्रुओं पर विजय पाने वाले, विशाल सेनाओं के पालक, जलदाता, शक्ति संरक्षक, संग्रामों के विजेता, श्रेष्ठ निवास युक्त तथा कीर्तिवान् आपका हम अनुसरण करते हैं ॥२१ ॥

१००९. त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः ।
त्वमा ततन्थोर्व१न्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥२२ ॥

अपने तेज से अंधकार को नष्ट करने वाले एवं अंतरिक्ष को विस्तार देने वाले हे दिव्य सोमदेव ! आपने ही पृथ्वी पर सभी ओषधियों, गौओं एवं जल को उत्पन्न किया ॥२२ ॥



[अंतरिक्षीय पोषक प्रवाह से ही सोम-ओषधियों, जलों, सूर्य रश्मियों और गोदुग्ध आदि को शक्ति प्राप्त होती है]

१०१०. देवेन नो मनसा देव सोम रायो भागं सहसावन्नभि युध्य ।
मा त्वा तनदीशिषे वीर्यस्योभयेभ्यः प्र चिकित्सा गविष्टौ ॥२३ ॥

हे दिव्य शक्ति सम्पन्न सोमदेव ! विचारपूर्वक श्रेष्ठ धन का भाग हमें प्रदान करें । दान के लिये प्रवृत्त हुए आपको कोई प्रतिबंधित नहीं करेगा, क्योंकि आप ही अति समर्थ कार्यों के साधक हैं । स्वर्ग की कामना से युक्त हमें दोनों लोकों में सुख प्रदान करें ॥२३ ॥

[सूक्त - ९२]

[ऋषि - गोतम राहूगण । देवता-उषा, १६, १८ अश्विनी-देवता । छन्द-५-१२ त्रिष्टुप्, १३-१८ उष्णिक्, १-४ जगती ।]

१०११. एता उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते ।
निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः ॥१ ॥

नित्यप्रति ये उषायें उजाला लाती हैं । (इस समय) आकाश के पूर्वार्द्ध में प्रकाश फैल जाता है । जैसे वीर शस्त्रों को पैना करते हैं (चमकाते हैं), उसी प्रकार अपने प्रकाश से जगत् को प्रकाशित करती हुईं वे गमनशील और तेजस्वी लालवर्ण की गौएँ (किरणें) आगे बढ़ती हैं ॥१ ॥

१०१२. उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत ।
अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयुः ॥२ ॥

(उषा काल में) अरुणाभ किरणें स्वाभाविक रूप में (क्षितिज के) ऊपर आ गई हैं । स्वयं जुते हुए बैलों (किरणों) के रथ से देवी उषा ने पहले ज्ञान का (चेतना का) संचार किया, फिर प्रकाश दाता तेजस्वी सूर्यदेव की सेवा (सहायता) करने लगीं ॥२ ॥

१०१३. अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः ।
इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ॥३ ॥

(यज्ञादि) श्रेष्ठ कर्म और श्रेष्ठ प्रयोजन हेतु दान देने वाले, सोमरस को संस्कारित करने वाले, यजमान को अपनी किरणों (के प्रभाव) से प्रचुर मात्रा में अन्नादि देती हुई (उषा) आकाश को अपने तेज से परिपूर्ण करती हैं । रण में शस्त्रों से सज्जित वीर के तुल्य देवी उषा आकाश को सुन्दर दीप्तिमान् बना देती हैं ॥३ ॥

१०१४. अधि पेशांसि वपते नृतूरिवापोर्णुते वक्ष उस्रेव बर्जहम् ।
ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती गावो न व्रजं व्युषा आवर्तमः ॥४ ॥

ये देवी उषा नर्तकी के समान विविध-रूपों को धारण कर उतरती हैं । ये देवी उषा गौ के समान (दूध की तरह) पोषक प्रवाह प्रदान करने के लिए अपना वक्ष खोल देती हैं । ये देवी उषा सम्पूर्ण लोकों को प्रकाश से व्याप्त करती हैं और तमिस्रा को मिटाकर सबकी रक्षा करती हैं ॥४ ॥

१०१५. प्रत्यर्ची रुशदस्या अदर्शि वि तिष्ठते बाधते कृष्णमभ्वम् ।
स्वरुं न पेशो विदथेष्वञ्जञ्चित्रं दिवो दुहिता भानुमश्रेत् ॥५ ॥



इन देवी उषा की दीप्तियाँ उदित होकर सर्वत्र फैल रही हैं और व्यापक तमिस्रा को दूर करती हैं। यज्ञों में जैसे यूप को घृत से लीपकर सुन्दर बनाते हैं, वैसे ही आकाश पुत्री देवी उषा विलक्षण प्रकाश को धारण करती हैं ॥५ ॥

१०१६. अतारिष्म तमसस्पारमस्योषा उच्छन्ती वयुना कृणोति।
श्रिये छन्दो न स्मयते विभाती सुप्रतीका सौमनसायाजीगः ॥६ ॥

हम उस अंधकार से पार हो गये। प्रकाशवती देवी उषा सब कुछ स्पष्ट कर देती हैं। कवि द्वारा छन्दों से अलंकृत करने के समान और पति को प्रसन्न करने के लिए अलंकारों से सुसज्जित सुन्दर स्त्री के समान दिव्य प्रकाश से अलंकृत देवी उषा मुस्कराती हैं ॥६ ॥

१०१७. भास्वती नेत्री सूनृतानां दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः।
प्रजावतो नृवतो अश्वबुध्यानुषो गोअग्राँ उप मासि वाजान् ॥७ ॥

ये प्रकाशमती, सत्यवाणी को प्रेरित करने वाली, आकाशपुत्री उषा गोतम ऋषि द्वारा स्तुत्य हैं। हे उषे ! आप हमें पुत्र-पौत्रों, अश्वों, गौओं तथा विविध प्रकार के धन-धान्यों से सम्पन्न करें ॥७ ॥

१०१८. उषस्तमश्यां यशसं सुवीरं दासप्रवर्गं रयिमश्वबुध्यम्।
सुदंससा श्रवसा या विभासि वाजप्रसूता सुभगे बृहन्तम् ॥८ ॥

हे सौभाग्य शालिनि उषे ! हमें सुन्दर पुत्रों, सेवकों, अश्वों से युक्त उस यशस्वी धन को प्राप्त करायें। आप उत्तम कर्म वाली, यशस्विनी, अन्न उत्पन्न करने वाली हैं। अपने ऐश्वर्यों से हमें भी प्रकाशित करें ॥८ ॥

१०१९. विश्वानि देवी भुवनाभिचक्ष्या प्रतीची चक्षुरुर्विया वि भाति।
विश्वं जीवं चरसे बोधयन्ती विश्वस्य वाचमविदन्मनायोः ॥९ ॥

ये देवी उषा सभी लोकों को देखती हुई पश्चिम की ओर मुख करके विशिष्ट प्रकाश से प्रतिभासित होती हैं। यह सब जीवों को जगाकर गतिवान् बनाती हैं। विश्व के मननशील मानवों की वाणी को प्रेरणा देती हैं ॥९ ॥

[भावना शीलों के मन में उठी उमंग स्तोत्रों, काव्य आदि के रूप में प्रकट होती है।]

१०२०. पुनः पुनर्जायमाना पुराणी समानं वर्णमभि शुम्भमाना।
श्वघ्नीव कृत्नुर्विज आमिनाना मर्तस्य देवी जरयन्त्यायुः ॥१० ॥

पुनः-पुनः प्रकट होने वाली पुरातन देवी उषा प्रतिदिन एक समान वर्ण को प्राप्त कर अति सुशोभित होती हैं। ये देवी उषा मनुष्य की आयु को उसी प्रकार क्षीण करती जाती हैं, जैसे व्याधिनी पक्षियों की संख्या क्षीण करती जाती है ॥१० ॥

[नित्य प्रातःकाल मनुष्य अपना एक दिन का जीवन पूर्ण करता है अर्थात् आयु घटती है]

१०२१. व्यूर्ण्वती दिवो अन्ताँ अबोध्यप स्वसारं सनुतर्युयोति।
प्रमिनती मनुष्या युगानि योषा जारस्य चक्षसा वि भाति ॥११ ॥

वे देवी उषा आकाश के विस्तृत प्रदेशों को प्रकाशित करने के लिए जाग उठी हैं। वे अपनी बहिन रात्रि को दूर छिपाती हैं। ये मानवी युगों को विनष्ट करती हुई (अर्थात् नित्यप्रति मनुष्य की आयु को कम करती) सूर्यदेव के दर्शन से विशेष प्रकाशित होती हैं ॥११ ॥



१०२२. पशून्न चित्रा सुभगा प्रथाना सिन्धुर्न क्षोद उर्विया व्यश्वैत्।
अमिनती दैव्यानि व्रतानि सूर्यस्य चेति रश्मिभिर्दृशाना ॥१२ ॥

उज्ज्वल वर्णवाली, सौभाग्यशालिनी देवी उषा गौशाला से निकले हुए पशुओं के समान विस्तार को प्राप्त होती हैं। नदियों में बढ़ते जल के समान फैलती हुई जाती हैं। ये देवी उषा देवों के श्रेष्ठ कर्मों से विचलित नहीं होतीं और सूर्य की रश्मियों सी दीखती हुई प्रतीत होती हैं ॥१२ ॥

१०२३. उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति। येन तोकं च तनयं च धामहे ॥१३ ॥

हवनों को प्रारम्भ करने वाली हे उषे ! हमें वह विलक्षण ऐश्वर्य प्रदान करें, जिससे हम सन्तानादि का पोषण कर सकें ॥१३ ॥

१०२४. उषो अद्येह गोमत्यश्वावति विभावरि। रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति ॥१४ ॥

गौओं (पोषक तत्त्वों) और अश्वों (पराक्रम) से युक्त यज्ञ कर्मों की प्रेरक हे उषे ! आप आज हमें धन-धान्य से परिपूर्ण करें ॥१४ ॥

१०२५. युक्ष्वा हि वाजिनीवत्यश्वाँ अद्यारुणाँ उषः। अथा नो विश्वा सौभगान्या वह ॥१५॥

हवनों को प्रारम्भ करने वाली हे उषे ! अरुणाभ अश्वों (किरणों) को अपने रथ से युक्त करें और हमें विश्व के सब सौभाग्य प्रदान करें ॥१५ ॥

१०२६. अश्विना वर्तिरस्मदा गोमद्दस्रा हिरण्यवत्। अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम् ॥१६ ॥

शत्रुओं का नाश करने वाले हे अश्विनीकुमारो ! आप गौओं और स्वर्णमय रथ को मनोयोग पूर्वक हमारी ओर प्रेरित करें ॥१६ ॥

१०२७. यावित्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः।
आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम् ॥१७ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप द्युलोक से प्रशंसा योग्य प्रकाश लाकर लोगों का हित करते हैं, ऐसे आप हमें अन्न से पुष्ट करें ॥१७ ॥

१०२८. एह देवा मयोभुवा दस्रा हिरण्यवर्तनी। उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये ॥१८ ॥

देवी उषा के साथ जाग्रत् अश्व (शक्तिप्रवाह) स्वर्णिम प्रकाश में स्थित दुःख निवारक एवं सुखदायी अश्विनीकुमारों को इस यज्ञ में सोमपान के लिये लायें ॥१८ ॥

[सूक्त - ९३]

[**ऋषि**-गोतम राहूगण। **देवता**-अग्नी-षोम देवता। **छन्द** -१-३ अनुष्टुप्; ४-७, १२ त्रिष्टुप्; ८ जगती अथवा त्रिष्टुप्; ९-११ गायत्री ।]

१०२९. अग्नीषोमाविमं सु मे शृणुतं वृषणा हवम्।
प्रति सूक्तानि हर्यतं भवतं दाशुषे मयः ॥१ ॥

हे शक्तिवान् अग्निदेव और सोमदेव ! आप हमारे आवाहन को सुनें और हमारे उत्तम वचनों से आप हर्षित हों। हम हविदाताओं के लिये सुखकारी हों ॥१ ॥



१०३०. अग्नीषोमा यो अद्य वामिदं वचः सपर्यति।
तस्मै धत्तं सुवीर्यं गवां पोषं स्वश्व्यम् ॥२ ॥

हे अग्निदेव और सोमदेव ! हम आज आपके निमित्त उत्तम वचनों को अर्पित करते हैं । आप उत्तम पराक्रम धारण कर हमारे निमित्त उत्तम अश्वों और उत्तम गौओं की वृद्धि करें ॥२ ॥

१०३१. अग्नीषोमा य आहुतिं यो वां दाशाद्धविष्कृतिम् ।
स प्रजया सुवीर्यं विश्वमायुर्व्यश्नवत् ॥३ ॥

हे अग्निदेव और सोमदेव ! जो आपके निमित्त आहुतियाँ देकर हवन सम्पादित करता है, उसे आप सन्तान सुख के साथ उत्तम बलों और पूर्ण आयु से सम्पन्न करें ॥३ ॥

१०३२. अग्नीषोमा चेति तद्वीर्यं वां यदमुष्णीतमवसं पणिं गाः ।
अवातिरतं बृसयस्य शेषोऽविन्दतं ज्योतिरेकं बहुभ्यः ॥४ ॥

हे अग्निदेव और सोमदेव ! आपका वह पराक्रम उस समय ज्ञात हुआ,जब आपने 'पणि' से गौओं का हरण किया और 'बृसप' के शेष रक्षकों को क्षत-विक्षत किया । असंख्यों के लिये सूर्य प्रकाश का प्राकट्य किया ॥४ ॥

['पणि' अंधकार का प्रतीक असुर, जो गौ अर्थात् किरणों का हरण करता है]

१०३३. युवमेतानि दिवि रोचनान्यग्निश्च सोम सक्रतू अधत्तम् ।
युवं सिन्धूँरभिशस्तेरवद्यादग्नीषोमावमुञ्चतं गृभीतान् ॥५ ॥

हे सोमदेव और अग्निदेव ! आप दोनों समान कर्म करने वाले हैं । हे अग्नि और सोमदेवो ! आपने आकाश में प्रकाशित नक्षत्रों को स्थापित किया है और हिंसक वृत्र द्वारा प्रतिबन्धित नदियों को मुक्त किया है ॥५ ॥

१०३४. आन्यं दिवो मातरिश्वा जभारामथ्नादन्यं परि श्येनो अद्रेः ।
अग्नीषोमा ब्रह्मणा वावृधानोरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम् ॥६ ॥

हे अग्निदेव और सोमदेव ! आप में से अग्निदेव को मातरिश्वा वायु द्युलोक से यहाँ (भृगुऋषि के लिए) ले आये और दूसरे सोम को श्येन पक्षी पर्वत शिखर से उखाड़कर लाया, इस प्रकार आपने स्तोत्रों से वृद्धि पाकर व्यापक क्षेत्र में यज्ञों का विस्तार किया ॥६ ॥

१०३५. अग्नीषोमा हविषः प्रस्थितस्य वीतं हर्यतं वृषणा जुषेथाम् ।
सुशर्माणा स्ववसा हि भूतमथा धत्तं यजमानाय शं योः ॥७ ॥

हे बलवान् अग्निदेव और सोमदेव ! आप हमारी हवियों को ग्रहण करके हर्षयुक्त हों । आप हमें उत्तम सुख देने वाले और हमारी रक्षा करने वाले हों । इस यजमान के कष्टों को दूर कर सुख प्रदान करें ॥७ ॥

१०३६. यो अग्नीषोमा हविषा सपर्याद्देवद्रीचा मनसा यो घृतेन ।
तस्य व्रतं रक्षतं पातमंहसो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ॥८ ॥

हे अग्निदेव और सोमदेव ! जो साधक देवों के लिये भक्ति और मनोयोग पूर्वक घृतयुक्त हवियों को समर्पित करता है, उसके व्रत की आप रक्षा करें । उसे पापों से बचायें और उसके सम्बन्धी जनों को विपुल सुखों से युक्त करें ॥८ ॥



१०३७. अग्नीषोमा सवेदसा सहूती वनतं गिरः। सं देवत्रा बभूवथुः ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! हे सोमदेव ! आप दोनों ऐश्वर्य सम्पन्न हैं। यज्ञस्थल पर संयुक्त रूप से बुलाये जाते हैं। आप दोनों देवत्व से युक्त हैं। हमारे द्वारा संयुक्त रूप से की गई स्तुतियों को स्वीकार करें ॥९ ॥

१०३८. अग्नीषोमावनेन वां यो वां घृतेन दाशति। तस्मै दीदयतं बृहत् ॥१० ॥

हे अग्निदेव और सोमदेव ! जो आपको घृतयुक्त हविष्यान्न देते हैं, उनके लिये आप भरपूर अन्न और ऐश्वर्य प्रदान करें ॥१० ॥

१०३९. अग्नीषोमाविमानि नो युवं हव्या जुजोषतम्। आ यातमुप नः सचा ॥११ ॥

हे अग्निदेव और सोमदेव ! आप हमारी इन हवियों को स्वीकार करें। आप दोनों संयुक्त रूप से हमारे निकट आयें ॥११ ॥

१०४०. अग्नीषोमा पिपृतमर्वतो न आ प्यायन्तामुस्रिया हव्यसूदः।
अस्मे बलानि मघवत्सु धत्तं कृणुतं नो अध्वरं श्रुष्टिमन्तम् ॥१२ ॥

हे अग्निदेव और सोमदेव ! आप हमारे अश्वों को पुष्ट करें। दुग्ध-घृत रूप हवि देने वाली हमारी गौओं को पुष्ट करें। हे धनवान् ! आप हम याजकों को विविध बल धारण करायें। हमारे यज्ञों के यश को विस्तृत करें ॥१२ ॥

[सूक्त - ९४]

[**ऋषि**-कुत्स आङ्गिरस। **देवता**-अग्नि (जातवेद अग्नि) ८ तीन पाद के देव, १६ उत्तरार्द्ध का अग्नि अथवा मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, द्यावा पृथिवी। **छन्द**-जगती, १५, १६ त्रिष्टुप्।]

१०४१. इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१ ॥

पूजनीय जातवेद (अग्नि) को यज्ञ में प्रकट करने के लिए स्तुति को विचार पूर्वक रथ की तरह प्रयुक्त करते हैं। इस यज्ञाग्नि के सान्निध्य से हमारी बुद्धि कल्याणकारी बनती है। हे अग्निदेव ! हम आपकी मित्रता से सन्ताप रहित रहें ॥१ ॥

[मनीषा (विचार शक्ति) युक्त स्तोत्रों के माध्यम से अग्नि का आवाहन किया जाता है, इसलिये स्तुतियों को रथ कहा है। यज्ञाग्नि के संसर्ग से बुद्धि कल्याणकारी बनती है। मित्रभाव से यज्ञाग्नि के सान्निध्य से जीवन दुःख रहित बनता है]

१०४२. यस्मै त्वमायजसे स साधत्यनर्वा क्षेति दधते सुवीर्यम्।
स तूताव नैनमश्नोत्यंहतिरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! आप जिस साधक की सहायता करते हैं,वह शक्ति से सम्पन्न होकर एवं शत्रुओं से निर्भय होकर निवास करता है। धन-बल से सम्पन्न वह प्रत्येक क्षेत्र में सफलता प्राप्त करता है। आपकी मित्रता से हमें कभी कोई कष्ट न हो ॥२ ॥

१०४३. शकेम त्वा समिधं साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम्।
त्वमादित्याँ आ वह तान्ह्यु१ श्मस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आपको समिधाओं आदि से भली-भाँति प्रज्वलित कर हम देवताओं के लिए आहुतियाँ



प्रदान करते हैं । हवि ग्रहण करने हेतु देवों को बुलायें और हमारा यज्ञ भली-भाँति सम्पन्न करें । यहाँ हम उनके आगमन के लिए उत्सुक हैं । हे अग्निदेव ! आपकी मित्रता से हम कल्याण युक्त हों ॥३ ॥

१०४४. **भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणापर्वणा वयम् ।**
जीवातवे प्रतरं साधया धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! प्रत्येक शुभ अवसर पर हम समिधाएँ एकत्र कर आपको प्रज्वलित करते हैं तथा आहुतियाँ प्रदान करते हैं । आप हमारे दीर्घायुष्य की कामना से यज्ञ को सफल करें । आपकी मित्रता से हम कभी कष्ट न पायें ॥४ ॥

१०४५. **विशां गोपा अस्य चरन्ति जन्तवो द्विपच्च यदुत चतुष्पदक्तुभिः ।**
चित्रः प्रकेत उषसो महाँ अस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥५ ॥

इन अग्निदेव से उत्पन्न किरणें समस्त प्राणियों की रक्षा करती हुई विचरण करती हैं । इन अग्निदेव से रक्षित होकर दो पाये (मनुष्य) और चौपाये (पशु) भी विचरण करते हैं । हे अग्निदेव ! विलक्षण तेजों से युक्त होकर आप देवी उषा के सदृश महान् होते हैं । आपकी मित्रता से हम दुःखी न हों ॥५ ॥

१०४६. **त्वमध्वर्युरुत होतासि पूर्व्यः प्रशास्ता पोता जनुषा पुरोहितः ।**
विश्वा विद्वाँ आर्त्विज्या धीर पुष्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥६ ॥

हे मेधावी अग्निदेव ! आप अध्वर्यु और चिर पुरातन होता रूप हैं । आप प्रशासक, पोतारूप और प्रारम्भ से ही पुरोहित रूप हैं । आप ऋत्विजों और विद्वानों के सम्पूर्ण कर्मों को पुष्ट करने वाले हैं । आपकी मित्रता हमारे लिए कष्टकर न हो ॥६ ॥

१०४७. **यो विश्वतः सुप्रतीकः सदृङ्ङसि दूरे चित्सन्तळिदिवाति रोचसे ।**
रात्र्याश्चिदन्धो अति देव पश्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! आप अति उत्तम रूपवान् और सब ओर से दर्शनीय हैं । दूरस्थ होते हुए आप तड़ित् (विद्युत्) के समान अति दीप्तिमान् हैं । हे देव ! आप रात्रि के अंधकार को भी नष्ट कर प्रकाशित होते हैं । आपकी मित्रता से हम कभी कष्ट में न रहें ॥७ ॥

१०४८. **पूर्वो देवा भवतु सुन्वतो रथोऽस्माकं शंसो अभ्यस्तु दूढ्यः ।**
तदा जानीतोत पुष्यता वचोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥८ ॥

हे देवो ! सोम-सवन करने वाले का रथ सदा अग्रणी हो । हमारे स्तोत्र पाप बुद्धि वाले दुष्टों का पराभव करें । आप हमारा निवेदन जानकर हमारे वचनों को पुष्ट करें । हे अग्निदेव ! आपकी मित्रता से हम कभी व्यथित न हों ॥८ ॥

१०४९. **वधैर्दुःशंसाँ अप दूढ्यो जहि दूरे वा ये अन्ति वा के चिदत्रिणः ।**
अथा यज्ञाय गृणते सुगं कृध्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! आप पाप बुद्धि वाले, दूरस्थ अथवा निकटस्थ दुष्टों और हिंसक शत्रुओं का, शस्त्रों से वध करें । तदनन्तर यज्ञ के स्तोता का मार्ग सुगम करें । हम आपकी मित्रता से कभी कष्ट न पायें ॥९ ॥



१०५०. यदयुक्था अरुषा रोहिता रथे वातजूता वृषभस्येव ते रवः ।
आदिन्वसि वनिनो धूमकेतुनाग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१० ॥

हे अग्निदेव ! आप तेजस्वी, रोहित वर्ण वाले, वायु के सदृश वेग वाले अश्वों को रथ में नियोजित करते हैं, तब गम्भीर ध्वनि उत्पन्न होती है । फिर वनों के सभी वृक्षों को आप धूम्र की पताका से ढक लेते हैं । आपकी मित्रता से हम कभी कष्ट न पायें ॥१० ॥

१०५१. अध स्वनादुत बिभ्युः पतत्रिणो द्रप्सा यत्ते यवसादो व्यस्थिरन् ।
सुगं तत्ते तावकेभ्यो रथेभ्योऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥११ ॥

हे अग्निदेव ! जिस समय आपकी ज्वालाएँ जंगल में फैलती हैं, तो आपके शब्द से पक्षी भयभीत हो उठते हैं । जब ये ज्वालाएँ तिनकों के समूह को जलाती हुई फैलती हैं, तब आपके अधीनस्थ रथ भी सुगमता पूर्वक गमन करते हैं । आपकी मित्रता में हम कभी पीड़ित न हों ॥११ ॥

१०५२. अयं मित्रस्य वरुणस्य धायसे ऽवयातां मरुतां हेळो अद्भुतः ।
मृळा सु नो भूत्वेषां मनः पुनरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१२ ॥

ये अग्निदेव मित्र और वरुण देवों को धारण करने में समर्थ हैं । उतरते हुए मरुतों का क्रोध भयंकर है । हे अग्निदेव ! इन मरुतों का मन हमारे लिये प्रसन्नता युक्त हो । हमें आप सुखी करें । आपकी मित्रता में हम कभी कष्ट न पायें ॥१२ ॥

१०५३. देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे ।
शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१३ ॥

हे दिव्य अग्निदेव ! आप समस्त देवों के अद्भुत मित्र रूप हैं । आप यज्ञ में अति सुशोभित होने वाले और सम्पूर्ण धनों के परमधाम हैं । आपके व्यापक गृह में शरण लेकर हम संरक्षित हों । आपकी मित्रता में हम कभी पीड़ित न हों ॥१३ ॥

१०५४. तत्ते भद्रं यत्समिद्धः स्वे दमे सोमाहुतो जरसे मृळयत्तमः ।
दधासि रत्नं द्रविणं च दाशुषेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१४ ॥

हे अग्निदेव ! आप अपने स्थान (यज्ञ गृह) में प्रज्वलित होकर सोमयुक्त आहुतियों को ग्रहण करते हैं, और स्तोताओं को अत्युत्तम सुख प्रदान करते हैं । हविदाताओं को रत्नादि धन देने का आपका कार्य अति प्रशंसनीय है । आपकी मित्रता को प्राप्त होकर हम कभी पीड़ित न हों ॥१४ ॥

१०५५. यस्मै त्वं सुद्रविणो ददाशोऽनागास्त्वमदिते सर्वताता ।
यं भद्रेण शवसा चोदयासि प्रजावता राधसा ते स्याम ॥१५ ॥

हे सुन्दर ऐश्वर्यवान् अनन्त बलवान् अग्निदेव ! आप यज्ञों में जिस याजक को पाप-कर्मों से मुक्त करते हैं, तथा जिसे कल्याण, बल, वैभव के साथ पुत्र-पौत्रादि से युक्त करते हैं, उनमें हम भी शामिल हों ॥१५ ॥

१०५६. स त्वमग्ने सौभगत्वस्य विद्वानस्माकमायुः प्र तिरेह देव ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥१६ ॥

हे दिव्य अग्निदेव ! सर्व सौभाग्य के ज्ञाता आप हमारी आयु में वृद्धि करें । मित्र, वरुण, अदिति, पृथ्वी, समुद्र और आकाश देव भी हमारी उस आयु की रक्षा करें ॥१६ ॥



[सूक्त -९५]

[ऋषि-कुत्स आङ्गिरस । देवता-अग्नि अथवा औषस-अग्नि । छन्द-त्रिष्टुप् ।]

१०५७. द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे अन्यान्या वत्समुप धापयेते ।
हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः ॥१ ॥

भिन्न स्वरूप वाली, उत्तम प्रयोजनों में लगी हुई दो स्त्रियाँ (रात्रि और दिन रूप में) एक दूसरे के पुत्रों को पोषित करती हैं । एक का पुत्र हरि (रात्रि के गर्भ से उत्पन्न रसों का हरण करने वाला सूर्य) अन्य (दिन)के द्वारा पोषित होता है तथा दूसरी का पुत्र शुक्र (दिन में जाग्रत् तेजस्वी अग्नि) अन्य (रात्रि) के द्वारा पोषित होता है ॥१ ॥

१०५८. दशेमं त्वष्टुर्जनयन्त गर्भमतन्द्रासो युवतयो विभृत्रम् ।
तिग्मानीकं स्वयशसं जनेषु विरोचमानं परि षीं नयन्ति ॥२ ॥

आलस्य रहित ये युवतियाँ (दस अंगुलियाँ) तेज के गर्भ रूप अग्निदेव को उत्पन्न करती हैं । ये भरण पोषण करने वाले, तीक्ष्ण मुखों (लपटों) वाले अपने यश से जनों में प्रकाशित अग्निदेव लोगों द्वारा चारों ओर ले जाये जाते हैं ॥२ ॥

१०५९. त्रीणि जाना परि भूषन्त्यस्य समुद्र एकं दिव्येकमप्सु ।
पूर्वामनु प्र दिशं पार्थिवानामृतून्प्रशासद्वि दधावनुष्ठु ॥३ ॥

इन अग्निदेव के तीन विशिष्ट रूप सर्वत्र विभूषित हैं । समुद्र में (बड़वानलन रूप में)आकाश में (सूर्यरूप में) और अन्तरिक्ष में जलरूप में (जलों में विद्युत् रूप में), (सूर्यरूप) अग्नि ने ही ऋतु चक्र की व्यवस्था की है । पृथ्वी के प्राणियों की व्यवस्था के लिए पूर्वादि दिशाओं की स्थापना भी (सूर्यरूप) अग्नि ने ही की है ॥३ ॥

[सूर्य की क्रान्ति से ऋतुएँ बनती हैं । सूर्योदय को लक्ष्य करके ही दिशाएँ निर्धारित होती हैं]

१०६०. क इमं वो निण्यमा चिकेत वत्सो मातॄर्जनयत स्वधाभिः ।
बह्वीनां गर्भो अपसामुपस्थान्महान्कविर्निश्चरति स्वधावान् ॥४ ॥

इन गुह्य अग्निदेव को कौन जानता है ? पुत्र होते हुए भी इनने अपनी माताओं को निज धारक सामर्थ्यों से प्रकट किया । निज-धारक सामर्थ्य से जलों के गर्भ में स्थित रहकर समुद्र में संचार करने वाले ये अग्निदेव कवि (क्रान्तदर्शी) हैं ॥४ ॥

[सूर्यदेव पूर्व दिशा से प्रकट होते हैं, किन्तु दिशाओं को उन्होंने ही स्वरूप दिया है । अग्निदेव काष्ठ अरणि से प्रकट होते हैं वही वनों की उत्पत्ति के कारण हैं ।]

१०६१. आविष्ट्यो वर्धते चारुरासु जिह्मानामूर्ध्वः स्वयशा उपस्थे ।
उभे त्वष्टुर्बिभ्यतुर्जायमानात्प्रतीची सिंहं प्रति जोषयेते ॥५ ॥

जलों में प्रविष्ट हुए अग्निदेव यज्ञ के साथ प्रकाशित होकर बढ़ते हुए ऊपर उठते हैं । इनके उत्पन्न होने पर त्वष्टा देव की दोनों पुत्रियाँ (अग्नि उत्पादक काष्ठ या अरणियाँ) भयभीत होती हैं और सिंह रूप इन अग्निदेव की अनुचारिणी बनकर सेवा करती हैं ॥५ ॥

१०६२. उभे भद्रे जोषयेते न मेने गावो न वाश्रा उप तस्थुरेवैः ।
स दक्षाणां दक्षपतिर्बभूवाञ्जन्ति यं दक्षिणतो हविर्भिः ॥६ ॥

कल्याण करने वाली सुन्दर स्त्रियों के समान आकाश और पृथ्वी दोनों सूर्यरूप अग्निदेव की सेवा करती



हैं । रँभाने वाली गौओं की तरह ये अपनी चाल से इनके पास जाती हैं । ऋत्विग्गण दक्षिण की ओर मुख करके हवियों द्वारा अग्निदेव का यजन करते हैं । वे अग्निदेव बलवानों से भी अधिक बली हैं ॥६ ॥

१०६३. उद्यंयमीति सवितेव बाहू उभे सिचौ यतते भीम ऋञ्जन् ।
उच्छुक्रमत्कमजते सिमस्मान्नवा मातृभ्यो वसना जहाति ॥७ ॥

अग्निदेव सवितादेव के समान अपनी भुजाओं रूपी रश्मियों को फैलाते हैं और विकराल होकर सिंचन करने वाली दोनों माताओं (द्यावा-पृथ्वी) को अलंकृत करते हैं । तदनन्तर प्रकाश का कवच हटाकर माताओं को नवीन वस्त्रों से आच्छादित कर देते हैं ॥७ ॥

[यज्ञाग्नि से उत्पन्न प्राण पर्जन्य प्रकाश रहित होता है और द्यावा-पृथिवी को पोषक आच्छादन प्रदान करता है ।]

१०६४. त्वेषं रूपं कृणुत उत्तरं यत्संपृञ्चानः सदने गोभिरद्भिः ।
कविर्बुध्नं परि मर्मृज्यते धीः सा देवताता समितिर्बभूव ॥८ ॥

ये मेधावी और ज्ञान सम्पन्न अग्निदेव अपने स्थान में गौ दुग्ध-घृत रूपी रसों से संयुक्त होकर उत्तरोत्तर तेजस्वी रूप को धारण करते हैं । वे मूल स्थान को परिशुद्ध कर दूर अन्तरिक्ष तक दिव्य तेजस्विता को विस्तृत कर देते हैं ॥८ ॥

१०६५. उरु ते ज्रयः पर्येति बुध्नं विरोचमानं महिषस्य धाम ।
विश्वेभिरग्ने स्वयशोभिरिद्धोऽदब्धेभिः पायुभिः पाह्यस्मान् ॥९ ॥

महाबली अग्निदेव का उज्ज्वल तेज अन्तरिक्ष के व्यापक स्थानों तक फैल गया है । हे अग्निदेव ! आप प्रदीप्त होकर सम्पूर्ण यशस्वी सामर्थ्यों और अटल रक्षण साधनों से हमारी रक्षा करें ॥९ ॥

१०६६. धन्वन्त्स्रोतः कृणुते गातुमूर्मिं शुक्रैरूर्मिभिरभि नक्षति क्षाम् ।
विश्वा सनानि जठरेषु धत्तेऽन्तर्नवासु चरति प्रसूषु ॥१० ॥

ये अग्निदेव निर्जन स्थान में भी जल स्रोत फोड़कर मार्ग बनाते हैं । वर्षा करके पृथ्वी को जलों से पूर्ण कर देते हैं । सब अन्नों को प्राणियों के पेट में स्थापित करते हैं । ये नूतन वनस्पतियों-ओषधियों के गर्भ में शक्ति का संचार करते हैं ॥१० ।

१०६७. एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत्पावक श्रवसे वि भाहि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥११ ॥

हे पवित्र कर्ता अग्निदेव ! समिधाओं से संवर्धित होकर आप हमारे लिए धन देने वाले हों और अपने यश से प्रकाशित हों । हमारे इस निवेदन का मित्र, वरुण , अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और द्युलोक भी अनुमोदन करें ॥११ ॥

[सूक्त - ९६]

[**ऋषि**-कुत्स आङ्गिरस । **देवता**- अग्नि अथवा द्रविणोदा- अग्नि । **छन्द**- त्रिष्टुप् ।]

१०६८. स प्रत्नथा सहसा जायमानः सद्यः काव्यानि बळधत्त विश्वा ।
आपश्च मित्रं धिषणा च साधन्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥१ ॥

बल (काष्ठों के बल पूर्वक घर्षण)से उत्पन्न अग्निदेव ने, पूर्व की भाँति सभी स्तुतियों को धारण किया । उन अग्निदेव ने जल समूह और पृथिवी को अपना मित्र बनाया । देवों ने उन धन प्रदाता अग्निदेव को दूतरूप में धारण किया ॥१ ॥



१०६९. स पूर्वया निविदा कव्यतायोरिमाः प्रजा अजनयन्मनूनाम्।
विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥२ ॥

उन अग्निदेव ने मनोयोग पूर्वक की गई प्राचीन स्तुति काव्यों से सन्तुष्ट होकर मनु की संतानों (प्रजाओं) को उत्पन्न किया। अपने तेजस्वी प्रकाश से सूर्य रूप में आकाश को और विद्युत् रूप में अन्तरिक्ष के जलों को व्याप्त किया। देवों ने धन प्रदाता अग्निदेव को दूत-रूप में धारण किया' ॥२ ॥

१०७०. तमीळत प्रथमं यज्ञसाधं विश आरीराहुतमृञ्जसानम्।
ऊर्जः पुत्रं भरतं सृप्रदानुं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥३ ॥

हे बुद्धि सम्पन्न प्रजाजनो ! आप उन देवयज्ञ के साधक, आहुति प्रिय, इच्छित फल प्रदायक, बलोत्पन्न (अरणि मन्थन से प्रकट) भरण पोषण करने वाले , उत्तम दानशील अग्निदेव की सर्वप्रथम स्तुति करें। देवों ने ऐसे धन प्रदाता अग्निदेव को दूतरूप में धारण किया है ॥३ ॥

१०७१. स मातरिश्वा पुरुवारपुष्टिर्विदद्गातुं तनयाय स्वर्वित्।
विशां गोपा जनिता रोदस्योर्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥४ ॥

वे मातरिश्वा अग्निदेव विविध प्रकार से पुष्टि प्रदायक, आत्म प्रकाश के ज्ञाता, प्रजारक्षक, पृथ्वी और आकाश के उत्पादक हैं। उन्होंने अपनी सन्तानों की प्रगति के उत्तम मार्ग ढूँढ निकाले हैं। देवों ने उन धन प्रदाता अग्निदेव को दूतरूप में धारण किया है ॥४ ॥

१०७२. नक्तोषासा वर्णमामेम्याने धापयेते शिशुमेकं समीची।
द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्वि भाति देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥५ ॥

रात्रि और उषा एक दूसरे के वर्ण के अस्तित्व को नष्ट करने वाली स्त्रियाँ हैं, जो एक स्थान पर रहकर एक ही शिशु (अग्नि)को पालती हैं। ये प्रकाशक अग्निदेव आकाश और पृथ्वी के मध्य विशेष रूप से प्रतिभासित होते हैं, देवों ने उन धन प्रदाता अग्निदेव को दूत रूप में धारण किया है ॥५ ॥

१०७३. रायो बुध्नः संगमनो वसूनां यज्ञस्य केतुर्मन्मसाधनो वेः।
अमृतत्वं रक्षमाणास एनं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥६ ॥

धन वैभव के मूल आधार ये अग्नि देव ऐश्वर्यों से युक्त करने वाले, यज्ञ की सूचक ध्वजा के समान तथा मनुष्य के निमित्त इष्टफल प्रदायक हैं। अमरत्व के रक्षक देवों ने ऐसे अग्निदेव को धारण किया है ॥६ ॥

१०७४. नू च पुरा च सदनं रयीणां जातस्य च जायमानस्य च क्षाम्।
सतश्च गोपां भवतश्च भूरेर्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥७ ॥

ये अग्निदेव वर्तमान और पूर्व की सम्पदाओं के आधार हैं। जो उत्पन्न हुए या उत्पन्न होने वालों के आश्रय स्थान हैं। जो उत्पन्न हुए या उत्पन्न होने वालों के आश्रय स्थान हैं । जो विद्यमान और उत्पन्न होने वाले सभी पदार्थों के संरक्षक हैं। देवों ने उन धन प्रदाता अग्निदेव को धारण किया है ॥७ ॥

१०७५. द्रविणोदा द्रविणसस्तुरस्य द्रविणोदाः सनरस्य प्र यंसत्।
द्रविणोदा वीरवतीमिषं नो द्रविणोदा रासते दीर्घमायुः ॥८ ॥

धन-प्रदाता अग्निदेव हमारे उपयोग के लिए जंगम ऐश्वर्य साधन (गवादि धन) और स्थावर ऐश्वर्य साधन (वानस्पतिक पदार्थ) भी दें वे सन्तान युक्त धन सम्पदा और दीर्घ आयु भी प्रदान करें ॥ ८ ॥



१०७६. एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत्पावक श्रवसे वि भाहि।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥९ ॥

हे पवित्रकर्मा अग्निदेव ! समिधाओं से सम्वर्धित होकर आप हमें धन देते हुए अपने यश से प्रकाशित हों। हमारे इस निवेदन का मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथिवी और द्युलोक भी अनुमोदन करें ॥९ ॥

[सूक्त - ९७]

[**ऋषि** - कुत्स आङ्गिरस । **देवता**- अग्नि अथवा शुचि अग्नि । **छन्द** - गायत्री ।]

१०७७. अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिम्। अप नः शोशुचदघम् ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे पापों को भस्म करें। हमारे चारों ओर ऐश्वर्य को प्रकाशित करें। हमारे पापों को विनष्ट करें ॥१ ॥

१०७८. सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे। अप नः शोशुचदघम् ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! उत्तम क्षेत्र, उत्तम मार्ग और उत्तम धन की इच्छा से हम आपका यजन करते हैं। आप हमारे पापों को विनष्ट करें ॥२ ॥

१०७९. प्र यद्भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सूरयः। अप नः शोशुचदघम् ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! हम सभी साधक वीरता और बुद्धि पूर्वक आपकी विशिष्ट प्रकार से भक्ति करते हैं। आप हमारे पापों को विनष्ट करें ॥३ ॥

१०८०. प्र यत्ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम्। अप नः शोशुचदघम् ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! हम सभी और ये विद्वद्गण आपकी उपासना से आपके सदृश प्रकाशवान् हुए हैं, अतः आप हमारे पापों को विनष्ट करें ॥४ ॥

१०८१. प्र यदग्नेः सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानवः। अप नः शोशुचदघम् ॥५ ॥

इन बल सम्पन्न अग्निदेव की देदीप्यमान किरणें सर्वत्र फैल रही हैं, ऐसे वे अग्निदेव हमारे पापों को विनष्ट करें ॥५ ॥

१०८२. त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि। अप नः शोशुचदघम् ॥६ ॥

हे सर्वतोमुखी अग्निदेव ! आप निश्चय ही सभी ओर व्याप्त होने वाले हैं, आप हमारे पापों को विनष्ट करें ॥६ ॥

१०८३. द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय। अप नः शोशुचदघम् ॥७ ॥

हे सर्वतोमुखी अग्निदेव ! आप नौका के सदृश सभी शत्रुओं से हमें पार ले जाएँ। आप हमारे पापों को विनष्ट करें ॥७ ॥

१०८४. स नः सिन्धुमिव नावयाति पर्षा स्वस्तये। अप नः शोशुचदघम् ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! आप नौका द्वारा नदी के पार ले जाने के समान हिंसक शत्रुओं से हमें पार ले जाएँ। आप हमारे पापों को विनष्ट करें ॥८ ॥



[सूक्त - ९८]

[**ऋषि** - कुत्स आङ्गिरस । **देवता** - अग्नि अथवा वैश्वानर- अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

१०८५. वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः ।
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ॥१ ॥

हम वैश्वानर अग्निदेव की प्रसन्नता बढ़ाने वाले हों । वे ही सम्पूर्ण लोकों के पोषक और सबके द्रष्टा हैं । राजा के सदृश सामर्थ्यवान् ये वैश्वानर अग्निदेव सूर्य के समान ही यत्न करते हैं ॥१ ॥

१०८६. पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीरा विवेश ।
वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥२ ॥

ये वैश्वानर अग्निदेव द्युलोक और पृथ्वी लोक में प्रशंसनीय हैं । ये सम्पूर्ण ओषधियों में व्याप्त होकर प्रशंसा के पात्र हैं । बलों के कारण प्रशंसनीय ये अग्निदेव दिन और रात्रि में हिंसक प्राणियों से हमारी रक्षा करें ॥२ ॥

१०८७. वैश्वानर तव तत्सत्यमस्त्वस्मान्रायो मघवानः सचन्ताम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥३ ॥

हे वैश्वानर अग्निदेव ! आपका कार्य सत्य हो । हे ऐश्वर्यवान् ! हमें धन युक्त ऐश्वर्य से अभिपूरित करें । हमारे इस निवेदन का मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यौ आदि देव अनुमोदन करें ॥३ ॥

[सूक्त - ९९]

[**ऋषि**-काश्यप मारीच । **देवता**-अग्नि अथवा-जातवेदा अग्नि । **छन्द**-त्रिष्टुप् ।]

१०८८. जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः ।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥१ ॥

हम सर्वज्ञ अग्निदेव के लिए सोम - सवन करें । वे अग्निदेव हमारे शत्रुओं के सभी धनों को भस्मीभूत करें । नाव द्वारा नदी से पार कराने के समान वे अग्निदेव हमें सम्पूर्ण दु:खों से पार लगाएँ और पापों से रक्षित करें ॥१ ॥

[सूक्त - १००]

[**ऋषि**- वार्षागिर, ऋज्राश्वाम्बरीष, सहदेव, भयमान, सुराधस । **देवता**-इन्द्र । **छन्द**-त्रिष्टुप् ।]

१०८९. स यो वृषा वृष्ण्येभिः समोका महो दिवः पृथिव्याश्च सम्राट् ।
सतीनसत्वा हव्यो भरेषु मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१ ॥

जो बलशाली इन्द्रदेव बलवर्धक साधनों से संयुक्त रहने वाले, महान् आकाश और पृथ्वी के स्वामी हैं, जो जलों को प्राप्त कराने वाले, संग्राम में आवाहन के योग्य हैं, वे इन्द्रदेव मरुद्गणों सहित हमारे रक्षक हों ॥१ ॥



१०९०. यस्यानाप्तः सूर्यस्येव यामो भरेभरे वृत्रहा शुष्मो अस्ति।
वृषन्तमः सखिभिः स्वेभिरेवैर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥२ ॥

सूर्य की गति के समान दुर्लभ गति वाले वृत्तनाशक इन्द्रदेव प्रत्येक संग्राम में शत्रुओं को प्रकम्पित करने वाले हैं। ये मित्र रूप आक्रामक मरुतों के साथ मिलकर अतीव बलशाली हैं। ये इन्द्रदेव मरुद्‌गणों सहित हमारे रक्षक हों ॥२ ॥

१०९१. दिवो न यस्य रेतसो दुघानाः पन्थासो यन्ति शवसापरीताः।
तरद्द्वेषाः सासहिः पौंस्येभिर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥३ ॥

इन इन्द्रदेव के निर्विघ्न मार्ग सूर्य किरणों के सदृश अन्तरिक्ष के जलों का दोहन करने वाले हैं। ये अपने पराक्रम से द्वेषियों का नाश करने वाले, शत्रुओं का पराभव करने वाले और बलपूर्वक आगे-आगे गमन करने वाले हैं, ये इन्द्रदेव मरुद्‌गणों के साथ हमारे रक्षक हों ॥३ ॥

१०९२. सो अङ्गिरोभिरङ्गिरस्तमो भूद्वृषा वृषभिः सखिभिः सखा सन्।
ऋग्मिभिर्ऋग्मी गातुभिर्ज्येष्ठो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥४ ॥

वे इन्द्रदेव अंगिरा ऋषियों में अतिशय पूज्य, मित्रों में श्रेष्ठ मित्र, बलवानों में अतीव बलवान्, ज्ञानियों में अतिज्ञान सम्पन्न और सामादिगान करने वालों में वरिष्ठ हैं । वे इन्द्रदेव मदरुद्‌गणों के साथ हमारे रक्षक हों ॥४ ॥

१०९३. स सूनुभिर्न रुद्रेभिर्ऋभ्वा नृषाह्ये सासह्वाँ अमित्रान्।
सनीळेभिः श्रवस्यानि तूर्वन्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥५ ॥

महान् इन्द्रदेव ने पुत्रों के समान प्रिय सहायक मरुतों के साथ मिलकर शत्रुओं को पराजित किया। साथ रहने वाले मरुद्‌गणों के साथ मिलकर आपने अन्नों की वृद्धि के निमित्त जलों को नीचे प्रवाहित किया। वे इन्द्रदेव मरुतों के साथ हमारे रक्षक हों ॥५ ॥

१०९४. स मन्युमीः समदनस्य कर्तास्माकेभिर्नृभिः सूर्यं सनत्।
अस्मिन्नहन्त्सत्पतिः पुरुहूतो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥६ ॥

शत्रुओं के प्रति मन्यु (क्रोध) प्रदर्शित करने वाले ,हर्ष युक्त होकर युद्ध में प्रवृत्त रहने वाले, सत्प्रवृत्तियों के पालक ,बहुतों द्वारा आवाहनीय इन्द्रदेव आज के दिन हमारे वीरों को लेकर वृत्र का नाश करें। सूर्य देव को प्रकट करें। वे इन्द्रदेव मरुतों के साथ मिलकर हमारे रक्षक हों ॥६ ॥

१०९५. तमूतयो रणयञ्छूरसातौ तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वत त्राम्।
स विश्वस्य करुणस्येश एको मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥७ ॥

सहायक मरुतों ने इन्द्रदेव को युद्ध में उत्तेजित किया । प्रजाओं ने अपनी रक्षा के निमित्त उन वीर मरुद्‌गणों को रक्षक बनाया। वे इन्द्रदेव अकेले ही सम्पूर्ण श्रेष्ठ कर्मों के नियन्ता हैं। ऐसे वे इन्द्रदेव मरुद्‌गणों के साथ हमारी रक्षा करें ॥७ ॥

१०९६. तमप्सन्त शवस उत्सवेषु नरो नरमवसे तं धनाय।
सो अन्धे चित्तमसि ज्योतिर्विदन्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥८ ॥

बलशाली वीरों द्वारा युद्धों में उन श्रेष्ठ वीर इन्द्रदेव को धन और रक्षा के निमित्त बुलाया जाता



है। उन इन्द्रदेव ने गहन तमिस्रा में भी प्रकाश को प्राप्त किया । ऐसे वे इन्द्रदेव मरुतों के साथ हमारी रक्षा करें ॥८ ॥

१०९७. स सव्येन यमति व्राधतश्चित्स दक्षिणे संगृभीता कृतानि ।
स कीरिणा चित्सनिता धनानि मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥९ ॥

वे इन्द्रदेव बायें हाथ से हिंसक शत्रुओं को रोकते हैं और दाँयें हाथ से याजकों की हवियों को ग्रहण करते हैं । वे स्तुतियों से प्रसन्न होकर उन्हें धन देते हैं। ऐसे वे इन्द्रदेव मरुद्गणों के साथ हमारे रक्षक हों ॥९ ॥

१०९८. स ग्रामेभिः सनिता स रथेभिर्विदे विश्वाभिः कृष्टिभिर्न्व१द्य ।
स पौंस्येभिरभिभूरशस्तीर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१० ॥

वे इन्द्रदेव मरुतों के सहयोग से रथों द्वारा धनों को देने वाले हैं, ऐसा सम्पूर्ण प्रजाजन जानते हैं । वे इन्द्रदेव अपनी सामर्थ्यों से निन्दनीय शत्रुओं का पराभव करने वाले हैं । ऐसे वे इन्द्रदेव मरुद्गणों के साथ हमारे रक्षक हों ॥१० ॥

१०९९. स जामिभिर्यत्समजाति मीळ्हेऽजामिभिर्वा पुरुहूत एवैः ।
अपां तोकस्य तनयस्य जेषे मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥११ ॥

बहुतों के द्वारा बुलाये जाने वाले वे इन्द्रदेव जब बन्धु अथवा अबन्धु वीरों के साथ युद्ध में जाते हैं, तो वे उनके पुत्र-पौत्रादि की विजय के लिए यत्नशील रहते हैं । ऐसे वे इन्द्रदेव मरुद्गणों के साथ हमारे रक्षक हों ॥११ ॥

११००. स वज्रभृद्दस्युहा भीम उग्रः सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा ।
चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१२ ॥

वे वज्रधारी, दुष्ट नाशक, विकराल, पराक्रमी, सहस्र ज्ञान की धाराओं से युक्त, शतनीति युक्त, प्रकाशवान्, सोम के सदृश पूज्य इन्द्रदेव अपनी सामर्थ्य से पाँचजन्य (पाँचों प्रकार के मनुष्यों) के हितकारी हैं । ऐसे वे देव इन्द्र मरुद्गणों के साथ हमारे रक्षक हों ॥१२ ॥

११०१. तस्य वज्रः क्रन्दति स्मत्स्वर्षा दिवो न त्वेषो रवथः शिमीवान् ।
तं सचन्ते सनयस्तं धनानि मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१३ ॥

उन इन्द्रदेव का वज्र बहुत तीव्र गर्जना करता है । वह द्युलोक के सूर्यदेव की भाँति तेजस्विता सम्पन्न है । स्तोताओं की स्तुतियों से वे उन्हें उत्तम सुख और उत्तम धनादि दान देकर सन्तुष्ट करते हैं । ऐसे वे इन्द्रदेव मरुतों के साथ हमारे रक्षक हों ॥१३ ॥

११०२. यस्याजस्रं शवसा मानमुक्थं परिभुजद्रोदसी विश्वतः सीम् ।
स पारिषत्क्रतुभिर्मन्दसानो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१४ ॥

उन इन्द्रदेव का प्रशंसनीय बल आकाश और पृथिवी दोनों लोकों का सभी ओर से निरन्तर पोषण कर रहा है। वे हमारे यज्ञादि कर्मों से हर्षित होकर हमें दुःखों से दूर करें। ऐसे वे इन्द्रदेव मरुतों के साथ हमारे रक्षक हों ॥१४ ॥



११०३. न यस्य देवा देवता न मर्ता आपश्चन शवसो अन्तमापुः ।
स प्ररिक्वा त्वक्षसा क्ष्मो दिवश्च मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥१५ ॥

जिन इन्द्रदेव के बल का अन्त दान-प्रवृत्ति वाले देवगण, मनुष्य तथा जल भी नहीं पा सकते, वे इन्द्रदेव अपनी तेजस्वी सामर्थ्य से पृथ्वी और द्युलोक से भी महान् हैं। ऐसे वे इन्द्रदेव मरुतों के साथ हमारे रक्षक हों ॥१५ ॥

११०४. रोहिच्छ्यावा सुमदंशुर्ललामीर्द्युक्षा राय ऋज्राश्वस्य ।
वृषण्वन्तं बिभ्रती धूर्षु रथं मन्द्रा चिकेत नाहुषीषु विक्षु ॥१६ ॥

रोहित और श्यामवर्ण के अश्व उत्तम तेजस्वी आभूषणों से सुशोभित इन्द्रदेव के रथ में नियोजित होकर प्रसन्नता पूर्वक गर्जना करते हुए चलते हैं। इन्द्रदेव 'ऋज्राश्व' को ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। मानवी प्रजा भी धन के निमित्त निवेदन करती हुई दिखाई दे रही है ॥१६ ॥

११०५. एतत्त्यत्त इन्द्र वृष्ण उक्थं वार्षागिरा अभि गृणन्ति राधः ।
ऋज्राश्वः प्रष्टिभिरम्बरीषः सहदेवो भयमानः सुराधाः ॥१७ ॥

हे इन्द्रदेव ! समीपस्थ ऋषियों के साथ 'ऋज्राश्व' अम्बरीष, सहदेव, भयमान और सुराधस् ये सब वृषागिर् के पुत्र आप जैसे सामर्थ्यवान् के लिए प्रसिद्ध स्तोत्रों का गायन करते हैं ॥१७ ॥

११०६. दस्यूञ्छिम्यूँश्च पुरुहूत एवैर्हत्वा पृथिव्यां शर्वा नि बर्हीत् ।
सनत्क्षेत्रं सखिभिः श्वित्न्येभिः सनत्सूर्यं सनदपः सुवज्रः ॥१८ ॥

बहुतों द्वारा बुलाये जाने पर इन्द्रदेव ने अपने सहायक मरुद्गणों के साथ मिलकर पृथ्वी के ऊपर दुष्टों और हिंसक शत्रुओं पर तीक्ष्ण वज्र से प्रहार करके उन्हें जड़ विहीन किया, तब उस उत्तम वज्रधारी ने श्वेत वस्त्रों और अलंकारों से विभूषित मरुद्गणों के साथ भूमि प्राप्त की। जल समूह को प्राप्त किया और सूर्य भी प्राप्त किया ॥१८ ॥

११०७. विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥१९ ॥

इन्द्रदेव प्रत्येक दिन हमारे लिए प्रेरक उपदेशक हों। कपट तजकर हम उन्हें अन्नादि अर्पित करें। मित्र वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और द्यौ हमारे इस निवेदन का अनुमोदन करें ॥१९ ॥

[सूक्त - १०१]

[**ऋषि**- कुत्स आङ्गिरस । **देवता**- इन्द्र (१ गर्भस्राविण्युपनिषद्) **छन्द**-जगती; ८-११ त्रिष्टुप् ।]

११०८. प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना ।
अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥१ ॥

हे ऋत्विग्गण ! श्रेष्ठ इन्द्रदेव की, हविष्यान्न देकर अर्चना करो। 'ऋजिश्व' * की सहायता से, कृष्णासुर की गर्भिणी स्त्रियों के साथ उसका वध करने वाले, दायें हाथ में वज्र धारण करने वाले, मरुद्गणों की सेना के साथ विद्यमान रहने वाले, शक्ति सम्पन्न, उन इन्द्रदेव का अपने संरक्षण की कामना करने वाले हम यजमान मित्रभाव से आवाहन करते हैं ॥१ ॥



[*राजा वृषागिर् के पुत्र एवं कहीं पर विदथिन् के पुत्र के रूप में इनकी गणना की गई है। सायण के अनुसार ये राजा या राजर्षि हैं। विप्रु दानव तथा कृष्णगर्भा के विरुद्ध इन्द्रदेव की सहायता करने के कारण इन्हें इन्द्रदेव का सहायक भी माना गया है]

११०९. यो व्यंसं जाहृषाणेन मन्युना यः शम्बरं यो अहन्पिप्रुमव्रतम्।
इन्द्रो यः शुष्णमशुषं न्यावृणङ्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥२॥

जिन इन्द्रदेव ने सर्वप्रथम वृत्रासुर के कंधों को काटा, पश्चात् धर्म नियमों से विहीन पिप्रु का हनन किया। प्रजा के शोषक शम्बर और शुष्ण दोनों दैत्यों का वध किया, इस प्रकार सभी दैत्यों के नाशक वे इन्द्रदेव हैं। मित्रता के लिए मरुत् के सहयोगी ऐसे इन्द्रदेव का हम आवाहन करते हैं ॥२॥

१११०. यस्य द्यावापृथिवी पौंस्यं महद्यस्य व्रते वरुणो यस्य सूर्यः।
यस्येन्द्रस्य सिन्धवः सश्चति व्रतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥३॥

जिनकी सामर्थ्यशक्ति से स्वर्गलोक, भूलोक, वरुण, सूर्य और सरिताएँ अपने-अपने व्रत नियमों में आरूढ़ हैं। मरुतों से युक्त ऐसे इन्द्रदेव को मैत्रीभाव की दृढ़ता हेतु आवाहित करते हैं ॥३॥

११११. यो अश्वानां यो गवां गोपतिर्वशी य आरितः कर्मणिकर्मणि स्थिरः।
वीळोश्चिदिन्द्रो यो असुन्वतो वधो मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥४॥

जो इन्द्रदेव गौओं और अश्वों के पालक (स्वामी) हैं, सभी को अपने नियन्त्रण में रखकर प्रत्येक कार्य (कर्तव्य निर्वाह) में सुस्थिर रहकर प्रशंसित होते हैं। जो इन्द्रदेव विधि पूर्वक सोमयुक्त यज्ञीय कर्म से रहित शत्रुओं के नाशक हैं, ऐसे मरुद्युक्त इन्द्रदेव को मित्रता के लिए आवाहित करते हैं ॥४॥

१११२. यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत्।
इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥५॥

विश्वाधिपति इन्द्रदेव जो सम्पूर्ण गतिमान् प्राणधारियों के स्वामी हैं, जिन्होंने ब्रह्मपरायण ज्ञानवानों को सर्वप्रथम गौएँ उपलब्ध करायीं, जिन्होंने अपने नीचे दुष्टों का दलन किया, ऐसे मरुद्युक्त इन्द्रदेव की मैत्री की स्थिरता हेतु हम उनका आवाहन करते हैं ॥५॥

१११३. यः शूरेभिर्हव्यो यश्च भीरुभिर्यो धावद्भिर्हूयते यश्च जिग्युभिः।
इन्द्रं यं विश्वा भुवनाभि संदधुर्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥६॥

जो इन्द्रदेव शूरवीरों और भीरु मानवों, दोनों के द्वारा सहयोग हेतु आवाहित किए जाते हैं, जो संग्राम विजेताओं और पलायनकर्ताओं द्वारा भी बुलाये जाते हैं तथा सम्पूर्ण लोक जिनकी पराक्रम शक्ति के आश्रित हैं, ऐसे मरुतों से युक्त इन्द्रदेव को हम मैत्री के लिए आमंत्रित करते हैं ॥६॥

१११४. रुद्राणामेति प्रदिशा विचक्षणो रुद्रेभिर्योषा तनुते पृथु ज्रयः।
इन्द्रं मनीषा अभ्यर्चति श्रुतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥७॥

जो विवेक सम्पन्न (बुद्धिमान्) इन्द्रदेव रुद्रपुत्र मरुतों की दिशा का अनुगमन करते हैं; मरुतों और देवी उषा के सामंजस्य से अपने विस्तृत प्रसिद्ध तेज को और अधिक विस्तारित करते हैं तथा जिन प्रख्यात इन्द्रदेव की अर्चना मनुष्यों की मेधा सम्पन्न प्रखर वाणी करती है; ऐसे मरुतों से संयुक्त इन्द्रदेव को मित्रता वृद्धि के लिए आमंत्रित करते हैं ॥७॥

११९५. यद्वा मरुत्वः परमे सधस्थे यद्वावमे वृजने मादयासे ।
अत आ याह्यध्वरं नो अच्छा त्वाया हविश्चकृमा सत्यराधः ॥८ ॥

हे मरुतों से युक्त इन्द्रदेव ! आप सर्वश्रेष्ठ दिव्य लोक अथवा अधर स्थित अन्तरिक्ष लोक में जहाँ कहीं भी आनन्द युक्त हों, हमारे इस यज्ञस्थल पर अतिशीघ्र पधारें । हे श्रेष्ठ ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आपकी कृपा के आकांक्षी हम आपके निमित्त यज्ञ में आहुतियाँ प्रदान करते हैं ॥८ ॥

१११६. त्वायेन्द्र सोमं सुषुमा सुदक्ष त्वाया हविश्चकृमा ब्रह्मवाहः ।
अधा नियुत्वः सगणो मरुद्भिरस्मिन्यज्ञे बर्हिषि मादयस्व ॥९ ॥

दक्षता सम्पन्न हे श्रेष्ठ इन्द्रदेव ! आपके निमित्त ही हम सोम निष्पादित करते हैं । हे स्तोत्रों द्वारा प्राप्त होने योग्य इन्द्रदेव ! आपके लिए ही हम हवि प्रदान करते हैं । हे अश्वों से युक्त इन्द्रदेव ! मरुद्गणों सहित इस यज्ञ में आकर विराजमान हों और सोमपान से आनन्दित हों ॥९ ॥

१११७. मादयस्व हरिभिर्ये त इन्द्र वि ष्यस्व शिप्रे वि सृजस्व धेने ।
आ त्वा सुशिप्र हरयो वहन्तूशन्हव्यानि प्रति नो जुषस्व ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! अश्वों के साथ प्रसन्नता को प्राप्त करें, अपने जबड़ों को खोलकर सुखद ध्वनि करें । हे श्रेष्ठ शिरस्त्राण धारण करने वाले इन्द्रदेव ! रथ खींचने वाले घोड़े आपको हमारे समीप ले आयें । अभीष्ट पूरक इन्द्रदेव आप हमारी आहुतियों को प्रेम पूर्वक ग्रहण करें ॥१० ॥

१११८. मरुत्स्तोत्रस्य वृजनस्य गोपा वयमिन्द्रेण सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥११ ॥

मरुद्गणों की स्तुतियों से प्रशंसित, शत्रु संहारक इन्द्रदेव द्वारा संरक्षित हमें उनके (इन्द्रदेव के) सहयोग से अन्न की प्राप्ति हो । अतएव मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और दिव्यलोक सभी हमें सहयोग प्रदान करें ॥११ ॥

[सूक्त -१०२]

[ऋषि - कुत्स आङ्गिरस । देवता-इन्द्र । छन्द-जगती, ११-त्रिष्टुप् ।]

१११९. इमां ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत्त आनजे ।
तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्नु ॥१ ॥

हे महान् यशस्वी इन्द्रदेव ! आप शत्रुओं को पराजित करके उन्नति को प्राप्त करने वाले हैं। हम उत्तम स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं। उत्साही देवगण अपने धनों की वृद्धि व रक्षा के लिए आपको प्रसन्न करते हैं ॥१ ॥

११२०. अस्य श्रवो नद्यः सप्त बिभ्रति द्यावाक्षामा पृथिवी दर्शतं वपुः ।
अस्मे सूर्याचन्द्रमसाभिचक्षे श्रद्धे कमिन्द्र चरतो वितर्तुरम् ॥२ ॥

इन इन्द्रदेव के कर्तृत्व (जल वर्षण) की कीर्ति को सप्तसरितायें (नदियाँ) तथा मनोहारी रूप को पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्गलोक धारण करते हैं । हे इन्द्रदेव ! आपकी तेजस्विता से प्रकाशित होकर सूर्यदेव और चन्द्रमा प्राणिमात्र को श्रद्धा युक्त ज्ञान एवं आलोक देने के लिए नियमपूर्वक गतिमान होते हैं ॥२ ॥



११२१. तं स्मा रथं मघवन्प्राव सातये जैत्रं यं ते अनुमदाम संगमे ।
आजा न इन्द्र मनसा पुरुष्टुत त्वायद्भ्यो मघवञ्छर्म यच्छ नः ॥३ ॥

हे वैभव सम्पन्न इन्द्रदेव ! आप हमारी विभिन्न प्रकार की प्रार्थनाओं से प्रसन्न हों । आपके जिस विजयी रथ को सेना के साथ , होने वाले संग्राम में देखकर हम आनन्दित होते हैं, उसी रथ को हमारी विजय के लिए प्रेरित करें । हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! आप हमें सुख प्रदान करें ॥३ ॥

११२२. वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे ।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन्वृष्ण्या रुज ॥४ ॥

हे ऐश्वर्य सम्पन्न इन्द्रदेव ! आपके सहयोग से हम घिरे हुए शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें । आप प्रत्येक संग्राम में हमारे पक्ष की सुरक्षा करें, आप हमारे शत्रुओं की सामर्थ्य को क्षीण करें, जिससे हम प्राप्त धन का निर्विघ्न होकर उपभोग करने में समर्थ हों ॥४ ॥

११२३. नाना हि त्वा हवमाना जना इमे धनानां धर्तरवसा विपन्यवः ।
अस्माकं स्मा रथमा तिष्ठ सातये जैत्रं हीन्द्र निभृतं मनस्तव ॥५ ॥

धन को धारण करने वाले हे इन्द्रदेव । आपके आवाहनकर्त्ता और स्तोता अनेक मनुष्य हैं । अतएव आप सम्पत्ति प्रदान करने के लिए मात्र हमारे ही रथ पर आकर विराजमान हों । स्थिरतायुक्त आपका मन हमें विजयी बनाने में पूर्ण सक्षम हो ॥५ ॥

११२४. गोजिता बाहू अमितक्रतुः सिमः कर्मन्कर्मञ्छतमूतिः खजङ्करः ।
अकल्प इन्द्रः प्रतिमानमोजसाथा जना वि ह्वयन्ते सिषासवः ॥६ ॥

बलवान् इन्द्रदेव की भुजाएँ गौओं को जीतने में सक्षम हैं । वे श्रेष्ठ इन्द्रदेव प्रत्येक कर्म में संरक्षण साधनों से सम्पन्न हैं । वे अतुलित शक्ति सामर्थ्ययुक्त , संघर्षशील, अद्वितीय पराक्रम की प्रतिमूर्ति हैं । इसलिए धन की कामना से मनुष्य उनका आवाहन करते हैं ॥६ ॥

११२५. उत्ते शतान्मघवन्नुच्च भूयस उत्सहस्राद्रिरिचे कृष्टिषु श्रवः ।
अमात्रं त्वा धिषणा तित्विषे मह्यधा वृत्राणि जिघ्नसे पुरन्दर ॥७ ॥

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! मनुष्यों में आपकी कीर्ति सैकड़ों और हजारों रूपों से भी बढ़कर है । मनुष्यों की बृहत् प्रार्थनाएँ, अतुलित शक्तिशाली इन्द्रदेव की महिमा को प्रकट करती हैं । अभेद्य दुर्गों को तोड़ने में समर्थ हे इन्द्रदेव ! आप वृत्रों (शत्रुओं) का हनन करने में समर्थ हैं ॥७ ॥

११२६. त्रिविष्टिधातु प्रतिमानमोजसस्तिस्रो भूमीर्नृपते त्रीणि रोचना ।
अतीदं विश्वं भुवनं ववक्षिथाशत्रुरिन्द्र जनुषा सनादसि ॥८ ॥

हे मनुष्यों के संरक्षक इन्द्रदेव ! आप तीनों लोकों में तीन रूपों सूर्य, अग्नि और विद्युत् में स्थित हैं, आप अपनी शक्ति सामर्थ्य से तीन भूमियों, तीन तेजों तथा इन सम्पूर्ण लोकों को संचालित कर रहे हैं । आप प्राचीन काल से (जन्म के समय से) ही शत्रुरहित हैं ॥८ ॥

११२७. त्वां देवेषु प्रथमं हवामहे त्वं बभूथ पृतनासु सासहिः ।
सेमं नः कारुमुपमन्युमुद्भिदमिन्द्रः कृणोतु प्रसवे रथं पुरः ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप देवों में सर्वश्रेष्ठ - प्रधान रूप हैं, हम आपका आह्वान करते हैं । आप युद्धों में शत्रुओं

को पराजित करने वाले हैं, अति क्रोध युक्त शत्रुओं को भी पीछे धकेलने वाले इस कलापूर्ण रथ को आप सदैव आगे रखें ॥९ ॥

११२८. त्वं जिगेथ न धना रुरोधिथार्भेष्वाजा मघवन्महत्सु च।
त्वामुग्रमवसे सं शिशीमस्यथा न इन्द्र हवनेषु चोदय ॥१० ॥

हे धनवान् इन्द्रदेव ! आप शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने पर, धनों को अपने तक सीमित नहीं रखते, (अर्थात् संग्रह नहीं करते , सत्पात्रों को बाँट देते हैं ।) छोटे और विशाल युद्धों में अपने संरक्षण हेतु योद्धागण इन्द्रदेव को ही बुलाते हैं । अतएव आप हमें उचित मार्गदर्शन प्रदान करें ॥१० ॥

११२९. विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥११ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सदैव हमारे पक्ष के अधिवक्ता हैं । हम भी द्वेष पूर्ण व्यवहार से रहित होकर अन्नादि प्राप्त करें, इसलिए मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और दिव्यलोक सभी हमें वैभव सम्पदा प्रदान करें ॥११ ॥

[सूक्त -१०३]

[**ऋषि**-कुत्स आङ्गिरस । **देवता**-इन्द्र । **छन्द**-त्रिष्टुप् ।]

११३०. तत्त इन्द्रियं परमं पराचैरधारयन्त कवयः पुरेदम्।
क्षमेदमन्यद्दिव्य१न्यदस्य समी पृच्यते समनेव केतुः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी उस पराक्रम शक्ति को क्रांतदर्शी ज्ञानवानों ने प्राचीनकाल से ही शत्रुओं को पराजित करने वाले कर्मों के रूप में धारण किया था । आपकी दो-प्रकार की शक्तिधाराएँ हैं- एक धारा तो भूलोक में अग्नि रूप में है और दूसरी स्वर्गलोक में सूर्य प्रकाश के रूप में है । युद्ध स्थल पर उल्टी दिशाओं से आती हुई दो पताकाओं की तरह ये दोनों शक्तिधाराएँ अन्तरिक्ष लोक में परस्पर संयुक्त होती हैं ॥१ ॥

११३१. स धारयत्पृथिवीं पप्रथच्च वज्रेण हत्वा निरपः ससर्ज।
अहन्नहिमभिनद्रौहिणं व्यहन्व्यंसं मघवा शचीभिः ॥२ ॥

उन इन्द्रदेव ने पृथ्वी को धारण करके उसका विस्तार किया । वज्र रूपी तीक्ष्ण शक्तिधाराओं से नदी के प्रवाह को अवरुद्ध किये हुए अहि, रौहिण और व्यंसादि दैत्यों का संहार किया, जिससे पुन: अवरुद्ध जलधाराएँ प्रवाहित हुईं ॥२ ॥

११३२. स जातूभर्मा श्रद्दधान ओजः पुरो विभिन्दन्नचरद्वि दासीः।
विद्वान्वज्रिन्दस्यवे हेतिमस्यार्यं सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्र ॥३ ॥

विद्युत् के समान तीक्ष्ण धारवाले आयुधों से युक्त होकर, इन्द्रदेव आत्म-विश्वास के साथ आक्रमण द्वारा दस्युओं के नगरों को ध्वस्त करते हैं, तथा निर्विघ्न होकर विचरण करते हैं । हे ज्ञान सम्पन्न वज्रधारी इन्द्रदेव ! इस स्तोता के शत्रुओं पर भी आयुध फेंकें और आर्यों के बल तथा कीर्ति को बढ़ायें ॥३ ॥

११३३. तदूचुषे मानुषेमा युगानि कीर्तेन्यं मघवा नाम बिभ्रत्।
उपप्रयन्दस्युहत्याय वज्री यद्ध सूनुः श्रवसे नाम दधे ॥४ ॥



शक्ति पुत्र, वज्रधारी इन्द्रदेव ने शत्रु के संहार के लिए आगे बढ़कर जो नाम कमाया, उस प्रशंसनीय 'मघवा' नाम को उन्होंने युगों तक मनुष्यों के लिए धारण किया ॥४ ॥

११३४. तदस्येदं पश्यता भूरि पुष्टं श्रदिन्द्रस्य धत्तन वीर्याय।
स गा अविन्दत्सो अविन्ददश्वान्त्स ओषधीः सो अपः स वनानि ॥५ ॥

उन इन्द्रदेव ने अपनी सामर्थ्य से गौओं, अश्वों, ओषधियों, जलों और वनों को प्राप्त किया । अतः हे मनुष्यो ! आप इन्द्रदेव के इन अत्यन्त पराक्रमपूर्ण कार्यों को देखें और उनकी अद्‌भुत शक्ति के प्रति आत्मविश्वास जगायें ॥५ ॥

११३५. भूरिकर्मणे वृषभाय वृष्णे सत्यशुष्माय सुनवाम सोमम्।
य आदृत्या परिपन्थीव शूरोऽयज्वनो विभजन्नेति वेदः ॥६ ॥

जो शक्तिशाली इन्द्रदेव लालची दुष्टों, लुटेरों द्वारा एकत्रित किये गये धनों का तथा यज्ञीय कर्मों से रहित राक्षसी वृत्ति से युक्त दैत्यों के धनों का हस्तान्तरण करके ज्ञानियों को सम्मानित करते हैं, अर्थात् दुष्ट जनों से प्राप्त धन को श्रेष्ठ जनों में वितरित कर देते हैं, ऐसे श्रेष्ठ कर्म सम्पन्न करने वाले महान् दाता और सत्यबल सम्पन्न इन्द्रदेव के लिए हम सोम तैयार करें ॥६ ॥

११३६. तदिन्द्र प्रेव वीर्यं चकर्थ यत्ससन्तं वज्रेणाबोधयोऽहिम्।
अनु त्वा पत्नीर्हृषितं वयश्च विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने सोते हुए वृत्र को वज्र के प्रहार से जगाया अर्थात् पराभूत किया । वस्तुतः यह आपका परमशौर्य है । ऐसे में आपको आनन्दित देखकर सभी देवताओं ने अपनी पत्नियों के साथ अतिहर्ष अनुभव किया ॥७ ॥

११३७. शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रमिन्द्र यदावधीर्वि पुरः शम्बरस्य।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! जब आपने शुष्ण, पिप्रु, कुयव और वृत्र का हनन किया और शम्बरासुर के गढ़ों को धूलिधूसरित किया (तोड़ा) तो मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और दिव्यलोक हमारे उत्साह को भी संवर्धित करें ॥८ ॥

[सूक्त - १०४]

[ऋषि- कुत्स आङ्गिरस । देवता-इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

११३८. योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारि तमा नि षीद स्वानो नार्वा।
विमुच्या वयोऽवसायाश्वान्दोषा वस्तोर्वहीयसः प्रपित्वे ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमने आपके लिए श्रेष्ठ स्थान निर्धारित किया है । रथ वाहक अश्वों को उनके बन्धनों से मुक्त करके, हिनहिनाते हुए घोड़ों के साथ रात-दिन चलकर यज्ञस्थल में निर्धारित आसन पर विराजमान हों ॥१ ॥

११३९. ओ त्ये नर इन्द्रमूतये गुर्नू चित्तान्त्सद्यो अध्वनो जगम्यात्।
देवासो मन्युं दासस्य श्चम्नन्ते न आ वक्षन्त्सुविताय वर्णम् ॥२ ॥

सुरक्षा की भावना से प्रेरित होकर अपने समीप आये हुए मनुष्यों को इन्द्रदेव ने शीघ्र ही श्रेष्ठ मार्गदर्शन दिया । देवशक्तियाँ दुष्कर्मियों की क्रोध भावना को समाप्त करें । वे यज्ञीय कार्य के निमित्त वरण करने योग्य



इन्द्रदेव को हमारे यज्ञ स्थल में आने की प्रेरणा दें ॥२ ॥

११४०. अव त्मना भरते केतवेदा अव त्मना भरते फेनमुदन्।
क्षीरेण स्नातः कुयवस्य योषे हते ते स्यातां प्रवणे शिफायाः ॥३ ॥

कुयव राक्षस (कुधान्य-हीन संस्कार युक्त अन्न खाने से उत्पन्न बल) धन का मर्म समझकर अपने लिए ही उसका अपहरण करता है। फेनयुक्त जल (प्रवाहमान रसों) को भी अपने हीन उद्देश्यों के लिए रोकता है। ऐसे कुयव राक्षस की दोनों पत्नियाँ (विचार शक्ति एवं कार्य शक्ति) शिफा नाम की नदी की धार अथवा (कोड़ों की मार) से मर जायें ॥३ ॥

११४१. युयोप नाभिरुपरस्यायोः प्र पूर्वाभिस्तिरते राष्टि शूरः।
अञ्जसी कुलिशी वीरपत्नी पयो हिन्वाना उदभिर्भरन्ते ॥४ ॥

इस कुयव राक्षस (कुधान्य से उत्पन्न प्रवृत्ति) की शक्ति जल की नाभि (रसानुभूति) में छिपी है। अपहृत जल (शोषण से मिलने वाले सुख) से यह वीर तेजस्वी बनता है। अञ्जसी (गुणवती) तथा कुलिशी (शस्त्र सम्पन्न) इसकी दोनों वीर पत्नियाँ (विचार और कार्यशक्ति) जलों (सुखकर प्रवाहों) से भरती—तृप्त करती रहती हैं ॥४ ॥

११४२. प्रति यत्स्या नीथादर्शि दस्योरोको नाच्छा सदनं जानती गात्।
अध स्मा नो मघवञ्चर्कृतादिन्मा नो मघेव निष्षपी परा दाः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव !जैसे गौएँ अपने मार्ग से परिचित रहती हुईं अपने गोष्ठ में पहुँच जाती हैं, वैसे ही दुष्टों (दुष्ट - प्रवृत्तियों) ने हमारे आवास को जान लिया, अतएव हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! राक्षसी उपद्रवों से हमारी सुरक्षा करें। जिस प्रकार व्यभिचारी पुरुष धन का अपव्यय करता है, उसी प्रकार आप हमें त्याग न दें ॥५ ॥

११४३. स त्वं न इन्द्र सूर्ये सो अप्स्वनागास्त्व आ भज जीवशंसे।
मान्तरां भुजमा रीरिषो नः श्रद्धितं ते महत इन्द्रियाय ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे लिए सूर्यप्रकाश और जल उपलब्ध करायें। हम इन दोनों पदार्थों से कभी पृथक् न रहें। सम्पूर्ण प्राणियों के लिए कल्याणकारी पाप रहित मार्ग का हम सदैव अनुसरण करें। आप हमारी गर्भस्थ संतान को पीड़ित न करें। हमें आपकी सामर्थ्य-शक्ति पर पूर्ण विश्वास है ॥६ ॥

११४४. अधा मन्ये श्रत्ते अस्मा अधायि वृषा चोदस्व महते धनाय।
मा नो अकृते पुरुहूत योनाविन्द्र क्षुध्यद्भ्यो वय आसुतिं दाः ॥७ ॥

हे शक्ति सम्पन्न, अति स्तुत्य इन्द्रदेव ! हम आपके प्रति सम्मानास्पद भावना रखते हैं। आपके इस बल के प्रति हम श्रद्धावान् हैं। हमें आप वैभव प्राप्ति हेतु प्रेरणा प्रदान करें। हमें कभी ऐसे स्थानों पर न रखें जो धनों से रहित हों। अतः ऐश्वर्य सम्पन्न होकर भूख प्यास से पीड़ित लोगों को खाद्य और पेय प्रदान करें ॥७ ॥

११४५. मा नो वधीरिन्द्र मा परा दा मा नः प्रिया भोजनानि प्र मोषीः।
आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भेन्मा नः पात्रा भेत्सहजानुषाणि ॥८ ॥

हे ऐश्वर्यसम्पन्न, सर्व समर्थ इन्द्रदेव ! आप हमारी हिंसा न करें और न हमारा त्याग करें। हमारे आहार के लिए उपयुक्त एवं प्रिय पदार्थों को विनष्ट न करें, हमारी गर्भस्थ संततियों को विनष्ट न करें तथा छोटे शिशुओं को भी अकाल मृत्यु से बचायें ॥८ ॥



११४६. अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहुरयं सुतस्तस्य पिबा मदाय।

उरुव्यचा जठर आ वृषस्व पितेव नः शृणुहि हूयमानः ॥९ ॥

हे सोमाभिलाषी इन्द्रदेव ! आप हमारे सम्मुख प्रस्तुत हों, यह निष्पादित सोम आपके निमित्त है, इसे आनन्दपूर्वक सेवन करके स्वयं को तृप्त करें तथा आवाहन किये जाने पर हमारी प्रार्थनाओं को पिता के समान ही सुनने की कृपा करें ॥९ ॥

[सूक्त - १०५]

[**ऋषि**- त्रित आप्त्य अथवा कुत्स आङ्गिरस । **देवता**- विश्वेदेवा । **छन्द** -त्रिष्टुप् ।]

११४७. चन्द्रमा अप्स्व१न्तरा सुपर्णो धावते दिवि।

न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१ ॥

अन्तरिक्ष में चन्द्रमा तथा द्युलोक में सूर्य दौड़ रहे हैं। (हे विज्ञपुरुषो !) तुम्हारा स्तर सुनहरी धार वाली विद्युत् को जानने योग्य नहीं है। हे द्युलोक एवं भूलोक ! आप हमारे भावों को समझें। (हमें उनका बोध करने की सामर्थ्य प्रदान करें) ॥१ ॥

[(क) वेद ने अन्तरिक्ष को अप्सुअन्तः, जल क्षेत्र का अंत कहा है। वर्तमान विज्ञान के अनुसार पृथ्वी के वायु मण्डल की सीमा तक जलवाष्प है, उसी के कारण आकाश नीला दिखता है। वायुमण्डल के बाहर निकलने पर आकाश नीला नहीं दिखता है। पृथ्वी का प्रभाव क्षेत्र वायुमण्डल तक ही है, उसके बाद अन्तरिक्ष प्रारम्भ होता है। इसीलिए अन्तरिक्ष को अप्सुअन्तः कहा गया है। (ख) चन्द्रमा अन्तरिक्ष में है तथा सूर्य उससे ऊपर द्युलोक में है, यह तथ्य ऋषि देखते रहे हैं। (ग) द्युलोक एवं पृथ्वी से प्रार्थना की गयी है कि जिन सूक्ष्म प्रवाहों को हम नहीं जान पाते, उनका भी लाभ हमें प्रदान करें।]

११४८. अर्थमिद्वा उ अर्थिन आ जाया युवते पतिम्।

तुञ्जाते वृष्ण्यं पयः परिदाय रसं दुहे वित्तं मे अस्य रोदसी ॥२ ॥

उद्देश्य पूर्ण कार्य करने वाले अपने उद्देश्यों को प्राप्त कर लेते हैं। पत्नी उपयुक्त पति को पा लेती है। दोनों मिलकर (उद्देश्य पूर्वक) संतान प्राप्त कर लेते हैं। हे द्युलोक एवं पृथिवी देवि ! आप हमारी भावना समझें (हमारे लिए उत्कृष्ट उत्पादन बढ़ाएँ) ॥२ ॥

११४९. मो षु देवा अदः स्व१रव पादि दिवस्परि।

मा सोम्यस्य शंभुवः शूने भूम कदा चन वित्तं मे अस्य रोदसी ॥३ ॥

हे देवगण ! हमारी तेजस्विता कभी भी स्वर्गलोक से निम्नगामी न हो अर्थात् हमारा लक्ष्य सदा ऊँचा हो। आनन्द प्रदायक सोम से रहित स्थान पर कभी भी हमारा निवास न रहे। हे द्युलोक और भूलोक ! आप हमारी इस प्रार्थना के अभिप्राय को समझें ॥३ ॥

११५०. यज्ञं पृच्छाम्यवमं स तद्दूतो वि वोचति।

क्व ऋतं पूर्व्यं गतं कस्तद्बिभर्ति नूतनो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥४ ॥

हम समुपस्थित यज्ञाग्नि से प्रश्न करते हैं, वे देवदूत अग्निदेव उत्तर दें, कि प्राचीन सरलभाव रूपी शाश्वत नियमों का कहाँ लोप हो गया ? नवीन पुरुष कौन उन प्राचीन नियमों का निर्वाह करते हैं ? हे पृथिवि और द्युलोक ! हमारी इस महत्वपूर्ण जिज्ञासा को जानें और शान्त करें ॥४ ॥



१९५१. अमी ये देवाः स्थन त्रिष्वा रोचने दिवः।

कद्व ऋतं कदनृतं क्व प्रत्ना व आहुतिर्वित्तं मे अस्य रोदसी ॥५ ॥

हे देवो ! तीनों (पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक) में से आपका वास द्युलोक में है। आपका ऋत वास्तविक रूप क्या है ? अनृत (माया युक्त) रूप कहाँ है ? आपने प्रारंभ में (सृजन यज्ञ में) जो आहुति डाली, वह कहाँ है ? द्युलोक एवं पृथ्वी हमारे भावों को समझें (और पूर्ति करें) ॥५ ॥

११५२. कद्व ऋतस्य धर्णसि कद्वरुणस्य चक्षणम्।

कदर्यम्णो महस्पथाति क्रामेम दूढ्यो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥६ ॥

आपके श्रेष्ठ सत्य का निर्वाह करने वाले नियम कहाँ हैं ? वरुण की व्यवस्थादृष्टि कहाँ है ? सर्वश्रेष्ठ अर्यमा के मार्ग कौन-कौन से हैं ? जिससे हम दुष्टजनों से राहत पा सकें। हे द्युलोक और पृथिवि ! हमारी इस जिज्ञासा के अभिप्राय को समझें ॥६ ॥

११५३. अहं सो अस्मि यः पुरा सुते वदामि कानि चित्।

तं मा व्यन्त्याध्यो३ वृको न तृष्णजं मृगं वित्तं मे अस्य रोदसी ॥७ ॥

पिछले यज्ञ में सोमनिष्पादन काल में स्तोत्रों का पाठ हमने किया था, लेकिन अब मानसिक व्यथाएँ भेड़िये द्वारा प्यासे हरिण को खाये जाने के समान ही, हमें व्यथित किये हुए हैं। हे द्यावापृथिवी देवि ! हमारी इन व्यथाओं को समझें और दूर करें ॥७ ॥

११५४. सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः।

मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥८ ॥

दो सौतों (पत्नियों) की तरह हमारे पार्श्व (बाजू) में रहने वाली कामनाएँ हमें सता रही हैं। हे शतक्रतो ! जिस प्रकार चूहे माड़ी लगे धागों को खा जाते हैं, वैसे ही आपकी स्तुति करने वालों को भी मन की पीड़ाएँ सता रही हैं। हे द्यावापृथिवी देवि ! हमारी इन व्यथाओं को समझें और दूर करें ॥८ ॥

११५५. अमी ये सप्त रश्मयस्तत्रा मे नाभिरातता।

त्रितस्तद्वेदाप्त्यः स जामित्वाय रेभति वित्तं मे अस्य रोदसी ॥९ ॥

ये सात रंगो वाली सूर्य की किरणें जहाँ तक हैं, वहाँ तक हमारा नाभि क्षेत्र (पैतृक प्रभाव) फैला है। इसका ज्ञान जल के पुत्र 'त्रित' को है। अतएव प्रीतियुक्त मैत्री भाव हेतु हम प्रार्थना करते हैं। हे द्यावापृथिवि! आप हमारी इन प्रार्थनाओं के अभिप्राय को समझें ॥९ ॥

११५६. अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिवः।

देवत्रा नु प्रवाच्यं सध्रीचीना नि वावृतुर्वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१० ॥

(कामनाओं) की वर्षा करने वाले ये पाँच शक्तिशाली देव (अग्नि, सूर्य, वायु, चन्द्रमा और विद्युत्) विस्तृत द्युलोक में स्थित हैं। देवों में प्रशंसनीय ये देवगण आवाहन करते ही पूजा ग्रहण करने के लिए उपस्थित हो जाते हैं। इसके बाद तृप्त होकर अपने स्थान पर लौट जाते हैं। अर्थात् मन के साथ ये इन्द्रियाँ भी उपासना में तल्लीन हो जाती हैं। हे द्युलोक और पृथिवि ! आप हमारी इस प्रार्थना के अभिप्राय को जानें ॥१० ॥



११५७. सुपर्णा एत आसते मध्य आरोधने दिवः ।
ते सेधन्ति पथो वृकं तरन्तं यह्वतीरपो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥११ ॥

यह जो उत्तम पंख (किरणों) वाला पक्षी (सूर्य) दिव्यलोक के मध्य भाग में स्थित है, व्यापक जल रूपी रात्रि (अज्ञानान्धकार) में तैरने वाले (मनुष्य) को, प्रकाश (ज्ञान) का मार्ग प्रशस्त कर भेड़ियों (काम, क्रोध, लोभ आदि) से बचाये । हे द्यावापृथिवि !आप हमारी इस प्रार्थना पर ध्यान दें ॥११ ॥

[मनुष्य भव सागर में तैर रहा है । अज्ञान रूपी क्रूर भेड़िया उसे खा जाना चाहता है, ज्ञान रश्मियाँ क्रूर अज्ञान का निवारण करके मनुष्य को भयमुक्त करती हैं ।]

११५८. नव्यं तदुक्थ्यं हितं देवासः सुप्रवाचनम् ।
ऋतमर्षन्ति सिन्धवः सत्यं तातान सूर्यो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१२ ॥

हे देवो ! ये नवीन स्तोत्र प्रशंसनीय, गाने योग्य और कल्याणकारक हैं । नदियाँ ऋतु (दिव्य अनुशासन) के अनुरूप चलने के लिए प्रेरित करती हैं और सूर्य देव सत्य के उद्घोषक हैं । हे द्यावापृथिवी देवि ! हमारी प्रार्थना के अभिप्राय को समझें ॥१२ ॥

११५९. अग्ने तव त्यदुक्थ्यं देवेष्वस्त्याप्यम् ।
स नः सत्तो मनुष्वदा देवान्यक्षि विदुष्टरो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१३ ॥

हे अग्निदेव ! देवताओं के साथ आपका बन्धुत्व भाव प्रशंसनीय है । ऐसे विशिष्ट ज्ञान सम्पन्न आप मनुष्यों के समान हमारे यज्ञ में पधारकर, देवताओं को हमारे यज्ञ में आवाहित करें । हे द्यावापृथिवी देवि ! आप हमारी प्रार्थना के अभिप्राय को समझें ॥१३ ॥

११६०. सत्तो होता मनुष्वदा देवाँ अच्छा विदुष्टरः ।
अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१४ ॥

मनुष्यों के समान यज्ञ में विराजमान, ज्ञानवान् होता और देवताओं में विशिष्ट ज्ञान सम्पन्न वे अग्निदेव देवों के लिए हविष्यान्न पहुँचाते हैं । हे द्युलोक व पृथिवी देवि ! हमारे इस जिज्ञासा भाव को समझें ॥१४ ॥

११६१. ब्रह्मा कृणोति वरुणो गातुविदं तमीमहे ।
व्यूर्णोति हृदा मतिं नव्यो जायतामृतं वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१५ ॥

मंत्र रूपी स्तोत्रों की रचना वरुणदेव करते हैं । हम स्तुति मंत्रों से मार्गदर्शक प्रभु की प्रार्थना करते हैं । वे हृदय से सद्‌बुद्धि को प्रकट कर देते हैं, जिससे नवीन सत्य का मार्ग प्रशस्त होता है । हे द्यावापृथिवी देवि ! आप हमारी इस प्रार्थना पर ध्यान दें ॥१५ ॥

११६२. असौ यः पन्था आदित्यो दिवि प्रवाच्यं कृतः ।
न स देवा अतिक्रमे तं मर्तासो न पश्यथ वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१६ ॥

हे देवो ! यह जो सूर्यदेव का प्रकाशरूपी मार्ग , दिव्य लोक में स्तुतियों के योग्य है , उसका उल्लंघन आपके लिए उपयुक्त नहीं । हे मनुष्यो ! वह मार्ग सर्व साधारण की पहुँच से बाहर है । हे पृथिवी देवि ! आप हमारी प्रार्थना के अभिप्राय को समझें (उस मार्ग का बोध करायें) ॥ १६ ॥

११६३. त्रितः कूपेऽवहितो देवान्हवत ऊतये ।
तच्छुश्राव बृहस्पतिः कृण्वन्नंहूरणादुरु वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१७ ॥



पाप रूपी कुएँ में गिरे हुए 'त्रित' ने अपनी सुरक्षा के लिए देवताओं का आवाहन किया। ज्ञान रूपी बृहस्पतिदेव ने उसकी प्रार्थना को सुनकर, 'त्रित' को पाप रूपी कुएँ से निकालकर कष्टों से मुक्ति पाने का व्यापक मार्ग खोल दिया। हे द्युलोक और पृथिवी देवि ! आप हमारी इस प्रार्थना पर ध्यान दें ॥१७॥

११६४. अरुणो मा सकृद्वृकः पथा यन्तं ददर्श हि।
उज्जिहीते निचाय्या तष्टेव पृष्ट्यामयी वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१८॥

पीठ के रोगी बढ़ई की तरह (टेढ़ा) चन्द्रमा अपने मार्ग पर चलता हुआ हमें नित्य देखता है। वह नीचे की ओर जाकर (अस्त होकर) पुनः उदित होता है। हे द्यावापृथिवी देवि ! आप हमारी इस स्थिति पर ध्यान दें ॥१८॥

११६५. एनाङ्गूषेण वयमिन्द्रवन्तोऽभि ष्याम वृजने सर्ववीराः।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥१९॥

इन्द्रदेव तथा सभी वीर पुरुषों से युक्त होकर हम इस स्तोत्र से संग्राम में शत्रुओं को पराजित करें। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और द्युलोक सभी देव हमारे इस स्तोत्र का अनुमोदन करें ॥१९॥

[सूक्त - १०६]

[**ऋषि** - कुत्स आङ्गिरस । **देवता** -विश्वेदेवा । **छन्द**-जगती, ७ त्रिष्टुप् ।]

११६६. इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमूतये मारुतं शर्धो अदितिं हवामहे।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥१॥

हम सभी अपने संरक्षणार्थ इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, मरुद्गण और अदिति का आवाहन करते हैं। हे श्रेष्ठ, धनदाता वसुओ ! आप जिस प्रकार रथ को दुर्गम मार्ग से निकालते हैं,वैसे ही सम्पूर्ण विपदाओं से हमें पार करें ॥१॥

११६७. त आदित्या आ गता सर्वतातये भूत देवा वृत्रतूर्येषु शम्भुवः।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥२॥

हे आदित्यगणो ! आप सभी हमारे अभीष्ट यज्ञ में आगमन करें। असुर संहारक युद्धों में हमारे लिए सुखप्रद हों। हे श्रेष्ठ दानदाता वसुदेवो ! सभी विपदाओं से हमें आप उसी प्रकार पार करें, जैसे दुर्गम मार्ग से रथ को सावधानी पूर्वक निकालते हैं ॥२॥

११६८. अवन्तु नः पितरः सुप्रवाचना उत देवी देवपुत्रे ऋतावृधा।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥३॥

श्रेष्ठ प्रशंसनीय सभी पितर और सत्य संवर्धक देवमाताएँ हमारी संरक्षक हों। हे श्रेष्ठ दानदाता वसुदेवो ! आप रथ को दुर्गम मार्ग से निकालने की तरह ही सभी संकटों से हमें बाहर निकालें ॥३॥

११६९. नराशंसं वाजिनं वाजयन्निह क्षयद्वीरं पूषणं सुम्नैरीमहे।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥४॥

मनुष्यों द्वारा प्रशंसित, बलवान्-वीर की शक्ति को संवर्धित करने वाले, वीरों के स्वामी पूषादेव की हम श्रेष्ठ मनोभावनाओं द्वारा स्तुति करते हैं। हे श्रेष्ठदानदाता वसुदेवो ! आप रथ को दुर्गम मार्ग से निकालने के समान ही सभी संकटों से हमें सुरक्षित करें ॥४॥



११७०. बृहस्पते सदमिन्नः सुगं कृधि शं योर्यत्ते मनुर्हितं तदीमहे ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥५ ॥

हे बृहस्पते !हमारे मार्ग सदैव सर्वसुलभ करें । आपके पास जो मनुष्यों के कल्याणकारी, श्रेष्ठ, सुखप्रदायक और दु:ख निवारक साधन हैं, वही हमारी कामना है । हे श्रेष्ठ दानदाता वसुदेवो ! आप रथ को दुर्गम मार्ग से निकालने के समान ही सभी संकटों से हमें संरक्षित करें ॥ ५ ॥

११७१. इन्द्रं कुत्सो वृत्रहणं शचीपतिं काटे निबाळ्ह ऋषिरह्वदूतये ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥६ ॥

पाप रूपी कुएँ में गिरे हुए कुत्स ऋषि ने शत्रु संहारक और सामर्थ्यवान् इन्द्रदेव को आवाहित किया । हे श्रेष्ठ दानदाता वसुदेवो ! रथ को कठिन मार्ग से वहन करने की तरह ही आप सभी पापों से हमें निवृत्त करें ॥६ ॥

११७२. देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥७ ॥

देवमाता अदिति, देव समूह के साथ हमे संरक्षित करें । संरक्षण साधनों से युक्त अन्य देवगण भी आलस्य रहित होकर हमारी सुरक्षा करें । हमारी इस प्रार्थना को मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और द्युलोक आदि देवगण स्वीकार करें ॥७ ॥

[सूक्त- १०७]

[**ऋषि**- कुत्स आङ्गिरस । **देवता**- विश्वेदेवा । **छन्द**- त्रिष्टुप् ।]

११७३. यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृळयन्तः ।
आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादंहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत् ॥१ ॥

यज्ञ देवगणों के लिए सुखदायक हैं । हे आदित्यगण ! आप हमारे लिए कल्याणकारी हों । आपकी श्रेष्ठ विवेकशील प्रेरणा हमें प्राप्त हो , जो हमें कष्टों से संरक्षित करते हुए श्रेष्ठ सम्पदा प्रदान करे ॥१ ॥

११७४. उप नो देवा अवसा गमन्त्वङ्गिरसां सामभिः स्तूयमानाः ।
इन्द्र इन्द्रियैर्मरुतो मरुद्भिरादित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत् ॥२ ॥

अंगिराओं के सामों (गेय मंत्रों) से प्रशंसित हुए सभी देवता संरक्षण साधनों से युक्त होकर हमारे यहाँ आगमन करें । इन्द्रदेव अपनी शक्ति सामर्थ्यों, मरुत् अपने वीरों तथा अदिति अपनी आदित्य शक्तियों के सहित हमें सुख प्रदान करें ॥२ ॥

११७५. तन्न इन्द्रस्तद्वरुणस्तदग्निस्तदर्यमा तत्सविता चनो धात् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥३ ॥

इन्द्र, वरुण, अग्नि, अर्यमा और सूर्य देवगण हमारे लिए मधुर अन्न प्रदान करें । हमारी कामना को मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और द्युलोक आदि देव अनुमोदित करें ॥३ ॥



[सूक्त - १०८]

[ऋषि-कुत्स आङ्गिरस । देवता- इन्द्राग्नी । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

११७६. य इन्द्राग्नी चित्रतमो रथो वामभि विश्वानि भुवनानि चष्टे ।
तेना यातं सरथं तस्थिवांसाथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥१ ॥

हे इन्द्राग्नि ! आपका जो अद्भुत रथ सभी लोकों को देखता हैं । उस रथ में दोनों एक साथ बैठकर हमारे यहाँ पधारें और अभिषुत सोमरस का पान करें ॥१ ॥

११७७. यावदिदं भुवनं विश्वमस्त्युरुव्यचा वरिमता गभीरम् ।
तावाँ अयं पातवे सोमो अस्त्वरमिन्द्राग्नी मनसे युवभ्याम् ॥२ ॥

यह सम्पूर्ण विश्व जितना विशाल, श्रेष्ठ और गाम्भीर्य युक्त है, हे इन्द्राग्नि ! आपके सेवन के लिए निष्पादित सोमरस उतना ही प्रभावशाली होकर प्रचुर मात्रा में प्राप्त हो ॥२ ॥

११७८. चक्राथे हि सध्र्यङ्नाम भद्रं सध्रीचीना वृत्रहणा उत स्थः ।
ताविन्द्राग्नी सध्र्यञ्चा निषद्या वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ॥३ ॥

हे इन्द्राग्नि ! आपकी संयुक्त शक्ति विशेष कल्याणकारी है । हे वृत्रहन्ताओ ! आप संयुक्त रूप में ही वास करते हैं । हे शक्ति सम्पन्न वीरो ! आप दोनों एक साथ बैठकर सोमरस पान द्वारा अपनी शक्ति को बढ़ायें ॥३ ॥

११७९. समिद्धेष्वग्निष्वानजाना यतस्रुचा बर्हिरु तिस्तिराणा ।
तीव्रैः सोमैः परिषिक्तेभिरर्वागेन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ॥४ ॥

यज्ञ में यज्ञाग्नि प्रज्वलित होने पर जिनके निमित्त आहुतियाँ प्रदान करने के लिए घृतयुक्त चमसों (पात्रों) को भरकर रखा गया है, तथा कुशाओं के आसन बिछाये गये हैं, ऐसे हे इन्दाग्नि ! जो तीक्ष्ण सोमरस जल मिलाकर तैयार है,उसके सेवन हेतु आप हमारे यज्ञ में पधारें ॥४ ॥

११८०. यानीन्द्राग्नी चक्रथुर्वीर्याणि यानि रूपाण्युत वृष्ण्यानि ।
या वां प्रत्नानि सख्या शिवानि तेभिः सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥५ ॥

हे इन्द्राग्नि ! शक्ति के परिचायक जिन कर्मों को आपने सम्पादित किया, जिन रूपों को शक्ति के प्रदर्शन के समय आपने प्रकट किया तथा आपके जो प्राचीन समय से प्रचलित कल्याणकारी मित्र भावना के प्रेरक कर्म हैं, उनका ध्यान रखते हुए सोमरस पान के लिए यहाँ पधारें ॥५ ॥

११८१. यदब्रवं प्रथमं वां वृणानो ३ऽयं सोमो असुरैर्नो विहव्यः ।
तां सत्यां श्रद्धामभ्या हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥६ ॥

सर्वप्रथम आप दोनों की इच्छा को ध्यान में रखते हुए ही हमने कहा था कि याज्ञिकों ने ये हमारा सोमरस आपके निमित्त ही निष्पन्न किया है, इसलिए हमारी हार्दिक श्रद्धानुसार आप दोनों हमारे यज्ञ में आयें तथा निष्पन्न सोमरस का सेवन करें ॥६ ॥

११८२. यदिन्द्राग्नी मदथः स्वे दुरोणे यद् ब्रह्मणि राजनि वा यजत्रा ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव और यज्ञाग्ने ! यजमान के गृह, ज्ञान सम्पन्न साधक की वाणी अथवा राजगृह में जहाँ भी आप आनन्दयुक्त रहते हों, उन स्थानों से आप हमारे यज्ञ में आयें । इस अभिषुत सोमरस का पान करें ॥७ ॥



११८३. यदिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु यद् द्रुह्युष्वनुषु पूरुषु स्थः ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥८ ॥

हे इन्द्राग्नि ! आप दोनों, यदुओं, तुर्वशों, द्रुह्यों, अनुओं और पुरुओं के यज्ञों में विद्यमान हों तो वहाँ से भी (हे सामर्थ्यवान् देवो !) हमारे यज्ञ में आएँ और निष्पादित सोमरस का पान करें ॥ ८ ॥।

११८४. यदिन्द्राग्नी अवमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यां परमस्यामुत स्थः ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥९ ॥

हे सामर्थ्यवान् इन्द्राग्नि ! आप दोनों ऊपर, नीचे या मध्य में जहाँ भी पृथ्वी के जिस किसी भाग में भी स्थित हों, इस यज्ञ में आकर सोमरस का पान अवश्य करें ॥९ ॥

११८५. यदिन्द्राग्नी परमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यामवमस्यामुत स्थः ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥१० ॥

हे सामर्थ्यवान् इन्द्रदेव और अग्निदेव ! आप ऊपरी स्वर्गलोक, अन्तरिक्ष लोक, मध्य लोक तथा नीचे के भूभाग में जहाँ भी हों, हमारे यज्ञ में आकर सोमरस का पान करें ॥१० ॥

११८६. यदिन्द्राग्नी दिवि ष्ठो यत्पृथिव्यां यत्पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥११ ॥

हे बलशाली इन्द्राग्नि ! आप दोनों द्युलोक, पृथ्वी ,पर्वतों, औषधियों अथवा जलों में भी जहाँ विद्यमान हों, वहाँ से हमारे यज्ञ में निष्पादित सोमपान के लिए आगमन करें ॥११ ॥

११८७. यदिन्द्राग्नी उदिता सूर्यस्य मध्ये दिवः स्वधया मादयेथे ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥१२ ॥

हे सामर्थ्य सम्पन्न इन्द्राग्नि ! आप दोनों स्वर्गलोक के बीच में, सूर्योदय की वेला में हों, अथवा अन्न सेवन (विश्राम) का आनन्द ले रहे हों, ऐसे में भी आप दोनों हमारे यज्ञ में आकर सोमरस का पान करें ॥ १२ ॥

११८८. एवेन्द्राग्नी पपिवांसा सुतस्य विश्वास्मभ्यं सं जयतं धनानि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥१३ ॥

हे सामर्थ्यवान् इन्द्राग्नि ! आप दोनों सोमरस के पान से हर्षित होकर सभी प्रकार की सम्पदाओं को जीतकर हमें प्रदान करें । हमारी अभीष्ट कामना पूर्ति में मित्र, वरुण, अदिति, पृथ्वी, और दिव्यलोक के सभी देव सहायक हों ॥१३ ॥

[सूक्त - १०९]

[**ऋषि**- कुत्स आङ्गिरस । **देवता**- इन्द्राग्नी । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

११८९. वि ह्यख्यं मनसा वस्य इच्छन्निन्द्राग्नी ज्ञास उत वा सजातान् ।
नान्या युवत्प्रमतिरस्ति मह्यं स वां धियं वाजयन्तीमतक्षम् ॥१ ॥

हे इन्द्राग्नि ! अभीष्ट कामना पूर्ति हेतु किन्हीं ज्ञानवान् एवं अनुकूल स्वभाव वाले बन्धुओं की खोज का हमारा विचार है । हमारे और आपके मध्य कोई विचार भिन्नता नहीं, अतएव आपकी सामर्थ्य, शक्ति, प्रभाव एवं क्षमता के परिचायक स्तोत्रों की हम रचना करते हैं ॥१ ॥

११९०. अश्रवं हि भूरिदावत्तरा वां विजामातुरुत वा घा स्यालात्।
अथा सोमस्य प्रयती युवभ्यामिन्द्राग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम् ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव और अग्निदेव !(श्वसुर द्वारा) जमाता और शाले (द्वारा बहनोई को दिये जाने वाले दान) से भी अधिक दान देने में आप समर्थ हैं, ऐसा हमें ज्ञात हुआ है ।अतएव आप दोनों के निमित्त सोमरस भेंट करते हुए नवीन स्तोत्र की रचना करते हैं ॥२ ॥

११९१. मा च्छेद्म रश्मींरिति नाधमानाः पितृणां शक्तीरनुयच्छमानाः।
इन्द्राग्निभ्यां कं वृषणो मदन्ति ता ह्यद्री धिषणाया उपस्थे ॥३ ॥

हमारी सन्तान रूपी गृहरश्मियों का हनन न करें । पितरों की शक्ति वंशानुगत (वंशजों में अनुकूलता युक्त) हो, ऐसी प्रार्थना से युक्त हमें, हे सामर्थ्यवान् इन्द्रदेव और अग्निदेव ! कृपा दृष्टि से सुखप्रदायक आनन्द की प्राप्ति हो । इन देवों को सोमरस प्रदान करने के लिए दो पत्थर (सोमरस निकालने का साधन) सोमपात्रों के समीप स्थापित हों ॥३ ॥

११९२. युवाभ्यां देवी धिषणा मदायेन्द्राग्नी सोममुशती सुनोति।
तावश्विना भद्रहस्ता सुपाणी आ धावतं मधुना पृङ्क्तमप्सु ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव और अग्निदेव ! आपकी प्रसन्नता के लिए सोमरस अभिषवण करके दिव्य सोमपात्र पूर्णरूप से भरे हुए स्थापित हैं । हे अश्विनीकुमारो ! उत्तम कल्याणकारी हाथों से युक्त आप दोनों शीघ्र आएँ और मधुर सोमरस को जलों से मिश्रित करें ॥४ ॥

११९३. युवामिन्द्राग्नी वसुनो विभागे तवस्तमा शुश्रव वृत्रहत्ये।
तावासद्या बर्हिषि यज्ञे अस्मिन्प्र चर्षणी मादयेथां सुतस्य ॥५ ॥

हे इन्द्राग्नि ! आप दोनों धन को वितरित करते समय और वृत्र को मारने के समय अति शीघ्रता का परिचय देते हैं, ऐसा हमने सुना है । हे स्फूर्तिवान् देवो ! इस यज्ञ स्थल पर श्रेष्ठ आसन पर विराजमान होकर आप दोनों सोमरस से आनन्द की प्राप्ति करें ॥५ ॥

११९४. प्र चर्षणिभ्यः पृतनाहवेषु प्र पृथिव्या रिरिचाथे दिवश्च।
प्र सिन्धुभ्यः प्र गिरिभ्यो महित्वा प्रेन्द्राग्नी विश्वा भुवनात्यन्या ॥६ ॥

हे इन्द्राग्नि ! युद्ध के लिए बुलाए गये वीर पुरुषों की अपेक्षा आप अधिक बलशाली हैं । पृथ्वी , दिव्यलोक, पर्वत तथा अन्य समस्त लोकों से भी अधिक आप दोनों की प्रभाव क्षमता है ॥६ ॥

११९५. आ भरतं शिक्षतं वज्रबाहू अस्माँ इन्द्राग्नी अवतं शचीभिः।
इमे नु ते रश्मयः सूर्यस्य येभिः सपित्वं पितरो न आसन् ॥७ ॥

वज्र के समान सशक्त भुजाओं से युक्त हे इन्द्राग्नि ! हमारे घरों को धन से भरपूर करें, हमें शिक्षित करें तथा अपने बलों से हमारी सुरक्षा करें । ये वही सूर्य रश्मियाँ हैं,जो हमारे पितरों को भी उपलब्ध थीं ॥७ ॥

११९६. पुरंदरा शिक्षतं वज्रहस्तास्माँ इन्द्राग्नी अवतं भरेषु।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥८ ॥

वज्र से सुशोभित हाथ वाले, शत्रुओं के दुर्ग को ध्वस्त करने वाले हे इन्द्राग्नि ! आप हमें युद्ध विद्या में प्रशिक्षित करें और संग्रामों में हमारा संरक्षण करें । मित्र, वरुण, अदिति, सिंधु, पृथ्वी और द्युलोक सभी हमारी कामना पूर्ति में सहयोगी हों ॥८ ॥



[सूक्त - ११०]

[ऋषि - कुत्स आङ्गिरस। देवता- ऋभुगण। छन्द -जगती, ५, ९ त्रिष्टुप्।]

११९७. ततं मे अपस्तदु तायते पुनः स्वादिष्ठा धीतिरुचथाय शस्यते।
अयं समुद्र इह विश्वदेव्यः स्वाहाकृतस्य समु तृप्णुत ऋभवः ॥१॥

हे ऋभुदेवो ! जो पूजनकृत्य हमने पहले किया था, उसे फिर से सम्पन्न करते हैं। यह मधुर स्तुति देवताओं का गुणगान करती है। समुद्र की तरह विस्तृत गुणवाला सोमरस सम्पूर्ण देवताओं के निमित्त यहाँ स्थिर है। स्वाहा के साथ आप इसे ग्रहण कर संतुष्टि प्राप्त करें ॥१॥

११९८. आभोगयं प्र यदिच्छन्त ऐतनापाकाः प्राञ्चो मम के चिदापयः।
सौधन्वनासश्चरितस्य भूमनागच्छत सवितुर्दाशुषो गृहम् ॥२॥

हे सुधन्वापुत्रो ! अधिक प्राचीन हमारे प्रिय आप्तबन्धु के समान आप जब सुखोपभोग की कामना से आगे बढ़े, तब आप अपने निर्मल चरित्र के प्रभाव से उदार दानी सवितादेव के आश्रय को प्राप्त हुए ॥२॥

११९९. तत्सविता वोऽमृतत्वमासुवदगोह्यं यच्छ्रवयन्त ऐतन।
त्यं चिच्चमसमसुरस्य भक्षणमेकं सन्तमकृणुता चतुर्वयम् ॥३॥

हे ऋभुदेवो ! कभी न छिपने योग्य सवितादेव की कीर्ति का गान करते हुए जब आप उनके समीप गये, तब तत्काल उन्होंने आपको अमरता प्रदान की। त्वष्टा द्वारा निर्मित चमस (सोमपान का पात्र) को उन्होंने चार प्रकार का बना दिया ॥३॥

१२००. विष्ट्वी शमी तरणित्वेन वाघतो मर्तासः सन्तो अमृतत्वमानशुः।
सौधन्वना ऋभवः सूरचक्षसः संवत्सरे समपृच्यन्त धीतिभिः ॥४॥

मरणधर्मी मानवों ने निरन्तर उपासना और कर्मयोग की साधना से अमर कीर्ति को प्राप्त किया। सुधन्वा के पुत्र ऋभु सूर्यदेव की तरह ही तेजस्विता सम्पन्न होकर एक वर्ष के अन्तराल में ही सबके द्वारा प्रशंसनीय स्तवनों से पूज्यभाव को प्राप्त हुए। (अर्थात् पूजे जाने योग्य बन गये) ॥४॥

१२०१. क्षेत्रमिव वि ममुस्तेजनेनँ एकं पात्रमृभवो जेहमानम्।
उपस्तुता उपमं नाधमाना अमर्त्येषु श्रव इच्छमानाः ॥५॥

प्रशंसित ऋभुओं ने, अमर देवों की कीर्ति की उपमा के योग्य यश की इच्छा की और खेत तैयार करने की तरह तेजधार वाले शस्त्र से बार-बार प्रयुक्त होने वाले तीक्ष्ण-तेजस्वी संकल्प से देवों के समतुल्य पात्रता-व्यक्तित्व को विकसित किया ॥५॥

१२०२. आ मनीषामन्तरिक्षस्य नृभ्यः स्रुचेव घृतं जुहवाम विद्मना।
तरणित्वा ये पितुरस्य सश्चिर ऋभवो वाजमरुहन्दिवो रजः ॥६॥

अन्तरिक्ष में विचरणशील इन मनुष्य रूप धारी ऋभुओं के निमित्त मनोयोगपूर्वक की गई प्रार्थना के साथ हम चमस पात्र से घृताहुति समर्पित करें। ये ऋभुदेव अपने पिता के साथ सतत क्रियाशील रहकर दिव्यलोक और अन्तरिक्ष लोक से अन्न का उत्पादन करने में समर्थ हुए ॥६॥



१२०३. ऋभुर्न इन्द्रः शवसा नवीयानृभुर्वाजेभिर्वसुभिर्वसुर्ददिः ।
युष्माकं देवा अवसाहनि प्रियेऽभि तिष्ठेम पृत्सुतीरसुन्वताम् ॥७ ॥

सामर्थ्यवान् होने से ऋभुदेव सदा तरुण (नौजवान) जैसे ही दिखाई देते हैं और इन्द्रदेव की तरह ही सम्पन्न हैं। शक्तियों और धन सम्पदा से युक्त ये ऋभु हमें ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हैं। हे देवो !आपके स्मरणीय साधनों से संरक्षित हम किसी शुभ वेला में, यज्ञीय कर्मों से रहित रिपुदल पर विजय प्राप्त करें ॥७ ॥

१२०४. निश्चर्मण ऋभवो गामपिंशत सं वत्सेनासृजता मातरं पुनः ।
सौधन्वनासः स्वपस्यया नरो जिव्री युवाना पितराकृणोतन ॥८ ॥

हे ऋभुदेवो ! आपने जिसके चर्म ही शेष रह गये थे, ऐसी कृषकाय (दुर्बल शरीर वाली) गौ को फिर से सुन्दर हृष्ट-पुष्ट बना दिया, तत्पश्चात् गोमाता को बछड़े से संयुक्त किया। हे सुधन्वा पुत्र वीरो ! आपने अपने सत्प्रयास से अति वृद्ध माता-पिता को भी युवा बना दिया ॥८ ॥

१२०५. वाजेभिर्नो वाजसातावविड्ढ्यृभुमाँ इन्द्र चित्रमा दर्षि राधः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥९ ॥

हे ऋभुओं से युक्त इन्द्रदेव ! बलपूर्वक पराक्रम प्रधान समरक्षेत्र में अपने समर्थ साधनों के साथ आप प्रविष्ट हों। युद्ध से प्राप्त अद्भुत सम्पदाओं को हमें प्रदान करें। हमारी यह प्रिय कामना मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथ्वी और द्युलोक आदि देवों द्वारा भी अनुमोदित हो ॥९ ॥

[सूक्त - १११]

[ऋषि-कुत्स आङ्गिरस। देवता- ऋभुगण। छन्द-जगती, ५ त्रिष्टुप्।]

१२०६. तक्षन्रथं सुवृतं विद्मनापसस्तक्षन्हरी इन्द्रवाहा वृषण्वसू ।
तक्षन्पितृभ्यामृभवो युवद्वयस्तक्षन्वत्साय मातरं सचाभुवम् ॥१ ॥

कुशल विज्ञानी ऋभुदेवों ने उत्तम रथ को अच्छी प्रकार से तैयार किया। इन्द्रदेव के रथ वाहक घोड़े भी भली प्रकार प्रशिक्षित किए। वृद्ध माता-पिता को श्रेष्ठ मार्गदर्शन देकर तरुणोचित उत्साह प्रदान किया तथा माता को बच्चे के साथ रहने के लिए तैयार किया ॥१ ॥

१२०७. आ नो यज्ञाय तक्षत ऋभुमद्वयः क्रत्वे दक्षाय सुप्रजावतीमिषम् ।
यथा क्षयाम सर्ववीरया विशा तन्नः शर्धाय धासथा स्विन्द्रियम् ॥२ ॥

हे ऋभु देवो ! हमें यज्ञीय सत्कर्मों के लिए तेजस्विता प्रधान जीवनी शक्ति प्रदान करें । श्रेष्ठ कर्मों और बल संवर्धन हेतु प्रजा को समृद्ध करने वाले पौष्टिक अन्न हमें प्रदान करें। संगठन के लिए हममें पर्याप्त शारीरिक सामर्थ्य पैदा करें ॥२ ॥

१२०८. आ तक्षत सातिमस्मभ्यमृभवः सातिं रथाय सातिमर्वते नरः ।
सातिं नो जैत्रीं सं महेत विश्वहा जामिमजामिं पृतनासु सक्षणिम् ॥३ ॥

नेतृत्व करने वाले हे ऋभुओ ! आप हमारे लिए वैभव, हमारे रथों के लिए सुन्दरता तथा अश्वों के लिए बल प्रदान करें। समर क्षेत्र में हमारे निकटस्थ सम्बन्धी या अपरिचित जो भी सम्मुख हों, हम उन्हें पराजित करें। हमें विजय योग्य विभूतियाँ प्रदान करें ॥३ ॥



१२०९. ऋभुक्षणमिन्द्रमा हुव ऊतय ऋभून्वाजान्मरुतः सोमपीतये ।
उभा मित्रावरुणा नूनमश्विना ते नो हिन्वन्तु सातये धिये जिषे ॥४ ॥

हम अपनी सुरक्षा के लिए ऋभुओं के साथ रहने वाले इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं । ऋभु, वाज, मरुत्, दोनों मित्र और वरुण तथा अश्विनी कुमार इन सभी देवों को सोमपान के लिए आवाहित करते हैं । वे धन , श्रेष्ठ बुद्धि और विजय प्राप्ति के लिए हमें प्रेरित करें ॥४ ॥

१२१०. ऋभुर्भराय सं शिशातु सातिं समर्यजिद्वाजो अस्माँ अविष्टु ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥५ ॥

ऋभुगण हमें धन-धान्य से परिपूर्ण कर दें । युद्ध में विजय दिलाने वाले वाजादि देव हमारे संरक्षक हों । मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथ्वी और द्युलोक आदि देव हमारी कामना में सहायक हों ॥५ ॥

[सूक्त - ११२]

[**ऋषि** - कुत्स आङ्गिरस । **देवता** - १ पूर्वार्द्ध प्रथम पाद - द्यावा पृथिवी, द्वितीय पाद - अग्नि, उत्तरार्द्ध - अश्विनी - कुमार, २-२५ अश्विनीकुमार । **छन्द**- जगती, २४-२५ त्रिष्टुप् ।]

१२११. ईळे द्यावापृथिवी पूर्वचित्तयेऽग्निं घर्मं सुरुचं यामन्निष्टये ।
याभिर्भरे कारमंशाय जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१ ॥

द्युलोक, भूलोक तथा भली प्रकार प्रज्वलित-तापयुक्त अग्नि की हम सर्वप्रथम प्रार्थना करते हैं । हे अश्विनी-देवो ! जिनसे कर्मशील (पुरुषार्थी) व्यक्ति को समर क्षेत्र में अपना भाग ग्रहण करने के लिए आपका मार्गदर्शन मिलता है, उन संरक्षण-साधनों के साथ आप दोनों हमारे यहाँ पधारें ॥१ ॥

१२१२. युवोर्दानाय सुभरा असश्चतो रथमा तस्थुर्वचसं न मन्तवे ।
याभिर्धियोऽवथः कर्मन्निष्टये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥२ ॥

हे अश्विनीदेवो ! भरण-पोषण की इच्छा रखने वाले व्यक्ति जिस प्रकार इधर-उधर न भटक कर ज्ञानी जनों के पास जाते हैं, उसी प्रकार आपके रथ के समीप दान ग्रहण करने के लिए साधक स्थित रहते हैं । जिन संरक्षण शक्तियों से आप लक्ष्य प्राप्ति के लिए उनकी बुद्धियों और कर्मों को प्रेरित करते हैं, उन्हीं शक्तियों के साथ आप दोनों भली प्रकार यहाँ पधारें ॥२ ॥

१२१३. युवं तासां दिव्यस्य प्रशासने विशां क्षयथो अमृतस्य मज्मना ।
याभिर्धेनुमस्वं१ पिन्वथो नरा ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥३ ॥

हे नेतृत्व गुणयुक्त अश्विनीकुमारो ! आप दोनों दिव्यलोक में उत्पन्न हुए सोमरस के पीने से अमर और बलशाली बने हैं तथा उसी बल से इन सभी प्रजाजनों पर शासन करते हैं । आपने जिन चिकित्सा प्रणालियों से बन्ध्या (प्रजनन क्षमता से रहित) गौओं को प्रजनन योग्य हृष्ट-पुष्ट और दुधारू बनाया, उन संरक्षण साधनों सहित आप निश्चित ही हमारे यहाँ पधारें ॥३ ॥

१२१४. याभिः परिज्मा तनयस्य मज्मना द्विमाता तूर्षु तरणिर्विभूषति ।
याभिस्त्रिमन्तुरभवद्विचक्षणस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥४ ॥

सर्वत्र विचरणशील वायुदेव और अग्निदेव जिस बल से दो माताओं (अरणियों) से उत्पन्न होकर अति



गतिशील होकर विशेष शोभायमान होते हैं तथा कक्षीवान् ऋषि जिन तीन साधन रूपी यज्ञों से विशिष्ट ज्ञानवान् बने, हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों उन संरक्षण साधनों के साथ हमारे यहाँ पधारें ॥४ ॥

१२१५. याभी रेभं निवृतं सितमद्भ्य उद्वन्दनमैरयतं स्वर्दृशे ।
याभिः कण्वं प्र सिषासन्तमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिस सामर्थ्य से आप दोनों ने, जल में सम्पूर्ण स्थिति में डूबे और बन्धन युक्त रेभ तथा वन्दन को बाहर निकालकर प्रकाश के दर्शन योग्य बनाया । जिस प्रकार साधनारत कण्व को संरक्षण साधनों द्वारा उचित रीति से समर्थ बनाया, उन्हीं संरक्षण युक्त साधनों के साथ आप हमारे यहाँ पधारें ॥५ ॥

१२१६. याभिरन्तकं जसमानमारणे भुज्युं याभिरव्यथिभिर्जिजिन्वथुः ।
याभिः कर्कन्धुं वय्यं च जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥६ ॥

हे अश्विनीदेवो ! जिस सामर्थ्य से आप दोनों ने कूप गर्त में पड़े और कष्ट पीड़ित राजर्षि अन्तक को बाहर निकाला, जिस कड़ी मेहनत से तुग्र पुत्र भुज्यु को सुरक्षित किया और कर्कन्धु तथा वय्य की जिन संरक्षण साधनों से युक्त होकर रक्षा की, उन संरक्षण साधनों से युक्त होकर आप हमारे यहाँ पधारें ॥६ ॥

१२१७. याभिः शुचन्तिं धनसां सुषंसदं तप्तं घर्ममोम्यावन्तमत्रये ।
याभिः पृश्निगुं पुरुकुत्समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥७ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिस सामर्थ्य से आप दोनों ने धन वितरण कर्ता शुचन्ति को श्रेष्ठ निवास योग्य स्थान दिया । अत्रि ऋषि के लिए तप्त बन्दी गृह को शान्त किया तथा पृश्निगु और पुरुकुत्स को सुरक्षित किया । उन संरक्षण सामर्थ्यों से युक्त होकर आप हमारे यहाँ पधारें ॥७ ॥

१२१८. याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजं प्रान्धं श्रोणं चक्षस एतवे कृथः ।
याभिर्वर्तिकां ग्रसिताममुञ्चतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥८ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिस सामर्थ्य से आपने पंगु परावृक् ऋषि को, नेत्र हीन ऋज्राश्व को और पैरों से लँगड़े श्रोण को, दृष्टि युक्त करके पाँवो से चलने-फिरने योग्य बनाया । भेड़िये द्वारा मुख में पकड़ी हुई, दाँतों से घायल चिड़िया को अपनी सामर्थ्य से मुक्त करके आरोग्य प्रदान किया, उन आरोग्य प्रद चिकित्सा साधनों के साथ आप हमारे यहाँ पधारें ॥८ ॥

१२१९. याभिः सिन्धुं मधुमन्तमसश्चतं वसिष्ठं याभिरजरावजिन्वतम् ।
याभिः कुत्सं श्रुतर्यं नर्यमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥९ ॥

हे चिरयुवा अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने जिस सामर्थ्य से मधुर जलरूप रसवाली नदियों को प्रवाहित किया, जिससे वसिष्ठ, कुत्स, श्रुतर्य और नर्य को शत्रुओं से सुरक्षित किया, उन्हीं संरक्षण साधनों के साथ हमारे यहाँ उपस्थित हों ॥९ ॥

१२२०. याभिर्विश्पलां धनसामथर्व्यं सहस्रमीळ्ह आजावजिन्वतम् ।
याभिर्वशमश्व्यं प्रेणिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१० ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिस सामर्थ्य से आप दोनों ने हजारों योद्धाओं द्वारा लड़े जा रहे समर-क्षेत्र में अथर्व वंश में उत्पन्न धनदात्री विश्पला का सहयोग किया तथा प्रेरणाप्रद, अश्वराज के पुत्र वश ऋषि को संरक्षित किया, उन्हीं संरक्षण सामर्थ्यों के साथ आप हमारे यहाँ अवश्य पधारें ॥१० ॥



१२२१. याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे दीर्घश्रवसे मधु कोशो अक्षरत्।
कक्षीवन्तं स्तोतारं याभिरावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥११ ॥

हे श्रेष्ठ दान दाता अश्विनीकुमारो ! जिस सामर्थ्य से आपने उशिक् पुत्र दीर्घश्रवा नामक व्यापारी के लिए मधु के भण्डार प्रदान किये तथा स्तोत्र कर्त्ता 'कक्षीवान्' को सुरक्षित किया। उन्हीं संरक्षण शक्तियों के साथ आप दोनों हमारे यहाँ पधारें ॥११ ॥

१२२२. याभी रसां क्षोदसोद्नः पिपिन्वथुरनश्वं याभी रथमावतं जिषे।
याभिस्त्रिशोक उस्रिया उदाजत ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१२ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिस सामर्थ्य से आप दोनों ने नदी के तटों को जलों से भरपूर किया, जिससे अश्वों से रहित रथ को तेजगति से चलाकर शत्रु को पराजित करके विजय उपलब्ध की तथा कण्वपुत्र 'त्रिशोक' के लिए दुधारू गौओं को प्रदान किया, उन्हीं संरक्षण सामर्थ्यों के साथ आप हमारे यहाँ पदार्पण करें ॥१२ ॥

१२२३. याभिः सूर्यं परियाथः परावति मन्धातारं क्षैत्रपत्येष्वावतम्।
याभिर्विप्रं प्र भरद्वाजमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिस सामर्थ्य से आप दोनों दूर स्थित सूर्यदेव के चारों ओर परिक्रमा करते हैं। आप दोनों ने जिस प्रकार मान्धाता को क्षेत्रपति के कर्त्तव्यों का निर्वाह करने की सामर्थ्य प्रदान की तथा ज्ञान-सम्पन्न भरद्वाज को, जिन श्रेष्ठ सुरक्षा-साधनों द्वारा बचाया, उन्हीं सामर्थ्ययुक्त साधनों के साथ हमारे यहाँ पधारें ॥१३ ॥

१२२४. याभिर्महामतिथिग्वं कशोजुवं दिवोदासं शम्बरहत्य आवतम्।
याभिः पूर्भिद्ये त्रसदस्युमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१४ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिन सामर्थ्यों से शम्बर का वध करने वाले संग्राम में अतिथिग्व, कशोजुव और महान् दिवोदास को आप दोनों ने संरक्षण प्रदान किया था। शत्रु नगरों को ध्वस्त करने वाले संग्राम में त्रसदस्यु (दस्युओं को संत्रस्त करने वाले राजा) को संरक्षित किया था, उन्हीं संरक्षण सामर्थ्यों के साथ आप हमारे यहाँ उपस्थित हों ॥१४ ॥

१२२५. याभिर्वम्रं विपिपानमुपस्तुतं कलिं याभिर्वित्तजानिं दुवस्यथः।
याभिर्व्यश्वमुत पृथिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिन सामर्थ्यों से सोमरस पान करने वाले, निकटस्थ लोगों द्वारा प्रशंसनीय वम्र ऋषि को आप दोनों ने संरक्षित किया जिनसे धर्मपत्नी सहित कलि ऋषि को संरक्षित किया तथा अश्व रहित पृथि को संरक्षित किया था, उन सभी सुरक्षा-साधनों से आप यहाँ आएँ ॥१५ ॥

१२२६. याभिर्नरा शयवे याभिरत्रये याभिः पुरा मनवे गातुमीषथुः।
याभिः शारीराजतं स्यूमरश्मये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१६ ॥

नेतृत्व क्षमता सम्पन्न हे अश्विनीकुमारो ! जिन सामर्थ्यों से शयु का सहयोग देने के लिए, जिनसे अत्रि ऋषि को कारागृह से मुक्त करने के लिए, जिनसे मनु को पुरातन समय में दुःख से निवृत्त होने का रास्ता आप दोनों ने बताया था तथा शत्रु सेना पर बाणों का प्रहार करके स्यूम-रश्मि की रक्षा की, उन्हीं समस्त संरक्षण-सामर्थ्यों से युक्त आप हमारे यहाँ पधारें ॥१६ ॥



१२२७. याभिः पठर्वा जठरस्य मज्मनाग्निर्नादीदेच्चित इद्धो अज्मन्ना।
याभिः शर्यातमवथो महाधने ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥ १७॥

हे अश्विनीकुमारो ! आपकी जिन सामर्थ्यों का सहयोग पाकर समिधाओं से प्रदीप्त तेजस्विता युक्त अग्नि के समान ही 'पठर्वा राजा' युद्ध में अपनी शारीरिक शक्ति से अति तेजस्वी बना था, विशाल सम्पदा अर्जित करने वाले संग्राम में आप दोनों ने 'शर्यात' को जिनसे संरक्षित किया था, उन्हीं संरक्षण-सामर्थ्यों के साथ आप यहाँ पधारें ॥१७॥

१२२८. याभिरङ्गिरो मनसा निरण्यथोऽग्रं गच्छथो विवरे गोअर्णसः।
याभिर्मनुं शूरमिषा समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥१८॥

हे अश्विनीकुमारो ! आङ्गिरसों द्वारा श्रद्धा - पूर्वक आप दोनों की स्तुति किये जाने पर जिस सामर्थ्य से आपने उन्हें सन्तुष्ट किया, चुराये गये गौ - समूह को प्राप्त करने के लिए गुफा के दरवाजे में आप दोनों ही आगे जाते हैं तथा जिस सामर्थ्य से शूरवीर मनु को संग्राम में प्रचुर अन्न सामग्री द्वारा सुरक्षित किया, उन्हीं सम्पूर्ण सामर्थ्यों के साथ आप दोनों हमारे यहाँ आएँ ॥१८॥

१२२९. याभिः पत्नीर्विमदाय न्यूहथुरा घ वा याभिररुणीरशिक्षतम्।
याभिः सुदास ऊहथुः सुदेव्यं१ ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥१९॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिन सामर्थ्यों से आप दोनों ने विमद की धर्म पत्नियों को उनके निवास स्थान पर पहुँचाया। लालवर्ण की घोड़ियों को भली प्रकार प्रशिक्षित किया (अथवा लाल रंग की उषा कालीन किरणों को मनुष्यों के लिए प्रेरित किया) तथा पिजवन-पुत्र सुदास को दिव्य सम्पदा प्रदान की, उन्हीं प्रेरणाप्रद शक्तियों के साथ हमारे यहाँ पधारें ॥१९॥

१२३०. याभिः शंताती भवथो ददाशुषे भुज्युं याभिरवथो याभिरध्रिगुम्।
ओम्यावतीं सुभरामृतस्तुभं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥२०॥

हे अश्विनीदेवो ! जिन सामर्थ्यों से आप दानी मनुष्यों के लिए सुखद बने, भुज्यु और अधिगु को आपने संरक्षित किया तथा ऋतस्तुभ को श्रेष्ठ पौष्टिक और आनन्दप्रद अन्न सामग्री प्रदान की, उन्हीं सुखदायक सामर्थ्यों के साथ आप दोनों हमारे यहाँ पदार्पण करें ॥२०॥

१२३१. याभिः कृशानुमसने दुवस्यथो जवे याभिर्यूनो अर्वन्तमावतम्।
मधु प्रियं भरथो यत्सरड्भ्यस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥२१॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने जिन सामर्थ्यों से 'कृशानु' का संग्राम में सहयोग किया, नवयुवा 'पुरुकुत्स' के गतिशील अश्व को संरक्षित किया तथा मधुमक्खियों के लिए मधुर शहद उत्पन्न किया, उन्हीं संरक्षण साधनों के द्वारा आप हमारे यहाँ आएँ ॥२१॥

१२३२. याभिर्नरं गोषुयुधं नृषाह्ये क्षेत्रस्य साता तनयस्य जिन्वथः।
याभी रथाँ अवथो याभिरर्वतस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥२२॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिन सामर्थ्यों से आप गौओं के संरक्षणार्थ संघर्षशील योद्धाओं को और कृषि उत्पादनों की वितरण वेला में कृषकों को पारस्परिक कलह से संरक्षित करते हैं तथा वीरों के रथों और अश्वों की सुरक्षा करते हैं, उन्हीं सामर्थ्यों सहित आप दोनों उत्तम रीति से यहाँ आएँ ॥२२॥



१२३३. याभिः कुत्समार्जुनेयं शतक्रतू प्र तुर्वीतिं प्र च दभीतिमावतम्।
याभिर्ध्वसन्तिं पुरुषन्तिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥२३ ॥

सैकड़ों यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म सम्पन्न करने वाले हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने जिन सामर्थ्यों से अर्जुन के पुत्र कुत्स, तुर्वीति एवं दधीति को तथा ध्वसन्ति और पुरुषन्ति ऋषियों को संरक्षण प्रदान किया, उन्हीं सुरक्षा-व्यवस्थाओं के साथ आप श्रेष्ठ विधि से यहाँ पदार्पण करें ॥२३ ॥

१२३४. अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम्।
अद्यूत्येऽवसे नि ह्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥२४ ॥

हे दर्शनयोग्य शक्तिसम्पन्न अश्विनीकुमारो ! आप दोनों हमारी वाणी और बुद्धि को सत्कर्मों में नियोजित करें। हम याजकगण सन्मार्ग से उपलब्ध होने वाले अन्न हेतु आप दोनों का आवाहन करते हैं। आप दोनों ही यज्ञ में हमारी वृद्धि के कारण बनें ॥२४ ॥

१२३५. द्युभिरक्तुभिः परि पातमस्मानरिष्टेभिरश्विना सौभगेभिः।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥२५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! दिन-रात्रि अनश्वर श्रेष्ठ धनों से हमें सभी प्रकार से संरक्षित करें। मित्र, वरुण, अदिति, सिंधु और द्युलोक आपके द्वारा प्रदत्त धनों के संरक्षण में सहायक हों ॥२५ ॥

[इस सूक्त में अश्विनीकुमारों की अद्भुत शक्तियों का वर्णन है। सूर्य के चारों ओर भ्रमण करने, मनुष्यों एवं पशुओं के दुर्लभ उपचार एवं कायाकल्प करने जैसे प्रकरणों के साथ जुड़े आलंकारिक सूत्र संकेत शोध के विषय हैं।]

[सूक्त - ११३]

[**ऋषि** - कुत्स आङ्गिरस। **देवता** - १ का पूर्वार्द्ध उषा, उत्तरार्द्ध उषा और रात्रि, २-२० उषा। **छन्द** - त्रिष्टुप्।]

१२३६. इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा।
यथा प्रसूता सवितुः सवायँ एवा रात्र्युषसे योनिमारैक् ॥ १ ॥

सर्व दीप्तिमान् पदार्थों में ये देवी उषा सर्वाधिक तेजयुक्त हैं। इनका विलक्षण प्रकाश चारों ओर व्यापक होकर सभी पदार्थों को आच्छादित कर लेता है। सूर्यदेव के अस्त होने (के पश्चात्) से उत्पन्न हुई रात्रि, इन देवी उषा के उदय के लिए स्थान रिक्त कर देती है ॥१ ॥

१२३७. रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः।
समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्णं चरत आमिनाने ॥२ ॥

तेजस्वी देवी उषा उज्ज्वल पुत्र (सूर्य) को लेकर प्रकट हुईं और काले रंग की रात्रि ने उसे स्थान दिया है। देवी उषा और रात्रि दोनों सूर्यदेव के साथ समान सखा भाव से युक्त हैं। दोनों अविनाशी और क्रमशः एक के पीछे एक आकाश में विचरण करती हैं तथा एक दूसरे के प्रभाव को नष्ट करने वाली हैं ॥२ ॥

१२३८. समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे।
न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे ॥३ ॥

रात्रि और देवी उषा दोनों का बहिनों जैसा एक ही मार्ग है तथा वे अन्तहीन हैं। उस मार्ग से होकर देवी उषा और रात्रि द्योतमान सूर्य से अनुप्राणित होकर क्रमशः एक के पीछे एक चलती हैं। उत्तम कार्य करने वाली ये एक दूसरे के विपरीत रूप वाली होते हुए भी एक मनोभूमि की हैं। न कभी परस्पर विरुद्ध होती हैं, न ही कहीं रुकती हैं, अपितु अपने-अपने कार्यों में निरत रहती हैं ॥३ ॥

१२३९. **भास्वती नेत्री सूनृतानामचेति चित्रा वि दुरो न आवः ।**
प्रार्प्या जगद्व्यु नो रायो अख्यदुषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥४ ॥

अपने प्रकाश से लोगों को श्रेष्ठ कर्मों की ओर प्रेरित करने वाली दीप्तिमती देवी उषा का उदय हो गया है । वे अद्भुत मनोहारी किरणों से दरवाजे खोलने की प्रेरणा देती हैं । विश्व को ज्योतिर्मय (प्रकाशित) करके ऐश्वर्य प्राप्ति हेतु मनुष्यों में प्रेरणा भरती हैं तथा अपनी किरणों से समस्त लोकों को प्रकाशित करती हैं ॥४ ॥

१२४०. **जिह्मश्ये३चरितवे मघोन्याभोगय इष्टये राय उ त्वं ।**
दभ्रं पश्यद्भ्य उर्विया विचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥५ ॥

धनेश्वरी देवी उषा सुषुप्तों (सोये हुओं) को जगाकर चलने के लिए, उपभोग, ऐश्वर्य एवं इष्टकर्म के लिए प्रेरित करती हैं । अन्धकार में भटके हुए लोगों को दृष्टि देने हेतु विस्तृत तेजस्विता से युक्त देवी उषा सम्पूर्ण लोकों को प्रकाशित करती हैं ॥५ ॥

१२४१. **क्षत्राय त्वं श्रवसे त्वं महीया इष्टये त्वमर्थमिव त्वमित्यै ।**
विसदृशा जीविताभिप्रचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥६ ॥

हे तेजस्वी देवी उषे ! रक्षापरक (क्षत्रियोचित) कर्म के लिए, श्रेय (कीर्ति) के लिए महायज्ञों हेतु प्रचुर धनोपार्जन तथा नानाविध जीवनोपयोगी कर्तव्य निर्वाह के लिए समस्त लोकों को आप ही जाग्रत् करती हैं ॥६ ॥

१२४२. **एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि व्युच्छन्ती युवतिः शुक्रवासाः ।**
विश्वस्येशाना पार्थिवस्य वस्व उषो अद्येह सुभगे व्युच्छ ॥७ ॥

ये स्वर्ग कन्या देवी उषा अँधेरे को भगाती हुई उदित हो गई हैं । नवयुवती की तरह शुभ्र वस्त्र धारण करने वाली देवी उषा सम्पूर्ण धरती की सम्पदाओं की अधीश्वरी हैं । हे सौभाग्य प्रदात्री उषे ! आप यहाँ अपना आलोक प्रकट करें ॥७ ॥

१२४३. **परायतीनामन्वेति पाथ आयतीनां प्रथमा शश्वतीनाम् ।**
व्युच्छन्ती जीवमुदीरयन्त्युषा मृतं कं चन बोधयन्ती ॥८ ॥

ये देवी उषा पिछली आई हुई उषाओं के मार्ग का ही अनुसरण कर रही हैं तथा भविष्य में अनन्तकाल तक आने वाली अनेक उषाओं में सर्वप्रथम हैं । ये प्रकाशमयी देवी उषा जीवन्तों में प्रेरणा जगातीं तथा मृतक के समान सोये हुओं में प्राणतत्त्व का संचार करती हैं ॥८ ॥

१२४४. **उषो यदग्निं समिधे चकर्थ वि यदावश्चक्षसा सूर्यस्य ।**
यन्मानुषान्यक्ष्यमाणाँ अजीगस्तद्देवेषु चकृषे भद्रमप्नः ॥९ ॥

हे उषे ! आपके उदय होते ही यज्ञ कर्मों का सम्पादन करने वाले जागकर अग्नि को प्रदीप्त करने लगे । सूर्योदय से पूर्व आपने ही प्रकाश फैलाया । विश्व के लिए मंगलकारी और देवताओं के लिए प्रिय उपासनादि सत्कर्मों की प्रेरणा आपने ही प्रदान की ॥९ ॥

१२४५. **कियात्या यत्समया भवाति या व्यूषुर्याश्च नूनं व्युच्छान् ।**
अनु पूर्वाः कृपते वावशाना प्रदीध्याना जोषमन्याभिरेति ॥१० ॥

कितने समय पर्यन्त ये देवी उषा यहाँ स्थित रहती हैं? जो पूर्व में प्रकाशित हो चुकीं और जो भविष्य में आने वाली हैं, वे भी कहाँ अधिक समय तक स्थित रहेंगी ? पूर्व में आ चुकी उषाओं का स्मरण दिलाती



हुई वर्तमान में देवी उषा प्रकाश फैलाने में सक्षम होती हैं । प्रकाश फैलाने वाली देवी उषा अन्य उषाओं का ही अनुगमन करती हैं ॥१० ॥

१२४६. ईयुष्टे ये पूर्वतरामपश्यन्व्युच्छन्तीमुषसं मर्त्यासः ।
अस्माभिरू नु प्रतिचक्ष्याभूदो ते यन्ति ये अपरीषु पश्यान् ॥११ ॥

जो मनुष्य विगतकाल में प्रकट हुई उषाओं का दर्शन करते थे, वे दिवंगत हो गये । जो आज इन देवी उषा को देख रहे हैं, वे भी एक दिन यहाँ से प्रस्थान कर जायेंगे । जो भविष्य में उषाओं का दर्शन करेंगे, उनका भी स्थायित्व नहीं है, अर्थात् मात्र देवी उषा ही अकेली स्थायी रहने वाली हैं, जो बार-बार आती रहेंगी ॥११ ॥

१२४७. यावयद्द्वेषा ऋतपा ऋतेजाः सुम्नावरी सूनृता ईरयन्ती ।
सुमङ्गलीर्बिभ्रती देववीतिमिहाद्योषः श्रेष्ठतमा व्युच्छ ॥१२ ॥

अज्ञानान्धकार रूपी शत्रुओं का विनाश करने वाली, सत्य के विस्तार हेतु ही प्रकट होने वाली, सत्य का अनुपालन करने वाली, सुखप्रद वाणी की प्रेरक, श्रेष्ठ कल्याणकारी देवों की सन्तुष्टि हेतु यज्ञीय कर्मों की प्रेरक, अति श्रेष्ठ गुणों से युक्त हे उषे ! आप यहाँ प्रकाशमान हों ॥१२ ॥

१२४८. शश्वत्पुरोषा व्युवास देव्यथो अद्येदं व्यावो मघोनी ।
अथो व्युच्छादुत्तराँ अनु द्यूनजरामृता चरति स्वधाभिः ॥१३ ॥

देवी उषा विगत काल में हमेशा प्रकाशित होती रहीं हैं । धनेश्वरी देवी उषा आज इस विश्व को प्रकाशमान कर रही हैं तथा भविष्य में भी प्रकाश देती रहेंगी, ऐसी ये देवी उषा तीनों कालों में प्रकाशमान होने से अजर-अमर हैं । अपनी धारण की गई क्षमताओं से ये देवी उषा सदा चलायमान हैं ॥१३ ॥

१२४९. व्य१ञ्जिभिर्दिव आतास्वद्यौदप कृष्णां निर्णिजं देव्यावः ॥
प्रबोधयन्त्यरुणेभिरश्वैरोषा याति सुयुजा रथेन ॥१४ ॥

देवी उषा अपनी तेजस्वी रश्मियों से आकाश की सभी दिशाओं में प्रकाशित होती हैं । इन दिव्य देवी उषा ने कृष्णवर्ण (कालेरंग) के अन्धकार को दूर किया है । भली प्रकार रक्तवर्ण की किरणों रूपी अश्वों द्वारा खींचे गये रथ से ये देवी उषा आगमन करती हैं और सभी को जाग्रत् करती हैं ॥१४ ॥

१२५०. आवहन्ती पोष्या वार्याणि चित्रं केतुं कृणुते चेकिताना ।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनां विभातीनां प्रथमोषा व्यश्वैत् ॥१५ ॥

पौष्टिक और धारण करने योग्य उपयोगी धनों की प्रदात्री ये देवी उषा सबको प्रकाशित करती हुई अद्भुत मनोरम तेजस्विता को फैला रही हैं । वर्तमान देवी उषा विगत उषाओं में अन्तिम हैं और आगत उषाओं में सर्वप्रथम हैं, अतएव उत्तम रूप से प्रकाशित हो रही हैं ॥१५ ॥

१२५१. उदीर्ध्वं जीवो असुर्न आगादप प्रागात्तम आ ज्योतिरेति ।
आरैक्पन्थां यातवे सूर्यायागन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥१६ ॥

हे मनुष्यो ! उठो आलस्य त्यागकर उन्नति के मार्ग पर बढ़ चलो । प्रभात वेला में हमें प्राणरूपी जीवनी शक्ति का सघन संचार प्राप्त होता है । मोहरूपी अन्धकार हटता है । ज्योतिर्मान सूर्यदेव आगे बढ़ते जाते हैं । देवी उषा सूर्यदेव के आगमन के निमित्त मार्ग बनाती जातीं हैं । हम सभी उस आयु (आरोग्यवर्धक जीवनी शक्ति) को प्राप्त करें ॥१६ ॥

१२५२. स्यूमना वाच उदियर्ति वह्निः स्तवानो रेभ उषसो विभातीः ।
अद्या तदुच्छ गृणते मघोन्यस्मे आयुर्नि दिदीहि प्रजावत् ॥१७ ॥

ज्ञान सम्पन्न साधक दीप्तिमान् उषाओं की प्रार्थना करते हुए शोभनीय तथा मनोरम स्तोत्रों का उच्चारण करते हैं । हे ऐश्वर्यशाली उषे ! स्तुति करने वालों के हृदय में आप ज्ञान रूपी प्रकाश भर दें । हमारे लिए सुसन्तति से युक्त जीवन और अन्नादि प्रदान करें ॥१७ ॥

१२५३. या गोमतीरुषसः सर्ववीरा व्युच्छन्ति दाशुषे मर्त्याय ।
वायोरिव सूनृतानामुदर्के ता अश्वदा अश्नवत्सोमसुत्वा ॥१८ ॥

हविदाता मनुष्यों के लिए ये उषाएँ सम्पूर्ण शक्तियों से युक्त, कान्तिमान् रश्मियों से सम्पन्न होकर प्रकाशमान हो रही हैं । वायु के तुल्य तीव्र गतिशील स्तोत्र रूपी श्रेष्ठ वाणियों से प्रशंसित होकर जीवनी शक्ति प्रदान करने वाली ये उषाएँ, सोमयज्ञ सम्पादित करने वाले साधकों के समीप जाती हैं ॥१८ ॥

१२५४. माता देवानामदितेरनीकं यज्ञस्य केतुर्बृहती विभाहि ।
प्रशस्तिकृद् ब्रह्मणे नो व्यु१च्छा नो जने जनय विश्ववारे ॥१९ ॥

हे देवी उषे ! आप देवत्व का संचार करने से देवमाता हैं, अदिति के मुख के समान तेजस्वी हैं । यज्ञ की ध्वजा के समान हे विस्तृत उषे ! आप विशेष रूप से प्रकाशित हो रही हैं । हमारे सद्ज्ञान की प्रशंसा करती हुई आलोकित हों । हे विश्ववंद्य उषे ! हमें श्रेष्ठ मार्ग से उत्तम लोकों में ले चलें ॥१९ ॥

१२५५. यच्चित्रमप्न उषसो वहन्तीजानाय शशमानाय भद्रम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥२० ॥

जिन आश्चर्यजनक विभूतियों को उषाएँ धारण करती हैं, वही विभूतियाँ यज्ञ का निर्वाह करने वाले यजमान के लिए भी कल्याणप्रद हों । मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथ्वी और दिव्य लोक ये सभी देवत्व सम्वर्धक धाराएँ हमारी प्रार्थना को पूर्ण करें ॥२० ॥

[सूक्त - ११४]

[**ऋषि-** कुत्स आङ्गिरस । **देवता-** रुद्र । **छन्द-** जगती, १०-११ त्रिष्टुप् ।]

१२५६. इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः ।
यथा शमसद्द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् ॥१ ॥

हमारी प्रजाओं और गवादि पशुओं को सुख की प्राप्ति हो । इस गाँव के सभी प्राणी बलशाली और उपद्रव रहित हों। हम अपनी बुद्धि को दुष्टों का नाश करने वाले वीरों के प्रेरक जटाधारी रुद्रदेव को समर्पित करते हैं ॥१ ॥

१२५७. मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते ।
यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु ॥२ ॥

हे रुद्रदेव ! हम सभी को स्वस्थ व निरोग रखते हुए सुख प्रदान करें । शूरों को आश्रय प्रदान करने वाले आपको हम नमन करते हैं । आप मनुष्यों का पालन करते हुए शान्ति और रोग प्रतिरोधक शक्ति प्रदान करते हैं । हे रुद्रदेव ! हम आपकी उत्तम नीतियों का अनुगमन करें ॥२ ॥



१२५८. अश्याम ते सुमतिं देवयज्यया क्षयद्वीरस्य तव रुद्र मीढ्वः ।
सुम्नायन्निद्विशो अस्माकमा चरारिष्टवीरा जुहवाम ते हविः ॥३ ॥

हे कल्याणकारी रुद्रदेव ! वीरों को आश्रय प्रदान करने वाली आपकी श्रेष्ठ बुद्धि को हम सब अर्जित करें । हमारे प्रजाजनों को अपने देव यजन अर्थात् श्रेष्ठ कर्मों द्वारा सुख देते हुए आप हमारे लिए अनुकूलता प्रदान करें । हमारे वीर अक्षय बल को प्राप्त करें, हम आपके निमित्त आहुतियाँ समर्पित करें ॥३ ॥

१२५९. त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधं वङ्कुकविमवसे नि ह्वयामहे ।
आरे अस्मद्दैव्यं हेळो अस्यतु सुमतिमिद्वयमस्या वृणीमहे ॥४ ॥

तेजस्विता सम्पन्न यज्ञीय सत्कर्मों के निर्वाहक स्फूर्तिवान्, ज्ञानवान् रुद्रदेव की हम सभी स्तुति करते हैं । वे हमें संरक्षण प्रदान करें । देव - शक्तियों के क्रोध के भागीदार हम न बन सकें, अपितु हम उनकी अनुकम्पा को प्राप्त करें ॥४ ॥

१२६०. दिवो वराहमरुषं कपर्दिनं त्वेषं रूपं नमसा नि ह्वयामहे ।
हस्ते बिभ्रद्भेषजा वार्याणि शर्म वर्म च्छर्दिरस्मभ्यं यंसत् ॥५ ॥

सात्विक आहार ग्रहण करने वाले दीप्तियुक्त सुन्दर रूपवान् जटाधारी वीर का हम सादर आवाहन करते हैं। अपने हाथों में आरोग्य प्रदायक ओषधियों को धारण कर वे दिव्यलोक से अवतरित हों। हमें मानसिक शान्ति तथा बाहरी रोगों की प्रतिरोधक क्षमता प्रदान करें । हमारे शरीरों में समाहित विषों को बाहर निकालें ॥५ ॥

१२६१. इदं पित्रे मरुतामुच्यते वचः स्वादोः स्वादीयो रुद्राय वर्धनम् ।
रास्वा च नो अमृत मर्तभोजनं त्मने तोकाय तनयाय मृळ ॥६ ॥

हम मरुद्गण के पिता रुद्रदेव के लिए यह अति मधुर और कीर्तिवर्धक स्तोत्रगान करते हैं । हे अमृतस्वरूप रुद्रदेव ! आप हम सभी के निमित्त उपभोग्य सामग्री प्रदान करें । हमें तथा हमारी सन्तानों को भी सुखी रखें ॥६ ॥

१२६२. मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥७ ॥

हे रुद्रदेव ! हमारे ज्ञान और बल में सम्पन्न वृद्धों को पीड़ित न करें । हमारे छोटे बालकों की हिंसा न करें । हमारे बलवान् युवा पुरुषों को हिंसित न करें । हमारी गर्भस्थ सन्तानों को हिंसित न करें और न ही हमारे माता-पिता को विनष्ट करें । इन सभी हमारे प्रिय जनों के शरीरों को कष्ट न पहुँचाएँ ॥७ ॥

१२६३. मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।
वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥८ ॥

हे रुद्रदेव ! हमारी पुत्र-पौत्रादि सन्तति, हमारे जीवन को, गौओं और अश्वों को आघात न पहुँचाएँ । आप हमारे शूरवीरों के विनाश के लिए क्रोधित न हों । हविष्यान्न प्रदान करने के लिए यज्ञस्थल में हम आपका आवाहन करते हैं ॥८ ॥

१२६४. उप ते स्तोमान्पशुपा इवाकरं रास्वा पितर्मरुतां सुम्नमस्मे ।
भद्रा हि ते सुमतिर्मृळयत्तमाथा वयमव इत्ते वृणीमहे ॥९ ॥



हे मरुद्‌गणों के पिता रुद्रदेव ! जिस प्रकार पशुओं के पालनकर्त्ता गोपाल प्रातः ग्रहण किये गये पशुओं को सायंकाल उनके स्वामी को सौंप देते हैं, उसी प्रकार आपकी कृपा से प्राप्त मन्त्रों को स्तुति रूप में आपको ही समर्पित करते हैं । आप हमें सुख प्रदान करें, आपकी कल्याणकारी बुद्धि अत्यधिक सुख प्रदान करने वाली है, अतएव हम सभी आपके संरक्षण की कामना करते हैं ॥९ ॥

१२६५. आरे ते गोघ्नमुत पूरुषघ्नं क्षयद्वीर सुम्नमस्मे ते अस्तु ।
मृळा च नो अधि च ब्रूहि देवाधा च नः शर्म यच्छ द्विबर्हाः ॥१० ॥

हे वीरों के आश्रयदाता रुद्रदेव ! पशुओं और मनुष्यों के लिए संहारक आपके शस्त्र हमें कोई कष्ट न पहुँचाएँ । हम सभी के लिए आपकी श्रेष्ठ प्रेरणाएँ प्राप्त हों तथा आप हम सभी को सुख-प्रदान करें । हे देव ! हमें विशेष मार्ग दर्शन दें तथा दो प्रकार की शक्तियों से युक्त आप हम सभी के निमित्त शान्ति प्रदान करें ॥१० ॥

१२६६. अवोचाम नमो अस्मा अवस्यवः शृणोतु नो हवं रुद्रो मरुत्वान् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥११ ॥

सुरक्षा की कामना करने वाले हम सभी, रुद्रदेव को नमन हो, ऐसा उच्चारण करते हैं । मरुद्‌गणों के साथ वे रुद्रदेव हमारी प्रार्थना को सुनें । इस प्रकार हमारी अभीष्ट कामना को मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथ्वी और दिव्यलोक सभी स्वीकार करें ॥११ ॥

[सूक्त - ११५]

[ऋषि- कुत्स आङ्गिरस । देवता- सूर्य । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

१२६७. चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥१ ॥

जंगम, स्थावर जगत् के आत्मा रूपी सूर्यदेव, दैवी शक्तियों के अद्भुत तेज के समूह के रूप में उदित हो गये हैं । मित्र, वरुण आदि के चक्षु रूप इन सूर्यदेव ने उदय होते ही द्युलोक, पृथ्वीलोक तथा अन्तरिक्ष को अपने तेज से भर दिया है ॥१ ॥

१२६८. सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥२ ॥

प्रथम दीप्तिमान् और तेजस्विता युक्त देवी उषा के पीछे सूर्यदेव उसी प्रकार अनुगमन करते हैं, जिस प्रकार मनुष्य नारी का अनुगमन करते हैं । जहाँ देवत्व के उच्च लक्ष्य को पाने के लिए साधक यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म सम्पन्न करते हैं, वहाँ उन साधकों एवं कल्याणकारी यज्ञीय कर्मों को सूर्यदेव अपने प्रकाश से प्रकाशित करते हैं ॥२ ॥

१२६९. भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः ।
नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः परि द्यावापृथिवी यन्ति सद्यः ॥३ ॥

सूर्यदेव की अश्वरूपी किरणें कल्याणकारी जलों को सुखाने वाली, तत्पश्चात् वृष्टि करने वाली आश्चर्यजनक, आनन्दकारी तथा निरन्तर गतिशील हैं । वे रश्मियाँ वन्दित होती हुई दिव्यलोक के (पृष्ठ भाग पर) सर्वोच्च विस्तृत भाग पर फैलती हैं । यही द्युलोक और भूलोक पर भी शीघ्र विस्तार युक्त होती हैं ॥३ ॥



१२७०. तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार ।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥४ ॥

वह (पूर्वोक्त मन्त्र के महान् कार्य) सूर्यदेव के देवत्व का कारण है । जब वे सूर्यदेव अपनी हरणशील किरणों को आकाश से विलग कर केन्द्र में धारण करते हैं, तब रात्रि इस विश्व के ऊपर गहन तमिस्रा का आवरण डाल देती है ॥४ ॥

१२७१. तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे ।
अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥५ ॥

द्युलोक की गोद में स्थित सूर्यदेव, मित्र और वरुणदेवों का वह रूप प्रकट करते हैं, जिससे वे मनुष्यों को सब ओर से देखते हैं । इनकी किरणें अनन्त विश्व में एक ओर प्रकाश और चेतना भर देती हैं, तो दूसरी ओर अन्धकार भर जाता है ॥५ ॥

[सूर्य की किरणों में दृश्य प्रकाश के साथ-साथ अदृश्य चेतना का प्रवाह भी रहता है ।]

१२७२. अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥६ ॥

हे देवो ! आप सूर्योदय काल से ही हमें आपत्तियों और दुष्कर्म रूपी पापों से संरक्षित करें । हमारी इस कामना को मित्र, वरुण, अदिति, समुद्र, पृथ्वी और दिव्यलोक सभी देव भी अनुमोदित करें ॥६ ॥

[सूक्त - ११६]

[**ऋषि-** कक्षीवान् दैर्घतमस (औशिज) । **देवता-** अश्विनीकुमार । **छन्द-** त्रिष्टुप् ।]

इस सूक्त में अश्विनीकुमारों की स्तुति में उनकी अनेक विधाओं का वर्णन है । जैसे अंतरिक्ष यान, वायुयान, नौकाएँ, जल के अन्दर जाने वाली (पनडुब्बियाँ) नौकाएँ, रेगिस्तानों में जल पहुँचाने की विद्या, कायाकल्प, नेत्रदान, कृत्रिम अंगों का प्रत्यारोपण, वन्ध्या गाय को दुधारू बना देना आदि —

१२७३. नासत्याभ्यां बर्हिरिव प्र वृञ्जे स्तोमाँ इयर्म्यभ्रियेव वातः ।
यावर्भगाय विमदाय जायां सेनाजुवा न्यूहतू रथेन ॥१ ॥

सेना के साथ चलने वाले रथ से दोनों अश्विनीकुमार नौजवान विमद की धर्मपत्नी को उसके घर छोड़ आये थे । सत्यवान् अश्विनीकुमारों के निमित्त हम स्तोत्र वाणियों को वैसे ही प्रेरित करते हैं, जैसे वायु मेघमण्डल में स्थित जलों को वृष्टि हेतु प्रेरित करते हैं तथा यज्ञकर्त्ता कुश के आसनों को फैलाते हैं ॥१ ॥

१२७४. वीळुपत्मभिराशुहेमभिर्वा देवानां वा जूतिभिः शाशदाना ।
तद्रासभो नासत्या सहस्रमाजा यमस्य प्रधने जिगाय ॥२ ॥

हे सत्ययुक्त अश्विनीकुमारो ! आप दोनों अतिवेग से आकाश में उड़ने वाले, तीव्र गति से जाने वाले, देवताओं की गति से चलने वाले यानों से भी अति तीव्र गति से गमनशील हैं । आपके यानों से संयुक्त हुए रासभ ने यम को आनन्दित करने वाले युद्ध में हजारों की संख्या वाले शत्रु सैनिकों पर विजय प्राप्त की थी ॥२ ॥

१२७५. तुग्रो ह भुज्युमश्विनोदमेघे रयिं न कश्चिन्ममृवाँ अवाहाः ।
तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभिरन्तरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभिः ॥३ ॥

जैसे मरणासन्न मनुष्य अपने धन की इच्छा त्याग देते हैं, उसी प्रकार अपने पुत्र की आकांक्षा त्यागकर तुग्र



नरेश ने अपने भुज्यु नामक पुत्र को शत्रुपक्ष पर आक्रमण करने हेतु अति गम्भीर महासागर में प्रवेश की आज्ञा दी । उसे आप दोनों अपनी सामर्थ्यों द्वारा अन्तरिक्ष यानों तथा पनडुब्बियों और नौकाओं के सहयोग से निकाल कर उसके पिता के समीप ले गये ॥३ ॥

१२७६. **तिस्रः क्षपस्त्रिरहातिव्रजद्भिर्नासत्या भुज्युमूहथुः पतङ्गैः ।**
समुद्रस्य धन्वन्नार्द्रस्य पारे त्रिभी रथैः शतपद्भिः षळश्वैः ॥४ ॥

हे सत्य से युक्त अश्विनीकुमारो ! अति गहन सागर से दूर जहाँ मरुस्थल है, वहाँ से तीन दिवस और तीन रात्रि निरन्तर चलते हुए, अतिवेग से गमनशील सौ चक्रों और छः अश्वों (अश्वशक्ति) सम्पन्न यन्त्रों वाले, पक्षी के समान आकाश मार्ग से जाते हुए तीन यानों द्वारा आप दोनों ने भुज्यु को उसके निवास पर पहुँचाया ॥४ ॥

१२७७. **अनारम्भणे तदवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे ।**
यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नावमातस्थिवांसम् ॥५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! विश्राम से रहित, आश्रय रहित जहाँ (बचाव के लिए) हाथ में पकड़ने के लिए कोई भी पदार्थ नहीं, ऐसे अतिगहन महासमुद्र में से आप दोनों ने सौ पतवारों से चलने वाली नाव पर चढ़ाकर भुज्यु को उसके निवास स्थल पर पहुँचाया था । यह दुस्साहसिक कार्य निश्चित ही अति वीरता से युक्त था ॥५ ॥

१२७८. **यमश्विना ददथुः श्वेतमश्वमघाश्वाय शश्वदित्स्वस्ति ।**
तद्वां दात्रं महि कीर्तेन्यं भूत्पैद्वो वाजी सदमिद्धव्यो अर्यः ॥६ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने अघाश्व भूपति (नरेश) के लिए जिस सफेद अश्व को प्रदान किया, वह सदैव मंगलकारी है । ऐसा दान अति सराहनीय हुआ । शत्रुदल पर आक्रमणकारी "पेदु" के लिए दिया हुआ निपुण घोड़ा भी सदैव प्रशंसनीय है ॥६ ॥

१२७९. **युवं नरा स्तुवते पज्रियाय कक्षीवते अरदतं पुरन्धिम् ।**
कारोतराच्छफादश्वस्य वृष्णः शतं कुंभाँ असिञ्चतं सुरायाः ॥७ ॥

हे नेतृत्व क्षमता सम्पन्न अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने ऊँचे कुल में उत्पन्न स्तोता कक्षीवान् को नगर के संरक्षणार्थ श्रेष्ठ परामर्श दिया । बलशाली अश्व के खुर के समान आकृति वाले विशेष पात्र से स्वच्छ जल के सौ घड़े आप दोनों ने पूर्ण करके स्थापित किये ॥७ ॥

१२८०. **हिमेनाग्निं घ्रंसमवारयेथां पितुमतीमूर्जमस्मा अधत्तं ।**
ऋबीसे अत्रिमश्विनावनीतमुन्निन्यथुः सर्वगणं स्वस्ति ॥८ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने प्रचण्ड अग्निदेव को बर्फयुक्त शीतल जल से शान्त किया । असुरों द्वारा स्वराज्य के लिए संघर्षरत अन्धेरे कारावास में रखे गये अत्रि ऋषि को सहयोगियों के साथ कारावास तोड़कर आपने मुक्त किया तथा दुर्बल बने ऋषि अत्रि को पौष्टिक और शक्तिवर्धक आहार देकर हृष्ट-पुष्ट किया ॥८ ॥

१२८१. **परावतं नासत्यानुदेथामुच्चाबुध्नं चक्रथुर्जिह्मबारम् ।**
क्षरन्नापो न पायनाय राये सहस्राय तृष्यते गोतमस्य ॥९ ॥

सत्य के प्रति स्थिर हे अश्विनीकुमारो ! आप कुएँ के पानी को एक स्थान से दूसरे स्थान तक अति दूर ले गये । इस हेतु आपने कुएँ के आधार स्थल को ऊँचा किया और (नहर आदि) टेढ़े मार्ग से जल प्रवाहित किया । उसी जल को गौतम ऋषि के आश्रम तक ले जाकर आश्रम वासियों को पेय जल उपलब्ध कराया । आश्रम वासियों को सिंचाई के जल से सहस्रों तरह की धान्यादि सम्पदा भी प्राप्त हुई ॥९ ॥



१२८२. जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं प्रामुञ्चतं द्रापिमिव च्यवानात्।
प्रातिरतं जहितस्यायुर्दस्रादित्पतिमकृणुतं कनीनाम् ॥१० ॥

शत्रुओं का संहार करने वाले सत्यनिष्ठ हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने शरीर से जीर्ण च्यवन ऋषि को कवच उतारने के समान ही बुढ़ापे रूपी जीर्ण काया को उतारकर तरुण बना दिया । अतिवृद्ध होने से अशक्त च्यवन को दीर्घायुष्य प्रदान किया । तत्पश्चात् उन्हें आप दोनों ने सुन्दर स्त्रियों का पति बना दिया ॥१० ॥

१२८३. तद्वां नरा शंस्यं राध्यं चाभिष्टिमन्नासत्या वरूथम्।
यद्विद्वांसा निधिमिवापगूळ्हमुद्दर्शतादूपथुर्वन्दनाय ॥११ ॥

सत्य से युक्त नेतृत्व प्रदान करने वाले हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों के श्रेष्ठ सराहनीय कार्य स्तुति और आराधना के योग्य हैं । हे ज्ञानवान् अश्विनीकुमारो ! जो वन्दन ऋषि गहरे गर्त में पड़े थे, उन्हें आप दोनों ने गुप्त स्थल से धन को उठाने के समान ही गर्त से निकाला ॥११ ॥

१२८४. तद्वां नरा सनये दंस उग्रमाविष्कृणोमि तन्यतुर्न वृष्टिम्।
दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णा प्र यदीमुवाच ॥१२ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! अथर्वकुल में जन्म लेने वाले दधीचि ऋषि ने अश्व मुख से आपको मधु विद्या का अभ्यास कराया । आपने इस प्रचण्ड पुरुषार्थ को सम्पन्न किया । जन सेवा की कामना से वर्षा के पूर्व घोषणा करने वाले मेघों की भाँति हम आपके इन कार्यों का प्रचार करते हैं ॥१२ ॥

१२८५. अजोहवीन्नासत्या करा वां महे यामन्पुरुभुजा पुरन्धिः।
श्रुतं तच्छासुरिव वध्रिमत्या हिरण्यहस्तमश्विनावदत्तम् ॥१३ ॥

हे सत्य से युक्त अश्विनीकुमारो ! आप दोनों असंख्यों के पालक, पोषक और कर्त्तव्यपरायण गुणों से युक्त हैं । लम्बी यात्रा के समय आप दोनों का कुशाग्र मति वाली स्त्री ने आवाहन किया था, उस स्त्री की प्रार्थना को राजा की आज्ञा जैसा मानकर आपने उसे हिरण्यहस्त नामक श्रेष्ठ पुत्र प्रदान किया ॥१३ ॥

१२८६. आस्नो वृकस्य वर्तिकामभीके युवं नरा नासत्यामुमुक्तम्।
उतो कविं पुरुभुजा युवं ह कृपमाणमकृणुतं विचक्षे ॥१४ ॥

हे सत्य से युक्त अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने उपयुक्त वेला में भेड़ियों के मुख से चिड़िया को मुक्त किया । हे भोजन द्वारा असंख्यों के पालक ! दृढ़ निश्चय के सहित प्रार्थना करने पर आप दोनों ने कृपा पूर्वक एक नेत्रहीन कवि को श्रेष्ठ दर्शन हेतु दृष्टि प्रदान की ॥१४ ॥

१२८७. चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितक्म्यायाम्।
सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम् ॥१५ ॥

जिस प्रकार पक्षी का पंख गिर जाता है वैसे ही खेल राजा से सम्बन्धित विश्पला स्त्री का पैर युद्ध में कट गया था । ऐसे रात्रिकाल में ही उस विश्पला को युद्ध प्रारम्भ होने के पश्चात् आक्रमण करने के लिए लोहे की जाँघ आप दोनों ने लगाकर तैयार किया ॥१५ ॥

१२८८. शतं मेषान्वृक्ये चक्षदानमृज्राश्वं तं पितान्धं चकार।
तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्तं दस्रा भिषजावनर्वन् ॥१६ ॥

ऋज्राश्व ने अपने पिता की सौ भेड़ों को भेड़िये के भक्षण हेतु छोड़ने का अपराध किया । दण्डस्वरूप उसे



उसके पिता ने दृष्टि विहीन कर दिया । हे असत्य रहित, शत्रु संहारक वैद्यो ! (अश्विनीकुमारो !) उन नेत्रहीन (ऋज्राश्व) को कभी खराब न होने वाली आँखें देकर आप दोनों ने उसे दृष्टिहीन दोष से मुक्त किया ॥१६ ॥

१२८९. आ वां रथं दुहिता सूर्यस्य कार्ष्मेवातिष्ठदर्वता जयन्ती ।
विश्वे देवा अन्वमन्यन्त हृद्भिः समु श्रिया नासत्या सचेथे ॥१७ ॥

हे सत्य से युक्त अश्विनीकुमारो ! सूर्य की पुत्री उषा घुड़सवारी प्रतिस्पर्धा (प्रतियोगिता) में विजयी होती हुई आपके रथ पर आकर विराजमान हो गई । सभी देवताओं ने उसका हार्दिक अभिनन्दन किया । बाद में आप दोनों भी सूर्य की पुत्री उषा से विशेष शोभायमान हुए ॥१७ ॥

१२९०. यदयातं दिवोदासाय वर्तिर्भरद्वाजायाश्विना हयन्ता ।
रेवदुवाह सचनो रथो वां वृषभश्च शिंशुमारश्च युक्ता ॥१८ ॥

हे आवाहन योग्य अश्विनीकुमारो ! जब आप दोनों अन्नदाता दिवोदास के घर पर गये, तब उपभोग्य धन से परिपूर्ण रथ आपको ले गये थे । उस समय आपके रथ को शक्तिशाली और शत्रु विध्वंसक अश्व खींच रहे थे । यह आपकी ही विलक्षण सामर्थ्य है ॥१८ ॥

१२९१. रयिं सुक्षत्रं स्वपत्यमायुः सुवीर्यं नासत्या वहन्ता ।
आ जह्नावीं समनसोप वाजैस्त्रिरह्नो भागं दधतीमयातम् ॥१९ ॥

हे असत्य रहित अश्विनीकुमारो ! आप दोनों हविष्यान्नों द्वारा तीनों कालों में यजन करने वाली जह्नु की प्रजा को श्रेष्ठ क्षात्र बल, सुसंतति, उत्तम वैभव सम्पदा तथा श्रेष्ठ शौर्यमय जीवन स्वयं उनके समीप जाकर प्रदान करते हैं ॥१९ ॥

१२९२. परिविष्टं जाहुषं विश्वतः सीं सुगेभिर्नक्तमूहथू रजोभिः ।
विभिन्दुना नासत्या रथेन वि पर्वताँ अजरयू अयातम् ॥२० ॥

अविनाशी, सत्य से युक्त हे अश्विनीकुमारो ! जाहुष राजा के चारों ओर से शत्रुसेना द्वारा घिरे होने पर आप दोनों ने रात्रिकाल में उस राजा को उस घेरे से उठाया और गुप्त लेकिन आसान मार्ग से उसे दूर सुरक्षित स्थान पर पहुँचाया । विशेष ढंग से शत्रु के घेरे को तोड़ने में सक्षम आप दोनों रथ पर बैठकर पर्वतों को लाँघकर अति दूर चले गये ॥२० ॥

१२९३. एकस्या वस्तोरावतं रणाय वशमश्विना सनये सहस्रा ।
निरहतं दुच्छुना इन्द्रवन्ता पृथुश्रवसो वृषणावरातीः ॥२१ ॥

हे सामर्थ्यवान् अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने वश नामक राजा को सहस्रों प्रकार के असंख्य धनों की प्राप्ति के लिए एक ही दिन में पूर्ण संरक्षणों से युक्त कर दिया । पृथुश्रवा के कष्टकर रिपुओं को इन्द्रदेव के सहयोग से आप दोनों ने पूर्णरूप से नष्ट कर दिया ॥२१ ॥

१२९४. शरस्य चिदार्चत्कस्यावतादा नीचादुच्चा चक्रथुः पातवे वाः ।
शयवे चिन्नासत्या शचीभिर्जसुरये स्तर्यं पिप्यथुर्गाम् ॥२२ ॥

हे सत्यपालक अश्विनीकुमारो ! प्यास से पीड़ित ऋचत्क के पुत्र शर के पीने हेतु आप दोनों जलस्तर को गहरे कुएँ से ऊपर ले आये । आप दोनों ने अपनी सामर्थ्यों से अत्यन्त कृषकाय शयु ऋषि के निमित्त वन्ध्या (प्रसूत न होने वाली) गाय को दुधारू बना दिया ॥२२ ॥



१२९५. अवस्यते स्तुवते कृष्णियाय ऋजूयते नासत्या शचीभिः ।
पशुं न नष्टमिव दर्शनाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ॥२३ ॥

हे सत्य से युक्त अश्विनीकुमारो ! आप दोनों की प्रार्थना करने वाले और अपनी रक्षा के इच्छुक सुगम मार्ग से जाने वाले, कृष्णपुत्र विश्वक के विनष्ट हुए पुत्र विष्णाप्व को, खोये हुए पशु के समान (खोजकर) आप दोनों ने अपनी सामर्थ्य शक्तियों से, दर्शनार्थ उपस्थित कर दिया ॥२३ ॥

१२९६. दश रात्रीरशिवेना नव द्यूनवनद्धं श्नथितमप्स्व१न्तः ।
विप्रुतं रेभमुदनि प्रवृक्तमुन्निन्यथुः सोममिव स्रुवेण ॥२४ ॥

दुष्ट राक्षसों द्वारा पाश (रज्जु) से बाँधकर जलों के बीच दस रातों और नौ दिन तक फेंके हुए, भीगे, संत्रस्त और पीड़ित रेभ नामक ऋषि को आप दोनों उसी प्रकार बाहर निकालकर लाये, जिस प्रकार स्रुवा से सोमरस को ऊपर उठाते हैं ॥२४ ॥

१२९७. प्र वां दंसांस्यश्विनाववोचमस्य पतिः स्यां सुगवः सुवीरः ।
उत पश्यन्नश्नुवन्दीर्घमायुरस्तमिवेज्जरिमाणं जगम्याम् ॥२५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों के कर्मों का हमने इस प्रकार से श्रेष्ठ वर्णन किया है, जिससे हम उत्तम गायों और शूरवीर पुत्रों से सम्पन्न इस राष्ट्र के शासक बन सकें । दीर्घ जीवन का लाभ लेकर दर्शनादि सामर्थ्यों से युक्त रहकर अपने घर में प्रविष्ट होने की तरह ही वृद्धावस्था में प्रवेश करें ॥२५ ॥

[सूक्त -११७]

[ऋषि- कक्षीवान् दैर्घतमस (औशिज) । देवता- अश्विनीकुमार । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

इस सूक्त में अश्विनीकुमारों के पास मन की गति से चलने वाले यान, अंधापन - बहरापन दूर करने की सामर्थ्य, अंग प्रत्यारोपण की क्षमताएँ होने का वर्णन है —

१२९८. मध्वः सोमस्याश्विना मदाय प्रत्नो होता विवासते वाम् ।
बर्हिष्मती रातिर्विश्रिता गीरिषा यातं नासत्योप वाजैः ॥१ ॥

हे सत्य से युक्त अश्विनीकुमारो ! प्राचीन काल से आपकी सम्पूर्ण सेवा करने वाले आपके साधक, मधुर सोमरस के आनन्द को आपके लिए लाये हैं । हमारी प्रार्थनाएँ आप तक पहुँच गई हैं । इस कुशा के आसन पर आपके निमित्त सोमपात्र भरकर रखा है, अतः आप दोनों अपनी अन्न युक्त शक्तियों के साथ हमारे पास आयें और हमारा सहयोग करें ॥१ ॥

१२९९. यो वामश्विना मनसो जवीयान्रथः स्वश्वो विश आजिगाति ।
येन गच्छथः सुकृतो दुरोणं तेन नरा वर्तिरस्मभ्यं यातम् ॥२ ॥

नेतृत्व की क्षमता से सम्पन्न हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों के रथ मन से भी तीव्र गतिशील, उत्तम अश्वों से युक्त रहते हैं । ऐसे रथ आपको प्रजाजनों के बीच ले जाते हैं, उसी से सत्कर्मरत साधकों के घर आप जाते हैं, उसी रथ पर आरूढ़ होकर आप दोनों हमारे यहाँ पधारें ॥२ ॥

१३००. ऋषिं नरावंहसः पाञ्चजन्यमृबीसादत्रिं मुञ्चथो गणेन ।
मिनन्ता दस्योरशिवस्य माया अनुपूर्वं वृषणा चोदयन्ता ॥३ ॥

नेतृत्व प्रदान करने वाले हे बलशाली अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने पंचजनों के कल्याण के निमित्त



प्रयत्नशील अत्रि ऋषि को, पीड़ादायक कारावास से उनके सहयोगियों (अनुयायियों) के साथ मुक्त कराया। शत्रुओं का संहार करने वाले आप दोनों शत्रु की विनाशकारी मायावी चालों को पहले से ही ज्ञात करके क्रमश: दूर करते हैं ॥३ ॥

१३०१. अश्वं न गूळ्हमश्विना दुरेवैर्ऋषिं नरा वृषणा रेभमप्सु ।
सं तं रिणीथो विप्रुतं दंसोभिर्न वां जूर्यन्ति पूर्व्या कृतानि ॥४ ॥

हे शक्तिशाली नेतृत्व प्रदान करने वाले अश्विनीकुमारो ! दुष्कर्मियों द्वारा जलों के मध्य फेंके गए ऋषि रेभ की अति दुर्बल देह को, आप दोनों ने अपने औषधि आदि उपचारों से विशेष हृष्ट-पुष्ट बना दिया। घोड़े जैसी सुदृढ़ देह से युक्त कर दिया। आपके जो पूर्वकृत कार्य हैं वे अविस्मरणीय हैं ॥४ ॥

१३०२. सुषुप्वांसं न निर्ऋतेरुपस्थे सूर्यं न दस्रा तमसि क्षियन्तम् ।
शुभे रुक्मं न दर्शतं निखातमुदूपथुरश्विना वन्दनाय ॥५ ॥

हे अरि विध्वंसक अश्विनीकुमारो ! जिस प्रकार आप अन्धकार में छिपे सूर्यदेव को उदय के पूर्व ऊपर लाते हैं, जिस प्रकार जमीन पर सोये पुरुष को ऊपर उठाते हैं अथवा भूमि के गर्त में पड़े हुए सुन्दर स्वर्ण के आभूषण को ऊपर धारण करते हैं, उसी प्रकार आप दोनों ने वन्दन को गर्त से बाहर निकाला ॥५ ॥

१३०३. तद्वां नरा शंस्यं पज्रियेण कक्षीवता नासत्या परिज्मन् ।
शफादश्वस्य वाजिनो जनाय शतं कुम्भाँ असिञ्चतं मधूनाम् ॥६ ॥

हे सत्य से युक्त नेतृत्व प्रदान करने वाले अश्विनीकुमारो ! अङ्गिरस गोत्र में पज्र कुलोत्पन्न कक्षीवान् ऋषि के निमित्त आपके कार्य अति प्रशंसनीय हैं, जो शक्तिशाली अश्व के खुर के समान महापात्र से आप दोनों ने मधु के सौ घड़ों को सभी मनुष्यों के पीने हेतु पूर्णरूप से भरकर तैयार रखा था ॥६ ॥

१३०४. युवं नरा स्तुवते कृष्णियाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ।
घोषायै चित्पितृषदे दुरोणे पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्तम् ॥७ ॥

हे नेतृत्व प्रदान करने वाले अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने प्रार्थना करने वाले कृष्ण के पौत्र तथा विश्वक के पुत्र विष्णाप्व को उसके पिता के पास पहुँचाया। पिता के गृह में ही रोगी और वृद्धा के रूप में रहने वाली को रोग मुक्त करके नवयुवती बनाकर सुयोग्य वर आप दोनों ने ही प्रदान किया ॥७ ॥

१३०५. युवं श्यावाय रुशतीमदत्तं महः क्षोणस्याश्विना कण्वाय ।
प्रवाच्यं तद्वृषणा कृतं वां यन्नार्षदाय श्रवो अध्यधत्तम् ॥८ ॥

हे शक्ति सामर्थ्य युक्त अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने ही श्याव ऋषि को उत्तम तेजस्विनी स्त्री प्रदान की। नेत्रहीन कण्व को उत्तम ज्योति दी। नृषद पुत्र जो बधिर था, उसे सुनने की शक्ति प्रदान की। आप दोनों के ये सभी कार्य अति प्रशंसनीय हैं ॥८ ॥

१३०६. पुरू वर्पांस्यश्विना दधाना नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम् ।
सहस्रसां वाजिनमप्रतीतमहिहनं श्रवस्यं१ तरुत्रम् ॥९ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों विभिन्न रूप धारण करके रमण करते हैं। आपने पेदु को विजयशील, शत्रुओं का विनाश करने वाला, असंख्य धनों को प्रदान करने वाला, कीर्तिमान, संरक्षण कर्ता, बलशाली तथा तीव्र गतिमान् अश्व प्रदान किया ॥९ ॥



१३०७. एतानि वां श्रवस्या सुदानू ब्रह्माङ्गूषं सदनं रोदस्योः ।
यद्वां पज्रासो अश्विना हवन्ते यातमिषा च विदुषे च वाजम् ॥१० ॥

हे श्रेष्ठ दानदाता अश्विनीदेवो ! आप दोनों के ये कर्म श्रवणीय हैं । आपके निमित्त वेद मन्त्र रूपी स्तोत्र बने हैं तथा आप दोनों स्वर्गलोक और पृथ्वीलोक दोनों स्थानों पर रहते हैं । हे अश्विनीदेवो ! क्योंकि आप दोनों को आङ्गिरस आवाहित करते हैं, अतएव अन्न के साथ आकर यजमान को भी अन्न बल प्रदान करें ॥१० ॥

१३०८. सूनोर्मानेनाश्विना गृणाना वाजं विप्राय भुरणा रदन्ता ।
अगस्त्ये ब्रह्मणा वावृधाना सं विश्पलां नासत्यारिणीतम् ।११ ॥

हे सर्व पोषणकर्त्ता, सत्य से युक्त अश्विनीकुमारो ! आप दोनों से मान ने पुत्र प्राप्ति के लिए प्रार्थना की, उस यजमान को पुत्रोत्पत्ति की सामर्थ्य प्रदान की । अगस्त्य के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर आपने विश्पला के भग्न पाँव को ठीक किया ॥११ ॥

१३०९. कुह यान्ता सुष्टुतिं काव्यस्य दिवो नपाता वृषणा शयुत्रा ।
हिरण्यस्येव कलशं निखातमुदूपथुर्दशमे अश्विनाहन् ॥१२ ॥

हे सामर्थ्यवान् अश्विनीकुमारो ! आप दोनों दिव्यलोक को स्थायित्व देने वाले और शयु के संरक्षक हैं । शुक्र की प्रार्थना स्वीकार करने के बाद आप दोनों किस ओर जाते हैं ? कुएँ में पतित रेभ को दसवें दिन, गर्त में पड़े स्वर्ण कुम्भ के समान निकालने के पश्चात् आप दोनों कहाँ गये ? ॥१२ ॥

१३१०. युवं च्यवानमश्विना जरन्तं पुनर्युवानं चक्रथुः शचीभिः ।
युवो रथं दुहिता सूर्यस्य सह श्रिया नासत्यावृणीत ॥१३ ॥

हे सत्य पर दृढ़ अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने अपनी शक्ति सामर्थ्यों से अतिवृद्ध च्यवन ऋषि को पुनः तरुण बना दिया था । सूर्य की पुत्री ने अपने सौभाग्य सहित आप दोनों के रथ पर ही विराजमान होना स्वीकार किया था ॥१३ ॥

१३११. युवं तुग्राय पूर्व्येभिरेवैः पुनर्मन्यावभवतं युवाना ।
युवं भुज्युमर्णसो निःसमुद्राद्विभिरूहथुर्ऋज्रेभिरश्वैः ॥१४ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों युवा तुग्र नरेश द्वारा पिछले समय में किये गये श्रेष्ठ कर्मों से पूजनीय थे ही; परन्तु अब जो उसके पुत्र भुज्यु को अथाह महासमुद्र से सुरक्षित करके पक्षी के समान उड़ने वाले अश्वों से युक्त यानों द्वारा उसके पिता के पास पहुँचाया, इससे तुग्र नरेश के लिए आप दोनों अत्यन्त सम्मानास्पद बन गये ॥१४ ॥

१३१२. अजोहवीदश्विना तौग्र्यो वां प्रोळ्हः समुद्रमव्यथिर्जगन्वान् ।
निष्टमूहथुः सुयुजा रथेन मनोजवसा वृषणा स्वस्ति ॥१५ ॥

हे सामर्थ्यवान् अश्विनीकुमारो ! तुग्र नरेश के पुत्र भुज्यु को सागर यात्रा हेतु भेजा गया था । वे बिना किसी कष्ट के वहाँ चले गये । जब उनने सहयोग के लिए आप दोनों का आवाहन किया तब उसे मन के समान गतिशील तथा श्रेष्ठ ढंग से जोते गये रथ द्वारा आप दोनों ने पिता के घर सकुशल पहुँचा दिया ॥१५ ॥

१३१३. अजोहवीदश्विना वर्तिका वामास्नो यत्सीममुञ्चतं वृकस्य ।
वि जयुषा ययथुः सान्वद्रेर्जातं विष्वाचो अहतं विषेण ॥१६ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! वर्तिका के आवाहन पर वहाँ पहुँचकर भेड़िये के मुख से आप दोनों ने मुक्त किया, ऐसे



में वे अपने विजयी रथ से पर्वत के शिखर को पार करके पहुँचे । उसे घेरने वाले शत्रु के सैनिकों को आपने विष दग्ध वाणों से मार डाला ॥१६ ॥

१३१४. शतं मेषान्वृक्ये मामहानं तमः प्रणीतमशिवेन पित्रा ।
आक्षी ऋज्राश्वे अश्विनावधत्तं ज्योतिरन्धाय चक्रथुर्विचक्षे ॥१७ ॥

ऋज्राश्व ने सौ भेड़ें, भेड़िये को भक्षणार्थ दीं, इससे क्रुद्ध होकर उसके पिता ने दृष्टिहीन (अन्धा) कर दिया । हे अश्विनीकुमारो ! उस ऋज्राश्व की दोनों आँखों में आपने ज्योति प्रदान की । दृष्टिहीन को दृष्टि प्राप्त हो, इस उद्देश्य से आप दोनों ने उसकी आँखों का पुनर्निर्माण कर दिया ॥१७ ॥

१३१५. शुनमन्धाय भरमह्वयत्सा वृकीरश्विना वृषणा नरेति ।
जारः कनीनइव चक्षदान ऋज्राश्वः शतमेकं च मेषान् ॥१८ ॥

ऋज्राश्व के दृष्टिहीन होने पर वृकी उसके सुख के लिए इस प्रकार प्रार्थना करने लगी कि हे सामर्थ्यशाली नेतृत्व प्रदान करने वाले देवो ! तरुण जार के द्वारा तरुणी को सर्वस्व सौंप देने के समान बेसमझी में एक सौ एक भेड़ें मेरे लिए भक्षण हेतु दी गई थीं ॥१८ ॥

१३१६. मही वामूतिरश्विना मयोभूरुत स्रामं धिष्ण्या सं रिणीथः ।
अथा युवामिदह्वयत्पुरन्धिरागच्छतं सीं वृषणाववोभिः ॥१९ ॥

हे ज्ञान सम्पन्न सामर्थ्यशाली अश्विनीकुमारो ! आप दोनों की संरक्षण शक्ति बड़ी कल्याणकारी है । आप अंग - भंग (वालों) को भली प्रकार ठीक कर देते हैं । आप दोनों का ही श्रेष्ठ बुद्धिमती स्त्री ने आवाहन किया है कि अपनी संरक्षण सामर्थ्यों के साथ आयें ॥१९ ॥

१३१७. अधेनुं दस्रा स्तर्यं१ विषक्तामपिन्वतं शयवे अश्विना गाम् ।
युवं शचीभिर्विमदाय जायां न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषाम् ॥२० ॥

हे शत्रुनाशक अश्विनीकुमारो ! गर्भ धारण करने में असमर्थ, दुर्बल, दुग्धरहित गाय को शयु ऋषि के कल्याणार्थ आप दोनों ने दुधारू बना दिया । पुरु मित्र की पुत्री को विमद के लिए धर्मपत्नी रूप में आपने ही अपनी सामर्थ्यों से दिलवाया ॥२० ॥

१३१८. यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा ।
अभि दस्युं बकुरेणा धमन्तोरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय ॥२१ ॥

हे शत्रु विनाशक अश्विनीकुमारो ! जौ आदि धान्य को हल से वपन करके मनुष्यों के लिए अन्न रस देते हुए और शत्रु को तेजधार वाले शस्त्र से विनष्ट करते हुए आप दोनों ही आर्यों के लिए विस्तृत प्रकाश दिखाते हैं ॥२१ ॥

१३१९. आथर्वणायाश्विना दधीचेऽश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम् ।
स वां मधु प्र वोचदृतायन्त्वाष्ट्रं यद्दस्रावपिकक्ष्यं वाम् ॥२२ ॥

हे शत्रु संहारक अश्विनीकुमारो ! अथर्वकुल में उत्पन्न दधीचि ऋषि के अश्व का सिर आप दोनों ने लगाया, तब उस ऋषि ने यज्ञ मार्ग को प्रसारित करते हुए आप दोनों को मधु विद्या का उपदेश दिया तथा आप दोनों को शरीर के भग्न अङ्गों को जोड़ने की विद्या भी सिखाई ॥२२ ॥



१३२०. सदा कवी सुमतिमा चके वां विश्वा धियो अश्विना प्रावतं मे।
अस्मे रयिं नासत्या बृहन्तमपत्यसाचं श्रुत्यं रराथाम्॥२३॥

सत्य के प्रति स्थिर, कवि हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों हमें सदैव सद्बुद्धि की प्रेरणा प्रदान करें। हमें सत्कर्मों और सद्ज्ञान की ओर उत्तम रीति से प्रेरित करें। आप दोनों सुसन्तति से युक्त, श्रेष्ठ धनसम्पदा हमें प्रदान करें॥२३॥

१३२१. हिरण्यहस्तमश्विना रराणा पुत्रं नरा वध्रिमत्या अदत्तम्।
त्रिधा ह श्यावमश्विना विकस्तमुज्जीवस ऐरयतं सुदानू॥२४॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों श्रेष्ठ दानदाता, औदार्यपूर्ण और नेतृत्व क्षमता से सम्पन्न हैं। बाँझ स्त्री को पुत्रदान देकर उसके हाथों को स्वर्ण सम्पदा को धारण करने योग्य बनाया। जो श्याव तीन स्थानों से घायलावस्था में पड़े थे, उन्हें जीवनदान देने हेतु आप दोनों के द्वारा उत्तम ढंग से परिचर्या की गयी॥२४॥

१३२२. एतानि वामश्विना वीर्याणि प्र पूर्व्याण्यायवोऽवोचन्।
ब्रह्म कृण्वन्तो वृषणा युवभ्यां सुवीरासो विदथमा वदेम॥२५॥

हे सामर्थ्यवान् अश्विनीकुमारो ! आपके शौर्ययुक्त कर्मों की प्राचीन समय से ही सभी मनुष्य प्रशंसा करते रहे हैं। आप दोनों के निमित्त ही हमने इस स्तोत्र की रचना की है। इससे हम श्रेष्ठ वीर बनकर, सभाओं में प्रखर प्रवक्ता बनें॥२५॥

[सूक्त - ११८]

[**ऋषि**- कक्षीवान् दैर्घतमस (औशिज)। **देवता**- अश्विनीकुमार। **छन्द**- त्रिष्टुप्।]

१३२३. आ वां रथो अश्विना श्येनपत्वा सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ्।
यो मर्त्यस्य मनसो जवीयान्त्रिवन्धुरो वृषणा वातरंहाः॥१॥

हे शक्तिशाली अश्विनीकुमारो ! आप दोनों का रथ बैठने के लिए सुखप्रद, अपनी बनावट से सुदृढ़, मनुष्य के मन से भी अधिक गतिशील, वायु के समान गतिवान्, बाज़ पक्षी की तरह आकाश मार्ग में गमनशील तथा जो तीन स्थानों से सुदृढ़तायुक्त है, उस रथ से आप दोनों हमारे यहाँ पधारें॥१॥

१३२४. त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेन त्रिचक्रेण सुवृता यातमर्वाक्।
पिन्वतं गा जिन्वतमर्वतो नो वर्धयतमश्विना वीरमस्मे॥२॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप अपने तीन पहियों से युक्त, तीन बन्धनों वाले, त्रिकोणाकृति तथा उत्तम गतिशील रथ पर चढ़ कर हमारे यहाँ पहुँचें। आप हमारे लिए दुधारू गौएँ, गतिशील अश्व तथा शूरवीर सन्तानें प्रदान करें॥२॥

१३२५. प्रवद्यामना सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः।
किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः॥३॥

हे अरि विनाशक अश्विनीकुमारो ! आप दोनों अपने सुन्दर शीघ्र गतिशील रथ से यहाँ आकर सोमरस अभिषवण काल में स्तोत्रगान सुनें। आप दोनों के सम्बन्ध में पुरातन काल के ज्ञानवान् बार-बार कहते रहे हैं कि आप दरिद्रता और दुःखों का नाश करने के लिए ही विचरण करते हैं॥३॥



१३२६. आ वां श्येनासो अश्विना वहन्तु रथे युक्तास आशवः पतङ्गाः ।
ये अप्तुरो दिव्यासो न गृध्रा अभि प्रयो नासत्या वहन्ति ॥४ ॥

सत्य का पालन करने वाले हे अश्विनीकुमारो ! गिद्ध पक्षी की भाँति आकाश मार्ग में तीव्र गति से उड़ने वाले बाज़ पक्षी जिस रथ को खींचते हैं, वह रथ आप दोनों को अति शीघ्र यज्ञस्थल की ओर ले आये ॥४ ॥

१३२७. आ वां रथं युवतिस्तिष्ठदत्र जुष्ट्वी नरा दुहिता सूर्यस्य ।
परि वामश्वा वपुषः पतङ्गा वयो वहन्त्वरुषा अभीके ॥५ ॥

हे नेतृत्व प्रदान करने वाले अश्विनीकुमारो ! आप दोनों से स्नेह करने वाली सूर्यदेव की तरुणी कन्या (उषा) आपके रथ पर चढ़कर बैठ गई। इस रथ में जोते गये लाल रंग के, शरीर एवं आकृति से पक्षी की तरह उड़ने वाले अश्व, आप दोनों को यज्ञस्थल के समीप ले आयें ॥५ ॥

१३२८. उद्वन्दनमैरतं दंसनाभिरुद्रेभं दस्रा वृषणा शचीभिः ।
निष्टौग्र्यं पारयथः समुद्रात्पुनश्च्यवानं चक्रथुर्युवानम् ॥६ ॥

सामर्थ्ययुक्त, शत्रु विनाशक हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने अपनी अद्भुत सामर्थ्य शक्ति से वन्दन को और रेभ को कुएँ से निकालकर बाहर किया। तुग्र नरेश के पुत्र भुज्यु को समुद्र से उठाकर घर पहुँचाया तथा वृद्ध च्यवन को पुनः युवा बनाया था ॥६ ॥

१३२९. युवमत्रयेऽवनीताय तप्तमूर्जमोमानमश्विनावधत्तम् ।
युवं कण्वायापिरिप्ताय चक्षुः प्रत्यधत्तं सुष्टुतिं जुजुषाणा ॥७ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! कारागृह के भीतर तलघर में स्थित अत्रि ऋषि के लिए आप दोनों ने जल से अग्नि को शान्त किया और उसे पौष्टिक तथा शक्तिवर्धक अन्न प्रदान किया। इसी प्रकार कण्व क़ी आँखों को मार्ग देखने के लिए ज्योति युक्त किया। इसीलिए आप दोनों की सब ओर से प्रशंसा होती है ॥७ ॥

१३३०. युवं धेनुं शयवे नाधितायापिन्वतमश्विना पूर्व्याय ।
अमुञ्चतं वर्तिकामंहसो निः प्रति जङ्घां विश्पलाया अधत्तम् ॥८ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने प्राचीन काल में स्तुति करने वाले शयु के निमित्त गाय को दुधारू बनाया, बटेर को भेड़िये के मुख से मुक्त किया तथा विश्पला की भग्न टाँग के स्थान पर उचित प्रक्रिया (शल्य क्रिया) से लोहे की टाँग लगा दी ॥८ ॥

१३३१. युवं श्वेतं पदे इन्द्रजूतमहिहनमश्विनादत्तमश्वम् ।
जोहूत्रमर्यो अभिभूतिमुग्रं सहस्रसां वृषणं वीड्वङ्गम् ॥९ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने अहि (शत्रुओं) का नाश करने वाले सुदृढ़ एवं बलिष्ठ अंगों से युक्त, शत्रुओं को पराजित करने वाले सहस्रों प्रकार से धनों के विजेता, युद्धों में अति उपयोगी, इन्द्रदेव की प्रेरणा से युक्त, बलशाली, सफेद अश्व को पेदु के लिए प्रदान किया था ॥९ ॥

१३३२. ता वां नरा स्ववसे सुजाता हवामहे अश्विना नाधमानाः ।
आ न उप वसुमता रथेन गिरो जुषाणा सुविताय यातम् ॥१० ॥



हे नेतृत्व प्रदान करने वाले अश्विनीकुमारो ! श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न हुए आप दोनों का अपने संरक्षणार्थ हम आवाहन करते हैं । आप हमारी प्रार्थना को स्वीकार करें । हमारी प्रिय वाणियों को सुनते ही अपने रथ को धन सम्पदा से परिपूर्ण करके हमारे कल्याणार्थ यहाँ आयें ॥१० ॥

१३३३. आ श्येनस्य जवसा नूतनेनास्मे यातं नासत्या सजोषाः ।

हवे हि वामश्विना रातहव्यः शश्वत्तमाया उषसो व्युष्टौ ॥११ ॥

हे सत्य से युक्त अश्विनीदेवो ! आप दोनों एकमत होकर अपने श्येन पक्षी को अतिवेग से गतिशील करके हमारे पास आयें । हे अश्विनीदेवो ! शाश्वत रहने वाली देवी उषा के उदय होते ही हम हविष्यान्न तैयार करके आप दोनों का आवाहन करते हैं । आप आयें और हवि ग्रहण करें ॥११ ॥

[सूक्त - ११९]

[ऋषि- कक्षीवान् दैर्घतमस (औशिज) । देवता- अश्विनीकुमार । छन्द- जगती ।]

१३३४. आ वां रथं पुरुमायं मनोजुवं जीराश्वं यज्ञियं जीवसे हुवे ।

सहस्रकेतुं वनिनं शतद्वसुं श्रुष्टीवानं वरिवोधामभि प्रयः ॥१ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! विविध प्रकार की कलाकारिता से पूर्ण, मन के समान गतिमान् पावन, गतिशील अश्वों से युक्त, विविध पताकाओं से सुसज्जित, सुखदायक, सैकड़ों प्रकार के धनों से परिपूर्ण, शीघ्रगामी आपके रथ का हविष्यान्न ग्रहण करने के लिए आवाहन करते हैं, वे आयें और हमें दीर्घ जीवन प्रदान करें ॥१ ॥

१३३५. ऊर्ध्वा धीतिः प्रत्यस्य प्रयामन्यधायि शस्मन्त्समयन्त आ दिशः ।

स्वदामि घर्मं प्रति यन्त्यूतय आ वामूर्जानी रथमश्विनारुहत् ॥२ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! इस रथ के अग्रसर होने पर हमारी बुद्धि आप दोनों की प्रशंसा करते हुए उच्चस्तरीय स्तोत्रों का गान कर रही है । सभी दिशाओं के लोग इसमें सम्मिलित होते हैं । घृतादि पदार्थ श्रेष्ठ बनाकर यज्ञ के निमित्त तैयार करते हैं । यज्ञ के प्रभाव से संरक्षण करने वाली शक्तियाँ चारों ओर फैल रही हैं । आप दोनों के रथ पर सूर्य देव की तेजस्वी पुत्री देवी उषा विराजमान हैं ॥२ ॥

१३३६. सं यन्मिथः पस्पृधानासो अग्मत शुभे मखा अमिता जायवो रणे ।

युवोरह प्रवणे चेकिते रथो यदश्विना वहथः सूरिमा वरम् ॥३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जब जन साधारण के कल्याण के लिए युद्ध में अनेक विजेता महान् शूरवीर पारस्परिक स्पर्धा भाव से एकत्रित होते हैं, तब आप दोनों का रथ मन्द गति से नीचे आता हुआ दिखाई देता है । जिसमें याजकों के लिए श्रेष्ठ धन आप अपने साथ लेकर आते हैं ॥३ ॥

१३३७. युवं भुज्युं भुरमाणं विभिर्गतं स्वयुक्तिभिर्निवहन्ता पितृभ्य आ ।

यासिष्टं वर्तिर्वृषणा विजेन्यं१ दिवोदासाय महि चेति वामवः ॥४ ॥

हे शक्तिमान् अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने अपने ही प्रयासों से, पक्षियों के समान उड़ने वाले यान द्वारा जीवन के प्रति संशयात्मक स्थिति में (भ्रम में) पहुँचे हुए तुग्रपुत्र भुज्यु को, उसके माता - पिता के निकट पहुँचाया था । आप दोनों का यह सहयोग-संरक्षण दिवोदास के लिए भी अति महत्वपूर्ण था ॥४ ॥



१३३८. युवोरश्विना वपुषे युवायुजं रथं वाणी येमतुरस्य शर्ध्यम् ।
आ वां पतित्वं सख्याय जग्मुषी योषावृणीत जेन्या युवां पती ॥५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों रथ पर बैठे हुए तथा स्वयं रथ को जोतते हुए अतिशय शोभायमान हो रहे थे । रथ आपके इशारे पर ही चल रहा था । मित्रता की इच्छुक, विजय से प्राप्त करने योग्य सूर्य पुत्री देवी उषा ने आप दोनों को पतिरूप में वरण किया है ॥५ ॥

१३३९. युवं रेभं परिषूतेरुरुष्यथो हिमेन घर्मं परितप्तमत्रये ।
युवं शयोरवसं पिप्यथुर्गवि प्र दीर्घेण वन्दनस्तार्यायुषा ॥६ ॥

आप दोनों ने 'रेभ' को कष्ट से मुक्त किया । अत्रि ऋषि के कारागृह के अति गर्म स्थान को शीतल जल से शान्त किया । शयु के लिए गौओं को दुधारू बनाया तथा आप दोनों ने ही वन्दन को दीर्घ-जीवन प्रदान किया ॥६ ॥

१३४०. युवं वन्दनं निर्ऋतं जरण्यया रथं न दस्रा करणा समिन्वथः ।

क्षेत्रादा विप्रं जनथो विपन्यया प्र वामत्र विधते दंसना भुवत् ॥७ ॥

शत्रुओं का संहार करने वाले एवं कार्य में कुशल हे अश्विनीकुमारो ! रथ का जीर्णोद्धार करने के समान आपने अतिवृद्ध 'वन्दन' को नवयुवक बना दिया । प्रार्थना द्वारा प्रशंसित होकर ज्ञानवान् को भूमि से (वृक्ष उगने के समान ही) उत्पन्न किया, अतएव आप दोनों के ये सहयोग पूर्ण कार्य यहाँ स्थित व्यक्तियों के लिए अतीव प्रभावपूर्ण रहे ॥ ७ ॥

१३४१. अगच्छतं कृपमाणं परावति पितुः स्वस्य त्यजसा निबाधितम् ।

स्वर्वतीरित ऊतीर्युवोरह चित्रा अभीके अभवन्नभिष्टयः ॥८ ॥

तुग्र नामक अपने ही पिता द्वारा परित्यक्त किये जाने पर कष्ट से पीड़ित अवस्था में प्रार्थना करने वाले मन्यु के पास आप दोनों दूरवर्ती स्थान पर भी चले आये । ऐसे आप के ये संरक्षण युक्त कार्य बहुत ही अद्भुत, तेजस्वी और सबके लिए अनुकरणीय हैं ॥८ ॥

१३४२. उत स्या वां मधुमन्मक्षिकारपन्मदे । सोमस्यौशिजो हुवन्यति ।
युवं दधीचो मन आ विवासथोऽथा शिरः प्रति वामश्व्यं वदत् ॥९ ॥

जिस प्रकार मधुमक्खी मधुरस्वर में गुंजन करती है, वैसे ही सोमपान की प्रसन्नता में उशिक् के पुत्र कक्षीवान् आपका आवाहन करते हैं । जब दधीचि ऋषि के मन को आपने अपनी सेवा से प्रभावित किया, तब घोड़े के शिर से युक्त होकर उन्होंने आप दोनों (अश्विनीकुमार) के प्रति मधु विद्या का उपदेश दिया ॥९ ॥

१३४३. युवं पेदवे पुरुवारमश्विना स्पृधां श्वेतं तरुतारं दुवस्यथः ।
शर्यैरभिद्युं पृतनासु दुष्टरं चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्षणीसहम् ॥१० ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने सबके द्वारा प्रशंसनीय, तेजस्वी, युद्ध में विजय प्राप्त करने वाले, शत्रु पक्ष से अजेय, इन्द्रदेव के सदृश शत्रुओं के पराभव कर्त्ता, चपल सफेद अश्व को पेदु नरेश के लिए प्रदान किया ॥१० ॥



[सूक्त - १२०]

[**ऋषि-** कक्षीवान् दैर्घतमस (औशिज) । **देवता-** अश्विनीकुमार, १.२ दुःस्वप्ननाशक । **छन्द-** १ गायत्री, २ ककुप् उष्णिक्, ३ का- विराट् अनुष्टुप्, ४ नष्टरूपी अनुष्टुप्, ५ तनुशिरा उष्णिक्, ६ उष्णिक् (पादानुसार नहीं, केवल अक्षरानुसार) ७ विष्टारबृहती, ८ कृति, ९ विराट् अनुष्टुप्, १०-१२ गायत्री ।]

१३४४. का राधद्धोत्राश्विना वां को वां जोष उभयोः । कथा विधात्यप्रचेताः ॥१ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों को किस प्रकार की प्रार्थना प्रिय है, जिससे आप प्रसन्न होते हैं ? आप को सन्तुष्ट करने में कौन सक्षम हो सकता है ? अल्पज्ञ मनुष्य आपकी उपासना कैसे करें ? ॥१ ॥

१३४५. विद्वांसाविद्दुरः पृच्छेदविद्वानित्थापरो अचेताः । नू चिन्नु मर्ते अक्रौ ॥२ ॥

ज्ञान रहित और प्रतिभा रहित ये दोनों प्रकार के मनुष्य विद्वान अश्विनीकुमारों से ही उचित मार्गदर्शन प्राप्त कर लें । क्या वे मानव हित के सम्बन्ध में कुछ न कर पाने की असमर्थता प्रकट करेंगे ? ऐसा सम्भव नहीं, वे अवश्य ही मानवों के कल्याण के प्रति प्रेरित होंगे ॥२ ॥

१३४६. ता विद्वांसा हवामहे वां ता नो विद्वांसा मन्म वोचेतमद्य ।
प्रार्चद्दयमानो युवाकुः ॥३ ॥

हम सहयोग के लिए आप अश्विनीकुमारों का आवाहन करते हैं, आप आज हमें यहाँ आकर चिंतन प्रधान मार्गदर्शन दें, आप दोनों के प्रति मित्रता के इच्छुक ये मनुष्य हवि समर्पित करते हुए आपकी अर्चना करते हैं ॥३ ॥

१३४७. वि पृच्छामि पाक्या३ न देवान्वषट्कृतस्याद्भुतस्य दस्रा ।
पातं च सह्यसो युवं च रभ्यसो नः ॥४ ॥

हे शत्रु संहारक अश्विनीकुमारो ! हमारी प्रार्थना आप से ही है, अन्य के प्रति नहीं । अद्भुत शक्ति के उत्पादक, आदर पूर्वक दिये गये इस सोमरस को आप दोनों ग्रहण करें तथा हमें जिम्मेदारी पूर्ण कार्यों को वहन करने की सामर्थ्य प्रदान करें ॥४ ॥

१३४८. प्र या घोषे भृगवाणे न शोभे यया वाचा यजति पज्रियो वाम् ।
प्रैषयुर्न विद्वान् ॥५ ॥

घोषा ऋषि के पुत्र, भृगु ऋषि तथा ज्ञान सम्पन्न एवं अन्न के इच्छुक पज्र कुल में उत्पन्न अंगिरा ऋषि जिस प्रकार की स्तुति रूप वाणी का प्रयोग आप दोनों के प्रति करते रहे वैसी ही प्रस्तुतीकरण की विधा हमारी वाणी में भी आये ॥५ ॥

१३४९. श्रुतं गायत्रं तकवानस्याहं चिद्धि रिरेभाश्विना वाम् ।
आक्षी शुभस्पती दन् ॥६ ॥

हे कल्याण के स्वामी अश्विनीकुमारो ! प्रगति की इच्छा से प्रेरित ऋषि का यह गायत्री छन्द का स्तोत्र आप दोनों ने श्रवण किया । आप दोनों नेत्रहीनों को दृष्टि प्रदान करते हैं, इसके लिए हम आपका गुणगान करते हैं हमारा भी मनोरथ पूर्ण करें ॥६ ॥

१३५०. युवं ह्यास्तं महो रन्युवं वा यन्निरततंसतम् ।
ता नो वसू सुगोपा स्यातं पातं नो वृकादघायोः ॥७ ॥



हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों किसी साधक को प्रचुर दान भी देते हैं और किसी से धन शक्ति को पूर्णरूपेण अलग भी कर देते हैं । ऐसे आप दोनों हमारे श्रेष्ठ संरक्षक बनें । दुष्कर्मी तथा भेड़िये के समान क्रोधी शत्रुओं से हमें बचायें ॥७ ॥

१३५१. मा कस्मै धातमभ्यमित्रिणे नो माकुत्रा नो गृहेभ्यो धेनवो गुः ।
स्तनाभुजो अशिश्वीः ॥८ ॥

किसी भी प्रकार के शत्रुओं से हमारा पराभव न हो । अपने दूध से भरण - पोषण करने वाली गौएँ बछड़ों से अलग होकर हमारे घरों का कभी त्याग न करें अर्थात् हमारे घर दुग्ध आदि पोषक रसों से सदैव परिपूर्ण बने रहें ॥८ ॥

१३५२. दुहीयन्मित्रधितये युवाकु राये च नो मिमीतं वाजवत्यै ।
इषे च नो मिमीतं धेनुमत्यै ॥९ ॥

आप से सहयोग पाने के इच्छुक हम लोग मित्रों के भरण-पोषण के लिए प्रचुर धन सम्पदा चाहते हैं । अतएव शक्ति से सम्पन्न धन और गोधन से भरपूर अन्न हमें प्रदान करें ॥९ ॥

१३५३. अश्विनोरसनं रथमनश्वं वाजिनीवतोः । तेनाहं भूरि चाकन ॥१० ॥

सैन्य शक्ति से सम्पन्न अश्विनीकुमारों से अश्वों के बिना चलने वाले इस रथ को हमने प्राप्त किया है । इससे हम प्रचुर यश प्राप्ति की अभिलाषा करते हैं ॥१० ॥

[बिना अश्व शक्ति के मंत्र या संकल्प शक्ति से चलने वाले यान की उपलब्धि का संकेत यहाँ है ।]

१३५४. अयं समह मा तनूह्याते जनाँ अनु । सोमपेयं सुखो रथः ॥११ ॥

यह सुखदायक रथ धनों से परिपूर्ण है । अश्विनीकुमार सोमपान के लिए याज्ञिक जनों के समीप इसी में सवार होकर जाते हैं । यह रथ हमें यशस्विता प्रदान करने वाला हो ॥११ ॥

१३५५. अध स्वप्नस्य निर्विदेऽभुञ्जतश्च रेवतः । उभा ता बस्रि नश्यतः ॥१२ ॥

असमर्थों को भोजन प्रदान करने तक की उदारता न रखने वाले धनवानों को और आलस्य-प्रमाद में पड़े रहने वाले व्यक्तियों को देखकर हमें बहुत खेद होता है; (क्योंकि) शीघ्र ही उनका विनाश सुनिश्चित है ॥१२ ॥

[सूक्त - १२१]

[**ऋषि**- कक्षीवान् दैर्घतमस (औशिज) । **देवता**- इन्द्र अथवा विश्वेदेवा । **छन्द**- त्रिष्टुप् ।]

१३५६. कदित्था नॄँः पात्रं देवयतां श्रवद्गिरो अङ्गिरसां तुरण्यन् ।
प्र यदानड्विश आ हर्म्यस्योरु क्रंसते अध्वरे यजत्रः ॥१ ॥

मनुष्यों को संरक्षण प्रदान करने वाले इन्द्रदेव शीघ्रता से देवत्व पद पाने के इच्छुक अंगिरसों की प्रार्थनाओं को इस प्रकार कब सुनते हैं ? इसका सुनिश्चित ज्ञान नहीं; लेकिन जब स्वीकार करते हैं, तब प्रजाजनों के घर में स्थित यज्ञ में शीघ्रता पूर्वक पहुँचकर उनकी अभीष्ट कामनाओं को पूर्ण करते हैं ॥१ ॥

१३५७. स्तम्भीद्ध द्यां स धरुणं प्रुषायदृभुर्वाजाय द्रविणं नरो गोः ।
अनु स्वजां महिषश्चक्षत व्रां मेनामश्वस्य परि मातरं गोः ॥२ ॥

निश्चित ही उन्हीं (सूर्य रूप इन्द्रदेव) ने द्युलोक को स्थिरता प्रदान की है । तेजस्वी रश्मियों के प्रकाशक ये इन्द्रदेव सर्वत्र अन्न उत्पादन के लिए जल को बरसाने के माध्यम हैं वे महान् सूर्यदेव अपनी



कन्या देवी उषा के पश्चात् प्रकाशित होते हैं तथा वे शीघ्र गतिशील चन्द्रमा की पत्नी रात्रि को प्रकाश किरणों की माता बनाते हैं ॥२ ॥

[रात्रि के गर्भ में प्रकाश रहता है। अंतरिक्ष में अनन्त सूर्यों का प्रकाश है, परावर्तित हुए बिना वह दिखता भर नहीं है। भू उपग्रह आदि रात्रि में उसी प्रकाश से तारे की तरह चमकते दिखते हैं।]

१३५८. नक्षद्धवमरुणीः पूर्व्यं राट् तुरो विशामङ्गिरसामनु द्यून्।
तक्षद्वज्रं नियुतं तस्तम्भद् द्यां चतुष्पदे नर्याय द्विपादे ॥३ ॥

श्रेष्ठ मनुष्यों को सत्कर्मों की ओर प्रेरित करने वाले, आंगिरसों के ज्ञाता, सूर्यदेव (इन्द्रदेव) नित्य ही उषाओं को प्रकाशमान करते हुए श्रेष्ठ स्तुति रूप वाणियों से सम्मानित होते हैं (वन्दनीय होते है) । साथ ही वे इन्द्रदेव वज्र को तेजधार युक्त करते हैं तथा सम्पूर्ण प्राणि मात्र के कल्याण के निमित्त वे दिव्य लोक को स्थिरता प्रदान करते हैं ॥३ ॥

१३५९. अस्य मदे स्वर्यं दा ऋतायापीवृतमुस्रियाणामनीकम्।
यद्ध प्रसर्गे त्रिककुम्निवर्तदप द्रुहो मानुषस्य दुरो वः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! इन प्रार्थनाओं से प्रशंसित होकर आप रात्रि में छिपी हुई प्रकाशमय किरणों के समूह को यज्ञ सम्पादन के लिए प्रकट करते हैं। जब तीनों लोकों में सर्वोत्तम इन्द्रदेव युद्ध में तत्पर हो जाते हैं, तब वे द्रोहियों के लिए पतन का मार्ग खोल देते हैं ॥४ ॥

१३६०. तुभ्यं पयो यत्पितरावनीतां राधः सुरेतस्तुरणे भुरण्यू।
शुचि यत्ते रेक्ण आयजन्त सबर्दुघायाः पय उस्रियायाः ॥५ ॥

जब मनुष्य उत्तम दुधारू गौओं के पवित्र घृत-दुग्धादि से आपके लिए यज्ञ करते हैं, तब हे इन्द्रदेव ! शीघ्रतापूर्वक क्रियाशील आपके लिए भरण-पोषण कर्त्ता माता-पिता रूप द्यावापृथिवी, ऐश्वर्यप्रद और श्रेष्ठ उत्पादन क्षमता से युक्त वृष्टिरूप जल को बरसाते हैं ॥५ ॥

१३६१. अध प्र जज्ञे तरणिर्ममत्तु प्र रोच्यस्या उषसो न सूरः।
इन्दुर्येभिराष्ट स्वेदुहव्यैः स्रुवेण सिञ्चञ्जरणाभि धाम ॥६ ॥

जिस प्रकार सूर्यदेव प्रकाशित होते हैं, वैसे ही दुःखनाशक इन्द्रदेव भी उषाओं के निकट प्रकाशित होते हैं। श्रेष्ठ मधुर पदार्थों की हवि प्रदान करने वाले यजमानों द्वारा इन्द्रदेव के लिए यज्ञस्थल पर स्रुवा पात्र से सोमरस प्रदान किया जाता है। ऐसे सोम से अभिषिंचित होकर वे प्रसन्न हों ॥६ ॥

१३६२. स्विध्मा यद्वनधितिरपस्यात्सूरो अध्वरे परि रोधना गोः।
यद्ध प्रभासि कृत्व्याँ अनु द्यूननर्विशे पश्विषे तुराय ॥७ ॥

जब प्रकाशित सूर्य किरणों के माध्यम से मेघ जल वर्षण करते हैं, तब इन्द्रदेव यज्ञार्थ किरणों के अवरोध को दूर कर देते हैं। हे इन्द्रदेव ! जब आप (सूर्य रूप में) किरणों का संचार करते हैं, तब गाड़ीवान्, पशुपालक तथा गतिशील पुरुष अपने कार्यों की पूर्ति के लिए तत्पर होते हैं ॥७ ॥

१३६३. अष्टा महो दिव आदो हरी इह द्युम्नासाहमभि योधान उत्सम्।
हरिं यत्ते मन्दिनं दुक्षन्वृधे गोरभसमद्रिभिर्वाताप्यम् ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! जब यज्ञकर्त्ता मनुष्य आपके संवर्धन के लिए उत्तम, आनन्दप्रद, गाय के दूध से मिश्रित और

शक्तिप्रद सोम को पत्थरों द्वारा कूटपीस कर बनाते हैं, तब विस्तृत दिव्यलोक को संव्याप्त करने वाली आपकी अश्वरूपी किरणें हविरूप सोमरस को यहाँ आकर ग्रहण करें । आप वृष्टि अवरोधक तत्वों को हटाकर तेजस्वी जलधाराओं को चारों ओर बरसायें ॥८ ॥

१३६४. त्वमायसं प्रति वर्तयो गोर्दिवो अश्मानमुपनीतमृभ्वा ।

कुत्साय यत्र पुरुहूत वन्वञ्छुष्णमनन्तैः परियासि वधैः ॥९ ॥

अनेकों द्वारा आवाहित हे इन्द्रदेव ! जब आप कुत्स के संरक्षण के लिए शुष्ण दानव को विभिन्न शस्त्रों का प्रहार करके नाश करते हैं, तब सभी निर्भय होकर चारों दिशाओं में विचरण करते हैं । उस आक्रान्ता के हनन के लिए आप ऋभु द्वारा स्वर्गलोक से लाये गये पत्थर और लोहे से निर्मित अस्त्रों-शस्त्रों का प्रहार करते हैं ॥९ ॥

१३६५. पुरा यत्सूरस्तमसो अपीतेस्तमद्रिवः फलिगं हेतिमस्य ।

शुष्णस्य चित्परिहितं यदोजो दिवस्परि सुग्रथितं तदादः ॥१० ॥

जब वज्रधारी इन्द्रदेव ने बादलों को नष्ट करने वाले शस्त्र का प्रहार किया, तब सूर्यदेव मुक्त हुए । हे इन्द्रदेव ! आपने शुष्णु (शोषण करने वाले असुर) का जो बल द्युलोक को घेरे हुए था, उसे नष्ट कर दिया ॥१० ॥

१३६६. अनु त्वो मही पाजसी अचक्रे द्यावाक्षामा मदतामिन्द्र कर्मन् ।

त्वं वृत्रमाशयानं सिरासु महो वज्रेण सिष्वपो वराहुम् ॥११ ॥

महान् सामर्थ्य से युक्त, हे इन्द्रदेव ! सभी ओर संव्याप्त, द्युलोक और भूलोक ने आपके कार्य के प्रति आभार प्रकट किया, तब प्रोत्साहित होकर आपने विशाल वज्र द्वारा वृत्र को जल में ही सुला दिया ॥११ ॥

१३६७. त्वमिन्द्र नर्यो याँ अवो नॄन्तिष्ठा वातस्य सुयुजो वहिष्ठान् ।

यं ते काव्य उशना मन्दिनं दाद्वृत्रहणं पार्यं ततक्ष वज्रम् ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव ! क्रान्तदर्शी के पुत्र 'उशना' ने आनन्दप्रद, वृत्रहन्ता तथा शत्रु आक्रान्ता वज्र आपके लिए प्रदान किया । आपने उसे तीक्ष्ण बनाया । तत्पश्चात् भार वहन में कुशल, रथ में भली प्रकार नियोजित होने वाले तथा वायु के समान वेगवान् घोड़ों से खींचे जाने वाले रथ पर बैठकर आप मनुष्यों के हित चिन्तकों को संरक्षण प्रदान करते हैं ॥१२ ॥

१३६८. त्वं सूरो हरितो रामयो नॄन्भरच्चक्रमेतशो नायमिन्द्र ।

प्रास्य पारं नवतिं नाव्यानामपि कर्तमवर्तयोऽयज्यून् ॥१३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप प्रकाशमान सूर्यदेव के समान ही मनुष्यों की हितकारक और रसों को अवशोषित करने वाली रश्मियों को आलोकित करते हैं । आपके रथ का चक्र सदैव गतिमान् रहता है । नौकाओं से लाँघने योग्य नब्बे नदियों के पार यज्ञ विरोधियों को फेंककर आपने विलक्षण कार्य सम्पन्न किया ॥१३ ॥

१३६९. त्वं नो अस्या इन्द्र दुर्हणायाः पाहि वज्रिवो दुरितादभीके ।

प्र नो वाजान्रथ्यो३ अश्वबुध्यानिषे यन्धि श्रवसे सूनृतायै ॥१४ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! जिन्हें अति प्रयास पूर्वक ही नष्ट किया जा सकता है ऐसे दुर्गति कारक पापकर्मों से हमें बचाकर संरक्षित करें । युद्ध भूमि में भली प्रकार से हमारी रक्षा करें । हमें यश, बल तथा श्रेष्ठ सत्य से युक्त व्यवहार के निमित्त रथ और अश्वों से युक्त ऐश्वर्य सम्पदा प्रदान करें ॥१४ ॥



१३७०. मा सा ते अस्मत्सुमतिर्वि दसद्वाजप्रमहः समिषो वरन्त।
आ नो भज मघवन्गोष्वर्यो मंहिष्ठास्ते सधमादः स्याम ॥१५ ॥

अपनी सामर्थ्यों से स्तुति योग्य हे इन्द्रदेव ! आपकी विवेक-युक्त बुद्धि का कभी हमारे जीवन में अभाव न हो। विवेक बुद्धि से हम सभी प्रकार के अन्न एवं धन को अर्जित करें । हे श्रेष्ठ ऐश्वर्य सम्पन्न इन्द्रदेव ! आप हमें गोधन से परिपूर्ण करें तथा आपकी महिमा को बढ़ाने वाले हम सभी एक साथ रहकर आनन्दित हों ॥१५ ॥

[सूक्त - १२२]

[**ऋषि-** कक्षीवान् दैर्घतमस (औशिज) । **देवता-** विश्वेदेवा । **छन्द-** त्रिष्टुप्, ५-६ विराड्रूपा त्रिष्टुप् ।]

१३७१. प्र वः पान्तं रघुमन्यवोऽन्धो यज्ञं रुद्राय मीळ्हुषे भरध्वम्।
दिवो अस्तोष्यसुरस्य वीरैरिषुध्येव मरुतो रोदस्योः ॥१ ॥

हे अक्रोधी ऋत्विजो ! आप हर्ष प्रदायक रुद्रदेव के निमित्त अन्नरूपी आहुति प्रदान करें । जिस प्रकार धनुर्धारी वाणों से शत्रु पक्ष का विनाश करते हैं, वैसे ही दिव्यलोक से आकर असुरता के संहारक, दिव्यलोक और भूलोक के मध्य शूरवीरों के साथ वास करने वाले मरुद्गणों की हम प्रार्थना करते हैं ॥१ ॥

१३७२. पत्नीव पूर्वहूतिं वावृधध्या उषासानक्ता पुरुधा विदाने।
स्तरीर्नात्कं व्युतं वसाना सूर्यस्य श्रिया सुदृशी हिरण्यैः ॥२ ॥

जिस प्रकार धर्मपत्नी अपने पति का सदैव सहयोग करती है, उसी प्रकार देवी उषा और रात्रि हमारी पूर्व प्रार्थनाओं को जानकर हमें प्रगति मार्ग पर अग्रसर करें । अन्धकार को नष्ट करने वाले सूर्यदेव के समान स्वर्णिम वस्त्रों से सुसज्जित सूर्यदेव की सुषमा से सुशोभित तथा दर्शन में अति रूपवती देवी उषा हमें समुन्नति के शिखर पर पहुँचाये ॥२ ॥

१३७३. ममत्तु नः परिज्मा वसर्हा ममत्तु वातो अपां वृषण्वान्।
शिशीतमिन्द्रापर्वता युवं नस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः ॥३ ॥

तिमिर नाशक और दिन लाने वाले, सर्वत्र विचरणशील सूर्यदेव हमें सभी सुखों को प्रदान करें । वायुदेव जलवृष्टि करके हमें आनन्दित करें । इन्द्रदेव और मेघ आप दोनों को एवं हमें (अथवा हमारी बुद्धि को) परिष्कृत करें तथा सभी देवगण हमें ऐश्वर्यों से सम्पन्न बनायें ॥३ ॥

१३७४. उत त्या मे यशसा श्वेतनायै व्यन्ता पान्तौशिजो हुवध्यै।
प्र वो नपातमपां कृणुध्वं प्र मातरा रास्पिनस्यायोः ॥४ ॥

उशिक् पुत्र कक्षीवान् द्वारा अपनी यशस्विता और तेजस्विता उपलब्ध करने हेतु सर्वत्र गमनशील, पालनकर्त्ता अश्विनीकुमारों की प्रार्थना की जाती है । हे मनुष्यो ! आप सत्कर्मों के संरक्षक अग्निदेव के निमित्त श्रेष्ठ प्रार्थना करें तथा स्तुति करने वालों के माता-पिता के सदृश द्यावा-पृथिवी की भी प्रार्थना करें ॥४ ॥

१३७५. आ वो रुवण्युमौशिजो हुवध्यै घोषेव शंसमर्जुनस्य नंशे।
प्र वः पूष्णे दावन आँ अच्छा वोचेय वसुतातिमग्नेः ॥५ ॥

हे देवो ! जिस प्रकार घोषा नामक स्त्री ने रोग निवारण के निमित्त अश्विनीकुमारों का आवाहन किया, उसी प्रकार उशिक् पुत्र कक्षीवान् अपने दुःखों की निवृत्ति के लिए आपके आवाहन हेतु सस्वर स्तोत्रों का उच्चारण



करते हैं। आपके साथी धनदाता पूषादेव की भी प्रार्थना करते हैं। अग्निदेव द्वारा प्रदत्त सम्पदाओं के लिए भी प्रार्थना करते हैं ॥५ ॥

१३७६. श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमोत श्रुतं सदने विश्वतः सीम्।
श्रोतु नः श्रोतुरातिः सुश्रोतुः सुक्षेत्रा सिन्धुरद्भिः ॥६ ॥

हे मित्र और वरुणदेव ! आप दोनों हमारा निवेदन सुनें तथा यज्ञ मण्डप में चारों ओर से उच्चारित प्रार्थना को भी सुनें। सुविख्यात, दानशील जलवर्षक देव हमारी प्रार्थना को सुनकर जलराशि से हमारे खेतों को सिंचित करें ॥६ ॥

१३७७. स्तुषे सा वां वरुण मित्र रातिर्गवां शता पृक्षयामेषु पज्रे।
श्रुतरथे प्रियरथे दधानाः सद्यः पुष्टिं निरुन्धानासो अग्मन् ॥७ ॥

हे वरुण और मित्र देवो ! हम आपकी प्रार्थना करते हैं। जहाँ अश्व तीव्र गति से चलाये जाते हैं, ऐसे संग्राम में शूरवीर ही असंख्य गौओं रूपी धन को उपलब्ध करते हैं। आप दोनों उस विख्यात एवं अपने प्रिय रथ में बैठकर शीघ्र यहाँ आकर हमें पुष्ट करें ॥७ ॥

१३७८. अस्य स्तुषे महिमघस्य राधः सचा सनेम नहुषः सुवीराः।
जनो यः पज्रेभ्यो वाजिनीवानश्वावतो रथिनो मह्यं सूरिः ॥८ ॥

जो सामर्थ्यवान् मनुष्य घोड़ों और रथों से सुसज्जित योद्धाओं को हमारे संरक्षणार्थ प्रेरित करते हैं। ऐसे महान् वैभवशाली मनुष्यों का धन सभी जनों द्वारा सराहा जाता है। श्रेष्ठ शौर्यवान् हम सभी मनुष्य एक साथ संगठित हों ॥८ ॥

१३७९. जनो यो मित्रावरुणावभिध्रुगपो न वां सुनोत्यक्ष्णयाध्रुक्।
स्वयं स यक्ष्मं हृदये नि धत्त आप यदीं होत्राभिर्ऋतावा ॥९ ॥

हे मित्र और वरुणदेवो ! जो मनुष्य आपसे निष्कारण द्वेष करते हैं, जो सोमरस निष्पादित करने से वंचित हैं तथा यज्ञीय भावना से रहित हो कुमार्ग पर चलते हैं, वे अनेक प्रकार के मानसिक और हृदय सम्बन्धी रोगों से ग्रसित हो जाते हैं। लेकिन जो मनुष्य सत्यमार्ग पर चलते हुए मन्त्रों द्वारा यज्ञ सम्पन्न करते हैं, वे सदैव आपकी कृपा को प्राप्त करते हैं ॥९ ॥

१३८०. स व्राधतो नहुषो दंसुजूतः शर्धस्तरो नरां गूर्तश्रवाः।
विसृष्टरातिर्याति बाळ्हसृत्वा विश्वासु पृत्सु सदमिच्छूरः ॥१० ॥

हे देवो ! यजन करने वाले साधक अश्वों से युक्त होकर, शत्रुओं के भयंकर विनाशकर्त्ता, अति तेजस्वी, याचकों के प्रति उदारतायुक्त तथा महान् बलशाली होते हैं। वे सभी युद्धों में अति सामर्थ्यवान् शत्रुओं का भी विध्वंस करते हुए अग्रसर होते हैं ॥१० ॥

१३८१. अध ग्मन्ता नहुषो हवं सूरेः श्रोता राजानो अमृतस्य मन्द्राः।
नभोजुवो यन्निरवस्य राधः प्रशस्तये महिना रथवते ॥११ ॥

हे आकाशव्यापी देवो ! आप अपनी सामर्थ्य से, अकल्याणकारी दुष्टों की सम्पदा को, प्रशंसा के योग्य श्रेष्ठ रथधारी शूरवीरों के लिए हस्तान्तरित करते हैं। तेजवान् हर्षदायक और अमृत स्वरूप यज्ञ की ओर प्रेरित करने वाले हे देवो ! मनुष्यों की स्तुतियों को सुनकर आप यहाँ पधारें ॥११ ॥



१३८२. एतं शर्धं धाम यस्य सूरेरित्यवोचन्दशतयस्य नंशे।
द्युम्नानि येषु वसुताती रारन्विश्वे सन्वन्तु प्रभृथेषु वाजम् ॥१२ ॥

"जिस स्तुतिकर्ता द्वारा दस चमस पात्रों में रखे गये सोम के लिए आपको बुलाया गया है, आप उसकी सामर्थ्यशक्ति को बढ़ायेंगे" ऐसा देवों का कथन है। जिन देवताओं में तेजस्विता युक्त ऐश्वर्य सुशोभित हो, ऐसे सभी देव हमारे यज्ञों में आकर हविष्यान्न का सेवन करें ॥१२ ॥

१३८३. मन्दामहे दशतयस्य धासेर्द्विर्यत्पञ्च बिभ्रतो यन्त्यन्ना।
किमिष्टाश्व इष्टरश्मिरेत ईशानासस्तरुष ऋञ्जते नॄन् ॥१३ ॥

याज्ञिक दस चमस पात्रों में रखे सोम रूपी हविष्यान्न को लेकर आते हैं। उन पात्रों में रखे सोमरस रूपी अन्न से हम प्रशंसित हैं। जो अश्वों को लगामों द्वारा भली प्रकार नियंत्रित करने की कला में निपुण हैं, ऐसे शत्रु संहारक (देवों) के होते हुए श्रद्धालु मनुष्यों को पीड़ित करने में भला कौन समर्थ हो सकता है ? अर्थात् कोई भी उनका अहित करने में सक्षम नहीं ॥१३ ॥

१३८४. हिरण्यकर्णं मणिग्रीवमर्णस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः।
अर्यो गिरः सद्य आ जग्मुषीरोस्राश्चाकन्तूभयेष्वस्मे ॥१४ ॥

सम्पूर्ण देवता हमें कानों में स्वर्ण आभूषण तथा कण्ठ में मणियों को धारण किये हुए सुसन्तति प्रदान करें। ये श्रेष्ठ देवता हमारे द्वारा उच्चारित प्रार्थनाओं एवं घृतादि आहुतियों को दोनों प्रकार के यज्ञों में शीघ्र ही ग्रहण करें ॥१४ ॥

१३८५. चत्वारो मा मशर्शारस्य शिश्वस्त्रयो राज्ञ आयवसस्य जिष्णोः।
रथो वां मित्रावरुणा दीर्घाप्साः स्यूमगभस्तिः सूरो नाद्यौत् ॥१५ ॥

विजयी तथा शत्रु संहारक " मशर्शार " राजा के चार (काम, क्रोध, लोभ, मोह) पुत्र और अन्नों के अधिपति "आयवस" नरेश के तीन पुत्र (त्रिताप- दैहिक, दैविक और भौतिक) हमें पीड़ित करते हैं। हे मित्र और वरुण देवो ! आप दोनों का विशालकाय सुखकारी रश्मियों से युक्त रथ सूर्यदेव के सदृश आलोकित हो ॥१५ ॥

[सूक्त - १२३]

[**ऋषि-** कक्षीवान् दैर्घतमस (औशिज)। **देवता-** उषा। **छन्द-** त्रिष्टुप्।]

१३८६. पृथू रथो दक्षिणाया अयोज्यैनं देवासो अमृतासो अस्थुः।
कृष्णा दुदस्थादर्या३ विहायाश्चिकित्सन्ती मानुषाय क्षयाय ॥१ ॥

इन कुशलदेवी उषा का विस्तृत रथ जुत करके तैयार हो गया है और उस पर अमर देवगण आकर विराजमान हो गये हैं। ये विशेष रूप से प्रकाशित उत्तम देवी उषा मानवों के सुखदायी निवास के निमित्त प्रयत्नशील होकर भयंकर काले अन्धकार से ऊपर उठकर प्रकाशमान हुई हैं ॥१ ॥

१३८७. पूर्वा विश्वस्माद्भुवनादबोधि जयन्ती वाजं बृहती सनुत्री।
उच्चा व्यख्यद्युवतिः पुनर्भूरोषा अगन्प्रथमा पूर्वहूतौ ॥२ ॥

सम्पूर्ण प्राणियों से पहले देवी उषा जागती हैं, यह प्रचुर दानदात्री देवी उषा ऐश्वर्यों की जनयित्री हैं। यह बार-बार आने वाली चिर युवा देवी उषा सर्वप्रथम यज्ञ करने के निमित्त प्रथम स्थान पर विराजमान होती हैं और ऊँचे स्थान से सबको देखती हैं ॥२ ॥

१३८८. यदद्य भागं विभजासि नृभ्य उषो देवि मर्त्यत्रा सुजाते।
देवो नो अत्र सविता दमूना अनागसो वोचति सूर्याय ॥३ ॥

हे कुलीन उषा देवि ! मनुष्यों की पालनकर्त्री आप जिस समय मनुष्यों के लिए धन का, योग्य भाग प्रदान करती हैं, उस समय दान के प्रति प्रेरित करने वाले देव, सूर्य के अभिमुख हमें पापरहित बनाएँ ॥३ ॥

१३८९. गृहङ्गृहमहना यात्यच्छा दिवेदिवे अधि नामा दधाना।
सिषासन्ती द्योतना शश्वदागादग्रमग्रमिद्भजते वसूनाम् ॥४ ॥

हविर्भाग को ग्रहण करने के लिए ज्योतिर्मय देवी उषा प्रतिदिन आगमन करती हैं। कीर्ति को धारण करने वाली देवी उषा प्रतिदिन घर-घर जाती हैं (अर्थात् प्रकाश बाँटती हैं) तथा धनों के श्रेष्ठ अंश को ग्रहण करती हैं ॥४ ॥

१३९०. भगस्य स्वसा वरुणस्य जामिरुषः सूनृते प्रथमा जरस्व।
पश्चा स दघ्या यो अघस्य धाता जयेम तं दक्षिणया रथेन ॥५ ॥

हे सुभाषिणि उषे ! आप भगदेव और वरुणदेव की बहिन हैं, ऐसी आप देवों में सर्वप्रथम स्तुति करने योग्य हैं। बाद में जो पापात्मा शत्रु हैं, उन्हें हम पकड़ें और आपके द्वारा दक्षता पूर्वक प्रेरित रथ से पराभूत करें ॥५ ॥

१३९१. उदीरतां सूनृता उत्पुरन्धीरुदग्नयः शुशुचानासो अस्थुः ।
स्पार्हा वसूनि तमसापगूळ्हाविष्कृण्वन्त्युषसो विभातीः ॥६ ॥

हमारे मुख स्तोत्रगान करें। प्रखर विवेक बुद्धि सत्कर्मों की ओर प्रेरित करे। प्रज्वलित अग्नि ज्वलनशील रहे, तब उनके निमित्त तेजस्वी उषाएँ तमसाच्छादित (अन्धकार से छिपे) वाञ्छित धनों को प्रकट करें ॥६ ॥

१३९२. अपान्यदेत्यभ्य१न्यदेति विषुरूपे अहनी सं चरेते।
परिक्षितोस्तमो अन्या गुहाकरद्यौदुषाः शोशुचता रथेन ॥७ ॥

विपरीत रूप-रंग वाली रात्रि और देवी उषा क्रमशः आती और जाती हैं। एक के चले जाने पर दूसरी आती हैं। इन भ्रमणशीलों में से एक रात्रि अन्धकार से सबको आच्छादित कर देती है और दूसरी देवी उषा दीप्तिमान् तेजरूप रथ से सबको प्रकाशित करती हैं ॥६ ॥

१३९३. सदृशीरद्य सदृशीरिदु श्वो दीर्घं सचन्ते वरुणस्य धाम।
अनवद्यास्त्रिंशतं योजनान्येकैका क्रतुं परि यन्ति सद्यः ॥८ ॥

आज ही के समान कल भी ये उषाएँ यथावत् आएँगी। ये पवित्र उषाएँ वरुण देव के व्यापक स्थान में देर तक रहती हैं। एक-एक देवी उषा तीस-तीस योजनों की परिक्रमा करती हुईं नियत समय पर कर्म प्रेरक सूर्यदेव से आगे-आगे चलती हैं ॥८ ॥

१३९४. जानत्यह्नः प्रथमस्य नाम शुक्रा कृष्णादजनिष्ट श्वितीची।
ऋतस्य योषा न मिनाति धामाहरहर्निष्कृतमाचरन्ती ॥९ ॥

दिन के प्रारम्भिक काल को जानने वाली गौरवर्णा तेजस्विनी देवी उषा काली रात्रि के काले अन्धकार से उत्पन्न होती हैं, ये स्त्री रूपी देवी उषा सत्यव्रत को न त्यागती हुई प्रतिदिन निश्चित समय पर आतीं और नियमपूर्वक रहती हैं ॥९ ॥



१३९५. कन्येव तन्वा३ शाशदानाँ एषि देवि देवमियक्षमाणम्।

संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती ॥१० ॥

हे देवी उषे ! शरीर के स्वरूप को प्रकट करने वाली कन्या के समान ही आप भी अभीष्ट कामना पूरक पतिरूप सूर्यदेव के पास जाती हैं। पश्चात् नवयुवती के समान मुस्कराती हुई कान्तिमती होकर अपने प्रकाश किरणों रूपी वक्षस्थल को प्रकटरूप से प्रकाशित करती हैं ॥१० ॥

१३९६. सुसङ्काशा मातृमृष्टेव योषाविस्तन्वं कृणुषे दृशे कम्।

भद्रा त्वमुषो वितरं व्युच्छ न तत्ते अन्या उषसो नशन्त ॥११ ॥

माता द्वारा सुशोभित की गई नवयुवती के समान रूपवती ये देवी उषा अपने प्रकाश किरणों रूपी शारीरिक अंगों को मानो दिखाने के लिए प्रकट हो रही हों। हे उषे ! आप मनुष्यों का कल्याण करती हुई व्यापक क्षेत्र में प्रकाशित रहें। अन्य उषाएँ आपकी तेजस्विता की समानता नहीं कर सकेंगी ॥११ ॥

१३९७. अश्वावतीर्गोमतीर्विश्ववारा यतमाना रश्मिभिः सूर्यस्य।

परा च यन्ति पुनरा च यन्ति भद्रा नाम वहमाना उषासः ॥१२ ॥

अश्वों और गौओं से युक्त सबके द्वारा आदर-योग्य (वरण करने योग्य) सूर्यदेव की किरणों से अन्धकार को दूर भगाने में प्रयत्नशील, तथा कल्याणकारी यशस्विता को धारण करने वाली उषाएँ दूर जाती सी दीखती हैं, लेकिन फिर वहीं आ जाती हैं ॥१२ ॥

१३९८. ऋतस्य रश्मिमनुयच्छमाना भद्रम्भद्रं क्रतुमस्मासु धेहि।

उषो नो अद्य सुहवा व्युछास्मासु रायो मघवत्सु च स्युः ॥१३ ॥

हे देवि उषे ! सूर्यदेव की रश्मियों के अनुकूल रहते हुए आप हमारे अन्तरंग में कल्याणकारी कर्मों की प्रेरणा प्रदान करें। आप आवाहित किये जाने पर हमारे अभिमुख प्रकाशमान रहें। हमें और ऐश्वर्यवानों को प्रचुर मात्रा में धन सम्पदा प्रदान करें ॥१३ ॥

[सूक्त - १२४]

[**ऋषि**- कक्षीवान् दैर्घतमस (औशिज)। **देवता**- उषा। **छन्द**- त्रिष्टुप्।]

१३९९. उषा उच्छन्ती समिधाने अग्ना उद्यन्त्सूर्य उर्विया ज्योतिरश्रेत्।

देवो नो अत्र सविता न्वर्थं प्रासावीद् द्विपत्प्र चतुष्पदित्यै ॥१ ॥

अग्नि के प्रदीप्त होने पर देवी उषा अन्धकार का नाश करती हैं और सूर्योदय के समान अति तेजस्विता को धारण करती हैं। ये सूर्यदेव हमें उपयोगी धन तथा मनुष्यों और मनुष्येत्तर प्राणियों को जाने के लिए मार्ग प्रशस्त करें। अर्थात् देवी उषा के आने के बाद हम मनुष्यों, गौ, अश्वादि पशुओं के लिए आने जाने के रास्ते खुल जायें ॥१ ॥

१४००. अमिनती दैव्यानि व्रतानि प्रमिनती मनुष्या युगानि।

ईयुषीणामुपमा शश्वतीनामायतीनां प्रथमोषा व्यद्यौत् ॥२ ॥

ये देवी उषा अनुशासनात्मक नियमों का पालन करने वालीं, मनुष्यों की आयु को लगातार कम करने वाली हैं। निरन्तर आने वाली विगत उषाओं के अन्त में तथा भविष्य में आने वाली उषाओं में यह सर्वप्रथम प्रकाशित होती हैं ॥२ ॥



१४०१. एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि ज्योतिर्वसाना समना पुरस्तात्।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥३ ॥

स्वर्गलोक की कन्यारूपी ये देवी उषा प्रकाश रूप वस्त्र धारण करने वाली, श्रेष्ठ मनवाली तथा प्रतिदिन पूर्व दिशा से आती हुईं दिखाई देती हैं। जिस प्रकार विदुषी नारी सत्य मार्ग से जाती हैं, उसी प्रकार दिशाओं में अवरोध न पहुँचाती हुईं ये देवी उषा जाती हैं ॥३ ॥

१४०२. उपो अदर्शि शुन्ध्युवो न वक्षो नोधा इवाविरकृत प्रियाणि ।
अद्मसन्न ससतो बोधयन्ती शश्वत्तमागात्पुनरेयुषीणाम् ॥४ ॥

शुद्ध पवित्र वक्षस्थल के समान देवी उषा समीप से ही दिखाई देती हैं। नई वस्तुओं का निर्माण करने वाले के समान ही देवी उषा ने अपने किरण रूपी अवयवों को प्रकट किया है। जिस प्रकार गृहस्थ महिलायें सोये हुए परिवारजनों को जगाती हैं, वैसे ही भविष्य में आनेवाली उषाओं में सर्वप्रथम ये देवी उषा दुबारा जगाने के लिए आ गई हैं ॥४ ॥

१४०३. पूर्वे अर्धे रजसो अप्त्यस्य गवां जनित्र्यकृत प्र केतुम्।
व्यु प्रथते वितरं वरीय ओभा पृणन्ती पित्रोरुपस्था ॥५ ॥

विस्तृत अन्तरिक्ष लोक के पूर्व दिशा भाग में रश्मियों को उत्पन्न करने वाली देवी उषा ने प्रकाश रूपी ध्वजा को फहराया है। द्युलोक भूलोक रूपी माता-पिता के पास रहकर दोनों लोकों को प्रकाश से परिपूर्ण करती हुईं ये देवी उषा विशिष्ट तेजस्वी प्रकाश से अन्तरिक्ष को परिपूर्ण करती हैं ॥५ ॥

१४०४. एवेदेषा पुरुतमा दृशे कं नाजामिं न परि वृणक्ति जामिम्।
अरेपसा तन्वा३ शाशदाना नार्भादीषते न महो विभाती ॥६ ॥

विस्तृत होने वाली ये देवी उषा सुख व आनन्द के लिए जिस प्रकार विरोधी का त्याग नहीं करतीं, उसी प्रकार आत्मीय जनों को भी अपने प्रकाश से वंचित नहीं करतीं (अर्थात् अपने पराये का भेद किये बिना अपने प्रकाश से सभी को लाभ देती हैं।) प्रकाश रूपी निर्दोष शरीर से प्रकाशित होने वाली देवी उषा जिस प्रकार छोटे से दूर नहीं होतीं, उसी प्रकार बड़े का त्याग नहीं करतीं, अपितु छोटे - बड़े का भेद किये बिना दोनों को प्रकाशित करती हैं ॥६ ॥

१४०५. अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम्।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव नि रिणीते अप्सः ॥७ ॥

भ्रातृहीन बहिन जिस प्रकार निराश्रित होने पर वापस अपने माता-पिता के पास चली जाती है अथवा जिस प्रकार कोई विधवा धन में हिस्सा पाने के लिए न्यायालय में जाती है, उसी प्रकार उत्तम वस्त्रों को धारण करके सूर्य रूप पति से मिलने की इच्छुक ये देवी उषा मुस्कराती हुई अपने किरण रूपी सौन्दर्य को प्रकट करती हैं ॥७ ॥

[दिन रूपी भाई के होते ही यह माता-पिता (द्युलोक) के पास चली जाती हैं, कभी अपने भाई के साथ नहीं रहतीं।]

१४०६. स्वसा स्वस्रे ज्यायस्यै योनिमारैगपैत्यस्याः प्रतिचक्ष्येव ।
व्युच्छन्ती रश्मिभिः सूर्यस्याञ्ज्यङ्क्ते समनगा इव व्राः ॥८ ॥

जिस प्रकार छोटी बहिन अपनी ज्येष्ठ बहिन के लिए स्थान रिक्त कर देती है, वैसे ही रात्रिरूपी छोटी बहिन अपनी ज्येष्ठ बहिन देवी उषा के लिए मानो अपने स्थान से हट जाती हैं। सूर्यदेव की रश्मियों से अन्धकार को



हटाती हुईं ये देवी उषा उत्सव में जाने वाली स्त्रियों की तरह अच्छी प्रकार चलने वाली किरण समूह के समान अपने स्वरूप को प्रकट करती हैं ॥८ ॥

१४०७. आसां पूर्वासामहसु स्वसॄणामपरा पूर्वामभ्येति पश्चात् ।
ताः प्रत्नवन्नव्यसीर्नूनमस्मे रेवदुच्छन्तु सुदिना उषासः ॥९ ॥

जो उषा रूपी बहिनें पहले चली गई हैं उन दिनों के बीच में अन्तिम देवी उषा के पीछे से एक-एक नवीन देवी उषा क्रम से जाती हैं । वे उषाएँ पूर्व की तरह नवीन दिन अर्थात् नयी उषाएँ भी हमारे लिए निश्चय ही प्रचुर धनयुक्त श्रेष्ठ दिवस को प्रकाशित करती रहें ॥९ ॥

१४०८. प्र बोधयोषः पृणतो मघोन्यबुध्यमानाः पणयः ससन्तु ।
रेवदुच्छ मघवद्भ्यो मघोनि रेवत्स्तोत्रे सूनृते जारयन्ती ॥१० ॥

हे धनवति उषे ! आप दाताओं को जगायें । न जागने वाले लोभी व्यापारी सोते रहें । हे धनवती उषे ! धनवानों के निमित्त धन देने के साथ यज्ञीय भावना की प्रेरणा भी प्रदान करें । हे सुभाषिणि उषे ! सम्पूर्ण प्राणियों की आयु कम करने वाली आप स्तोताओं के निमित्त अपार वैभव से युक्त होकर प्रकाशमान हों ॥१० ॥

१४०९. अवेयमश्वैद्युवतिः पुरस्ताद्युङ्क्ते गवामरुणानामनीकम् ।
वि नूनमुच्छादसति प्र केतुर्गृहंगृहमुप तिष्ठाते अग्निः ॥११ ॥

तरुणी स्त्री के समान ये देवी उषा पूर्व दिशा से प्रकाशित हो रही हैं । इन्होंने किरणों रूपी लाल वर्ण के अश्वों को अपने रथ में जोता हुआ है । ये देवी उषा निश्चित ही विशेष रूप से प्रकाशित होती हैं । उसके प्रकाश रूपी ध्वजा रोहण के साथ ही घर-घर में यज्ञाग्नि प्रज्वलित होती है ॥११ ॥

१४१०. उत्ते वयश्चिद्वसतेरपप्तन्नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ ।
अमा सते वहसि भूरि वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥१२ ॥

देवी उषा के प्रकाशित होते ही पक्षीगण अपना घोंसला त्याग देते हैं । मनुष्य भी अन्न की कामना के लिए प्रेरित होते हैं । हे देवी उषे ! आप गृहस्थ जीवन में रहकर यज्ञ और दानदाता मनुष्य के लिए प्रचुर धन सम्पदा प्रदान करें ॥१२ ॥

१४११. अस्तोढ्वं स्तोम्या ब्रह्मणा मे ऽवीवृधध्वमुशतीरुषासः ।
युष्माकं देवीरवसा सनेम सहस्रिणं च शतिनं च वाजम् ॥१३ ॥

हे स्तुति योग्य उषाओ ! हमारे इस स्तवन से आपकी प्रार्थना सम्पन्न हो रही है । सभी उषाएँ प्रगति की कामना से हम सभी प्रजाजनों को समृद्ध करें । हे देवत्व सम्पन्न उषाओ ! आपके संरक्षण साधनों से हम सैकड़ों और हजारों प्रकार के धन-धान्य से सम्पन्न सामर्थ्य-शक्ति अर्जित करें ॥१३ ॥

[सूक्त - १२५]

[**ऋषि-** कक्षीवान् दैर्घतमस (औशिज) । **देवता-** स्वनय दानस्तुति । **छन्द-** त्रिष्टुप्, ४-५ जगती ।]

१४१२. प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति तं चिकित्वान्प्रतिगृह्या नि धत्ते ।
तेन प्रजां वर्धयमान आयू रायस्पोषेण सचते सुवीरः ॥१ ॥

प्रभात कालीन सूर्यदेव स्वास्थ्यप्रद पोषक तत्वों (रत्नों) को लाकर मनुष्यों के लिए प्रदान करते हैं । ज्ञानी मनुष्य इस तथ्य से परिचित होते हुए सूर्योदय से पहले उठकर सूर्य रश्मियों में सन्निहित प्राणतत्व रूपी रत्नों के



लाभ से कृतकृत्य होते हैं । उससे मनुष्य दीर्घायुष्य प्राप्त करके संतानों के लाभ से युक्त होकर धन सम्पदा और स्वस्थ जीवन प्राप्त करते हैं ॥१ ॥

१४१३. सुगुरसत्सुहिरण्यः स्वश्वो बृहदस्मै वय इन्द्रो दधाति ।
यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वो मुक्षीजयेव पदि मुत्सिनाति ॥२ ॥

जो दानी मनुष्य प्रातः उठते ही किसी याचक को-रस्सी से पाँव को बाँधने के समान* -अपार धन प्रदान करते हैं, ऐसे दानी मनुष्य श्रेष्ठ गौओं, अश्वों और स्वर्ण से युक्त होते हैं । इन्हें इन्द्रदेव अतिश्रेष्ठ अन्न-धन आदि प्रदान करते हैं ॥२ ॥

[*यहाँ रस्सी से पाँव बाँधने का भाव है, बिना दान लिए न जाने देना ।]

१४१४. आयमद्य सुकृतं प्रातरिच्छन्निष्टेः पुत्रं वसुमता रथेन ।
अंशोः सुतं पायय मत्सरस्य क्षयद्वीरं वर्धय सूनृताभिः ॥३ ॥

हे देव ! आज प्रातः हम धन से सम्पन्न रथ द्वारा यज्ञ संरक्षक और श्रेष्ठ कर्तव्यों का निर्वाह करने वाले पुत्र प्राप्ति की कामना से आपके यहाँ आये हैं । आप सुखदायक अभिषुत सोमरस को ग्रहण करें तथा वीरों के आश्रयदाता आप, हमारा शुभ आशीषों से मंगल करें ॥३ ॥

१४१५. उपक्षरन्ति सिन्धवो मयोभुव ईजानं च यक्ष्यमाणं च धेनवः ।
पृणन्तं च पपुरिं च श्रवस्यवो घृतस्य धारा उप यन्ति विश्वतः ॥४ ॥

इस समय यज्ञ कार्य करने वालों तथा भविष्य में भी यज्ञीय भाव को पोषित करने वालों के निमित्त सुखदायक नदियाँ प्रवाहित होती हैं । सबके लिए कल्याणकारक तथा सबको सम्पन्न बनाकर प्रसन्न होने वाले याजकों को, अन्न (पोषण) की समृद्धि में समर्थ गौएँ, घृत की धारायें प्रदान करती हैं ॥४ ॥

१४१६. नाकस्य पृष्ठे अधि तिष्ठति श्रितो यः पृणाति स ह देवेषु गच्छति ।
तस्मा आपो घृतमर्षन्ति सिन्धवस्तस्मा इयं दक्षिणा पिन्वते सदा ॥५ ॥

जो अपने आश्रित मनुष्यों को धनधान्य से परिपूर्ण करते हैं, वे सभी प्रकार के स्वर्गीय आनन्द को उपलब्ध करते हैं । वे देवत्व को प्राप्त करके उसी श्रेणी में प्रतिष्ठित होते हैं । जल प्रवाह उस दानी के लिए प्राणस्वरूप जल को प्रवाहित करते हैं तथा यह पृथ्वी भी उसके निमित्त सदैव अन्नादि का पर्याप्त भण्डार प्रदान करती है ॥५ ॥

१४१७. दक्षिणावतामिदिमानि चित्रा दक्षिणावतां दिवि सूर्यासः ।
दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते दक्षिणावन्तः प्र तिरन्त आयुः ॥६ ॥

ये विलक्षण उपलब्धियाँ मात्र सार्थक दान दाताओं को प्राप्य हैं । दिव्य लोक में भी सूर्यदेव उनके लिए ही स्वास्थ्य प्रदान करते हैं । दानदाता ही अमरपद को प्राप्त करते हैं तथा प्रसन्नता में दानी के प्रति शुभ कामनाओं से दानदाता की आयु में वृद्धि होती है ॥६ ॥

१४१८. मा पृणन्तो दुरितमेन आरन्मा जारिषुः सूरयः सुव्रतासः ।
अन्यस्तेषां परिधिरस्तु कश्चिदपृणन्तमभि सं यन्तु शोकाः ॥७ ॥

यज्ञादि श्रेष्ठ कार्यों को सम्पन्न करने वाले तथा मनुष्यों को कल्याणरूप दान से संतुष्ट करने वाले, दुःखों और पापकर्मों से बचे रहें । ज्ञान साधक और यम नियमादि व्रतों को व्यावहारिक जीवन में प्रयोग करने वाले मनुष्यों को जल्दी बुढ़ापा नहीं घेरता । इसके विपरीत जो पापकर्मों में संलिप्त रहते हैं तथा जो देवताओं को हवियों द्वारा संतुष्टि प्रदान करने वाले यज्ञादि सत्कर्मों से रहित हैं, उन्हें मानसिक चिन्ताएँ और शोक संताप घेरे रहते हैं ॥७ ॥



[सूक्त - १२६]

[**ऋषि** - १-५ कक्षीवान् दैर्घतमस (औशिज), ६ स्वनय भावयव्य ; ७ रोमशा । **देवता**- १-५, ७ स्वनय भावयव्य; ६ रोमशा । **छन्द**- त्रिष्टुप्; ६-७ अनुष्टुप् ।]

१४१९. अमन्दान्त्सोमान्प्र भरे मनीषा सिन्धावधि क्षियतो भाव्यस्य ।
यो मे सहस्रममिमीत सवानतूर्तो राजा श्रव इच्छमानः ॥१ ॥

हिंसादि कष्टों से परे, जिस राजा 'भाव्य' ने कीर्ति की कामना से युक्त होकर हमारे लिए सहस्रों यज्ञों को सम्पन्न किया, उस सिन्धु नदी के किनारे वास करने वाले नरेश के लिए हम ज्ञान से भरे स्तवनों का विवेक बुद्धिपूर्वक उच्चारण करते हैं ॥१ ॥

१४२०. शतं राज्ञो नाधमानस्य निष्काञ्छतमश्वान्प्रयतान्त्सद्य आदम् ।
शतं कक्षीवाँ असुरस्य गोनां दिवि श्रवोऽजरमा ततान ॥२ ॥

कक्षीवान् ने स्तोता और धनदाता राजा से सौ स्वर्णमुद्राएँ, सौ वेगशील अश्व तथा सौ श्रेष्ठ वृषभ ग्रहण किये; इससे उस नरेश की स्वर्गलोक में चारों ओर अक्षुण्ण कीर्ति फैल रही है ॥२ ॥

१४२१. उप मा श्यावाः स्वनयेन दत्ता वधूमन्तो दश रथासो अस्थुः ।
षष्टिः सहस्रमनु गव्यमागात्सनत्कक्षीवाँ अभिपित्वे अह्नाम् ॥३ ॥

स्वनय द्वारा प्रदत्त श्रेष्ठ वर्णों के अश्वों से युक्त और श्रेष्ठ स्त्रियों से युक्त दस रथ हमारे यहाँ आये हैं । दिन की प्रारम्भिक वेला में राजा से कक्षीवान् ने साठ हजार गौओं को प्राप्त किया ॥ ३ ॥

[उक्त ऋचाओं में ऐतिहासिक वर्णन के साथ-साथ सैद्धान्तिक – आध्यात्मिक अर्थ भी समाहित हैं । यज्ञ करने वाले राजा 'भाव्य' को स्वनय भी कहा है । भाव्य का अर्थ होता है, किसी रस विशेष से पूरी तरह अनुप्राणित । परमात्मचेतना से अनुप्राणित जीव ही भाव्य है, वही आत्म निर्देशित - स्वनय भी होता है । ऐसे भाव्य द्वारा किये गये यज्ञानुष्ठानों का लाभ कक्षीवान् (निर्धारित मार्ग पर अनुशासनों में चलने वाले कर्मकुशल) को प्राप्त होता है । साथ ही कक्षीवान् को स्वर्णमुद्राएँ (वैभव) , बैलों-अश्वों (पुरुषार्थ - श्रम की क्षमता) , गौओं (पोषक पदार्थों) तथा स्त्रियों (सत्-प्रवृत्तियों) की भी प्राप्ति होती है ।]

१४२२. चत्वारिंशद्दशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति ।
मदच्युतः कृशनावतो अत्यान्कक्षीवन्त उदमृक्षन्त पज्राः ॥४ ॥

हजारों की पंक्ति के आगे दस रथों को चालीस घोड़े खींच ले जाते हैं । अन्नयुक्त घास खाकर पुष्ट हुए, स्वर्णालंकारों से युक्त, जिनसे मद टपकता है, ऐसे घोड़ों को कक्षीवन्त अपने वश में करते हैं (मार्जन-मालिश आदि के द्वारा थकान मुक्त करते हैं ।) ॥४ ॥

[पुष्ट दस इन्द्रियों को चार पुरुषार्थ खींच कर हजारों से आगे ले जाते हैं । कक्षीवान् (कर्मकुशल) तेजस्वी अश्वों (चार पुरुषार्थों) को अपने वश में तथा कार्य के लिए तत्पर रखते हैं ।]

१४२३. पूर्वामनु प्रयतिमाददे वस्त्रीन्युक्ताँ अष्टावरिधायसो गाः ।
सुबन्धवो ये विश्या इव व्रा अनस्वन्तः श्रव ऐषन्त पज्राः ॥५ ॥

हे अन्नादि से पुष्ट श्रेष्ठ आचरण युक्त बन्धुओ ! आपके लिए हमने चार-चार (अश्वों अथवा वैभवों से युक्त) आठ और तीन (ग्यारह अर्थात् दस इन्द्रियाँ, ग्यारहवाँ मन) को, अगणित गौओं (पोषण देने वाली धाराओं) सहित प्रथम अनुदान के रूप में प्राप्त किया है । ये सब प्रेमपूर्वक रहनेवाली प्रजाओं-परिवारों की तरह रहकर, रथादियुक्त होकर श्रेय की कामना करें ॥५ ॥



१४२४. आगधिता परिगधिता या कशीकेव जङ्गहे।
ददाति मह्यं यादुरी याशूनां भोज्या शता ॥६ ॥

(स्वनय राजा का कथन) मेरी सहधर्मिणी (नीतियुक्त मति-श्रेष्ठ बुद्धि) मेरे लिए अनेक ऐश्वर्य एवं भोग्य पदार्थ उपलब्ध कराती है। यह सदा साथ रहने वाली, गुणों को धारण करने वाली मेरी सह-स्वामिनी है ॥६ ॥

१४२५. उपोप मे परा मृश मा मे दभ्राणि मन्यथाः।
सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका ॥७ ॥

(सहधर्मिणी का कथन) हे पतिदेव ! आप मेरे पास आकर बार-बार मेरा स्पर्श करें (प्रेरणा लें-परीक्षण करके देखें), मेरे कार्यों को अन्यथा न लें। जिस प्रकार गंधार की भेड़ रोमों से भरी होती है, उसी प्रकार मैं गुणों से युक्त-प्रौढ़ हूँ ॥७ ॥

[सूक्त - १२७]

[**ऋषि-** परुच्छेप दैवोदासि। **देवता-** अग्नि। **छन्द-** अत्यष्टि; ६ अतिधृति।]

१४२६. अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम्। य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा। घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाजुह्वानस्य सर्पिषः ॥१ ॥

दैवी गुणों से सम्पन्न, श्रेष्ठ कर्म के संपादक, जो अग्निदेव देवताओं के समीप जाने वाली ऊर्ध्वगामी ज्वालाओं से प्रदीप्त और विस्तारयुक्त होकर, अनवरत घृतपान की अभिलाषा करते हैं; उन देव आवाहनकर्त्ता, दानकर्त्ता, सबके आश्रयभूत, अरणि मन्थन से उत्पन्न, (अतएव) शक्ति के पुत्र, सर्वज्ञान-सम्पन्न, शास्त्रज्ञाता और ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानी के सदृश; अग्निदेव को हम स्वीकार करते हैं ॥१ ॥

१४२७. यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां विप्र मन्मभिर्विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः। परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम्। शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः ॥२ ॥

हे ज्ञानी और तेजस्वी अग्निदेव ! हम यजमान, उत्तम विचारकों के लिए मननीय मंत्रों द्वारा यज्ञ में आपका आवाहन करते हैं। ये प्रजाएँ अपनी रक्षा के लिए श्रेष्ठतम, तेजस्वी, सूर्य के सदृश गतिमान्, यज्ञ निर्वाहक एवं प्रदीप्त किरणों से युक्त अग्निदेव को तुष्ट-पुष्ट करती हैं ॥२ ॥

१४२८. स हि पुरू चिदोजसा विरुक्मता दीद्यानो भवति द्रुहन्तरः परशुर्न द्रुहन्तरः। वीळु चिद्यस्य समृतौ श्रुवद्वनेव यत्स्थिरम्। निष्षहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते ॥३ ॥

वे अग्निदेव तेजोमयी सामर्थ्य से अत्यन्त दीप्तिमान्, शत्रुओं में भय का संचार करने वाले तथा फरसे के तुल्य द्रोहियों का नाश करने वाले हैं। धनुर्धारी अचल योद्धा की तरह जिनके प्रभाव से बलवान् शत्रु भी पराजित हो जाते हैं एवं अनुशासन स्वीकार करते हैं, उन अग्निदेव के संयोग से अत्यन्त कठोर पदार्थ भी खण्ड-खण्ड हो जाते हैं ॥३ ॥

[अग्नि के विस्फोटक प्रयोग से शिलाओं को खंडित करने तथा वैल्डिंग जैसे प्रयोगों से लौह खण्डों को काटने की प्रणाली वर्तमान विज्ञान द्वारा खोजी जा चुकी है।]



१४२९. दृळ्हा चिदस्मा अनु दुर्यथा विदे तेजिष्ठाभिररणिभिर्दाष्ट्यवसे ऽग्नये दाष्ट्यवसे ।
प्र यः पुरूणि गाहते तक्षद्वनेव शोचिषा ।
स्थिरा चिदन्ना निरिणात्योजसा नि स्थिराणि चिदोजसा ॥४॥

जैसे ज्ञानी पुरुषों को धन देने का विधान है, उसी प्रकार अति सुदृढ़ (शक्तिशाली) मनुष्यों द्वारा अपने संरक्षण के निमित्त अग्नि में हविष्यान्न देने पर, अरणिमन्थन से प्रकट होने वाले अग्निदेव अपनी प्रचण्ड ज्वाला से प्रदीप्त होकर उसे ऐश्वर्यों से परिपुष्ट करते हैं। जिस प्रकार अग्निदेव असंख्य वनों में प्रविष्ट होकर उन्हें जला डालते हैं तथा अपने तेज से अन्नों को पकाते हैं, वैसे ही वे अपनी तेजस्विता से सुदृढ़ वैरियों को भी धराशायी कर देते हैं ॥४॥

१४३०. तमस्य पृक्षमुपरासु धीमहि नक्तं यः सुदर्शतरो दिवातरादप्रायुषे दिवातरात् ।
आदस्यायुर्ग्रभणवद्वीळु शर्म न सूनवे ।
भक्तमभक्तमवो व्यन्तो अजरा अग्नयो व्यन्तो अजराः ॥५॥

हम अग्निदेव के निमित्त यज्ञीय हविष्यान्न अर्पित करते हैं, जो दिन की अपेक्षा रात्रि को अधिक रमणीय लगते हैं। जैसे पुत्र के लिए पिता द्वारा सुखदायक निवास दिया जाता है, वैसे ही दिन की अपेक्षा रात्रि में प्रखर तेजस्वी दिखाई देने वाले अग्निदेव के निमित्त हवियाँ समर्पित करें। ये अग्नि ज्वालाएँ भक्त या अभक्त दोनों का भेद किये बिना प्रदत्त आहुतियों को स्वीकार करती हैं। हविष्यान्न ग्रहण करने वाले अग्निदेव सदा जरारहित (चिरयुवा) रहते और यजमान को भी अजर (प्रखर) बना देते हैं ॥५॥

१४३१. स हि शर्धो न मारुतं तुविष्वणिरप्नस्वतीषूर्वरास्विष्टनिरार्तनास्विष्टनिः ।
आदद्धव्यान्याददिर्यज्ञस्य केतुरर्हणा ।
अध स्मास्य हर्षतो हृषीवतो विश्वे जुषन्त पन्थां नरः शुभे न पन्थाम् ॥६॥

पूजनीय अग्निदेव यज्ञीय कर्मों, उपजाऊ क्षेत्रों और रणक्षेत्रों पर सभी जगह वेगवान् वायु की तरह ही ऊँचे स्वर से गर्जना करते हैं। यज्ञ की ध्वजारूप पूजनीय अग्निदेव हवियों को स्वीकार कर हविष्यान्न ग्रहण करते हैं। निज की प्रसन्नता के साथ दूसरों के लिए भी आनन्दप्रद इन अग्निदेव के मार्ग का सम्पूर्ण देव उसी प्रकार कल्याण प्राप्ति हेतु अनुसरण करते हैं, जिस प्रकार मनुष्य कल्याण की इच्छा से सन्मार्गगामी होते हैं ॥६॥

१४३२. द्विता यदीं कीस्तासो अभिद्यवो नमस्यन्त उपवोचन्त भृगवो मथ्नन्तो दाशा भृगवः । अग्निरीशे वसूनां शुचिर्यो धर्णिरेषाम् ।
प्रियाँ अपिधीँर्वनिषीष्ट मेधिर आ वनिषीष्ट मेधिरः ॥७॥

जब भृगुवंश में उत्पन्न ऋषियों ने मन्थन द्वारा इन अग्निदेव को प्रकट किया और स्तोत्रकर्त्ता, तेजवान् तथा विनयशील भृगुओं ने दो प्रकार से उनकी प्रार्थनाएँ कीं; तब परम पावन, धारण करने योग्य, ज्ञानी, अग्निदेव ने प्रेम पूर्वक अर्पित की गई आहुतियों को ग्रहण किया। वे ज्ञानी अग्निदेव धनों पर प्रभुत्व स्थापित करते हुए निश्चित ही हमारी प्रार्थनाएँ स्वीकार करते हैं ॥७॥

१४३३. विश्वासां त्वा विशां पतिं हवामहे सर्वासां समानं दम्पतिं भुजे सत्यगिर्वाहसं भुजे ।
अतिथिं मानुषाणां पितुर्न यस्यासया ।
अमी च विश्वे अमृतास आ वयो हव्या देवेष्वा वयः ॥८॥



हम सम्पूर्ण प्रजा के रक्षक, समदर्शी, गृहपालक, सत्यवादी, अतिथि रूप, अग्निदेव को उपभोग्य सामग्री के निमित्त आवाहित करते हैं। उन अग्निदेव के निकट हविष्यान्न पाने के लिए सम्पूर्ण देव उसी प्रकार आते हैं, जिस प्रकार पुत्र पिता के पास अन्न सामग्री की प्राप्ति हेतु जाते हैं। इसी भाव से मनुष्य भी देवताओं के लिए आहुतियाँ प्रदान करते हैं ॥८ ॥

१४३४. त्वमग्ने सहसा सहन्तमः शुष्मिन्तमो जायसे देवतातये रयिर्न देवतातये।
शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः।
अध स्मा ते परि चरन्त्यजर श्रुष्टीवानो नाजर ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! आप अपनी सामर्थ्य - शक्ति से शत्रुओं के पराभवकर्त्ता और अति तेजस्वी रूप में ही प्रकट हुए हैं। जैसे देवयज्ञों के निमित्त धन प्रकट होता है, वैसे ही अग्निदेव यज्ञीय संरक्षण के लिए प्रादुर्भूत हुए हैं। आप की प्रसन्नता अति बलप्रद और कर्म प्रखर-तेजस्वी हैं। हे अविनाशी अग्निदेव ! इन्हीं विशिष्ट गुणों के कारण सभी मनुष्य दूतरूप में आपकी सेवा में संलग्न रहते हैं ॥९ ॥

१४३५. प्र वो महे सहसा सहस्वत उषर्बुधे पशुषे नाग्नये स्तोमो बभूत्वग्नये।
प्रति यदीं हविष्मान्विश्वासु क्षासु जोगुवे।
अग्रे रेभो न जरत ऋषूणां जूर्णिर्होत ऋषूणाम् ॥१० ॥

हे साधको ! शत्रु पराभवकर्त्ता, प्रभातवेला में जागरणशील अग्निदेव को आपके महिमामय स्तुतिगान उसी प्रकार से प्रसन्नता प्रदान करें, जैसे उदारमना पशुधन आदि का दान देने वाले मनुष्य को मनुष्यों द्वारा की गई स्तुतियाँ प्रसन्नता देती हैं। यज्ञ सम्पादक सभी जगह इसी भाव को दृष्टिगत रखकर प्रार्थनाएँ करते हैं, स्तुतिगान में कुशल होता सभी देवों में सर्वप्रथम इन अग्निदेव को उसी प्रकार प्रशंसित करते हैं, जिस प्रकार चारणगण धनवानों की प्रशंसा करते हैं ॥१० ॥

१४३६. स नो नेदिष्ठं ददृशान आ भराग्ने देवेभिः सचनाः सुचेतुना महो रायः सुचेतुना।
महि शविष्ठ नस्कृधि सञ्चक्षे भुजे अस्यै।
महि स्तोतृभ्यो मघवन्त्सुवीर्यं मथीरुग्रो न शवसा ॥११ ॥

हे अग्निदेव ! समीप से दीप्तिमान् दिखाई देने वाले आप देवताओं द्वारा पूज्य हैं। आप कृपापूर्वक श्रेष्ठ धन से हमें परिपूर्ण करें। हे सामर्थ्यवान् अग्निदेव ! आप दीर्घायुष्य के लिए उपभोग्य पदार्थों को प्रदान करके हमें यशस्वी बनायें। हे ऐश्वर्य-सम्पन्न अग्निदेव ! आप स्तोताओं को श्रेष्ठ शौर्य-सम्पन्न और पराक्रमी बनायें तथा अपनी सामर्थ्य- शक्ति से शत्रुओं का संहार करें ॥११ ॥

[सूक्त - १२८]

[ऋषि- परुच्छेप दैवोदासि। देवता- अग्नि। छन्द- अत्यष्टि।]

१४३७. अयं जायत मनुषो धरीमणि होता यजिष्ठ उशिजामनु व्रतमग्निः स्वमनु व्रतम्।
विश्वश्रुष्टिः सखीयते रयिरिव श्रवस्यते।
अदब्धो होता नि षददिळस्पदे परिवीत इळस्पदे ॥१ ॥

देवताओं का आवाहन करने वाले, यज्ञादिकर्मों का सम्पादन करने वाले ये अग्निदेव यज्ञादि कर्म, व्रतनियमों के निर्वाह को दृष्टि में रखकर मनुष्यों द्वारा अरणिमन्थन से प्रकट होते हैं। मित्रता की



भावना करने वालों को सर्वस्व तथा धनाकांक्षी के लिए धन का अगाध भण्डार प्रदान करते हैं। पीड़ा मुक्त, होतारूप में ऋत्विजों से घिरे हुए अग्निदेव यज्ञवेदी में स्थापित किये जाते हैं, वे निश्चित ही यज्ञस्थल में प्रतिष्ठित होते हैं ॥१ ॥

१४३८. तं यज्ञसाधमपि वातयामस्यृतस्य पथा नमसा हविष्मता देवताता हविष्मता।
स न ऊर्जामुपाभृत्यया कृपा न जूर्यति।
यं मातरिश्वा मनवे परावतो देवं भाः परावतः ॥२ ॥

हम सत्यमार्ग से अति विनम्रतापूर्वक, यज्ञीय कर्म में घृतादि से युक्त आहुतियाँ देते हुए अग्निदेव की अर्चना करते हैं। जिन अग्निदेव को मनु के निमित्त मातरिश्वा वायु ने सुदूर स्थान से लाकर प्रदीप्त किया; ऐसे अग्निदेव हमारे द्वारा प्रदत्त हविष्यान्न को ग्रहण करके भी अपनी ताप क्षमता में कमी न आने दें ॥२ ॥

१४३९. एवेन सद्यः पर्येति पार्थिवं मुहुर्गी रेतो वृषभः कनिक्रदद्दधद्रेतः कनिक्रदत्।
शतं चक्षाणो अक्षभिर्देवो वनेषु तुर्वणिः।
सदो दधान उपरेषु सानुष्वग्निः परेषु सानुषु ॥३ ॥

सदा प्रशंसनीय सैकड़ों आँखों (असंख्य ज्वालाओं) से वनों को प्रकाशमान करते हुए समीपस्थ और दूरस्थ पर्वत शिखरों पर अपना स्थान निर्धारित करते हुए, शक्तिशाली, शक्ति के धारणकर्त्ता तथा गर्जनशील, शत्रुविनाशक ये अग्निदेव सुगम मार्ग द्वारा शीघ्रतापूर्वक पृथ्वी की परिक्रमा करते हैं ॥३ ॥

१४४०. स सुक्रतुः पुरोहितो दमेदमेऽग्निर्यज्ञस्याध्वरस्य चेतति क्रत्वा यज्ञस्य चेतति।
क्रत्वा वेधा इषूयते विश्वा जातानि पस्पशे।
यतो घृतश्रीरतिथिरजायत वह्निर्वेधा अजायत ॥४ ॥

सत्कर्मशील अग्रगामी अग्निदेव प्रत्येक घर में हिंसारहित यज्ञाग्नि के रूप में प्रज्वलित होते हैं, श्रेष्ठ कर्म द्वारा प्रदीप्त होते हैं तथा प्रखर कर्मों द्वारा अन्नादि के इच्छुकों को, ज्ञानी अग्निदेव सम्पूर्ण उपभोग्य पदार्थ प्रदान करते हैं; क्योंकि ये घृताहुति को ग्रहण करने के लिए पूजनीय अतिथि रूप में प्रकट हुए हैं। ये अग्निदेव हविवाहक तथा ज्ञान सम्पन्न हैं ॥४ ॥

१४४१. क्रत्वा यदस्य तविषीषु पृञ्चतेऽग्नेरवेण मरुतां न भोज्येषिराय न भोज्या।
स हि ष्मा दानमिन्वति वसूनां च मज्मना।
स नस्त्रासते दुरितादभिह्रुतः शंसादघादभिह्रुतः ॥५ ॥

जिस प्रकार मरुद्गण अग्नि को भोजन कराते हैं और जिस प्रकार (सत्पुरुष) भिक्षुकों को भोजन देते हैं, उसी प्रकार याजकगण विचारपूर्वक आदर सहित इन अग्नि ज्वालाओं के लिए आहुतियाँ प्रदान करते हैं। इसी प्रकार ये अग्निदेव अपनी सामर्थ्य से धनों को हविदाता की ओर प्रेरित करते हुए उस को पाप कर्मों और पराजय से सुरक्षित करते हैं। वे (अग्निदेव) दैवी अभिशापों तथा जीवन संघर्ष में पराभव से बचाते हैं ॥५ ॥

१४४२. विश्वो विहाया अरतिर्वसुर्दधे हस्ते दक्षिणे तरणिर्न शिश्रथच्छ्रवस्यया न शिश्रथत्। विश्वस्मा इदिषुध्यते देवत्रा हव्यमोहिषे।
विश्वस्मा इत्सुकृते वारमृण्वत्यग्निर्द्वारा व्यृण्वति ॥६ ॥



विश्व व्यापक, महान् एवं सामर्थ्यशाली अग्निदेव सूर्यदेव के समान ही यजमान को देने के लिए दाहिने हाथ में धन धारण करते हैं। वे मुक्त हस्त से यशोभिलाषी सत्कर्मशीलों को धन देते हैं, दुष्टों और दुराचारियों को नहीं। हे अग्निदेव! दिव्यता युक्त आप हविष्यान्न के अभिलाषी समस्त देवों के लिए हवि का वहन करते हैं तथा श्रेष्ठ कर्म करने वालों के निमित्त धन प्रदान करते हैं। आप उनके लिए धनकोष को पूर्ण रूप से खुला कर देते हैं ॥६ ॥

१४४३. स मानुषे वृजने शन्तमो हितो३ग्निर्यज्ञेषु जेन्यो न विश्पतिःप्रियो यज्ञेषु विश्पतिः।
स हव्या मानुषाणामिळा कृतानि पत्यते।
स नस्त्रासते वरुणस्य धूर्तेर्महो देवस्य धूर्तेः ॥७ ॥

वे अग्निदेव मनुष्यों के पाप निवारण के निमित्त यज्ञीय कर्मों में अतिसुखप्रद और कल्याणकारी हैं। विजेता नरेश के समान ही प्रजाजनों के पालक और स्नेह पात्र हैं। यजमानों द्वारा प्रदत्त हविष्यान्न को अग्निदेव ग्रहण करते हैं। ऐसे अग्निदेव यज्ञकर्म के विरोधियों और धूर्तजनों से हमें सुरक्षित करें तथा महिमायुक्त देवताओं के कोपभाजन होने से हमें बचायें ॥७ ॥

१४४४. अग्निं होतारमीळते वसुधितिं प्रियं चेतिष्ठमरतिं न्येरिरे हव्यवाहं न्येरिरे।
विश्वायुं विश्ववेदसं होतारं यजतं कविम्।
देवासो रण्वमवसे वसूयवो गीर्भी रण्वं वसूयवः ॥८ ॥

धन- धारणकर्त्ता, अतिचैतन्य, प्रेरणायुक्त, सर्वप्रिय, होतारूप अग्निदेव की सभी मनुष्य प्रार्थना करते हुए उनसे प्रेरणा ग्रहण करते हैं। उनके प्रयास से हविवाहक सबके प्राण स्वरूप, सर्वज्ञाता, देवावाहक, पूजनीय और क्रान्तदर्शी अग्निदेव भली प्रकार प्रज्वलित किये गये हैं। ऋत्विग्गण धन की कामना से प्रेरित होकर अपने संरक्षणार्थ उन मनोहारी अग्निदेव की स्तोत्र गान करते हुए अर्चना करते हैं ॥८ ॥

[सूक्त - १२९]

[**ऋषि-** परुच्छेप दैवोदासि। **देवता-** इन्द्र; ६ इन्दु। **छन्द-** अत्यष्टि, ८-९ अतिशक्वरी; ११ अष्टि।]

१४४५. यं त्वं रथमिन्द्र मेधसातयेऽपाका सन्तमिषिर प्रणयसि प्रानवद्य नयसि।
सद्यश्चित्तमभिष्टये करो वशश्च वाजिनम्। सास्माकमनवद्य तूतुजान वेधसामिमां वाचं न वेधसाम् ॥१ ॥

हे पापरहित प्रेरक इन्द्रदेव! आप यज्ञ कार्य के लिए अपने रथ को आगे बढ़ाते हैं और अपरिपक्वों को भी शीघ्रता से अभीष्ट प्राप्ति के लिए उपयोगी बना देते हैं। अन्न (हवि) के प्रति आपका विशेष आकर्षण है। शीघ्रतापूर्वक श्रेष्ठकर्मों को सम्पन्न करने वाले पाप मुक्त हे इन्द्रदेव! वेदज्ञों की इस स्तुति रूपी वाणी के समान ही इस हवि को भी आप स्वीकार करें ॥१ ॥

१४४६. स श्रुधि यः स्मा पृतनासु कासु चिद्दक्षाय्य इन्द्र भरहूतये नृभिरसि प्रतूर्तये नृभिः।
यः शूरैः स्व१: सनिता यो विप्रैर्वाजं तरुता।
तमीशानास इरधन्त वाजिनं पृक्षमत्यं न वाजिनम् ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव! आप संग्रामों में वीर पुरुषों के साथ शत्रु को नष्ट करने में कुशल हैं। भरण-पोषण के क्रम में जो स्वयं प्राप्त करने वाले तथा अन्नादि का वितरण करने वाले श्रेष्ठ पुरुष हैं, उन्हें आप शक्ति-सामर्थ्य देते हैं। आप हमारी प्रार्थना सुनें। जिस प्रकार बलशाली लोग अश्व का सहारा लेते हैं, उसी प्रकार समर्थ लोग तेजस्वी इन्द्रदेव का आश्रय लेते हैं ॥२ ॥



१४४७. दस्मो हि ष्मा वृषणं पिन्वसि त्वचं कं चिद्यावीररुं शूर मर्त्यं परिवृणक्षि मर्त्यम्।
इन्द्रोत तुभ्यं तद्दिवे तद्रुद्राय स्वयशसे ।
मित्राय वोचं वरुणाय सप्रथः सुमृळीकाय सप्रथः ॥३ ॥

हे बलशाली इन्द्रदेव ! आप मनोहारी रूप में मेघों के आवरण को जल से पूर्ण करते हैं । आप कष्टप्रद असुरों को दूर करते तथा शत्रुओं का संहार करते हैं । ये इन्द्रदेव शत्रुओं के विनाश के निमित्त कारण, रुद्र के समान भयंकर, मित्र के समान हितैषी, श्रेष्ठ सुखप्रद तथा सबके द्वारा वरणीय हैं ॥३ ॥

१४४८. अस्माकं व इन्द्रमुश्मसीष्टये सखायं विश्वायुं प्रासहं युजं वाजेषु प्रासहं युजम्।
अस्माकं ब्रह्मोतयेऽवा पृत्सुषु कासु चित्।
नहि त्वा शत्रुः स्तरते स्तृणोषि यं विश्वं शत्रुं स्तृणोषि यम् ॥४ ॥

हे मनुष्यो ! समस्त जनों के मित्र के समान हितैषी इन्द्रदेव की आयुष्य वृद्धि और शत्रुओं के विध्वंस के लिए हम यज्ञ सम्पादनार्थ प्रार्थना करते हैं। हे इन्द्रदेव ! आप जिस शत्रु समूह का विध्वंस करते हैं, वे संगठित होकर भी आपकी सामर्थ्य के आगे नगण्य हैं । ऐसे आप सभी संग्रामों में हमारी ज्ञान-सामर्थ्य को संरक्षित रखें ॥४ ॥

१४४९. नि षू नमातिमतिं कयस्य चित्तेजिष्ठाभिररणिभिर्नोतिभिरुग्राभिरुग्रोतिभिः ।
नेषि णो यथा पुरानेनाः शूर मन्यसे।
विश्वानि पूरोरप पर्षि वह्निरासा वह्निर्नो अच्छ ॥५ ॥

हे पराक्रमी इन्द्रदेव ! आप अपनी शक्तिशाली सामर्थ्य व संरक्षण साधनों की तेजस्विता से शत्रुओं के अहंकार को छिन्न-भिन्न कर दें अर्थात् विदीर्ण कर डालें । हे बलशाली इन्द्रदेव ! आप शत्रुनाशक होने पर भी पापमुक्त हैं । पूर्ववत् हमें आगे करके स्वयं अग्रगामी होकर सभी मनुष्यों के कषाय- कल्मषों का निवारण करें । आप सदैव हमारे सम्मुख रहें ॥५ ॥

१४५०. प्र तद्वोचेयं भव्यायेन्दवे हव्यो न य इषवान्मन्म रेजति रक्षोहा मन्म रेजति।
स्वयं सो अस्मदा निदो वधैरजेत दुर्मतिम्।
अव स्रवेदघशंसोऽवतरमव क्षुद्रमिव स्रवेत् ॥६ ॥

जो मनुष्य अपने पुरुषार्थ से प्रगतिशील हैं, वे इन्द्रदेव के समान प्रशंसनीय और प्रार्थना योग्य हैं तथा जो दुष्टों के नाशक हैं, वे भी स्तुत्य हैं । श्रेष्ठ सोम के लिए हम स्तोत्र का उच्चारण करें । वे निन्दकों को अपनी सामर्थ्य से हमसे दूर करें, घातक अस्त्रों से दुर्बुद्धिग्रस्तों तथा कटुवाणी का प्रयोग करने वालों का क्षय करें । थोड़े से जल के समान ही शत्रुओं का समूल नाश करें ॥६ ॥

१४५१. वनेम तद्धोत्रया चितन्त्या वनेम रयिं रयिवः सुवीर्यं रण्वं सन्तं सुवीर्यम् ।
दुर्मन्मानं सुमन्तुभिरेमिषा पृचीमहि।
आ सत्याभिरिन्द्रं द्युम्नहूतिभिर्यजत्रं द्युम्नहूतिभिः ॥७ ॥

हे वैभव सम्पन्न इन्द्रदेव ! हम यजनीय वाणी से आपकी स्तुति करें तथा सुन्दर, शक्ति-सम्पन्न सम्पदा का लाभ प्राप्त करें । श्रेष्ठ, मननशील, सुविचारों एवं संकल्प शक्ति से, अलभ्य इन्द्रदेव को प्राप्त करें । यजन करने योग्य इन्द्रदेव को, यशस्विता युक्त सत्य स्वरूप का वर्णन करने वाली प्रार्थनाओं से प्रशंसित करें ॥७ ॥



१४५२. प्रप्रा वो अस्मे स्वयशोभिरूती परिवर्ग इन्द्रो दुर्मतीनां दरीमन्दुर्मतीनाम् ।
स्वयं सा रिषयध्यै या न उपेषे अत्रैः ।
हतेमसन्न वक्षति क्षिप्ता जूर्णिर्न वक्षति ॥८ ॥

इन्द्रदेव अपनी यशस्वी संरक्षण सामर्थ्य द्वारा दुष्टों और दुर्बुद्धिग्रस्तों से हम सभी का संरक्षण करें । हमारे विनाश हेतु अति समीपवर्ती भक्षक राक्षसों द्वारा जो तीव्र गतिशील सेना भेजी गई है, वे आपसी कलह का शिकार होकर विनष्ट हो जाये । हमारे समीप तक उसकी पहुँच न हो ॥८ ॥

१४५३. त्वं न इन्द्र राया परीणसा याहि पथाँ अनेहसा पुरो याह्यरक्षसा ।
सचस्व नः पराक आ सचस्वास्तमीक आ ।
पाहि नो दूरादारादभिष्टिभिः सदा पाह्यभिष्टिभिः ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सभी प्रकार के धनों को पापरहित मार्ग से हमें उपलब्ध करायें । धन बल से हम किसी को पीड़ित न करें । आप हमारे दूरस्थ अथवा निकटस्थ दोनों जगह हैं । आप दूर या निकट जहाँ भी हों, हमें संरक्षित करें । उपयोगी वस्तुओं के दान द्वारा हमारी हर प्रकार से सहायता करें ॥९ ॥

१४५४. त्वं न इन्द्र राया तरूषसोग्रं चित्त्वा महिमा सक्षदवसे महे मित्रं नावसे ।
ओजिष्ठ त्रातरविता रथं कं चिदमर्त्य ।
अन्यमस्मद्रिरिषेः कं चिदद्रिवो रिरिक्षन्तं चिदद्रिवः ॥१० ॥

हे ओजस्वी, पालनकर्त्ता, संरक्षक तथा अमर इन्द्रदेव ! आप सुखस्वरूप धन से हमें दुःख-क्लेशों से मुक्त करें । अपने यशस्वी जीवन की रक्षा हेतु हम सूर्य के समान तेजस्वी आपके ही सान्निध्य में रहें । हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप अपने विशेष रथ से यहाँ आयें । आप हम भक्तों के अतिरिक्त अन्यों पर क्रोध करें तथा हिंसक राक्षसों के प्रति क्रोधित हों ॥१० ॥

१४५५. पाहि न इन्द्र सुष्टुत स्रिधोऽवयाता सदमिद्दुर्मतीनां देवः सन्दुर्मतीनाम् ।
हन्ता पापस्य रक्षसस्त्राता विप्रस्य मावतः ।
अधा हि त्वा जनिता जीजनद्वसो रक्षोहणं त्वा जीजनद्वसो ॥११ ॥

हे श्रेष्ठ, स्तुति योग्य इन्द्रदेव ! आप देवरूप में पापकर्मों से सदा हमारा संरक्षण करें । आप सदैव दुर्बुद्धिग्रस्तों और उनकी दुष्ट अभिलाषाओं के नाशक हों । आप विध्वंसक, पापकर्मों में लिप्त राक्षसों के हन्ता और विद्वान् पुरुषों के संरक्षक हों । हे आश्रयदाता ! इसी हेतु आपका प्रादुर्भाव हुआ है ॥११ ॥

[सूक्त - १३०]

[**ऋषि-** परुच्छेप दैवोदासि । **देवता-** इन्द्र । **छन्द-** अत्यष्टि; १० त्रिष्टुप् ।]

१४५६. एन्द्र याह्युप नः परावतो नायमच्छा विदथानीव सत्पतिरस्तं राजेव सत्पतिः ।
हवामहे त्वा वयं प्रयस्वन्तः सुतेसचा ।
पुत्रासो न पितरं वाजसातये मंहिष्ठं वाजसातये ॥१ ॥

हे सज्जनों के पालक इन्द्रदेव ! यज्ञों में अग्नि की तरह आप दूर से भी पहुँचें । क्षेत्रपालक राजा की तरह आयें । जैसे पुत्र पिता को बुलाते हैं, उसी प्रकार हम हव्ययुक्त याजक अन्न प्राप्ति के लिए आपका सोमयज्ञ में आवाहन करते हैं ॥१ ॥



१४५७. पिबा सोममिन्द्र सुवानमद्रिभिः कोशेन सिक्तमवतं न वंसगस्तातृषाणो न वंसगः ।
मदाय हर्यताय ते तुविष्टमाय धायसे ।
आ त्वा यच्छन्तु हरितो न सूर्यमहा विश्वेव सूर्यम् ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप जल द्वारा सींचे गये और पत्थरों द्वारा कूटकर अभिषुत हुए सोमरस का वैसे ही पान करें, जिस प्रकार तीव्र प्यास से युक्त वृषभ जलाशय में जाकर जल पीते हैं। अभीष्ट आनन्द की प्राप्ति के लिए आपके अश्व वैसे ही आपको यज्ञस्थल में लेकर आयें, जैसे किरणरूपी अश्व सूर्यदेव को अभीष्ट की ओर प्रेरित करते हैं ॥२ ॥

१४५८. अविन्ददिवो निहितं गुहा निधिं वेर्न गर्भं परिवीतमश्मन्यनन्ते अन्तरश्मनि ।
व्रजं वज्री गवामिव सिषासन्नङ्गिरस्तमः ।
अपावृणोदिष इन्द्रः परीवृता द्वार इषः परीवृताः ॥३ ॥

जिस प्रकार गौओं के गोष्ठ अथवा जंगल में छिपाकर रखे गये पक्षियों के बच्चों को कोई मांसभक्षी खोज निकालता है, वैसे ही अंगिराओं में उत्तम, तेजस्वी, वज्रधारी इन्द्रदेव ने असीमित बादलों में छिपे हुए जल के भण्डार को खोज निकाला और जल वृष्टि द्वारा मानो इन्द्रदेव ने मनुष्यों के लिए धन-धान्य रूपी वैभव के द्वारों को ही खोल दिया हो ॥३ ॥

१४५९. दादृहाणो वज्रमिन्द्रो गभस्त्योः क्षद्मेव तिग्ममसनाय सं श्यदहिहत्याय सं श्यत् ।
संविव्यान ओजसा शवोभिरिन्द्र मज्मना ।
तष्टेव वृक्षं वनिनो नि वृश्चसि परश्वेव नि वृश्चसि ॥४ ॥

इन्द्रदेव अपने हाथों में तेजधार वाले वज्र को शत्रु पर प्रहार हेतु सुदृढ़ता से धारण करते हैं । वे जल की तीव्र धारा के समान ही असुरता के संहार के लिए शस्त्र की धार में अति पैनापन लाते हैं । हे इन्द्रदेव ! आप अपनी सामर्थ्य से उसी प्रकार परशु शस्त्र द्वारा शत्रुओं का संहार कर देते हैं, जैसे तेज कुल्हाड़े से बढ़ई जंगल के वृक्षों को काट डालते हैं ॥४ ॥

१४६०. त्वं वृथा नद्य इन्द्र सर्तवेऽच्छा समुद्रमसृजो रथाँ इव वाजयतो रथाँ इव ।
इत ऊतीरयुञ्जत समानमर्थमक्षितम् ।
धेनूरिव मनवे विश्वदोहसो जनाय विश्वदोहसः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने नदियों के जल प्रवाह को समुद्र की ओर सतत प्रवाहित होने के लिए उसी प्रकार प्रेरित किया है, जैसे शक्ति-सामर्थ्य की वृद्धि के लिए राजा रथों से युक्त सेना को प्रेषित करते हैं । कामनाओं की पूर्ति करने वाली कामधेनु गौ के समान ही नदियों के जल प्रवाह, विचारशील मनुष्यों के लिए अक्षुण्ण धन-सम्पदा को प्रदान करने वाले हैं ॥५ ॥

१४६१. इमां ते वाचं वसूयन्त आयवो रथं न धीरः स्वपा अतक्षिषुः सुम्नाय
त्वामतक्षिषुः । शुम्भन्तो जेन्यं यथा वाजेषु विप्र वाजिनम् ।
अत्यमिव शवसे सातये धना विश्वा धनानि सातये ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार निपुण कारीगर धन की कामना से प्रेरित होकर श्रेष्ठ रथों का निर्माण करते हैं, उसी प्रकार स्तोतागण आपके लिए प्रशंसक स्तोत्रों का गान करते हैं । हे ज्ञान - सम्पन्न इन्द्रदेव ! जिस प्रकार सारथि शक्तिशाली घोड़ों को विजय लाभ के लिए अतिशक्तिशाली बनाते हैं, वैसे ही स्तोतागण, धन, बल और सुखों के लाभ के लिए स्तुतियों द्वारा आपको प्रोत्साहित करते हैं ॥६ ॥



१४६२. भिनत्पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय महि दाशुषे नृतो वज्रेण दाशुषे नृतो।
अतिथिग्वाय शम्बरं गिरेरुग्रो अवाभरत्।
महो धनानि दयमान ओजसा विश्वा धनान्योजसा ॥७॥

हे आनन्दप्रद इन्द्रदेव ! आपने महान् दानदाता पुरु और दिवोदास के लिए शत्रुओं की नब्बे नगरियों का वज्र द्वारा विध्वंस कर डाला। हे पराक्रमी वीर इन्द्रदेव ! आपने अपनी शक्ति-सामर्थ्य से प्रचुर धन-सम्पदा अतिथिग्व के लिए प्रदान की तथा शम्बर को पर्वत से गिराकर समाप्त कर दिया ॥७॥

१४६३. इन्द्रः समत्सु यजमानमार्यं प्रावद्विश्वेषु शतमूतिराजिषु स्वर्मीळ्हेष्वाजिषु।
मनवे शासदव्रतान्त्वचं कृष्णामरन्धयत्।
दक्षन्न विश्वं ततृषाणमोषति न्यर्शसानमोषति ॥८॥

परस्पर संगठित होकर किये जाने वाले युद्धों में सैकड़ों संरक्षण साधनों से युक्त इन्द्रदेव श्रेष्ठ मनुष्यों का संरक्षण करते हैं, मननशील मनुष्यों को पीड़ित करने वाले दुष्टों को दण्डित करके नियन्त्रित करते हैं तथा कलुषित कर्मों में संलिप्त दुष्टों का संहार करते हैं। इन्द्रदेव उपद्रवियों को उसी प्रकार भस्म कर देते हैं, जैसे अग्नि पदार्थों को जला डालती है। निश्चित ही वे हिंसकों को भस्म कर देते हैं ॥८॥

१४६४. सूरश्चक्रं प्र वृहज्जात ओजसा प्रपित्वे वाचमरुणो मुषायतीशान आ मुषायति।
उशना यत्परावतोऽजगन्नूतये कवे।
सुम्नानि विश्वा मनुषेव तुर्वणिरहा विश्वेव तुर्वणिः ॥९॥

तेजस्वी और सबके प्रेरक इन्द्रदेव अपनी शक्ति- सामर्थ्य रूपी चक्र को लेकर शत्रुओं के पास पहुँचते ही उन्हें शान्त कर देते हैं, मानो अधीश्वर इन्द्रदेव ने उनकी वाणी का ही हरण कर लिया हो। हे क्रान्तदर्शी इन्द्रदेव ! आप जिस प्रकार उशना ऋषि के संरक्षणार्थ अतिदूर से ही उनके समीप आते हैं, वैसे ही मनुष्यों के लिए भी सभी प्रकार के सुखों को प्रदान करें। जिस प्रकार कोई व्यक्ति सम्पूर्ण दिन, दान में व्यतीत करता है, हमारे लिए आप वैसे ही दाता बनें ॥९॥

१४६५. स नो नव्येभिर्वृषकर्मन्नुक्थैः पुरां दर्तः पायुभिः पाहि शग्मैः।
दिवोदासेभिरिन्द्र स्तवानो वावृधीथा अहोभिरिव द्यौः ॥१०॥

शत्रुओं के नगरों को ध्वस्त करने वाले सामर्थ्य सम्पन्न हे इन्द्रदेव ! आप नवरचित स्तोत्रों से सन्तुष्ट होकर सुखप्रद साधनों और हमारे अनुष्ठित कर्मों का संरक्षण करें। हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार दिवस सूर्य की तेजस्विता को द्युलोक में फैलाते हैं, वैसे ही हमारे स्तोत्र आपकी शक्ति को बढ़ायें ॥१०॥

[सूक्त - १३१]

[ऋषि- परुच्छेप दैवोदासि। देवता- इन्द्र। छन्द- अत्यष्टि।]

१४६६. इन्द्राय हि द्यौरसुरो अनम्नतेन्द्राय मही पृथिवी वरीमभिर्द्युम्नसाता वरीमभिः।
इन्द्रं विश्वे सजोषसो देवासो दधिरे पुरः।
इन्द्राय विश्वा सवनानि मानुषा रातानि सन्तु मानुषा ॥१॥

विस्तृत पृथ्वी और तेजस्वी द्युलोक ने अपने संसाधनों से इन्द्रदेव का सहयोग किया। उत्साहित



देवगणों ने सहमति पूर्वक इन्द्रदेव को अग्रणी रूप में प्रतिष्ठित किया । सभी देवता उन्हें अपना नायक मानकर हविभाग अर्पित करते हैं । मनुष्यों द्वारा दी गयी सोम युक्त आहुतियाँ इन्द्रदेव के लिए समर्पित हों ॥१ ॥

१४६७. विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं वृषमण्यवः पृथक् स्वः सनिष्यवः पृथक्। तं त्वा नावं न पर्षणिं शूषस्य धुरि धीमहि। इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयवः स्तोमेभिरिन्द्रमायवः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! सभी सोमयज्ञों में विभिन्न उद्देश्यों वाले याजक आपको हविष्यान्न प्रदान करते हैं । स्वर्ग की प्राप्ति के इच्छुक भी पृथक् रूप में आहुतियाँ देते हैं । मनुष्यों को सागर से पार ले जाने वाली नाव के समान ही इन्द्रदेव को जागरूक करके सेना के अग्रिम भाग में प्रतिष्ठित करते हैं । हम स्तुति करने वाले स्तोत्रों द्वारा आपका ध्यान करते हैं ॥२ ॥

१४६८. वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः। यद्गव्यन्ता द्वा जना स्व१र्यन्ता समूहसि। आविष्करिक्रद्वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! संरक्षण के इच्छुक गृहस्थजन सपत्नीक स्वर्ग प्राप्ति एवं गौओं की प्राप्ति के लिए आपके सम्मुख प्रस्तुत होते हैं । ऐसे में हे इन्द्रदेव ! गौ समूह की प्राप्ति के लिए होने वाले संग्राम में आपको स्वयं ले जाकर प्रेरित करने वाले यजमान आपके लिए यज्ञ कर्म सम्पादित करते हैं । आपने ही अपने साथ रहने वाले वज्र को प्रकट (प्रयुक्त) किया है ॥३ ॥

१४६९. विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः सासहानो अवातिरः। शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते। महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः ॥ ४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके द्वारा शत्रुओं की सामर्थ्य को पद-दलित किये जाने पर, जब आपने ही उनकी शरद्कालीन आवासीय नगरियों का विध्वंस किया, तब प्रजाजनों में आपकी पराक्रम शक्ति विख्यात हुई । हे शक्ति के प्रतिनिधि इन्द्रदेव ! आपने मनुष्यों के कल्याण के लिए यज्ञ विध्वंसक राक्षसों को दण्डित करके पृथ्वी एवं जलों पर उनके प्रभुत्व को समाप्त किया ॥४ ॥

१४७०. आदित्ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन्मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ सखीयतो यदाविथ। चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे। ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णत श्रवस्यन्तः सनिष्णत ॥५ ॥

हे शक्तिशाली इन्द्रदेव ! आनन्दित होते हुए आपने यजमानों तथा मित्र भाव रखने वालों का संरक्षण किया । उनके द्वारा आपकी पराक्रम शक्ति को चारों ओर विस्तारित किया गया । आपने ही धनादि वितरण से संग्रामों में वीरों को प्रोत्साहित किया । आपने एक - दूसरे के सहयोग से धन लाभ देते हुए अन्नादि के इच्छुकों को अन्न उपलब्ध कराया ॥५ ॥

१४७१. उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्य१र्कस्य बोधि हविषो हवीमभिः स्वर्षाता हवीमभिः। यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिञ्चिकेतसि। आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः ॥ ६ ॥



हे इन्द्रदेव ! आप हमारे प्रभातकालीन यज्ञादिकर्मों के समय उच्चारित स्तुतियों पर ध्यान दें और आहुतियों को ग्रहण करें । सुखों की प्राप्ति हेतु स्तुतियों के अभिप्राय को जानें । हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! जिस प्रकार आप शत्रुनाशक कार्यों में सजग रहते हैं, उसी गम्भीरता से आप नवीन रचित स्तोत्रों और नये ज्ञानी स्तोताओं की प्रार्थनाओं पर ध्यान दें ॥६ ॥

१४७२. त्वं तमिन्द्र वावृधानो अस्मयुरमित्रयन्तं तुविजात मर्त्यं वज्रेण शूर मर्त्यम् ।
जहि यो नो अघायति शृणुष्व सुश्रवस्तमः ।
रिष्टं न यामन्नप भूतु दुर्मतिर्विश्वाप भूतु दुर्मतिः ॥ ७ ॥

हे अति विख्यात वीर इन्द्रदेव ! आप हमारे संरक्षण के लिए हमें पीड़ित करने वाले दुष्टों को वज्रास्त्र से मार डालें । हे इन्द्रदेव ! आप हमारे निवेदन पर ध्यान दें । दुर्बुद्धि से ग्रस्त शत्रु आपके वज्रास्त्र के प्रहार से, खण्डित वस्तु के समान हमारे मार्ग से हट जायें । समस्त दुर्बुद्धियों का संसार से नाश हो ॥७ ॥

[सूक्त - १३२]

[**ऋषि-** परुच्छेप दैवोदासि । **देवता-** इन्द्र ; ६ पूर्वार्द्ध भाग के इन्द्र और पर्वत, शेष अर्द्ध भाग के इन्द्र । **छन्द-** अत्यष्टि ।]

१४७३. त्वया वयं मघवन्पूर्व्ये धन इन्द्रत्वोताः सासह्याम पृतन्यतो वनुयाम वनुष्यतः ।
नेदिष्ठे अस्मिन्नहन्यधि वोचा नु सुन्वते ।
अस्मिन्यज्ञे वि चयेमा भरे कृतं वाजयन्तो भरे कृतम् ॥१ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आपके संरक्षण में हम लोग प्रथम संग्राम में ही आक्रमणकारियों पर विजय प्राप्त करें । आप हिंसक वृत्ति के दुष्टों का संहार करें । इन समीपस्थ दिवसों में आप साधकों को प्रेरित करें । श्रेष्ठ कर्मों के लिए संघर्ष करने वाले हम याजकगण इस यज्ञ में आपका वरण करें । हम शक्ति सम्पन्न बनकर युद्ध नेतृत्व की योग्यता में कुशल हों ॥१ ॥

१४७४. स्वर्जेषे भर आप्रस्य वक्मन्युषर्बुधः स्वस्मिन्नञ्जसि क्राणस्य स्वस्मिन्नञ्जसि ।
अहन्निन्द्रो यथा विदे शीर्ष्णाशीर्ष्णोपवाच्यः ।
अस्मत्रा ते सध्र्यक् सन्तु रातयो भद्रा भद्रस्य रातयः ॥२ ॥

सुख प्राप्ति हेतु किये जाने वाले संघर्षों, श्रेष्ठ मनुष्यों के उच्च लक्ष्यों, प्रभातवेला में जागने वालों के व्यवहारों तथा सत्कर्मों का निर्वाह करने वालों के नित्यकर्मों में बाधा डालने वाले आलस्य- प्रमादादि शत्रुओं को इन्द्रदेव ने ज्ञान की तीक्ष्ण धारा से समाप्त किया । इससे समस्त मनुष्यों में इन्द्रदेव प्रशंसनीय हुए । हे इन्द्रदेव ! आपके समस्त ऐश्वर्य हमें प्राप्त हों । आप जैसे मंगलकारी के सभी अनुदान हमारे लिए मंगलमय हों ॥२ ॥

१४७५. तत्तु प्रयः प्रत्नथा ते शुशुक्वनं यस्मिन्यज्ञे वारमकृण्वत क्षयमृतस्य वारसि
क्षयम् । वि तद्वोचेरध द्वितान्तः पश्यन्ति रश्मिभिः ।
स घा विदे अन्विन्द्रो गवेषणो बन्धुक्षिद्भ्यो गवेषणः ॥ ३ ॥

हे इन्द्रदेव !जिस यज्ञ में आपने प्रतिष्ठित स्थान बनाया है, वहाँ पूर्ववत् ही आपके निमित्त तेजस्वी अन्न उपलब्ध हों । सत्य की महिमा से सुशोभित उच्च स्थान पर पहुँचाने वाले आप उसी सत्यमार्ग को ही दिखायें । सूर्य-रश्मियों से सभी लोग दोनों लोकों के मध्य में स्थिर मेघरूप में आपके ही दर्शन करते हैं । आप ही गौओं के प्रदाता होने के साथ सत्यधाम के ज्ञाता हैं तथा यजमानों के लिएगौओं को देने वाले हैं- ऐसा सुप्रसिद्ध है ॥३ ॥



१४७६. नू इत्था ते पूर्वथा च प्रवाच्यं यदङ्गिरोभ्योऽवृणोरप व्रजमिन्द्र शिक्षन्नप व्रजम्।
ऐभ्यः समान्या दिशास्मभ्यं जेषि योत्सि च।
सुन्वद्भ्यो रन्धया कं चिदव्रतं हृणायन्तं चिदव्रतम् ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! पहले के समान ही आपकी पराक्रम शक्ति प्रशंसनीय हो। जो आपने अंगिराओं को गौ समूह जीतकर दिया तथा उन्हें ले जाने का मार्ग दिखाया, वैसे ही आप हमारे लिए भी ऐश्वर्यों को जीतकर प्रदान करें। आप यज्ञविरोधियों तथा क्रोधयुक्त पापियों को यज्ञादि श्रेष्ठकर्म करने वालों के हित में विनष्ट करें ॥४॥

१४७७. सं यज्जनान् क्रतुभिः शूर ईक्षयद्धने हिते तरुषन्त श्रवस्यवः प्र यक्षन्त श्रवस्यवः।
तस्मा आयुः प्रजावदिद्बाधे अर्चन्त्योजसा।
इन्द्र ओक्यं दिधिषन्त धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः ॥५॥

जब बलशाली इन्द्रदेव ने पराक्रम युक्त कर्मों द्वारा मनुष्यों की तरफ निहारा, तब अन्न प्राप्ति के इच्छुक मनुष्यों ने युद्ध के प्रारम्भ होने पर शत्रुओं को विनष्ट किया। उस समय यशोभिलाषियों ने इन्द्रदेव की विशेष अर्चना की। आप अपनी सामर्थ्य—शक्ति से शत्रुओं को विनष्ट करके श्रेष्ठ सन्तान एवं दीर्घायुष्य प्रदान करें। श्रेष्ठ कर्मों के निर्वाहक मनुष्य इन्द्रदेव को ही अपना एकमात्र आश्रयदाता मानते हैं ॥५॥

१४७८. युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादप तन्तमिद्धतं वज्रेण तन्तमिद्धतम्।
दूरे चत्ताय च्छन्त्सद्गहनं यदिनक्षत्।
अस्माकं शत्रून्परि शूर विश्वतो दर्मा दर्षीष्ट विश्वतः ॥६॥

युद्ध क्षेत्र में आगे बढ़कर पराक्रम दिखाने वाले हे इन्द्रदेव और पर्वत ! आप दोनों युद्ध करने वाले प्रत्येक शत्रु को अपने तीक्ष्ण वज्र के प्रहार से यम लोक पहुँचायें। हे वीर ! शत्रुओं द्वारा चारों ओर से घिर जाने पर हमें उनसे मुक्त करायें। पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग तीनों लोकों में व्याप्त हे देव ! आपके अनुग्रह से हम सभी याजक श्रेष्ठ वीर पराक्रमी सन्तानों से युक्त होकर अपार धन-वैभव से लाभान्वित हों ॥६॥

[सूक्त - १३३]

[**ऋषि**- परुच्छेप दैवोदासि। **देवता**- इन्द्र। **छन्द**- १ त्रिष्टुप्; २-४ अनुष्टुप्; ५ गायत्री; धृति; ७ अत्यष्टि।]

१४७९. उभे पुनामि रोदसी ऋतेन द्रुहो दहामि सं महीरनिन्द्राः।
अभिव्लग्य यत्र हता अमित्रा वैलस्थानं परि तृळ्हा अशेरन् ॥१॥

जो इन्द्रदेव यज्ञ की शक्ति से दोनों लोकों को पावन बनाते हैं। हम उन इन्द्रदेव के विरोधियों और अति भयंकर द्रोहियों का दहन करते हैं। जहाँ बड़ी संख्या में शत्रु मारे जाते हैं, वहाँ मृत शरीरों से युद्धभूमि श्मशान जैसी प्रतीत होती है ॥१॥

१४८०. अभिव्लग्या चिदद्रिवः शीर्षा यातुमतीनाम्।
छिन्धि वटूरिणा पदा महावटूरिणा पदा ॥२॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप हिंसक शत्रुओं के अति निकट जाकर (शीश पर पहुँचकर) अपनी विशाल सैन्य शक्ति से उन्हें पददलित करें ॥२॥



१४८१. अवासां मघवञ्जहि शर्धो यातुमतीनाम्। वैलस्थानके अर्मके महावैलस्थे अर्मके॥ ३ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आप मृतक मनुष्यों के घृणित स्थान एवं घृणित श्मशानों के समान इस हिंसक सैन्य शक्ति को अपनी सामर्थ्य से विनष्ट करें ॥३ ॥

१४८२. यासां तिस्रः पञ्चाशतोऽभिव्लङ्गैरपावपः। तत्सु ते मनायति तकत्सु ते मनायति॥ ४ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिन शत्रु सेनाओं के त्रिगुणित पचास अर्थात् डेढ़ सौ सैनिकों को चारों ओर से घेरकर युद्ध की चालों से विनष्ट किया। आपके वे पराक्रमी कार्य प्रशंसनीय हैं; भले ही आपके लिए उनकी कोई विशेष महत्ता न हो ॥४ ॥

१४८३. पिशङ्गभृष्टिमम्भृणं पिशाचिमिन्द्र सं मृण। सर्वं रक्षो नि बर्हय ॥ ५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप क्रोधाग्नि से लाल हुए शस्त्रधारियों एवं विशालकाय पिशाचों को नष्ट करें। आप समस्त राक्षसी शक्तियों का संहार करें ॥५ ॥

१४८४. अवर्मह इन्द्र दादृहि श्रुधी नः शुशोच हि द्यौः क्षा न भीषाँ अद्रिवो घृणान्न भीषाँ अद्रिवः। शुष्मिन्तमो हि शुष्मिभिर्वधैरुग्रेभिरीयसे।
अपूरुषघ्नो अप्रतीत शूर सत्वभिस्त्रिसप्तैः शूर सत्वभिः ॥६ ॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप हमारे निवेदन पर भयंकर राक्षसों की सामर्थ्य को क्षीण करके उनका संहार करें। दिव्यलोक भी पृथ्वी पर हो रहे अत्याचारों से शोकातुर हो गया है। हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! जिस प्रकार अग्नि द्वारा वस्तुएँ भस्म होती हैं, वैसे ही आपके भय से शत्रु दुःखी हैं। बलशाली सेना को सुदृढ़ शस्त्रबल से सुसज्जित करके आप शत्रुदल के समीप जाते हैं। हे अग्रगामी वीर ! आप अपने शूरवीरों को सुरक्षित करने हेतु तत्पर रहते हैं। हे शूरवीर इन्द्रदेव ! आप इक्कीस सेनाओं के साथ अर्थात् विशाल सैन्य शक्ति के साथ युद्ध क्षेत्र में जाते हैं ॥६ ॥

१४८५. वनोति हि सुन्वन्क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा यजत्यव द्विषो देवानामव द्विषः।
सुन्वान इत्सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः।
सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् ॥७ ॥

सोमरस निचोड़कर तैयार करने वाले यजमान सभी ओर फैले हुए दुष्टों और देवविरोधियों को दूर करते हैं। मुक्त इन्द्रदेव यजमानों को सहस्रों प्रकार के धन प्रदान करते हैं। वे उन्हें वैभव प्रदान करते हैं ॥७ ॥

[सूक्त - १३४]

[**ऋषि-** परुच्छेप दैवोदासि। **देवता-** वायु। **छन्द-** अत्यष्टि; ६ अष्टि।]

१४८६. आ त्वा जुवो रारहाणा अभि प्रयो वायो वहन्त्विह पूर्वपीतये सोमस्य पूर्वपीतये।
ऊर्ध्वा ते अनु सूनृता मनस्तिष्ठतु जानती।
नियुत्वता रथेना याहि दावने वायो मखस्य दावने ॥१ ॥

हे वायुदेव ! आपको शीघ्रगामी अश्व पहले के समान ही पुरोडाश- हविष्यान्न के लिए इस सोमयाग में पहुँचायें। हे वायो ! हमारी प्रार्थनाओं द्वारा अभिव्यक्त प्रिय वाणी आपके गुणों से परिचित है, वह आपके अनुरूप हो। आप अपने रथ से आहुतियों को ग्रहण करने के लिए इस यज्ञ में पधारें ॥१ ॥



१४८७. मन्दन्तु त्वा मन्दिनो वायविन्दवोऽस्मत्क्राणासः सुकृता अभिद्यवो गोभिः क्राणा अभिद्यवः। यद्ध क्राणा इरध्यै दक्षं सचन्त ऊतयः।
सध्रीचीना नियुतो दावने धिय उप ब्रुवत ईं धियः ॥२ ॥

हे वायो !आप हमारे द्वारा भली प्रकार से निष्पन्न हुए, उत्साहवर्धक, तेजस्विता युक्त तथा गोदुग्ध से मिश्रित सोमरस का आनन्द-पूर्वक पान करें। पुरुषार्थी मनुष्य संरक्षण की कामना से शक्ति-संचय के लिए श्रमरत रहते हैं। सभी विवेकशील मनुष्य सामूहिक प्रयास से संगठित होकर विवेक-सम्मत दान के लिए आपकी ही प्रार्थना करते हैं ॥२ ॥

१४८८. वायुर्युङ्क्ते रोहिता वायुररुणा वायू रथे अजिरा धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे। प्र बोधया पुरन्धिं जार आ ससतीमिव।
प्र चक्षय रोदसी वासयोषसः श्रवसे वासयोषसः ॥३ ॥

वायुदेव गमन करने के लिए, भारवहन में सक्षम लाल तथा अरुण रंग के दो बलिष्ठ अश्वों को अपने रथ के धुरे में जोतते हैं। हे वायुदेव ! जैसे प्रेमी पुरुष सोई हुई स्त्री को उठाते हैं, वैसे ही आप मनुष्यों को जगायें, द्यावा-पृथिवी को निश्चित रूप से प्रकाशमान करें तथा ऐश्वर्य के लिए देवी उषा को आलोकित करें ॥३ ॥

१४८९. तुभ्यमुषासः शुचयः परावति भद्रा वस्त्रा तन्वते दंसु रश्मिषु चित्रा नव्येषु रश्मिषु। तुभ्यं धेनुः सबर्दुघा विश्वा वसूनि दोहते।
अजनयो मरुतो वक्षणाभ्यो दिव आ वक्षणाभ्यः ॥४ ॥

हे वायुदेव ! पवित्र उषाएँ आपके लिए दूर स्थित, नवीन, दर्शन योग्य रश्मियों से अद्भुत कल्याणकारी वस्त्रों को बुनती हैं। अमृत रूपी दूध देने वाली गौएँ आपके लिए समस्त (दूधरूप) धनों को प्रदान करती हैं। इन्हीं अजन्मा हवाओं से नदियों (समुद्रों) का जल ऊपर आकाश में जाता है। जाने के बाद बरसकर नदियों में पुनः आता है, अतएव जलवृष्टि के कारण के मूल में वायुदेव ही हैं ॥४ ॥

[**यहाँ वर्षा के विज्ञान सम्मत स्वरूप का वर्णन है।**]

१४९०. तुभ्यं शुक्रासः शुचयस्तुरण्यवो मदेषूग्रा इषणन्त भुर्वण्यपामिषन्त भुर्वणि।
त्वां त्सारी दसमानो भगमीट्टे तक्ववीये।
त्वं विश्वस्माद्भुवनात्पासि धर्मणासुर्यात्पासि धर्मणा ॥५ ॥

हे वायुदेव ! उज्ज्वल, पवित्र, अति गतिशील, तीक्ष्णतायुक्त यह सोमरस, ऐश्वर्यप्रद यज्ञादि के अवसर पर आपके सहयोग का इच्छुक है। जलों की स्थापना तथा दूसरे स्थान में ले जाने में आपका ही विशेष सहयोग रहता है। हे वायुदेव ! निर्बल मनुष्य विपत्तियों के निवारण हेतु आपसे ही प्रार्थना करते हैं। क्योंकि आप ही निरन्तर प्राणवायु के संचार से सम्पूर्ण संसार को आसुरी शक्तियों से संरक्षण प्रदान करते हैं ॥५ ॥

१४९१. त्वं नो वायवेषामपूर्व्यः सोमानां प्रथमः पीतिमर्हसि सुतानां पीतिमर्हसि।
उतो विहुत्मतीनां विशां ववर्जुषीणाम्।
विश्वा इत्ते धेनवो दुह्र आशिरं घृतं दुह्रत आशिरम् ॥ ६ ॥

हे अतिश्रेष्ठ वायुदेव ! आप हमारे द्वारा अभिषुत सोमरस के सर्वप्रथम पान के लिए उपयुक्त हैं (अधिकारी



हैं)। समस्त गौएँ जिस प्रकार दूध और घी आपके निमित्त प्रदान करती हैं, उसी प्रकार आप भी प्राणवायु प्रदान करें। आप निष्पाप तथा यज्ञादि सत्कर्म करने वाले मनुष्यों द्वारा प्रदत्त हवियों को ग्रहण करें ॥६ ॥

[सूक्त - १३५]

[**ऋषि-** परुच्छेप दैवोदासि । **देवता-** १-३,९ वायु; ४-८ इन्द्र- वायु । **छन्द-** अत्यष्टि; ६-८ अष्टि ।]

१४९२. स्तीर्णं बर्हिरुप नो याहि वीतये सहस्रेण नियुता नियुत्वते शतिनीभिर्नियुत्वते ।
तुभ्यं हि पूर्वपीतये देवा देवाय येमिरे ।
प्र ते सुतासो मधुमन्तो अस्थिरन्मदाय क्रत्वे अस्थिरन् ॥१ ॥

हे वायुदेव ! आपके लिए ही हमारे द्वारा कुशासन (कुश का आसन) बिछाया गया है, आप सहस्रों अश्वों से युक्त रथ द्वारा हविष्यान्न ग्रहण करने के लिए यहाँ आयें। शक्तिरूपी सैकड़ों अश्वों से युक्त वायुदेव के लिए ऋत्विजों ने यह सोमरस तैयार किया है। अभिषुत मधुर सोमरस यज्ञ में आपके आनन्द के लिए प्रस्तुत है ॥१ ॥

१४९३. तुभ्यायं सोमः परिपूतो अद्रिभिः स्पार्हा वसानः परि कोशमर्षति शुक्रा वसानो अर्षति । तवायं भाग आयुषु सोमो देवेषु हूयते ।
वह वायो नियुतो याह्यस्मयुर्जुषाणो याह्यस्मयुः ॥२ ॥

हे वायुदेव ! पत्थरों द्वारा कूटकर शोधित किया हुआ तथा वाञ्छित तेजस्विता को धारण किया हुआ सोमरस कलश में स्थित है। आप शुद्ध एवं कान्तिमान् सोम के हिस्से को सर्व प्रथम ग्रहण करते हैं। मनुष्यों द्वारा सर्व प्रथम देवरूप में आपका ही आवाहन किया जाता है। हे वायुदेव ! आप स्वयं ही अश्वों को प्रेरित कर हमारे पास आने की इच्छा करें ॥२ ॥

१४९४. आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुप याहि वीतये वायो हव्यानि वीतये । तवायं भाग ऋत्वियः सरश्मिः सूर्ये सचा ।
अध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत ॥३ ॥

हे वायुदेव ! आप हमारे यज्ञ में सैकड़ों और हजारों अश्वों सहित सोमरस पीने के लिए (हविष्यान्न ग्रहण करने के लिए) पधारें। आपके निमित्त ही ऋतु के अनुसार यह सोमरस तैयार किया गया है। यह सोमरस सूर्य रश्मियों के सम्पर्क से सूर्यदेव की तरह ही तेजस्विता को धारण किये हुए है। हे वायुदेव ! ऋत्विजों द्वारा यह सोमरस आपकी शक्ति को बढ़ाने के लिए कलशपात्रों में भरकर रखा गया है ॥३ ॥

१४९५. आ वां रथो नियुत्वान्वक्षदवसेऽभि प्रयांसि सुधितानि वीतये वायो हव्यानि वीतये । पिबतं मध्वो अन्धसः पूर्वपेयं हि वां हितम् ।
वायवा चन्द्रेण राधसा गतमिन्द्रश्च राधसा गतम् ॥४ ॥

हे वायुदेव ! आप और इन्द्रदेव दोनों, घोड़ों से खींचे जा रहे रथ द्वारा, भलीप्रकार निष्पादित सोम रस रूपी हविष्यान्न को ग्रहण करने तथा हमारे संरक्षण के लिए यहाँ पधारें। यहाँ आकर हमारे द्वारा तैयार किये गये सोमरस का पान करें। हे वायुदेव ! आप इन्द्रदेव के साथ आनन्दप्रद ऐश्वर्य हमें प्रदान करें ॥४ ॥



**१४९६. आ वां धियो ववृत्युरध्वराँ उपेममिन्दुं मर्मृजन्त वाजिनमाशुमत्यं न वाजिनम्।
तेषां पिबतमस्मयू आ नो गन्तमिहोत्या।
इन्द्रवायू सुतानामद्रिभिर्युवं मदाय वाजदा युवम् ॥५ ॥**

हे इन्द्रदेव और वायुदेव ! आप दोनों की बुद्धि सदैव यज्ञीय कर्मों के साथ रहे । जैसे गतिशील घोड़े को चालक स्वच्छ करते हैं । उसी प्रकार बलवर्धक इस सोमरस को आपके लिए हम तैयार करते हैं । हे इन्द्रदेव और वायुदेव ! आप दोनों संरक्षण साधनों के साथ यहाँ पधारकर सोमरसों का पान करें । पत्थरों द्वारा कूटकर अभिषुत, शक्ति प्रदायक सोमरसों को आप दोनों आनन्द प्राप्ति के लिए पिएँ ॥५ ॥

**१४९७. इमे वां सोमा अप्स्वा सुता इहाध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत।
एते वामभ्यसृक्षत तिरः पवित्रमाशवः युवायवोऽति रोमाण्यव्यया सोमासो अत्यव्यया ॥६ ॥**

(हे इन्द्रदेव और वायुदेव) ऋत्विजों द्वारा अभिषुत यह सोमरस यज्ञों में आप दोनों को प्राप्त हो । हे वायुदेव ! दीप्तिमान् और प्रवाहित होने वाला यह सोमरस आपके लिए तिरछी धारा से पात्र में डाला जाता है, इस प्रकार का सोमरस आपको प्राप्त हो। अखण्डित रोम तंतुओं से छनकर सोमरस अति संरक्षक गुणों से सम्पन्न हो जाता है ॥६ ॥

१४९८.अति वायो ससतो याहि शश्वतो यत्र ग्रावा वदति तत्र गच्छतं गृहमिन्द्रश्च गच्छतम्। वि सूनृता ददृशे रीयते घृतमा पूर्णया नियुता याथो अध्वरमिन्द्रश्च याथो अध्वरम् ॥७ ॥

हे वायुदेव ! आप सोये हुए आलसी मनुष्यों को त्यागकर आगे चले जाते हैं । आप दोनों हमेशा वहीं जाते हैं, जहाँ सोम को पत्थरों द्वारा कूटने की ध्वनि होती है, जहाँ वेद-मन्त्रों की ध्वनि सुनाई देती है और घृताहुतियों द्वारा यज्ञ सम्पन्न किया जाता है । इन्द्रदेव और आप दोनों ही प्राणऊर्जा देने के लिए बलशाली घोड़ों के साथ उस यज्ञस्थल पर पहुँचें ॥७ ॥

**१४९९. अत्राह तद्वहेथे मध्व आहुतिं यमश्वत्थमुपतिष्ठन्त जायवोऽस्मे ते सन्तु जायवः।
साकं गावः सुवते पच्यते यवो न ते वाय उप दस्यन्ति धेनवो नाप दस्यन्ति धेनवः ॥८ ॥**

हे इन्द्रदेव और वायुदेव ! जो सोम पुरुषार्थी लोगों द्वारा पर्वतों से ओषधिरूप में प्राप्त किया जाता है, उस सोमरस को आप दोनों यहीं ले आयें । इस सोम ओषधि को पुरुषार्थी लोग प्राप्त करने में सफल हों । आपके लिए गौएँ अमृतरूपी दूध प्रदान करती हैं तथा जौ आदि अन्न भी आपके लिए ही सोमरस में डालने के लिए पकाये जाते हैं । हे वायुदेव ! आपके लिए दुधारू गौएँ कभी कम न हों, किसी के द्वारा गौओं का अपहरण न हो ॥८ ॥

**१५००. इमे ये ते सु वायो बाह्वोजसोऽन्तर्नदी ते पतयन्त्युक्षणो महि व्राधन्त उक्षणः।
धन्वञ्चिद्ये अनाशवो जीराश्चिदगिरौकसः।
सूर्यस्येव रश्मयो दुर्नियन्तवो हस्तयोर्दुर्नियन्तवः ॥९ ॥**

हे श्रेष्ठ वायुदेव ! आपके ये बहुत शक्तिशाली युवा अश्व आपको द्युलोक और पृथ्वी के मध्य में सहज ही ले जाते हैं, जो मरुस्थलों में भी उतनी ही तेजगति से भागते हैं । उन अति वेगशील अश्वों का वाणी द्वारा वर्णन करना असम्भव है । जिस प्रकार सूर्य किरणों को कोई नियन्त्रित नहीं कर सकता, उसी तरह वायु की गति को हाथों द्वारा रोकना सर्वथा असम्भव है ॥९ ॥



[सूक्त - १३६]

[ऋषि- परुच्छेप दैवोदासि । देवता- १-५ मित्रावरुण, ६-७ लिङ्गोक्त । छन्द- अत्यष्टि; ७ त्रिष्टुप् ।]

१५०१. प्र सु ज्येष्ठं निचिराभ्यां बृहन्नमो हव्यं मतिं भरता मृळयद्भ्यां स्वादिष्ठं मृळयद्भ्याम् । ता सम्राजा घृतासुती यज्ञेयज्ञ उपस्तुता । अथैनोः क्षत्रं न कुतश्चनाधृषे देवत्वं नू चिदाधृषे ॥१ ॥

हे मनुष्यो ! वे दोनों मित्र और वरुणदेव अति तेजस्वी, घृताहुतियों का सेवन करने वाले तथा प्रत्येक यज्ञ में प्रार्थना के लिए उपयुक्त हैं । हम सभी श्रद्धा और भक्ति सहित मित्र वरुणदेव को प्रणाम करें तथा उत्तम बुद्धि से उनकी प्रार्थना करें । इनके क्षात्रबल और देवत्व को क्षीण नहीं किया जा सकता ॥१ ॥

१५०२. अदर्शि गातुरुरवे वरीयसी पन्था ऋतस्य समयंस्त रश्मिभिश्चक्षुर्भगस्य रश्मिभिः । द्युक्षं मित्रस्य सादनमर्यम्णो वरुणस्य च । अथा दधाते बृहदुक्थ्यं१ वय उपस्तुत्यं बृहद्वयः ॥२ ॥

यज्ञ के लिए वेगवती उषादेवी प्रकाशित हुई हैं । रश्मियों से सूर्यमार्ग आलोकित हुआ है । ऐश्वर्यशाली सूर्यदेव की रश्मियों से आँखों में चमक आ गई है । मित्र, अर्यमा और वरुण देव सभी तेजस्विता सम्पन्न हुए हैं, अतएव सम्पूर्ण देवताओं के निमित्त आहुतियों के रूप में प्रशंसनीय हविष्यान्न अर्पित किया जाता है, जिसे वे स्वीकार करते हैं ॥२ ॥

१५०३. ज्योतिष्मतीमदितिं धारयत्क्षितिं स्वर्वतीमा सचेते दिवेदिवे जागृवांसा दिवेदिवे । ज्योतिष्मत्क्षत्रमाशाते आदित्या दानुनस्पती । मित्रस्तयोर्वरुणो यातयज्जनोऽर्यमा यातयज्जनः ॥३ ॥

विशिष्ट धारण-क्षमता वाली पृथ्वी तथा दिव्य तेजस्विता युक्त अदिति देवी की सेवा में मित्र और वरुणदेव नित्य जाग्रत् रहकर प्रवृत्त होते हैं । धन के अधिपति आदित्यगण तेजस्वी शक्ति को नित्य ही प्राप्त करते हैं । मित्र, वरुण और अर्यमा तीनों देव मनुष्यों को श्रेष्ठ मार्ग में बढ़ाते हैं ॥३ ॥

१५०४. अयं मित्राय वरुणाय शन्तमः सोमो भूत्ववपानेष्वाभगो देवो देवेष्वाभगः । तं देवासो जुषेरत विश्वे अद्य सजोषसः । तथा राजाना करथो यदीमह ऋतावाना यदीमहे ॥४ ॥

पेय पदार्थों में सबसे उत्कृष्ट तथा देवताओं में महावैभव सम्पन्न यह सोम, मित्र और वरुणदेव दोनों के लिए अति- आनन्दप्रद हो । सामञ्जस्य- युक्त सद्विचारों और सद्भावनाओं के प्रेरक समस्त देव समूह इस सोम का सेवन करें । हे तेजस्विता सम्पन्न मित्र और वरुणदेव ! आप श्रेष्ठ कर्मों के प्रेरक हों, हमारी अभीष्ट कामनाओं को निश्चय ही पूर्ण करें ॥४ ॥

१५०५. यो मित्राय वरुणायाविधज्जनोऽनर्वाणं तं परि पातो अंहसो दाश्वांसं मर्तमंहसः । तमर्यमाभि रक्षत्यृजूयन्तमनु व्रतम् । उक्थैर्य एनोः परिभूषति व्रतं स्तोमैराभूषति व्रतम् ॥५ ॥

जो विद्वेष भावना से रहित होकर मित्र वरुण के प्रति सेवाभाव रखते हैं; जो अपने प्रशंसक कर्मों से दोनों



को सुशोभित करते हैं; जो वाणी से उनके कर्मों की महिमा बढ़ाते हैं; उन्हें मित्र और वरुणदेव दुष्कर्म रूपी पापों से सुरक्षित करते हैं । जो दानशील सरल और सत्यमार्ग के अवलम्बी तथा श्रेष्ठ व्रतों के प्रति अनुशासित हैं; ऐसे सभी मनुष्यों को अर्यमादेव दु:खदायी पापकर्मों से बचाते हैं ॥५ ॥

१५०६. नमो दिवे बृहते रोदसीभ्यां मित्राय वोचं वरुणाय मीळ्हुषे सुमृळीकाय
मीळ्हुषे । इन्द्रमग्निमुप स्तुहि द्युक्षमर्यमणं भगम् ।
ज्योग्जीवन्तः प्रजया सचेमहि सोमस्योती सचेमहि ॥६ ॥

हम द्यावा - पृथिवी, सुखप्रद मित्रदेव तथा अति सुखदायी वरुणदेव की वन्दना करते हैं । हे मनुष्यो ! आप इन्द्र, अग्नि, दीप्तिमान् अर्यमा तथा भगदेव की उपासना करें । जिससे इन सभी देवताओं की कृपा से हम सभी चिरंजीवी होकर सन्तानादि से युक्त हों और सभी प्रकार की सुरक्षा व्यवस्थाओं से युक्त हों ॥६ ॥

१५०७. ऊती देवानां वयमिन्द्रवन्तो मंसीमहि स्वयशसो मरुद्भिः ।
अग्निर्मित्रो वरुणः शर्म यंसन् तदश्याम मघवानो वयं च ॥७ ॥

हम सभी देवताओं द्वारा प्रदत्त सुखों को प्राप्त करें तथा अपनी यशस्विता और बलों से सम्पन्न होकर देवकृपा से सुरक्षित हों । अग्नि, मित्र तथा वरुणदेव हमें सुखी करें; ऐसे महान् ऐश्वर्यों से युक्त होकर हम सदैव सुखोपभोग करें ॥७ ॥

[सूक्त - १३७]

[ऋषि- परुच्छेप दैवोदासि । देवता- मित्रावरुण । छन्द- अतिशक्वरी ।]

१५०८. सुषुमा यातमद्रिभिर्गोश्रीता मत्सरा इमे सोमासो मत्सरा इमे ।
आ राजाना दिविस्पृशास्मत्रा गन्तमुप नः ।
इमे वां मित्रावरुणा गवाशिरः सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥१ ॥

हे मित्र और वरुणदेव ! हम इस सोमरस को पत्थरों द्वारा कूटकर निचोड़ते (अभिषुत करते) हैं । यह गो दुग्ध मिश्रित सोम निश्चित ही आनन्दप्रद है, अतएव आप दोनों हमारे यहाँ पधारें । अति दीप्तिमान् तथा दिव्यलोक को स्पर्श करने वाले आप दोनों हमारे पालन पोषण के निमित्त यहाँ आयें । हे मित्र और वरुण देवो ! यह पवित्र सोमरस गो दुग्ध तथा जल में मिलाकर तैयार किया गया है, जो आपके लिए प्रस्तुत है ॥१ ॥

१५०९. इम आ यातमिन्दवः सोमासो दध्याशिरः सुतासो दध्याशिरः ।
उत वामुषसो बुधि साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ।
सुतो मित्राय वरुणाय पीतये चारुर्ऋताय पीतये ॥२ ॥

हे मित्र और वरुणदेव ! आप दोनों, निचोड़कर तैयार किये गये दूध और दही में मिश्रित तेजस्वी सोमरस का पान करने के लिए यहाँ आयें । आपके लिए प्रभात वेला में सूर्य रश्मियों के प्रकाशित होने के साथ ही यह सोमरस अभिषुत किया गया है । मित्र और वरुण देवों के लिए(इस यज्ञ कर्म में) यह अभिषुत सोम प्रस्तुत है ॥२ ॥

१५१०. तां वां धेनुं न वासरीमंशुं दुहन्त्यद्रिभिः सोमं दुहन्त्यद्रिभिः ।
अस्मत्रा गन्तमुप नोऽर्वाञ्चा सोमपीतये ।
अयं वां मित्रावरुणा नृभिः सुतः सोम आ पीतये सुतः ॥३ ॥



हे मित्र और वरुणदेव ! आपके लिए ऋत्विग्गण उसी प्रकार पत्थरों से कूटकर सोम वल्लियों से रस निचोड़ते हैं, जिस प्रकार गौओं से दूध का दोहन किया जाता है । आप दोनों हमारे संरक्षण के लिए सोमपान हेतु यहाँ आयें । हे मित्रावरुणदेवो ! आप दोनों के पान करने के लिए ही याज्ञिकों द्वारा सोमरस अभिषुत किया गया है ॥३ ॥

[सूक्त - १३८]

[**ऋषि-** परुच्छेप दैवोदासि । **देवता-** पूषा । **छन्द-** अत्यष्टि ।]

१५११. प्रप्र पूष्णस्तुविजातस्य शस्यते महित्वमस्य तवसो न तन्दते स्तोत्रमस्य न तन्दते ।
अर्चामि सुम्नयन्नहमन्त्यूतिं मयोभुवम् ।
विश्वस्य यो मन आयुयुवे मखो देव आयुयुवे मखः ॥१ ॥

शक्ति के साथ उत्पन्न होने से पूषादेव की महिमा का सभी जगह गान होता है । इनकी सामर्थ्य को दबाना सम्भव नहीं तथा इनके प्रति स्तुतिगानों की कभी कमी नहीं रहती । जो देव यज्ञकर्त्ताओं के मनों में पारस्परिक सहयोग भावना जगाते हैं तथा जो तेजस्विता युक्त यज्ञों को सम्पन्न करते हैं- ऐसे संरक्षण सामर्थ्यों से युक्त, सुख-प्रदायक पूषादेव से अभीष्ट सुखों की प्राप्ति के लिए हम अर्चना करते हैं ॥१ ॥

१५१२. प्र हि त्वा पूषन्नजिरं न यामनि स्तोमेभिः कृण्व ऋणवो यथा मृध उष्ट्रो न पीपरो मृधः । हुवे यत्त्वा मयोभुवं देवं सख्याय मर्त्यः ।
अस्माकमाङ्गूषान्द्युम्निनस्कृधि वाजेषु द्युम्निनस्कृधि ॥२ ॥

हे पूषादेव ! जिस प्रकार मनुष्य तीव्र गतिशील अश्व को प्रशंसा द्वारा प्रोत्साहित करते हैं अथवा जिस प्रकार संग्राम की ओर प्रयाण करने वाले वीर को प्रोत्साहित करते हैं, उसी प्रकार हम स्तोत्रवाणियों द्वारा आपको प्रोत्साहित करते हैं । आप मरुस्थल से ऊँट द्वारा यात्रियों को पार उतारने के समान ही हिंसक शत्रुओं से हमें सुरक्षित करें । आप हमारी वाणी में प्रखरता लायें, सभी संघर्षों में हमें तेजस्विता युक्त करें । मैत्री भावना के लिए सुखकारी आप (पूषादेव) को ही हम सभी मनुष्य आवाहित करते हैं ॥२ ॥

१५१३. यस्य ते पूषन्त्सख्ये विपन्यवः क्रत्वा चित्सन्तोऽवसा बुभुज्रिर इति क्रत्वा बुभुज्रिरे । तामनु त्वा नवीयसीं नियुतं राय ईमहे ।
अहेळमान उरुशंस सरी भव वाजेवाजे सरी भव ॥३ ॥

हे पूषादेव ! आपकी मैत्री भावना के ज्ञाता वीर पुरुष अपनी पुरुषार्थ क्षमता एवं आपके संरक्षण से सभी उपभोग्य पदार्थों को प्राप्त करते हैं । इस प्रकार से सभी मनुष्य अपने पुरुषार्थ से ही उपभोग्य सामग्री को प्राप्त करने के लिए किसी की दया के पात्र नहीं बनते । उस श्रेष्ठ बुद्धि के अनुशासन के अधीन रहकर आपसे हम धन की कामना करते हैं । हे बहुसंख्यकों से स्तुत्य पूषादेव ! आप प्रत्येक संघर्षशील संग्राम में हमारा सहयोग करें ॥३ ॥

१५१४. अस्या ऊ षु ण उप सातये भुवोऽहेळमानो ररिवाँ अजाश्व श्रवस्यतामजाश्व ।
ओ षु त्वा ववृतीमहि स्तोमेभिर्दस्म साधुभिः ।
नहि त्वा पूषन्नतिमन्य आघृणे न ते सख्यमपह्नुवे ॥४ ॥



हे पूषादेव ! आप हमें वैभव- सम्पन्न बनाने के लिए प्रेम भाव से दानदाता बनकर यहाँ पधारें । हे दर्शनयोग्य पूषादेव ! अन्न के इच्छुक आप हमारे पास आयें, हम श्रेष्ठ स्तवनों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं । हे जल वर्षक पूषादेव ! हम आपके द्वारा अनादर से परे रहें, आपकी मैत्री से कभी वञ्चित न हों ॥४ ॥

[सूक्त - १३९]

[**ऋषि-** परुच्छेप दैवोदासि । **देवता-** १ विश्वेदेवा, २ मित्रावरुण; ३- ५ अश्विनीकुमार; ६ इन्द्र; ७ अग्नि; ८-मरुद्‌गण; ९ इन्द्राग्नी; १० बृहस्पति; ११ विश्वेदेवा । **छन्द-** अत्यष्टि; ५ बृहती; ११ त्रिष्टुप् ।]

१५१५. अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु तच्छर्धो दिव्यं वृणीमह इन्द्वायू वृणीमहे । यद्ध क्राणा विवस्वति नाभा सन्दायि नव्यसी । अध प्र सू न उप यन्तु धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः ॥१ ॥

हमने अग्निदेव को बुद्धिपूर्वक धारण किया है । उस दिव्य प्रदीप्त ज्योति की हम आराधना करते हैं । नवीन याज्ञिक की यज्ञवेदी पर आकर, मनोरथ पूरे करने वाले इन्द्रदेव और वायुदेव की हम प्रार्थना करते हैं । हमारी स्तुति निश्चित ही देवताओं के पास पहुँचे । हमारी प्रार्थनाएँ देवों तक अवश्य पहुँचे ॥१ ॥

१५१६. यद्ध त्यन्मित्रावरुणावृतादध्याददाथे अनृतं स्वेन मन्युना दक्षस्य स्वेन मन्युना । युवोरित्थाधि सद्मस्वपश्याम हिरण्ययम् । धीभिश्चन मनसा स्वेभिरक्षभिः सोमस्य स्वेभिरक्षभिः ॥२ ॥

हे मित्रावरुणो ! आप दोनों निज सामर्थ्य से सत्यवादिता द्वारा असत्यवादियों को अनुशासित करते हैं तथा अपनी शक्ति-सामर्थ्य से उनके ऊपर शासन करते हैं । अतएव आप दोनों की स्वर्णिम तेजस्विता को अपनी बुद्धि, मन, इन्द्रियशक्ति तथा ज्ञान सामर्थ्य के द्वारा हम प्रत्यक्ष देखते हैं ॥२ ॥

१५१७. युवां स्तोमेभिर्देवयन्तो अश्विनाश्रावयन्त इव श्लोकमायवो युवां हव्याभ्या३ यवः । युवोर्विश्वा अधि श्रियः पृक्षश्च विश्ववेदसा । प्रुषायन्ते वां पवयो हिरण्यये रथे दस्रा हिरण्यये ॥३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! देवताओं के प्रति श्रद्धा भावना से युक्त मनुष्य स्तवनों द्वारा आप दोनों का यशोगान करते हैं । श्रद्धावान् याजक आप दोनों का आवाहन करते हैं । आप दोनों के सर्वज्ञ होने से, समस्त वैभव सम्पदाएँ और अन्न आप दोनों के ही आश्रित हैं । हे मनोहारी देवो ! सुन्दर स्वर्णिम रथ के चक्र आपको वहन करते हैं ॥३ ॥

१५१८. अचेति दस्रा व्यु१नाकमृण्वथो युञ्जते वां रथयुजो दिविष्टिष्वध्वस्मानो दिविष्टिषु । अधि वां स्थाम वन्धुरे रथे दस्रा हिरण्यये । पथेव यन्तावनुशासता रजोऽञ्जसा शासता रजः ॥४ ॥

हे सुन्दर अश्विनीकुमारो ! आप दोनों सारथी रूप में स्वर्गस्थ मार्गों पर, तीव्र गतिशील अश्वों को रथ में नियोजित करके स्वर्ग पहुँचते हैं, ऐसा सभी का कथन है । हे उत्तम अश्विदेवो ! आप दोनों को हम भली प्रकार बन्धन युक्त स्वर्णिम रथ में विराजित करते हैं । आप दोनों अपनी सामर्थ्य से सम्पूर्ण लोकों पर शासन करते हुए जल पर नियन्त्रण रखकर निजमार्गों से प्रस्थान करते हैं ॥४ ॥

१५१९. शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दशस्यतम्।

मा वां रातिरुप दसत्कदा चनास्मद्रातिः कदा चन॥५॥

हे पुरुषार्थयुक्त, वैभव सम्पन्न अश्विदेवो ! आप दोनों हमारे श्रेष्ठ कर्मों से प्रसन्न होकर हमें अनवरत (रात-दिन) धन प्रदान करें । आपके द्वारा प्रदत्त ऐश्वर्यों में कभी कमी न आये । हमारे सार्थक अनुदानों में भी कभी कमी न आये ॥५॥

१५२०. वृषन्निन्द्र वृषपाणास इन्दव इमे सुता अद्रिषुतास उद्भिदस्तुभ्यं सुतास उद्भिदः।

ते त्वा मन्दन्तु दावने महे चित्राय राधसे।

गीर्भिर्गिर्वाहः स्तवमान आ गहि सुमृळीको न आ गहि॥६॥

हे इन्द्रदेव ! यह पत्थर द्वारा कूटकर सामर्थ्य - शक्ति के निमित्त पानयोग्य सोमरस अभिषवण करके स्थापित है । यह स्थापित सोमरस आपके पीने के लिए शोधित किया गया है । सुन्दर महान् वैभव प्रदान करने के लिए यह (सोम) आपको उत्साहित करे । हे प्रशंसनीय इन्द्रदेव ! वाणी द्वारा की गई प्रार्थनाओं से आप यहाँ पधारें । प्रसन्नतापूर्वक आप हमारे यहाँ उपस्थित हों ॥६॥

१५२१. ओ षू णो अग्ने शृणुहि त्वमीळितो देवेभ्यो ब्रवसि यज्ञियेभ्यो राजभ्यो

यज्ञियेभ्यः। यद्ध त्यामङ्गिरोभ्यो धेनुं देवा अदत्तन।

वि तां दुह्रे अर्यमा कर्तरी सचाँ एष तां वेद मे सचा॥७॥

हे अग्निदेव ! हमारी प्रार्थनाओं से प्रसन्न होकर आप हमारे निवेदन पर ध्यान दें । अति पूजनीय देदीप्यमान देवों से कहें कि हे देवो ! आपने गौओं को अंगिराओं के लिए प्रदान किया, उन गौओं को इकट्ठा करते हुए अर्यमा ने उन्हें दुहा । ऐसी गौओं से अर्यमा और हम दोनों ही परिचित हैं ॥७॥

१५२२. मो षु वो अस्मदभि तानि पौंस्या सना भूवन्द्युम्नानि मोत जारिषुरस्मत्पुरोत

जारिषुः। यद्वश्चित्रं युगेयुगे नव्यं घोषादमर्त्यम्।

अस्मासु तन्मरुतो यच्च दुष्टरं दिधृता यच्च दुष्टरम्॥८॥

हे मरुद्गणो ! पुरातनकाल की आपकी पराक्रमी सामर्थ्यों को हम कभी विस्मृत न करें । उसी प्रकार हमारी कीर्ति सदैव अक्षुण्ण रहे तथा हमारे नगरों का विध्वंस न हो । आश्चर्यप्रद, स्तुतियोग्य और अमृतरूपी रस प्रदान करने वाली गौओं से सम्बन्धित तथा मनुष्य मात्र के लिए जो धन सम्पदाएँ हैं, वे सभी युगों-युगों तक हमारे पास विद्यमान रहें । कठिनाई से प्राप्त होने योग्य जो सम्पदाएँ हैं, उन्हें भी आप हमें प्रदान करें ॥८॥

१५२३. दध्यङ्ह मे जनुषं पूर्वो अङ्गिराः प्रियमेधः कण्वो अत्रिर्मनुर्विदुस्ते मे पूर्वे

मनुर्विदुः। तेषां देवेष्वायतिरस्माकं तेषु नाभयः।

तेषां पदेन मह्या नमे गिरेन्द्राग्नी आ नमे गिरा॥९॥

पुरातन कालीन दध्यङ्, अंगिरा, प्रियमेध, कण्व, अत्रि और 'मनु' ये सभी ऋषि हम मनुष्यों के सभी जन्मों को जानते हैं । वे मननशील ज्ञानी हमारे पूर्वजों को जानते हैं । उन ऋषियों का देवताओं के साथ अति निकटस्थ सम्बन्ध है । साधारण मनुष्य देवों से ही शक्ति - ऊर्जा प्राप्त करते हैं । उन्हीं देवों के अनुगामी बनकर, हम हृदय से उन्हें प्रणाम करते हैं । स्तोत्रों से हम इन्द्राग्नी की प्रार्थना करते हैं ॥९॥



१५२४. होता यक्षद्वनिनो वन्त वार्यं बृहस्पतिर्यजति वेन उक्षभिः पुरुवारेभिरुक्षभिः ।
जगृभ्मा दूर आदिशं श्लोकमद्रेरध त्मना ।
अधारयदररिन्दानि सुक्रतुः पुरू सद्मानि सुक्रतुः ॥१० ॥

यज्ञकर्त्ता यज्ञ द्वारा विभिन्न कामनाओं को पूर्ण करें । कल्याणकारी बृहस्पति, सामर्थ्यप्रद तथा विभिन्न लोगों द्वारा वांछित सोम से यज्ञ सम्पन्न करें । दूरस्थ दिशा से आ रही पत्थरों द्वारा सोमवल्ली कूटने की ध्वनि हम स्वयमेव सुनते हैं । सत्कर्म रूपी यज्ञीय कार्यों को करने वाले मनुष्य जल तथा अन्नादि से भरे - पूरे (सम्पन्न) रहते हैं । श्रद्धालु मन द्वारा याज्ञिक मनुष्य प्रचुर वैभव युक्त गृहों से सुशोभित रहते हैं ॥१० ॥

१५२५. ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ ।
अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥११ ॥

हे देवो ! आप पृथ्वी, अन्तरिक्ष और देवलोक इन तीनों लोकों में ग्यारह-ग्यारह की संख्या में हैं । हे देवगण ! आप सभी इन आहुतियों को ग्रहण करें ॥११ ॥

[सूक्त - १४०]

[**ऋषि**- दीर्घतमा औचथ्य । **देवता**- अग्नि । **छन्द**- जगती; १० जगती अथवा त्रिष्टुप्;१२-१३ त्रिष्टुप् ।]

१५२६. वेदिषदे प्रियधामाय सुद्युते धासिमिव प्र भरा योनिमग्नये ।
वस्त्रेणेव वासया मन्मना शुचिं ज्योतीरथं शुक्रवर्णं तमोहनम् ॥१ ॥

हे ऋत्विजो ! यज्ञवेदी में विराजित सुन्दर प्रकाशवान्, श्रेष्ठ कान्तियुक्त अग्नि को और अधिक प्रखर-प्रज्वलित करने के लिए समिधाएँ और हविष्यान्न अर्पित करें । उस पावन रथ के समान प्रकाशमान, तेजस्वी, तथा अन्धकार के विनाशक अग्निदेव को अपने स्तोत्रोच्चारण द्वारा किसी वस्त्र से आच्छादित करने की तरह ढक दें ॥१ ॥

१५२७. अभि द्विजन्मा त्रिवृदन्नमृज्यते संवत्सरे वावृधे जग्धमी पुनः ।
अन्यस्यासा जिह्वया जेन्यो वृषा न्य१न्येन वनिनो मृष्ट वारणः ॥२ ॥

दो विधियों (मंथन एवं अग्न्याधान) द्वारा प्रकट अग्निदेव तीन प्रकार के (आज्य, पुरोडाश तथा सोमरूप) अन्नों को प्राप्त (भक्षण) करते हैं । अग्नि द्वारा ग्रहण किया गया अन्न प्रति वर्ष पुनः बढ़ जाता है । वे (अग्निदेव) जठराग्नि के रूप में भक्षण करते हैं और दावानल के रूप में जंगल के वृक्षों को जला देते हैं ॥२ ॥

१५२८. कृष्णप्रुतौ वेविजे अस्य सक्षिता उभा तरेते अभि मातरा शिशुम् ।
प्राचाजिह्वं ध्वसयन्तं तृषुच्युतमा साच्यं कुपयं वर्धनं पितुः ॥३ ॥

अग्नि प्रज्वलन से काली हुई दोनों अरणिरूपी माताएँ कम्पित होती हैं, इसके बाद उस, गतिमान् , ज्वालाओं रूपी जिह्वाओं से युक्त, अन्धकार नाशक, शीघ्र प्रज्वलनशील तथा साथ रहने योग्य, विशेष प्रयत्न द्वारा रक्षित तथा अपने पालनकर्त्ता याजकों की समृद्धि बढ़ाने वाले, शिशु रूप अग्नि को, (हम याजकगण) प्रकट करते हैं ॥३ ॥

१५२९. मुमुक्ष्वो३ मनवे मानवस्यते रघुद्रुवः कृष्णसीतास ऊ जुवः ।
असमना अजिरासो रघुष्यदो वातजूता उप युज्यन्त आशवः ॥४ ॥

मोक्षप्रद, तीव्र गतिशील, कृष्ण मार्गगामी, नानाविध रंगों से युक्त, शीघ्रगामी, वायु द्वारा प्रभावित तथा सर्वत्र संव्याप्त होने वाले अग्निदेव गतिशील मनुष्यों के लिए यज्ञीय कार्यों में विशेष उपयोगी हैं ॥४ ॥

१५३०. आदस्य ते ध्वसयन्तो वृथेरते कृष्णमभ्वं महि वर्पः करिक्रतः ।
यत्सीं महीमवनिं प्राभि मर्मृशदभिश्वसन्त्स्तनयन्नेति नानदत् ॥५ ॥

- जिस समय अग्निदेव गर्जन करते हुए श्वास लेते हुए, उच्च शब्दों से आकाश को गुंजित करते हुए तथा विस्तृत पृथ्वी को सभी दिशाओं से छूते हुए प्रज्वलित होते हैं, उस समय उनकी ज्योति- ज्वालाएँ अन्धेरे मार्ग को अपने प्रकाश द्वारा बिना किसी प्रयत्न के सभी ओर प्रकाशित करती हैं ॥५ ॥

१५३१. भूषन्न योऽधि बभ्रूषु नम्नते वृषेव पत्नीरभ्येति रोरुवत् ।
ओजायमानस्तन्वश्च शुम्भते भीमो न शृङ्गा दविधाव दुर्गृभिः ॥६ ॥

जो अग्निदेव पीतवर्ण वाली ओषधियों में मानो उनको सुशोभित करने के लिए प्रविष्ट होते हैं और बैल के समान शब्द करते हुए, आज्ञा पालन करने वाली पत्नीरूप ओषधियों - वनस्पतियों को भी खाने लगते हैं । अति तेजस्विता युक्त होने पर ज्वालारूपी अपने शरीर को चमकाते हैं । विकराल रूप धारण करके भयंकर बैल के समान ज्वाला रूपी सींगों को घुमाते हैं ॥६ ॥

१५३२. स संस्तिरो विष्टिरः सं गृभायति जानन्नेव जानतीर्नित्य आ शये ।
पुनर्वर्धन्ते अपि यन्ति देव्यमन्यद्वर्पः पित्रोः कृण्वते सचा ॥७ ॥

ये अग्निदेव कभी प्रत्यक्ष, कभी अप्रत्यक्ष रूप से ओषधियों में अपनी सामर्थ्य को व्याप्त करते हैं । प्रकट रूप में अग्नि की अविच्छिन्न ज्वालाएँ सर्वोच्च दिव्यलोक की ओर बढ़ती हैं । पश्चात् वे ज्वालाएँ अपने पितारूप अग्नि सहित पृथ्वी और अन्तरिक्ष में (सूर्य, विद्युत् , अग्नि, वडवानल, दावानल आदि) विविध रूप धारण करती हैं ॥७ ॥

१५३३. तमग्रुवः केशिनीः सं हि रेभिर ऊर्ध्वास्तस्थुर्ममुषीः प्रायवे पुनः ।
तासां जरां प्रमुञ्चन्नेति नानददसुं परं जनयञ्जीवमस्तृतम् ॥८ ॥

केशों के समान लम्बी ज्वालाएँ उस अग्नि को सभी ओर से स्पर्श करती हैं । वे ज्वालाएँ मृतवत् होती हुई भी अग्नि से मिलने के लिए ऊर्ध्व मुख होकर ज्वलन्त हो उठती हैं । अग्निदेव उन ज्वालाओं की जीर्णता को समाप्त करके उन्हें सामर्थ्य और जीवन्त बनाते हुए गर्जन करते हैं ॥८ ॥

१५३४. अधीवासं परि मातू रिहन्नह तुविग्रेभिः सत्वभिर्याति वि ज्रयः ।
वयो दधत्पद्वते रेरिहत्सदानु श्येनी सचते वर्तनीरह ॥९ ॥

धरती माता के तृण रूपी वस्त्रों को (वनस्पति आदि को) खाते हुए ये अग्निदेव विजयशील प्राणियों के साथ वेगपूर्वक जाते हैं । वे मनुष्य और पशुओं को अन्नरूपी शक्ति देते हैं । अग्निदेव हमेशा तृणादि को जलाते हुए जिस मार्ग से जाते हैं, उसे पीछे से काला कर देते हैं ॥९ ॥

१५३५. अस्माकमग्ने मघवत्सु दीदिह्यध श्वसीवान्वृषभो दमूनाः ।
अवास्या शिशुमतीरदीदेर्वर्मेव युत्सु परिजर्भुराणः ॥१० ॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे ऐश्वर्य सम्पन्न गृह को प्रकाशित करें । इसके बाद समर्थ शत्रुओं को पराजित करने वाले आप श्वास (प्राण वायु) द्वारा शैशव त्यागकर संग्राम में हमारे लिए रक्षा कवच के समान उपयोगी हों । बार-बार शत्रुओं को दूर भगाकर विशेष दीप्ति से प्रकाशित हों ॥१० ॥



१५३६. इदमग्ने सुधितं दुर्धितादधि प्रियादु चिन्मन्मनः प्रेयो अस्तु ते ।
यत्ते शुक्रं तन्वो३ रोचते शुचि तेनास्मभ्यं वनसे रत्नमा त्वम् ॥११ ॥

हे अग्निदेव ! आपके प्रति हमारे द्वारा निवेदित स्तोत्र दूसरे सभी स्तोत्रों की अपेक्षा उत्तम हों । इन स्तोत्रों से आपकी तेजस्विता में वृद्धि हो, जिससे रत्नस्वरूप सुन्दर सम्पदा हम प्राप्त करें ॥११ ॥

१५३७. रथाय नावमुत नो गृहाय नित्यारित्रां पद्वतीं रास्यग्ने ।
अस्माकं वीराँ उत नो मघोनो जनाँश्च या पारयाच्छर्म या च ॥१२ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे घर के परिजनों तथा महारथी वीरों के लिए यज्ञीय सत्कर्म रूपी सुदृढ़ नाव प्रदान करें । जो नाव हमारे शूरवीरों, धनसम्पन्नों तथा अन्य मनुष्यों को भी संसार सागर से पार उतार सके । आप हमें श्रेष्ठ सुख सम्पदा भी प्रदान करें ॥१२ ॥

१५३८. अभी नो अग्न उक्थमिज्जुगुर्या द्यावाक्षामा सिन्धवश्च स्वगूर्ताः ।
गव्यं यव्यं यन्तो दीर्घाहेषं वरमरुण्यो वरन्त ॥१३ ॥

हे अग्निदेव ! हमारे स्तोत्र आपकी भली प्रकार प्रशंसा करने वाले हैं । अन्तरिक्ष, पृथ्वी तथा स्वयं प्रवाहित सरितायें हमें गौओं द्वारा उत्पादित दुग्धादि और अन्नादि-पदार्थों को प्रदान करें । इसके अतिरिक्त अरुणवर्णा उषाएँ हमें श्रेष्ठ अन्न और बल सामर्थ्य से परिपूर्ण करें ॥१३ ॥

[सूक्त - १४१]

[**ऋषि-** दीर्घतमा औचथ्य । **देवता-** अग्नि । **छन्द-** जगती; १२-१३ त्रिष्टुप् ।]

१५३९. बळित्था तद्वपुषे धायि दर्शतं देवस्य भर्गः सहसो यतो जनि ।
यदीमुप ह्वरते साधते मतिर्ऋतस्य धेना अनयन्त सस्रुतः ॥१ ॥

दिव्य अग्नि की उस रमणीय तेजस्विता को मनुष्य देह की सुदृढ़ता हेतु धारण करते हैं । क्योंकि वह तेजस्विता बल से उत्पादित है । इस विख्यात लोकोपयोगी अग्निदेव की तेजस्विता को हमारी विवेक बुद्धि प्राप्त करे । वह हमारे अभीष्ट उद्देश्यों को पूर्ण करे । सभी प्राणियों द्वारा अग्निदेव की ही प्रार्थनाएँ की जाती हैं ॥१ ॥

१५४०. पृक्षो वपुः पितुमान्नित्य आ शये द्वितीयमा सप्तशिवासु मातृषु ।
तृतीयमस्य वृषभस्य दोहसे दशप्रमतिं जनयन्त योषणः ॥२ ॥

(अग्निदेव के तीन रूप वर्णित हैं) प्रथम भौतिक अग्नि के रूप में अन्न को पकाने वाले और शरीर को पोषित करने वाले हैं । दूसरे सप्त लोकों के हितकारक मेघों में विद्युत् रूप में हैं । तीसरे बलशाली अग्निदेव सभी रसों का दोहन करने वाले सूर्य रूप में विद्यमान हैं । ऐसे दशों दिशाओं में श्रेष्ठ इन अग्निदेव को अँगुलियाँ मन्थन द्वारा उत्पन्न करती हैं ॥२ ॥

१५४१. निर्यदीं बुध्नान्महिषस्य वर्पस ईशानासः शवसा क्रन्त सूरयः ।
यदीमनु प्रदिवो मध्व आधवे गुहा सन्तं मातरिश्वा मथायति ॥३ ॥

जब ऋत्विंज विशाल अरणियों के मूलस्थान के मन्थन द्वारा उसी प्रकार अग्नि प्रकट करते हैं, जिस प्रकार पहले भी सोमयज्ञ में आहुति देने के लिए अप्रकट इस अग्नि को विद्वान् मातरिश्वा ने मन्थन द्वारा प्रकट किया था । तब सभी के द्वारा उनकी स्तुति की जाती है ॥३ ॥

१५४२. प्र यत्पितुः परमान्नीयते पर्या पृक्षुधो वीरुधो दंसु रोहति।
उभा यदस्य जनुषं यदिन्वत आदिद्यविष्ठो अभवद्घृणा शुचिः ॥४॥

सबके श्रेष्ठ पालक होने से अग्निदेव जब सभी ओर से प्रज्वलित होते हैं, तब समिधाओं के इच्छुक अग्निदेव के ज्वालारूपी दाँतों पर वृक्षादि अर्पित किये जाते हैं। जब दोनों अरणियाँ इस अग्नि को उत्पादित करने के लिए प्रयत्नशील होती हैं, तब पावन अग्निदेव प्रकट होकर तेजस्वी और बलशाली होते हैं ॥४॥

१५४३. आदिन्मातृराविशद्यास्वा शुचिरहिंस्यमान उर्विया वि वावृधे।
अनु यत्पूर्वा अरुहत्सनाजुवो नि नव्यसीष्ववरासु धावते ॥५॥

अग्निदेव की सामर्थ्य प्रकट होकर मातृरूपा दसों दिशाओं में सर्वत्र संव्याप्त हो गई। वे उन सभी दिशाओं में विघ्नरहित होकर अति वृद्धि को प्राप्त हुए। चिरकाल से स्थायी ओषधियों तथा नई-नई प्रकट हो रही ओषधीय - गुणों से रहित वनस्पतियों में भी अग्नि के गुण संव्याप्त हो रहे हैं ॥५॥

१५४४. आदिद्धोतारं वृणते दिविष्टिषु भगमिव पपृचानास ऋञ्जते।
देवान्यत्क्रत्वा मज्मना पुरुष्टुतो मर्तं शंसं विश्वधा वेति धायसे ॥६॥

इसके बाद सभी याजकगणों ने यज्ञों में आहुतियाँ ग्रहण करने वाले अग्निदेव का वरण किया तथा वैभव सम्पन्न नरेश के समान ही उन्हें प्रसन्न किया। इससे आनन्दित होकर ये अग्निदेव शक्ति ऊर्जा से सम्पन्न हैं। श्रेष्ठ यज्ञों में ये अग्निदेव हवि सेवन करने के लिए देवों का आवाहन करते हैं ॥६॥

१५४५. वि यदस्थाद्यजतो वातचोदितो ह्वारो न वक्वा जरणा अनाकृतः।
तस्य पत्मन्दक्षुषः कृष्णजंहसः शुचिजन्मनो रज आ व्यध्वनः ॥७॥

जैसे अवरोध रहित, बहुभाषी, प्रशंसनीय उपहास युक्त वचनों से विदूषक सारे स्थान को हास्य से भर देता है, उसी प्रकार वायु द्वारा गतिमान् अग्निदेव सर्वत्र संव्याप्त हो जाते हैं। ऐसे अपनी ज्वलनशीलता से सब कुछ जलाने वाले, पावनस्वरूप में उत्पन्न, बहुमार्गगामी तथा जाने के बाद मार्ग में कालिमा छोड़ने वाले अग्निदेव के मार्ग का सभी लोक अनुगमन करते हैं ॥७॥

१५४६. रथो न यातः शिक्वभिः कृतो द्यामङ्गेभिररुषेभिरीयते।
आदस्य ते कृष्णासो दक्षि सूरयः शूरस्येव त्वेषथादीषते वयः ॥८॥

कुशल कारीगरों द्वारा रचित और चालित रथ के समान ही ये अग्निदेव वेगशील ज्वालाओं से दिव्यलोक की ओर प्रस्थान करते हैं। जाने के साथ ही इनके वे गमन मार्ग कालिमायुक्त हो जाते हैं, क्योंकि वे काष्ठों को जलाने वाले हैं। वीरों से डर कर शत्रुओं के भागने के समान ही, अग्नि की ज्वालाओं को देखकर पक्षीगण भाग जाते हैं ॥८॥

१५४७. त्वया ह्यग्ने वरुणो धृतव्रतो मित्रः शाशद्रे अर्यमा सुदानवः।
यत्सीमनु क्रतुना विश्वथा विभुरराञ्न नेमिः परिभूरजायथाः ॥९॥

हे अग्निदेव! आपकी सामर्थ्य से ही वरुणदेव व्रतों का निर्वाह करते, सूर्यदेव अन्धेरे को दूर करते तथा अर्यमादेव श्रेष्ठ दान के व्रतों का पालन करते हैं। इसलिए हे अग्निदेव! आप सभी ओर कर्त्तव्य परायणता द्वारा विश्वात्मारूप, सर्वव्यापी तथा सर्वशक्तिमान् रूप में प्रकट होते हैं। जैसे रथ का चक्र अरों को व्याप्त करके रखता है, उसी प्रकार आप भी सर्वत्र संव्याप्त होकर सबके नियमों का निर्धारण करते हैं ॥९॥



१५४८. त्वमग्ने शशमानाय सुन्वते रत्नं यविष्ठ देवतातिमिन्वसि ।
तं त्वा नु नव्यं सहसो युवन्वयं भगं न कारे महिरत्न धीमहि ॥१० ॥

हे अत्यन्त तरुण अग्निदेव ! आप स्तोता और सोम निष्पादनकर्त्ता यजमान के लिए ऐश्वर्यप्रद उत्तम धनों को प्राप्त करने की प्रेरणा देते हैं । शक्तिपुत्र, तरुण महिमामय और रत्नरूप हे अग्निदेव ! पूजा उपासना के समय हम आपकी भूपति के समान ही अर्चना करते हैं ॥१० ॥

१५४९. अस्मे रयिं न स्वर्थं दमूनसं भगं दक्षं न पपृचासि धर्णसिम् ।
रश्मींरिव यो यमति जन्मनी उभे देवानां शंसमृत आ च सुक्रतुः ॥११ ॥

हे अग्निदेव ! हमारे लिये गृहस्थ जीवन से सम्बन्धित एवं उपयोगी सम्पत्ति देने के साथ-साथ वैभवपूर्ण, अतिकुशल सहयोगी परिजनों (सन्तानादि) को भी प्रदान करें । आप अपने जन्म के कारण आकाश और भूलोक दोनों को रासों (घोड़ों की लगाम) की तरह ही अपने नियन्त्रण में रखते हैं । ऐसे श्रेष्ठ कर्मशील आप यज्ञ में उपस्थित ज्ञानियों द्वारा प्रशंसित हों ॥११ ॥

१५५०. उत नः सुद्योत्मा जीराश्वो होता मन्द्रः शृणवच्चन्द्ररथः ।
स नो नेषन्नेषतमैरमूरोऽग्निर्वामं सुवितं वस्यो अच्छ ॥१२ ॥

तेजवान् वेगशील अश्वों से युक्त, देवावाहक, सुखदायी स्वर्णिम रथ से युक्त, अपराजेय शक्ति सम्पन्न तथा प्रसन्नता जैसे दैवीगुणों से विभूषित अग्निदेव क्या हमारी प्रार्थना पर ध्यान देंगे ? वे सत्कर्मों की प्रेरणा द्वारा क्या हमें परम सौभाग्य प्रदान करेंगे ? अर्थात् अवश्य प्रदान करेंगे ॥१२ ॥

१५५१. अस्ताव्यग्निः शिमीवद्भिरर्कैः साम्राज्याय प्रतरं दधानः ।
अमी च ये मघवानो वयं च मिहं न सूरो अति निष्टतन्युः ॥१३ ॥

साम्राज्य के लिए श्रेष्ठ तेजस्विता के धारणकर्त्ता अग्निदेव प्रभावकारी स्तोत्रवाणियों से सभी के द्वारा प्रशंसित होते हैं । जैसे सूर्यदेव मेघों में शब्द ध्वनि पैदा करते हैं, वैसे ही इन ऋत्विजों, हम यजमानों तथा अन्य वैभवशालियों द्वारा उच्चस्वरों से अग्निदेव की प्रार्थनाएँ की जाती हैं ॥१३ ॥

[सूक्त - १४२]

[**ऋषि-** दीर्घतमा औचथ्य । **देवता-** (आप्रीसूक्त) - १ इध्म अथवा समिद्ध अग्नि; २ तनूनपात्; ३ नराशंस; ४ इळ; ५ बर्हि; ६ देवीद्वार; ७ उषासानक्ता; ८ दिव्य होता प्रचेतस; ९- तीन देवियाँ - सरस्वती, इळा, भारती; १० त्वष्टा; ११ वनस्पति; १२ स्वाहाकृति; १३ इन्द्र । **छन्द-** अनुष्टुप् ।]

१५५२. समिद्धो अग्न आ वह देवाँ अद्य यतस्रुचे । तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं सुतसोमाय दाशुषे ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप प्रज्वलित होकर हविदाता यजमान के लिए देवताओं का आवाहन करें । सोम अभिषव कर्त्ता, दानी यजमान के लिए प्राचीन यज्ञ के सम्पादनार्थ अपनी ज्वालाओं को बढ़ायें ॥१ ॥

१५५३. घृतवन्तमुप मासि मधुमन्तं तनूनपात् । यज्ञं विप्रस्य मावतः शशमानस्य दाशुषः ॥२ ।

शरीर के आरोग्य को बढ़ाने वाले हे अग्ने ! आपके प्रशंसक तथा दानदाता हम ब्रह्मनिष्ठ विद्वानों द्वारा किये जाने वाले माधुर्य से युक्त तथा तेजस्वी यज्ञ में आकर आप प्रतिष्ठित हों ॥२ ॥

१५५४. शुचिः पावको अद्भुतो मध्वा यज्ञं मिमिक्षति ।
नराशंसस्त्रिरा दिवो देवो देवेषु यज्ञियः ॥३ ॥



हे अग्निदेव ! आप देवताओं द्वारा पूजनीय, मनुष्यों द्वारा प्रशंसनीय, पवित्र रहकर दूसरों को भी पवित्र करने वाले, आश्चर्यप्रद और तेजस्वी हैं। आप दिव्य लोक के मधुर रस रूप यज्ञ को दिन में तीन बार सिंचित करें ॥३ ॥

१५५५. ईळितो अग्न आ वहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम्।
इयं हि त्वा मतिर्ममाच्छा सुजिह्व वच्यते ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप प्रशंसित होकर विलक्षण कर्मों के निर्वाहक प्रिय इन्द्रदेव को हमारे इस यज्ञ में लेकर आयें। हे सुन्दर ज्वालारूपी जिह्वायुक्त अग्निदेव ! हमारी ये बुद्धियाँ, सदैव आपकी ही प्रार्थनाएँ करती हैं ॥४ ॥

१५५६. स्तृणानासो यतस्रुचो बर्हिर्यज्ञे स्वध्वरे। वृञ्जे देवव्यचस्तममिन्द्राय शर्म सप्रथः ॥५॥

स्रुवा पात्र को धारण किये हुए ऋत्विग्गण श्रेष्ठ यज्ञ में कुश के आसनों को फैलाते हैं तथा देवों के आवाहक, विशाल यज्ञस्थल को इन्द्रदेव के लिए शोभायमान करते हैं ॥५ ॥

१५५७. वि श्रयन्तामृतावृधः प्रयै देवेभ्यो महीः। पावकासः पुरुस्पृहो द्वारो देवीरसश्चतः ॥६॥

महिमा युक्त, यज्ञ का विकास करने वाले, पवित्र, सबके प्रिय अलग-अलग स्थित दिव्य द्वार, देवत्व की प्राप्ति के लिए यहाँ स्थित हों (खुल जायें) ॥६ ॥

१५५८. आ भन्दमाने उपाके नक्तोषासा सुपेशसा।
यह्वी ऋतस्य मातरा सीदतां बर्हिरा सुमत् ॥७ ॥

मिलकर रहने वाली श्रेष्ठ स्वरूप युक्त, महिमामय, यज्ञकर्म को सिद्ध करने वाली पारस्परिक सहयोग की प्रतीक, रात्रि और उषा हमारे सम्बन्ध में श्रेष्ठ विचारधारा रखते हुए इस यज्ञ में आकर विराजमान हों ॥७ ॥

१५५९. मन्द्रजिह्वा जुगुर्वणी होतारा दैव्या कवी।
यज्ञं नो यक्षतामिमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् ॥८ ॥

वाणी के प्रयोक्ता, मेधावी, उच्चारण - विद्या में प्रवीण, दैवी गुणों से सम्पन्न यज्ञ संचालक (होता), वर्तमान विशिष्ट आध्यात्मिक उपलब्धियों द्वारा देवत्व पद को प्राप्त कराने वाले, हमारे देवयज्ञ में उपस्थित होकर यज्ञ सम्पन्न करायें ॥८ ॥

१५६०. शुचिर्देवेष्वर्पिता होत्रा मरुत्सु भारती।
इळा सरस्वती मही बर्हिः सीदन्तु यज्ञियाः ॥९ ॥

देवताओं और मरुद्गणों में पूजनीय, पवित्र यज्ञीय कर्मों के निर्वाहक होता रूप भारती, सरस्वती और इळा इस यज्ञ में उपस्थित हों ॥९ ॥

१५६१. तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरु वारं पुरु त्मना।
त्वष्टा पोषाय वि ष्यतु राये नाभा नो अस्मयुः ॥१० ॥

हमारे हितैषी निर्माता हे त्वष्टादेव ! आप हम सबके द्वारा इच्छित, शीघ्र प्रवाहित होने वाले, अन्तरिक्षस्थ अद्भुत मेघों से जलवृष्टि द्वारा सबके लिए पौष्टिक अन्न और ऐश्वर्यों को प्रदान करें ॥१० ॥

१५६२. अवसृजन्नुप त्मना देवान्यक्षि वनस्पते। अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरः ॥११॥



हे वनों के अधिपते ! आप यज्ञीय कर्मों की प्रेरणा से युक्त होकर देवताओं के निमित्त अग्नि प्रज्वलित करें । ज्ञानवान् अग्निदेव को समर्पित आहुतियाँ सूक्ष्मरूप होकर देवताओं तक पहुँचती हैं ॥११ ॥

१५६३. पूषण्वते मरुत्वते विश्वदेवाय वायवे । स्वाहा गायत्रवेपसे हव्यमिन्द्राय कर्तन ॥१२ ॥

हम पूषादेव और मरुद्‌गणों से युक्त सर्वदेव समूह के लिए, वायुदेव के लिए तथा गायत्री साधकों के संरक्षक इन्द्रदेव के लिए श्रेष्ठ हव्य समर्पित करें ॥१२ ॥

१५६४. स्वाहाकृतान्या गह्युप हव्यानि वीतये ।
इन्द्रा गहि श्रुधी हवं त्वां हवन्ते अध्वरे ॥१३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप श्रद्धा भावना से समर्पित की गई- आहुतियों को ग्रहण करने के लिए यहाँ पधारें । यज्ञीय सत्कर्मों के लिए मनुष्य आपको आवाहित कर रहे हैं । उनके निवेदन को सुनकर उनके सहयोग हेतु अवश्य आयें

[सूक्त - १४३]

[**ऋषि-** दीर्घतमा औचथ्य । **देवता-** अग्नि । **छन्द-** जगती; ८ त्रिष्टुप् ।]

१५६५. प्र तव्यसीं नव्यसीं धीतिमग्नये वाचो मतिं सहसः सूनवे भरे ।
अपां नपाद्यो वसुभिः सह प्रियो होता पृथिव्यां न्यसीदद्दत्वियः ॥१ ॥

शक्ति के पुत्र, जलों के संरक्षक, अग्निदेव सबके प्रिय तथा ऋतुओं को दृष्टिगत रखकर यज्ञीय कर्मों के सम्पादक हैं । वे ऐश्वर्यों सहित पृथ्वी के ऊपर यज्ञवेदी में प्रतिष्ठित होते हैं । ऐसे अग्निदेव के निमित्त हम नवीनतम श्रेष्ठ प्रार्थनाएँ अर्पित करते हैं ॥१ ॥

१५६६. स जायमानः परमे व्योमन्याविरग्निरभवन्मातरिश्वने ।
अस्य क्रत्वा समिधानस्य मज्मना प्र द्यावा शोचिः पृथिवी अरोचयत् ॥२ ॥

वे तेजस्विता सम्पन्न अग्निदेव, मातरिश्वा वायु के लिए उच्च अन्तरिक्ष में सबसे पहले प्रादुर्भूत हुए । श्रेष्ठ विधि से प्रज्वलित होने वाले अग्निदेव की शक्ति सामर्थ्य से दिव्य लोक और भूलोक भी प्रकाशमान हुए ॥२ ॥

१५६७. अस्य त्वेषा अजरा अस्य भानवः सुसन्दृशः सुप्रतीकस्य सुद्युतः ।
भात्वक्षसो अत्यक्तुर्न सिन्धवोऽग्ने रेजन्ते अससन्तो अजराः ॥३ ॥

इन अग्निदेव की प्रचण्ड तेजस्विता जीर्णता से रहित है । सुन्दर मुखवाली इनकी तेजस्वी किरणें सभी ओर संव्याप्त होकर प्रकाशित हैं । दीप्तिमान्, शक्ति सम्पन्न तथा रात्रि के अन्धकार को पार करते हुए इन अग्निदेव की ज्वालारूपी किरणें सदा जाग्रत् और क्षय रहित होकर कभी भयभीत नहीं होतीं ॥३ ।।

१५६८. यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसं नाभा पृथिव्या भुवनस्य मज्मना ।
अग्निं तं गीर्भिर्हिनुहि स्व आ दमे य एको वस्वो वरुणो न राजति ॥४ ॥

जो अग्निदेव वरुणदेव के समान ही ऐश्वर्यों के एकमात्र अधिपति हैं, उन्हें भृगुवंशी ऋषियों ने अपनी सामर्थ्य से सम्पूर्ण विश्व के प्राणियों तथा पृथ्वी पर समस्त ऐश्वर्यों के लिए प्रतिष्ठित किया । ऐसे अग्निदेव को आप भी अपने गृह में ले जाकर श्रेष्ठ प्रार्थनाओं से प्रज्वलित करें ॥४ ॥

१५६९. न यो वराय मरुतामिव स्वनः सेनेव सृष्टा दिव्या यथाशनिः ।
अग्निर्जम्भैस्तिगितैरत्ति भर्वति योधो न शत्रून्त्स वना न्यृञ्जते ॥५ ॥



जो अग्निदेव मरुद्‌गणों की भीषण गर्जना की भाँति, आक्रमण को प्रेरित पराक्रमी सेना की भाँति तथा आकाश के वज्रास्त्र के समान ही अवरोध रहित हैं। वे अग्निदेव योद्धाओं के समान ही अपनी तीव्र ज्वालाओं रूपी तीखे दाँतों से शत्रुओं को विनष्ट करते हैं तथा वनों को भी उसी प्रकार भस्मीभूत कर देते हैं ॥५ ॥

१५७०. कुविन्नो अग्निरुचथस्य वीरसद्वसुष्कुविद्वसुभिः काममावरत्।
चोदः कुवित्तुतुज्यात्सातये धियः शुचिप्रतीकं तमया धिया गृणे ॥६ ॥

अग्निदेव हमारे स्तोत्र के प्रति विशेष कामना से प्रेरित होकर सबके आश्रयभूत धन द्वारा हमारी अभीष्ट कामनाओं को पूर्ण करें। वे हमारे कल्याणार्थ श्रेष्ठ कर्मों की प्रेरणा बार-बार प्रदान करें। हम अपनी निर्मल भावनाओं से उत्तम ज्योति स्वरूप अग्निदेव की प्रार्थना करते हैं ॥६ ॥

१५७१. घृतप्रतीकं व ऋतस्य धूर्षदमग्निं मित्रं न समिधान ऋञ्जते।
इन्धानो अक्रो विदथेषु दीद्यच्छुक्रवर्णामुदु नो यंसते धियम् ॥७ ॥

हम आप के लिए यज्ञ सम्पादक और घृत द्वारा प्रज्वलित अग्निदेव को मित्र के समान प्रदीप्त करके सुशोभित करते हैं। वें अग्निदेव श्रेष्ठ प्रकाश युक्त दीप्तियों से सम्पन्न यज्ञों में प्रज्वलित किये जाने पर मनुष्यों की श्रेष्ठ भावनाओं में प्रखरता लाते हैं ॥७ ॥

१५७२. अप्रयुच्छन्नप्रयुच्छद्भिरग्ने शिवेभिर्नः पायुभिः पाहि शग्मैः।
अदब्धेभिरदृपितेभिरिष्टेऽनिमिषद्भिः परि पाहि नो जाः ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! आप निरन्तर आलस्य रहित, व्यवधान रहित, हितकारक तथा सुखदायी साधनों से हमें संरक्षण प्रदान करें। हे पूजनीय अग्निदेव ! आप अनिष्ट रहित होकर बिना किसी पीड़ा और आलस्य के हमारी सन्तानों को भी भली प्रकार सुरक्षा प्रदान करें ॥८ ॥

[सूक्त - १४४]

[**ऋषि**- दीर्घतमा औचथ्य। **देवता**- अग्नि। **छन्द**- जगती।]

१५७३. एति प्र होता व्रतमस्य माययोर्ध्वां दधानः शुचिपेशसं धियम्।
अभि स्रुचः क्रमते दक्षिणावृतो या अस्य धाम प्रथमं ह निंसते ॥१ ॥

विशेष ज्ञानवान् याज्ञिक अपनी उच्च निर्मल भावनाओं को धारण करते हुए इन अग्निदेव के निर्धारित व्रत अनुशासनों का ही अनुसरण करते हैं। पश्चात् ये याज्ञिक हवि प्रदान करने के लिए उपयोगी स्रुवा पात्र को हाथ में धारण करते हैं। जो स्रुवा को धारण करते हैं, वे हाथ सर्वप्रथम शोभा पाते हैं ॥१ ॥

१५७४. अभीमृतस्य दोहना अनूषत योनौ देवस्य सदने परीवृताः।
अपामुपस्थे विभृतो यदावसदध स्वधा अधयद्याभिरीयते ॥२ ॥

जलधाराएँ अग्नि के मूल स्थान दिव्य लोक को आच्छादित करके वहाँ आनन्दपूर्वक वास कर रहे अग्नि देव से वृष्टिरूप में धरती पर आने के लिए प्रार्थना करती हैं। ये अग्निदेव अपनी किरणों से जल वृष्टि करते हैं। उस अमृतरूपी जल का सभी लोग सेवन करते हैं। जलों के साथ अन्तरिक्ष से आने वाला अग्निरूप प्राण-पर्जन्य पहले वनस्पतियों में तत्पश्चात् सभी प्राणियों में समाविष्ट हो जाता है ॥२ ॥



१५७५. युयूषतः सवयसा तदिद्वपुः समानमर्थं वितरित्रता मिथः ।
आदीं भगो न हव्यः समस्मदा वोळ्हुर्न रश्मीन्त्समयंस्त सारथिः ॥३ ॥

अग्नि को उत्पन्न करने के लिए भली प्रकार स्थापित एक ही समय में समान सामर्थ्य से युक्त दो अरणियाँ परस्पर घिसी जाती हैं। प्रज्वलित होने के बाद यजनीय अग्निदेव हमारे द्वारा प्रदत्त घृतधारा को सभी ओर से उसी प्रकार ग्रहण करते हैं, जिस प्रकार सारथी अश्वों को लगाम द्वारा नियन्त्रित करते हैं ॥३ ॥

१५७६. यमीं द्वा सवयसा सपर्यतः समाने योना मिथुना समोकसा ।
दिवा न नक्तं पलितो युवाजनि पुरू चरन्नजरो मानुषा युगा ॥४ ॥

दो समान आयु वाले, एक ही घर में रहने वाले, समान कार्यों में संलग्न युग्म अग्निदेव की यज्ञीय कर्मों द्वारा अहर्निश अर्चना करते हैं। उनके द्वारा पूजित अग्निदेव बढ़ने पर भी (प्राचीन होते हुए भी) वृद्ध नहीं होते। वे अनेकों युगों से संचरित होकर भी कभी जीर्ण नहीं होते ॥४ ॥

१५७७. तमीं हिन्वन्ति धीतयो दश व्रिशो देवं मर्तास ऊतये हवामहे ।
धनोरधि प्रवत आ स ऋण्वत्यभिव्रजद्भिर्वयुना नवाधित ॥५ ॥

दसों अँगुलियों की आपसी भिन्नता होने पर भी वे सभी मिलकर प्रकाश देने वाली अग्नि को प्रकट करती हैं। हम सभी मनुष्य अपने संरक्षणार्थ अग्निदेव को आवाहित करते हैं। जिस प्रकार धनुष से बाण निकलता है, उसी प्रकार अग्निदेव प्रज्वलित होकर चारों ओर उपस्थित अपने प्रति स्तुतिगाताओं द्वारा निवेदित नूतन प्रार्थनाओं को धारण करते हैं ॥५ ॥

१५७८. त्वं ह्यग्ने दिव्यस्य राजसि त्वं पार्थिवस्य पशुपा इव त्मना ।
एनी त एते बृहती अभिश्रिया हिरण्ययी वक्वरी बर्हिराशाते ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! आप गौ आदि पशुपालकों के समान अपनी सामर्थ्य से दिव्यलोक और पृथ्वीलोक के अधिपति हैं। अतएव व्यापक, ऐश्वर्य सम्पन्न, स्वर्णमय, मंगल शब्दमय, शुभ्रवर्णयुक्त ये दोनों, दिव्य लोक और भूलोक, आपके इस प्रख्यात यज्ञ में उपस्थित होते हैं ॥६ ॥

१५७९. अग्ने जुषस्व प्रति हर्य तद्वचो मन्द्र स्वधाव ऋतजात सुक्रतो ।
यो विश्वतः प्रत्यङ्ङसि दर्शतो रण्वः सन्दृष्टौ पितुमाँ इव क्षयः ॥७ ॥

प्रशंसा योग्य, अन्नों से समृद्ध यज्ञहेतु उत्पन्न श्रेष्ठ कर्मशील हे अग्निदेव ! जो आप समस्त जड़ और चेतनादि संसार के लिए अनुकूल दर्शन योग्य, पिता के समान पालक नेत्रों को शक्ति देने वाले तथा सबके आश्रय स्थान हैं। अतएव आप प्रसन्न होकर इन स्तोत्रवाणियों का बार-बार श्रवण करें ॥७ ॥

[सूक्त - १४५]

[**ऋषि-** दीर्घतमा औचथ्य । **देवता-** अग्नि । **छन्द-** जगती, ५ त्रिष्टुप् ।]

१५८०. तं पृच्छता स जगामा स वेद स चिकित्वाँ ईयते सा न्वीयते ।
तस्मिन्त्सन्ति प्रशिषस्तस्मिन्निष्टयः स वाजस्य शवसः शुष्मिणस्पतिः ॥१ ॥

हे मनुष्यो !आप सभी उन अग्निदेव से ही प्रश्न करें, क्योंकि वे ही सर्वत्र गमनशील, सर्वज्ञाता, ज्ञानवान्, निश्चय ही सर्वत्र व्यापक हैं। उन्हीं में प्रशासन की सामर्थ्य तथा सभी अभीष्ट पदार्थ विद्यमान हैं। वे अग्निदेव ही अन्न, बल तथा शक्ति साधनों के स्वामी हैं ॥१ ॥



१५८१. तमित्पृच्छन्ति न सिमो वि पृच्छति स्वेनेव धीरो मनसा यदग्रभीत् ।
न मृष्यते प्रथमं नापरं वचोऽस्य क्रत्वा सचते अप्रदृपितः ॥२ ॥

ज्ञान सम्पन्न ही जिज्ञासा प्रकट करते हैं, क्योंकि सर्वसाधारण उनसे नहीं पूछ सकते । धैर्यवान् मनुष्य कार्य को निर्धारित अवधि से पहले ही सम्पन्न कर डालते हैं । वे किसी के कथन को अनावश्यक महत्व नहीं देते, अतएव अहंकार से रहित मनुष्य ही अग्निदेव की सामर्थ्य को प्राप्त करते हैं ॥२ ॥

१५८२. तमिद् गच्छन्ति जुह्वः स्तमर्वतीर्विश्वान्येकः शृणवद्वचांसि मे ।
पुरुप्रैषस्ततुरिर्यज्ञसाधनोऽच्छिद्रोतिः शिशुरादत्त सं रभः ॥३ ॥

घृत चमस द्वारा प्रदत्त सभी आहुतियाँ उन अग्निदेव को ही प्रदान की जाती हैं और प्रार्थनाएँ भी उन्हीं के निमित्त हैं । वे अकेले ही हमारी सम्पूर्ण स्तोत्र वाणियों का श्रवण करते हैं । ये अग्निदेव अनेकों के लिए प्रेरणाप्रद, दुःखों के निवारक, यज्ञसाधक, पवित्र संरक्षक तथा सामर्थ्यों से सम्पन्न हैं । अग्निदेव स्नेह युक्त होकर शिशु के समान ही आहुतियों को ग्रहण करते हैं ॥३ ॥

१५८३. उपस्थायं चरति यत्समारत सद्यो जातस्तत्सार युज्येभिः ।
अभि श्वान्तं मृशते नान्द्ये मुदे यदीं गच्छन्त्युशतीरपिष्ठितम् ॥४ ॥

जब ऋत्विग्गण अग्निदेव को प्रकट करने के लिए प्रयत्नशील होते हैं तब वे शीघ्र प्रदीप्त होकर सब ओर फैल जाते हैं । जब सर्वत्र संव्याप्त यज्ञाग्नि में आहुतियाँ दी जाती हैं, तब ये अग्निदेव उत्साही यजमानों को अभीष्ट फल प्रदान करके प्रोत्साहित करते हैं ॥४ ॥

१५८४. स ईं मृगो अप्यो वनर्गुरुप त्वच्युपमस्यां नि धायि ।
व्यब्रवीद्वयुना मर्त्येभ्योऽग्निर्विद्वाँ ऋतचिद्धि सत्यः ॥५ ॥

वनों में विचरणशील, अनुसंधान करने और उपलब्ध करने योग्य अग्निदेव, उत्तम समिधाओं के बीच स्थापित किये जाते हैं । मेधावी - यज्ञ के ज्ञान से सम्पन्न, सत्ययुक्त अग्निदेव वास्तव में ही मनुष्यों को यज्ञकर्म में प्रेरित करते हुए दिव्य ज्ञान का सन्देश देते हैं ॥५ ॥

[सूक्त - १४६]

[**ऋषि** - दीर्घतमा औचथ्य । **देवता**- अग्नि । **छन्द**- त्रिष्टुप् ।]

१५८५. त्रिमूर्धानं सप्तरश्मिं गृणीषेऽनूनमग्निं पित्रोरुपस्थे ।
निषत्तमस्य चरतो ध्रुवस्य विश्वा दिवो रोचनापप्रिवांसम् ॥१ ॥

हे मनुष्यो ! आप सभी माता-पिता के समान पृथ्वी और दिव्यलोक के बीच गोद में विराजमान, तीन मस्तकों से युक्त (प्रातः- मध्याह्न और सायं ये तीन सवन ही अग्नि के तीन शीश हैं) सात छन्दरूप सात ज्वालाओं से युक्त (काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, उग्रा और प्रदीप्ता ये सात अग्नि की ज्वालाएँ हैं) सबको पूर्णता प्रदान करने वाले इन अग्निदेव की प्रार्थना करें । दिव्य लोक से संचरित होने वाला इनका दिव्य तेजसमूह सभी जड़ और चेतन सृष्टि में संव्याप्त हो रहा है ॥१ ॥

१५८६. उक्षा महाँ अभि ववक्ष एने अजरस्तस्थावितऊतिर्ऋष्वः ।
उर्व्याः पदो नि दधाति सानौ रिहन्त्यूधो अरुषासो अस्य ॥२ ॥



महान् शौर्यवान् अग्निदेव इस द्युलोक और पृथ्वीलोक को सभी ओर से संव्याप्त करते हैं। सदा युवा रहने वाले पूजनीय अग्निदेव अपने संरक्षण साधनों से सम्पन्न होकर विराजमान हैं। भूमि के शीर्ष पर अपने पैरों को रखकर खड़े हुए इनकी प्रदीप्त ज्वालाएँ आकाश में सर्वत्र फैलती हैं ॥२ ॥

१५८७. समानं वत्समभि सञ्चरन्ती विष्वग्धेनू वि चरतः सुमेके।
अनपवृज्याँ अध्वनो मिमाने विश्वान्केताँ अधि महो दधाने ॥३ ॥

एक ही अग्नि रूपी पुत्र को उत्पन्न करने वाली, मार्गों को प्रकाशित करके उन्हें जाने योग्य बनाती हुई, सभी प्रकार की ज्ञान सम्पदा को व्यापकरूप में धारण करती हुई, उत्तम दर्शन योग्य दो गौएँ (अग्नि सम्वर्धन करने वाली यजमान दम्पती रूप) चारों ओर विचरण कर रही हैं ॥३ ॥

१५८८. धीरासः पदं कवयो नयन्ति नाना हृदा रक्षमाणा अजुर्यम्।
सिषासन्तः पर्यपश्यन्त सिन्धुमाविरेभ्यो अभवत्सूर्यो नॄन् ॥ ४ ॥

धैर्य युक्त एवं मेधावी मनुष्य, विभिन्न प्रकार के साधनों से भावनापूर्वक अग्नि की रक्षा करते हुए उन्हें सुरक्षित स्थान पर ले जाते हैं। जब अग्नि की कामना करने वाले मनुष्यों ने समुद्र के जल को चारों ओर देखा, तब ऐसे मनुष्यों के लिए सूर्य प्रकाश रूप में प्रकट हुए ॥४ ॥

१५८९. दिदृक्षेण्यः परि काष्ठासु जेन्य ईळेन्यो महो अर्भाय जीवसे।
पुरुत्रा यदभवत्सूरहैभ्यो गर्भेभ्यो मघवा विश्वदर्शतः ॥५ ॥

सभी दिशाओं में संव्याप्त होने एवं सदा विजयी होने से ये अग्निदेव प्रशंसा योग्य हैं। ये छोटे और बड़े सभी प्राणियों को जीवनी - शक्ति देने वाले हैं। अतः विभिन्न सम्पदाओं के स्वामी और सबके प्रकाशक ये अग्निदेव बीजरूप में बोये गये (गर्भस्थ) पदार्थों के उत्पत्ति के मूल कारण हैं ॥५ ॥

[सूक्त - १४७]

[**ऋषि**- दीर्घतमा औचथ्य। **देवता**- अग्नि। **छन्द**- त्रिष्टुप्।]

१५९०. कथा ते अग्ने शुचयन्त आयोर्ददाशुर्वाजेभिराशुषाणाः।
उभे यत्तोके तनये दधाना ऋतस्य सामन्रणयन्त देवाः ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! यज्ञ द्वारा वायुमण्डल का शोधन करने वाली, सर्वत्र प्रकाश बिखेरने वाली आपकी ज्वालाएँ किस प्रकार पोषक अन्नों के द्वारा जीवन तत्व प्रदान करती हैं ? ॥१ ॥

१५९१. बोधा मे अस्य वचसो यविष्ठ मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः।
पीयति त्वो अनु त्वो गृणाति वन्दारुस्ते तन्वं वन्दे अग्ने ॥२ ॥

उत्तम तरुण रूप, वैभव सम्पन्न हे अग्निदेव ! आप हमारे महिमायुक्त बार-बार किये गये निवेदन को स्वीकार करें। कोई आपके निन्दक हैं तो कोई प्रशंसा करने वाले हैं, लेकिन हम स्तोता स्वभाव से युक्त आपकी प्रज्वलित ज्योति की वन्दना ही करते हैं ॥२ ॥

१५९२. ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन्।
ररक्ष तान्त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आपकी जिन प्रख्यात संरक्षक किरणों ने 'ममता' के पुत्र के अन्धेपन को दूर किया। ज्ञान से

सम्पन्न लोकहित के कार्यों को करने वाले को आपने संरक्षण प्रदान किया; लेकिन अहंकारी दुष्कर्मी आपको प्रभावित न कर सके ॥३ ॥

१५९३. यो नो अग्ने अररिवाँ अघायुररातीवा मर्चयति द्वयेन ।

मन्त्रो गुरुः पुनरस्तु सो अस्मा अनु मृक्षीष्ट तन्वं दुरुक्तैः ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! जो दुष्कर्मों में लिप्त पापीजन हमें सार्थक दान देने में बाधा पहुँचा रहे हैं, जो स्वयं भी यज्ञीय कर्मों में सहयोग नहीं करते तथा छलपूर्ण चालों से हमें भी परेशान करते हैं। उनकी वे छलरूपी समस्त योजनाएँ उनके स्वयं के ही विनाश का कारण बनें। दूसरों के लिए कटु वचन बोलने वालों के शरीर क्षीण हो जायें ॥४॥

१५९४. उत वा यः सहस्य प्रविद्वान्मर्तो मर्तं मर्चयति द्वयेन ।

अतः पाहि स्तवमान स्तुवन्तमग्ने माकिर्नो दुरिताय धायीः ॥५ ॥

शक्ति के पुत्र हे अग्निदेव ! जो मनुष्य छल-कपटपूर्ण दुर्व्यवहार से हमें कष्ट पहुँचाना चाहते हैं, उनसे हम उपासकों को बचायें। हे स्तुत्य अग्निदेव ! हमें दुष्कर्मरूपी पापों की दुःखाग्नि में जलने से बचायें ॥५ ॥

[सूक्त - १४८]

[ऋषि- दीर्घतमा औचथ्य। देवता- अग्नि। छन्द- त्रिष्टुप्।]

१५९५. मथीद्यदीं विष्टो मातरिश्वा होतारं विश्वाप्सुं विश्वदेव्यम् ।

नि यं दधुर्मनुष्यासु विक्षु स्व१र्ण चित्रं वपुषे विभावम् ॥१ ॥

देवताओं के आवाहक, सर्वरूपवान्, देवताओं के निमित्त सभी यज्ञादि कर्मों में कुशल उन अग्निदेव को जब मातरिश्वा (अन्तरिक्ष में संचरित होने वाले) वायु ने सर्वव्यापक होकर मन्थन द्वारा उत्पन्न किया। तब सूर्यदेव की तरह विचित्र तेजस्विता सम्पन्न उन अग्निदेव को मनुष्यों के शरीरों में पोषण के लिए प्रतिष्ठित किया गया, उनकी हम प्रार्थना करते हैं ॥१ ॥

१५९६. ददानमिन्न ददभन्त मन्माग्निर्वरूथं मम तस्य चाकन् ।

जुषन्त विश्वान्यस्य कर्मोपस्तुतिं भरमाणस्य कारोः ॥२ ॥

अग्निदेव की स्तुति करने वाले हम याजकों को शत्रु पीड़ित नहीं कर सकते, क्योंकि अग्निदेव हमारे स्तोत्रों की मंगल कामना से प्रेरित हैं। हम स्तोताओं की प्रार्थनाओं को तथा समस्त सत्कर्मों को सम्पूर्ण देवशक्तियाँ ग्रहण करती हैं ॥२ ॥

१५९७. नित्ये चिन्नु यं सदने जगृभ्रे प्रशस्तिभिर्दधिरे यज्ञियासः ।

प्र सू नयन्त गृभयन्त इष्टावश्वासो न रथ्यो रारहाणाः ॥३ ॥

जिन अग्निदेव को याजकगण प्रतिदिन यज्ञ गृह में शीघ्रतापूर्वक स्तुतियों सहित प्रतिष्ठित करते हैं, उन्हें याजकगण यज्ञार्थ, तीव्रगामी रथ के घोड़ों की तरह विकसित करते हैं ॥३ ॥

१५९८. पुरूणि दस्मो नि रिणाति जम्भैराद्रोचते वन आ विभावा ।

आदस्य वातो अनु वाति शोचिरस्तुर्न शर्यामसनामनु द्यून् ॥४ ॥



अग्निदेव ज्वालारूपी दाँतों से वृक्षों को प्राय: विनष्ट कर देते हैं। वे जंगल में सभी ओर प्रकाश बिखेरते हैं। इस अग्नि की ज्वाला इसके समीप से वायु की अनुकूलता पाकर छोड़े गये बाण की तरह वेग से आगे बढ़ती है ॥४ ॥

१५९९. न यं रिपवो न रिषण्यवो गर्भे सन्तं रेषणा रेषयन्ति।

अन्धा अपश्या न दभन्नभिख्या नित्यास ईं प्रेतारो अरक्षन् ॥५ ॥

गर्भ में स्थित अग्निदेव को शत्रु पीड़ित नहीं कर सकते। अज्ञानी दृष्टि विहीन एवं ज्ञान का दम्भ भरने वाले भी जिसकी महिमा को कम नहीं कर सके। उन अग्निदेव को नित्य यज्ञकर्म द्वारा संतुष्ट करने वाले मनुष्य सुरक्षित रखते हैं ॥५ ॥

[सूक्त - १४९]

[**ऋषि-** दीर्घतमा औचथ्य। **देवता-** अग्नि। **छन्द-** विराट्।]

१६००. महः स राय एषते पतिर्दन्निन इनस्य वसुनः पद आ।

उप ध्रजन्तमद्रयो विधन्नित् ॥१ ॥

जब वे अग्निदेव धन-सम्पदा प्रदान करने के लिए हमारे यज्ञों में आगमन करते हैं, तब पत्थरों द्वारा कूटकर अभिषुत सोमरस से उनका अभिनन्दन किया जाता है ॥१ ॥

१६०१. स यो वृषा नरां न रोदस्योः श्रवोभिरस्ति जीवपीतसर्गः।

प्र यः सस्राणः शिश्रीत योनौ ॥२ ॥

शक्तिशाली पुरुष की तरह अग्निदेव द्युलोक और भूलोक में यश सहित रहते हैं। वे प्राणियों के लिए उपयुक्त सृष्टि की रचना करते हैं। वे ही प्रदीप्त होकर यज्ञवेदी में स्थापित होते हैं ॥२ ॥

१६०२. आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेदत्यः कविर्नभन्यो३ नार्वा।

सूरो न रुरुक्वाञ्छतात्मा ॥३ ॥

जो अग्निदेव यजमानों द्वारा निर्मित यज्ञ वेदियों को प्रदीप्त करते हैं, जो द्रुतगामी घोड़े और वायु के सदृश गति वाले तथा दूर द्रष्टा हैं, वे अनेक रूपों में (विद्युत्, प्रकाश, ऊर्जा आदि) सुशोभित अग्निदेव सूर्यदेव के सदृश तेजोमय हैं ॥३ ॥

१६०३. अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो अस्थात्।

होता यजिष्ठो अपां सधस्थे ॥ ४ ॥

ये अग्निदेव द्विजन्मा (दो अरणियों अथवा मंथन एवं अग्न्याधान से स्थापित) हैं, त्रिरोचन (सूर्य, विद्युत् एवं लौकिक अग्निरूप में) सारे विश्व को प्रकाशित करने वाले हैं। ये होता अग्निदेव जलों के बीच भी विद्यमान हैं ॥४ ॥

१६०४. अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या।

मर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ॥५ ॥

दो अरणियों से उत्पन्न हुए अग्निदेव देवों का आवाहन करने (बुलाने) वाले, सब श्रेष्ठ धनों और यशस्वी कर्मों के धारक हैं। वे अग्निदेव अपने याजकों को उत्तम सम्पत्ति प्रदान करने वाले हैं ॥५ ॥



[सूक्त - १५०]

[ऋषि- दीर्घतमा औचथ्य । देवता- अग्नि । छन्द- उष्णिक् ।]

१६०५. पुरु त्वा दाश्वान्वोचेऽरिरग्ने तव स्विदा। तोदस्येव शरण आ महस्य ॥१ ॥

महान् सम्पत्तिशाली की शरण में आये हुए (धन याचक) सेवक के सदृश, हम अग्निदेव के निमित्त आहुति प्रदान करते हुए स्तुतिगान करते हैं ॥१ ॥

१६०६. व्यनिनस्य धनिनः प्रहोषे चिदररुषः। कदा चन प्रजिगतो अदेवयोः ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! जो श्रद्धाहीन हैं, धन सम्पन्न होते हुए भी कृपण हैं तथा देवताओं के अनुशासन को नहीं मानते ; ऐसे स्वेच्छाचारी नास्तिकों को आप अपनी कृपादृष्टि से वञ्चित करें ॥२ ॥

१६०७. स चन्द्रो विप्र मर्त्यो महो व्राधन्तमो दिवि। प्रप्रेत्ते अग्ने वनुषः स्याम ॥३ ॥

हे ज्ञान सम्पन्न अग्निदेव ! जो मनुष्य आपकी शरण में आते हैं, वे आपकी तेजस्विता से दिव्य लोक के चन्द्रमा के समान सबके लिए सुखदायक होते हैं। वे सबसे अधिक महानता युक्त होते हैं। अतएव हम सदैव आपके प्रति श्रद्धा भावना से ओतप्रोत रहें ॥३ ॥

[सूक्त - १५१]

[ऋषि- दीर्घतमा औचथ्य । देवता-१ मित्र; २-९ मित्रावरुण । छन्द- जगती ।]

१६०८. मित्रं न यं शिम्या गोषु गव्यवः स्वाध्यो विदथे अप्सु जीजनन्।
अरेजेतां रोदसी पाजसा गिरा प्रति प्रियं यजतं जनुषामवः ॥१ ॥

पूजनीय एवं प्रीतियुक्त जिन अग्निदेव को मानव मात्र की रक्षा के लिए गौ (पोषक किरणों) की कामना से प्रेरित श्रेष्ठ ज्ञानियों ने, मित्र के समान अपने श्रेष्ठ यज्ञीय सत्कर्मों में प्रकट किया। उनकी ध्वनि और तेजोमयी शक्ति से दिव्य लोक और पृथ्वी लोक कम्पायमान होते हैं ॥१ ॥

१६०९. यद्ध त्यद्वां पुरुमीळ्हस्य सोमिनः प्र मित्रासो न दधिरे स्वाभुवः ।
अध क्रतुं विदतं गातुमर्चत उत श्रुतं वृषणा पस्त्यावतः ॥२ ॥

हे सामर्थ्यवान् मित्र और वरुण देवो ! आप दोनों के लिए मित्र के समान हितैषी ऋत्विग्गणों ने अपनी सामर्थ्य से सत्तावान् तथा विभिन्न सुखों के दाता सोमरस को अर्पित किया है। अतएव आप दोनों स्तोता के गुण, कर्म, स्वभाव को समझें तथा सद्गृहस्थ यजमान की प्रार्थना पर भी ध्यान दें ॥२ ॥

१६१०. आ वां भूषन्क्षितयो जन्म रोदस्योः प्रवाच्यं वृषणा दक्षसे महे।
यदीमृताय भरथो यदर्वते प्र होत्रया शिम्या वीथो अध्वरम् ॥३ ॥

हे शक्ति सम्पन्न मित्र और वरुण देवो ! पृथ्वीवासी महान् दक्षता की प्राप्ति के लिए द्यावा-पृथ्वी से उत्पन्न आप दोनों की प्रशंसा करते हैं और स्तोत्रों से अलंकृत करते हैं। क्योंकि आप दोनों सच्चे साधक तथा दैवी नियमों के पालक को सामर्थ्य प्रदान करते हैं। आप आमन्त्रित करने पर तथा सत्कर्मों से आकर्षित होकर यज्ञ में उपस्थित होते हैं ॥३ ॥

१६११. प्र सा क्षितिरसुर या महि प्रिय ऋतावानावृतमा घोषथो बृहत्।
युवं दिवो बृहतो दक्षमाभुवं गां न धुर्युप युञ्जाथे अपः ॥४ ॥



हे बलशाली मित्रावरुण ! जो (यज्ञ भूमि) आप दोनों को विशेष प्रिय है, उस भूमि का व्यापक विस्तार हो । हे यज्ञीय कर्मों के पालनकर्त्ता देवो ! आप दोनों निर्भीकतापूर्वक महान् सत्यज्ञान का उद्घोष करें । महान् दैवी गुणों के संवर्धनार्थ आप दोनों सामर्थ्ययुक्त तथा कल्याणकारी कर्मों में उसी प्रकार संलग्न हों जिस प्रकार बैल हल के जुए में संलग्न होते हैं ॥४ ॥

१६१२. मही अत्र महिना वारमृण्वथोऽरेणवस्तुज आ सद्मन्धेनवः ।
स्वरन्ति ता उपरताति सूर्यमा निम्रुच उषसस्तक्ववीरिव ॥५ ॥

हे मित्र और वरुण देवो ! आप दोनों विस्तृत पृथ्वी पर अपनी प्रभाव क्षमता से धारण करने योग्य श्रेष्ठ धनों को प्रदान करते हैं तथा पवित्र गौएँ (किरणें) देते हैं । उषा काल में ये गौएँ, आकाश मण्डल पर बादलों के छा जाने पर सूर्यदेव के लिए रम्भाती हैं, जैसे मनुष्य चोर को देखकर सावधानी के लिए चिल्लाते हैं ॥५ ॥

१६१३. आ वामृताय केशिनीरनूषत मित्र यत्र वरुण गातुमर्चथः ।
अव त्मना सृजतं पिन्वतं धियो युवं विप्रस्य मन्मनामिरज्यथः ॥६ ॥

हे मित्र और वरुण देवो ! जहाँ आपकी प्रार्थनाएँ गाई जाती हैं, उस प्रदेश में अग्नि की ज्वालायें यज्ञीयकार्य के लिए आप दोनों का सहयोग करती हैं । आप हमारी बौद्धिक क्षमता को पुष्ट करके सामर्थ्य- शक्ति प्रदान करें । आप दोनों ही ज्ञानसम्पन्न विद्वानों के अधिपति हैं ॥६ ॥

१६१४. यो वां यज्ञैः शशमानो ह दाशति कविर्होता यजति मन्मसाधनः ।
उपाह तं गच्छथो वीथो अध्वरमच्छा गिरः सुमतिं गन्तमस्मयू ॥७ ॥

हे मित्र और वरुण देवो ! जो विद्वान् याजक प्रार्थनाएँ करते हुए आप दोनों को आहुतियाँ प्रदान करते हैं, उन मनुष्यों के समीप जाकर आप यज्ञीय कर्मों की अभिलाषा करते हैं । अतएव आप दोनों हमारी ओर उन्मुख होकर हमारे स्तोत्रों और श्रेष्ठ भावनाओं को स्वीकार करें ॥७ ॥

१६१५. युवां यज्ञैः प्रथमा गोभिरञ्जत ऋतावाना मनसो न प्रयुक्तिषु ।
भरन्ति वां मन्मना संयता गिरोऽदृप्यता मनसा रेवदाशाथे ॥८ ॥

हे सत्य सम्पन्न मित्रावरुण देव ! इन्द्रियों में मन जिस प्रकार सर्वोत्तम है, उसी प्रकार देवताओं में सर्वोत्तम आप दोनों को याजकगण दुग्ध, घृतादि की आहुतियों द्वारा सन्तुष्ट करते हैं । उन्हें ऐश्वर्य सम्पदा प्रदान करते हैं ॥८ ॥

१६१६. रेवद्वयो दधाथे रेवदाशाथे नरा मायाभिरितऊति माहिनम् ।
न वां द्यावोऽहभिर्नोत सिन्धवो न देवत्वं पणयो नानशुर्मघम् ॥ ९ ॥

हे नेतृत्व सम्पन्न मित्र और वरुण देवो ! आप दोनों अपनी शक्तियों से सुरक्षित करते हुए हमें वैभव पूर्ण उपयोगी सम्पदाएँ प्रदान करते हैं । आप दोनों की दैवी क्षमताओं और सम्पदाओं को दिव्य लोक, अहोरात्र, नदियाँ तथा 'पणि' नामक असुरगण भी उपलब्ध नहीं कर सके ॥९ ॥

[सूक्त - १५२]

[**ऋषि-** दीर्घतमा औचथ्य । **देवता-** मित्रावरुण । **छन्द-** त्रिष्टुप् ।]

१६१७. युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे युवोरच्छिद्रा मन्तवो ह सर्गाः ।
अवातिरतमनृतानि विश्व ऋतेन मित्रावरुणा सचेथे ॥१ ॥



हे मित्र-वरुणदेवो ! आप दोनों परिपुष्ट होकर तेजस्वी वस्त्रों को धारण करते हैं । आप के द्वारा रचित सभी वस्तुएँ दोषरहित और विचारणीय हैं । आप दोनों असत्यों का निवारण कर मनुष्यों को सत्यमार्ग से जोड़ देते हैं ॥१ ॥

१६१८. एतच्चन त्वो वि चिकेतदेषां सत्यो मन्त्रः कविशस्त ऋघावान् ।
त्रिरश्रिं हन्ति चतुरश्रिरुग्रो देवनिदो ह प्रथमा अजूर्यन् ॥२ ॥

मित्र और वरुण देवों में से कोई एक देव भी विशेष ज्ञानवान्, सत्य के प्रति सुदृढ़, क्रान्तदर्शियों द्वारा स्तुत्य और सामर्थ्य सम्पन्न हैं । द्रष्टा-ऋषि इससे भली प्रकार परिचित हैं । वह पराक्रमी वीर त्रिधारा और चतुर्धारा युक्त शस्त्रों को विनष्ट कर देते हैं । दैवी अनुशासनों की अवहेलना करने वाले प्रारम्भ में सामर्थ्यशाली प्रतीत होते हुए भी अन्ततोगत्वा अपनी प्रभाव क्षमता खोकर विनाश को प्राप्त होते हैं ॥२ ॥

१६१९. अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद्वां मित्रावरुणा चिकेत ।
गर्भो भारं भरत्या चिदस्य ऋतं पिपर्त्यनृतं नि तारीत् ॥३ ॥

हे मित्र और वरुणदेव ! (दिन और रात्रिरूप आप दोनों की सामर्थ्य से) बिना पैरवाली उषा; पैरवाले प्राणियों से पहले पहुँच जाती हैं । (आप दोनों के) गर्भ से उत्पन्न होकर शिशु सूर्य, संसार के पालन पोषण रूपी दायित्व का निर्वाह करते हैं । यही सूर्यदेव असत्यरूप अन्धकार को दूर करके सत्यरूप आलोक को फैलाते हैं ॥३ ॥

१६२०. प्रयन्तमित्परि जारं कनीनां पश्यामसि नोपनिपद्यमानम् ।
अनवपृग्णा वितता वसानं प्रियं मित्रस्य वरुणस्य धाम ॥४ ॥

सूर्यदेव सर्वत्र व्यापक, तेजस्वी प्रकाश को धारण करके, पत्नीरूप उषाओं की कान्ति को धूमिल करते हुए, मित्र और वरुण देवों के प्रिय धाम की ओर सदैव गतिशील होते हुए दिखाई देते हैं ।वे कभी भी विराम नहीं लेते ॥४ ॥

१६२१. अनश्वो जातो अनभीशुरर्वा कनिक्रदत्पतयदूर्ध्वसानुः ।
अचित्तं ब्रह्म जुजुषुर्युवानः प्र मित्रे धाम वरुणे गृणन्तः ॥५ ॥

अश्व और लगाम आदि साधनों से रहित होकर भी ये सूर्यदेव गतिमान् होते हैं । वे अपने उदित होने के साथ शब्द करते हुए सभी ऊँचे शिखरों पर रश्मियाँ बिखेरते हैं । मित्र और वरुण देवों की तेजस्विता का गुणगान करते हुए युवा साधक सूर्यदेव की विशेष रूप से स्तुति करते हैं ॥५ ॥

१६२२. आ धेनवो मामतेयमवन्तीर्ब्रह्मप्रियं पीपयन्त्सस्मिन्नूधन् ।
पित्वो भिक्षेत वयुनानि विद्वानासाविवासन्नदितिमुरुष्येत् ॥६ ॥

रक्षक गौएँ (गायें, वाणी, किरणें) अपने स्रोतों से ममतायुक्त उपासकों को पोषण प्रदान करें । सद्ज्ञान के ज्ञाता आप (मित्रावरुण) से उचित पोषण (आहार एवं विचार) माँगें । आपकी उपासना से साधक मृत्यु को जीत लें ॥६ ॥

१६२३. आ वां मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं नमसा देवाववसा ववृत्याम् ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु सह्या अस्माकं वृष्टिर्दिव्या सुपारा ॥७ ॥

हे दीप्तिमान् मित्रावरुण देव ! हमारे द्वारा विनम्रतापूर्वक गाये गये स्तोत्रों को सुनकर आप दोनों यहाँ पधारें, आहुतियों को ग्रहण करके आप हमें संग्रामों में विजयी बनायें तथा दिव्य वृष्टि द्वारा हमें अकाल और दु:ख-दारिद्र्य से विमुक्त करें ॥७ ॥



[सूक्त - १५३]

[ऋषि- दीर्घतमा औचथ्य । देवता- मित्रावरुण । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

१६२४. यजामहे वां महः सजोषा हव्येभिर्मित्रावरुणा नमोभिः ।
घृतैर्घृतस्नू अध यद्वामस्मे अध्वर्यवो न धीतिभिर्भरन्ति ॥१ ॥

परस्पर प्रीतियुक्त, विशेष तेजस्वी, हे मित्र और वरुण देवो ! आपके प्रति हमारे ऋत्विज् स्तोत्रों का गान करते हैं । हम यजमान भी महानतायुक्त आप दोनों के प्रति हव्य सहित नमन करते हैं ॥१ ॥

१६२५. प्रस्तुतिर्वां धाम न प्रयुक्तिरयामि मित्रावरुणा सुवृक्तिः ।
अनक्ति यद्वां विदथेषु होता सुम्नं वां सूरिर्वृषणावियक्षन् ॥२ ॥

हे मित्र-वरुणदेवो ! वाक्पटु हम आप दोनों की प्रार्थना करते हैं । घर (के आवश्यक सामान) की तरह आपका ध्यान करते हैं । ज्ञानी याजक आप दोनों की स्तुति करते हैं । वे आप से आनन्द की कामना करते हैं ॥२ ॥

१६२६. पीपाय धेनुरदितिर्ऋताय जनाय मित्रावरुणा हविर्दे ।
हिनोति यद्वां विदथे सपर्यन्त्स रातहव्यो मानुषो न होता ॥३ ॥

जब हवि को प्रदान करने वाले मननशील होता आपकी अर्चना करते हुए यज्ञ में आहुतियाँ देते हैं, तब हे मित्र और वरुण देवो ! सत्य मार्ग पर सुदृढ़ रहने वाले तथा हविष्य प्रदान करने वाले साधकों को गौएँ (आपकी पोषक किरणें) हर प्रकार के सुख प्रदान करती हैं ॥३ ॥

१६२७. उत वां विक्षु मद्यास्वन्धो गाव आपश्च पीपयन्त देवीः ।
उतो नो अस्य पूर्व्यः पतिर्दन्वीतं पातं पयस उस्रियायाः ॥४ ॥

हे मित्र और वरुण देवो ! आप दोनों अन्नों, दुधारू गौओं और जलों से सभी मनुष्यों को आनन्दित करते हुए संतुष्ट करें । हमारे यज्ञ के पूर्व अधिष्ठाता अग्निदेव हमें वैभव सम्पदा प्रदान करें, पश्चात् सभी याजकगण ऐश्वर्यशाली होकर घृत की आहुतियाँ प्रदान करें ॥४ ॥

[सूक्त - १५४]

[ऋषि- दीर्घतमा औचथ्य । देवता- विष्णु । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

१६२८. विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥१ ॥

जो पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा द्युलोक को बनाने वाले हैं, जो देवताओं के निवास स्थान द्युलोक को स्थिर कर देते हैं, जो तीन पगों से तीनों लोकों में विचरण करने वाले हैं (अथवा मापने वाले हैं) , उन विष्णुदेव के वीरतापूर्ण कार्यों का कहाँ तक वर्णन करें ? ॥१ ॥

१६२९. प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥२ ॥

विष्णुदेव के तीन पादों (पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक) में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड अवस्थित है । अतएव भयंकर, हिंस्र और गिरि-कन्दराओं में रहने वाले पराक्रमी पशुओं की तरह सारा संसार उन विष्णुदेव के पराक्रम की प्रशंसा करता है ॥२ ॥



१६३०. प्र विष्णावे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे ।
य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित्पदेभिः ॥३ ॥

अकेले ही जिन (विष्णु) देव ने मात्र तीन कदमों से इस अतिव्यापक दिव्यलोक को माप लिया, उन मेघों में स्थित, अत्यन्त प्रशंसनीय, जल वृष्टि में सहायक, सूर्यरूप विष्णुदेव के लिए प्रखर-भावना से उच्चारित हमारा स्तोत्र समर्पित है ॥३ ॥

१६३१. यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति ।
य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा ॥४ ॥

जिन विष्णुदेव के तीन अमृत चरण अपनी धारण क्षमता से तीन धातुओं (सत्, रज, तम) से पृथ्वी एवं द्युलोक को आनन्दित करते हैं, वे (विष्णुदेव) अकेले ही सारे भुवनों-लोकों के एकाकी आधार हैं ॥४ ॥

१६३२. तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।
उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः ॥५ ॥

देवों के उपासक मनुष्य जहाँ पहुँचकर विशेष रूप से आनन्द की अनुभूति करते हैं, विष्णुदेव के उस प्रियधाम को हम भी प्राप्त करें । विष्णुदेव, महापराक्रमी, वीर इन्द्र के बन्धु हैं । विष्णुदेव के उस उत्तम धाम में अमृत जल धारा सदा ही प्रवाहित रहती है ॥५ ॥

१६३३. ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः ।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमव भाति भूरि ॥६ ॥

हे इन्द्र और वरुण देव ! आप दोनों से हम (यजमान दम्पती) अपने निवास के लिए ऐसा आश्रय स्थल (गृह) चाहते हैं, जहाँ अतितीक्ष्ण स्वास्थ्यप्रद सूर्य रश्मियाँ प्रवेश कर सकें (अथवा जहाँ सुन्दर सींगों वाली दुधारू गायें विद्यमान हों ।) इन्हीं श्रेष्ठ गृहों में अनेकों के उपास्य, सामर्थ्य सम्पन्न विष्णुदेव के उत्तम धामों की विशिष्ट विभूतियाँ स्वप्रकाशित होती हैं (अर्थात् वहाँ देव अनुग्रह अनवरत बरसता रहता है) ॥६ ॥

[सूक्त - १५५]

[**ऋषि-** दीर्घतमा औचथ्य । **देवता-** विष्णु, १-३ इन्द्राविष्णू । **छन्द-** जगती ।]

१६३४. प्र वः पान्तमन्धसो धियायते महे शूराय विष्णवे चार्चत ।
या सानुनि पर्वतानामदाभ्या महस्तस्थतुरर्वतेव साधुना ॥१ ॥

अपराजेय तथा महिमायुक्त जो इन्द्र और विष्णुदेव श्रेष्ठ अश्वों के समान पर्वतों के शिखरों पर रहते हैं; सद्बुद्धि की ओर प्रेरित करने वाले उन महान् इन्द्र और विष्णुदेव के लिए सोम रस रूपी श्रेष्ठ हविष्यान्न समर्पित करें ॥१ ॥

१६३५. त्वेषमित्था समरणं शिमीवतोरिन्द्राविष्णू सुतपा वामुरुष्यति ।
या मर्त्याय प्रतिधीयमानमित्कृशानोरस्तुरसनामुरुष्यथः ॥२ ॥

हे इन्द्र और विष्णुदेव ! आप दोनों रिपुओं का सर्वनाश करने वाले अग्नि की प्रखर- तेजस्वी ज्वालाओं का अधिकाधिक विस्तार करते हैं । आप दोनों की सभी ओर विस्तृत सामर्थ्यवान् तेजस्विता को, सोमयाग करने वाले मनुष्य और अधिक विस्तृत करते हैं ॥२ ॥

१६३६. ता ईं वर्धन्ति मह्यस्य पौंस्यं नि मातरा नयति रेतसे भुजे ।
दधाति पुत्रोऽवरं परं पितुर्नाम तृतीयमधि रोचने दिवः ॥३ ॥



वे प्रार्थनाएँ सूर्यरूप विष्णुदेव की महिमायुक्त सामर्थ्य को विशेष रूप से बढ़ाती हैं । विष्णुदेव अपनी उस क्षमता को उत्पादकता एवं उपयोग के लिए, द्यावा और पृथ्वीरूपी दो माताओं के बीच प्रतिष्ठित करते हैं । जिस प्रकार एक पुत्र अपने पिता के तीनों प्रकार के गुणों को धारण करता है, उसी प्रकार विष्णुदेव अपने सभी प्रकार के गुणों को द्युलोक में स्थापित करते हैं ॥३ ॥

१६३७. तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसीनस्य त्रातुरवृकस्य मीळ्हुषः ।
यः पार्थिवानि त्रिभिरिद्विगामभिरुरु क्रमिष्टोरुगायाय जीवसे ॥४ ॥

जिन सूर्यरूप विष्णुदेव ने अपने मार्ग का विस्तार करने तथा जीवनीशक्ति (प्राण-ऊर्जा) संचरित करने के लिए सभी विस्तृत लोकों को मात्र तीन पगों से नाप लिया; ऐसे संरक्षक, शत्रुरहित (अजातशत्रु), सुखकारक तथा सभी पदार्थों के स्वामी विष्णुदेव के उन सभी पराक्रम-पूर्ण कार्यों की सभी प्रशंसा करते हैं ॥४ ॥

१६३८. द्वे इदस्य क्रमणे स्वर्दृशोऽभिख्याय मर्त्यो भुरण्यति ।
तृतीयमस्य नकिरा दधर्षति वयश्चन पतयन्तः पतत्रिणः ॥५ ॥

मनुष्य के लिए तेजस्वितायुक्त, विष्णुदेव के (पृथ्वी और अन्तरिक्ष रूपी) दो पगों का परिचय पाना सम्भव है, लेकिन (द्युलोक रूपी) तीसरे पग को किसी के भी द्वारा जानना असम्भव है । सुदृढ़ पंखों से युक्त पक्षी भी उसे नहीं जान सकते ॥५ ॥

१६३९. चतुर्भिः साकं नवतिं च नामभिश्चक्रं न वृत्तं व्यतीँरवीविपत् ।
बृहच्छरीरो विमिमान ऋक्वभिर्युवाकुमारः प्रत्येत्याहवम् ॥६ ॥

सूर्य रूप विष्णु देव चार सहित नब्बे अर्थात् चौरानवे काल गणना के अवयवों को [१ संवत्सर (वर्ष), २ अयन (उत्तरायण - दक्षिणायन), पंच ऋतु, १२ मास, २४ पक्ष (शुक्ल एवं कृष्ण), ३० दिन-रात्रि, ८ याम, १२ मेष वृश्चिकादि राशियाँ, कुल ९४ काल गणना के अवयव हैं] अपनी प्रेरणा शक्ति से चक्राकार (गोल चक्र के समान) रूप में घुमाते हैं । विशाल स्वरूप धारी, सदा युवा रूप, कभी क्षीण न होने वाले, सूर्यरूप विष्णुदेव काल की गति को प्रेरित करते हुए ऋचाओं द्वारा आवाहन किये जाने पर यज्ञ की ओर आ रहे हैं (अर्थात् सृष्टि क्रम के विराट् यज्ञ को सम्पन्न कर रहे हैं) ॥६ ॥

[सूक्त - १५६]

[ऋषि- दीर्घतमा औचथ्य । देवता- विष्णु । छन्द- जगती ।]

१६४०. भवा मित्रो न शेव्यो घृतासुतिर्विभूतद्युम्न एवया उ सप्रथाः ।
अधा ते विष्णो विदुषा चिदर्ध्यः स्तोमो यज्ञश्च राध्यो हविष्मता ॥१ ॥

हे विष्णुदेव ! आप जल के उत्पादनकर्त्ता, अति देदीप्यमान, सर्वत्र गतिशील, अतिव्याापक तथा मित्र के सदृश ही हितकारी सुखों के प्रदाता हैं । हे विष्णुदेव ! इसके पश्चात् मनुष्यों द्वारा हविष्यान्न समर्पित करते हुए सम्पन्न किया गया यज्ञ स्तुति योग्य है । ज्ञान सम्पन्न मनुष्यों द्वारा आपके प्रति कहे गये स्तोत्र सराहनीय हैं ॥१ ॥

[यज्ञ रूप विष्णु द्वारा प्रदत्त साधन यज्ञ में प्रयुक्त हों तथा बुद्धि उन्हीं के महत्व को प्रतिपादित करे, तभी वे दोनों सराहनीय हैं ।]

१६४१. यः पूर्व्याय वेधसे नवीयसे सुमज्जानये विष्णवे ददाशति ।
यो जातमस्य महतो महि ब्रवत्सेदु श्रवोभिर्युज्यं चिदभ्यसत् ॥२ ॥

जो अनन्तकाल से ज्ञानरूप एवं सदा नवीन दीखते हैं तथा जो सद्‌बुद्धि के प्रेरक हैं, उन विष्णुदेव के लिए हविष्यान्न अर्पित करने वाले मनुष्य कीर्तिमान् होकर श्रेष्ठ पद को प्राप्त करते हैं ॥२ ॥



१६४२. तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथा विद ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन।

आस्य जानन्तो नाम चिद्विवक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे ॥३ ॥

हे स्तोताओ ! यज्ञ के नाभिरूप, चिरपुरातन उन विष्णुदेव से सम्बन्धित जिस भी ज्ञान से आप परिचित हों, उसी के अनुसार स्तुतियों द्वारा उन्हें तुष्ट करें। इनके तेजस्वी पराक्रम से सम्बन्धित जानकारी के अनुरूप आप इनका वर्णन करें । हे सर्वत्र व्यापक देव ! हम आपकी श्रेष्ठ प्रेरणाओं के अनुगामी बनें ॥३ ॥

१६४३. तमस्य राजा वरुणस्तमश्विना क्रतुं सचन्त मारुतस्य वेधसः।

दाधार दक्षमुत्तममहर्विदं व्रजं च विष्णुः सखिवाँ अपोर्णुते ॥४ ॥

सर्वज्ञ विष्णुदेव के साथ तेजस्विता सम्पन्न वरुण और अश्विनीकुमार देवता भी कर्मरत रहते हैं। मित्रों से युक्त सूर्यरूप विष्णुदेव अपनी श्रेष्ठ सामर्थ्य से दिवस को प्रकट करते हैं, (प्रकाश के अवरोधक) आवरण को छिन्न-भिन्न कर देते हैं ॥४ ॥

१६४४. आ यो विवाय सचथाय दैव्य इन्द्राय विष्णुः सुकृते सुकृत्तरः।

वेधा अजिन्वत्त्रिषधस्थ आर्यमृतस्य भागे यजमानमाभजत् ॥५ ॥

दिव्यलोक में निवास करने वाले, श्रेष्ठ कर्मों को सम्पन्न करने वालों में सर्वोत्तम विष्णुदेव, श्रेष्ठ कर्मशील इन्द्रदेव का सहयोग करते हैं। तीनों लोकों में व्याप्त ये विष्णुदेव श्रेष्ठ पुरुषों को तुष्ट करते हैं, यज्ञकर्त्ता के पास स्वतः पहुँच जाते हैं ॥५ ॥

[सूक्त - १५७]

[**ऋषि-** दीर्घतमा औचथ्य। **देवता-** अश्विनीकुमार। **छन्द-** जगती; ५-६ त्रिष्टुप्।]

१६४५. अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्यु१षाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा।

आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद्देवः सविता जगत्पृथक् ॥१ ॥

भूमि पर अग्निदेव चैतन्य हुए; सूर्यदेव उदित हो गये हैं। महान् उषादेवी अपने तेज से लोगों को हर्षित करती हुई आ गयी हैं। अश्विनीकुमारों ने यात्रा के लिए अपने अश्वों को रथ में जोड़ लिया है। सूर्यदेव ने सब प्राणियों को अपने पृथक्-पृथक् कर्मों में प्रवृत्त कर दिया है ॥१ ॥

१६४६. यद्युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम्।

अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥२ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप अपने श्रेष्ठ रथ को जोड़कर (यज्ञ में पहुँचकर) हमारे क्षात्रबल (पौरुष) को घृत (तेज) से पुष्ट करें। हमारी प्रजाओं में ज्ञान की वृद्धि करें। हम युद्ध में शत्रुओं को पराजित करके धन प्राप्त करने में समर्थ हो सकें ॥२ ॥

१६४७. अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः।

त्रिवन्धुरो मघवा विश्वसौभगः शं न आ वक्षद् द्विपदे चतुष्पदे ॥३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप रथ पर विराजित होकर यहाँ पधारें। तीन पहियों वाला और मधुर, अमृततुल्य, पोषक तत्त्वों को धारण करने वाला, शीघ्रगामी अश्वों से जुता हुआ, प्रशंसनीय, बैठने के तीन स्थानों वाला, समस्त ऐश्वर्य और सौभाग्य से भरा हुआ आपका रथ मनुष्यों और पशुओं के लिए सुखदायी हो ॥३ ॥

१६४८. आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवं मधुमत्या नः कशया मिमिक्षतम् ।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥४ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों प्रचुर अन्न प्रदान करें । हमें मधु से परिपूर्ण पात्र प्रदान करें । हमें दीर्घायुष्य प्रदान करें । हमारे सभी विकारों को दूर करके तथा द्वेष भावना को मिटाकर सदैव हमारे सहायक बनें ॥४ ॥

१६४९. युवं ह गर्भं जगतीषु धत्थो युवं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः ।
युवमग्निं च वृषणावपश्च वनस्पतीँरश्विनावैरयेथाम् ॥५ ॥

हे शक्तिशाली अश्विनीकुमारो ! आप दोनों गौओं में (अथवा सम्पूर्ण विश्व में) गर्भ (उत्पादक क्षमता) स्थापित करने में सक्षम हैं । अग्नि, जल और वनस्पतियों को (प्राणि मात्र के कल्याण के लिए) आप ही प्रेरित करते हैं ॥५ ॥

१६५०. युवं ह स्थो भिषजा भेषजेभिरथो ह स्थो रथ्या३ राथ्येभिः ।
अथो ह क्षत्रमधि धत्थ उग्रा यो वां हविष्मान्मनसा ददाश ॥६ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों श्रेष्ठ ओषधियों से युक्त उत्तम वैद्य हैं । उत्तम रथ से युक्त श्रेष्ठ रथी हैं । हे पराक्रमी अश्विनीकुमारो ! जो आपके प्रति श्रद्धा भावना से हविष्यात्र अर्पित करते हैं, उन्हें आप दोनों क्षात्र धर्म के निर्वाह के लिए उपयुक्त शौर्य प्रदान करते हैं ॥६ ॥

[सूक्त - १५८]

[**ऋषि-** दीर्घतमा औचथ्य । **देवता-** अश्विनीकुमार । **छन्द-** त्रिष्टुप्; ६ अनुष्टुप् ।]

१६५१. वसू रुद्रा पुरुमन्तू वृधन्ता दशस्यतं नो वृषणावभिष्टौ ।
दस्रा ह यद्रेक्ण औचथ्यो वां प्र यत्सस्राथे अकवाभिरूती ॥१ ॥

हे सामर्थ्यवान् , शत्रुनाशक, सबके आश्रयरूप, दुष्टों के लिए रौद्ररूप, ज्ञानवान् , समृद्धिशाली अश्विनीकुमारो ! आप हमें अभीष्ट अनुदान प्रदान करें । उचथ्य के पुत्र दीर्घतमा के द्वारा धन सम्पदा प्राप्ति के लिए प्रार्थना किये जाने पर आप दोनों श्रेष्ठ संरक्षण सामर्थ्यों के साथ शीघ्रतापूर्वक पहुँचते हैं ॥१ ॥

१६५२. को वां दाशत्सुमतये चिदस्यै वसू यद्धेथे नमसा पदे गोः ।
जिगृतमस्मे रेवतीः पुरन्धीः कामप्रेणेव मनसा चरन्ता ॥२ ॥

सबको आश्रय देने वाले हे अश्विनीकुमारो ! इस पृथ्वी पर जो भी आप की वन्दना करते हैं, आप दोनों उन्हें अनुदान प्रदान करते हैं । आपकी श्रेष्ठ बुद्धि की तुष्टि के लिए कौन क्या भेंट दे सकता है ? हे सर्वत्र विचरणशील ! आप हमें धनों के साथ पोषक दुधारू गौएँ भी प्रदान करें ॥२ ॥

१६५३. युक्तो ह यद्वां तौग्र्याय पेरुर्वि मध्ये अर्णसो धायि पज्रः ।
उप वामवः शरणं गमेयं शूरो नाज्म पतयद्भिरेवैः ॥३ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! राजा तुग्र के पुत्र भुज्यु के संरक्षण के लिए आपने अपने गतिशील यान को सागर के बीच में ही अपनी सामर्थ्य से स्थिर किया । वीर पुरुष जैसे युद्ध में प्रविष्ट होते हैं, वैसे ही संरक्षणपूर्ण आश्रय के लिए हम आप दोनों के पास पहुँचें ॥३ ॥

१६५४. उपस्तुतिरौचथ्यमुरुष्येन्मा मामिमे पतत्रिणी वि दुग्धाम् ।
मा मामेधो दशतयश्चितो धाक् प्र यद्वां बद्धस्त्मनि खादति क्षाम् ॥४ ॥



उचथ्य के पुत्र दीर्घतमा कहते हैं कि हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों के निकट की गई प्रार्थना मेरी रक्षा करे । यह गतिशील दिन-रात्रि मुझे निचोड़ न लें । दशगुनी समिधाएँ डालकर प्रज्वलित की गई अग्नि मुझे भस्मीभूत न कर डाले । जिसने आपके इस श्रद्धालु उचथ्य को बाँध दिया था, वही अब यहाँ धरती पर असहाय स्थिति में पड़ा है ॥४ ॥

१६५५. न मा गरन्नद्यो मातृतमा दासा यदीं सुसमुब्धमवाधुः ।
शिरो यदस्य त्रैतनो वितक्षत्स्वयं दास उरो अंसावपि ग्ध ॥५ ॥

जब उचथ्य पुत्र दीर्घतमा को (मुझको) दस्युओं ने अच्छी प्रकार से जकड़कर और बाँधकर नदी में फेंक दिया (विसर्जित कर दिया), तब मातृरूपा उन नदियों ने संरक्षण प्रदान किया । जब मेरे सिर, छाती और कन्धे को काटने का प्रयत्न किया गया, तब आपकी कृपा एवं दिव्य संरक्षण से आपका सेवक (मैं) सुरक्षित रहा, दस्यु के ही अंग कट गये ॥५ ॥

१६५६. दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान्दशमे युगे । अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः ॥६ ॥

ममता के पुत्र दीर्घतमा ऋषि दशमयुग अर्थात् एक सौ ग्यारहवें वर्ष में शारीरिक दृष्टि से वृद्धावस्था को प्राप्त हुए । उन्होंने संयमशील उत्तम कर्मों से धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूपी पुरुषार्थ को प्राप्त किया । वे ब्रह्म ज्ञान सम्पन्न, सबके संचालन करने वाले सारथी के समान बने ॥६ ॥

[सूक्त - १५९]

[**ऋषि**- दीर्घतमा औचथ्य । **देवता**- द्यावा-पृथिवी । **छन्द**- जगती ।]

१६५७. प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी ऋतावृधा मही स्तुषे विदथेषु प्रचेतसा ।
देवेभिर्ये देवपुत्रे सुदंससेत्था धिया वार्याणि प्रभूषतः ॥१ ॥

देव पुत्रियाँ द्यावा, पृथिवी और अन्य देव शक्तियाँ मिलकर अपने श्रेष्ठ कर्मों और विचार प्रेरणाओं से सबको श्रेष्ठतम ऐश्वर्यों से विभूषित करती हैं । यज्ञीय भावनाओं के पोषक , यज्ञीय विचारों के प्रेरक , पृथिवी और द्युलोक की हम स्तुति-मंत्रों से प्रार्थना करते हैं ॥१ ॥

१६५८. उत मन्ये पितुरद्रुहो मनो मातुर्महि स्वतवस्तद्धवीमभिः ।
सुरेतसा पितरा भूम चक्रतुरुरु प्रजाया अमृतं वरीमभिः ॥२ ॥

हम विद्वेषरहित पृथिवी और आकाश के रूप में माता-पिता के सबल एवं महान् मन को स्तुति द्वारा प्रसन्न करते हैं । पराक्रमशील (प्रकृति रूपी) माता और (स्रष्टा रूपी) पिता ने अपनी (सृष्टि उत्पादन की) श्रेष्ठ सामर्थ्य से प्रजाओं की रक्षा करते हुए उन्हें प्रगतिशील बनाया । ये उनके सर्वोत्तम कार्य प्रशंसनीय हैं ॥२ ॥

[प्रकृति का भी 'मन' है । वह मनुष्य की अपेक्षा अधिक सबल और महान् है । उसे प्रसन्न करके प्रकृति माता का अनुकूलन किया जा सकता है ।]

१६५९. ते सूनवः स्वपसः सुदंससो मही जज्ञुर्मातरा पूर्वचित्तये ।
स्थातुश्च सत्यं जगतश्च धर्मणि पुत्रस्य पाथः पदमद्वयाविनः ॥३ ॥

श्रेष्ठ, कर्मशील तथा गुणसम्पन्न सन्तानें, पृथिवी-द्यावारूप माता-पिता की प्रारम्भिक विशेषताओं से परिचित हैं । द्युलोक एवं पृथिवी लोक दोनों, स्थावर और जङ्गम सभी विद्रोहरहित सन्तानों का भली प्रकार से संरक्षण करते हुए अपने सत्यरूप श्रेष्ठ पद को सुशोभित करते हैं ॥३ ॥

[पृथिवी एवं द्युलोक द्वारा संकल्प पूर्वक जड़-जंगम सभी का विकास एवं पोषण पितृ भाव से किया जाता है । यही उनके महान् पद की गरिमा है ।]



१६६०. ते मायिनो ममिरे सुप्रचेतसो जामी सयोनी मिथुना समोकसा ।
नव्यंनव्यं तन्तुमा तन्वते दिवि समुद्रे अन्तः कवयः सुदीतयः ॥४ ॥

द्युलोक रूप आकाश गंगा के बीच विद्यमान सूर्य की क्रान्तदर्शी ज्ञानयुक्त किरणें, नित्य नये-नये ताने-बाने बुनती हैं । ये किरणें सहोदर बहिनों के समान एक स्थान (सूर्य) से उत्पन्न होती हैं । परस्पर सहयोग भावना से एक ही घर में निवास करने वाली ये किरणें द्यावा-पृथिवी को नाप लेती हैं ॥४ ॥

१६६१. तद्राधो अद्य सवितुर्वरेण्यं वयं देवस्य प्रसवे मनामहे ।
अस्मभ्यं द्यावापृथिवी सुचेतुना रयिं धत्तं वसुमन्तं शतग्विनम् ॥५ ॥

हम आज श्रेष्ठ कर्मों के निर्वाह के लिए सम्पूर्ण विश्व के उत्पादक (प्रेरक) सूर्यदेव से श्रेष्ठ ऐश्वर्यों की कामना करते हैं । द्यावा-पृथिवी अपनी उत्तम प्रेरणाओं से हमारे लिए श्रेष्ठ आवास तथा पशुधन प्रदान करें ॥५ ॥

[सूक्त - १६०]

[ऋषि- दीर्घतमा औचथ्य । देवता- द्यावा- पृथिवी । छन्द- जगती ।]

१६६२. ते हि द्यावापृथिवी विश्वशम्भुव ऋतावरी रजसो धारयत्कवी ।
सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिः ॥१ ॥

द्यावा-पृथिवी विश्व के सुखों के आधार हैं और यज्ञ युक्त हैं । ये तेजस्वी, मेधावी जनों के संरक्षक, सर्व-उत्पादक एवं ज्ञान से सम्पन्न हैं । इन दोनों के मध्य में सम्पूर्ण प्राणियों में पवित्र सूर्यदेव अपनी धारण क्षमताओं से युक्त होकर गमन करते हैं ॥१ ॥

१६६३. उरुव्यचसा महिनी असश्चता पिता माता च भुवनानि रक्षतः ।
सुधृष्टमे वपुष्ये३ न रोदसी पिता यत्सीमभि रूपैरवासयत् ॥२ ॥

क्योंकि पिता (द्युलोक) अपने दिव्य प्रकाश से मनुष्यों को आश्रय प्रदान करते हैं, अतएव ये अति सामर्थ्यवान् द्यावा-पृथिवी सबको पुष्टि प्रदान करते हैं । अतिव्यापक, महिमामय और भिन्न-भिन्न प्रकृति वाले ये माता-पिता सभी लोकों के संरक्षक हैं ॥२ ॥

[भिन्न प्रकृति होते हुए भी देवों (द्यावा-पृथिवी) की तरह एक ही कार्य, परस्पर पूरक बनकर बड़ी कुशलता से किया जा सकता है ।]

१६६४. स वह्निः पुत्रः पित्रोः पवित्रवान्पुनाति धीरो भुवनानि मायया ।
धेनुं च पृश्निं वृषभं सुरेतसं विश्वाहा शुक्रं पयो अस्य दुक्षत ॥३ ॥

माता-पिता के प्रति अपने उत्तरदायित्वों को वहन करने वाले पुत्ररूप ज्ञानवान् सूर्यदेव अपनी सामर्थ्य से सम्पूर्ण लोकों में पवित्रता का संचार करते हैं । विविध रूपों वाली पृथिवी (धेनु) और बलशाली द्युलोक (बैल) को पावन बनाते हुए वे आकाश से तेजस् बरसाकर सभी प्राणियों को परिपुष्ट करते हैं ॥३ ॥

१६६५. अयं देवानामपसामपस्तमो यो जजान रोदसी विश्वशम्भुवा ।
वि यो ममे रजसी सुक्रतूययाजरेभिः स्कम्भनेभिः समानृचे ॥४ ॥

जिस देव (परमात्मा) ने संसार के लिए आनन्दप्रद द्युलोक एवं पृथ्वी का प्रादुर्भाव किया, जिसने श्रेष्ठ कर्मों की प्रेरणा से दोनों द्यावा-पृथिवी को संव्याप्त किया, जिन्होंने अजर-सुदृढ़ आधारों से दोनों लोकों को स्थिरता प्रदान की, ऐसे श्रेष्ठ, कर्मशील देवों के बीच में अग्रगण्य वे देव (परमात्मा) स्तुत्य हैं ॥४ ॥



१६६६. ते नो गृणाने महिनी महि श्रवः क्षत्रं द्यावापृथिवी धासथो बृहत्।
येनाभि कृष्टीस्ततनाम विश्वहा पनाय्यमोजो अस्मे समिन्वतम् ॥५ ॥

ये द्यावा-पृथिवी प्रसन्न होकर हमारे लिए प्रचुर अन्न और सामर्थ्य प्रदान करें, ताकि हम प्रजाजनों के विस्तार (प्रगति) में समर्थ हों। वे दोनों नित्य हमारे लिए उत्तम प्रेरणाओं से युक्त शक्ति प्रदान करें ॥५ ॥

[सूक्त - १६१]

[ऋषि- दीर्घतमा औचथ्य। देवता- ऋभुगण। छन्द- जगती; १४ त्रिष्टुप्।]

१६६७. किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठो न आजगन्किमीयते दूत्यं१ कद्यदूचिम।
न निन्दिम चमसं यो महाकुलोऽग्ने भ्रातर्द्रुण इद्भूतिमूदिम ॥१ ॥

(सुधन्वा के पुत्रों के पास जब अग्निदेव पहुँचते हैं, तो वे कहते हैं-) हमारे पास ये कौन आये हैं? ये हमसे श्रेष्ठ हैं या कनिष्ठ? (पहचान लेने पर कहते हैं) हे भ्राता अग्निदेव! हम इस श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न हव्यान्न को दूषित न करें; आप कृपया इसके उपयोग का उपाय बतलायें ॥१ ॥

१६६८. एकं चमसं चतुरः कृणोतन तद्वो देवा अब्रुवन्तद्व आगमम्।
सौधन्वना यद्येवा करिष्यथ साकं देवैर्यज्ञियासो भविष्यथ ॥२ ॥

(अग्निदेव ने कहा:-) हे सुधन्वा पुत्रो! आप इस अन्न को चार भागों में विभक्त करें, ऐसा देवशक्तियों का आपके लिए निर्देश है। इसी निवेदन के लिए हम आपके समीप आये हैं। यदि आप इस प्रकार करेंगे तो आप भी देवताओं के परमपद के अधिकारी बनेंगे ॥२ ॥

१६६९. अग्निं दूतं प्रति यदब्रवीतनाश्वः कर्त्वो रथ उतेह कर्त्वः।
धेनुः कर्त्वा युवशा कर्त्वा द्वा तानि भ्रातरनु वः कृत्व्येमसि ॥३ ॥

हे ऋभुदेवो! आपने हव्यवाहक अग्निदेव से जो निवेदन किया है कि अश्वों, गौओं एवं रथों को उत्तम बनायें। दोनों वृद्ध (माता-पिता) को तरुण बनायें। इन सभी कर्मों का निर्वाह करने वाले हे बन्धु अग्निदेव! हम आपका अनुगमन करते हैं ॥३ ॥

१६७०. चकृवांस ऋभवस्तदपृच्छत क्वेदभूद्यः स्य दूतो न आजगन्।
यदावाख्यच्चमसाञ्चतुरः कृतानादित्त्वष्टा ग्नास्वन्तर्न्यानजे ॥४ ॥

हे ऋभुदेवो! कार्य करने के बाद आपने पूछा कि जो दूतरूप में हमारे समीप आये हैं, वे कहाँ चले गये? जब त्वष्टा ने चार भागों में विभक्त अन्न उन अग्निदेव को अर्पित किया, तभी वे दूत स्त्रियों (मंत्र प्रकट करने वाली वाणियों) में समाहित हो गये ॥४ ॥

१६७१. हनामैनाँ इति त्वष्टा यदब्रवीच्चमसं ये देवपानमनिन्दिषुः।
अन्या नामानि कृण्वते सुते सचाँ अन्यैरेनान्कन्या३ नामभिः स्परत् ॥५ ॥

त्वष्टादेव ने निर्देशित किया कि जो देवताओं के लिए उपयुक्त हविष्यान्नों की निन्दा करते हैं, उनका संहार करें। परस्पर सहयोग से अभिषुत सोम को विभिन्न नामों से सम्बोधित किया जाता है, तब (त्वष्टा की) कन्या (वाणी) भी उन्हीं नामों से संबोधित करती हैं ॥५ ॥

१६७२. इन्द्रो हरी युयुजे अश्विना रथं बृहस्पतिर्विश्वरूपामुपाजत।
ऋभुर्विभ्वा वाजो देवाँ अगच्छत स्वपसो यज्ञियं भागमैतन ॥६ ॥



इन्द्रदेव अपने अश्वों को जोतकर, अश्विनीकुमार अपने रथ को तैयार करके यज्ञ में जाने के लिए प्रस्तुत हैं। बृहस्पतिदेव ने भी विभिन्न स्तोत्ररूप वाणियों को प्रारम्भ कर दिया है, अतएव ऋभु, विभ्वा और वाज भी देवताओं के समीप गये और यज्ञ भाग प्राप्त किया ॥६ ॥

१६७३. निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिर्या जरन्ता युवशा ताकृणोतन।

सौधन्वना अश्वादश्वमतक्षत युक्त्वा रथमुप देवाँ अयातन ॥७ ॥

हे सुधन्वा पुत्रो ! आपके श्रेष्ठ प्रयासों से चर्मरहित गौ को पुनर्जीवन मिला। अतिवृद्ध माता-पिता को आपने तरुण बनाया। एक घोड़े से दूसरे घोड़े को उत्पन्न करके उनको अपने रथ में जोतकर देवों के समीप उपस्थित हुए ॥७ ॥

१६७४. इदमुदकं पिबतेत्यब्रवीतनेदं वा घा पिबता मुञ्जनेजनम्।

सौधन्वना यदि तन्नेव हर्यथ तृतीये घा सवने मादयाध्वै ॥८ ॥

(देवों ने कहा-) हे सुधन्वा के पुत्रो ! आप जल पान करें, अथवा मूञ्ज से अभिषुत सोमरस का पान करें। यदि आपकी अभी इसे पीने की इच्छा न हो तो तीसरे पहर तो इसे अवश्य ही पीकर आनन्दित हों ॥८ ॥

१६७५. आपो भूयिष्ठा इत्येको अब्रवीदग्निर्भूयिष्ठ इत्यन्यो अब्रवीत्।

वधर्यन्तीं बहुभ्यः प्रैको अब्रवीदृता वदन्तश्चमसाँ अपिंशत ॥९ ॥

किसी ने जल की, दूसरे ने अग्नि की तथा किसी तीसरे ने भूमि की सर्व श्रेष्ठता को सिद्ध किया, इस प्रकार से सभी (ऋभुदेवों) ने तीनों तत्त्वों की उपयोगिता को सत्यापित (सत्य सिद्ध) करते हुए ऐश्वर्यों का विभाजन किया ॥९ ॥

विराट् प्रकृति यज्ञ के ऋत्विज् ब्रह्मा के मानस पुत्रों-ऋभुओं के संदर्भ में यह कथन है--

१६७६. श्रोणामेक उदकं गामवाजति मांसमेकः पिंशति सूनयाभृतम्।

आ निम्रुचः शकृदेको अपाभरत्किं स्वित्पुत्रेभ्यः पितरा उपावतुः ॥१० ॥

एक पुत्र ने गौ (किरणों-इन्द्रियों) को जल (रसों) की ओर प्रेरित किया। दूसरे ने उन्हें मांसादि (अंग अवयव, फलों के गूदे आदि) के संवर्धन में नियोजित किया। तीसरे ने सूर्यास्त (अंतिम चरण) के समय उनके अवशेषों (विकारों) को हटा दिया - ऐसे पुत्रों वाले पिता और क्या अपेक्षा करें ? ॥१० ॥

१६७७. उद्वत्स्वस्मा अकृणोतना तृणं निवत्स्वपः स्वपस्यया नरः।

अगोह्यस्य यदसस्तना गृहे तदद्येदमृभवो नानु गच्छथ ॥११ ॥

(सूर्य किरणों में संव्याप्त) हे ऋभु देवो ! आपने अपने श्रेष्ठ पुरुषार्थ से ऊँचे स्थानों में उपयोगी तृण आदि उगाये तथा निचले भागों में जल को संगृहीत किया। आप अब तक सूर्य मण्डल में विश्रामरत रहे, अब इस (उत्पादक) प्रक्रिया का अनुगमन क्यों नहीं करते ? ॥११ ॥

[निरुक्त ११.१६ के अनुसार सूर्य रश्मियों को ऋभु कहा जाता है।]

१६७८. सम्मील्य यद्भुवना पर्यसर्पत क्व स्वित्तात्या पितरा व आसतुः।

अशपत यः करस्नं व आददे यः प्राब्रवीत्प्रो तस्मा अब्रवीतन ॥१२ ॥

सूर्य किरणों में संव्याप्त हे ऋभुओ ! जब आप लोकों को आच्छादित करके चारों ओर संचरित होते हैं, तब आपके माता- पिता दोनों कहाँ छिप जाते हैं ? जो लोग आपके हाथों (किरणों) को रोकते हैं, उपयोग नहीं करते, वे शापित होते हैं। जो प्रेरक वचन बोलते हैं, उन्हें आप प्रगति प्रदान करते हैं ॥१२ ॥



[यहाँ यह तथ्य प्रकट किया गया है कि किरणों के उत्पादक सूर्यादि जब प्रत्यक्ष दिखायी नहीं देते, तब भी किरणें भुवनों को घेरे रहती हैं। उनका उपयोग न करने वाले हानि और उपयोग करने वाले लाभ उठाते हैं।]

१६७९. सुषुप्वांस ऋभवस्तदपृच्छतागोह्य क इदं नो अबूबुधत्।
श्वानं बस्तो बोधयितारमब्रवीत्संवत्सर इदमद्या व्यख्यत ॥१३॥

हे सूर्य किरणो (ऋभुओ) ! (जाग्रत् होने पर) आपने सूर्य से पूछा कि हमें किसने सोते से जगाया ? तब सूर्य ने वायु को जाग्रत् करने वाला बतलाया। आपने संवत्सर बदल जाने पर विश्व को प्रकाशमान किया है ॥१३॥

[सूर्य के हर कोण से किरणें निकलती हैं। अपनी कक्षा में घूमती हुई पृथ्वी प्रत्येक क्षेत्र में पूरा एक वर्ष बीतने पर पहुँचती है। उस क्षेत्र की किरणें पृथ्वी को पूरे एक वर्ष बाद ही प्रकाशित करती हैं।]

१६८०. दिवा यान्ति मरुतो भूम्याग्निरयं वातो अन्तरिक्षेण याति।
अद्भिर्याति वरुणः समुद्रैर्युष्माँ इच्छन्तः शवसो नपातः ॥१४॥

हे शक्तिशाली ऋभुओ (किरणो) ! आपको पाने की कामना करते हुए मरुद्गण देवलोक से चलते हैं। भूमि पर अग्निदेव और वायुदेव आकाश में चलते हैं तथा वरुणदेव जल प्रवाहों के रूप में आपसे मिलते हैं ॥१४॥

[सूक्त - १६२]

[ऋषि- दीर्घतमा औचथ्य। देवता- अश्वस्तुति। छन्द- त्रिष्टुप्, ३,६ जगती।]

१६८१. मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतः परि ख्यन्।
यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तेः प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि ॥१॥

हम याजकगण यज्ञशाला में दिव्यगुण सम्पन्न, गतिमान्, पराक्रमी, वाजी (बलशाली) देवताओं के ही ऐश्वर्य का गान करते हैं। अतः मित्र, वरुण, अर्यमा, आयु, ऋभुक्ष, मरुद्गण, इन्द्र आदि देवता हमारी उपेक्षा करते हुए हमसे विमुख न हों (वरन् अनुकूल रहें) ॥१॥

[यहाँ वाजी का अर्थ घोड़ा न करके उसे बलशाली देवों का पर्याय माना गया है। आचार्य उवट एवं महीधर ने भी अपने यजुर्वेद भाष्य में अश्व के नाम से देवों की ही स्तुति का भाव स्पष्ट किया है।]

पिछलेमंत्रमें देवशक्तियों के लिए अश्व संज्ञक संबोधन दिया गया है। नीचे की तीन ऋचाओं में भी जहाँ समर्थ देवशक्तियों के लिए अश्व संज्ञक सम्बोधन है, वहीं निरीह जीव आत्माओं को 'अज' (बकरा) कहा गया है। देवों की पुष्टि के लिए किये गये यज्ञ का लाभ प्रकृति में संव्याप्त समर्थ शक्तियों के साथ-साथ सामान्य जीवों से सम्बद्ध चेतना को भी प्राप्त होता है, यह भाव यहाँ अभीष्ट है--

१६८२. यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति।
सुप्राङजो मेम्यद्विश्वरूप इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पाथः ॥२॥

जब सुसंस्कारित,\ऐश्वर्ययुक्त, सबको आवृत करने वाले (देवों) के मुख के पास (देवों का मुख यज्ञाग्नि को कहा जाता है।) हविष्यान्न (पुरोडाश आदि) लाया जाता है, तो भली प्रकार आगे लाया हुआ विश्वरूप अज (अनेक रूपों में जन्म लेने वाली जीव चेतना) भी मैं- मैं करता (मुझे भी चाहिए- इस भाव से) आता है, (तब वह भी) इन्द्र और पूषादेव आदि के प्रिय आहार (हव्य) को प्राप्त करता है ॥२॥

१६८३. एषछागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः।
अभिप्रियं यत्पुरोळाशमर्वता त्वष्टेदेनं सौश्रवसाय जिन्वति ॥३॥

यह अज जब बलशाली अश्व के आगे लाया जाता है, तो श्रेष्ठ पुरुष (याजक या प्रजापति) इस चंचल (अश्व) के साथ अज को भी, सबको प्रिय लगने वाले पुरोडाश आदि (हव्य) का भाग देकर उत्तम यश प्राप्त करते हैं ॥३॥



१६८४. यद्धविष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति ।
अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः ॥४ ॥

जब मनुष्य (याजक गण) हविष्य को (यज्ञ के माध्यम से) तीनों देवयान मार्गों (पृथ्वी, अंतरिक्ष एवं द्युलोक) में अश्व की तरह संचारित करते हैं, तब यहाँ (पृथ्वी पर) यह अज पोषण के प्रथम भाग को पाकर देवताओं के हित के लिए यज्ञ को विज्ञापित करता चलता है ॥४ ॥

१६८५. होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उत शंस्ता सुविप्रः ।
तेन यज्ञेन स्वरङ्कृतेन स्विष्टेन वक्षणा आ पृणध्वम् ॥५ ॥

होता, अध्वर्यु, प्रतिप्रस्थाता, आग्नीध्र, ग्रावस्तोता, प्रशास्ता, प्रज्ञावान् ब्रह्मा आदि हे ऋत्विजो ! आप सब प्रकार सज्जित (अङ्ग- उपाङ्गों सहित सम्पन्न) इस यज्ञ द्वारा इष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए (प्रकृतिगत) प्रवाहों को समृद्ध बनाएँ ॥५ ॥

१६८६. यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति ।
ये चार्वते पचनं सम्भरन्त्युतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥६ ॥

हे ऋत्विजो ! यज्ञ की व्यवस्था में सहयोग देने वाले, लकड़ी काटकर यूप का निर्माण करने वाले, यूप को यज्ञशाला तक पहुँचाने वाले, चषाल (लोहे या लकड़ी की फिरकी) बनाने वाले, अश्व बाँधने के खूँटे को बनाने वाले- इन सबका किया गया प्रयास हमारे लिए हितकारी हो ॥६ ॥

१६८७. उप प्रागात्सुमन्मेऽधायि मन्म देवानामाशा उप वीतपृष्ठः ।
अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम् ॥७ ॥

अश्वमेध यज्ञ की फलश्रुति के रूप में श्रेष्ठ मानवीय फल हमें स्वयं ही प्राप्त हो । देवताओं के मनोरथ को पूर्ण करने में समर्थ इस अश्व (शक्ति) की कामना सभी करते हैं । इस अश्व को देवत्व की पुष्टि के लिए मित्र के रूप में मानते हैं । सभी बुद्धिमान् ऋषि इसका अनुमोदन करें ॥७ ॥

ऋचा क्र० ८ से २२ तक की ऋचाओं का अर्थ कई आचार्यों ने अश्वमेध में की जानेवाली अश्व बलि (हिंसा) के क्रम में किया है । इस ग्रंथ की भूमिका में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि वेदों में 'अश्व' शब्द का प्रयोग घोड़े के सन्दर्भ में नहीं, प्रत्युत प्रकृति में संव्याप्त समर्थ शक्ति धाराओं (यज्ञीय ऊर्जा- सूर्य की किरणों- देवशक्तियों) आदि के निमित्त किया गया है । इसलिए इन मंत्रों का अर्थ हिंसापरक सन्दर्भ में न करके उक्त विराट् यज्ञीय सन्दर्भ में ही किया जाना उचित है—

१६८८. य द्वाजिनो दाम सन्दानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य ।
यद्वा घास्य प्रभृतमास्ये३ तृणं सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥८ ॥

इस वाजिन् (बलशाली) को नियंत्रित रखने के लिए गर्दन का बन्धन, इस (अर्वन्) चंचल के लिए पैरों का बन्धन, कमर एवं सिर के बन्धन तथा मुख के घास आदि तृण सभी देवों को अर्पित हों । (यज्ञीय ऊर्जा अथवा राष्ट्र की शक्तियों को सुनियंत्रित एवं समृद्ध रखने वाले सभी साधन देवों के ही नियंत्रण में रहें ।) ॥८ ॥

१६८९. यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति ।
यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥९ ॥

अश्व (संचरित होने वाले हव्य) का जो विकृत (होमा न जा सकने वाला) भाग मक्खियों द्वारा खाया जाता है, जो उपकरणों में लगा रहता है, जो याजक के हाथों में तथा जो नाखूनों में लगा रहता है, वह सब भी देवत्व के प्रति ही समर्पित हो ॥९ ॥

१६९०. यदूवध्यमुदरस्यापवाति य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति।

सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तूत मेधं शृतपाकं पचन्तु ॥१० ॥

उदर में (यज्ञकुण्ड के गर्भ में) जो उच्छेदन योग्य गन्ध अधपचे (हविष्यान्न) से निकल रही है, उसका शमन भलीप्रकार किये गये मेध (यज्ञीय) उपचार द्वारा हो और उसका पाचन भी देवों के अनुकूल हो ॥१० ॥

यज्ञ कुण्ड के मध्य में हविष्यान्न का बड़ा पिण्ड बन जाता था। वह अग्नि में ठीक से पच जाय, इसके लिए उसे शूल से छेद दिया जाता था। उस क्रम में रही त्रुटियों का निवारण करने का निर्देश इस मंत्र में है—

१६९१. यत्ते गात्रादग्निना पच्यमानादभि शूलं निहतस्यावधावति।

मा तद्भूम्यामा श्रिषन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु ॥११ ॥

आपके जो अग्नि द्वारा पचाये जाते हुए अंग, शूल के आघात से इधर-उधर उछल कर गिर गये हैं, वे भूमि पर ही न पड़े रहें, तृणों में न मिल जायें। वे भी यज्ञ भाग चाहने वाले देवों का आहार बनें ॥११ ॥

१६९२. ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति।

ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥१२ ॥

जो इस वाजिन् (अन्न युक्त पुरोडाश) को पकता हुआ देखते हैं और जो उसकी सुगंध को आकर्षक कहते हैं; जो इस भोग्य अन्न से बने आहार की याचना करते हैं, उनका पुरुषार्थ भी हमारे लिए फलित हो ॥१२ ॥

१६९३. यन्नीक्षणं मांस्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि।

ऊष्मण्यापिधाना चरूणामङ्काः सूनाः परि भूषन्त्यश्वम् ॥१३ ॥

जो उखा पात्र में पकाये जाते (अन्न एवं फलों के गूदे से बने) पुरोडाश का निरीक्षण करते हैं, जो पात्रों को जल से पवित्र करने वाले हैं, (पकाने के क्रम में) ऊष्मा को रोकने वाले ढक्कन, चरु आदि को अंक (गोद) में रखने वाले तथा (पुरोडाश के) टुकड़े काटने वाले जो उपकरण हैं, वे सब इस अश्वमेध को विभूषित करने वाले (यज्ञ की गरिमा के अनुरूप) हों ॥१३ ॥

१६९४. निक्रमणं निषदनं विवर्तनं यच्च पड्बीशमर्वतः।

यच्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥१४ ॥

(पकाये जाते हुए पुरोडाश के प्रति कहते हैं-) धुएँ की गंधवाली अग्नि तुम्हें पीड़ित न करे, (अग्नि के प्रभाव से) चमकता हुआ अग्नि पात्र (उखा) तुम्हें उद्विग्न न करे। ऐसे (धुएँ आदि से रहित, भली प्रकार सम्पन्न) अश्वमेध को देवगण स्वीकार करते हैं ॥१४ ॥

१६९५. मा त्वाग्निर्ध्वनयीद्धूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभि विक्त जघ्रिः।

इष्टं वीतमभिगूर्तं वषट्कृतं तं देवासः प्रति गृभ्णन्त्यश्वम् ॥१५ ॥

(हे यज्ञ रूप अश्व !) आप का निकलना, आन्दोलित होना, पलटना, पीना, खाना आदि सारी क्रियाएँ देवताओं में (उनके ही बीच, उन्हीं के संरक्षण में) हों ॥१५ ॥

१६९६. यदश्वाय वास उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै।

सन्दानमर्वन्तं पड्बीशं प्रिया देवेष्वा यामयन्ति ॥१६ ॥

यज्ञ को समर्पित (पूजन योग्य) अश्व को सजाने वाला ऊपर का वस्त्र, आभूषण, सिर तथा पैर बाँधने की मेखलाएँ आदि सभी देवताओं को प्रसन्नता प्रदान करने वाले हों ॥१६ ॥



१६९७. यत्ते सादे महसा शूकृतस्य पार्ष्ण्या वा कशया वा तुतोद।

स्रुचेव ता हविषो अध्वरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मणा सूदयामि ॥१७॥

(हे यज्ञाग्नि रूप अश्व !) अतिशीघ्रता (जल्दबाजी) में तुम्हें सताने वालों, निचले भाग को (हव्य को जल्दी पचाने के लिए अग्नि के निचले भाग को कुरेद कर) पीड़ित करने वालों द्वारा की गयी सभी त्रुटियों को (हम पुरोहित) स्रुवा की आहुतियों (घृताहुतियों) से ठीक करते हैं ॥१७॥

१६९८. चतुस्त्रिंशद्वाजिनो देवबन्धोर्वङ्क्रीरश्वस्य स्वधितिः समेति।

अच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोत परुष्परुरनुघुष्या वि शस्त ॥१८॥

हे ऋत्विजो !धारण करने की सामर्थ्य से युक्त, गतिमान्, देवताओं के बन्धु इस अश्व (यज्ञ) के चौंतीस अंगों को अच्छी प्रकार प्राप्त करें (जानें) ।हर अंग को अपने प्रयासों द्वारा स्वस्थ बनाएँ और उसकी कमियों को दूर करें ॥१८॥

१६९९. एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तथ ऋतुः।

या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ताता पिण्डानां प्र जुहोम्यग्नौ ॥१९॥

(काल विभाजन के क्रम में) त्वष्टा (सूर्य) रूपी अश्व का विभाजन संवत्सर (वर्ष) करता है। उत्तरायण तथा दक्षिणायन नाम से दो विभाग उसके नियन्ता होते हैं। वह वसन्तादि दो-दो माह की ऋतुओं में विभक्त होता है। यज्ञ में शरीर के अलग-अलग अंगों की पुष्टि के निमित्त ऋतु संबंधी अनुकूल पदार्थों की आहुतियाँ देते हैं ॥१९॥

१७००. मा त्वा तपत्प्रिय आत्मापियन्तं मा स्वधितिस्तन्व१ आ तिष्ठिपत्ते।

मा ते गृध्नुरविशस्तातिहाय छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः ॥२०॥

हे अश्व (राष्ट्र अथवा यज्ञ) ! आपका परम प्रिय आत्म तत्त्व अर्थात् अपना गौरव कभी भी पीड़ादायक स्थिति में छोड़कर न जाये (राष्ट्र का गौरव अक्षुण्ण रहे)। शस्त्र (विखण्डित करने वाली शक्तियाँ) आपके अंग-अवयवों पर अपना अधिकार न जमा सकें (राष्ट्र कभी खण्डित न हो)। अकुशल व्यक्ति भी आपके दोषों के अतिरिक्त किसी उपयोगी अंग पर असि (तलवार) का प्रयोग न करे ॥२०॥

१७०१. न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ इदेषि पथिभिः सुगेभिः।

हरी ते युञ्जा पृषती अभूतामुपास्थाद्वाजी धुरि रासभस्य ॥२१॥

हे अश्व ! (यज्ञ से उत्पन्न ऊर्जा) न तो आपका नाश होता है और न आप किसी को नष्ट करते हैं, (वरन् आप) सुगम - सहज मार्ग से देवताओं तक पहुँचते हैं। शब्द करने वालों (मंत्रोच्चार करने वालों) के आधार पर वाजी (ऐश्वर्यवान्) और हरि (अंतरिक्षीय गतिशील प्रवाह) उपस्थित होकर, आपके साथ संयुक्त होकर पुष्ट होते हैं ॥२१॥

१७०२. सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुंसः पुत्राँ उत विश्वापुषं रयिम्।

अनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु क्षत्रं नो अश्वो वनतां हविष्मान् ॥२२॥

देवत्व को प्राप्त करने वाला यह बलशाली (यज्ञीय प्रयोग) हमें पुत्र-पौत्र, धन-धान्य तथा उत्तम अश्वों के रूप में अपार वैभव प्रदान करे। हम दीनता, पाप कृत्यों एवं अपराधों से सदैव दूर रहें। अश्व के समान शक्तिशाली हमारे नागरिक पराक्रमी हो ॥२२॥



[सूक्त - १६३]

[ऋषि- दीर्घतमा औचथ्य । देवता- ऋभुगण । छन्द- जगती, १४ त्रिष्टुप् ।]

१७०३. यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ॥१ ॥

हे अर्वन् (चंचल गतिवाले) ! बाज़ के पंखों तथा हिरन के पैरों की तरह गतिशील आप जब प्रथम समुद्र से उत्पन्न हुए, तब उत्पत्ति स्थान से प्रकट होकर आप शब्द करने लगे, तब आपकी महिमा स्तुत्य हुई ॥१ ॥

[यहाँ चंचल गतिवाले प्राण-पर्जन्य युक्त मेघों के लिए अर्वन् सम्बोधन अधिक सार्थक सिद्ध होता है ।]

१७०४. यमेन दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ।
गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात्सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥२ ॥

वसुओं ने सूर्यमण्डल से अश्व (तीव्र गति से संचार करने वाली ऊर्जा रश्मियों) को निकाला । तीनों लोकों में विचरने वाले वायु ने यम के द्वारा प्रदान किये गये अश्व को रथ में (कर्म में) नियोजित किया । सर्व प्रथम इस अश्व पर इन्द्रदेव चढ़े और गन्धर्व ने इसकी लगाम सँभाली (ऐसे अश्व की हम स्तुति करते हैं ।) ॥२ ॥

१७०५. असि यमो अस्यादित्यो अर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन ।
असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ॥३ ॥

हे अर्वन् ! अपने गुप्त व्रतों (जो प्रकट नहीं है, ऐसी विशेषताओं) के कारण आप यम हैं, आदित्य हैं, त्रित (तीनों लोकों अथवा तीनों आयामों) में संव्याप्त हैं । सोम (पोषक प्रवाह) के साथ आप एक रूप हैं । द्युलोक में स्थित आपके तीन बन्धन (ऋक्, यजु, साम रूप) कहे गये हैं ॥३ ॥

[विज्ञान का सर्वमान्य नियम है कि किसी पिण्ड को स्थिर करने के लिए तीन दिशाओं से संतुलित शक्ति चाहिए । इस सिद्धान्त को 'इक्विलिब्रियम ऑफ थ्री फोर्सेज' (तीन शक्तियों का संतुलन) एवं ट्रायेंगिल ऑफ फोर्सेज (शक्ति त्रिकोण) कहते हैं । संभवतः ऋषि अपनी सूक्ष्म दृष्टि से अन्तरिक्ष में भी वही सिद्धान्त क्रियान्वित होता देखते हैं ।]

१७०६. त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे ।
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन्यत्रा त आहुः परमं जनित्रम् ॥४ ॥

हे अर्वन् (चंचल प्रकृति वाले) ! आपको श्रेष्ठ उत्पादक सूर्य कहा गया है । दिव्य लोक में, जलों में तथा अन्तरिक्ष में आपके तीन-तीन बन्धन कहे गये हैं । आप वरुण रूप में हमारी प्रशंसा करते हैं ॥४ ॥

१७०७. इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शफानां सनितुर्निधाना ।
अत्रा ते भद्रा रशना अपश्यमृतस्य या अभिरक्षन्ति गोपाः ॥५ ॥

हे वाजिन् (बलशाली मेघ) ! आपके मार्जन (सिंचन) करने वाले साधनों को हम देखते हैं । आपके खुरों (धाराओं के आघात) से खुदे हुए यह स्थान देखते हैं । यहाँ आपके कल्याणकारी रज्जु (नियंत्रक सूत्र) हैं, जो रक्षा करने वाले हैं, जो कि इस ऋत (सनातन सत्य-यज्ञ) की रक्षा करते हैं ॥५ ॥

१७०८. आत्मानं ते मनसारादजानामवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम् ।
शिरो अपश्यं पथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि ॥६ ॥

हे अश्व (तीव्र गति से संचार करने वाले वायुभूत हव्य) ! नीचे के स्थान से आकाश मार्ग द्वारा सूर्य की तरफ जाते हुए आपकी आत्मा को हम विचारपूर्वक जानते हैं । सरलतापूर्वक जाने योग्य, धूलि रहित मार्गों से जाते हुए आपके नीचे की ओर आने वाले सिरों (श्रेष्ठ भागों) को भी हम देखते हैं ॥६ ॥



१७०९. अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिष आ पदे गोः ।
यदा ते मर्तो अनु भोगमानळादिद्ग्रसिष्ठ ओषधीरजीगः ॥७ ॥

हे अश्व (तीव्र गति से संचार करने वाले वायुभूत हव्य) ! आपके यज्ञ की कामना वाले श्रेष्ठ स्वरूप को हम सूर्य मण्डल में विद्यमान देखते हैं । यजमान ने जिस समय उत्तम हवियों को आपके निमित्त समर्पित किया, उसके बाद ही आपने हव्य रूप ओषधियों को ग्रहण किया ॥७ ॥

१७१०. अनु त्वा रथो अनु मर्यो अर्वन्ननु गावोऽनु भगः कनीनाम् ।
अनु व्रातासस्तव सख्यमीयुरनु देवा ममिरे वीर्यं ते ॥८ ॥

हे अर्वन् (चंचल प्रकृति वाले यज्ञाग्नि) ! रथ (मनोरथ) आपके अनुगामी हैं । आपके अनुगामी मनुष्य, कन्याओं का सौभाग्य तथा गौएँ हैं । मनुष्य समुदाय ने आपकी मित्रता को प्राप्त किया तथा देवगणों ने आपके शौर्य को वर्णित किया है ॥८ ॥

१७११. हिरण्यशृङ्गोऽयो अस्य पादा मनोजवा अवर इन्द्र आसीत् ।
देवा इदस्य हविरद्यमायन्यो अर्वन्तं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ॥९ ॥

सबसे पहले स्वर्ण मुकुट धारण करके अश्व पर आरूढ़ होने वाले इन्द्रदेव थे । इस अश्व के पैर लोहे के समान दृढ़ और मन के सदृश वेगवान् हैं । देवताओं ने ही इसके हवि रूप भोजन को ग्रहण किया ॥९ ॥

१७१२. ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः सं शूरणासो दिव्यासो अत्याः ।
हंसाइव श्रेणिशो यतन्ते यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वाः ॥१० ॥

जब पुष्ट जंघाओं और वक्ष वाले, मध्य भाग (कटिभाग) में पतले, बलशाली, सूर्य के रथ को खींचने वाले और लगातार चलने वाले अश्व (किरणें) पंक्तिबद्ध होकर हंसों के समान चलते हैं, तब वे स्वर्ग मार्ग में दिव्यता को प्राप्त होते हैं ॥१० ॥

१७१३. तव शरीरं पतयिष्ण्वर्वन्तव चित्तं वातइव ध्रजीमान् ।
तव शृङ्गाणि विष्ठिता पुरुत्रारण्येषु जर्भुराणा चरन्ति ॥११ ॥

हे अर्वन् (चंचल प्रकृति वाले अग्निदेव) ! आपका शरीर ऊर्ध्वगमन करने वाला और चित्त वायु के समान वेगवाला है । आपकी विशेष प्रकार से स्थित दीप्तियाँ वनों में दावानल के रूप में व्याप्त हैं ॥११ ॥

१७१४. उप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा दीध्यानः ।
अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात्कवयो यन्ति रेभाः ॥१२ ॥

यशस्वी, मन के समान तीव्र गति से चलायमान, तेजस्वी अश्व (सूक्ष्मीकृत हव्य) ऊपर की ओर देवमार्ग को जाता है। अज (अर्थात् कृष्ण वर्ण धूम्र) आगे चलता है। (सूक्ष्मीकृत हव्य का) नाभि (नाभिक-न्यूक्लियस-मुख्य भाग) उसका अनुगमन करता है। पीछे - पीछे पाठ करते हुए स्तोता चलते हैं (मंत्रों का पाठ होता है ।) ॥१२ ॥

१७१५. उप प्रागात्परमं यत्सधस्थमर्वाँ अच्छा पितरं मातरं च ।
अद्या देवाञ्जुष्टतमो हि गम्या अथा शास्ते दाशुषे वार्याणि ॥१३ ॥

शक्तिशाली अर्वन् (चंचल प्रकृति वाले सूक्ष्मीकृत हव्य) ! सर्वश्रेष्ठ उच्च स्थान को प्राप्त करके पालक और सम्माननीय माता-पिता (द्यावा-पृथिवी) से मिलते हैं । हे याजक ! आप भी सद्‌गुणों से सुशोभित होते हुए देवत्व को प्राप्त करें । देवताओं से अपार वैभव उपलब्ध करें ॥१३ ॥

[सूक्त - १६४]

[ऋषि- दीर्घतमा औचथ्य । देवता -१-४१ विश्वदेवा ४२ प्रथमार्द्ध वाक्, द्वितीयार्द्ध-आप, ४३ प्रथमार्द्धशकधूम, द्वितीयार्द्ध सोम; ४४ अग्नि, सूर्य, और वायु;४५ वाक् ;४६-४७ सूर्य; ४८ संवत्सरकालचक्र वर्णन;४९ सरस्वती; ५० साध्य; ५१ सूर्य; अथवा पर्जन्य और अग्नि, ५२ सरस्वान् अथवा सूर्य । छन्द- त्रिष्टुप्, १२,१५, २३, २९, ३६, ४१ जगती; ४२ प्रस्तार पंक्ति; ५१ अनुष्टुप् ।]

१७१६. अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः ।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम् ॥१ ॥

इन सुन्दर एवं जगपालक होता (सूर्यदेव) को हमने सात पुत्रों (सप्तवर्णी किरणों) सहित देखा है । इन (सूर्यदेव) के मध्यम (मध्य-अन्तरिक्ष में रहने वाला) भाई सर्वव्यापी वायुदेव हैं । उनके तीसरे भाई तेजस्वी पीठवाले (अग्निदेव) हैं ॥१ ॥

१७१७. सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ॥२ ॥

एक चक्र (सविता के पोषण चक्र) वाले रथ से ये सातों जुड़े हैं । सात नामों (रंगों) वाला एक (किरण रूपी) अश्व इस चक्र को चलाता है । तीन (द्युलोक, अन्तरिक्ष एवं पृथ्वी) नाभियों (केन्द्रक) अथवा धुरियों वाला यह कालचक्र सतत गतिशील अविनाशी, और शिथिलता रहित है । इसी चक्र के अन्दर समस्त लोक विद्यमान हैं ॥२ ॥

१७१८. इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः ।
सप्त स्वसारो अभि सं नवन्ते यत्र गवां निहिता सप्त नाम ॥३ ॥

इस (सूर्यदेव के पोषण चक्र) से जुड़े यह जो सात (सप्त वर्ण अथवा सातकाल वर्ग- अयन, ऋतु, मास, पक्ष, दिन, रात एवं मुहूर्त) हैं, यही सात चक्र अथवा सात अश्वों के रूप में इस रथ को चलाते हैं । जहाँ गौ (वाणी) में सात नाम (सात स्वर) छिपे हैं, ऐसी सात बहनें (स्तुतियाँ) इसकी वन्दना करती हैं ॥३ ॥

१७१९. को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति ।
भूम्या असुरसृगात्मा क्व स्वित्को विद्वांसमुप गात्प्रष्टुमेतत् ॥४ ॥

जो अस्थि (शरीर) रहित होते हुए भी अस्थियुक्त (शरीरधारी प्राणियों) का पालन - पोषण करते हैं; उन स्वयंभू को किसने देखा ? भूमि में प्राण, रक्त एवं आत्मा कहाँ से आये ? इस सम्बन्ध में पूछने (जानने) के लिए कौन किसके पास जाता ? ॥४ ॥

[आज का विज्ञान भी उक्त प्रश्नों के उत्तर देने में असमर्थ है । जो दिखता है, उसी से सृष्टि रचना के अनुमान लगाये जाते हैं । ऋषि का संकेत है कि पदार्थों से पूछकर नहीं, आत्मानुभूति से ही रहस्य जाने जा सकते हैं ।]

१७२०. पाकः पृच्छामि मनसाविजानन्देवानामेना निहिता पदानि ।
वत्से बष्कयेऽधि सप्त तन्तून्वि तत्निरे कवय ओतवा उ ॥ ५ ॥

अपरिपक्व बुद्धिवाले हम, देवताओं के इन गुप्त पदों (चरणों) के सम्बन्ध में जानने के लिए मनोयोग पूर्वक पूछते हैं: सुन्दर युवा गोवत्स (बछड़े या सूर्य) के लिए ये विज्ञ (देव आदि) सप्त तन्तुओं (किरणों) को कैसे फैलाते हैं ? ॥५ ॥

[सूर्य की किरणों के पदार्थपरक प्रभावों पर तो विज्ञान थोड़ी बहुत शोध कर भी सका है, किन्तु चेतनापरक हलचलों का स्रोत एवं ताना-बाना समझने के लिए स्थूलबुद्धि की अपरिपक्वता सभी स्वीकार करने लगे हैं ।]



१७२१. अचिकित्वाञ्चिकितुषश्चिदत्र कवीन्पृच्छामि विद्मने न विद्वान्।
वि यस्तस्तम्भ षळिमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम् ॥६ ॥

जिसके द्वारा इन छहों लोकों को स्थिर किया गया है, वह अजन्मा प्रजापति रूपी तत्त्व कैसा है ? उसका क्या स्वरूप है ? इस तत्त्व ज्ञान से अपरिचित हम तत्त्ववेत्ताओं से निश्चित स्वरूप की जानकारी के लिए यह पूछते हैं ॥६

१७२२. इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदास्य वामस्य निहितं पदं वेः।
शीर्ष्णः क्षीरं दुह्रते गावो अस्य वव्रिं वसाना उदकं पदापुः ॥७ ॥

जो इस सुन्दर और गतिमान् सूर्य के उत्पत्ति स्थान को (उत्पत्ति के रहस्य को) जानते हैं, वे इस गुप्त रहस्य का यहाँ आकर स्पष्टीकरण करें कि इस सर्वोत्तम सूर्य की गौएँ (किरणें) पानी का दोहन करती हैं (बरसाती हैं)। वे ही (ग्रीष्मकाल में) तेजस्वी होकर पैरों (निचले भागों) से जल को सोखती हैं ॥७ ॥

१७२३. माता पितरमृत आ बभाज धीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे।
सा बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः ॥८ ॥

माता (पृथ्वी) ने ऋत (यज्ञ अथवा ऋतु अनुरूप उपलब्धि) के लिये पिता (द्युलोक अथवा सूर्य) का सेवन किया। क्रिया के पूर्व मन से उनका संपर्क हुआ। माता गर्भ (उर्वरता धारण करने योग्य) रस से निबद्ध हुई। तब (गर्भ के विकास के लिए) उनमें नमन पूर्वक (एक दूसरे का आदर करते हुए) वचनों (परामर्श) का आदान-प्रदान हुआ ॥८ ॥

१७२४. युक्ता मातासीद्धुरि दक्षिणाया अतिष्ठद्गर्भो वृजनीष्वन्तः।
अमीमेद्वत्सो अनु गामपश्यद्विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु ॥९ ॥

समर्थ सूर्यदेव की धारण क्षमता पर माता (पृथ्वी) आधारित हैं। गर्भ (उर्वर शक्ति प्राणपर्जन्य) गमनशील (वायु अथवा बादलों) के बीच रहता है। बछड़ा (बादल) गौओं (किरणों) को देखकर शब्द करते हुए अनुमान करता है, तब तीनों का संयोग विश्व को रूपवान् बनाता है ॥९ ॥

१७२५. तिस्रो मातॄस्त्रीन्पितॄन्बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्ति।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदं वाचमविश्वमिन्वाम् ॥१० ॥

यह स्रष्टा प्रजापति अकेले ही (पृथ्वी ,अन्तरिक्ष और द्युलोक रूपी) तीन माताओं तथा (अग्नि,वायु और सूर्य रूपी) तीन पिताओं का भरणपोषण करते हुए सबसे परे स्थित हैं। इन्हें थकावट नहीं आती। विश्व के रहस्य को जानते हुए भी अखिल विश्व से परे (बाहर) रहने वाले प्रजापति की वाणी (शक्ति) के सम्बन्ध में (सभी देवगण) द्युलोक के पृष्ठ - भाग पर विचार करते हैं ॥१० ॥

१७२६. द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः ॥११ ॥

ऋत (सूर्य अथवा सृष्टि संचालक यज्ञ) का बारह अरों (राशियों) वाला चक्र इस द्युलोक में चारों ओर घूमता रहता है। यह चक्र कभी अवरुद्ध या जीर्ण नहीं होता। हे अग्निदेव ! संयुक्त रूप से रहने वाले सात सौ बीस पुत्र यहाँ (इस चक्र) में रहते हैं ॥११ ॥

[आकाश चक्र का विभाजन ३६० अंश (डिग्री) में किया गया है । इन सभी अंशों में प्राण (धारण किये जाने वाले) एवं रयि (धारक) तत्व हैं। प्राणरूप (सूर्य) एवं रयि रूप (चन्द्र) दोनों पक्ष के ३६० + 360 DebMe मिलकर ७२० होते हैं।]



१७२७. पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम्।
अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षळर आहुरर्पितम् ॥१२ ॥

अयन, मास, ऋतु, पक्ष, दिन और रात रूपी पाँच पैरों वाला मास रूपी बारह आकृतियों से युक्त तथा जल को बरसाने वाले पिता रूप सूर्यदेव दिव्यलोक के आधे हिस्से में रहते हैं, ऐसी मान्यता है। अन्य विद्वानों के मतानुसार ये सूर्यदेव ऋतुरूप छः अरों तथा अयन, मास, ऋतु, पक्ष, दिन, रात एवं मुहूर्त रूपी सात चक्रों वाले रथ पर आरूढ़ हैं ॥१२ ॥

१७२८. पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्ना तस्थुर्भुवनानि विश्वा।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न शीर्यते सनाभिः ॥१३ ॥

अयन, मासादि पाँच अरों वाले इस कालचक्र (रथ) में समस्त लोक विद्यमान हैं। इतने लोकों का भार वहन करते हुए भी इस चक्र का अक्ष (धुरा) न गरम होता है और न टूटता है ॥१३ ॥

१७२९. सनेमि चक्रमजरं वि वावृत उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति।
सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं तस्मिन्नार्पिता भुवनानि विश्वा ॥१४ ॥

नेमि (धुरा या नियन्त्रण) से युक्त कभी क्षय न होने वाला सृष्टि चक्र सदैव चलता रहता है। अति व्यापक प्रकृति के उत्पन्न होने पर इसे दस घोड़े (पाँच प्राण एवं पाँच उपप्राण, पाँच प्राण एवं पाँच अग्नियाँ आदि) चलाते हैं। सूर्य रूपी नेत्र का प्रकाश जल से आच्छादित होकर गतिमान् होता है, उसमें ही सम्पूर्ण लोक विद्यमान हैं ॥१४ ॥

१७३०. साकञ्जानां सप्तथमाहुरेकजं षळिद्यमा ऋषयो देवजा इति।
तेषामिष्टानि विहितानि धामशः स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः ॥१५ ॥

एक साथ जन्मे, जोड़े से रहने वाले छः और सातवाँ यह सभी एक (काल अथवा परमात्म चेतना) से उत्पन्न हैं। यह देवत्व से उपजे ऋषि हैं। वे सभी अपने बदले हुए रूपों में अपने-अपने इष्ट प्रयोजनों में रत, अपने-अपने धामों (क्षेत्रों) में स्थित रहकर गतिशील (सक्रिय) हैं ॥१५ ॥

[यह मंत्र अर्थ भेद से विराट् सृष्टि पर, काल क्रम पर, ऋषियों पर तथा काया आदि सभी पर घटित होता है। सप्त लोकों में छः जोड़े और एक सातवाँ सत्यलोक, छः ऋतुओं में दो मास के छः जोड़े तथा एक अधिक मास, आँख, कान, नाक के छिद्र दो-दो और एक जीभ या वाणी, सात ऋषि आदि अर्थ लेने से यह मंत्र विभिन्न संदर्भों में प्रयुक्त होता है।]

१७३१. स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान्न वि चेतदन्धः।
कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात्स पितुष्पितासत् ॥१६ ॥

ये (किरणें) स्त्रियाँ हैं, फिर भी पुरुष (गर्भ धारण करने में समर्थ) हैं, यह तथ्य (सूक्ष्म) दृष्टि सम्पन्न ही देख सकते हैं। दूरदर्शी पुत्र (साधक - शिष्य) ही इसे अनुभव कर सकता है। जो यह जान लेता है, वह पिता का भी पिता (सर्व सृजेता को भी जानने वाला) हो जाता है ॥१६ ॥

[यह मंत्र प्रजनन विज्ञान (जैनेटिक साइंस) पर भी घटित होता है। गुण सूत्रों (क्रोमोजोम्स) में भी एक्स एवं वाई, नारी एवं नर दोनों की क्षमताएँ पायी जाती हैं।]

१७३२. अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात्।
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात्क्व स्वित्सूते नहि यूथे अन्तः ॥१७ ॥

गौएँ (पोषक किरणें) द्युलोक से नीचे की ओर तथा इस (पृथ्वी) से ऊपर की ओर (सतत) गतिमान् हैं। यह बछड़े (जीवन तत्व) को धारण किए हुए किस लक्ष्य की ओर जाते हैं ? यह किस आधे भाग से परे निकल कर जन्म देती हैं ? यहाँ समूह के मध्य तो नहीं देती ॥१७ ॥



[पदार्थ विज्ञान की नवीनतम शोधों के अनुसार सूक्ष्म किरणों के प्रवाह पृथ्वी से आकाश की ओर तथा आकाश से पृथ्वी की ओर सतत गतिशील हैं । ये प्रवाह पृथ्वी के किसी भी अर्ध भाग (हैमिस्फियर) को छूते हुए निकल जाते हैं । यह प्रवाह कब कहाँ जीवन तत्त्व को प्रकट कर देते हैं ?किसी को पता नहीं है ।]

१७३३. अवः परेण पितरं यो अस्यानुवेद पर एनावरेण ।

कवीयमानः क इह प्र वोचद्देवं मनः कुतो अधि प्रजातम् ॥१८ ॥

जो द्युलोक से नीचे इस (पृथ्वी) के पिता (सूर्यदेव) तथा पृथिवी के ऊपर स्थित अग्निदेव को जानते अर्थात् उपासना करते हैं, वे निश्चित ही विद्वान् हैं । यह दिव्यता से युक्त आचरण वाला मन कहाँ से उत्पन्न हुआ ?इस रहस्य की जानकारी देने वाला ज्ञानी कौन है ? यह हमें यहाँ आकर बतायें ॥१८ ॥

१७३४. ये अर्वाञ्चस्ताँ उ पराच आहुर्ये पराञ्चस्ताँ उ अर्वाच आहुः ।

इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति ॥१९ ॥

(इस गतिशील विश्व में) जो पास आते हुए को दूर जाता हुआ भी कहा जाता (अनुभव किया जाता) है और दूर जाते को पास आता हुआ भी कहा जाता है । हे सोमदेव ! आपने और इन्द्रदेव ने जो चक्र चला रखा है,वह धुरे से जुड़ा रहकर लोकों को वहन करता है ॥१९ ॥

[घूमते विश्व में नक्षत्रादि पास आते हुए, दूर जाते हुए भी दिखते हैं । इन्द्रदेव, सूर्यदेव अथवा संगठक शक्ति तथा सोम, चन्द्रमादेव अथवा पोषक शक्ति के संयोग से इस विश्व का चक्र चल रहा है ।]

१७३५. द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते ।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥२० ॥

साथ रहने वाले मित्रों की तरह दो पक्षी (गतिशील जीवात्मा एवं परमात्मा) एक ही वृक्ष (प्रकृति अथवा शरीर) पर स्थित हैं । उनमें से एक (जीवात्मा) स्वादिष्ट पीपल (माया) के फल खाता है, दूसरा (परमात्मा) उन्हें न खाता हुआ केवल देखता (द्रष्टा रूप) रहता है ॥२० ॥

१७३६. यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति ।

इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विवेश ॥२१ ॥

इस (प्रकृति-रूपी) वृक्ष पर बैठी हुई संसार में लिप्त मरणधर्मा जीवात्माएँ सुख-दुःख रूपी फलों को भोगती हुई अपने शब्दों में परमात्मा की स्तुति करती हैं । तब इन लोकों के स्वामी और संरक्षक परमात्मा अज्ञान से युक्त मुझ जीवात्मा में भी विद्यमान हैं ॥२१ ॥

१७३७. यस्मिन्वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे ।

तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद ॥२२ ॥

इस (संसार रूपी) वृक्ष पर प्राण रस का पान करने वाली जीवात्माएँ रहती हैं, जो प्रजा वृद्धि में समर्थ हैं । वृक्ष में ऊपर मधुर फल भी लगे हुए हैं, जो पिता (परमात्मा को) नहीं जानते, वे इन मधुर (सत्कर्म रूपी) फलों के आनन्द से वञ्चित रहते हैं ॥२२ ॥

१७३८. यद्गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभाद्वा त्रैष्टुभं निरतक्षत ।

यद्वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत्तद्विदुस्ते अमृतत्वमानशुः ॥२३ ॥

पृथ्वी पर गायत्री छन्द को, अन्तरिक्ष में त्रिष्टुप् छन्द को तथा आकाश में जगती छन्द को स्थापित करने वाले को जो जान लेता है, वह देवत्व (अमरत्व) को प्राप्त कर लेता है ॥२३ ॥



१७३९. गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम्।
वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण मिमते सप्त वाणीः ॥२४॥

(परमात्मा ने) गायत्री छन्द से प्राण की रचना की, ऋचाओं के समूह से सामवेद को बनाया, त्रिष्टुप् छन्द से यजुर्वाक्यों की रचना की तथा दो पदों एवं चार पदों वाले अक्षरों से सातों छन्दमय वाणियों को प्रादुर्भूत (प्रकट) किया ॥२४॥

१७४०. जगता सिन्धुं दिव्यस्तभायद्रथन्तरे सूर्यं पर्यपश्यत्।
गायत्रस्य समिधस्तिस्र आहुस्ततो मह्ना प्र रिरिचे महित्वा ॥२५॥

गतिमान् सूर्यदेव द्वारा प्रजापति ने द्युलोक में जलों को स्थापित किया। वृष्टि के माध्यम से जल, सूर्यदेव और पृथ्वी संयुक्त होते हैं, तब सूर्य और द्युलोक में सन्निहित प्राण, जल वृष्टि के द्वारा इस पृथ्वी पर प्रकट होता है। गायत्री के तीन पाद अग्नि, विद्युत् और सूर्य (पृथ्वी, द्यु और अन्तरिक्ष) हैं। उस प्रजापति की तेजस्विता से ही ये तीनों पाद बलशाली होते हैं, ऐसा कहा गया है ॥२५॥

१७४१. उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम्।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचम् ॥२६॥

दुग्ध (सुख) प्रदान करने वाली गौ (प्रकृति प्रवाहों) का हम आवाहन करते हैं। इस गौ के दुग्ध का दोहन कुशल साधक ही कर पाते हैं। सविता देव हमें दुग्ध (श्रेष्ठ प्राण) प्रदान करें। तपस्वी एवं तेजस्वी (जीवन्त साधक) ही इसको ग्रहण कर सकता है; ऐसा कथन है ॥२६॥

१७४२. हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात्।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥२७॥

कभी भी वध न करने योग्य गौ, मनुष्यों के लिए अन्न, दुग्ध, घृत आदि ऐश्वर्य प्रदान करने की कामना से अपने बछड़े को मन से प्यार करती हुई, रँभाती हुई बछड़े के पास आ जाती है। वह गौ मानव समुदाय के महान् सौभाग्य को बढ़ाती हुई, प्रचुर मात्रा में दुग्ध प्रदान करती है ॥२७॥

१७४३. गौरमीमेदनु वत्सं मिषन्तं मूर्धानं हिङ्ङकृणोन्मातवा उ।
सृक्वाणं घर्ममभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥२८॥

गौ (स्नेह से) आँखें मींचे (बन्द किये) हुए (बछड़े के) समीप जाकर रँभाती है। बछड़े के सिर को चाटने (सहलाने) के लिए वात्सल्यपूर्ण शब्द करती है। उसके मुँह के पास अपने दूध से भरे थनों को ले जाती हुई शब्द करती है। वह दूध पिलाते हुए (प्यार से) शब्द करते हुए बछड़े को संतुष्ट भी करती है ॥२८॥

१७४४. अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता।
सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यं विद्युद्भवन्ती प्रति वव्रिमौहत ॥२९॥

वत्स गौ के चारों ओर बिना शब्द के अभिव्यक्ति करता है। गौ रँभाती हुई अपनी (भाव भरी) चेष्टाओं से मनुष्यों को लज्जित करती है। उज्ज्वल दूध उत्पन्न कर अपने भावों को प्रकाशित करती है ॥२९॥

१७४५. अनच्छये तुरगातु जीवमेजद् ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम्।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ॥३०॥

श्वसन प्रक्रिया द्वारा अस्तित्व में रहने वाला जीव (चन्चल जीव) जब शरीर से चला जाता है, तब यह शरीर घर में निश्चल पड़ा रहता है। मरणशील (मरण धर्मा) शरीरों के साथ रहनेवाली आत्मा अविनाशी है, अतएव अविनाशी आत्मा अपनी धारण करने की शक्तियों से सम्पन्न होकर सर्वत्र निर्बाध विचरण करती है ॥३०॥



१७४६. अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।

स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥३१ ॥

समीपस्थ तथा दूरस्थ मार्गों में गतिमान् सूर्यदेव निरंतर गतिशील रहकर भी कभी नहीं गिरते । वे सम्पूर्ण विश्व का संरक्षण करते हैं । चारों ओर फैलने वाली तेजस्विता को धारण करते हुए समस्त लोकों में विराजमान सूर्यदेव को हम देखते हैं ॥३१ ॥

१७४७. य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात् ।

स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेश ॥३२ ॥

जिसने इसे (जीव को) बनाया, वह भी इसे नहीं जानता; जिसने इसे देखा है, उससे भी यह लुप्त रहता है । यह माँ के प्रजनन अंग में घिरा हुआ स्थित है । यह प्रजाओं की उत्पत्ति करता हुआ स्वयं अस्तित्व खो देता है ॥३२ ॥

१७४८. द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम् ।

उत्तानयोश्चम्वो३ र्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥३३ ॥

द्युलोक स्थित (सूर्यदेव) हमारे पिता और बन्धु स्वरूप हैं । वही संसार के नाभि रूप भी हैं । यह विशाल पृथिवी हमारी माता है । दो पात्रों (आकाश के दो गोलार्द्धों) के मध्य स्थित सूर्यदेव अपने द्वारा उत्पन्न पृथ्वी में गर्भ (जीवन) स्थापित करते हैं ॥३३ ॥

१७४९. पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः ।

पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥३४ ॥

इस धरती का अन्तिम छोर कौन सा है ?सभी भुवनों का केन्द्र कहाँ है ?अश्व की शक्ति कहाँ है ?और वाणी का उद्‌गम कहाँ है ?यह हम आप से पूछते हैं ॥३४ ॥

[इस ऋचा में सृष्टि के चार रहस्यात्मक प्रश्न पूछे गये हैं, जिनका समाधान अगली ऋचा में ऋषि द्वारा किया गया है ।]

१७५०. इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।

अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥३५ ॥

(यज्ञ की) यह वेदिका पृथ्वी का अन्तिम छोर है, यह यज्ञ ही संसार चक्र की धुरी है । यह सोम ही अश्व (बलशाली) की शक्ति (वीर्य) है । यह 'ब्रह्मा' वाणी का उत्पत्ति स्थान है ॥३५ ॥

१७५१. सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि ।

ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परि भवन्ति विश्वतः ॥३६ ॥

सम्पूर्ण विश्व का निर्माण अपरा प्रकृति के मन, प्राण और पंच भूत रूपी सात पुत्रों से होता है । यह सभी तत्त्व सर्वव्यापक प्रजापति के निर्देशानुसार ही कर्त्तव्य निर्वाह करते हैं । वे अपनी ज्ञानशीलता, व्यापकता से तथा अपनी संकल्पशक्ति द्वारा सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हैं ॥३६ ॥

१७५२. न वि जानामि यदिवेदमस्मि निण्यः सन्नद्धो मनसा चरामि ।

यदा मागन्प्रथमजा ऋतस्यादिद्वाचो अश्नुवे भागमस्याः ॥३७ ॥

मैं नहीं जानता कि मैं कैसा हूँ ?मैं मूर्ख की भाँति मन से बँधकर चलता रहता हूँ । जब पहले ही प्रकट हुआ सत्य मेरे पास आया, तभी मुझे यह वाणी प्राप्त हुई ॥३७ ॥

[वेद वाणी किस प्रकार प्रकट हुई ? इस तथ्य को ऋषि निश्छल भाव से व्यक्त कर रहे हैं ।]

१७५३. अपाङ्‌प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ।

ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्य१न्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम् ॥३८ ॥

यह आत्मा अविनाशी होने पर भी मरणधर्मा शरीर के साथ आबद्ध होने से विविध योनियों में जाती है । यह अपनी धारण क्षमता से ही उन शरीरों में आती और शरीरों से पृथक् होती रहती है । ये दोनों शरीर और आत्मा शाश्वत एवं गतिशील होते हुए विपरीत गतियों से युक्त हैं । लोग इनमें से एक (शरीर) को तो जानते हैं, पर दूसरे (आत्मा) को नहीं समझते ॥३८ ॥

१७५४. ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः ।

यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥३९ ॥

अविनाशी ऋचाएँ परमव्योम में भरी हुई हैं । उनमें सम्पूर्ण देव शक्तियों का वास है । जो इस तथ्य को नहीं जानता (उसके लिए) ऋचा क्या करेगी ? जो इस तथ्य को जानते हैं, वे इस (ऋचा) का सदुपयोग कर लेते हैं ॥३९ ॥

१७५५. सूयवसाद्भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम ।

अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥४० ॥

हे अवधनीय गौ माता ! आप श्रेष्ठ पौष्टिक घास (आहार) ग्रहण करती हुई सौभाग्यशालिनी हों । आपके साथ हम सभी सौभाग्यशाली हों । आप शुद्ध घास खाकर और शुद्ध जल पीकर सर्वत्र विचरण करें ॥४० ॥

१७५६. गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी ।

अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् ॥४१ ॥

गौ (वाणी) निश्चित ही शब्द करती हुई जलों (रसों) को हिलाती (तरंगित करती) है । वह गौ (काव्यमयी वाणी) एक, दो, चार, आठ अथवा नौ पदोंवाले छन्दों में विभाजित होती हुई सहस्र अक्षरों से युक्त होकर व्यापक आकाश में संव्याप्त हो जाती है ॥४१ ॥

[इस ऋचा में गौ का अर्थ सूर्य रश्मियाँ भी लिया जा सकता है । वे रसों को संचरित करती हुई सहस्र चरणवाली बनकर आकाश में संव्याप्त होती हैं ।]

१७५७. तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ।

ततः क्षरत्यक्षरं तद्विश्वमुप जीवति ॥४२ ॥

उन सूर्य रश्मियों से (जल वृष्टि द्वारा) जल प्रवाह बहते हैं । जिस जलवृष्टि से सम्पूर्ण दिशाएँ प्रसन्न होती हैं, इससे सम्पूर्ण विश्व को जीवन (प्राण) मिलता है ॥४२ ॥

१७५८. शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण ।

उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥४३ ॥

दूर से हमने धूम्र को देखा । चतुर्दिक् व्याप्त धूम्र के मध्य अग्नि को देखा, जिसमें प्रत्येक उत्तम कार्यों के पूर्व ऋत्विग्गण शक्तिदायी सोमरस को पकाते हैं ॥४३ ॥

१७५९. त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम् ।

विश्वमेको अभि चष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ॥४४ ॥

तीन किरणों वाले पदार्थ (सूर्य, अग्नि और वायु) ऋतुओं के अनुसार दिखाई देते हैं । इनमें से एक (सूर्य) संस्कार का वपन करता है । एक (अग्नि) अपनी शक्तियों से विश्व को प्रकाशित करता है । तीसरे (वायु) का रूप प्रत्यक्ष नहीं दिखाई पड़ता है ॥४४ ॥



१७६०. चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥४५ ॥

मनीषियों द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि वाणी के चार रूप हैं, इनमें से तीन वाणियाँ (परा, पश्यन्ती तथा मध्यमा) प्रकट नहीं होती । सभी मनुष्य वाणी के चौथे रूप (बैखरी) को ही बोलते हैं ॥४५ ॥

१७६१. इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥४६ ॥

एक ही सत्‌रूप परमेश्वर का विद्वज्जन (विभिन्न गुणों एवं स्वरूपों के आधार पर) विविध प्रकार से वर्णन करते हैं । उसी (परमात्मा) को (ऐश्वर्य सम्पन्न होने पर) इन्द्र, (हितकारी होने से) मित्र, (श्रेष्ठ होने से) वरुण तथा (प्रकाशक होने से) अग्नि कहा गया है ।वह (परमात्मा) भली प्रकार पालन कर्त्ता होने से सुपर्ण तथा गरुत्मान् है ॥४६ ॥

१७६२. कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवी व्युद्यते ॥४७ ॥

श्रेष्ठ गतिमान् सूर्य-किरणें अपने साथ जल को उठाती हुई सबके आकर्षण के केन्द्र यानरूप सूर्यमण्डल के समीप पहुँचती हैं । वहाँ अन्तरिक्ष के मेघों में स्थित जल को बरसाते हुए पृथ्वी को सिक्त कर देती हैं ॥४७ ॥

१७६३. द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।
तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शङ्कवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः ॥४८ ॥

एक चक्र है, उसे बारह अरे घेरे हुए हैं । उसकी तीन नाभियाँ हैं । उसे कोई विद्वान् ही जानते हैं । उसमें ३६० चलायमान कीलें ठुकी हुई हैं ॥४८ ॥

[कालचक्र, आकाश में १२ राशियों से घिरा है, तीन ऋतुएँ उसकी नाभियाँ हैं, ३६० अंशों में वह विभक्त है ।]

१७६४.यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि ।
यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः सरस्वति तमिह धातवे कः ॥४९ ॥

हे देवी सरस्वति ! जो आपका सुखदायक, वरण करने योग्य, पुष्टिकारक, ऐश्वर्य प्रदाता, कल्याणकारी विभूतियों को देने वाला स्तन (स्वरूप) है, उसे जगत् के पोषण के लिए प्रकट करें ॥४९ ॥

१७६५. यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥५० ॥

देवों ने यज्ञ से यज्ञ का यजन किया, उनका धर्म-कर्म में प्रथम स्थान है । (इससे) उन (देवों) ने स्वर्ग में स्थान पाया, जहाँ पूर्णकाल में साधना करने वाले देवता रहते हैं ॥५० ॥

१७६६. समानमेतदुदकमुच्चैत्यव चाहभिः ।
भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वन्त्यग्नयः ॥५१ ॥

यही जल (तप्त होकर वाष्परूप में) ऊपर जाता है और वही जल पर्जन्य रूप में नीचे आता है । जल बरसने से भूमि तृप्त होती है और अग्नियों (प्रदत्त आहुतियों) से दिव्य लोक तृप्त होते हैं ॥५१ ॥

१७६७. दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तमपां गर्भं दर्शतमोषधीनाम् ।
अभीपतो वृष्टिभिस्तर्पयन्तं सरस्वन्तमवसे जोहवीमि ॥५२ ॥

द्युलोक में विद्यमान रहनेवाले, उत्तम गति वाले, निरन्तर गतिमान् महिमाशाली, जलों के केन्द्र, ओषधियों को



पुष्ट बनाने वाले, जल वृष्टि द्वारा चतुर्दिक् प्रवहमान जल प्रवाहों से भूमि को तृप्त करनेवाले सूर्यदेव को हम अपने संरक्षण के लिए आवाहित करते हैं ।

[सूक्त - १६५]

[**ऋषि-** १,२,४,६,८,१०-१२ इन्द्र; ३,५,७,९ मरुद्‌गण; १३-१५ अगस्त्य मैत्रावरुणि । **देवता-** मरुत्वानिन्द्र । **छन्द-** त्रिष्टुप् ।]

१७६८. कया शुभा सवयसः सनीळाः समान्या मरुतः सं मिमिक्षुः ।
कया मती कुत एतास एतेऽर्चन्ति शुष्मं वृषणो वसूया ॥१ ॥

एक ही स्थान में रहने वाले, समवयस्क मरुद्‌गण, किस शुभ तत्त्व से सिंचन करते हैं ? कहाँ से आकर, किस मति से प्रेरित होकर, ये बलशाली मरुद्‌गण ऐश्वर्य की कामना से बल की उपासना करते हैं ॥१ ॥

१७६९. कस्य ब्रह्माणि जुजुषुर्युवानः को अध्वरे मरुत आ ववर्त ।
श्येनाँ इव ध्रजतो अन्तरिक्षे केन महा मनसा रीरमाम ॥२ ॥

सदा युवा रहने वाले ये मरुद्‌गण किसके स्तोत्रों (हव्य) को स्वीकार करते हैं ? इन मरुतों को कौन यज्ञ की ओर प्रेरित कर सकता है ? अन्तरिक्ष में बाज़ पक्षी के समान विचरण करने वाले इन मरुतों को किन उदार-विशाल हृदय की भावनाओं से प्रसन्न करें ? ॥२ ॥

१७७०. कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन्नेको यासि सत्पते किं त इत्था ।
सं पृच्छसे समराणः शुभानैर्वोचेस्तन्नो हरिवो यत्ते अस्मे ॥३ ॥

हे महान् इन्द्रदेव ! आप अकेले कहाँ जाते हैं ? आप ऐसे (महान् एवं पूज्य) क्यों हैं ? हे अश्वों से युक्त शोभनीय इन्द्रदेव ! अपने सान्निध्य में रहने वालों की आप सदैव कुशलक्षेम पूछते रहते हैं । अतः हमारे हित की जो भी बात आप कहना चाहें, वह कहें ॥३ ॥

१७७१. ब्रह्माणि मे मतयः शं सुतासः शुष्म इयर्ति प्रभृतो मे अद्रिः ।
आ शासते प्रति हर्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नो अच्छ ॥४ ॥

(इन्द्रदेव की अभिव्यक्ति) मननशील स्तुतियाँ एवं सोम मेरे लिए सुखकारी हों । मेरा बलशाली वज्र शत्रुओं की ओर जाता है । स्तुतियाँ मेरी प्रशंसा करती हुई मेरी तरफ आती हैं । दोनों अश्व मुझे लक्ष्य की ओर ले जाते हैं ॥४ ॥

१७७२. अतो वयमन्तमेभिर्युजानाः स्वक्षत्रेभिस्तन्व१ः शुम्भमानाः ।
महोभिरेताँ उप युज्महे न्विन्द्र स्वधामनु हि नो बभूथ ॥५ ॥

हम अपने (इन्द्रियों रूपी) अति बलशाली अश्वों से युक्त होकर, महान् तेजस्विता से स्वयं को सज्जित करके, उनका उपयोग शत्रुओं के विनाश के लिए करते हैं । अतः हे इन्द्रदेव ! आप अपनी धारण-क्षमताओं को हमारे अनुकूल बनायें ॥५ ॥

१७७३. क्व१ स्या वो मरुतः स्वधासीद्यन्मामेकं समधत्ताहिहत्ये ।
अहं ह्यु१ ग्रस्तविषस्तुविष्मान्विश्वस्य शत्रोरनमं वधस्नैः ॥६ ॥

हे मरुद्‌गणो ! तुम्हारी वह स्वाभाविक शक्ति कहाँ थी, जिसे तुमने वृत्रवध के अवसर पर अकेले मुझ (इन्द्र) में स्थापित किया था । (वैसे तो) मैं (इन्द्र) स्वयं ही शक्तिशाली, बलवान् , शूरवीर हूँ । मैने अपने शस्त्रास्त्रों से भयंकर से भयंकर शत्रुओं को भी झुकने के लिए मजबूर किया है ॥६ ॥



१७७४. भूरि चकर्थ युज्येभिरस्मे समानेभिर्वृषभ पौंस्येभिः ।
भूरीणि हि कृणवामा शविष्ठेन्द्र क्रत्वा मरुतो यद्वशाम ॥७ ॥

हे शक्तिशाली इन्द्रदेव ! आपने हमारे (मरुतों के) साथ मिलकर अपनी सामर्थ्य के अनुरूप अनेकों वीरतापूर्ण कार्य किये हैं । हे शक्ति सम्पन्न इन्द्रदेव ! हम (मरुतों) ने भी अति वीरतापूर्ण कार्य किये हैं । हम (मरुद्गण) अपने पुरुषार्थ से जो भी चाहते हैं, प्राप्त कर लेते हैं ॥७ ॥

१७७५. वधीं वृत्रं मरुत इन्द्रियेण स्वेन भामेन तविषो बभूवान् ।
अहमेता मनवे विश्वश्चन्द्राः सुगा अपश्चकर वज्रबाहुः ॥८ ॥

हे मरुतो ! अपनी सामर्थ्य शक्ति से ही मैंने (इन्द्रदेव ने) वृत्रासुर का संहार किया और अपने ही पराक्रम से शक्ति सम्पन्न बना । वज्र को हाथों में धारण करके मैंने (इन्द्रदेव ने) ही मनुष्यों तथा सभी प्राणियों के कल्याण के लिए, आनन्ददायी जल - प्रवाहों को सहजता से प्रवाहित किया ॥८ ॥

१७७६. अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाँ अस्ति देवता विदानः ।
न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥९ ॥

हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! आपसे बढ़कर और कोई धनवान् नहीं है । आपके समान कोई ज्ञानी भी नहीं है । हे महान् इन्द्रदेव ! आपके द्वारा किये गये कार्यों की समानता न कोई कर सका है और न ही आगे कर सकेगा ॥९ ॥

१७७७. एकस्य चिन्मे विभ्व१ स्त्वोजो या नु दधृष्वान्कृणवै मनीषा ।
अहं ह्यु१ ग्रो मरुतो विदानो यानि च्यवमिन्द्र इदीश एषाम् ॥१० ॥

मैं (इन्द्र) जिन कार्यों को करने की कामना करता हूँ, उन्हें एकाग्र मन से करता हूँ, इसलिए मेरी अकेले की कीर्ति पताका चारों ओर फहरा रही है । हे मरुद्गणो ! चूंकि मेरे अन्दर वीरोचित शौर्य और विद्वत्ता है, इसलिए जिनकी तरफ भी जाता हूँ, उनका स्वामी बनकर शक्तियों का उपभोग करता हूँ ॥१० ॥

१७७८. अमन्दन्मा मरुतः स्तोमो अत्र यन्मे नरः श्रुत्यं ब्रह्म चक्र ।
इन्द्राय वृष्णे सुमखाय मह्यं सख्ये सखायस्तन्वे तनूभिः ॥११ ॥

हे नेतृत्वकर्त्ता, मित्र मरुतो ! आपने जो प्रशंसित स्तोत्र मेरे (इन्द्र के) निमित्त रचित किये हैं, उनसे मुझे अभूतपूर्व आनन्द की प्राप्ति हुई है । ये स्तोत्र, वैभवशाली शक्तिसम्पन्न उत्तम याज्ञिक तथा शक्ति सम्पन्न मेरी सामर्थ्य को और भी पुष्ट करने वाले हैं ॥११ ॥

१७७९. एवेदेते प्रति मा रोचमाना अनेद्यः श्रव एषो दधानाः ।
सञ्चक्ष्या मरुतश्चन्द्रवर्णा अच्छान्त मे छदयाथा च नूनम् ॥१२ ॥

हे मरुतो ! इसी प्रकार मुझे (इन्द्र को) स्नेह प्रदान करते हुए, प्रशंसनीय धन-धान्य को धारण करते हुए, आनन्द प्रदायक स्वरूप से युक्त होकर चतुर्दिक् मेरा यशोगान करें ॥१२ ॥

१७८०. को न्वत्र मरुतो मामहे वः प्र यातन सखीँरच्छा सखायः ।
मन्मानि चित्रा अपिवातयन्त एषां भूत नवेदा म ऋतानाम् ॥१३ ॥

हे मरुद्गणो ! यहाँ कौन आपकी पूजा- अर्चना करते हैं, यह भलीप्रकार जानकर मित्र के समान जो आपके हितैषी हैं, उनके समीप जायें ।उनके द्वारा किये जाने वाले उद्देश्यपूर्ण स्तोत्रों के अभिप्राय को जानकर उसे पूरा करें ॥१३ ॥

१७८१. आ यद्दुवस्याद्दुवसे न कारुरस्माञ्चक्रे मान्यस्य मेधा ।
ओ षु वर्त्त मरुतो विप्रमच्छेमा ब्रह्माणि जरिता वो अर्चत् ॥१४ ॥



हे मरुतो ! सम्माननीय स्तोता की मति हमें प्राप्त हो, जिससे हम स्तोत्रों के द्वारा आपकी (भली- भाँति) स्तुति कर सकें । चूँकि स्तोता आपकी स्तोत्रों के द्वारा स्तुति करते हैं, अत: आप उन ज्ञान-सम्पन्नों की ओर उन्मुख हों ॥१४॥

१७८२. एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१५ ॥

हे मरुतो ! यह वाजी (यह स्तोत्र) आपके लिए है, अत: आप आनन्ददायी, सम्माननीय स्तोता को परिपुष्ट करने के निमित्त पधारें । हम भी अन्न, बल तथा यशस्वी धन प्राप्त करें ॥१५ ॥

[सूक्त - १६६]

[**ऋषि-** अगस्त्य मैत्रावरुणि । **देवता-** मरुद्गण । **छन्द-** जगती; १४-१५ त्रिष्टुप् ।]

१७८३. तन्नु वोचाम रभसाय जन्मने पूर्वं महित्वं वृषभस्य केतवे ।
ऐधेव यामन्मरुतस्तुविष्वणो युधेव शक्रास्तविषाणि कर्तन ॥१ ॥

वर्षणशील मेघों को विभाजित करने वाले हे वीर मरुद्गणो ! हम आपके पुरातन महत्व का यशोगान करते हैं, हे गर्जनशील मरुतो ! योद्धाओं तथा धधकती हुई अग्नि के समान चढ़ाई करते हुए शत्रुओं का संहार करें ॥१ ॥

१७८४. नित्यं न सूनुं मधु बिभ्रत उप क्रीळन्ति क्रीळा विदथेषु घृष्वयः ।
नक्षन्ति रुद्रा अवसा नमस्विनं न मर्धन्ति स्वतवसो हविष्कृतम् ॥२ ॥

युद्ध में शत्रुओं का संहार करने वाले, बालकों के समान मधुर क्रीड़ा करनेवाले रुद्र पुत्र-मरुद्गण, स्तोताओं की उसी तरह रक्षा करते हैं, जैसे पिता पुत्र की ।ये मरुद्गण हविदाता (याजक) को कष्ट नहीं होने देते ॥२ ॥

१७८५. यस्मा ऊमासो अमृता अरासत रायस्पोषं च हविषा ददाशुषे ।
उक्षन्त्यस्मै मरुतो हिता इव पुरू रजांसि पयसा मयोभुवः ॥३ ॥

अविनाशी वीर मरुतों ने अपनी संरक्षण शक्ति से युक्त होकर, जिस हविदाता को धनसम्पदा से परिपुष्ट किया, उसके लिए कल्याणकारी मित्रों के समान सुखदायक होकर उपजाऊ भूमि को प्रचुर जल से सींचते हैं ॥३ ॥

१७८६. आ ये रजांसि तविषीभिरव्यत प्र व एवासः स्वयतासो अध्रजन् ।
भयन्ते विश्वा भुवनानि हर्म्या चित्रो वो यामः प्रयतास्वृष्टिषु ॥४ ॥

हे मरुद्गणो ! आप गतिशील वीर अपनी शक्तियों से सभी का संरक्षण करते हैं । अपने ही अनुशासन में रहने वाले आप जब तीव्र गति से दौड़ते हुए अपने शस्त्रों को चलाते हैं, तब सारे लोक, बड़े-बड़े राजभवन काँप उठते हैं । आपकी ये हलचलें वास्तव में आश्चर्यजनक हैं ॥४ ॥

१७८७. यत् त्वेषयामा नदयन्त पर्वतान्दिवो वा पृष्ठं नर्या अचुच्यवुः ।
विश्वो वो अज्मन्भयते वनस्पती रथीयन्तीव प्र जिहीत ओषधिः ॥५ ॥

हे मरुद्गणो ! तीव्रगति से हमला करने वाले जब आप पहाड़ों को अपनी शब्द ध्वनि से गुञ्जित करते हैं, तथा जनकल्याण के इच्छुक आप अन्तरिक्ष के पृष्ठ भाग से गुजरते हैं, तो उस समय आपकी इस चढ़ाई से सभी वृक्ष भयभीत हो जाते हैं और समस्त ओषधियाँ भी रथ पर आरूढ़ महिलाओं के समान विचलित हो जाती हैं ॥५ ॥

१७८८. यूयं न उग्रा मरुतः सुचेतुनारिष्टग्रामाः सुमतिं पिपर्तन ।
यत्रा वो दिद्युद्रदति क्रिविर्दती रिणाति पश्वः सुधितेव बर्हणा ॥६ ॥



हे मरुतो ! अपने सबल हाथों से तीक्ष्ण हथियारों को धारण किये हुए आप शत्रुसेना का संहार कर देते हैं, तथा शत्रुओं के हिंसक पशुओं का भी वध कर देते हैं । उस समय हे पराक्रमी वीरो ! आप अपनी श्रेष्ठ आन्तरिक भावनाओं से हमें श्रेष्ठ विचार-प्रेरणाएँ प्रदान करें तथा हमारे ग्रामों को न उजाड़ें ॥६ ॥

१७८९. प्र स्कम्भदेष्णा अनवभ्रराधसोऽलातृणासो विदथेषु सुष्टुताः ।
अर्चन्त्यर्कं मदिरस्य पीतये विदुर्वीरस्य प्रथमानि पौंस्या ॥७ ॥

शत्रुओं के संहारक, आश्रयदाता, उत्तम प्रशंसनीय, वीर मरुद्गणों के ऐश्वर्य को कोई नहीं छीन सकता है । ये वीर मरुद्गण सोमरस का पान करने के लिए संग्रामों और यज्ञों में तेजस्वी देवताओं की पूजा करते हैं; क्योंकि उनमें वीरों की शक्तियों की यथोचित परख करने की क्षमता होती है ॥७ ॥

१७९०. शतभुजिभिस्तमभिह्रुतेरघात्पूर्भी रक्षता मरुतो यमावत ।
जनं यमुग्रास्तवसो विरप्शिनः पाथना शंसात्तनयस्य पुष्टिषु ॥८ ॥

हे पराक्रमी, बलिष्ठ और सामर्थ्यवान् वीर मरुतो ! आप जिन्हें विनाश, पापकृत्यों तथा परनिन्दा से बचाते हैं, उन्हें सैकड़ों उपभोग के साधन प्रदान करके, अपना समर्थ संरक्षण देकर, अभेद्य नगरी में निवास योग्य बनाते हैं; ताकि वे अपनी सन्तानों का भली प्रकार से पालन-पोषण कर सकें ॥८ ॥

१७९१. विश्वानि भद्रा मरुतो रथेषु वो मिथस्पृध्येव तविषाण्याहिता ।
अंसेष्वा वः प्रपथेषु खादयोऽक्षो वश्चक्रा समया वि वावृते ॥९ ॥

हे वीर मरुद्गणो ! आपके रथों में सभी कल्याणकारी वस्तुएँ स्थापित हैं । आपके कन्धों पर स्पर्धा योग्य शक्तिशाली आयुध हैं । लम्बे मार्गों के लिए पर्याप्त खाद्य सामग्री संगृहीत है । आपके रथ और चक्र समयानुकूल घूमते हैं ॥९ ॥

१७९२. भूरीणि भद्रा नर्येषु बाहुषु वक्षःसु रुक्मा रभसासो अञ्जयः ।
अंसेष्वेताः पविषु क्षुरा अधि वयो न पक्षान्व्यनु श्रियो धिरे ॥१० ॥

जनहितकारी इन वीर मरुतों की भुजाओं में यथेष्ट कल्याणकारी सामर्थ्य है । उनके वक्षस्थल एवं कन्धों पर विभिन्न वर्णों से युक्त सुदृढ़ रत्नाभूषण सुशोभित हैं । उनके वज्र तीक्ष्ण धार वाले हैं । पक्षियों के पङ्ख धारण करने के समान ये वीर विविध विभूतियाँ धारण करते हैं ॥१० ॥

१७९३. महान्तो मह्ना विभ्वो३ विभूतयो दूरेदृशो ये दिव्या इव स्तृभिः ।
मन्द्राः सुजिह्वाः स्वरितार आसभिः संमिश्ला इन्द्रे मरुतः परिष्टुभः ॥११ ॥

जो वीर मरुद्गण अपनी महत्ता से सामर्थ्यवान्, ऐश्वर्यसम्पन्न, आकाश के नक्षत्रों की भाँति देदीप्यमान, दूरदर्शी, उत्साही सुन्दर वाणी से मधुर गान करने वाले हैं, वे इन्द्रदेव के सहयोगी हैं ।अतः हर प्रकार से प्रशंसनीय हैं ॥११ ॥

१७९४. तद्वः सुजाता मरुतो महित्वनं दीर्घं वो दात्रमदितेरिव व्रतम् ।
इन्द्रश्चन त्यजसा वि ह्रुणाति तज्जनाय यस्मै सुकृते अराध्वम् ॥१२ ॥

हे उत्तम कुल में उत्पन्न वीर मरुद्गण ! आपकी उदारता अदिति (भूमि) के समान ही महान् है । यह आपकी महानता वास्तव में प्रसिद्ध है । जिस पुण्यात्मा (सत्कर्मरत) मनुष्य को आप अपनी त्याग भावना से अनुदान प्रदान करते हैं, इन्द्रदेव भी उसे क्षीण नहीं करते ॥१२ ॥

१७९५. तद्वो जामित्वं मरुतः परे युगे पुरू यच्छंसममृतास आवत ।
अया धिया मनवे श्रुष्टिमाव्या साकं नरो दंसनैरा चिकित्रिरे ॥१३ ॥

हे अमरवीर मरुतो !आपके भ्रातृपन की ख्याति चतुर्दिक् व्याप्त है । प्राचीन काल में जिन स्तोत्रों को सुनकर आप भलीप्रकार हमारा संरक्षण कर चुके हैं, उन्हीं स्तोत्रों के प्रभाव से पराक्रमी नेतृत्व प्रदान करने वाले आप, मनुष्य मात्र के कर्मों के अनुरूप उनके ऐश्वर्य की रक्षा करते हुए उनके दोषादि दूर हटाते हैं ॥१३ ॥

१७९६. येन दीर्घं मरुतः शूशवाम युष्माकेन परीणसा तुरासः ।

आ यत्ततनन्वृजने जनास एभिर्यज्ञेभिस्तदभीष्टिमश्याम् ॥१४ ॥

हे गतिशील वीर मरुद्गण ! आपके जिस महान् ऐश्वर्य के सहयोग से हम विशाल दायित्वों का निर्वाह करते हैं और जिससे समरक्षेत्र की चारों दिशाओं में विजयी होते हैं, उन सभी सामर्थ्यों को हम इन यज्ञीय कर्मों द्वारा प्राप्त करें ॥१४ ॥

१७९७. एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।

एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१५ ॥

हे शूरवीर मरुद्गण ! महान् कवि द्वारा रचित यह आनन्दप्रद काव्य रचना आपकी प्रशंसा के निमित्त है । ये स्तुतियाँ आपकी कामनाओं की पूर्ति एवं शरीर बल बढ़ाने के निमित्त प्राप्त हों । इसी तरह आप भी हमें अन्न, बल और विजयश्री शीघ्रतापूर्वक प्रदान करें ॥१५ ॥

[सूक्त - १६७]

[**ऋषि**- अगस्त्य मैत्रावरुणि । **देवता** -१ इन्द्र, २-११ मरुद्गण । **छन्द**-त्रिष्टुप् ; (१० पुरस्ताज्ज्योति) ।]

१७९८. सहस्रं त इन्द्रोतयो नः सहस्रमिषो हरिवो गूर्ततमाः ।

सहस्रं रायो मादयध्यै सहस्रिण उप नो यन्तु वाजाः ॥१ ॥

हे अश्व युक्त इन्द्रदेव ! आपके हजारों रक्षा साधन हमारे संरक्षण के निमित्त हैं । हे इन्द्रदेव ! आप हजारों प्रकार के प्रशंसनीय अन्न, आनन्दित करनेवाले धन तथा असीमित बल हमें प्रदान करें ॥१ ॥

१७९९. आ नोऽवोभिर्मरुतो यान्त्वच्छा ज्येष्ठेभिर्वा बृहद्दिवैः सुमायाः ।

अध यदेषां नियुतः परमाः समुद्रस्य चिद्धनयन्त पारे ॥२ ॥

ये अति कुशल वीर मरुद्गण अपने पुरुषार्थी संरक्षण सामर्थ्यों तथा महान् ऐश्वर्य के साथ हमारे समीप पधारें । इनके 'नियुत' नामक श्रेष्ठ अश्व समुद्र पार से (अति दूर से) भी धन ले आते हैं ॥२ ॥

१८००. मिम्यक्ष येषु सुधिता घृताची हिरण्यनिर्णिगुपरा न ऋष्टिः ।

गुहा चरन्ती मनुषो न योषा सभावती विदथ्येव सं वाक् ॥३ ॥

मेघ मण्डल में स्थित विद्युत् के समान ही जिन वीर मरुद्गणों के मजबूत हाथों में स्वर्णवत् चमकने वाली तलवार (मर्यादा में रहने वाली पत्नी के समान) परदे (म्यान) में छिपी रहती है । वह विद्वानों की वाणी के समान किन्हीं विशेष परिस्थितियों में बाहर आकर अपना स्वरूप दर्शाती है ॥३ ॥

१८०१. परा शुभ्रा अयासो यव्या साधारण्येव मरुतो मिमिक्षुः ।

न रोदसी अप नुदन्त घोरा जुषन्त वृधं सख्याय देवाः ॥४ ॥

गतिमान् एवं तेजस्वी मरुद्गण भूमि पर दूर-दूर तक जल की वृष्टि करते हैं । (विशिष्ट होते हुए भी) साधारण व्यक्तियों की तरह मरुद्गण द्युलोक एवं भूलोक में विद्यमान किसी की भी उपेक्षा नहीं करते, सभी से मित्रता बनाए रखते हैं । इसी कारण ये (मरुद्गण) महान् हैं ॥४ ॥



१८०२. जोषद्यदीमसुर्या सचध्यै विषितस्तुका रोदसी नृमणाः ।

आ सूर्येव विधतो रथं गात्त्वेषप्रतीका नभसो नेत्या ॥५ ॥

मनुष्यों के मन को हरने वाली, जीवन प्रदायिनी विद्युत् ने मरुद्गणों का वरण किया । विविध किरणों को समेटती हुई सूर्य की भाँति तेजस्वी वह विद्युत् इन (मरुद्गणों) के साथ रथ पर आरूढ़ होती है ॥५ ॥

१८०३. आस्थापयन्त युवतिं युवानः शुभे निमिश्लां विदथेषु पज्राम् ।

अर्को यद्वो मरुतो हविष्मान्गायद्गाथं सुतसोमो दुवस्यन् ॥६ ॥

हे वीर मरुद्गण ! जब हविष्यान्न युक्त, सोमरस लेकर सम्मान प्राप्त साधक यज्ञों में स्तोत्रों का गायन करते हुए आप सभी की पूजा करते हैं, तब याजक की बलशाली नव यौवना पत्नी को आप शुभ यज्ञ (सन्मार्ग) में ले आते हैं ॥६ ॥

१८०४. प्र तं विवक्मि वक्म्यो य एषां मरुतां महिमा सत्यो अस्ति ।

सचा यदीं वृषमणा अहंयुः स्थिरा चिज्जनीर्वहते सुभागाः ॥७ ॥

इन वीर मरुद्गणों की स्तुत्य महिमा का हम यथावत् वर्णन करते हैं । इनकी महिमा के अनुरूप सुस्थिर भूमि भी इनकी अनुगामिनी बनकर, इन सामर्थ्यवानों से प्रेम करती हुई, स्वाभिमान की रक्षा करती हुई सौभाग्यशाली प्रज्ञा का पोषण करती है ॥७ ॥

१८०५. पान्ति मित्रावरुणाववद्याच्चयत ईमर्यमो अप्रशस्तान् ।

उत च्यवन्ते अच्युता ध्रुवाणि वावृध ईं मरुतो दातिवारः ॥८ ॥

मित्र, वरुण और अर्यमा, निंदनीय दोष विकारों एवं निंदनीय पदार्थों के उपयोग से आपको बचाते हैं । हे मरुतो ! आप अडिग अपराजेयों को भी पदों से च्युत कर देते हैं । आपका दिया अनुदान निरन्तर बढ़ता रहता है ॥८ ॥

१८०६. नही नु वो मरुतो अन्त्यस्मे आरात्ताच्चिच्छवसो अन्तमापुः ।

ते धृष्णुना शवसा शूशुवांसोऽर्णो न द्वेषो धृषता परि ष्ठुः ॥९ ॥

हे वीर मरुतो ! आपकी सामर्थ्य अनन्त है, जिसका ज्ञान दूर या नजदीक से किसी भी प्रकार कर पाना असम्भव है । आपकी शक्ति, शत्रु सेना को जल के समान घेरकर विनष्ट कर डालती है ॥९ ॥

१८०७. वयमद्येन्द्रस्य प्रेष्ठा वयं श्वो वोचेमहि समर्ये ।

वयं पुरा महि च नो अनु द्यून् तन्न ऋभुक्षा नरामनु ष्यात् ॥१० ॥

आज हम इन्द्रदेव के विशेष कृपापात्र बने हैं, उसी प्रकार कल (भविष्य में) भी उनके कृपापात्र बने रहें । हम इन्द्रदेव की प्रतिदिन प्रार्थना करते हैं, जिससे हम सदैव विजयश्री का वरण करते हुए महानता को प्राप्त हों । इन्द्रदेव की कृपा हम सभी के लिए अनुकूल हो ॥१० ॥

१८०८. एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।

एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥११ ॥

हे मरुद्गण ! ये स्तोत्र आपके निमित्त उच्चारित किये जा रहे हैं । अतएव आनन्दप्रद तथा सम्माननीय आप स्तोता के शारीरिक पोषण के निमित्त आएँ और हमें भी अन्न, बल और विजयश्री दिलाने वाला ऐश्वर्य प्रदान करें ॥११ ॥

[सूक्त - १६८]

[ऋषि- अगस्त्य मैत्रावरुणि । देवता - मरुद्गण । छन्द-जगती; ८-१० त्रिष्टुप् ।]

१८०९. यज्ञायज्ञा वः समना तुतुर्वणिर्धियन्धियं वो देवया उ दधिध्वे ।

आ वोऽर्वाचः सुविताय रोदस्योर्महे ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥१ ॥

हे मरुद्गण ! प्रत्येक यज्ञीय कर्म में आपके मन की अनुकूलता ही कार्य को तत्परता से सम्पन्न करा लेती है । आपका चिन्तन देवत्व की ओर ही उन्मुख होता है । हम आकाश और पृथ्वी की सुस्थिरता तथा संरक्षण की कामना से श्रेष्ठ स्तुतियों द्वारा आपको यहाँ आवाहित करते हैं ॥१ ॥

१८१०. वव्रासो न ये स्वजाः स्वतवस इषं स्वरभिजायन्त धूतयः ।

सहस्रियासो अपां नोर्मय आसा गावो वन्द्यासो नोक्षणः ॥२ ॥

हे मरुद्गण ! आप अपनी सामर्थ्य से अत्यधिक पौष्टिक अन्न की प्राप्ति के लिए स्वयं प्रकट हुए हैं । आप जल की लहरों के समान हजारों लोगों द्वारा प्रशंसित हैं । आप पूज्य गौ आदि (पशुधन) के समान सदैव हमारे समीप रहें ॥२ ॥

१८११. सोमासो न ये सुतास्तृप्तांशवो हृत्सु पीतासो दुवसो नासते ।

ऐषामंसेषु रम्भिणीव रारभे हस्तेषु खादिश्च कृतिश्च सं दधे ॥३ ॥

सोमरस पान करने से जिस प्रकार तृप्ति होती है, उसी प्रकार इन मरुद्गणों के कंधों पर सुशोभित आयुधों का आश्रय प्राप्त कर सेना प्रसन्न एवं निर्भय होती है ।इन मरुद्गणों के हाथों में अलंकृत तलवारें भी सुशोभित हैं ॥३ ॥

१८१२. अव स्वयुक्ता दिव आ वृथा ययुरमर्त्याः कशया चोदत त्मना ।

अरेणवस्तुविजाता अचुच्यवुर्दृळ्हानि चिन्मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥४ ॥

अपनी ही इच्छा से कर्मरत ये मरुद्गण दिव्यलोक से अनायास ही अन्तरिक्ष में आये हैं । हे अविनाशी मरुतो ! आप अपनी शक्तियों से प्रेरणा प्रदान करें । प्रखर एवं तेजस्वी शक्तियों से हथियारों को धारण करने वाले ये वीर मरुद्गण प्रबलतम शत्रुओं को भी परास्त कर देते हैं ॥४ ॥

१८१३. को वोऽन्तर्मरुत ऋष्टिविद्युतो रेजति त्मना हन्वेव जिह्वया ।

धन्वच्युत इषां न यामनि पुरुप्रैषा अहन्यो३ नैतशः ॥५ ॥

हे आयुधों से सुशोभित वीर मरुतो ! आप अन्न वृद्धि के लिए विशेष प्रेरणाएँ प्रदान करते हैं । धनुष से छोड़े गये बाण के समान, प्रशिक्षित अश्वों के समान तथा जीभ के साथ स्वतः चलायमान हनु (ठुड्डी) की तरह कौन आपको गतिशील करता है ? ॥५ ॥

१८१४. क्व स्विदस्य रजसो महस्परं क्वावरं मरुतो यस्मिन्नायय ।

यच्च्यावयथ विथुरेव संहितं व्यद्रिणा पतथ त्वेषमर्णवम् ॥६ ॥

हे वीर मरुद्गण ! आप जिस महान् तथा असीम अन्तरिक्ष से आते हैं, उसका आदि-अन्त कौन सा है ? जब आप सघन बादलों को हिलाते हैं, उस समय वज्र प्रहार से आश्रयहीन होने के समान वे तेजस्वी बादल जल वृष्टि करने लगते हैं ॥६ ॥

१८१५. सातिर्न वोऽमवती स्वर्वती त्वेषा विपाका मरुतः पिपिष्वती ।

भद्रा वो रातिः पृणतो न दक्षिणा पृथुज्रयी असुर्येव जञ्जती ॥७ ॥



हे वीर मरुद्‌गण ! आपके अनुदानों की तरह ही आपकी सम्पदा भी है । वह सामर्थ्यवान्, सुखप्रद, तेजसम्पन्न, विशिष्ट फलदायक, शत्रुदल संहारक तथा कल्याणकारी है । आपकी कृपा दक्षिणा के समान ही विजय प्रदान करने वाली और दैवी शक्ति के समान शत्रु को परास्त करने वाली है ॥७ ॥

१८१६. प्रति ष्टोभन्ति सिन्धवः पविभ्यो यदभ्रियां वाचमुदीरयन्ति ।

अव स्मयन्त विद्युतः पृथिव्यां यदी घृतं मरुतः प्रुष्णुवन्ति ॥८ ॥

जब इन वीर मरुद्‌गणों के रथ के पहियों से मेघों के गर्जन के समान प्रतिध्वनि सुनाई देती है, तब नदियों के जल प्रवाह में भारी खलबली मच जाती है । वीर मरुद्‌गण जब जल वृष्टि करते हैं, तब पृथ्वी पर विद्युत् तरंगें मानो हास्य कर रही प्रतीत होती हैं ॥८ ॥

१८१७. असूत पृश्निर्महते रणाय त्वेषमयासां मरुतामनीकम् ।

ते सप्सरासोऽजनयन्ताभ्वमादित्स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ॥९ ॥

मातृभूमि की प्रेरणा से महासंग्राम के लिए गतिशील वीर मरुतों की प्रखर तेजस्वी सेना अस्तित्व में आयी । संगठित होकर शत्रुओं पर प्रहार करने वाले इन वीरों ने संग्राम में प्रखर तेजस्विता का परिचय दिया । उसके बाद सभी ने अन्न उत्पादक एवं धारक क्षमताओं को भी चारों ओर फैले हुए अनुभव किया ॥९ ॥

१८१८. एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।

एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१० ॥

हे वीर मरुतो ! सम्माननीय कवियों द्वारा आपको प्रसन्न करने के लिए उनके द्वारा की गई काव्य रचना आपके निमित्त समर्पित है । ये स्तुतियाँ आपको परिपुष्ट बनाएँ । हमें भी अन्न, बल तथा विजय प्राप्त कराएँ ॥१० ॥

[सूक्त - १६९]

[ऋषि- अगस्त्य मैत्रावरुणि । देवता - इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप्; २ चतुष्पदाविराट् ।]

१८१९. महश्चित्त्वमिन्द्र यत एतान्महश्चिदसि त्यजसो वरूता ।

स नो वेधो मरुतां चिकित्वान्त्सुम्ना वनुष्व तव हि प्रेष्ठा ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप महान् देवताओं के एवं त्याग की प्रतिमूर्ति मरुद्‌गणों के भी संरक्षक हैं । हे ज्ञान सम्पन्न इन्द्रदेव ! आप हमसे परिचित हैं, अतः मरुद्‌गणों और अपनी प्रिय सामग्री हमें प्रदान करें ॥१ ॥

१८२०. अयुज्रन्त इन्द्र विश्वकृष्टीर्विदानासो निष्षिधो मर्त्यत्रा ।

मरुतां पृत्सुतिर्हासमाना स्वर्मीळ्हस्य प्रधनस्य सातौ ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिन मरुद्‌गणों की सेना युद्ध के प्रारम्भ होने पर विशेष हर्षित होती हुई, सुख की अनुभूति करती है । शत्रुओं को दूर भगाने वाले वे सम्पूर्ण मनुष्यों के ज्ञाता मरुद्‌गण, सर्वोत्तम आपका ही सहयोग करते हैं ॥२ ॥

१८२१. अम्यक्सा त इन्द्र ऋष्टिरस्मे सनेम्यभ्वं मरुतो जुनन्ति ।

अग्निश्चिद्धि ष्मातसे शुशुक्वानापो न द्वीपं दधति प्रयांसि ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके द्वारा सृजित (वज्र) हमें उपलब्ध हो । ये मरुद्‌गण सदैव जल वृष्टि करते हैं ।जिस प्रकार अग्नि काष्ठ को और जल द्वीप को धारण करता है । उसी प्रकार मरुद्‌गण अन्न (पोषण) प्रदान करते हैं ॥३ ॥

१८२२. त्वं तू न इन्द्र तं रयिं दा ओजिष्ठया दक्षिणयेव रातिम् ।

स्तुतश्च यास्ते चकनन्त वायोः स्तनं न मध्वः पीपयन्त वाजैः ॥४ ॥



हे इन्द्रदेव ! मधुर दूध से जिस प्रकार स्तन परिपुष्ट होते हैं, वैसे ही हमारी स्तोत्र वाणियों से प्रसन्न होकर आप अभीष्ट अन्नादि से हमें परिपुष्ट करें । दक्षिणा में प्राप्त धन की तरह ही हमें धन सम्पदाओं से सम्पन्न बनाएँ ॥४ ॥

१८२३. त्वे राय इन्द्र तोशतमाः प्रणेतारः कस्य चिदृतायोः ।

ते षु णो मरुतो मृळयन्तु ये स्मा पुरा गातूयन्तीव देवाः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके पास ऐसी धन सम्पदा है, जो यजमानों को संतुष्ट करके उन्हें यज्ञीय सत्कर्मों की ओर प्रेरित करती है । हे इन्द्रदेव ! जो मरुद्गण प्राचीन काल से ही यज्ञीय सत्कर्मों के पूर्वाभ्यासी हैं, वे हमें सुख-सौभाग्य प्रदान करें ॥५ ॥

१८२४. प्रति प्र याहीन्द्र मीळ्हुषो नॄन्महः पार्थिवे सदने यतस्व ।

अध यदेषां पृथुबुध्नास एतास्तीर्थे नार्यः पौंस्यानि तस्थुः ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप व्यापक स्तर पर जल वृष्टि के लिए अग्रणी मरुद्गणों के समीप जाएँ और उनके साथ मिलकर भूमण्डल में पराक्रम का परिचय दें । युद्ध में पराक्रम करने के समान मरुत् के अश्व (मेघों पर) आक्रमण करते हैं ॥६ ॥

१८२५. प्रति घोराणामेतानामयासां मरुतां शृण्व आयतामुपब्दिः ।

ये मर्त्यं पृतनायन्तमूमैर्ऋणावानं न पतयन्त सर्गैः ॥७ ॥

जिस प्रकार ऋणी मनुष्य को अपराधी मानकर दण्डित किया जाता है, उसी प्रकार इन्द्रदेव के सहयोगी मरुद्गण भी युद्धाकांक्षी असुरों को शस्त्रों के प्रहार से जकड़कर, जमीन पर पटक देते हैं; तब भयंकर, शीघ्र गमनशील, आक्रमणकारी और शत्रुओं को घेरने वाले इन मरुतों का शब्दनाद सुनाई देता है ॥७ ॥

१८२६. त्वं मानेभ्य इन्द्र विश्वजन्या रदा मरुद्भिः शुरुधो गोअग्राः ।

स्तवानेभिः स्तवसे देव देवैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप मरुतों के सहयोग से अपनी विश्व-उत्पादक सामर्थ्य से, अपनी प्रतिष्ठा के लिए गौओं को आगे रखकर (अपने बचाव के लिए) युद्ध लड़ रही शोषण कारी शत्रु सेना का संहार करें । हे इन्द्रदेव ! आपकी प्रार्थना स्तुत्य देवताओं के साथ ही की जाती है । हम आपके सहयोग से अन्न, बल और विजयश्री प्राप्त करें ॥८ ॥

[सूक्त - १७०]

[**ऋषि** - १,३ इन्द्र; ४इन्द्र अथवा अगस्त्य; २,५ अगस्त्य मैत्रावरुणि । **देवता**- इन्द्र । **छन्द** - १बृहती; २-४ अनुष्टुप् ; ५त्रिष्टुप् ।]

१८२७. न नूनमस्ति नो श्वः कस्तद्वेद यदद्भुतम् ।

अन्यस्य चित्तमभि सञ्चरेण्यमुताधीतं वि नश्यति ॥१ ॥

(इन्द्र का कथन) जो आज नहीं, वो कल भी नहीं (प्राप्त होगा) । जो हुआ ही नहीं है, उसे कैसे ज़ाना ज़ा सकता है ?दूसरे का चित्त चलायमान है, अत: वह संकल्प करेगा, तो भी बदल सकता है ॥१ ॥

१८२८. किं न इन्द्र जिघांससि भ्रातरो मरुतस्तव ।

तेभिः कल्पस्व साधुया मा नः समरणे वधीः ॥२ ॥

(अगस्त्य का कथन) हे इन्द्रदेव ! मुझ निरपराधी का वध आप क्यों करना चाहते हैं ?मरुद्गण आपके भाई हैं । आप उनके साथ यज्ञ के श्रेष्ठ भाग को प्राप्त करें । हे इन्द्रदेव ! हमें युद्ध क्षेत्र में हिंसित न करें ॥२ ॥



१८२९. किं नो भ्रातरगस्त्य सखा सन्नति मन्यसे ।

विद्मा हि ते यथा मनोऽस्मभ्यमिन्न दित्ससि ॥३ ॥

हे भ्रातृस्वरूप अगस्त्य ! आप हमारे मित्र होकर हमारा अपमान क्यों करते हैं ? आपका मन जिस (लोभ) भावना से ग्रस्त है, उसे हम भली प्रकार जानते हैं । आप हमारा भाग हमें नहीं देना चाहते हैं ॥३ ॥

१८३०. अरं कृण्वन्तु वेदिं समग्निमिन्धतां पुरः । तत्रामृतस्य चेतनं यज्ञं ते तनवावहै ॥४ ॥

याज्ञिक जन, यज्ञ वेदिका को भली प्रकार सुसज्जित करें । उसमें सबसे पहले अग्नि को प्रज्वलित करें । वहाँ पर हम आपके निमित्त अमरत्व को जाग्रत् करने वाली यज्ञीय भावनाओं को विस्तारित करें ॥४ ॥

१८३१. त्वमीशिषे वसुपते वसूनां त्वं मित्राणां मित्रपते धेष्ठः ।

इन्द्र त्वं मरुद्भिः सं वदस्वाध प्राशान ऋतुथा हवींषि ॥५ ॥

हे धनाधिपति इन्द्रदेव ! आप सम्पूर्ण धनों को अपने स्वामित्व में रखते हैं । हे मित्र रक्षक ! आप मित्रों के विशेष धारण करने योग्य आश्रय हैं । हे इन्द्रदेव ! आप मरुद्गणों के साथ सद्व्यवहार करें और उनके साथ ऋतुओं के अनुसार हमारे द्वारा प्रदत्त आहुतियों का सेवन करें ॥५ ॥

[सूक्त - १७१]

[ऋषि- अगस्त्य मैत्रावरुणि । देवता- मरुद्गण, ३-६ मरुत्वानिन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

१८३२. प्रति व एना नमसाहमेमि सूक्तेन भिक्षे सुमतिं तुराणाम् ।

रराणता मरुतो वेद्याभिर्नि हेळो धत्त वि मुचध्वमश्वान् ॥१ ॥

हे मरुद्गण ! हम स्तुति गान करते हुए विनयावनत हो आपके समीप आते हैं । तीव्र गति से जाने वाले आप वीरों के श्रेष्ठ परामर्शों की हम याचना करते हैं । इन ज्ञानवर्धक स्तुतियों से हर्षित होकर किसी भी प्रकार के विद्वेष को भुला दें तथा रथ से घोड़ों को मुक्त कर दें (यहीं हमारे समीप रहें) ॥१ ॥

१८३३. एष वः स्तोमो मरुतो नमस्वान्हृदा तष्टो मनसा धायि देवाः ।

उपेमा यात मनसा जुषाणा यूयं हि ष्ठा नमस इद्वृधासः ॥२ ॥

हे वीर मरुतो ! इस विनम्रभाव तथा एकाग्र मन से रचित स्तोत्रों को आप ध्यानपूर्वक सुनें । हे दिव्य वीरो ! हृदय से हमारे स्तोत्र से प्रशंसित होकर आप हमारे समीप आयें । आप ही इस (हव्य) को बढ़ाने वाले हैं ॥२ ॥

१८३४. स्तुतासो नो मरुतो मृळयन्तूत स्तुतो मघवा शम्भविष्ठः ।

ऊर्ध्वा नः सन्तु कोम्या वनान्यहानि विश्वा मरुतो जिगीषा ॥३ ॥

स्तुतियों से प्रशंसित होकर मरुद्गण हमारे लिए सुख-सौभाग्य प्रदान करें, उसी प्रकार सबके सुखप्रदायक, वैभवशाली इन्द्रदेव भी स्तुतियों से प्रसन्न होकर हमें सुखी करें । हे मरुद्गण ! हमारा शेष जीवन प्रशंसनीय, सुन्दर तथा योग्य बने ॥३ ॥

१८३५. अस्मादहं तविषादीषमाण इन्द्राद्भिया मरुतो रेजमानः ।

युष्मभ्यं हव्या निशितान्यासन्तान्यारे चकृमा मृळता नः ॥४ ॥

हे मरुतो ! इन शक्तिशाली इन्द्रदेव के भय से हम घबराते और काँपते हैं । (भय के कारण) आपके निमित्त तैयार की गयी आहुतियाँ एक तरफ कर दी गयीं । अतः (आप हमारे ऊपर नाराज न हों, अपितु) हमें सुखी बनायें ॥४ ॥



१८३६. येन मानासश्चितयन्त उस्रा व्युष्टिषु शवसा शश्वतीनाम्।
स नो मरुद्भिर्वृषभ श्रवो धा उग्र उग्रेभिः स्थविरः सहोदाः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी जिस सामर्थ्य से प्रेरित होकर किरणें नित्य उषाओं के प्रकाशित होने पर सर्वत्र आलोक फैलाती हैं । हे सामर्थ्यवान् इन्द्रदेव ! पराक्रमियों में सर्वश्रेष्ठ, शूरवीर तथा बलप्रद आप मरुतों के सहयोग से हमें अन्न प्रदान करें ॥५ ॥

१८३७. त्वां पाहीन्द्र सहीयसो नॄन्भवा मरुद्भिरवयातहेळाः ।
सुप्रकेतेभिः सासहिर्दधानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप शत्रुओं का संहार करने वाले नेतृत्वकर्त्ताओं का संरक्षण करें और मरुतों के साथ रहने वाले आप क्रोध से रहित हों । श्रेष्ठ तेजस्विता से सम्पन्न तथा शत्रुविनाशक सामर्थ्य को आप धारण करते हैं । हम भी अन्न, बल और दाता की वृत्ति को स्वाभाविक रूप में धारण करें ॥६ ॥

[सूक्त - १७२]

[ऋषि- अगस्त्य मैत्रावरुणि । देवता- मरुद्गण । छन्द- गायत्री ।]

१८३८. चित्रो वोऽस्तु यामश्चित्र ऊती सुदानवः । मरुतो अहिभानवः ॥१ ॥

हे श्रेष्ठ दानवीर, अक्षय तेजसम्पन्न मरुतो !आपकी गति आश्चर्यजनक है, संरक्षण सामर्थ्य भी विलक्षण है ॥१ ॥

१८३९. आरे सा वः सुदानवो मरुत ऋञ्जती शरुः । आरे अश्मा यमस्यथ ॥२ ॥

हे श्रेष्ठ दानवीर मरुद्गण ! आपके तीव्र गति से, शत्रु समूह पर फेंके गये शस्त्र हमसे दूर रहें । जिस वज्र से आप शत्रुओं पर प्रहार करें, वह भी हमसे दूर ही रहे ॥२ ॥

१८४०. तृणस्कन्दस्य नु विशः परिवृङ्क्त सुदानवः । ऊर्ध्वान्नः कर्त जीवसे ॥३ ॥

हे श्रेष्ठ दानवीर मरुद्गण ! तिनके के समान सुगमता से नष्ट होने वाले इन प्रजाजनों को आप पतन के मार्ग से रोकें । हम प्रजाजनों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाकर दीर्घायु प्रदान करें ॥३ ॥

[सूक्त - १७३]

[ऋषि- अगस्त्य मैत्रावरुणि । देवता - इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप्, ४ विराट् स्थाना अथवा विषमपदा ।]

१८४१. गायत्साम नभन्यं१ यथा वेरर्चाम तद्वावृधानं स्वर्वत् ।
गावो धेनवो बर्हिष्यदब्धा आ यत्सद्मानं दिव्यं विवासान् ॥१ ॥

कामनाओं की पूर्ति करनेवाली गौएँ (वाणी) यज्ञ में विराजमान् इन्द्रदेव की सेवा करती हैं । आप अपने ज्ञान के अनुसार शत्रु-हिंसक साम का गायन करें । हम भी इसी प्रकार इन्द्रदेव के लिए सुखदायी तथा उन्नतिकारी साम का गान करते हैं ॥१ ॥

१८४२. अर्चद्वृषा वृषभिः स्वेदुहव्यैर्मृगो नाश्नो अति यज्जुगुर्यात् ।
प्र मन्दयुर्मनां गूर्त होता भरते मर्यो मिथुना यजत्रः ॥२ ॥

जिस समय हवि सेवन के इच्छुक इन्द्रदेव, सिंह के समान, अपने भक्ष्य (आहुतियों) की कामना करते हैं, उसी समय तेजस्वी ऋत्विज् सामर्थ्यवर्धक अपना हविष्यान्न इन्द्रदेव को समर्पित करते हैं । हे पुरुषार्थी इन्द्रदेव ! हविदाता, यज्ञकर्त्ता तथा होता, स्तोताओं के साथ मिलकर मन्त्रोच्चारपूर्वक आपके निमित्त हव्य प्रदान करते हैं ॥२ ॥



१८४३. नक्षद्धोता परि सद्म मिता यन्भरद्गर्भमा शरदः पृथिव्याः ।
क्रन्ददश्वो नयमानो रुवद्गौरन्तर्दूतो न रोदसी चरद्वाक् ॥३ ॥

होता इन्द्रदेव गतिशील होकर सर्वत्र संव्याप्त होते हैं और शरद ऋतु से पूर्व (वर्षा ऋतु में) पृथ्वी के भीतरी भाग को जल से भर देते हैं । इन्द्रदेव को आते देखकर अश्व शब्द करते हैं, गौएँ भी रँभाती हैं । द्युलोक तथा भूलोक के बीच इन्द्रदेव दूत के समान घूमते हैं ॥३ ॥

१८४४. ता कर्माषतरास्मै प्र च्यौत्नानि देवयन्तो भरन्ते ।
जुजोषदिन्द्रो दस्मवर्चा नासत्येव सुग्म्यो रथेष्ठाः ॥४ ॥

देवों के उपासक ऋत्विजों द्वारा जो शत्रु-संहारक हवि इन्द्रदेव के लिए अर्पित की जाती है, वही भली प्रकार से तैयार की गई हवि हम आपके निमित्त अर्पित करते हैं । दर्शनीय तेजस्विता युक्त और श्रेष्ठ गतिशील, रथ पर आरूढ़ वे इन्द्रदेव अश्विनीकुमारों के समान हमारे द्वारा प्रदत्त आहुतियों को स्वीकार करें ॥४ ॥

१८४५. तमु ष्टुहीन्द्रं यो ह सत्वा यः शूरो मघवा यो रथेष्ठाः ।
प्रतीचश्चिद्योधीयान्वृषण्वान्ववव्रुषश्चित्तमसो विहन्ता ॥५ ॥

हे मनुष्यो ! जो इन्द्रदेव शत्रुसंहारक, शूरवीर, ऐश्वर्य सम्पन्न, उत्तम सारथि, असंख्य विरोधियों से निर्भीकता पूर्वक युद्ध करने वाले, प्रचुर सामर्थ्य युक्त और छाये हुए अज्ञान रूपी अन्धकार के नाशक हैं, ऐसे गुणों से सम्पन्न इन्द्रदेव की ही आप अर्चना करें ॥५ ॥

१८४६. प्र यदित्था महिना नृभ्यो अस्त्यरं रोदसी कक्ष्ये३ नास्मै ।
सं विव्य इन्द्रो वृजनं न भूमा भर्ति स्वधावाँ ओपशमिव द्याम् ॥६ ॥

इन्द्रदेव अपनी महिमा से मनुष्यों के प्रभु हैं, उनके लिये कक्ष के ही समान आकाश और पृथ्वी, दोनों लोक पर्याप्त नहीं ।वे इन्द्रदेव बालों के समान पृथ्वी को तथा बैल के सींग के समान द्युलोक को धारण किये हुए हैं ॥६ ॥

१८४७. समत्सु त्वा शूर सतामुराणं प्रपथिन्तमं परितंसयध्यै ।
सजोषस इन्द्रं मदे क्षोणीः सूरिं चिद्ये अनुमदन्ति वाजैः ॥७ ॥

जो उत्साही वीरगण आनन्दित स्थिति में अन्नों के द्वारा ज्ञान सम्पन्न इन्द्रदेव को मरुतों के साथ प्रसन्न करते हैं, हे वीर इन्द्रदेव !वे सर्वोत्तम, श्रेष्ठ, मार्गदर्शक मानकर आपको ही युद्ध भूमि में भी अग्रणी स्थान प्रदान करते हैं॥७

१८४८. एवा हि ते शं सवना समुद्र आपो यत्त आसु मदन्ति देवीः ।
विश्वा ते अनु जोष्या भूद्गौः सूरींश्चिद्यदि धिषा वेषि जनान् ॥८ ॥

जब जलों को समुद्र तथा समस्त भूक्षेत्रों में बरसाने के लिए इन्द्रदेव की स्तुति की जाती है, तब जल वृष्टि की कामना से किये जा रहे यज्ञ आनन्दप्रद होते हैं । जब ज्ञानी मनुष्य भावनापूर्वक इन्द्रदेव की प्रार्थना करते हैं, तब हर्षित इन्द्रदेव उन्हें अभीष्ट फल प्रदान करते हैं ॥८ ॥

१८४९. असाम यथा सुषखाय एन स्वभिष्टयो नरां न शंसैः ।
असद्यथा न इन्द्रो वन्दनेष्ठास्तुरो न कर्म नयमान उक्था ॥९ ॥

हे स्वामी इन्द्रदेव ! आप हमारे साथ वही व्यवहार करें, जिससे हमारी मित्रता आपके साथ रहे और हमारी स्तोत्र वाणियाँ आप से अभीष्ट साधनों की पूर्ति भी करा सकें । आप हमारी प्रार्थनाओं को सुनकर शीघ्र ही हमें कर्तव्यों का निर्वाह करने की शक्ति प्रदान करें ॥९ ॥

१८५०. विष्पर्धसो नरां न शंसैरस्माकासदिन्द्रो वज्रहस्तः ।

मित्रायुवो न पूर्पतिं सुशिष्टौ मध्यायुव उप शिक्षन्ति यज्ञैः ॥१० ॥

याज्ञिकों के समान ही स्तोता लोग भी प्रशंसक वाणियों के द्वारा प्रतिस्पर्धा भावना से इन्द्रदेव की स्तुति करते हैं, ताकि वज्रधारी इन्द्रदेव की मित्रता हमें प्राप्त हो । जैसे मध्यस्थ लोग शिष्टाचारवश मित्रता की कामना से कुछ (उपहार) देते हैं, वैसे ही राष्ट्र रक्षक इन्द्रदेव को यज्ञों के द्वारा दान स्वरूप हविष्यान्न समर्पित करते हैं ॥१० ॥

१८५१. यज्ञो हि ष्मेन्द्रं कश्चिदृन्धञ्जुहुराणश्चिन्मनसा परियन् ।

तीर्थे नाच्छा तातृषाणमोको दीर्घो न सिध्रमा कृणोत्यध्वा ॥११ ॥

प्रत्येक यज्ञीय कर्म इन्द्रदेव को संवर्द्धित करते हैं, दुर्भावजन्य कुटिलता से किये गये यज्ञ से इन्द्रदेव प्रसन्न नहीं होते हैं । जिस प्रकार तीर्थ यात्रा में प्यासे को समीप का जल ही तुष्टि देता है, (दूर दिखने वाला जल तृप्त नहीं करता) उसी प्रकार श्रेष्ठ यज्ञ ही इन्द्रदेव को प्रसन्नता प्रदान करता है । जैसे लम्बा पथ पीड़ा पहुँचाता है, वैसे ही कुटिलतापूर्ण यज्ञ कुटिल फल प्रदान करता है ॥११ ॥

१८५२. मो षू ण इन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवयाः ।

महश्चिद्यस्य मीळ्हुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप (मरुतों के साथ युद्ध में) हमारा भी साथ मत छोड़ना । हे बलशाली ! आपके लिए यज्ञ भाग प्रस्तुत है । हमारी सुख देने वाली, फलित होनेवाली स्तुतियाँ अन्न और जल देने वाले मरुतों की भी वन्दना करती हैं ॥१२ ॥

१८५३. एष स्तोम इन्द्र तुभ्यमस्मे एतेन गातुं हरिवो विदो नः ।

आ नो ववृत्याः सुविताय देव विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१३ ॥

हे अश्वों से सम्पन्न देवस्वरूप इन्द्रदेव ! हमारी ये स्तुतियाँ आपके निमित्त हैं, इनसे हमारे यज्ञ के उद्देश्य को समझें । हमें कल्याणकारी धन सम्पदा प्रदान करें; जिससे हम अन्न, बल तथा विजयश्री प्रदान करने वाले सैनिकों को प्राप्त करें ॥१३ ॥

[सूक्त - १७४]

[ऋषि- अगस्त्य मैत्रावरुणि । देवता- इन्द्र । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

१८५४. त्वं राजेन्द्र ये च देवा रक्षा नृन्पाह्यसुर त्वमस्मान् ।

त्वं सत्पतिर्मघवा नस्तरुत्रस्त्वं सत्यो वसवानः सहोदाः ॥१ ॥

हे सामर्थ्यवान् इन्द्रदेव ! आप संसार के अधिपति हैं । देवशक्तियों के सहयोग से आप मनुष्यों की रक्षा करें । आप सत्कर्मशील मनुष्यों के पालक हैं, आप हम वीरों को संरक्षित करें । आप ऐश्वर्यवान् हमारे तारणकर्त्ता हैं । आप ही श्रेष्ठ आश्रय दाता और बलदाता हैं ॥१ ॥

१८५५. दनो विश इन्द्र मृध्रवाचः सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्त् ।

ऋणोरपो अनवद्यार्णा यूने वृत्रं पुरुकुत्साय रन्धीः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस समय आपने शरदकालीन निवास योग्य शत्रुनगरों के सात भवनों को विनष्ट किया, उसी समय कटुभाषी शत्रुसैनिकों को भी विनष्ट कर दिया । हे अनिन्दनीय इन्द्रदेव ! आपने प्रवाहित होने वाले जलों के द्वारों को खोल दिया और युवा 'पुरुकुत्स' के लिए वृत्रासुर का संहार किया ॥२ ॥

१८५६. अजा वृत इन्द्र शूरपत्नीर्द्यां च येभिः पुरुहूत नूनम् ।

रक्षो अग्निमशुषं तूर्वयाणं सिंहो न दमे अपांसि वस्तोः ॥३ ॥



आवाहन योग्य हे इन्द्रदेव !आप निश्चित ही जिन मरुद्‌गणों के साथ दिव्य लोक में जाते हैं, उनके सहयोग से वीरों को सुरक्षित करके शत्रुओं की अभेद्य दीवारों को तोड़ देते हैं। हे इन्द्रदेव ! हमारे घरों में जलों की पूर्ति के लिए सिंह के समान अपनी पराक्रमी सामर्थ्य से इस रोगनाशक तीव्र गतिशील अग्नि को संरक्षित करें ॥३ ॥

१८५७. शेषन्नु त इन्द्र सस्मिन्योनौ प्रशस्तये पवीरवस्य मह्ना ।

सृजदर्णांस्यव यद्युधा गास्तिष्ठद्धरी धृषता मृष्ट वाजान् ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपको महिमा-मण्डित करने के लिए वज्र के प्रहार से युद्ध भूमि में ही असुर धराशायी होकर गिर पड़े। जिस समय आपने योद्धा शत्रुओं के पास जाकर उनके द्वारा अवरुद्ध जल प्रवाहों को प्रवाहित किया, उसी समय आप दोनों घोड़ों पर आरूढ़ हो गये। आपने अपनी घर्षक और शत्रुसंहारक सामर्थ्य से वीर सैनिकों को दोष मुक्त किया ॥४ ॥

१८५८. वह कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्त्स्यूमन्यू ऋज्रा वातस्याश्वा ।

प्र सूरश्चक्रं वृहतादभीकेऽभि स्पृधो यासिषद्वज्रबाहुः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप कुत्स के जिस यज्ञ में हवि सेवन की कामना करते हैं, उसी ओर सुखदायी, सीधे मार्गों से, वायु की गति के समान शीघ्र गामी अपने अश्वों को प्रेरित करें। युद्ध में सूर्यदेव अपने चक्र को उनके समीप ले जायें और हाथों में वज्र धारण करने वाले इन्द्रदेव शत्रु सेनाओं की ओर उन्मुख हों। ॥५ ॥

१८५९. जघन्वाँ इन्द्र मित्रेरूञ्चोदप्रवृद्धो हरिवो अदाशून् ।

प्र ये पश्यन्नर्यमणं सचायोस्त्वया शूर्ता वहमाना अपत्यम् ॥६ ॥

हे अश्वों से युक्त इन्द्रदेव ! आपने अति उत्साह में मित्रों के शत्रुओं तथा यज्ञीय कर्मों से रहित दुष्टों का संहार किया। ऐसे आप को जो, अन्न- दान से संतुष्ट करते हैं, उन्हें आप सन्तान और वीरता प्रदान करते हैं ॥६ ॥

१८६०. रपत्कविरिन्द्रार्कसातौ क्षां दासायोपबर्हणीं कः ।

करत्तिस्रो मघवा दानुचित्रा नि दुर्योणे कुयवाचं मृधि श्रेत् ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! ऋषियों ने स्तुतिगान के समय जब आपके निमित्त प्रशंसक वाणी का प्रयोग किया, तब आपने शत्रुओं का संहार करके उन्हें पृथ्वी रूपी शैय्या पर सुला दिया। ऐश्वर्यवान् इन्द्र ने तीन भूमियों (पर्वतमय,सम तथा जलमय) को उत्तम अन्न, ऐश्वर्य एवं सुखदायी पदार्थों से सुशोभित किया। दुर्योणि के लिए युद्ध में आपने कुयवाच राक्षस का संहार किया ॥७ ॥

१८६१. सना ता त इन्द्र नव्या आगुः सहो नभोऽविरणाय पूर्वीः ।

भिनत्पुरो न भिदो अदेवीर्ननमो वधरदेवस्य पीयोः ॥८ ॥

हे इन्द्रदेव !आपकी शाश्वत स्तोत्रवाणियों का ऋषियों ने दुबारा गान किया है। आपने आसुरी शक्तियों को युद्ध रोकने के लिए दबाया है तथा शत्रुओं के दुर्गों को तोड़ने के समान ही असुरता की अभेद्य शक्ति को अपनी सामर्थ्य से छिन्न-भिन्न कर दिया है। हिंसक शत्रु के शस्त्रादि बल की तीक्ष्णता को भी आपने क्षीण कर दिया है ॥८ ॥

१८६२. त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरपः सीरा न स्रवन्तीः ।

प्र यत्समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप शत्रुओं को अपनी सामर्थ्य से भयभीत करने वाले हैं। प्रवाहित नदियों के समान ही जल के अथाह भण्डार को आपने खोल दिया। हे पराक्रमी वीर इन्द्रदेव ! जब आप समुद्र को जल से परिपूर्ण कर देते हैं, तभी आप तुर्वश और यदु को दक्षतापूर्वक पार उतारते हैं ॥९ ॥

१८६३. त्वमस्माकमिन्द्र विश्वध स्या अवृकतमो नरां नृपाता ।
स नो विश्वासां स्पृधां सहोदा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव ! आप सदैव हमारे निष्कपट प्रजा संरक्षक हैं । ऐसे आप हमारी सम्पूर्ण सैन्यशक्ति की प्रभाव क्षमता को संवर्धित करें, जिससे हम भी अन्न, बल और दीर्घायु के लाभ को प्राप्त कर सकें ॥१० ॥

[सूक्त - १७५]

[**ऋषि**- अगस्त्य मैत्रावरुणि । **देवता** - इन्द्र । **छन्द**-१ स्कन्धोग्रीवी बृहती, २-५ अनुष्टुप्; ६ त्रिष्टुप् ।]

१८६४. मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।
वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ॥१ ॥

हे अश्वधारक इन्द्रदेव ! बड़े पात्र के समान आप महान् है । आनन्ददायक, हर्षवर्द्धक, बलवर्द्धक, शक्तिशाली असंख्यों दान देने वाले आप सोमरस का पान करते हुए आनन्द की अनुभूति करें ॥१ ॥

१८६५. आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः । सहावाँ इन्द्र सानसिः पृतनाषाळमर्त्यः ॥२ ।

हे इन्द्रदेव ! आपके लिए तैयार किया गया बलवर्द्धक, हर्षदायक, श्रेष्ठ, सामर्थ्ययुक्त, पीने योग्य अविनाशी, शत्रु विजेता, आनन्ददायी यह सोमरस आपको प्राप्त हो ॥२ ॥

१८६६ त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् । सहावान्दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा ॥३

हे इन्द्रदेव ! आप वीर और दानदाता हैं । मनुष्य के मनोरथों को भलीप्रकार प्रेरित करें । जैसे अग्निदेव अपनी ज्वाला से पात्र को तपाते हैं, वैसे ही आप सहायक बनकर दुष्टों और मर्यादाहीनों को नष्ट करें ॥३ ॥

१८६७. मुषाय सूर्यं कवे चक्रमीशान ओजसा । वह शुष्णाय वधं कुत्सं वातस्याश्वैः ॥४ ॥

हे मेधावी इन्द्रदेव ! आप सबके स्वामी हैं, ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए आपने अपनी सामर्थ्य शक्ति के द्वारा सूर्यदेव से चक्र (शक्ति) प्राप्त किया । आप 'शुष्ण' के संहार के लिए, वायु के समान वेगशील अश्वों द्वारा अपने प्रहारक वज्र को कुत्स के समीप पहुँचायें ॥४ ॥

१८६८. शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः ।
वृत्रघ्ना वरिवोविदा मंसीष्ठा अश्वसातमः ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी प्रसन्नता सबको शक्ति देने वाली है तथा आपके श्रेष्ठ कर्म प्रचुर अन्न प्रदान करने वाले हैं । अश्वों के दान में प्रख्यात आप हमें वृत्रवध करने वाले तथा ऐश्वर्य सम्पदा देने वाले शस्त्रों को प्रदान करें ॥५ ॥

१८६९. यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मयइवापो न तृष्यते बभूथ ।
तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! प्राचीन स्तोताओं के लिए आप, प्यासे के लिए जल और दुःखी के लिए सुख मिलने के समान ही आनन्ददाता और प्रिय सिद्ध हुए हैं । आपकी सनातन स्तुतियों से हम आपको आमन्त्रित करते हैं, जिससे हम अन्न, बल और दीर्घायुष्य प्राप्त करें ॥६ ॥

[सूक्त - १७६]

[**ऋषि**- अगस्त्य मैत्रावरुणि । **देवता** - इन्द्र । **छन्द**-अनुष्टुप्, ६-त्रिष्टुप् ।]

१८७०. मत्सि नो वस्यइष्टय इन्द्रमिन्दो वृषा विश ।
ऋघायमाण इन्वसि शत्रुमन्ति न विन्दसि ॥१ ॥



हे इन्द्रदेव ! ऐश्वर्य सम्पदा की प्राप्ति के लिये आप हमें आनन्दित करें । हे बलदायक सोम ! आप इन्द्रदेव के शरीर में प्रविष्ट हों । शत्रुओं का संहार करते हुए आप देवशक्तियों के अन्दर भी संव्याप्त हों तथा विकार रूपी शत्रुओं को समीप न आने दें ॥१ ॥

१८७१. तस्मिन्ना वेशया गिरो य एकश्चर्षणीनाम् ।
अनु स्वधा यमुप्यते यवं न चर्कृषद्वृषा ॥२ ॥

जो इन्द्रदेव सम्पूर्ण प्रजाजनों के एकमात्र अधीश्वर हैं, जिन इन्द्रदेव के प्रति आप हविष्यान्न समर्पित करते हैं, जो शक्तिशाली इन्द्रदेव किसान द्वारा जौ की फसल को काटने के समान ही शत्रुओं का संहार करते हैं । आप सभी उन्हीं इन्द्रदेव की स्तुतियों द्वारा अर्चना करें ॥२ ॥

१८७२. यस्य विश्वानि हस्तयोः पञ्च क्षितीनां वसु ।
स्पाशयस्व यो अस्मध्रुग्दिव्येवाशनिर्जहि ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके हाथों में पाँचों प्रकार की प्रजाओं की वैभव सम्पदा है । ऐसे आप हमारे विद्रोहियों को परास्त करें और आकाश से गिरने वाली तड़ित विद्युत् के समान ही उनको विनष्ट करें ॥३ ॥

१८७३. असुन्वन्तं समं जहि दूणाशं यो न ते मयः ।
अस्मभ्यमस्य वेदनं दद्धि सूरिश्चिदोहते ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! जो आपके लिए सोमाभिषवण नहीं करते, जो यज्ञकर्मों से विहीन दुष्कर्मी बड़ी कठिनाई से नियन्त्रण में आने वाले हैं, ऐसे दुष्टों का आप संहार करें । उनकी धनसम्पदा को हमें प्रदान करें ॥४ ॥

१८७४. आवो यस्य द्विबर्हसोऽर्केषु सानुषगसत् ।
आजाविन्द्रस्येन्दो प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥५ ॥

स्तोत्रों के उच्चारण के समय सदैव उपस्थित रहकर आपने जिन दो प्रकार के (स्तोत्र-ज्ञानयज्ञ, आहुतिपरक-हविर्यज्ञ) यज्ञों को सम्पन्न कराने वाले यजमानों की रक्षा की है । हे सोम ! उसी प्रकार आप युद्ध के समय इन्द्रदेव की तथा ऐश्वर्यप्राप्ति के समय यजमानों की रक्षा करें ॥५ ॥

१८७५. यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मयइवापो न तृष्यते बभूथ ।
तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप प्राचीन स्तोताओं के लिए प्यासे को जल और दुःख पीड़ितों के सुख प्राप्ति की भाँति ही आनन्ददायक और प्रीतियुक्त हुए । आपकी उन्हीं प्राचीन स्तुतियों द्वारा हम आपको आमन्त्रित करते हैं । आप की कृपा से हम अन्न, बल और दीर्घजीवन प्राप्त करें ॥६ ॥

[सूक्त - १७७]

[ऋषि- अगस्त्य मैत्रावरुणि । देवता - इन्द्र । छन्द-त्रिष्टुप् ।]

१८७६. आ चर्षणिप्रा वृषभो जनानां राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ।
स्तुतः श्रवस्यन्नवसोप मद्रिग्युक्त्वा हरी वृषणा याह्यर्वाङ् ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप प्रजाजनों के पालक, शक्तिशाली मनुष्यों के अधिपति और बहुतों द्वारा आवाहनीय हैं । आप स्तुतियों से प्रशंसित होकर हमारे यज्ञ की कामना करते हुए, संरक्षण साधनों के साथ बलिष्ठ अश्वों को रथ से संयुक्त करके हमारे समीप आयें ॥१ ॥



१८७७. ये ते वृषणो वृषभास इन्द्र ब्रह्मयुजो वृषरथासो अत्याः ।
ताँ आ तिष्ठ तेभिरा याह्यर्वाङ् हवामहे त्वा सुत इन्द्र सोमे ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! जो आपके पास बलिष्ठ, सामर्थ्यवान् और संकेत मात्र से रथ में जुड़ जाने वाले घोड़े हैं, उनको रथ में जोतकर, रथ में बैठकर हमारी ओर आयें । हे इन्द्रदेव ! हम सोम अभिषवण के समय आपका आवाहन करते हैं ॥२ ॥

१८७८. आ तिष्ठ रथं वृषणं वृषा ते सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि ।
युक्त्वा वृषभ्यां वृषभ क्षितीनां हरिभ्यां याहि प्रवतोप मद्रिक् ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप बलशाली रथ पर विराजमान हों । आपके निमित्त शक्तिप्रद सोमरस अभिषुत किया गया है, उसमें मधुर पदार्थों को मिश्रित किया गया है । हे शक्तिशाली इन्द्रदेव ! आप बलिष्ठ अश्वों को विशेष गतिवाले रथ से जोड़कर अपनी प्रजा के समीप जायें ॥३ ॥

१८७९. अयं यज्ञो देवया अयं मियेध इमा ब्रह्माण्ययमिन्द्र सोमः ।
स्तीर्णं बर्हिरा तु शक्र प्र याहि पिबा निषद्य वि मुचा हरी इह ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! देवताओं को प्राप्त होने वाला यह यज्ञ, दुधारू पशु, स्तोत्र और सोमरस आपके निमित्त हैं । आपके लिए यह आसन बिछा हुआ है । हे सामर्थ्यवान् इन्द्रदेव ! आप समीप आयें और यहाँ आसन पर बैठकर सोमपान करें । यहीं पर अपने घोड़ों के बन्धनों को खोलें ॥४ ॥

१८८०. ओ सुष्टुत इन्द्र याह्यर्वाङुप ब्रह्माणि मान्यस्य कारोः ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! भली-भाँति स्तुत्य आप, सम्माननीय स्तोता के स्तवनों को सुनकर हमारे समीप आयें । हम नित्यप्रति आपके संरक्षण से आपकी प्रशंसा करते हुए, धनसम्पदा हस्तगत करें और अन्न, बल तथा विजयश्री का दान प्राप्त करें ॥५ ॥

[सूक्त - १७८]

[ऋषि- अगस्त्य मैत्रावरुणि । देवता - इन्द्र । छन्द-त्रिष्टुप् ।]

१८८१. यद्ध स्या त इन्द्र श्रुष्टिरस्ति यया बभूथ जरितृभ्य ऊती ।
मा नः कामं महयन्तमा धग्विश्वा ते अश्यां पर्याप आयोः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिन धनों से आप स्तोताओं का संरक्षण करते हैं, वह हमें प्रदान करें । हमारी श्रेष्ठ अभिलाषाओं को न रोककर आप हमारे लिये उपयोगी ऐश्वर्य प्रदान करें ॥१ ॥

१८८२. न घा राजेन्द्र आ दभन्नो या नु स्वसारा कृणवन्त योनौ ।
आपश्चिदस्मै सुतुका अवेषन्गमन्न इन्द्रः सख्या वयश्च ॥२ ॥

हमारी अंगुलियों ने जिन यज्ञीय कार्यों को यज्ञस्थल में (सोमाभिषवण के रूप में) किया है, उन्हें तेजस्वी इन्द्रदेव नष्ट न करें । इस कार्य के सम्पादन के लिए शुद्ध जल की भी प्राप्ति हो । इन्द्रदेव हमारे लिए मैत्रीभाव और श्रेष्ठ पोषक अन्न प्रदान करें ॥२ ॥

१८८३. जेता नृभिरिन्द्रः पृत्सु शूरः श्रोता हवं नाधमानस्य कारोः ।
प्रभर्ता रथं दाशुष उपाक उद्यन्ता गिरो यदि च त्मना भूत् ॥३ ॥



शूरवीर इन्द्रदेव युद्धों में सैन्य शक्ति के सहयोग से ऐश्वर्य विजेता, विपदाग्रस्त स्तोता की करुण पुकार को सुननेवाले, दानी यजमान के निकट रथ को रोकने वाले तथा जो साधक श्रद्धा भावना से प्रार्थना करनेवाले हैं, उनकी वाणी रूपी साधना को ऊर्ध्वगामी बनाने वाले हैं ॥३ ॥

१८८४. एवा नृभिरिन्द्रः सुश्रवस्या प्रखादः पृक्षो अभि मित्रिणो भूत् ।
समर्य इषः स्तवते विवाचि सत्राकरो यजमानस्य शंसः ॥४ ॥

श्रेष्ठ यशस्वी इन्द्रदेव मनुष्यों के साथ मित्रतापूर्ण व्यवहार करने वाले यजमान की हवियों को ही ग्रहण करते हैं । स्तोताओं की प्रार्थना को पूर्ण करने वाले और यजमान के शुभचिन्तक इन्द्रदेव, जहाँ परस्पर मिलकर अनेक स्तोत्रों से आवाहित किये जाते हैं, ऐसे युद्ध में अपने मित्रों का संरक्षण करते हैं ॥४ ॥

१८८५. त्वया वयं मघवन्निन्द्र शत्रूनभि ष्याम महतो मन्यमानान् ।
त्वं त्राता त्वमु नो वृधे भूर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥५ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! हम आपके सहयोग से बड़े-बड़े अहंकारी-शत्रुओं को भी पराजित करें । आप ही हमारे संरक्षक और प्रगति के कारण बनें । जिससे हम अन्न, बल और दीर्घ जीवन प्राप्त कर सकें ॥५ ॥

[सूक्त - १७९]

[**ऋषि**- १-२ लोपा मुद्रा; ३-४ अगस्त्य मैत्रावरुणि; ५-६ अगस्त्य शिष्य ब्रह्मचारी । **देवता** - रति । **छन्द**-त्रिष्टुप; ५- बृहती]

इस सूक्त में सुसन्तति उत्पन्न करने की आवश्यकता एवं मर्यादाओं का उल्लेख किया गया है । ऋषि दम्पती लोपामुद्रा एवं अगस्त्य के बीच हुआ संवाद इसका आधार है । ऋषियों ने परिपक्व शारीरिक एवं मानसिक स्थिति बन जाने पर ही दम्पतियों को आवश्यकता के अनुरूप संतान पैदा करने का निर्देश दिया है । पति-पत्नी की शारीरिक-मानसिक स्थिति का परीक्षण करने के बाद ही गर्भाधान संस्कार कराया जाता था । आवश्यकता के अनुसार परिपक्वता लाने के लिए विशेष तप भी कराये जाते थे । राजा दिलीप द्वारा सपत्नीक गुरु-आश्रम में रहकर तप करने पर रघु तथा भगवान् कृष्ण द्वारा बद्रिकाश्रम में तप करने पर उन्हें प्रद्युम्न जैसे पुत्र-प्राप्ति की कथाएँ सर्वविदित हैं । सन्तान उत्पादन के यज्ञीय अनुशासन का उल्लेख इस सूक्त में है--

१८८६. पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषा वस्तोरुषसो जरयन्तीः ।
मिनाति श्रियं जरिमा तनूनामप्यू नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः ॥१ ॥

(देवी लोपामुद्रा कहती हैं) - हम विगत जीवन के अनेक वर्षों में उषा काल सहित दिन-रात श्रमनिष्ठ (तपरत) रहे हैं । वृद्धावस्था शरीरों की क्षमताओं को क्षीण कर देती है ।(इसलिए श्रेष्ठ संतान की प्राप्ति की दृष्टि से) समर्थ पुरुष ही पत्नियों के समीप जायें । (यहाँ प्रकारांतर से व्यसन के रूप में पत्नियों के समीप जाने का निषेध है) ॥१ ॥

१८८७. ये चिद्धि पूर्व ऋतसाप आसन्त्साकं देवेभिरवदन्नृतानि ।
ते चिदवासुर्नह्यन्तमापुः समू नु पत्नीर्वृषभिर्जगम्युः ॥२ ॥

पूर्वकाल में जो सत्य की साधना (करने-कराने) में प्रवृत्त ऋषि स्तर के व्यक्ति हुए हैं, जो देवों के साथ (उनके समकक्ष) सत्य बोलते थे । उन्होंने भी (उपयुक्त समय पर) संतानोत्पादन का कार्य किया, अन्त तक ब्रह्मचर्य आश्रम में ही नहीं रहे । (श्रेष्ठ संतान की प्राप्ति की दृष्टि से) उन श्रेष्ठ-समर्थ पुरुषों को पत्नियाँ उपलब्ध करायी गयीं ॥२ ॥

[श्रेष्ठ व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों से ही समाज को श्रेष्ठ संस्कार युक्त नयी पीढ़ी के नागरिक प्राप्त होते हैं । इसलिए श्रेष्ठ व्यक्तित्ववानों को ही संतान उत्पन्न करने की प्रेरणा देने की मर्यादा का उल्लेख किया गया है ।]



१८८८. न मृषा श्रान्तं यदवन्ति देवा विश्वा इत्स्पृधो अभ्यश्नवाव ।

जयावेदत्र शतनीथमाजिं यत्सम्यञ्चा मिथुनावभ्यजाव ॥३ ॥

(ऋषि अगस्त्य कहते हैं :-) हमारा (अब तक का) तप बेकार नहीं गया है ।देवता श्रेष्ठ प्रवृत्तियों के कारण हमारी रक्षा करते हैं, (अत:) हमने विश्व की (जीवन में आने वाली) सारी स्पर्धाएँ जीत ली हैं । हम दम्पती यदि अब उचित ढंग से संतान उत्पन्न करें, तो इस जीवन में सौ (वर्षों तक) संग्राम (जीवन की चुनौतियों) में विजयी होंगे ॥३ ॥

१८८९. नदस्य मा रुधत: काम आगन्नित आजातो अमुत: कुतश्चित् ।

लोपामुद्रा वृषणं नी रिणाति धीरमधीरा धयति श्वसन्तम् ॥४ ॥

लोपामुद्रा नदी के प्रवाह को सब ओर से रोक लेने वाले संयम से उत्पन्न शक्ति को संतान प्राप्ति की कामना की ओर प्रेरित करती हैं । यह भाव इस (शारीरिक स्वभाव) अथवा उस (कर्तव्य बुद्धि) या किसी अन्य कारण से और अधिक बढ़ता है । श्वास का संयम रखने वाले समर्थ धीर पुरुष अधीरता को नियंत्रण में रखते हैं ॥४ ॥

१८९०. इमं नु सोममन्तितो हृत्सु पीतमुप ब्रुवे ।

यत्सीमागश्चकृमा तत्सु मृळतु पुलुकामो हि मर्त्यः ॥५ ॥

(इस ज्ञान को प्राप्त करने के बाद शिष्य के भाव हैं :-) सोम (ओषधि रस विशेष) के निकट जाकर भावनापूर्वक उसका पान करते हुए वह प्रार्थना करता है "मनुष्य अनेक प्रकार की कामनाओं वाला है ।"(उक्त संदर्भ में) यदि मेरे मन में कोई विकार आया हो, तो यह सोम अपने प्रभाव से उसे शुद्ध कर दे ॥५ ॥

१८९१. अगस्त्य: खनमान: खनित्रैः प्रजामपत्यं बलमिच्छमान: ।

उभौ वर्णावृषिरुग्र: पुपोष सत्या देवेष्वाशिषो जगाम ॥६ ॥

उग्र तपस्वी अगस्त्य ने खनित्र (शोध क्षमता) से खनन (नये-नये शोध कार्य) करते हुए, प्रजा (संतान) उत्पन्न करने वाले तथा (तप द्वारा) शक्ति अर्जित करनेवाले, दोनों वर्णों (प्रवृत्तियों) वाले मनुष्यों का पोषण किया (और इस प्रकार-) देवताओं के सच्चे आशीर्वाद को प्राप्त किया ॥६ ॥

[सूक्त - १८०]

[**ऋषि-** अगस्त्य मैत्रावरुणि । **देवता** - अश्विनीकुमार । **छन्द**-त्रिष्टुप् ।]

१८९२.युवो रजांसि सुयमासो अश्वा रथो यद्वां पर्यर्णांसि दीयत् ।

हिरण्यया वां पवय: प्रुषायन्मध्व: पिबन्ता उषस: सचेथे ॥१ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिस समय आप दोनों का रथ समुद्र में अथवा अन्तरिक्ष में संचरित होता है, उस समय आपके रथ को चलाने वाले अश्वसंज्ञक गति साधन भी अन्तरिक्ष मार्ग में नियमानुसार गति करते हैं । आपके रथ के स्वर्णिम दीप्ति वाले पहिये भी मेघमण्डल के जल से भीगने लगते हैं; आप दोनों मधुर सोमरस का पान करके प्रभात वेला में ही इकट्ठे होकर जाते हैं ॥१ ॥

१८९३. युवमत्यस्याव नक्षथो यद्विपत्मनो नर्यस्य प्रयज्यो: ।

स्वसा यद्वां विश्वगूर्ती भराति वाजायेट्टे मधुपाविषे च ॥२ ॥

सर्वस्तुत्य तथा मधुर सोमपान कर्त्ता अश्विनीकुमारो ! आप दोनों निरन्तर गतिशील, आकाश में संचरण करने वाले, मनुष्यों के कल्याणकारी, पूजनीय, सूर्यदेव के आगमन से पहले ही आते हैं, तब बहिन उषा आपका सहयोग करती हैं और यज्ञ में यजमान, बल तथा अन्न बढ़ाने के लिए आप दोनों की ही प्रशंसा करते हैं ॥२ ॥



१८९४. युवं पय उस्रियायामधत्तं पक्वमामायामव पूर्व्यं गोः ।
अन्तर्यद्वनिनो वामृतप्सू ह्वारो न शुचिर्यजते हविष्मान् ॥३ ॥

हे सत्यपालक अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने गौओं में पोषक दुग्ध उत्पन्न किया है तथा अप्रसूता गौओं में भी पौष्टिक दूध की सम्भावनाएँ उत्पन्न की हैं । वन क्षेत्र में साँप के समान ही जागरूक रहकर पवित्र हविष्यान्न साथ रखने वाले यजमान, आप दोनों के निमित्त दुग्ध द्वारा यज्ञ करते हैं ॥३ ॥

१८९५. युवं ह घर्मं मधुमन्तमत्रयेऽपो न क्षोदोऽवृणीतमेषे ।
तद्वां नरावश्विना पश्वइष्टी रथ्येव चक्रा प्रति यन्ति मध्वः ॥४ ॥

हे नेतृत्व सम्पन्न अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने अत्रि ऋषि को सुख देने के लिए ही गर्मी को जल के समान शीतल और माधुर्ययुक्त सुखकारी बनाया । तब आपके समीप रथ के पहियों के समान यज्ञ तथा सोम रस पहुँचे ॥४ ॥

१८९६. आ वां दानाय ववृतीय दस्रा गोरोहेण तौग्र्यो न जिव्रिः ।
अपः क्षोणी सचते माहिना वां जूर्णो वामक्षुरंहसो यजत्रा ॥५ ॥

हे शत्रुसंहारक पूजनीय अश्विनीकुमारो ! विजय का आकांक्षी तुग्र का पुत्र जिस प्रकार प्रशंसक वाणियों द्वारा आप दोनों से अनुदान प्राप्ति के लिए प्रवृत्त हुआ, उसी प्रकार हम भी आपके सहयोग को पाने के लिए प्रयत्नशील हों, आपकी महिमा सम्पूर्ण द्यावापृथिवी में संव्याप्त है । (हम) अतिवृद्ध होते हुए भी आप दोनों की कृपा से जरारूपी कष्ट से मुक्त होकर दीर्घजीवन प्राप्त करें । इसीलिए आपकी स्तुति करते हैं ॥५ ॥

१८९७. नि यद्युवेथे नियुतः सुदानू उप स्वधाभिः सृजथः पुरन्धिम् ।
प्रेषद्वेषद्वातो न सूरिरा महे ददे सुव्रतो न वाजम् ॥६ ॥

हे श्रेष्ठ दानवीर अश्विनीकुमारो ! जब आप दोनों, अश्वों को अपने रथ में जोतते हैं, तब असंख्यों का भरण-पोषण करने वाली व्यवस्था बुद्धि, प्रचुर अन्न सम्पदा के साथ, साधकों में आप उत्पन्न करते हैं । श्रेष्ठ कार्य करने वालों के समान ज्ञानसम्पन्न मनुष्य इस महत्वपूर्ण दायित्व के निर्वाह के लिए अन्न उपलब्ध करके हविष्यान्न के रूप में वायुभूत बनाकर आपको तृप्त करते हैं ॥६ ॥

१८९८. वयं चिद्धि वां जरितारः सत्या विपन्यामहे वि पणिर्हितावान् ।
अधा चिद्धि ष्माश्विनावनिन्द्या पाथो हि ष्मा वृषणावन्तिदेवम् ॥७ ॥

हे शक्ति सम्पन्न, अनिन्दनीय अश्विनीकुमारो ! हम सच्चे साधक हैं, अतएव आप दोनों के प्रख्यात गुणों का वर्णन करते हैं, परन्तु धन संग्रह करने वाले व्यापारी यज्ञ (लोक हित के कार्यों) में इसे बिल्कुल नहीं लगाते । आप दोनों देवों के ग्रहण करने योग्य सोमरस का ही पान करते हैं ॥७ ॥

१८९९. युवां चिद्धि ष्माश्विनावनु द्यून्विरुद्रस्य प्रस्रवणस्य सातौ ।
अगस्त्यो नरां नृषु प्रशस्तः काराधुनीव चितयत्सहस्रैः ॥८ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! मनुष्यों और नेताओं में सुप्रसिद्ध अगस्त्य ऋषि नित्य प्रति विशिष्ट गर्जना वाले जल प्रवाह को उपलब्ध करने के लिए कुशलता से बाँसुरी वादन करने वाले के समान ही आप दोनों की कोमल ध्वनि से सहस्रों अलापों (श्लोकों) से प्रार्थना करते हैं ॥८ ॥

१९००. प्र यद्वहेथे महिना रथस्य प्र स्यन्द्रा याथो मनुषो न होता ।
धत्तं सूरिभ्य उत वा स्वश्व्यं नासत्या रयिषाचः स्याम ॥९ ॥



हे सत्य के पालनकर्त्ता और गतिशील अश्विनीकुमारो ! आप दोनों अपने सर्वोत्तम रथ में आरूढ़ होकर वेग से यज्ञकर्त्ता के पास मनुष्य लोक में गमन करते हैं, अतएव ऐसे श्रेष्ठ ज्ञानियों को उत्तम अश्वों से युक्त धन सम्पदा प्रदान करें तथा हमें भी ऐश्वर्य सम्पदा से परिपूर्ण करें ॥९ ॥

१९०१. तं वां रथं वयमद्या हुवेम स्तोमैरश्विना सुविताय नव्यम् ।
अरिष्टनेमिं परि द्यामियानं विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१० ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आज ही हमें सुखसाधनों की प्राप्ति हो, इसी निमित्त हम आपका आवाहन करते हैं । द्युलोक के चारों ओर विचरणशील, कभी विकृत न होने वाली धुरी से युक्त आपका नवीन रथ हमारे समीप पहुँचे और हमें अन्न, बल तथा दीर्घ जीवन प्रदान करें ॥१० ॥

[सूक्त - १८१]

[ऋषि- अगस्त्य मैत्रावरुणि । देवता - अश्विनीकुमार । छन्द- जगती; ६,८ त्रिष्टुप् ।]

आगे के कुछ सूक्त अश्विनीकुमारों के प्रति कहे गये हैं । उन्हें जुड़वाँ अभिन्न कहा जाता है, इसलिए अधिकांश मंत्रों में उनकी संयुक्त प्रार्थना ही की जाती है । कुछ ऋचाओं में उनके रूपों तथा कार्यों की भिन्नता-विशिष्टता की समीक्षा की गयी है । अश्विनी का अर्थ होता है- अश्वों (किरणों) से युक्त । उन्हें आनन्द, आरोग्य एवं पुष्टिदायक कहा गया है । आरोग्य एवं पुष्टि देने वाले दो प्रवाह प्रकृति में एक साथ उपलब्ध हैं ।(१) पदार्थों, जल, अन्न व वनस्पतियों में आरोग्य एवं पुष्टि भरने वाले अन्तरिक्षीय प्रवाह तथा (२) पदार्थों से उभरने वाले आरोग्य एवं पुष्टिदायक प्रवाह । ये दोनों प्रवाह एक साथ रहने वाले अभिन्न होते हुए भी अपनी अलग-अलग विशिष्टताएँ रखते हैं । इस रूप में अश्विद्वय को लेने से मंत्रों के भाव स्पष्ट हो सकते हैं -

१९०२. कदु प्रेष्ठाविषां रयीणामध्वर्यन्ता यदुन्निनीथो अपाम् ।
अयं वां यज्ञो अकृत प्रशस्तिं वसुधिती अवितारा जनानाम् ॥१ ॥

हे मनुष्यों के संरक्षक और ऐश्वर्यदाता अश्विनीकुमारो ! इस यज्ञ में आपकी ही प्रशंसा होती है । आप यज्ञ हेतु जलों, अन्नों और धन सम्पदाओं को प्रेरित करते हैं, वह क्रम किस समय प्रारम्भ करेंगे ? ॥१ ॥

१९०३. आ वामश्वासः शुचयः पयस्पा वातरंहसो दिव्यासो अत्याः ।
मनोजुवो वृषणो वीतपृष्ठा एह स्वराजो अश्विना वहन्तु ॥२ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! पवित्र, दिव्यता युक्त, गतिशील, वायु के समान वेगवान्, दुग्धाहारी, मन के समान गतिशील, शक्तिशाली, उज्ज्वल पृष्ठ भाग वाले और स्वयं तेजस्विता युक्त गुणों से सुशोभित घोड़े, आप दोनों को हमारे यज्ञ में लायें ॥२ ॥

१९०४. आ वां रथोऽवनिर्न प्रवत्वान्त्सृप्रवन्धुरः सुविताय गम्याः ।
वृष्णः स्थातारा मनसो जवीयानहम्पूर्वो यजतो धिष्ण्या यः ॥३ ॥

हे उच्च भाग में प्रतिष्ठित, एक ही स्थान पर स्थिर होकर रहने वाले अश्विनीकुमारो ! मन के समान गतिशील, उत्तम अग्र भाग वाला, भूमि के समान व्यापक, अग्रगामी, शक्तिशाली रथ हमारे कल्याण की कामना से आपको हमारे समीप ले आये ॥३ ॥

१९०५. इहेह जाता समवावशीतामरेपसा तन्वा३ नामभिः स्वैः ।
जिष्णुर्वामन्यः सुमखस्य सूरिर्दिवो अन्यः सुभगः पुत्र ऊहे ॥४ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों निर्दोष शरीरों से तथा अपने नामों से प्रख्यात हुए इस लोक में भली-भाँति प्रशंसित हो चुके हैं । आप दोनों में से एक विजयी, श्रेष्ठ मुख वाले (देव मुख रूप यज्ञ) के प्रेरक हैं तथा दूसरे दिव्य लोक के पुत्र होकर श्रेष्ठ ऐश्वर्यों के धारणकर्त्ता हैं ॥४ ॥



१९०६. प्र वां निचेरुः ककुहो वशाँ अनु पिशङ्गरूपः सदनानि गम्याः ।
हरी अन्यस्य पीपयन्त वाजैर्मथ्ना रजांस्यश्विना वि घोषैः ॥५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों में एक का पीतवर्ण युक्त (सूर्य के समान स्वर्णिम) तथा सर्वत्र गमनशील रथ, इच्छित दिशाओं एवं आवासों में पहुँचता है । दूसरे के मन्थन से उत्पन्न घोड़े (अग्नि) अन्नों एवं उद्घोषों (मंत्रों) सहित सम्पूर्ण लोकों को पुष्टि प्रदान करते हैं ॥५ ॥

१९०७. प्र वां शरद्वान्वृषभो न निष्षाट् पूर्वीरिषश्चरति मध्व इष्णन् ।
एवैरन्यस्य पीपयन्त वाजैर्वेषन्तीरूर्ध्वा नद्यो न आगुः ॥६ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों में से एक प्राचीन सामर्थ्यशाली शत्रुसेना को पराजित करने वाले हैं और अन्न में मधुर रस की उत्पत्ति हेतु सर्वत्र विचरण करते हैं । दूसरे अन्नों को समृद्ध करने वाली ऊर्ध्वगामी नदियों को वेग पूर्वक प्रवाहित करते हैं । आप दोनों हमारे समीप आयें ॥६ ॥

[यज्ञीय प्रक्रिया से सूक्ष्म जगत् में आरोग्य एवं पुष्टिकारक तत्त्व बढ़ते हैं, इसलिए उन प्रवाहों को ऊर्ध्वगामी नदियाँ कहा गया है, जो सूक्ष्म जगत् रूपी समुद्र को समृद्ध करती रहती हैं ।]

१९०८. असर्जि वां स्थविरा वेधसा गीर्बाळ्हे अश्विना त्रेधा क्षरन्ती ।
उपस्तुतावतवतं नाधमानं यामन्नयामञ्छृणुतं हवं मे ॥७ ॥

(अपने) कार्य में दक्ष हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों के लिए प्राचीन काल से प्रचलित, सामर्थ्य बढ़ाने वाली स्तुतियाँ तीनों प्रकार (ऋक्, यजुष् एवं सामगान के रूप में) की गई हैं । हमारे द्वारा की गई प्रार्थना को जाते हुए अथवा रुक कर सुनने की कृपा करें और साधकों की रक्षा करें ॥७ ॥

१९०९. उत स्या वां रुशतो वप्ससो गीस्त्रिबर्हिषि सदसि पिन्वते नॄन् ।
वृषा वां मेघो वृषणा पीपाय गोर्न सेके मनुषो दशस्यन् ॥८ ॥

हे सामर्थ्यवान् अश्विदेवो ! आप दोनों के देदीप्यमान स्वरूप का गुणगान करने वाली यह स्तोत्रवाणी, तीन कुश आसनों से युक्त यज्ञस्थल में मनुष्यों को परिपुष्ट करती है । जिस प्रकार गौ दूध देकर पौष्टिकता प्रदान करती है, उसी प्रकार आपकी प्रेरणा से मेघ भी पोषण प्रदान करते हैं ॥८ ॥

१९१०. युवां पूषेवाश्विना पुरन्धिरग्निमुषां न जरते हविष्मान् ।
हुवे यद्वां वरिवस्या गृणानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥९ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! अनेकों के धारणकर्त्ता पूषादेव जिस प्रकार पोषण करते हैं, उसी प्रकार हविष्यान्न को साथ लेकर यजमान यज्ञ द्वारा उषा और अग्नि के सदृश ही आप दोनों की प्रार्थना करते हैं । हम कर्त्तव्यों का निर्वाह करते हुए, विनम्रता पूर्वक आपकी प्रार्थना करते हैं, जिससे हम अतिशीघ्र अन्न, बल और धन प्राप्त कर सकें ॥९ ॥

[सूक्त - १८२]

[**ऋषि-** अगस्त्य मैत्रावरुणि । **देवता -** अश्विनीकुमार । **छन्द-** जगती; ६, ८ त्रिष्टुप् ।]

१९११. अभूदिदं वयुनमो षु भूषता रथो वृषण्वान्मदता मनीषिणः ।
धियञ्जिन्वा धिष्ण्या विश्पलावसू दिवो नपाता सुकृते शुचिव्रता ॥१ ॥

हे मनस्वी ज्ञानियो ! हमें यह ज्ञात हुआ है कि अश्विनीकुमारों का सुदृढ़ रथ हमारे यज्ञस्थल के निकट आ गया है, उसे देखकर आप हर्षित हों और उसे भली-भाँति अलंकृत करें । वे दोनों पवित्र व्रतशील, द्युलोक के धारणकर्त्ता, विश्पला की कीर्ति को बढ़ाने वाले तथा सत्कर्म करने वालों को सद्बुद्धि प्रदान करने वाले हैं ॥१ ॥



१९१२. इन्द्रतमा हि धिष्ण्या मरुत्तमा दस्रा दंसिष्ठा रथ्या रथीतमा।

पूर्णं रथं वहेथे मध्व आचितं तेन दाश्वांसमुप याथो अश्विना ॥२ ॥

हे शत्रु संहारकर्त्ता अश्विनीकुमारो ! आप दोनों प्रशंसा के योग्य तथा इन्द्रदेव और मरुद्‌गणों के अति श्रेष्ठ गुणों को धारण करने वाले हैं। आप दोनों सत्कर्मों में सदैव संलग्न और रथियों में अति श्रेष्ठ रथी हैं। आप मधु (मधुरता) से परिपूर्ण रथ सहित यज्ञकर्त्ता के समीप पहुँचते हैं ॥२ ॥

१९१३. किमत्र दस्रा कृणुथः किमासाथे जनो यः कश्चिदहविर्महीयते।

अति क्रमिष्टं जुरतं पणेरसुं ज्योतिर्विप्राय कृणुतं वचस्यवे ॥३ ॥

हे शत्रुनाशक अश्विनीकुमारो ! आप यहाँ क्या कर रहे हैं ? जो लोग हवि न देकर बड़े बन गये हैं, उन्हें छोड़कर आगे बढ़ें। कृपण और यज्ञहीन व्यक्तियों को नष्ट करें। स्तोता विप्रों (सत्कर्मरतों) को प्रकाश प्रदान करें ॥३ ॥

१९१४. जम्भयतमभितो रायतः शुनो हतं मृधो विदथुस्तान्यश्विना।

वाचंवाचं जरितू रत्निनीं कृतमुभा शंसं नासत्यावतं मम ॥४ ॥

हे सत्यनिष्ठ अश्विनीकुमारो ! आप कुत्तों के समान हिंसक अत्याचारियों को सभी ओर से विनष्ट करें। जो हमलावर हैं, उनका भी संहार करें; उनसे आप भली प्रकार परिचित हैं। आप दोनों हम स्तोताओं की प्रत्येक स्तोत्रवाणी को धन सम्पदा से युक्त करें तथा हमारे प्रशंसनीय स्तोत्रों का संरक्षण करें ॥४ ॥

१९१५. युवमेतं चक्रथुः सिन्धुषु प्लवमात्मन्वन्तं पक्षिणं तौग्र्याय कम्।

येन देवत्रा मनसा निरूहथुः सुपप्तनी पेतथुः क्षोदसो महः ॥५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने अपनी सामर्थ्य से चलने वाले, पक्षी के समान उड़ने वाली नौका को बनाया और कुशल चालक आप दोनों ने मन की गति के समान वेगशील उस नौका में ऊपरी आकाश मार्ग से यात्रा की तथा महासागर के बीच पहुँचकर तुग्र के पुत्र 'भुज्यु' की वहाँ रक्षा की ॥५ ॥

१९१६. अवविद्धं तौग्र्यमप्स्व१न्तरनारम्भणे तमसि प्रविद्धम्।

चतस्रो नावो जठलस्य जुष्टा उदश्विभ्यामिषिताः पारयन्ति ॥६ ॥

समुद्र के बीच में आधार रहित अँधेरे जल स्थान में तुग्रपुत्र भुज्यु को मुक्त करने के लिये अश्विनीकुमारों द्वारा भेजी गई चार नौकाएँ समुद्र के बीच पहुँच गईं और उसे ऊपर उठाकर समुद्र के पार पहुँचा दिया ॥६ ॥

१९१७. कः स्विद्वृक्षो निष्ठितो मध्ये अर्णसो यं तौग्र्यो नाधितः पर्यषस्वजत्।

पर्णा मृगस्य पतरोरिवारभ उदश्विना ऊहथुः श्रोमताय कम् ॥७ ॥

जल (समुद्र) के मध्य कौन सा वृक्ष रहा होगा, जिसे देखकर तुग्र के पुत्र भुज्यु ने जिसका आश्रय लिया। जिस प्रकार गिरने वाले मृग को पंखों का आश्रय मिल जाय, उसी प्रकार अश्विनीकुमारों ने भुज्यु को ऊपर उठाया, इस कल्याणकारी कार्य से वे यशस्वी बने ॥७ ॥

१९१८. तद्वां नरा नासत्यावनु ष्याद्यद्वां मानास उचथमवोचन्।

अस्मादद्य सदसः सोम्यादा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥८ ॥

हे सत्यनिष्ठ नेतृत्व प्रदान करने वाले अश्विनीकुमारो ! स्तोताओं ने जो आप दोनों के लिए स्तोत्रोच्चारण किये हैं, उनसे आप हर्षित हों। इस सोमयाग के यज्ञस्थल से हम अन्न, बल, ऐश्वर्य सम्पदा को प्राप्त करें ॥८ ॥



[सूक्त - १८३]

[ऋषि- अगस्त्य मैत्रावरुणि । देवता - अश्विनीकुमार । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

१९१९. तं युञ्जाथां मनसो यो जवीयान् त्रिवन्धुरो वृषणा यस्त्रिचक्रः ।

येनोपयाथः सुकृतो दुरोणं त्रिधातुना पतथो विर्न पर्णैः ॥१ ॥

हे सामर्थ्यवान् अश्विनीकुमारो ! आपका जो तीन पहियों वाला, तीन बैठने योग्य स्थान वाला, अत्यन्त गतिशील रथ है, उसे जोड़कर तैयार करें । तीन धातुओं से विनिर्मित रथ से पक्षी की तरह उड़कर आप दोनों श्रेष्ठ-कर्मी के घर पर पहुँचते हैं ॥१ ॥

१९२०. सुवृद्रथो वर्तते यन्नभि क्षां यत्तिष्ठथः क्रतुमन्तानु पृक्षे ।

वपुर्वपुष्या सचतामियं गीर्दिवो दुहित्रोषसा सचेथे ॥२ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! हमेशा सत्कर्म में तत्पर आप दोनों हविष्यान्न प्राप्त करने के लिए भूमि पर गतिमान अपने सुन्दर रथ से यज्ञस्थल पर पहुँचते हैं । आपकी महिमा का गान करने वाली स्तुतियाँ आपको हर्षित करें, आप दोनों द्युलोक की पुत्री उषा के साथ (प्रभात वेला में) ही प्रस्थान करते हैं ॥२ ॥

१९२१. आ तिष्ठतं सुवृतं यो रथो वामनु व्रतानि वर्तते हविष्मान् ।

येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥३ ॥

हे सत्यनिष्ठ अश्विनीकुमारो ! हविष्यान्नों से पूर्णरूपेण भरा हुआ आपका रथ, आप दोनों को अपने कर्त्तव्य निर्वाह के लिए ले जाता है, उस सुन्दर वाहन (रथ) पर आप दोनों विराजमान हों और यजमान तथा उसकी सन्तानों को यज्ञ की प्रेरणा देने के लिए उनके घर पधारें ॥३ ॥

१९२२. मा वां वृको मा वृकीरा दधर्षीन्मा परि वर्क्तमुत माति धक्तम् ।

अयं वां भागो निहित इयं गीर्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥४ ॥

हे शत्रु संहारक अश्विनीकुमारो ! आपके लिए हविर्द्रव्य तैयार है, यह स्तुतियाँ आपके ही निमित्त हैं । मधु से पूर्ण पात्र आपके लिए तैयार हैं, आप हमारा परित्याग न करें और न ही अन्य किसी पर अनुदान बरसायें । आपकी कृपा से हमारे ऊपर वृक एवं वृकी हमला न करें ॥४ ॥

१९२३. युवां गोतमः पुरुमीळ्हो अत्रिर्दस्रा हवतेऽवसे हविष्मान् ।

दिशं न दिष्टामृजूयेव यन्ता मे हवं नासत्योप यातम् ॥५ ॥

हे शत्रुनाशक और सत्यनिष्ठ अश्विनीकुमारो ! हविष्यान्न अर्पित करते हुए गोतम, अत्रि और पुरुमीढ़ ये ऋषि अपने संरक्षण के लिए आपका आवाहन करते हैं । सरल मार्ग से जाने वाला जिस प्रकार अभीष्ट लक्ष्य पर सहज ढंग से पहुँचता है, उसी प्रकार हमारे आवाहन को सुनकर आप हमारे समीप पधारें ॥५ ॥

१९२४. अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।

एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥६ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! हम इस अन्धकार से पार हो गये हैं । आप दोनों के निमित्त ये स्तोत्रगान किये गये हैं । देवतागण जिस मार्ग से चलते हैं, आप उसी मार्ग से यहाँ पधारें तथा अन्न, बल और विजयश्री हमें शीघ्र प्रदान करें ॥६ ।



[सूक्त - १८४]

[ऋषि- अगस्त्य मैत्रावरुणि । देवता - अश्विनीकुमार । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

१९२५. ता वामद्य तावपरं हुवेमोच्छन्त्यामुषसि वह्निरुक्थैः ।

नासत्या कुह चित्सन्तावर्यो दिवो नपाता सुदास्तराय ॥१ ॥

हे दिव्यलोक के आश्रयभूत, सत्यपालक अश्विनीकुमारो ! आज हमने आपको आमन्त्रित किया है, भविष्य में भी बुलायेंगे । हम अन्धकार की समाप्ति पर प्रभात वेला में स्तोत्रगान करते हुए अग्नि प्रदीप्त करते हैं । आप जहाँ कहीं भी हों, श्रेष्ठ पुरुष और दानवीर के यहाँ अवश्य पधारें, ऐसी हमारी प्रार्थना है ॥१ ॥

१९२६. अस्मे ऊ षु वृषणा मादयेथामुत्पणीँर्हतमूर्म्या मदन्ता ।

श्रुतं मे अच्छोक्तिभिर्मतीनामेष्टा नरा निचेतारा च कर्णैः ॥२ ॥

हे नेतृत्व प्रदान करने वाले सामर्थ्यवान् अश्विनीकुमारो ! आप हमें भली प्रकार आनन्दित करें । आप पणियों (लोभी ठगों) को समाप्त करें । हमारी अभिव्यक्तियों, श्रेष्ठ स्तोत्रों को सुनने की कृपा करें, क्योंकि आप दोनों सुपात्रों को खोजते और उन पर अपनी कृपा बरसाते हैं ॥२ ॥

१९२७. श्रिये पूषन्निषुकृतेव देवा नासत्या वहतुं सूर्यायाः ।

वच्यन्ते वां ककुहा अप्सु जाता युगा जूर्णेव वरुणस्य भूरेः ॥३ ॥

हे दानी, सत्यनिष्ठ, पोषणकर्त्ता अश्विनीकुमारो ! उषाकाल में ही रथ पर आरूढ़ होकर यश पाने की कामना से आप दोनों बाण की गति की तरह सरल मार्ग से जाते हैं । उस समय समुद्र से प्राप्त अति विशाल वरुणदेव के पुरातन रथ के घोड़ों के समान ही आप दोनों के घोड़े भी प्रशंसित होते हैं ॥३ ॥

१९२८. अस्मे सा वां माध्वी रातिरस्तु स्तोमं हिनोतं मान्यस्य कारोः ।

अनु यद्वां श्रवस्या सुदानू सुवीर्याय चर्षणयो मदन्ति ॥४ ॥

हे श्रेष्ठ दानवीर, मधुररसों से युक्त अश्विनीकुमारो ! आप दोनों के अनुदान हमें उपलब्ध होते रहें । आप मान्य द्वारा रचित स्तोत्रों को प्रेरित करें । सभी लोग आप दोनों की अनुकूलता प्राप्त कर श्रेष्ठ पराक्रम करने की कामना से आनन्दित होते हैं ॥४ ॥

१९२९. एष वां स्तोमो अश्विनावकारि मानेभिर्मघवाना सुवृक्ति ।

यातं वर्तिस्तनयाय त्मने चागस्त्ये नासत्या मदन्ता ॥५ ॥

हे वैभवशाली, सत्यनिष्ठ अश्विनीकुमारो ! आप दोनों के लिए यह सुन्दर स्तोत्र तैयार किये गये हैं । इससे हर्षित होकर आप सपरिवार अगस्त्य ऋषि के घर पधारें ॥५ ॥

१९३०. अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।

एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥६ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! हम इस अन्धकार रूपी अज्ञान से मुक्त हो गये हैं, आप दोनों के लिए ये स्तोत्र गान किये हैं । देवतागण जिस मार्ग से चलते हैं, आप उसी मार्ग से चलकर हमारे यहाँ पधारें तथा अन्न, बल और विजयश्री हमें शीघ्र प्रदान करें ॥६ ॥



[सूक्त - १८५]

[**ऋषि**- अगस्त्य मैत्रावरुणि । **देवता** - द्यावापृथिवी । **छन्द**- त्रिष्टुप् ।]

१९३१. कतरा पूर्वा कतरापरायोः कथा जाते कवयः को वि वेद ।
विश्वं त्मना बिभृतो यद्ध नाम वि वर्तेते अहनी चक्रियेव ॥१ ॥

हे ऋषियो ! ये (द्युलोक और भूलोक) दोनों किस प्रकार उत्पन्न हुए और इन दोनों में कौन सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ तथा बाद में कौन हुआ ? इस रहस्य को कौन भलीप्रकार जानने में समर्थ है ? ये दोनों लोक सम्पूर्ण विश्व को धारण करते हैं और चक्र के समान घूमते हुए दिन-रात का निर्माण करते हैं ॥१ ॥

१९३२. भूरिं द्वे अचरन्ती चरन्तं पद्वन्तं गर्भमपदी दधाते ।
नित्यं न सूनुं पित्रोरुपस्थे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥२ ॥

स्वयं पद विहीन तथा अचल होने पर भी ये दोनों द्यावा-पृथिवी असंख्य चलने-फिरने में सक्षम पदयुक्त प्राणियों को धारण करते हैं । जिस प्रकार माता-पिता समीप उपस्थित पुत्र की सहायता करते हैं, उसी प्रकार द्युलोक और पृथिवी हम सभी प्राणियों को संकटों से बचायें ॥२ ॥

१९३३. अनेहो दात्रमदितेरनर्वं हुवे स्वर्वदवधं नमस्वत् ।
तद्रोदसी जनयतं जरित्रे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥३ ॥

हम अविनाशी पृथ्वी से पापमुक्त, क्षयरहित, हिंसारहित, तेजस्वी और विनम्रता प्रदान करने वाले धन-वैभव की कामना करते हैं । हे द्यावा-पृथिवि ! ऐसा वैभव स्तोताओं के लिए प्रदान करें । ये दोनों पाप कर्मों से हमारी रक्षा करें ॥३ ॥

१९३४. अतप्यमाने अवसावन्ती अनु ष्याम रोदसी देवपुत्रे ।
उभे देवानामुभयेभिरह्नां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥४ ॥

देव शक्तियों के उत्पादक, द्युलोक और पृथ्वी लोक पीड़ित न होते हुए भी अपने कार्य में शिथिल न होते हुए अपनी संरक्षण की शक्तियों से प्राणियों के संरक्षक हैं । दिव्यता युक्त दिन और रात के अनुकूल हम रहें । द्यावा-पृथिवी दोनों, पाप से हमारी रक्षा करें ॥४ ॥

१९३५. सङ्गच्छमाने युवती समन्ते स्वसारा जामी पित्रोरुपस्थे ।
अभिजिघ्रन्ती भुवनस्य नाभिं द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥५ ॥

चिर युवा, बहिनों की तरह परस्पर सहयोग करने वाली ये दोनों (द्यावा-पृथिवी) पिता के समीप (परमात्मा के अनुशासन में) रहकर भुवन की नाभि (यज्ञ) को सूँघती (उससे पुष्ट होती) हैं । ये द्यावा-पृथिवी हमें सभी विपदाओं से संरक्षित करें ॥५ ॥

१९३६. उर्वी सद्मनी बृहती ऋतेन हुवे देवानामवसा जनित्री ।
दधाते ये अमृतं सुप्रतीके द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥६ ॥

जो श्रेष्ठ स्वरूप वाली द्यावा-पृथिवी जल रूप अमृत को धारण करती हैं । ऐसी विशाल आश्रयभूत तथा सबको उत्पन्न करने वाली द्यावा-पृथिवी को देवशक्तियों की प्रसन्नता के लिए-यज्ञीय कार्य के लिए आवाहित करते हैं, वे दोनों(द्यावा पृथिवी)हमें पाप कर्मों से बचायें ॥६ ॥



१९३७. उर्वी पृथ्वी बहुले दूरेअन्ते उप ब्रुवे नमसा यज्ञे अस्मिन्।

दधाते ये सुभगे सुप्रतूर्ती द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥७ ॥

जो सुन्दर आकृतिरूप और श्रेष्ठ दानदाता रूप में द्यावा-पृथिवी सबकी धरित्री हैं, ऐसी विशाल, व्यापक विभिन्न आकृतिरूप तथा जिनकी सीमा अनन्त है, उन द्यावा-पृथिवी की इस यज्ञ में विनम्रभावना से हम प्रार्थना करते हैं। वे (द्यावा-पृथिवी) हमें संकटों से सुरक्षित करें ॥७ ॥

१९३८. देवान्वा यच्चकृमा कच्चिदागः सखायं वा सदमिज्जास्पतिं वा।

इयं धीर्भूया अवयानमेषां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥८ ॥

यदि हमसे कभी प्रमादवश देवशक्तियों, मित्रजनों अथवा समस्त जगत् के सृजेता परमेश्वर के प्रति कोई पापकर्म बन पड़े हों, तो उनका शमन करने में हमारी विवेक बुद्धि सक्षम हो। द्यावा-पृथिवी पापकर्मों से हमारी रक्षा करें ॥८ ॥

१९३९. उभा शंसा नर्या मामविष्टामुभे मामूती अवसा सचेताम्।

भूरि चिदर्यः सुदास्तरायेषा मदन्त इषयेम देवाः ॥९ ॥

मनुष्यों के कल्याणकारी तथा स्तुति योग्य दोनों द्युलोक-पृथिवीलोक हमें आश्रय प्रदान करें। दोनों संरक्षक द्यावा-पृथिवी अपने संरक्षण साधनों से हमारा पोषण करें। हे देवशक्तियो ! हम श्रेष्ठता को धारण करते हुए, अन्नादि से हर्षित होकर दानवृत्ति को बनाये रखने के लिए प्रचुर धन सम्पदा की कामना करते हैं ॥९ ॥

१९४०. ऋतं दिवे तदवोचं पृथिव्या अभिश्रावाय प्रथमं सुमेधाः।

पातामवद्याद्दुरितादभीके पिता माता च रक्षतामवोभिः ॥१० ॥

हम सद्बुद्धि को धारण करते हुए द्युलोक और पृथ्वीलोक की गरिमा से सम्बन्धित इस सत्यवाणी (ऋचा) की घोषणा करते हैं। पास-पास रहने वाले ये दोनों लोक अनिष्टों से हमारा संरक्षण करें। पितारूप (द्युलोक) और मातारूप (पृथ्वी) सरंक्षण साधनों से हमारी रक्षा करें ॥१० ॥

१९४१. इदं द्यावापृथिवी सत्यमस्तु पितर्मातर्यदिहोपब्रुवे वाम्।

भूतं देवानामवमे अवोभिर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥११ ॥

हे पिता और माता रूप द्यावा-पृथिवि ! आप दोनों के निमित्त इस यज्ञ में जो स्तुतियाँ हम करते हैं, उनका प्रतिफल हमें अवश्य मिले। आप दोनों देवत्वयुक्त संरक्षण साधनों से हमारी रक्षा करें एवं हमें अन्न, बल और दीर्घायुष्य प्रदान करें ॥११ ॥

[सूक्त - १८६]

[**ऋषि**- अगस्त्य मैत्रावरुणि। **देवता** - विश्वेदेवा। **छन्द**- त्रिष्टुप्।]

१९४२. आ न इळाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देव एतु।

अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा ॥१ ॥

सबके कल्याणकारी सवितादेव भली-भाँति प्रशंसित होकर, अन्न से युक्त होकर हमारे यज्ञ में पधारें। हे वरुणदेव ! आप जिस तरह आनन्दित हैं, उसी तरह हमारे यज्ञ में पधारकर अपनी अनुकम्पा से हमें तथा सम्पूर्ण विश्व को भी हर्षित करें ॥१ ॥

१०



१९४३. आ नो विश्व आस्क्रा गमन्तु देवा मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ।
भुवन्यथा नो विश्वे वृधासः करन्त्सुषाहा विथुरं न शवः ॥२ ॥

सभी शत्रुओं पर आक्रमण करने वाले, परस्पर प्रीति करने वाले मित्र, वरुण और अर्यमा देव हमारे समीप आएँ तथा यथासम्भव हमारी प्रगति में सहायक हों । ये देव शत्रुओं को परास्त करने की सामर्थ्य से युक्त होकर हमारी शक्तियों को क्षीण न करें ॥२ ॥

१९४४. प्रेष्ठं वो अतिथिं गृणीषेऽग्निं शस्तिभिस्तुर्वणिः सजोषाः ।
असद्यथा नो वरुणः सुकीर्तिरिषश्च पर्षदरिगूर्तः सूरिः ॥३ ॥

जो अग्निदेव शत्रुसंहारक और सबके साथ स्नेहपूर्ण व्यवहार करने के कारण अतिथि के समान पूज्य हैं, उनकी हम स्तोत्रों द्वारा स्तुतियाँ करते हैं । शत्रुओं के आक्रान्ता और ज्ञानवान् ये वरुणदेव हमें अन्न तथा यथोचित कीर्ति प्रदान करें ॥३ ॥

१९४५. उप व एषे नमसा जिगीषोषासानक्ता सुदुघेव धेनुः ।
समाने अहन्विमिमानो अर्कं विषुरूपे पयसि सस्मिन्नूधन् ॥४ ॥

हे सम्पूर्ण विश्व की संचालक देवशक्तियो ! गौ (सूर्य किरणों) से उत्पादित होने वाले (दुग्धरूपी) प्राण में सम्पूर्ण तेजस्विता की अनुभूति करते हुए, हम साधक मनोविकाररूपी शत्रुओं पर विजय पाने की कामना से प्रातः और सायं (दोनों सन्ध्याओं में) उसी प्रकार आपके समीप जाते हैं, जिस प्रकार श्रेष्ठ दुधारू गौएँ गोपाल के पास जाती हैं ॥४ ॥

१९४६. उत नोऽहिर्बुध्न्यो३ मयस्कः शिशुं न पिप्युषीव वेति सिन्धुः ।
येन नपातमपां जुनाम मनोजुवो वृषणो यं वहन्ति ॥५ ॥

अहिर्बुध्न्य (विद्युत्‌रूप अग्नि) अन्तरिक्षीय मेघों से जल बरसाकर हमें सुखी करें । शिशु का पोषण करने वाली माता के समान नदियाँ जल से परिपूर्ण होकर हमारे समीप आएँ । जल को न गिरने देने वाले (अग्निदेव) की हम वन्दना करते हैं । मन की तरह वेगवान् अश्व (किरणें) उन्हें ले जाते हैं ॥५ ॥

(अहिर्बुध्न्य- विद्युत्‌रूप अग्नि अन्तरिक्ष में स्थित मेघों का विनाशक है ।)

१९४७. उत न ईं त्वष्टा गन्त्वच्छा स्मत्सूरिभिरभिपित्वे सजोषाः ।
आ वृत्रहेन्द्रश्चर्षणिप्रास्तुविष्टमो नरां न इह गम्याः ॥६ ॥

ज्ञानियों से स्नेहपूर्ण व्यवहार करने वाले ये त्वष्टादेव तथा मनुष्यों के तृप्तिकारक और वृत्रासुर के वध द्वारा सबके द्वारा प्रशंसनीय इन्द्रदेव, हमारे इस यज्ञ में पधारकर हमारे सत्कर्मों में सहायक बनें ॥६ ॥

१९४८. उत न ईं मतयोऽश्वयोगाः शिशुं न गावस्तरुणं रिहन्ति ।
तमीं गिरो जनयो न पत्नीः सुरभिष्टमं नरां नसन्त ॥७ ॥

जिस प्रकार गौएँ अपने बछड़ों को स्नेह से चाटती हैं, उसी प्रकार श्रेष्ठ बुद्धियाँ उन चिरयुवा इन्द्रदेव के प्रति अपना स्नेह प्रकट करती हैं । उन महायशस्वी इन्द्रदेव को हमारी स्तुतियाँ उसी प्रकार आकर्षित करती हैं, जिस प्रकार प्रजननशील स्त्रियाँ पतियों को आकर्षित करती हैं ॥७ ॥



१९४९. उत न ईं मरुतो वृद्धसेनाः स्मद्रोदसी समनसः सदन्तु ।

पृषदश्वासोऽवनयो न रथा रिशादसो मित्रयुजो न देवाः ॥८ ॥

रथों पर विराजमान रक्षकगणों के पास समान दुष्टशत्रुओं को विनष्ट करने वाले, मित्रों के समान पारस्परिक स्नेह रहने वाले, विलक्षण अश्वों से युक्त, समान मनोभावों से युक्त, तेजस्वी, महान् सामर्थ्यों से युक्त मरुद्गण तथा द्यावा-पृथिवी हमारे यज्ञ में पधारें ॥८ ॥

१९५०. प्र नु यदेषां महिना चिकित्रे प्र युञ्जते प्रयुजस्ते सुवृक्ति ।

अध यदेषां सुदिने न शरुर्विश्वमेरिणं प्रुषायन्त सेनाः ॥९ ॥

श्रेष्ठ स्तुतियों से हर्षित होकर मरुद्गण अश्वों को अपने रथ में जोड़ते हैं । तत्पश्चात् दिन में जिस प्रकार प्रकाश सर्वत्र संचरित होता है, उसी प्रकार मरुतों की सेना ऊसर भूमि को जलों से सींचकर उपजाऊ बनाती है । इससे इन मरुद्गणों की ख्याति और भी अधिक बढ़ जाती है ॥९ ॥

१९५१. प्रो अश्विनाववसे कृणुध्वं प्र पूषणं स्वतवसो हि सन्ति ।

अद्वेषो विष्णुर्वात ऋभुक्षा अच्छा सुम्नाय ववृतीय देवान् ॥१० ॥

हे मनुष्यो ! अपनी रक्षा के लिए अश्विनीकुमारों, पूषादेव, विद्वेषरहित विष्णुदेव, वायुदेव, ऋभुओं के स्वामी (इन्द्रदेव) इन सभी देवों की स्तुति करो । हम भी सुख की प्राप्ति के लिए इन देव समूह की प्रार्थना करते हैं ॥१० ॥

१९५२. इयं सा वो अस्मे दीधितिर्यजत्रा अपिप्राणी च सदनी च भूयाः ।

नि या देवेषु यतते वसूयुर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥११ ॥

हे यज्ञदेव ! आपका जो तेज देवों को ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए प्रेरित करता है, मनुष्यों की अभिलाषाओं को पूर्ण कराने वाला तथा आवास प्रदान कराने वाला है । वह दिव्यतेज हम अपने अन्दर धारण करें, जिससे हम मनुष्य उत्तम अन्न, उत्तम बल और दीर्घ जीवन का लाभ प्राप्त कर सकें ॥११ ॥

[सूक्त - १८७]

[**ऋषि-** अगस्त्य मैत्रावरुणि ।**देवता** - अन्न । **छन्द-** १ अनुष्टुप् गर्भा उष्णिक्; ३,५-७ अनुष्टुप्, ११ अनुष्टुप् अथवा बृहती; २,४,८-१० गायत्री ।]

१९५३. पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम् । यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत् ॥१ ॥

जिसके ओर से तीनों लोकों में यशस्वी इन्द्रदेव ने वृत्रनामक असुर के अंग-प्रत्यंगों को काट-काट कर मारा, उन महान् शक्तिशाली, सबके पोषक तथा धारणकर्त्ता अन्नदेव की हम स्तुति करते हैं ॥१ ॥

१९५४. स्वादो पितो मधो पितो वयं त्वा ववृमहे । अस्माकमविता भव ॥२ ॥

हे स्वादिष्ट, पालक तथा माधुर्ययुक्त रसों के पोषक अन्नदेव ! हम आपमें विद्यमान पोषक तत्त्व को धारण करते हैं, आप हमारे संरक्षक हैं ॥२ ॥

१९५५. उप नः पितवा चर शिवः शिवाभिरूतिभिः ।

मयोभुरद्विषेण्यः सखा सुशेवो अद्वयाः ॥३ ॥



हे पालनकर्त्ता अन्नदेव ! आप कल्याणकारी सुखप्रद, विद्वेषरहित, मित्र के समान हितैषी, भली- भाँति सेवनीय और ईर्ष्या-द्वेष से रहित हैं । आप मंगलकारी संरक्षणयुक्त पोषक तत्वों से युक्त होकर हमारे समीप आएँ ॥३ ॥

१९५६. तव त्ये पितो रसा रजांस्यनु विष्ठिताः । दिवि वाताइव श्रिताः ॥४ ॥

हे परिपोषक अन्नदेव ! जिस प्रकार अन्तरिक्ष में वायु प्रतिष्ठित है, उसी प्रकार आपके वे विभिन्न रस सम्पूर्ण लोकों में विद्यमान हैं ॥४ ॥

१९५७. तव त्ये पितो ददतस्तव स्वादिष्ठ ते पितो ।
प्र स्वाद्मानो रसानां तुविग्रीवाइवेरते ॥५ ॥

हे परिपोषक अन्नदेव ! आपके उपासक कृषक आप से दानवृत्ति को ग्रहण करते हैं, हे माधुर्ययुक्त पोषक देव ! आपके साधक आपकी पोषणशक्ति को बढ़ाते हैं । आपके रसों का सेवन करने वाले पुष्टग्रीवायुक्त होकर सर्वत्र विचरण करते हैं ॥५ ॥

१९५८. त्वे पितो महानां देवानां मनो हितम् ।
अकारि चारु केतुना तवाहिमवसावधीत् ॥६ ॥

हे सर्वपालक अन्नदेव ! महान् देवों का मन भी आपके लिए लालायित रहता है । इन्द्रदेव ने आपकी श्रेष्ठ पोषक शक्ति एवं संरक्षक शक्ति से ही अहि असुर का वध करके महान् कार्य किया ॥६ ॥

१९५९. यददो पितो अजगन्विवस्व पर्वतानाम् ।
अत्रा चिन्नो मधो पितोऽरं भक्षाय गम्याः ॥७ ॥

हे सर्व पालक अन्नदेव ! जब जलों से परिपूर्ण बादलों का शुभ जल आपके समीप पहुँचता है, तब आप हमारे पोषण के लिए इस विश्व में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हों ॥७ ॥

१९६०. यदपामोषधीनां परिंशमारिशामहे । वातापे पीव इद्भव ॥८ ॥

जब जलों और ओषधि तत्त्वों से युक्त सभी प्रकार से कल्याणकारी अन्न को हम ग्रहण करते हैं, तब हे शरीर ! आप इस पोषक अन्न से स्वस्थ एवं हृष्ट-पुष्ट हों ॥८ ॥

१९६१. यत्ते सोम गवाशिरो यवाशिरो भजामहे । वातापे पीव इद्भव ॥९ ॥

हे सुखस्वरूप अन्नदेव ! जब अन्न में जौ, गेहूँ आदि पदार्थों के साथ गाय के दूध, घृतादि पौष्टिक पदार्थों का सेवन किया जाता है, तब हमारा शारीरिक स्वास्थ्य सुदृढ़ हो ॥९ ॥

१९६२. करम्भ ओषधे भव पीवो वृक्क उदारथिः । वातापे पीव इद्भव ॥१० ॥

हे परिपक्व अन्नदेव ! पौष्टिक, आरोग्यप्रद तथा इन्द्रिय सामर्थ्य को बढ़ाने वाले हैं । पके हुए अन्नों के सेवन से हमारा शारीरिक स्वास्थ्य बढ़े ॥१० ॥

१९६३. तं त्वा वयं पितो वचोभिर्गावो न हव्या सुषूदिम ।
देवेभ्यस्त्वा सधमादमस्मभ्यं त्वा सधमादम् ॥११ ॥

हे पालनकर्त्ता अन्नदेव ! आप देव शक्तियों और मनुष्यों दोनों को ही समानरूप से आनन्दित करने वाले हैं । प्रशंसित स्तोत्रों से आपको उसी प्रकार अभिषुत करते हैं, जैसे गोपाल गौओं से दूध दुहते हैं ॥११ ॥

[सूक्त - १८८]

[**ऋषि-** अगस्त्य मैत्रावरुणि । **देवता** - १ इध्म अथवा समिद्ध अग्नि; २ तनूनपात् ; ३ इळ ; ४ बर्हि; ५-देवीर्द्वार; ६ उषासानक्ता; ७ दिव्य होतागण प्रचेतस्; ८ तीन देवियाँ-सरस्वती, इळा, भारती; ९ त्वष्टा; १० वनस्पति; ११ स्वाहाकृति । **छन्द**-गायत्री ।]

१९६४. समिद्धो अद्य राजसि देवो देवैः सहस्रजित्। दूतो हव्या कविर्वह ॥१ ॥

हे सहस्रों शत्रुओं के विजेता अग्निदेव ! देवों द्वारा तेजस्वीरूप में आज आप प्रदीप्त हो रहे हैं। हे क्रान्तदर्शी ! आप हमारे द्वारा प्रदत्त आहुतियों को दूत की तरह देवों तक पहुँचाएँ ॥१ ॥

१९६५. तनूनपादृतं यते मध्वा यज्ञः समज्यते। दधत्सहस्रिणीरिषः ॥२ ॥

स्वास्थ्य संरक्षक, पूजनीय अग्निदेव सहस्रों प्रकार के अन्नों में प्राणतत्त्व को परिपोषित करते हुए यज्ञभूमि में जाते हैं और वहाँ हविष्यान्नों में मधुर रसों का संचार करते हैं ॥२ ॥

१९६६. आजुह्वानो न ईड्यो देवाँ आ वक्षि यज्ञियान्। अग्ने सहस्रसा असि ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप सहस्रों प्रकार की ऐश्वर्य सम्पदा के धारणकर्त्ता हैं। अतएव हमारे द्वारा आवाहित किये जाने पर आप अनेक आदरणीय देवताओंसहित हमारे यज्ञ में पधारें ॥३ ॥

१९६७. प्राचीनं बर्हिरोजसा सहस्रवीरमस्तृणन्। यत्रादित्या विराजथ ॥४ ॥

हे आदित्यगण ! प्राचीनकाल से हजारों देवगणों के साथ आप जिस आसन पर विराजमान होते रहे हैं, ऐसे कुश के आसन को यजमान अपनी शक्ति से (यज्ञस्थल पर) बिछाते हैं ॥४ ॥

१९६८. विराट् सम्राड्विभ्वीः प्रभ्वीर्बह्वीश्च भूयसीश्च याः। दुरो घृतान्यक्षरन् ॥५ ॥

विराट् तेजस्वी, विभु, प्रभु, यज्ञदेव अनेक द्वारों से घृत की वर्षा करते हैं ॥५ ॥

१९६९. सुरुक्मे हि सुपेशसाधि श्रिया विराजतः। उषासावेह सीदताम् ॥६ ॥

उत्तम स्वरूप वाली (उषा एवं रात्रि) और अधिक शोभा पा रही हैं। हे उषा और रात्रि ! आप दोनों हमारे यहाँ यज्ञ में विराजमान हों ॥६ ॥

१९७०. प्रथमा हि सुवाचसा होतारा दैव्या कवी। यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥७ ॥

सर्वोत्तम, प्रखर वाणी के प्रयोक्ता, दिव्यगुणों से युक्त, मेधावी होता हमारे इस यज्ञ को सम्पन्न करें ॥७ ॥

१९७१. भारतीळे सरस्वति या वः सर्वा उपब्रुवे। ता नश्चोदयत श्रिये ॥८ ॥

हे भारती, इळा और सरस्वती ! हम आप सभी को आमंत्रित करते हैं। आप तीनों हमें ऐश्वर्य विभूतियों की ओर प्रेरित करें ॥८ ॥

१९७२ . त्वष्टा रूपाणि हि प्रभुः पशून्विश्वान्त्समानजे। तेषां नः स्फातिमा यज ॥९ ॥

त्वष्टादेव स्वरूप प्रदान करने में सक्षम हैं, वही पशुओं के निर्माता हैं। हे त्वष्टादेव ! आप हमारे लिए पशुधन की वृद्धि करें ॥९ ॥

१९७३. उप त्मन्या वनस्पते पाथो देवेभ्यः सृज। अग्निर्हव्यानि सिष्वदत् ॥१० ॥

हे वनस्पते ! आप अपनी सामर्थ्य से हव्य पदार्थ उत्पन्न करें, तब अग्निदेव हव्य का सेवन करें ॥१० ॥

१९७४. पुरोगा अग्निर्देवानां गायत्रेण समज्यते। स्वाहाकृतीषु रोचते ॥११ ॥

देवताओं में अग्रणी रहनेवाले अग्निदेव गायत्री मंत्र के उच्चारण से सुशोभित होते हैं; पश्चात् "स्वाहा" शब्द के साथ प्रदत्त आहुतियों से वे अग्निदेव प्रज्जलित होते हैं ॥११ ॥



[सूक्त - १८९]

[ऋषि- अगस्त्य मैत्रावरुणि । देवता - अग्नि । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

१९७५. अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्य१ स्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥१ ॥

दिव्य गुणों से युक्त हे अग्निदेव ! आप सम्पूर्ण मार्गों (ज्ञान) को जानते हुए हम याजकों को यज्ञ फल प्राप्त करने के लिए सन्मार्ग पर ले चलें । हमें कुटिल आचरण करने वाले शत्रुओं तथा पापों से मुक्त करें ।हम आपके लिए स्तोत्र एवं नमस्कारों का विधान करते हैं ॥१ ॥

१९७६. अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान्त्स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।
पूश्च पृथ्वी बहुला न उर्वी भवा तोकाय तनयाय शं योः ॥२ ॥

हे अग्निदेव !आप नित्यनूतन अथवा अति प्रशंसनीय हैं ।आपकी कृपा से मंगलकारी मार्गों से हम सभी प्रकार के दुर्गम पापकर्मों एवं कष्टकारी दु:खों से निवृत्त हों । यह पृथ्वी और नगर हमारे लिए उत्तम और विस्तृत हों । आप हमारी सन्तानों के लिए सुखप्रदायी हों ॥२ ॥

१९७७. अग्ने त्वमस्मद्युयोध्यमीवा अनग्नित्रा अभ्यमन्त कृष्टीः ।
पुनरस्मभ्यं सुविताय देव क्षां विश्वेभिरमृतेभिर्यजत्र ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आप यज्ञ द्वारा हमारे सभी रोगों (विकारों) का निवारण करें । यज्ञरहित मनुष्य सदैव रोग विकारों से त्रस्त रहते हैं । हे देव ! आप अमरत्व प्राप्त सभी देवताओं के साथ दिव्य गुणों से युक्त होकर हमारे कल्याण की कामना से यज्ञस्थल पर संगठित रूप से पधारें ॥३ ॥

१९७८. पाहि नो अग्ने पायुभिरजस्रैरुत प्रिये सदन आ शुशुक्वान् ।
मा ते भयं जरितारं यविष्ठ नूनं विदन्मापरं सहस्वः ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप निरन्तर अपनी संरक्षण शक्तियों से हमें रक्षित करें और हमारे प्रिय यज्ञ स्थल में पधारकर सर्वत्र प्रकाशमान हों । हे नित्य तरुण रूप अग्निदेव ! आपके स्तोता सभी प्रकार के भयों से मुक्त हों ।हे बलों से उत्पन्न अग्निदेव !आपकी सामर्थ्य से अन्य संकटों के समय भी हम निर्भय रहें ॥४ ॥

१९७९. मा नो अग्नेऽव सृजो अघायाविष्यवे रिपवे दुच्छुनायै ।
मा दत्वते दशते मादते नो मा रीषते सहसावन्परा दाः ॥५ ॥

हे बलवान् अग्निदेव ! हमें पापों में लिप्त, अर्धमयुक्त कार्यों से उपार्जित अन्न को खाने वाले, सुखों के नाशक शत्रुओं के बन्धन में न सौंपें । हमें दाँतों से काटने वाले सर्परूपी शत्रुओं के अधीन न करें तथा हिंसकों एवं दस्यु असुरों के बन्धन में भी न बाँधें ॥५ ॥

१९८०. वि घ त्वावाँ ऋतजात यंसद्गृणानोअग्ने तन्वे३ वरूथम् ।
विश्वाद्रिरिक्षोरुत वा निनित्सोरभिह्रुतामसि हि देव विष्पट् ॥६ ॥

हे यज्ञ के निमित्त उत्पन्न अग्निदेव ! आपके साधक आपकी श्रेष्ठ प्रार्थना करते हुए शारीरिक दृष्टि से परिपुष्ट होकर हिंसक एवं पर निन्दक दुष्ट व्यक्तियों से स्वयं को संरक्षित करते हैं । हे दिव्य गुण सम्पन्न अग्निदेव ! आप दुर्बुद्धि से ग्रस्त, दुर्व्यव्यवहारयुक्त दुष्टकर्मियों को निश्चित ही दण्डित करने वाले हैं ॥६ ॥

१९८१. त्वं ताँ अग्न उभयान्वि विद्वान्वेषि प्रपित्वे मनुषो यजत्र ।
अभिपित्वे मनवे शास्यो भूर्मर्मृजेन्य उशिग्भिर्नाक्रः ॥७ ॥



हे यजन योग्य अग्निदेव ! आप यज्ञ प्रेमी और यज्ञ विहीन इन दोनों से भलीप्रकार परिचित होते हुए प्रभात वेला में मनुष्यों के पास पहुँचते हैं । पराक्रम-सम्पन्न आप यज्ञ में उपस्थित मनुष्यों को उसी प्रकार शिक्षण प्रदान करें, जिस प्रकार ऋत्विज् यजमानों को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करते हैं ॥७ ॥

१९८२. अवोचाम निवचनान्यस्मिन्मानस्य सूनुः सहसाने अग्नौ ।

वयं सहस्रमृषिभिः सनेम विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥८ ॥

यज्ञ के उत्पन्नकर्त्ता और शत्रुसंहारक इन अग्निदेव के निमित्त हम सभी प्रकार के स्तोत्रों का गान करते हैं । हम इन इन्द्रिय रूपी ऋषियों को समर्थ बनाकर अनेक ऐश्वर्यों का उपभोग करें तथा अन्न, बल और दीर्घायुष्य को प्राप्त करें ॥८ ॥

[सूक्त - १९०]

[ऋषि- अगस्त्य मैत्रावरुणि । देवता - बृहस्पति । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

१९८३. अनर्वाणं वृषभं मन्द्रजिह्वं बृहस्पतिं वर्धया नव्यमर्कैः ।

गाथान्यः सुरुचो यस्य देवा आशृण्वन्ति नवमानस्य मर्ताः ॥१ ॥

हे मनुष्यो ! जिन द्वेष रहित, बलशाली, मधुर भाषी, स्तुति के योग्य बृहस्पतिदेव के मधुर, तेजस्वी एवं प्रशंसा के योग्य वचनों को मनुष्य तथा देवगण सभी श्रद्धा के साथ सुनते हैं, उनका गुणगान करो ॥१ ॥

१९८४. तमृत्विया उप वाचः सचन्ते सर्गो न यो देवयतामसर्जि ।

बृहस्पतिः सह्यञ्जो वरांसि विभ्वाभवत्समृते मातरिश्वा ॥ २ ॥

समयानुकूल की गई स्तुतियाँ बृहस्पति देव ग्रहण करते हैं । जिन बृहस्पतिदेव ने नई सृष्टि की रचना के समान देव बनने की कामना करने वाले मनुष्य को उत्पन्न किया, ऐसे वायु के समान प्रगतिशील बृहस्पतिदेव उत्तम वस्तुओं के साथ अपनी प्रचण्ड शक्ति से उत्पन्न हुए ॥२ ॥

१९८५. उपस्तुतिं नमस उद्यतिं च श्लोकं यंसत्सवितेव प्र बाहू ।

अस्य क्रत्वाहन्यो३ यो अस्ति मृगो न भीमो अरक्षसस्तुविष्मान् ॥३ ॥

जैसे सूर्यदेव बाहु (किरणें) फैलाते हैं; उसी प्रकार बृहस्पतिदेव याजकों की स्तुतियाँ, अन्नादि एवं मंत्रों को स्वीकार करते हैं । बृहस्पतिदेव के क्रूरतारहित कर्त्तव्य से ही सूर्यदेव भयंकर मृग (सिंह जैसा) की तरह बल सम्पन्न होते हैं ॥३ ॥

१९८६. अस्य श्लोको दिवीयते पृथिव्यामत्यो न यंसद्यक्षभृद्विचेताः ।

मृगाणां न हेतयो यन्ति चेमा बृहस्पतेरहिमायाँ अभि द्यून् ॥४ ॥

इन बृहस्पतिदेव की कीर्ति द्युलोक और पृथ्वीलोक में सर्वत्र व्याप्त है । शीघ्रगामी अश्व के समान ज्ञानियों के भरणपोषण कर्त्ता, विशिष्ट ज्ञानसम्पन्न ये बृहस्पतिदेव सभी लोकों के सहयोग के लिए प्रयत्नशील रहते हैं । हरिणों के संहारक शस्त्रों के समान बृहस्पति देव के ये शस्त्र दिन में छल करने वाले कपटी असुरों को मारते हैं ॥४ ॥

१९८७. ये त्वा देवोस्रिकं मन्यमानाः पापा भद्रमुपजीवन्ति पज्राः ।

न दूढ्ये३ अनु ददासि वामं बृहस्पते चयस इत्पियारुम् ॥५ ॥



हे देव ! जो धन का अहंकार करने वाले पापी वृद्ध बैल के समान जीवित हैं, आप उन दुर्बुद्धिग्रस्तों को ऐवश्वर्य नहीं देते हैं । हे बृहस्पतिदेव ! आप सोमपान करने वालों पर ही अपनी कृपा बरसाते हैं ॥५ ॥

१९८८. सुप्रैतुः सूयवसो न पन्था दुर्नियन्तुः परिप्रीतो न मित्रः ।

अनर्वाणो अभि ये चक्षते नोऽपीवृता अपोर्णुवन्तो अस्थुः ॥६ ॥

ये बृहस्पतिदेव सन्मार्गगामी तथा उत्तम अन्नवाले मनुष्य के लिए श्रेष्ठ पथ प्रदर्शक रूप हैं तथा दुष्टों का नियन्त्रण करने वालों के मित्र के समान हैं । निष्पाप होकर जो मनुष्य हमारी ओर देखते हैं, वे अज्ञानरूपी अन्धकार से आवृत होने पर भी, अज्ञान को त्यागकर ज्ञान मार्ग पर बढ़ते हैं ॥६ ॥

१९८९. सं यं स्तुभोऽवनयो न यन्ति समुद्रं न स्रवतो रोधचक्राः ।

स विद्वाँ उभयं चष्टे अन्तर्बृहस्पतिस्तर आपश्च गृध्रः ॥७ ॥

स्वामी को उत्तम भूमि प्राप्त होने तथा समुद्र को भँवरों से युक्त नदियों का जल प्राप्त होने के समान ही बृहपतिदेव को स्तोत्ररूप वाणियाँ प्राप्त होती हैं । सुखों के अभिलाषी, ज्ञानवान् बृहस्पति देव दोनों के मध्य विराजमान होकर तट और जल दोनों को देखते हैं ॥७ ॥

१९९०. एवा महस्तुविजातस्तुविष्मान्बृहस्पतिर्वृषभो धायि देवः ।

स नः स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥८ ॥

हम सभी अति प्रख्यात, शक्तिशाली, महिमायुक्त, सुखवर्षक बृहस्पतिदेव की प्रार्थना करते हैं । वे हमें वीर संतान युक्त गवादि धन प्रदान करें । हम सभी प्राप्त करने योग्य, शक्ति सम्पन्न तथा तेजस्वी देव के ज्ञान से युक्त हों ॥८ ॥

[सूक्त - १९१]

[**ऋषि-** अगस्त्य मैत्रावरुणि । **देवता** - अप्तृण सूर्या (विषघ्नोपनिषद्) । **छन्द** - अनुष्टुप्; १०-१२ महापंक्ति; १३ महाबृहती ।]

१९९१. कङ्कतो न कङ्कतोऽथो सतीनकङ्कतः । द्वाविति प्लुषी इति न्य१दृष्टा अलिप्सत ॥१ ॥

कुछ विषैले, कुछ विषरहित और कुछ जल में रहने वाले अल्पविष जीव होते हैं ।ये दृश्य भी होते हैं और अदृश्य भी । वे दोनों शरीर में दाह उत्पन्न करते हैं । उनका विष हममें संव्याप्त हो जाता है ॥१ ॥

१९९२. अदृष्टान्हन्त्यायत्यथो हन्ति परायती । अथो अवघ्नती हन्त्यथो पिनष्टि पिंषती ॥२ ॥

यह ओषधि, उन अदृश्य जीवों के विष को समाप्त करती है । वह कूटी-पीसी जाकर भी विषैले जीवों के विष को नष्ट करती है ॥२ ॥

१९९३. शरासः कुशरासो दर्भासः सैर्या उत ।

मौञ्जा अदृष्टा वैरिणाः सर्वे साकं न्यलिप्सत ॥३ ॥

इन विषैले जीवों में से कुछ सरकण्डों, कुछ कुशाघास, कुछ छोटे सरकण्डों में स्थित रहते हैं । कुछ नदी, तालाबों के तटों पर पैदा होने वाले घास में, कुछ मूँज और कुछ वीरण नामक घास में छिपे रहते हैं । ये सभी लिपटने वाले होते हैं ॥३ ॥

१९९४. नि गावो गोष्ठे असदन्नि मृगासो अविक्षत ।

नि केतवो जनानां न्य१दृष्टा अलिप्सत ॥४ ॥



जिस समय गौएँ गोष्ठ में और पशु अपने स्थानों में विश्राम करते हैं तथा जब मनुष्य भी थककर विश्राम करने लगते हैं, ऐसे में अदृश्य रहनेवाले ये जीव बाहर निकलते हैं और उन्हें लिपटते हैं ॥४ ॥

१९९५. एत उ त्ये प्रत्यदृश्रन्प्रदोषं तस्कराइव। अदृष्टा विश्वदृष्टाः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥५ ॥

ये विषाणु चोरों की तरह रात्रि में दिखाई देते हैं। ये अदृश्य होते हुए भी सबको दिखते हैं (उनका प्रभाव दिखता है)। हे मनुष्यो ! इनसे सावधान रहो ॥५ ॥

१९९६. द्यौर्वः पिता पृथिवी माता सोमो भ्रातादितिः स्वसा।

अदृष्टा विश्वदृष्टास्तिष्ठतेलयता सु कम् ॥६ ॥

हे विषाणुओ ! तुम्हारे पिता दिव्यलोक, जन्म दात्री पृथ्वी, सोम भ्रातृरूप और देवमाता अदिति भगिनी स्वरूपा हैं, अतः स्वयं अदृश्य रूप होते हुए भी तुम सबको देखने में समर्थ हो। अस्तु तुम किसी को पीड़ित न करते हुए सुखपूर्वक विचरण करो ॥६ ॥

१९९७. ये अंस्या ये अङ्ग्याः सूचीका ये प्रकङ्कताः।

अदृष्टाः किं चनेह वः सर्वे साकं नि जस्यत ॥७ ॥

जो जन्तु पीठ के सहारे (सर्पादि) सरकते हैं, जो पैरों के सहारे (कानखजूरा) चलते हैं, जो सुई के समान (बिच्छू) छेदते हैं, जो महाविषैले हैं और जो दिखाई नहीं पड़ते, ये सभी विषैले जीव एक साथ हमें कष्ट न पहुँचायें ॥७ ॥

१९९८. उत्पुरस्तात्सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा।

अदृष्टान्त्सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्यः ॥८ ॥

सबके दर्शनीय, अदृश्य दोषविकारों के नाशक, सूर्यदेव पूर्व दिशा में उदय होते हैं।वे सभी अदृश्य प्राणियों और सभी प्रकार की कुटिल चाल धारण करने वाले राक्षसी तत्त्वों को दूर करते हुए प्रकट होते हैं ॥८ ॥

१९९९. उदपप्तदसौ सूर्यः पुरु विश्वानि जूर्वन्। आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा ॥९ ॥

अनेक अदृश्य जन्तुओं को विनष्ट करते हुए ये सर्वद्रष्टा सूर्यदेव ऊपर उठते हैं, इनके उदित होते ही सभी अनिष्टकारी (विषधारी) जीव छिप जाते हैं ॥९ ॥

२०००. सूर्ये विषमा सजामि दृतिं सुरावतो गृहे। सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामारे अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥१० ॥

आसव को जिस प्रकार पात्र में रखते हैं, उसी प्रकार हम सूर्य किरणों में विष को रखते हैं। इस विष से सूर्यदेव प्रभावित नहीं होते तथा हमारे लिए विषनिवारक सिद्ध होते हैं। अश्वारुढ़, सूर्यदेव इस विष का निवारण करते हैं, तथा मधुला विधा इस विष को मृत्युनिवारक अमृत बनाती है ॥१० ॥

२००१. इयत्तिका शकुन्तिका सका जघास ते विषम्। सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामारे अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥११ ॥

कपिंजली नामक चिड़िया तेरे विष को खाये। जिससे वह न मरे तथा हमारे विष का भी निवारण हो और मधुला शक्ति इस विष के लिए मृत्युनिवारक (अमृत) सिद्ध हो ॥११ ॥

२००२. त्रिः सप्त विष्पुलिङ्गका विषस्य पुष्यमक्षन्। ताश्चिन्नु न मरन्ति नो वयं मरामारे अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥१२ ॥



इक्कीस प्रकार की ऐसी छोटी-छोटी चिड़ियाएँ हैं, जो विष के फलों को खा जाती हैं, पर फिर भी प्रभावित नहीं होतीं। इसी प्रकार हम भी विष से मृत्युरहित हों। अश्वारूढ़ सूर्य ने इस विष का निवारण कर दिया है; मधुला विधा विष को अमृत रूप में बदल देती है ॥१२॥

२००३. नवानां नवतीनां विषस्य रोपुषीणाम्।

सर्वासामग्रभं नामारे अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥१३॥

निन्यानवे प्रकार की औषधियाँ हैं, जो विषों की निवारक हैं, उन सभी को हम जानते हैं। उनके उपयोग से हर प्रकार के विष का निवारण होता है। अश्वारुढ़, सूर्य इसका निवारण करे तथा मधुला शक्ति इसे अमृत बनाये ॥१३॥

२००४. त्रिः सप्त मयूर्यः सप्त स्वसारो अग्रुवः।

तास्ते विषं वि जभ्रिर उदकं कुम्भिनीरिव ॥१४॥

हे विष पीड़ित प्राणी !जिस प्रकार घड़ों में स्त्रियाँ जल ले जाती हैं, उसी प्रकार इक्कीस मोरनियाँ और भगिनीरूपा सात नदियाँ आपके विष का निवारण करें ॥१४॥

२००५. इयत्तकः कुषुम्भकस्तकं भिनद्म्यश्मना।

ततो विषं प्र वावृते पराचीरनु संवतः ॥१५॥

इतना छोटा सा यह विषयुक्त कीट है, ऐसे हमारी ओर आने वाले छोटे कीट को हम पत्थर से मार डालते हैं। उसका विष अन्य दिशाओं में चला जाय ॥१५॥

२००६. कुषुम्भकस्तदब्रवीद्गिरेः प्रवर्तमानकः।

वृश्चिकस्यारसं विषमरसं वृश्चिक ते विषम् ॥१६॥

पहाड़ से आने वाले कुषुम्भक (नेवला) ने यह कहा कि बिच्छू का विष प्रभावहीन है। हे बिच्छू ! तुम्हारे विष में प्रभाव नहीं है ॥१६॥

[इस सूक्त में विषैले जीवों के विष के शमन के सूत्र हैं, जो शोध के योग्य हैं।]

॥इति प्रथमं मण्डलम्॥





॥अथ द्वितीयं मण्डलम्॥

[सूक्त - १]

[ऋषि- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक। देवता- अग्नि। छन्द - जगती।]

२००७. त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिस्त्वमद्भ्यस्त्वमश्मनस्परि।
त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधीभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः॥१॥

हे मनुष्यों के स्वामी अग्निदेव! आप द्युलोक से प्रकट होकर शीघ्र प्रकाशित होने वाले तथा पवित्र हैं। आप जल से, (बड़वाग्नि रूप में) पाषाण घर्षण से, (चिनगारी रूप में) वनों से, (दावानल रूप में) ओषधियों से (तेजाबयुक्त ज्वलनशील रूप में) उत्पन्न होने वाले हैं॥१॥

२००८. तवाग्ने होत्रं तव पोत्रमृत्वियं तव नेष्ट्रं त्वमग्निदृतायतः।
तव प्रशास्त्रं त्वमध्वरीयसि ब्रह्मा चासि गृहपतिश्च नो दमे॥२॥

हे अग्ने! ऋत्विजों (यज्ञीय प्रक्रिया के संचालकों) में आप ही होता (देव आवाहन कर्त्ता), पोता (पवित्रता बनाये रखने वाले), नेष्टा (सोमादि वितरक), आग्नीध्र (अग्निकर्म के ज्ञाता) हैं। आप ही यज्ञ की कामना करने वाले प्रशास्ता (प्रेरणा देने वाले), अध्वर्यु (कर्मकाण्ड संचालक) तथा ब्रह्मा (निरीक्षक) हैं। यज्ञकर्त्ता गृहपति (यजमान) भी आप ही हैं॥२॥

२००९. त्वमग्न इन्द्रो वृषभः सतामसि त्वं विष्णुरुरुगायो नमस्यः।
त्वं ब्रह्मा रयिविद्ब्रह्मणस्पते त्वं विधर्तः सचसे पुरन्ध्या॥३॥

हे अग्निदेव! आप सज्जनों को प्रभावशाली नेतृत्व प्रदान करने वाले इन्द्र हैं। आप ही सबके स्तुत्य सर्वव्यापी विष्णु हैं। हे ज्ञान सम्पन्न अग्निदेव! आप उत्तम ऐश्वर्य से युक्त ब्रह्मा हैं, विविध प्रकार की बुद्धि को धारण करने के कारण आप मेधावी हैं॥३॥

२०१०. त्वमग्ने राजा वरुणो धृतव्रतस्त्वं मित्रो भवसि दस्म ईड्यः।
त्वमर्यमा सत्पतिर्यस्य सम्भुजं त्वमंशो विदथे देव भाजयुः॥४॥

हे अग्निदेव! आप व्रतों को धारण करने वाले राजा वरुण हैं। दुष्टनाशक तथा सबके स्तुत्य मित्र देवता हैं। सर्वव्यापी आप दान देने वाले सज्जनों के पालक अर्यमा हैं। आप ही सूर्य हैं। अतः हे अग्निदेव! दिव्य गुणों से युक्त अभीष्ट फल हमें प्रदान करें॥४॥

२०११. त्वमग्ने त्वष्टा विधते सुवीर्यं तव ग्नावो मित्रमहः सजात्यम्।
त्वमाशुहेमा ररिषे स्वश्व्यं त्वं नरां शर्धो असि पुरूवसुः॥५॥

हे अग्निदेव! साधकों के लिए आप श्रेष्ठ पराक्रम प्रदान करने वाले त्वष्टादेव हैं। सभी स्तुतियाँ आपके लिये हैं। आप हमारे मित्र और सजातीय (बन्धु) हैं। आप शीघ्र ही उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हैं। हे अग्निदेव! आप मनुष्यों को आश्रय प्रदान करने वाले महान् बली हैं॥५॥

२०१२. त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिवस्त्वं शर्धो मारुतं पृक्ष ईशिषे।
त्वं वातैररुणैर्यासि शङ्गयस्त्वं पूषा विधतः पासि नु त्मना॥६॥



हे अग्निदेव ! आप द्युलोक के प्राणदाता रुद्र हैं । आप अन्नाधिपति तथा मरुतों के बल हैं । आप वायु के समान द्रुतगामी अश्व पर आरूढ़ होकर, कल्याण की कामना वाले गृहस्वामी के यहाँ जाते हैं । आप पोषणकर्त्ता पूषादेव हैं, अतः आप स्वयं ही मनुष्यों की रक्षा करते हैं ॥६ ॥

२०१३. त्वमग्ने द्रविणोदा अरङ्कृते त्वं देवः सविता रत्नधा असि ।

त्वं भगो नृपते वस्व ईशिषे त्वं पायुर्दमे यस्तेऽविधत् ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! प्रज्वलित करने वाले को आप धन प्रदान करते हैं । आप रत्नों के धारणकर्त्ता सवितादेव हैं । हे प्रजापालक अग्निदेव ! आप ही धनाधिपति 'भग' देव हैं । जो अपने घर में आपको प्रज्वलित रखता है, उसकी आप रक्षा करें ॥७ ॥

२०१४. त्वामग्ने दम आ विश्पतिं विशस्त्वां राजानं सुविदत्रमृञ्जते ।

त्वं विश्वानि स्वनीक पत्यसे त्वं सहस्राणि शता दश प्रति ॥८ ॥

हे प्रजापालक अग्निदेव ! प्रजा अपने घरों में प्रकाशमान तथा ज्ञानयुक्त अग्नि के रूप में आपको प्राप्त करती है । हे सुन्दर ज्वालाओं से युक्त अग्निदेव ! आप सम्पूर्ण विश्व के स्वामी हैं तथा लाखों फल प्रदान करने वाले हैं ॥८ ॥

२०१५. त्वामग्ने पितरमिष्टिभिर्नरस्त्वां भ्रात्राय शम्या तनूरुचम् ।

त्वं पुत्रो भवसि यस्तेऽविधत्त्वं सखा सुशेवः पास्याधृषः ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! आप मनुष्यों के पितर हैं, वे यज्ञों द्वारा आपको तृप्त करते हैं । आपका भ्रातृत्व प्राप्त करने के लिए वे शरीर को तेजस्वी बनाने वाले आपको कर्मों से प्रसन्न करते हैं । सेवा करने वालों के लिए आप पुत्र (तुष्टिकर) बन जाते हैं । आप मित्र, हितैषी तथा विघ्ननाशक बनकर हमारी रक्षा करें ॥९ ॥

२०१६. त्वमग्न ऋभुराके नमस्य१स्त्वं वाजस्य क्षुमतो राय ईशिषे ।

त्वं वि भास्यनु दक्षि दावने त्वं विशिक्षुरसि यज्ञमातनिः ॥१० ॥

हे अग्निदेव ! आपका अत्यन्त तेजस्वी स्वरूप भी समीप से स्तुति के योग्य है । आप प्रचुर अन्न आदि भोग्य सामग्री से युक्त बल के स्वामी हैं । आप काष्ठों को जलाकर प्रकाशित होते हैं । आप दान देने वालों के यज्ञ को पूर्ण करते हैं ॥१० ॥

२०१७. त्वमग्ने अदितिर्देव दाशुषे त्वं होत्रा भारती वर्धसे गिरा ।

त्वमिळा शतहिमासि दक्षसे त्वं वृत्रहा वसुपते सरस्वती ॥११ ॥

हे अग्निदेव ! आप दान-दाताओं के लिए 'अदिति' हैं । वाणी रूपी स्तुतियों से विस्तृत होने के कारण 'होता' तथा 'भारती' हैं । सैकड़ों वर्ष की आयु प्रदान करने में समर्थ होने के कारण आप 'इळा' हैं । हे धनाधिपति अग्निदेव ! आप वृत्रहन्ता और 'सरस्वती' हैं ॥११ ॥

२०१८. त्वमग्ने सुभृत उत्तमं वयस्तव स्पार्हे वर्ण आ सन्दृशि श्रियः ।

त्वं वाजः प्रतरणो बृहन्नसि त्वं रयिर्बहुलो विश्वतस्पृथुः ॥१२ ॥

हे अग्निदेव ! आप सर्वश्रेष्ठ पोषक अन्न हैं । आपके द्वारा ही वरण करने योग्य तथा दर्शनीय ऐश्वर्य प्राप्त होता है । आप सदा बढ़ने वाले तथा महान् हैं । आप प्रचुर अन्न एवं ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हैं ॥१२ ॥

२०१९. त्वामग्न आदित्यास आस्यं१ त्वां जिह्वां शुचयश्चक्रिरे कवे ।

त्वां रातिषाचो अध्वरेषु सश्चिरे त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ॥१३ ॥

हे दूरदर्शी अग्निदेव !आप आदित्यों के मुख हैं । पवित्र देवगणों के लिए आप जिह्वा रूप हैं । यज्ञ में

दानशील देवगण आपका ही आश्रय प्राप्त करते हैं और आपको समर्पित की गई आहुतियों को ग्रहण करते हैं ॥१३ ॥

२०२०. त्वे अग्ने विश्वे अमृतासो अद्रुह आसा देवा हविरदन्त्याहुतम् ।
त्वया मर्तासः स्वदन्त आसुतिं त्वं गर्भो वीरुधां जज्ञिषे शुचिः ॥१४ ॥

हे अग्निदेव ! परस्पर द्रोह न करने वाले, अमरत्व प्राप्त सभी देवगण आपके मुख से ही हविष्यान्न ग्रहण करते हैं । आपका आश्रय प्राप्त करके ही मनुष्य अन्नादि को ग्रहण करते हैं । हे अग्निदेव ! आप वृक्ष-वनस्पतियों में ऊर्जा के रूप में विद्यमान रहकर अन्नादि को उत्पन्न करते हैं ॥१४ ॥

[विज्ञान द्वारा प्रतिपादित नाइट्रोजन साइकिल (नत्रजन चक्र) की भाँति यह ऋचा प्रकृति में संव्याप्त ऊर्जा चक्र (एनर्जी साइकिल) का प्रतिपादन करती है ।]

२०२१. त्वं तान्त्सं च प्रति चासि मज्मनाग्ने सुजात प्र च देव रिच्यसे ।
पृक्षो यदत्र महिना वि ते भुवदनु द्यावापृथिवी रोदसी उभे ॥१५ ॥

हे अग्निदेव ! आप अपनी शक्ति से देवगणों से संयुक्त एवं पृथक् होते हैं तथा अपने महान् गुणों के कारण ही देवगणों में सर्वश्रेष्ठ हैं । आपको जो कुछ भी अन्न समर्पित किया जाता है, उसे आप द्युलोक तथा पृथिवी लोक के मध्य विस्तृत कर देते हैं ॥१५ ॥

[यज्ञ को समर्पित श्रेष्ठ पदार्थ सूक्ष्मीकृत तथा विस्तृत होकर आकाश एवं पृथ्वी को लाभ पहुँचाते हैं ।]

२०२२. ये स्तोतृभ्यो गोअग्रामश्वपेशसमग्ने रातिमुपसृजन्ति सूरयः ।
अस्माञ्च तांश्च प्र हि नेषि वस्य आ बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१६ ॥

हे अग्निदेव ! जो ज्ञानीजन स्तोताओं को गाय तथा घोड़े आदि पशुओं का दान करते हैं, उन दानियों सहित हमें श्रेष्ठ (यज्ञ) स्थल पर शीघ्र ले चलें । हम वीर सन्तति से युक्त यज्ञ में उत्तम स्तुतियाँ करें ॥१६ ॥

[सूक्त - २]

[**ऋषि-** गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । **देवता-** अग्नि । **छन्द -** जगती ।]

२०२३. यज्ञेन वर्धत जातवेदसमग्निं यजध्वं हविषा तना गिरा ।
समिधानं सुप्रयसं स्वर्णरं द्युक्षं होतारं वृजनेषु धूर्षदम् ॥१ ॥

हे याज्ञिको ! समिधाओं से प्रज्वलित होने वाले, उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता, उत्तम अन्न सम्पदा से युक्त, सुखपूर्वक उद्देश्य तक पहुँचाने वाले, संग्राम में बल प्रदान करने वाले होता रूप अग्निदेव का विस्तार करो तथा हविष्यान्न समर्पित करके स्तुतियों द्वारा पूजन करो ॥१ ॥

२०२४. अभि त्वा नक्तीरुषसो ववाशिरेऽग्ने वत्सं न स्वसरेषु धेनवः ।
दिवइवेदरतिर्मानुषा युगा क्षपो भासि पुरुवार संयतः ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! जिस तरह गौएँ अपने बछड़े की कामना करती हैं, उसी तरह दिन तथा रात्रि में हम आपको प्राप्त करने की इच्छा करते हैं । बहुतों के द्वारा वांछनीय आप भली प्रकार समर्थ होकर द्युलोक की तरह विस्तार पाते हैं । युगों-युगों से आप मनुष्य के पास विद्यमान हैं तथा दिन के समान रात्रि में भी प्रकाशित होते हैं ॥२ ॥

२०२५. तं देवा बुध्ने रजसः सुदंससं दिवस्पृथिव्योररतिं न्येरिरे ।
रथमिव वेद्यं शुक्रशोचिषमग्निं मित्रं न क्षितिषु प्रशंस्यम् ॥३ ॥



श्रेष्ठ कर्मा, द्युलोक और पृथिवी लोक में संव्याप्त, श्रेष्ठ ऐश्वर्य युक्त रथ वाले, तेजस्वी ज्वालाओं से युक्त, प्रजाओं में सर्वश्रेष्ठ, मित्र के समान प्रशंसनीय, अग्निदेव को देवगण सभी लोकों में स्थापित करते हैं ॥३ ॥

२०२६. तमुक्षमाणं रजसि स्व आ दमे चन्द्रमिव सुरुचं ह्वार आ दधुः ।

पृश्न्याः पतरं चितयन्तमक्षभिः पाथो न पायुं जनसी उभे अनु ॥४ ॥

अन्तरिक्ष से वृष्टि कराने वाले, चन्द्रमा के समान उत्तम कान्तिमान्, पृथिवी पर सर्वत्र गमनशील, ज्वालाओं से दृष्टिगत होने वाले, द्युलोक और पृथ्वी लोक दोनों में सेतु के समान व्याप्त अग्निदेव को अपने घर में एकान्त (सुरक्षित) स्थान पर लोग स्थापित करते हैं ॥४ ॥

[सेतु (पुल) दो स्थानों को जोड़ता है, बीच के स्थान से अप्रभावी रहता है। अग्निदेव (ताप) द्युलोक से चलकर पृथ्वी के पदार्थों को ऊर्जा देते हैं, अंतरिक्ष में उस ऊर्जा का क्षरण नहीं होता । इस विज्ञान सम्मत तथ्य को यह ऋचा प्रकट करती है ।]

२०२७. स होता विश्वं परि भूत्वध्वरं तमु हव्यैर्मनुष ऋञ्जते गिरा ।

हिरिशिप्रो वृधसानासु जर्भुरद्‌द्यौर्न स्तृभिश्चितयद्रोदसी अनु ॥५ ॥

वे अग्निदेव होता रूप में सम्पूर्ण यज्ञ स्थल को सभी ओर से संव्याप्त करते हैं । याजक गण उन्हें हविष्यान्न तथा स्तुतियों के द्वारा अलंकृत करते हैं । जिस तरह से आकाश नक्षत्रों से प्रकाशित होता है उसी प्रकार तेजस्वी ज्वालाओं से समिधाओं के बीच में बढ़ते हुए अग्निदेव द्यावा-पृथिवी को प्रकाशित करते हैं ॥५ ॥

२०२८. स नो रेवत्समिधानः स्वस्तये सन्ददस्वान्रयिमस्मासु दीदिहि ।

आ नः कृणुष्व सुविताय रोदसी अग्ने हव्या मनुषो देव वीतये ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! हमारे लिए कल्याणकारी ऐश्वर्य प्रदान करते हुए दीप्तिमान् हों । द्यावा-पृथिवी को हमें सुख प्रदान करने वाली बनाएँ और मनुष्यों द्वारा समर्पित किये गये हविष्यान्न को देवताओं तक पहुँचाएँ ॥६ ॥

२०२९. दा नो अग्ने बृहतो दाः सहस्रिणो दुरो न वाजं श्रुत्या अपा वृधि ।

प्राची द्यावापृथिवी ब्रह्मणा कृधि स्व१र्ण शुक्रमुषसो वि दिद्युतुः ॥७ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमें हजारों तरह की विभूतियाँ प्रचुर मात्रा में प्रदान करें । कीर्तिदायी अन्न प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त करें । उषायें आपको आदित्य के समान प्रकाशित करती हैं, अतः द्युलोक तथा पृथ्वी लोक को ज्ञान के सहारे हमारे अनुकूल बनाएँ ॥७ ॥

२०३०. स इधान उषसो राम्या अनु स्व१र्ण दीदेदरुषेण भानुना ।

होत्राभिरग्निर्मनुषः स्वध्वरो राजा विशामतिथिश्चारुरायवे ॥८ ॥

उषा की समाप्ति के बाद प्रज्वलित अग्निदेव अपने उज्ज्वल तेज से प्रकाशित होते हैं । श्रेष्ठयाज्ञिक, प्रजाधिपति वे अग्निदेव मनुष्यों की स्तुतियों से प्रशंसित होते हुए प्रिय अतिथि की तरह पूज्य होते हैं ॥८ ॥

२०३१. एवा नो अग्ने अमृतेषु पूर्व्य धीष्पीपाय बृहद्दिवेषु मानुषा ।

दुहाना धेनुर्वृजनेषु कारवे त्मना शतिनं पुरुरूपमिषणि ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! आप अत्यन्त तेजस्वी देवताओं में सर्वश्रेष्ठ हैं । मानव समुदाय के बीच में आप स्तुतियों से तृप्त होते हैं । याजकों को आप कामधेनु के समान असंख्य प्रकार का धन प्रदान करते हैं ॥९ ॥

२०३२. **वयमग्ने अर्वता वा सुवीर्यं ब्रह्मणा वा चितयेमा जनाँ अति।**

अस्माकं द्युम्नमधि पञ्च कृष्टिषूच्चा स्व१र्ण शुशुचीत दुष्टरम् ॥१० ॥

हे अग्निदेव ! हम पराक्रम तथा ज्ञान के द्वारा सामर्थ्यशाली बनकर मानव समुदाय में श्रेष्ठ बनें । हमारा उच्च स्तरीय, अनन्त तथा दूसरों के लिए अप्राप्त धन समाज के पाँचों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा निषाद) वर्णों में सूर्य की तरह प्रकाशित हो ॥१० ॥

[जो विशेष विभूतियाँ हमें प्राप्त हैं, वे बिना भेद-भाव के समाज के, सभी वर्गों की प्रगति के लिए प्रयुक्त होनी चाहिए ।]

२०३३. **स नो बोधि सहस्य प्रशंस्यो यस्मिन्त्सुजाता इषयन्त सूरयः।**

यमग्ने यज्ञमुपयन्ति वाजिनो नित्ये तोके दीदिवांसं स्वे दमे ॥११ ॥

हे बलशाली अग्निदेव ! श्रेष्ठकुल में जन्म लेने वाले ज्ञानीजन यज्ञ में अन्न की कामना करते हैं तथा धन - धान्य से सम्पन्न मनुष्य हमारी इच्छाओं को जानने वाले आपको प्रशंसनीय, पूजनीय तथा तेजस्वी रूप में अपने घरों में प्रज्वलित करते हैं ॥११ ॥

२०३४. **उभयासो जातवेदः स्याम ते स्तोतारो अग्ने सूरयश्च शर्मणि।**

वस्वो रायः पुरुश्चन्द्रस्य भूयसः प्रजावतः स्वपत्यस्य शग्धि नः ॥१२ ॥

हे ज्ञानोत्पादक अग्निदेव ! ज्ञानी स्तोताओं सहित हम दोनों सुख की कामना से आपके आश्रित हों । आप हमारे लिए उत्तम सन्तति, रहने के योग्य गृह आदि तथा श्रेष्ठ सम्पत्ति प्रदान करें ॥१२ ॥

२०३५. **ये स्तोतृभ्यो गोअग्रामश्वपेशसमग्ने रातिमुपसृजन्ति सूरयः।**

अस्माञ्च तांश्च प्र हि नेषि वस्य आ बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१३ ॥

हे अग्निदेव ! जो ज्ञानीजन स्तोताओं को श्रेष्ठ गौएँ तथा बलशाली घोड़ों से युक्त धन प्रदान करते हैं, आप उन्हें तथा हमें उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करें । यज्ञों में वीर सन्तति से युक्त होकर हम आपकी स्तुति करें ॥१३ ॥

[सूक्त - ३]

[**ऋषि-** गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । **देवता-**आप्री सूक्त १ इध्म अथवा समिद्ध अग्नि, २ नराशंस, ३ इळ, ४ बर्हि, ५ दिव्यद्वार, ६ उषासानक्ता, ७ दिव्य होतागण प्रचेतस, ८ तीन देवियाँ-सरस्वती, इळा, भारती, ९ त्वष्टा, १० वनस्पति, ११ स्वाहाकृति । **छन्द-**जगती ।]

२०३६. **समिद्धो अग्निर्निहितः पृथिव्यां प्रत्यङ्विश्वानि भुवनान्यस्थात्।**

होता पावकः प्रदिवः सुमेधा देवो देवान्यजत्वग्निरर्हन् ॥१ ॥

प्रदीप्त अग्निदेव पृथ्वी पर स्थापित होकर समस्त लोकों में व्याप्त हैं । श्रेष्ठ बुद्धिवाले, पवित्र बनाने वाले, हविष्यान्न ग्रहण करने वाले तथा अत्यन्त तेजस्वी एवं पूज्य अग्निदेव देवों की पूजा करें ॥१ ॥

२०३७. **नराशंसः प्रति धामान्यञ्जन् तिस्रो दिवः प्रति मह्ना स्वर्चिः।**

घृतप्रुषा मनसा हव्यमुन्दन्मूर्धन्यज्ञस्य समनक्तु देवान् ॥२ ॥

सबके द्वारा स्तुत्य ये अग्निदेव, पृथिवी, अन्तरिक्ष और आकाश तीनों लोकों को अपने महान् सामर्थ्य से प्रकाशित करते हुए, स्नेहयुक्त मन से हविष्यान्न को ग्रहण करते हुए यज्ञ स्थल में अपने दिव्य-प्रभाव को प्रकट करते हैं ॥२ ॥



२०३८. ईळितो अग्ने मनसा नो अर्हन्देवान्यक्षि मानुषात्पूर्वो अद्य।

स आ वह मरुतां शर्धो अच्युतमिन्द्रं नरो बर्हिषदं यजध्वम् ॥३ ॥

हे पूज्य अग्निदेव ! हमारे हित साधन के लिए, हमारे पूजन को स्वीकार कर मनुष्यों से पूर्व ही आप श्रेष्ठ मन से देवों की पूजा करें । हे अग्निदेव ! सामर्थ्यवान् मरुत् देव तथा कभी भी परास्त न होने वाले इन्द्रदेव को हमारे पास लायें । हे मनुष्यो ! यज्ञ स्थल में स्थापित अग्निदेव की उपासना करो ॥३ ।।

२०३९. देव बर्हिर्वर्धमानं सुवीरं स्तीर्णं राये सुभरं वेद्यस्याम्।

घृतेनाक्तं वसवः सीदतेदं विश्वे देवा आदित्या यज्ञियासः ॥४ ॥

हे कुशाओं में स्थित अग्निदेव! यज्ञ कुण्ड में बढ़ते हुए आप हमें वीर सन्तति तथा श्रेष्ठ धन प्रदान करें । हे वसुओ, आदित्यो तथा विश्वे-देवो ! घृत से सिंचित एवं फैलाए गये कुश पर आप स्थापित हों ॥४ ॥

यज्ञाग्नि को देव मुख तो कहा ही गया है। यहाँ उसे दिव्य द्वार (देवीःद्वारः) कहकर संबोधित किया गया है—

२०४०. वि श्रयन्तामुर्विया हूयमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा नमोभिः।

व्यचस्वतीर्वि प्रथन्तामजुर्या वर्णं पुनाना यशसं सुवीरम् ॥५ ॥

नमस्कार पूर्वक आवाहित होने वाला, विस्तृत तथा सुखकर यह जो दिव्य द्वार (यज्ञाग्नि) है, मानव इसका सहारा ले (देवों के साथ आदान-प्रदान हेतु इसका उपयोग करे) और (देवों से) सम्पर्क जोड़ने वाला-जीर्ण न होने वाला यह दिव्य द्वार श्रेष्ठ संतति एवं सुयश प्रदान करते हुए सतत विकासशील रहे ॥५ ॥

यहाँ दिन और रात्रि की प्रतीक उषा और नक्ता देवियों को सम्बोधित किया गया है--

२०४१. साध्वपांसि सनता न उक्षिते उषासानक्ता वय्येव रण्विते।

तन्तुं ततं संवयन्ती समीची यज्ञस्य पेशः सुदुघे पयस्वती ॥६ ॥

यज्ञ के स्वरूप को सुन्दरता प्रदान करने वाली उषा और नक्ता देवियाँ वरणी (वस्त्र बुनने वाली) के समान शब्दायमान हो, हमारे उत्तम कर्मों को प्रेरणा देती हुई पूजित होती हैं । ये देवियाँ (काल विभाग रूपी) फैले धागों को बुनती हुईं (मनुष्य के जीवन-रूपी वस्त्र को) उत्तम प्रकार से गति करने योग्य बनाकर सभी प्रकार की कामनाओं को पूरा करते हुए अन्न और दुग्धादि से पूर्ण बनाती हैं ॥६ ॥

२०४२. दैव्या होतारा प्रथमा विदुष्टर ऋजु यक्षतः समृचा वपुष्टरा।

देवान्यजन्तावृतुथा समञ्जतो नाभा पृथिव्या अधि सानुषु त्रिषु ॥७ ॥

दोनों दिव्य होता अग्रणी, विद्वान् तथा रूपवान् हैं । वे ऋचाओं के माध्यम से सरलता पूर्वक देव यज्ञ सम्पन्न करते हैं । पृथ्वी की नाभि (यज्ञकुण्ड) में वे तीनों सवनों में भली प्रकार संयुक्त होते हैं ॥७ ॥

[निरुक्तकार यास्क के अनुसार दिव्य अग्नि से अग्नि के दो रूप प्रकट हुए, एक अन्तरिक्ष में पर्जन्य चक्र तथा दूसरे पृथ्वी पर यज्ञीय चक्र का संचालन करते हैं। जिससे पृथ्वी पर पोषक तत्व पैदा होते हैं। पृथ्वी पर उत्पन्न पोषक पदार्थों से प्राणि जगत् का पालन होता है। यह दोनों यज्ञ उक्त दो होता करते हैं। जब श्रेष्ठ याजक यज्ञ करते हैं, तो यज्ञ कुण्ड में चलने वाली प्रक्रिया से अन्तरिक्षीय पर्जन्य तथा जीवजगत् के पालन दोनों की पुष्टि होती है। इस रूप में दोनों होता वहाँ संयुक्त हो जाते हैं।]

२०४३. सरस्वती साधयन्ती धियं न इळा देवी भारती विश्वतूर्तिः।

तिस्रो देवीः स्वधया बर्हिरेदमच्छिद्रं पान्तु शरणं निषद्य ॥८ ॥

अनेक श्रेष्ठ गुणों से युक्त देवी इळा, देवी भारती तथा देवी सरस्वती ये तीनों देवियाँ हमारे इस यज्ञ स्थल पर विद्यमान रहकर अपनी धारणा शक्ति के द्वारा हमारे इस यज्ञ का संरक्षण करें ॥८ ॥

२०४४. पिशङ्गरूपः सुभरो वयोधाः श्रुष्टी वीरो जायते देवकामः ।
प्रजां त्वष्टा वि ष्यतु नाभिमस्मे अथा देवानामप्येतु पाथः ॥९ ॥

अग्निरूप त्वष्टा देव हमें श्रेष्ठ सन्तान प्रदान करें । वह पुत्र सुवर्ण जैसी कान्तिवाला, उत्तम हृष्ट-पुष्ट, अन्न तथा पराक्रम को धारण करने वाला, दीर्घायु, वीर, श्रेष्ठ बुद्धिमान्, उत्तम गुणों की कामना करने वाला तथा देवों द्वारा प्रदर्शित उत्तम मार्ग का अनुगामी हो ॥९ ॥

२०४५. वनस्पतिरवसृजन्नुप स्थादग्निर्हविः सूदयाति प्र धीभिः ।
त्रिधा समक्तं नयतु प्रजानन्देवेभ्यो दैव्यः शमितोप हव्यम् ॥१० ॥

वनस्पतियों से अपना प्रकाश फैलाते हुए अग्निदेव हमारे समीप स्थित हों । ये अग्निदेव अपनी शक्ति से हविष्यान्न का परिपाक करते हैं । दिव्य गुण सम्पन्न, शान्त स्वभाव वाले ये अग्निदेव तीन प्रकार से तैयार हविष्यान्न को देवों के पास पहुँचायें ॥१० ॥

२०४६. घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम ।
अनुष्वधमा वह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥११ ॥

इन अग्निदेव का मूल आश्रय स्थल (तेज) घी है, अत: इन्हें घृत से सिंचित करते हैं । हे बलशाली अग्निदेव ! स्नेह पूर्वक समर्पित की गई आहुतियों (हविष्यान्न) को सभी देवों तक पहुँचाकर उन्हें प्रसन्न करें ॥११ ॥

[सूक्त - ४]

[ऋषि- सोमाहुति भार्गव । देवता- अग्नि । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

२०४७. हुवे वः सुद्योत्मानं सुवृक्तिं विशामग्निमतिथिं सुप्रयसम् ।
मित्रइव यो दिधिषाय्यो भूद्देव आदेवे जने जातवेदाः ॥१ ॥

हे याजको ! दिव्य गुण सम्पन्न सभी उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता तथा मनुष्यों से लेकर देवों तक सूर्यदेव के समान सभी के आधार रूप जो अग्निदेव हैं, उन प्रकाशित, पापों को नष्ट करने वाले, अतिथि के समान पूज्य तथा सबको प्रसन्न करने वाले अग्निदेव को हम आवाहित करते हैं ॥१ ॥

२०४८. इमं विधन्तो अपां सधस्थे द्वितादधुर्भृगवो विक्ष्वा३योः ।
एष विश्वान्यभ्यस्तु भूमा देवानामग्निररतिर्जीराश्वः ॥२ ॥

अग्नि - विद्या के ज्ञाताओं ने, इन अग्निदेव को विशेष उपायों से अन्तरिक्ष में जल के निवास स्थल (मेघों में तड़ित विद्युत् के रूप में) तथा मनुष्यों के बीच पृथ्वी पर (अग्नि के रूप में) इन दोनों स्थानों में स्थापित किया । समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी, द्रुतगामी अश्वों वाले ये अग्निदेव सभी सामर्थ्यवान् शत्रुओं को पराजित करें ॥२ ॥

२०४९. अग्निं देवासो मानुषीषु विक्षु प्रियं धुः क्षेष्यन्तो न मित्रम् ।
स दीदयदुशतीरूर्म्या आ दक्षाय्यो यो दास्वते दम आ ॥३ ॥

जिस प्रकार यात्रा में जाने वाला मनुष्य अपने मित्र को घर की रखवाली के लिए नियुक्त करता है, उसी प्रकार प्रिय तथा हितकारी अग्निदेव को देवों ने मानवी प्रजा के मध्य स्थापित किया ॥३ ॥

२०५०. अस्य रण्वा स्वस्येव पुष्टिः सन्दृष्टिरस्य हियानस्य दक्षोः ।
वि यो भरिभ्रदोषधीषु जिह्वामत्यो न रथ्यो दोधवीति वारान् ॥४ ॥

जिस प्रकार अपने शरीर की स्वस्थता आनन्ददायी होती है, उसी प्रकार काष्ठादि को भस्म करके वृद्धि



को प्राप्त हुए अग्निदेव की तेजस्विता भी सबके लिए रमणीय होती है। जिस तरह रथ में जुड़ा हुआ घोड़ा अपनी पूँछ के बालों को कँपाता है, उसी प्रकार वृक्ष वनस्पतियों को धारण करने वाले अग्निदेव की ज्वालायें दिखाई देती हैं ॥४ ॥

२०५१. आ यन्मे अभ्वं वनदः पनन्तोशिग्भ्यो नामिमीत वर्णम्।

स चित्रेण चिकिते रंसु भासा जुजुर्वाँ यो मुहुरा युवा भूत् ॥५ ॥

अग्निदेव की महानता का गान करने वाले तथा अग्निदेव की कामना करने वाले स्तोताजनों को अग्निदेव अपने जैसा ही तेज प्रदान करते हैं तथा हव्य समर्पित किए जाने पर अपने अति मनोहर स्वरूप को प्रदर्शित करते हुए वृद्ध (मन्द) होकर भी बार-बार तरुण (कान्तिमान् ज्वालाओं वाले) हो जाते हैं ॥५ ॥

२०५२. आ यो वना तातृषाणो न भाति वार्ण पथा रथ्येव स्वानीत्।

कृष्णाध्वा तपू रण्वश्चिकेत द्यौरिव स्मयमानो नभोभिः ॥६ ॥

जैसे प्यासा व्यक्ति पानी पीता है, उसी प्रकार द्रुतगति से वनों को जलानेवाले अग्निदेव, रथ को वहन करने वाले घोड़े की भाँति शब्द करते हैं। वह 'कृष्ण धूम्र-मार्ग' से जाने वाले, सभी को ताप देने वाले, रमणीय अग्निदेव नक्षत्रों से प्रकाशित आकाश की तरह सुशोभित होते हैं ॥६ ॥

२०५३. स यो व्यस्थादभि दक्षदुर्वीं पशुर्नैति स्वयुरगोपाः।

अग्निः शोचिष्माँ अतसान्युष्णन्कृष्णव्यथिरस्वदयन्न भूम ॥७ ॥

जो अग्निदेव विविध रूपों में विश्वव्यापी हैं, जो विशाल पृथिवी के पदार्थों को जलाते हैं, वे तेजस्वी अग्निदेव सभी व्यथाकारी, कण्टकों को, सूखें काष्ठों तथा वनस्पतियों को अपनी ज्वालाओं से जलाते हुए रक्षक रहित पशु के समान इधर-उधर स्वेच्छा से जाते हैं ॥७ ॥

२०५४. नू ते पूर्वस्यावसो अधीतौ तृतीये विदथे मन्म शंसि।

अस्मे अग्ने संयद्वीरं बृहन्तं क्षुमन्तं वाजं स्वपत्यं रयिं दाः ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! आपने पूर्व समय में भी हमारा संरक्षण किया है, अतः हम तीसरे सवन में भी मनोहारी स्तोत्रों का उच्चारण करके उसका स्मरण करते हैं। हे अग्निदेव आप हमें श्रेष्ठ धन तथा महान् कीर्तिमान् वीर सन्तति प्रदान करें ॥८ ॥

२०५५. त्वया यथा गृत्समदासो अग्ने गुहा वन्वन्त उपराँ अभि ष्युः।

सुवीरासो अभिमातिषाहः स्मत्सूरिभ्यो गृणते तद्वयो धाः ॥९ ॥

हे अग्निदेव ! जिस तरह गुफा में बैठे हुए अहंकार रहित स्तुति करने वाले ऋषियों को उत्तम सन्तति प्रदान करके आपने संरक्षण प्रदान किया, उसी तरह हमारे द्वारा ज्ञान पूर्वक की गई स्तुतियों से हमें श्रेष्ठ धन देते हुए संरक्षण प्रदान करें ॥९ ॥

[सूक्त - ५]

[ऋषि- सोमाहुति भार्गव । देवता- अग्नि। छन्द - अनुष्टुप्।]

२०५६. होताजनिष्ट चेतनः पिता पितृभ्य ऊतये।

प्रयक्षञ्जेन्यं वसु शकेम वाजिनो यमम् ॥१ ॥

शरीर में चेतना उत्पन्न करने वाले ये होता एवं पिता रूप अग्निदेव पितरों की रक्षा के लिए उत्पन्न हुए। ये हमें भी बलशाली, पूजनीय, रक्षा साधन से सम्पन्न तथा विजय दिलाने योग्य धन प्रदान करने में समर्थ हों ॥१ ॥

२०५७. आ यस्मिन्त्सप्त रश्मयस्तता यज्ञस्य नेतरि ।
मनुष्वद्दैव्यमष्टमं पोता विश्वं तदिन्वति ॥२ ॥

यज्ञ के नायक रूप अग्निदेव में सात रश्मियाँ व्याप्त हैं । पवित्र बनाने वाले वे अग्निदेव मनुष्य की तरह यज्ञ के आठवें (दीर्घायु प्रदान करने वाले होकर) स्थान में पूर्ण रूप से व्याप्त होते हैं । ॥२ ॥

२०५८. दधन्वे वा यदीमनु वोचद्ब्रह्माणि वेरु तत् ।
परि विश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभवत् ॥३ ॥

अग्निदेव को लक्ष्य करके इस यज्ञ में मन्त्रोच्चारण के साथ जो हविष्यान्न समर्पित किया जाता है, उसे ये अग्निदेव जानते हैं । जिस तरह धुरी के चारों ओर चक्र घूमते हैं, उसी तरह सभी स्तुतियाँ इन अग्निदेव के चारों ओर घूमती हैं ॥३ ॥

२०५९. साकं हि शुचिना शुचिः प्रशास्ता क्रतुनाजनि ।
विद्वाँ अस्य व्रता ध्रुवा वयाइवानु रोहते ॥४ ॥

उत्तम प्रकार से शासन करने वाले ये अग्निदेव शुद्ध करने वाले पवित्र कर्मों के साथ ही उत्पन्न हुए । जो (व्यक्ति) अग्निदेव के इस सनातन स्वरूप को जानता है, वह वृक्ष की शाखाओं के समान बराबर वृद्धि को प्राप्त होता है और क्रम से ऊँचे- ही -ऊँचे चढ़ता है ॥४ ॥

२०६०. ता अस्य वर्णमायुवो नेष्टुःसचन्त धेनवः ।
कुवित्तिसृभ्य आ वरं स्वसारो या इदं ययुः ॥५ ॥

नेता रूप अग्निदेव के तीनों रूपों को उत्तम प्रकार से तेजस्वी बनाने वाली, बहनों के समान परस्पर प्रेम करने वाली अँगुलियाँ प्रज्वलित करती हैं, ये अग्निदेव मनुष्यों को दुधारू गौ के समान सुखी बनाते हैं ॥५ ॥

२०६१. यदी मातुरुप स्वसा घृतं भरन्त्यस्थित । तासामध्वर्युरागतौ यवो वृष्टीव मोदते ॥६

जब माता रूपी वेदी के पास बहन रूपी अँगुलियाँ घृत भरकर (जुहूपात्र लेकर) जाती हैं, तब अध्वर्यु अग्निदेव के समीप अँगुलियों के आने पर उसी प्रकार प्रसन्न होते हैं - जैसे वर्षा के जल को पाकर अन्न ॥६ ॥

२०६२. स्वः स्वाय धायसे कृणुतामृत्विगृत्विजम् । स्तोमं यज्ञं चादरं वनेमा ररिमा वयम् ॥७

ये अग्निदेव श्रेष्ठ कार्यों के निमित्त सामर्थ्य प्रदान करने हेतु ऋत्विक् के समान हैं । हम उन ऋत्विक् रूप अग्निदेव के निमित्त स्तोत्रों का उच्चारण करते हुए हविष्यान्न समर्पित करते हुए यज्ञ करें ॥७ ॥

२०६३. यथा विद्वाँ अरंकरद्विश्वेभ्यो यजतेभ्यः ।
अयमग्ने त्वे अपि यं यज्ञं चकृमा वयम् ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! जिस प्रकार ज्ञानी जन भली-भाँति सभी देवों को संतुष्टि प्रदान करते हैं, उसी प्रकार हमारे द्वारा जो भी यज्ञीय कार्य सम्पन्न हों, वह आपकी तृप्ति के लिए ही हों ॥८ ॥

[सूक्त - ६]

[ऋषि- सोमाहुति भार्गव । देवता- अग्नि । छन्द - गायत्री ।]

२०६४. इमां मे अग्ने समिधमिमामुपसदं वनेः । इमा उ षु श्रुधी गिरः ॥१ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमारी इन समिधाओं तथा आहुतियों को स्वीकार करते हुए हमारे स्तोत्रों को भली-भाँति सुनें ॥१ ॥



२०६५. अया ते अग्ने विधेमोर्जो नपादश्वमिष्टे। एना सूक्तेन सुजात ॥२ ॥

हे शक्ति को क्षीण न करने वाले, द्रुतगामी, साधनों में गति प्रदान करने वाले, उत्तम ख्याति वाले अग्निदेव ! हमारी इस यज्ञ क्रिया तथा सूक्त से आप प्रसन्न हों ॥२ ॥

२०६६. तं त्वा गीर्भिर्गिर्वणसं द्रविणस्युं द्रविणोदः। सपर्येम सपर्यवः ॥३ ॥

हे ऐश्वर्यप्रदाता अग्निदेव ! आपकी प्रतिष्ठा चाहने वाले हम आपके स्तुत्य तथा धन प्रदान करने वाले स्वरूप; की स्तुतियों के द्वारा पूजा करते हैं ॥३ ॥

२०६७. स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन्। युयोध्य१स्मद् द्वेषांसि ॥४ ॥

हे ऐश्वर्यप्रदाता धनाधिपति अग्निदेव ! आप ऐश्वर्यवान् तथा ज्ञानवान् होकर हमारी कामनाओं को जानते हुए द्वेष करने वाले हमारे शत्रुओं को हमसे दूर करें ॥४ ॥

२०६८. स नो वृष्टिं दिवस्परि स नो वाजमनर्वाणम्। स नः सहस्त्रिणीरिषः ॥५ ॥

अन्तरिक्ष से वे अग्निदेव हमारे लिए वृष्टि करें। वे हमें श्रेष्ठ बल तथा हजारों प्रकार का अन्न प्रदान करें ॥५ ॥

२०६९. ईळानायावस्यवे यविष्ठ दूत नो गिरा। यजिष्ठ होतरा गहि ॥६ ॥

बलशाली तथा अत्यन्त प्रशंसा के योग्य, दुष्टों को पीड़ित करने वाले, होतारूप हे अग्निदेव ! आपके संरक्षण की कामना से स्तोत्र रूप वाणियों से हम आपका पूजन करते हैं। अतः आप हमारे पास आयें ॥६ ॥

२०७०. अन्तर्ह्यग्न ईयसे विद्वाञ्जन्मोभया कवे। दूतो जन्येव मित्र्यः ॥७ ॥

हे मेधावान् अग्निदेव ! आप मनुष्यों के हृदयाकाश में विद्यमान रहकर उनके दोनों (वर्तमान तथा पिछले) जन्मों को जानते हैं। आप मित्रतुल्य सभी के हितकारी हैं ॥७ ॥

२०७१. स विद्वाँ आ च पिप्रयो यक्षि चिकित्व आनुषक्। आ चास्मिन्त्सत्सि बर्हिषि ॥८ ॥

हे अग्निदेव ! आप ज्ञानी हैं, अतः हमारी कामनाओं को पूर्ण करें। आप चैतन्यतायुक्त हैं, अतः हमारे हविष्यान्न को यथा क्रम से देवताओं तक पहुँचा कर हमारे इस यज्ञ में प्रतिष्ठित हों ॥८ ॥

[सूक्त - ७]

[ऋषि- सोमाहुति भार्गव। देवता- अग्नि। छन्द - गायत्री।]

२०७२. श्रेष्ठं यविष्ठ भारताग्ने द्युमन्तमा भर। वसो पुरुस्पृहं रयिम् ॥१ ॥

हे अतीव बलशाली अग्निदेव ! आप सभी के पालक तथा सुख प्रदान करने वाले आश्रयदाता हैं, अतः महान् तेजस्वी तथा बहुतों द्वारा चाहा गया ऐश्वर्य हमें भरपूर मात्रा में प्रदान करें ॥१ ॥

२०७३. मा नो अरातिरीशत देवस्य मर्त्यस्य च। पर्षि तस्या उत द्विषः ॥२ ॥

हे अग्निदेव ! देवताओं तथा मनुष्यों के दुश्मन हमारे ऊपर स्वामित्व स्थापित न करें। अपितु आप उन शत्रुओं से हमें बचायें ॥२ ॥

२०७४. विश्वा उत त्वया वयं धारा उदन्याइव। अति गाहेमहि द्विषः ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! जिस तरह जल की धारायें बड़ी चट्टानों को पार कर जाती हैं, उसी तरह आपका संरक्षण पाकर द्वेष करने वाले सम्पूर्ण शत्रुओं को हम पार कर जायें ॥३ ॥

२०७५. शुचिः पावक वन्द्योऽग्ने बृहद्वि रोचसे। त्वं घृतेभिराहुतः ॥४ ॥

हे पवित्रता प्रदान करने वाले अग्निदेव ! आप पवित्र तथा वन्दना के योग्य हैं। आप घृत की आहुतियों से अत्यन्त प्रकाशित होते हैं ॥४ ॥

२०७६. **त्वं नो असि भारताग्ने वशाभिरुक्षभिः। अष्टापदीभिराहुतः ॥५ ॥**

हे मनुष्यों के हितकारी अग्निदेव ! आप हमारी सुन्दर गौओं, बैलों तथा गर्भिणी गौओं द्वारा पूजित हैं ॥५ ॥

२०७७. **द्रवन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः। सहसस्पुत्रो अद्भुतः ॥६ ॥**

इन अग्निदेव का भोजन समिधा रूपी अन्न है, जिनमें घृत का सिंचन किया जाता है, जो सनातन तथा होता रूप में वरण के योग्य है । बल से उत्पन्न ऐसे अग्निदेव अद्‌भुत गुणों के कारण रमणीय हैं ॥६ ॥

[सूक्त - ८]

[**ऋषि-** गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । **देवता-** अग्नि । **छन्द -** गायत्री ६ अनुष्टुप् ।]

२०७८. **वाजयन्निव नू रथान्योगाँ अग्नेरुप स्तुहि। यशस्तमस्य मीळ्हुषः ॥१ ॥**

हे मनुष्य ! जिस प्रकार धन-धान्य की कामनावाले रथों को उत्तम रीति से तैयार करते हैं, उसी प्रकार अत्यन्त यशस्वी, सबके लिए सुखकारी अग्निदेव की स्तुतियों के द्वारा उनका पूजन करो ॥१ ॥

२०७९. **यः सुनीथो ददाशुषेऽजुर्यो जरयन्नरिम्। चारुप्रतीक आहुतः ॥२ ॥**

जो अग्निदेव श्रेष्ठ नेतृत्व प्रदान कर उत्तम पथ पर ले जाते हैं, जो अविनाशी तथा श्रेष्ठ उपक्रम वाले हैं, ऐसे शत्रु नाशक, दानशील अग्निदेव का हम आवाहन करते हैं ॥ २ ॥

२०८०. **य उ श्रिया दमेष्वा दोषोषसि प्रशस्यते। यस्य व्रतं न मीयते ॥३ ॥**

जो अग्निदेव घरों में अपनी कान्ति से युक्त होकर प्रतिष्ठित होते हैं, जो अग्निदेव दिन और रात प्रशंसा के योग्य हैं तथा जिनका व्रत कभी खण्डित नहीं होता; वे अग्निदेव पूज्य तथा प्रशंसनीय हैं ॥३ ॥

२०८१. **आ यः स्व१र्ण भानुना चित्रो विभात्यर्चिषा। अञ्जानो अजरैरभि ॥४ ॥**

जिस तरह सूर्य से द्युलोक प्रकाशित होता है, उसी तरह वे अविनाशी, आश्चर्य कारक अग्निदेव अपनी ज्वालाओं को प्रकट करके सर्वत्र प्रकाशित होते हैं ॥४ ॥

२०८२. **अत्रिमनु स्वराज्यमग्निमुक्थानि वावृधुः। विश्वा अधि श्रियो दधे ॥५ ॥**

शत्रुनाशक तथा सुशोभित अग्निदेव स्तुतियों से अत्यन्त तेजोमय होकर समस्त ऐश्वर्यों को धारण करके शोभायमान होते हैं ॥५ ॥

२०८३. **अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य देवानामूतिभिर्वयम्।**
अरिष्यन्तः सचेमह्यभि ष्याम पृतन्यतः ॥६ ॥

अग्नि, इन्द्र , सोम आदि अन्यान्य देवताओं के संरक्षण में हम भली - भाँति सुरक्षित हैं, अतः कभी भी नाश को न प्राप्त होते हुए हम शत्रुओं को पराजित करें ॥६ ॥

[सूक्त - ९]

[**ऋषि-** गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । **देवता-** अग्नि । **छन्द -** त्रिष्टुप् ।]

२०८४. **नि होता होतृषदने विदानस्त्वेषो दीदिवाँ असदत्सुदक्षः।**
अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रम्भरः शुचिजिह्वो अग्निः ॥१ ॥

ये अग्निदेव होता, मेधावी, प्रदीप्त, पोषक, बलशाली, तेजस्वी, उत्तम बल से युक्त, नियमों पर आरूढ़, आश्रय दाता, हजारों का भरण-पोषण करने में समर्थ तथा सत्यवक्ता हैं। ऐसे अग्निदेव होता के सदन में प्रतिष्ठित हों ॥१ ॥



२०८५. त्वं दूतस्त्वमु नः परस्पास्त्वं वस्य आ वृषभ प्रणेता ।
अग्ने तोकस्य नस्तने तनूनामप्रयुच्छन्दीद्यद्बोधि गोपाः ॥२ ॥

हे बलशाली अग्निदेव ! आप ही हमारे दूत तथा आप ही हमारे रक्षक हैं । आप धन प्रदाता हैं, अतः हमारी सन्तति को प्रमाद रहित तथा दीप्तिवान् बनाकर हमारे कुल का विस्तार करें तथा भली-भाँति प्रज्वलित होकर हमारे शरीर की रक्षा करें ॥२ ॥

२०८६. विधेम ते परमे जन्मन्नग्ने विधेम स्तोमैरवरे सधस्थे ।
यस्माद्योनेरुदारिथा यजे तं प्र त्वे हवींषि जुहुरे समिद्धे ॥३ ॥

हे अग्निदेव ! आपके उत्पत्तिस्थान द्युलोक में हम स्तुतियों द्वारा आपका पूजन करें, द्युलोक से नीचे अन्तरिक्ष में भी स्तुति युक्त वचनों से आपका पूजन करें और जहाँ आप प्रकट हुए हैं, उस पृथ्वी लोक में यज्ञ में प्रज्वलित होने पर हविष्यान्न समर्पित करके हम आप का पूजन करें ॥३ ॥

२०८७. अग्ने यजस्व हविषा यजीयान् श्रुष्टी देष्णमभि गृणीहि राधः ।
त्वं ह्यसि रयिपती रयीणां त्वं शुक्रस्य वचसो मनोता ॥४ ॥

हे अग्निदेव ! आप श्रेष्ठ याज्ञिक हैं, अतः स्वीकार करने योग्य हमारे उपयुक्त पदार्थ एवं धन हमें शीघ्र प्रदान करें । आप हमारी स्तुतियों पर ध्यान दें । आप धनाधिपति हैं ॥४ ॥

२०८८. उभयं ते न क्षीयते वसव्यं दिवेदिवे जायमानस्य दस्म ।
कृधि क्षुमन्तं जरितारमग्ने कृधि पतिं स्वपत्यस्य रायः ॥५ ॥

हे दुःखनाशक अग्निदेव ! आपके द्वारा प्रदत्त (दिव्य तथा पार्थिव) दोनों प्रकार का धन कभी भी नष्ट नहीं होता, अतः आप स्तोताओं को यशस्वी बनायें और उत्तम सन्तति युक्त धन प्रदान करें ॥५ ॥

२०८९. सैनानीकेन सुविदत्रो अस्मे यष्टा देवाँ आयजिष्ठः स्वस्ति ।
अदब्धो गोपा उत नः परस्पा अग्ने द्युमदुत रेवद्दिदीहि ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! आप अपनी तेजस्वी ज्वालाओं के द्वारा हमें उत्तम ऐश्वर्य से युक्त करें । आप किसी से भी तिरस्कृत न होने वाले, उत्तम याज्ञिक देवताओं के पोषक तथा संकटों से पार करने वाले श्रेष्ठ रक्षक हैं । आप तेजस्वी, ऐश्वर्यवान् तथा कल्याणकारी रूप में सर्वत्र प्रकाशित हों ॥६ ॥

[सूक्त - १०]

[**ऋषि**- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । **देवता**- अग्नि । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

२०९०. जोहूत्रो अग्निः प्रथमः पितेवेळस्पदे मनुषा यत्समिद्धः ।
श्रियं वसानो अमृतो विचेता मर्मृजेन्यः श्रवस्य१ः स वाजी ॥१ ॥

जो अग्निदेव यज्ञ स्थल में मनुष्य द्वारा प्रज्वलित होते हैं, वह पिता के समान पालक, प्रमुख तथा पूज्य होते हैं । वे अग्निदेव शोभायुक्त, अमर, विविध ज्ञानों से युक्त, अन्नवान् , बलशाली तथा सभी पदार्थों को पवित्र बनाने वाले हैं, इसलिए वह सबके द्वारा पूज्य भी हैं ॥१ ॥

२०९१. श्रूया अग्निश्चित्रभानुर्हवं मे विश्वाभिर्गीर्भिरमृतो विचेताः ।
श्यावा रथं वहतो रोहिता वोतारुषाह चक्रे विभृत्रः ॥२ ॥

अमर, विशेष ज्ञान से युक्त, अद्‌भुत कान्तिमान्, अग्निदेव हमारी सभी प्रकार की वाणियों से की गई प्रार्थना

को स्वीकारें । अग्निदेव के रथ को श्याम वर्ण वाले, लाल वर्ण वाले तथा शुक्लवर्ण वाले घोड़े खींचते हैं । वे अग्निदेव विविध स्थानों में भ्रमण करते हैं ॥२ ॥

२०९२. उत्तानायामजनयन्त्सुषूतं भुवदग्निः पुरुपेशासु गर्भः ।

शिरिणायां चिदक्तुना महोभिरपरीवृतो वसति प्रचेताः ॥३ ॥

नाना प्रकार की ओषधियों (काष्ठ) में अग्निदेव गुप्त रूप से विद्यमान होते हैं ।उनको मंथन द्वारा अध्वर्युगण उत्पन्न करते हैं ।ये रात्रि में अपने तेज के कारण अन्धकार से आच्छादित न होकर सर्वत्र प्रकाशित होते हैं ॥३ ॥

२०९३. जिघर्म्यग्निं हविषा घृतेन प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वा ।

पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यचिष्ठमन्नै रभसं दृशानम् ॥४ ॥

सम्पूर्ण भुवनों में संव्याप्त, महान् तेजस्वी, काष्ठ आदि पदार्थों से खूब फैलने वाले, तिरछी ज्वालाओं से युक्त, सुन्दर, दर्शनीय अग्निदेव को हम घृत और चरु से सिंचित करके प्रदीप्त करते हैं ॥४ ॥

२०९४. आ विश्वतः प्रत्यञ्चं जिघर्म्यरक्षसा मनसा तज्जुषेत ।

मर्यश्रीः स्पृहयद्वर्णो अग्निर्नाभिमृशे तन्वा३ जर्भुराणः ॥५ ॥

सर्वत्र व्याप्त अग्निदेव को हम घृत से सिंचित करके प्रदीप्त करते हैं । हे अग्निदेव ! समर्पित घृत की आहुतियों को शान्तिपूर्वक ग्रहण करें । मनुष्यों द्वारा पूज्य, कान्तिवान् अग्निदेव, जब तेजस्वी रूप में प्रदीप्त होते हैं, तब कोई स्पर्श नहीं कर सकता ॥५ ॥

२०९५. ज्ञेया भागं सहसानो वरेण त्वादूतासो मनुवद्वदेम ।

अनूनमग्निं जुह्वा वचस्या मधुपृचं धनसा जोहवीमि ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! आप अपनी शत्रु निवारक शक्ति से शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हुए हमारी स्तुतियों को ग्रहण करें । हम आपकी मनु की तरह दूत रूप में स्तुति करते हैं । मधुरतायुक्त, धनदाता अग्निदेव को हम स्तुति पूर्वक घृत की आहुतियाँ प्रदान करते हैं ॥६ ॥

[सूक्त - ११]

[**ऋषि**- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । **देवता**- इन्द्र ।
छन्द - विराट् स्थाना २१ त्रिष्टुप् ।]

२०९६. श्रुधी हवमिन्द्र मा रिषण्यः स्याम ते दावने वसूनाम् ।

इमा हि त्वामूर्जो वर्धयन्ति वसूयवः सिन्धवो न क्षरन्तः ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे निवेदन को स्वीकार करें, हमे तिरस्कृत न करें । धन दान के समय हम आपके कृपा पात्र रहें । झरते हुए जल के समान (मनुष्यों द्वारा प्रेमपूर्वक) दिया गया हव्य आपकी शक्ति को बढ़ाएँ ॥१ ॥

२०९७. सृजो महीरिन्द्र या अपिन्वः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः ।

अमर्त्यं चिद्दासं मन्यमानमवाभिनदुक्थैर्वावृधानः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव !जल को रोकने वाले अहि (असुर) के बन्धनों को तोड़कर आपने जल को मुक्त किया, उसे भूमि परबहाया ।स्तुतियों से बढ़ते हुए आपने, अपने आपको अमर समझने वाले उस घमण्डी असुर को धराशायी किया ॥२ ॥



२०९८. उक्थेष्विन्नु शूर येषु चाकन्त्स्तोमेष्विन्द्र रुद्रियेषु च।

तुभ्येदेता यासु मन्दसानः प्र वायवे सिस्रते न शुभ्राः ॥३ ॥

हे वीर इन्द्रदेव ! जिन स्तुतियों से आप आनन्दित होते हैं और रुद्रदेव की जिन स्तुति की कामना करते हैं। हे बलशाली ! आपके लिए यज्ञ में वे स्तुतियाँ प्रकट होती हैं ॥३ ॥

२०९९. शुभ्रं नु ते शुष्मं वर्धयन्तः शुभ्रं वज्रं बाह्वोर्दधानाः।

शुभ्रस्त्वमिन्द्र वावृधानो अस्मे दासीर्विशः सूर्येण सह्याः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम आपके तेजस्वी बल को बढ़ाने वाले चमचमाते वज्र को आपकी भुजाओं में धारण कराते हैं। आप तेजस्वी रूप में विस्तार पाते हुए सूर्य के समान संतापदायी वज्र से आसुरी प्रजाओं को नष्ट करें ॥४ ॥

२१००. गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्स्वपीवृतं मायिनं क्षियन्तम्।

उतो अपो द्यां तस्तभ्वांसमहन्नहिं शूर वीर्येण ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने द्युलोक में चढ़ाई करके जल को रोके रखने वाले, गुफा में छिपे हुए मायावी 'अहि' असुर को क्षीण करते हुए अपने पराक्रम से मारा ॥५ ॥

२१०१. स्तवा नु त इन्द्र पूर्व्या महान्युत स्तवाम नूतना कृतानि।

स्तवा वज्रं बाह्वोरुशन्तं स्तवा हरी सूर्यस्य केतू ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम आपके द्वारा प्राचीन समय में किये गए श्रेष्ठ कार्यों का यशोगान करते हुए वर्तमान में किये जा रहे कार्यों की प्रशंसा करते हैं। हाथों में धारण किये सुन्दर वज्र की तथा सूर्य रश्मियों के समान कान्तिमान् आपके अश्वों की भी हम प्रशंसा करें ॥६ ॥

२१०२. हरी नु त इन्द्र वाजयन्ता घृतश्चुतं स्वारमस्वार्ष्टाम्।

वि समना भूमिरप्रथिष्टारंस्त पर्वतश्चित्सरिष्यन् ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके द्रुतगामी अश्वों की गर्जना जल वृष्टि करने वाले मेघों की तरह है। पृथिवी जल वृष्टि से खूब फैल जाती है (उपजाऊ बन जाती है) । मेघ दौड़ते हुए पर्वतों पर विचरण करते हैं ॥७ ॥

२१०३. नि पर्वतः साद्यप्रयुच्छन्त्सं मातृभिर्वावशानो अक्रान्।

दूरे पारे वाणीं वर्धयन्त इन्द्रेषितां धमनिं पप्रथन्नि ॥८ ॥

जल युक्त अप्रमादी मेघ आकाश में गर्जना करते हुए विचरण कर रहे थे, तब स्तोताओं की वाणी रूपी स्तुतियों से इन्द्रदेव की प्रेरणा प्राप्त कर मेघ बहुत दूर-दूर तक निरन्तर विस्तृत हुए ॥८ ॥

२१०४. इन्द्रो महां सिन्धुमाशयानं मायाविनं वृत्रमस्फुरन्निः।

अरेजेतां रोदसी भियाने कनिक्रदतो वृष्णो अस्य वज्रात् ॥९ ॥

अन्तरिक्ष में जल का मार्ग रोकने वाले बहुत बड़े मायावी राक्षस वृत्र का इन्द्रदेव ने हनन किया। उस समय बलशाली इन्द्रदेव के सिंह-गर्जना करने वाले वज्र के भय से दोनों लोक काँपने लगे ॥९ ॥

२१०५. अरोरवीद्वृष्णो अस्य वज्रोऽमानुषं यन्मानुषो निजूर्वात्।

नि मायिनो दानवस्य माया अपादयत्पपिवान्त्सुतस्य ॥१० ॥

मनुष्यों का अहित करने वाले वृत्र राक्षस को जब मनुष्यों का हित करने वाले इन्द्रदेव ने मारा, तब



बलशाली इन्द्रदेव के वज्र ने बार-बार गर्जना की । तभी सोमपायी इन्द्रदेव ने इस मायावी राक्षस की माया को नष्ट कर दिया ॥१० ॥

२१०६. पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं मन्दन्तु त्वा मन्दिनः सुतासः ।
पृणन्तस्ते कुक्षी वर्धयन्त्वित्था सुतः पौर इन्द्रमाव ॥११ ॥

हे वीर इन्द्रदेव !इस सोम रस का पान अवश्य करें ।यह शोधित आनन्ददायक सोमरस आपको हर्षित करे । यह आपके पेट में जाकर आपकी शक्ति को बढ़ाये ।इस प्रकार यह (आपके माध्यम से) समस्त प्रजा की रक्षा करे ॥११ ॥

२१०७. त्वे इन्द्राप्यभूम विप्रा धियं वनेम ऋतया सपन्तः ।
अवस्यवो धीमहि प्रशस्तिं सद्यस्ते रायो दावने स्याम ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम ज्ञानीजन यज्ञीय कर्म की कामना से आपका आश्रय प्राप्त करते हुए आपसे सम्बद्ध हों । आपकी बुद्धि प्राप्त करें । आपकी स्तुतियाँ करते हुए हम लोग संरक्षण की कामना करते हैं । आपके दान से हमें धन प्राप्त हो ॥१२ ॥

२१०८. स्याम ते त इन्द्र ये त ऊती अवस्यव ऊर्जं वर्धयन्तः ।
शुष्मिन्तमं यं चाकनाम देवास्मे रयिं रासि वीरवन्तम् ॥१३ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम रक्षा की कामना से आपको तेजस्वी बनाते हैं, अत: सदैव हम आपके संरक्षण में रहें । हमारी कामना के अनुरूप वीरों (पुत्रों) से युक्त धन हमें प्रदान करें ॥१३ ॥

२१०९. रासि क्षयं रासि मित्रमस्मे रासि शर्ध इन्द्र मारुतं नः ।
सजोषसो ये च मन्दसानाः प्र वायवः पान्त्यग्रणीतिम् ॥१४ ॥

हे इन्द्रदेव ! समान रूप से परस्पर प्रेम रखने वाले, हर्षदायक जो मरुद्‌गण अग्रणी होकर नेतृत्व प्रदान करने वालों की रक्षा करते हैं, उन मरुतों का मित्रवत् शक्तियुक्त आश्रय हमें प्रदान करें ॥१४ ॥

२११०. व्यन्त्विन्नु येषु मन्दसानस्तृपत्सोमं पाहि द्रह्यदिन्द्र ।
अस्मान्त्सु पृत्स्वा तरुत्रावर्धयो द्यां बृहद्भिरर्कैः ॥१५ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिन यज्ञों में आप आनन्दित होते हैं, उनमें तृप्तकारी सोमरस का पान स्थिर होकर करें । सभी स्तोतागण भी उस सोम का पान करें । हे संकटों से पार करने वाले देव ! हमारे महान् स्तोत्रों से संग्राम में हमें तेजस्वी बनाएँ और आकाश को समृद्ध बनाएँ ॥१५ ॥

२१११. बृहन्त इन्नु ये ते तरुत्रोक्थेभिर्वा सुम्नमाविवासान् ।
स्तृणानासो बर्हिः पस्त्यावत्त्वोता इदिन्द्र वाजमग्मन् ॥१६ ॥

हे दु:ख नाशक इन्द्रदेव ! जो महान् साधक स्तोत्रों द्वारा आपका स्नेह चाहते हैं एवं कुश का आसन प्रदान करते हैं, वे शीघ्र ही आपका संरक्षण प्राप्त करके अन्न और गृह प्राप्त करते हैं ॥१६ ॥

२११२. उग्रेष्विन्नु शूर मन्दसानस्त्रिकद्रुकेषु पाहि सोममिन्द्र ।
प्रदोधुवच्छ्मश्रुषु प्रीणानो याहि हरिभ्यां सुतस्य पीतिम् ॥१७ ॥

हे वीर इन्द्रदेव ! जो सोम रस तीनों लोकों में सूर्य के समान बल प्रदान करने वाला है, आनन्दित होते हुए उसका पान करें । श्रेष्ठ घोड़ों पर आरूढ़ होकर दाढ़ी-मूँछों को झाड़कर सोमरस का पान करें ॥१७ ॥



२११३. धिष्वा शवः शूर येन वृत्रमवाभिनद्दानुमौर्णवाभम् ।
अपावृणोर्ज्योतिरार्याय नि सव्यतः सादि दस्युरिन्द्र ॥१८ ॥

हे वीर इन्द्रदेव ! मकड़ी के जाल के समान अवरोधों से जल को रोके रखने वाले असुर वृत्र को जिस पराक्रम से आपने छिन्न-भिन्न किया, उसी बल का प्रयोग करें । आपने दस्युओं (अवरोधों) को हटाकर मनुष्यों को सूर्य का प्रकाश उपलब्ध कराया ॥१८ ॥

२११४. सनेम ये त ऊतिभिस्तरन्तो विश्वाः स्पृध आर्येण दस्यून् ।
अस्मभ्यं तत्त्वाष्ट्रं विश्वरूपमरन्धयः साख्यस्य त्रिताय ॥१९ ॥

हे इन्द्रदेव !मनुष्य मात्र का संरक्षण करते हुए आपने त्रिविध (कायिक, वाचिक तथा मानसिक) ताप देने वाले असुरों को अपने वश में किया था तथा त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप को नष्ट किया था ।आप हमें भी संरक्षण प्रदान करें॥१९ ॥

२११५. अस्य सुवानस्य मन्दिनस्त्रितस्य न्यर्बुदं वावृधानो अस्तः ।
अवर्तयत्सूर्यो न चक्रं भिनद्वलमिन्द्रो अङ्गिरस्वान् ॥२० ॥

यज्ञकर्त्ता त्रित के शत्रु अर्बुद को इन्द्रदेव ने स्वयं बढ़ते हुए, आनन्दित होकर मारा था । अंगिराओं के मित्र इन्द्रदेव ने सूर्यदेव द्वारा रथ के पहिए घुमाने की भाँति अपने वज्र को घुमाकर असुरों को नष्ट किया ॥२० ॥

२११६. नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥२१ ॥

हे इन्द्रदेव ! यज्ञ के समय स्तोताओं के लिए आपके द्वारा दी गई ऐश्वर्य युक्त दक्षिणा निश्चित ही उत्तम धन प्राप्त कराती है । स्तोताओं के साथ हमें भी वह ऐश्वर्य युक्त दक्षिणा प्रदान करें, जिससे हम यज्ञ में महान् पराक्रम प्रदान करने वाले स्तोत्रों का उच्चारण करें ॥२१ ॥

[सूक्त - १२]

[ऋषि- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चात्) भार्गव शौनक । देवता- इन्द्र । छन्द - त्रिष्टुप् ।]

२११७. यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान्क्रतुना पर्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥१ ॥

हे मनुष्यो ! अपने पराक्रम के प्रभाव से ख्याति प्राप्त उन मनस्वी इन्द्रदेव ने उत्पन्न होते ही अपने श्रेष्ठ कर्मों से देवताओं को अलंकृत कर दिया था, जिसकी शक्ति से आकाश और पृथिवी दोनों लोक भयभीत हो गये ॥१ ॥

२११८. यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद्यः पर्वतान्प्रकुपिताँ अरम्णात् ।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात्स जनास इन्द्रः ॥२ ॥

हे मनुष्यो ! उन इन्द्रदेव ने विशाल आकाश को मापा, द्युलोक को धारण किया तथा भूकम्पों से काँपती हुई पृथिवी को मजबूत आधार प्रदान करके आग उगलते पर्वतों को स्थिर किया ॥२ ॥

२११९. यो हत्वाहिमरिणात्सप्त सिन्धून्यो गा उदाजदपधा वलस्य ।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक्समत्सु स जनास इन्द्रः ॥३ ॥

हे मनुष्यों ! जिसने वृत्र राक्षस को मारकर (जल वृष्टि कराकर) सात नदियों को प्रवाहित किया जिसने वल (राक्षस) द्वारा अपहृत की गयी गौओं को मुक्त कराया, जिसने पाषाणों के बीच अग्निदेव को उत्पन्न, किया, जिसने शत्रुओं का संहार किया, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥३ ॥

२१२०. **येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।**
श्वघ्नीव यो जिगीवाँ लक्षमाददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥४ ॥

हे मनुष्यो ! जिसने समस्त गतिशील लोकों का निर्माण किया, जिसने दास वर्ण (अमानवीय आचरण वालों) को निम्न स्थान प्रदान किया; जिसने अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लिया और जिसने व्याध द्वारा पशुओं के समान शत्रुओं की समृद्धि को अपने अधिकार में ले लिया, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥४ ॥

२१२१. **यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम् ।**
सो अर्यः पुष्टीर्विजइवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ॥५ ॥

जिन इन्द्रदेव के बारे में लोग पूछा करते हैं कि वे कहाँ हैं ? उन इन्द्रदेव के सम्बन्ध में कुछ लोग कहते हैं कि वे हैं ही नहीं । वे इन्द्रदेव उन्हें न मानने वाले शत्रुओं की पोषणकारी सम्पत्ति को वीरता के साथ नष्ट कर देते हैं । हे मनुष्यो ! इन इन्द्रदेव के प्रति श्रद्धा व्यक्त करो, ये सबसे महान् देव इन्द्र ही हैं ॥५ ॥

२१२२. **यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः ।**
युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ॥६ ॥

हे मनुष्यो ! जो दरिद्रों, ज्ञानियों तथा स्तुति करने वालों को धन प्रदान करते हैं, सोमरस निकालने के लिए पत्थर रखकर (कूटने के लिए) जो यजमान तैयार है, उस यजमान की जो रक्षा करते हैं, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥६ ॥

२१२३. **यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः ।**
यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥७ ॥

हे मनुष्यो ! जिनके अधीन समस्त ग्राम, गौएँ, घोड़े तथा रथ हैं, जिनने सूर्य तथा उषा को उत्पन्न किया, जो समस्त प्रकृति के संचालक हैं, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥७ ॥

२१२४. **यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेऽवर उभया अमित्राः ।**
समानं चिद्रथमातस्थिवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्रः ॥८ ॥

हे मनुष्यो ! परस्पर साथ-साथ चलने वाले द्युलोक तथा पृथिवी लोक जिन्हें सहायता के लिए बुलाते हैं, महान् तथा निम्न स्तरीय शत्रु भी जिन्हें युद्ध में मदद के लिए बुलाते हैं, एकरथ पर आरूढ़ दो वीर साथ-साथ जिन्हें मदद के लिए बुलाते हैं, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥८ ॥

२१२५. **यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।**
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत्स जनास इन्द्रः ॥९ ॥

हे मनुष्यो ! जिनकी सहायता के बिना शूरवीर युद्ध में विजयी नहीं होते, युद्धरत वीर पुरुष अपने संरक्षण के लिए जिन्हें पुकारते हैं, जो समस्त संसार को यथा विधि जानते हुए अपरिमित शक्तिवाले शत्रुओं का संहार कर देते हैं, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥९ ॥

२१२६. **यः शश्वतो मह्येनो दधानानमन्यमानाञ्छर्वा जघान ।**
यः शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः ॥१० ॥

हे मनुष्यो ! जिनने अपने वज्र से महान् पापी शत्रुओं का हनन किया, जो अहंकारी मनुष्यों का गर्व नष्ट कर देते हैं, जो दूसरे के पदार्थों का हरण करने वाले दुष्टों के नाशक हैं, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥१० ॥



२१२७. **यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत्।**
ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥११ ॥

हे मनुष्यो ! जिनने चालीसवें वर्ष में पर्वत में छिपे हुए शंबर राक्षस को ढूँढ़ निकाला, जिनने जल को रोककर रखने वाले सोये हुए असुर वृत्र को मारा, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥११ ॥

२१२८. **यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत्सर्तवे सप्त सिन्धून्।**
यो रौहिणमस्फुरद्वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥१२ ॥

हे मनुष्यो ! जिनने सात नदियों को सूर्य की सात किरणों की भाँति बलशाली और ओजस्वी रूप में प्रभावित किया, जिनने द्युलोक की ओर चढ़ती रोहिणी को अपने हाथ के वज्र से रोक लिया, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥१२ ॥

२१२९. **द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते।**
यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः ॥१३ ॥

हे मनुष्यो ! जिनके प्रति द्युलोक तथा पृथिवी लोक नमनशील हैं, जिनके बल से पर्वत भयभीत रहते हैं, जो सोमपान करने वाले, वज्र के समान भुजाओं वाले तथा शरीर से महान् बलशाली हैं, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥१३ ॥

२१३०. **यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमूती।**
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः ॥१४ ॥

हे मनुष्यो !जो सोमरस निकालने वाले, शोधित करने वाले, स्तोत्रों के द्वारा स्तुतियाँ करने वाले को, अपने रक्षा साधनों से संरक्षण प्रदान करते हैं, जिनके स्तोत्र एवं सोम हमारे ऐश्वर्य को बढ़ाने वाला है, वे ही इन्द्रदेव हैं ॥१४ ॥

२१३१. **यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद्वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः।**
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम ॥१५ ॥

जो सोमयज्ञ करने वाले तथा सोमरस को शोधित करने वाले याजक को धन प्रदान करते हैं, वे निश्चित रूप से सत्यरूप इन्द्रदेव हैं। हे इन्द्रदेव ! हम सन्तति युक्त प्रियजनों के साथ सदैव आपका यशोगान करें ॥१५ ॥

[सूक्त - १३]

[**ऋषि**- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक। **देवता**- अग्नि। **छन्द** - जगती, १३ त्रिष्टुप्।]

२१३२. **ऋतुर्जनित्री तस्या अपस्परि मक्षू जात आविशद्यासु वर्धते।**
तदाहना अभवत् पिप्युषी पयोंऽशोः पीयूषं प्रथमं तदुक्थ्यम् ॥१ ॥

वर्षा से सोम की उत्पत्ति होती है, वह सोम जल में (मिश्रित होकर) बढ़ता है। श्रेष्ठ रस वाली लता (सोम बल्ली) कूटकर सोमरस निकालने योग्य होती है। यह प्रशंसनीय सोमरस इन्द्रदेव का हविष्यान्न है ॥१ ॥

२१३३. **सध्रीमा यन्ति परि बिभ्रतीः पयो विश्वप्स्न्याय प्र भरन्त भोजनम्।**
समानो अध्वा प्रवतामनुष्यदे यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥२ ॥

सभी नदियाँ प्रवाहित होती हुईं समुद्र को जल से भरकर मानो भोजन कराती हैं। हे इन्द्रदेव ! यह अभूतपूर्व कार्य करने वाले आप प्रशंसा के योग्य हैं ॥२ ॥

२१३४. **अन्वेको वदति यद्ददाति तद्रूपा मिनन्तदपा एक ईयते।**
विश्वा एकस्य विनुदस्तितिक्षते यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥३ ॥

(सूक्ष्म चेतन प्रवाहों अथवा श्रेष्ठ कर्म-रत व्यक्तियों, यजमानों में से) एक जो कुछ देता है, उसके सम्बन्ध में जानकारी देता चलता है । एक (प्राप्त वस्तुओं के) रूपों में भेद करता (अंतर समझाता) चलता है । एक हटाने योग्य को हटाकर शोधन करता चलता है । हे इन्द्रदेव ! आपने पहले ही इन सब कर्मों को सम्पन्न किया, इसलिए आप प्रशंसनीय हैं ॥३ ॥

२१३५. प्रजाभ्यः पुष्टिं विभजन्त आसते रयिमिव पृष्ठं प्रभवन्तमायते ।
असिन्वन्दंष्ट्रैः पितुरत्ति भोजनं यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥४ ॥

(देवगण) अभ्यागतों की तरह प्रजा के लिए ऐश्वर्य तथा पोषक अन्न प्रदान करते हैं । जिस प्रकार मनुष्य अपने दाँतों से चबाकर भोजन खाता है, उसी प्रकार आप (प्रलय काल में) समस्त जगत् को खा जाते हैं । इन किये गये हितकारी कार्यों के लिए आप प्रशंसा के योग्य हैं ॥४ ॥

२१३६. अधाकृणोः पृथिवीं सन्दृशे दिवे यो धौतीनामहिहन्नारिणक्पथः ।
तं त्वा स्तोमेभिरुदभिर्न वाजिनं देवं देवा अजनन्त्सास्युक्थ्यः ॥५ ॥

हे वृत्रनाशक इन्द्रदेव ! आपने नदियों को प्रवाहित होने का मार्ग प्रशस्त किया और सूर्य के प्रकाश में दर्शनीय पृथिवी को स्थापित किया । जिस प्रकार ओषधियों को जल से सींचकर पुष्टिकारक बनाते हैं, उसी प्रकार स्तोत्रों के माध्यम से स्तुतियाँ करके साधक आपको बलशाली बनाते हैं । इस प्रकार आप प्रशंसा के योग्य हैं ॥५ ॥

२१३७. यो भोजनं च दयसे च वर्धनमार्द्रादा शुष्कं मधुमद्दुदोहिथ ।
सः शेवधिं नि दधिषे विवस्वति विश्वस्यैक ईशिषे सास्युक्थ्यः ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप (प्राणियों को) वृद्धि के साधन तथा भोजन प्रदान करते हैं । गीले पौधों से मधुर सूखे पदार्थ (फल या अन्न) प्राप्त कराते हैं । ऐश्वर्य प्रदान करने वाले आप अकेले ही सम्पूर्ण विश्व के स्वामी हैं । अत: आप प्रशंसा के योग्य हैं ॥६ ॥

२१३८. यः पुष्पिणीश्च प्रस्वश्च धर्मणाधि दाने व्य१वनीरधारयः ।
यश्चासमा अजनो दिद्युतो दिव उरुरूर्वाँ अभितः सास्युक्थ्यः ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने खेतों में फूल व फल वाली ओषधियों को गुणवान् बनाकर उनका संरक्षण किया है । आपने प्रकाशित सूर्य को नाना किरणें प्रदान कीं । आपकी महानता से ही सुदूर तक विस्तृत पर्वतों का प्रादुर्भाव हुआ । ऐसे महान् आप प्रशंसा के योग्य हैं ॥७ ॥

२१३९. यो नार्मरं सहवसुं निहन्तवे पृक्षाय च दासवेशाय चावहः ।
ऊर्जयन्त्या अपरिविष्टमास्यमुतैवाद्य पुरुकृत्सास्युक्थ्यः ॥८ ॥

हे बहुकर्मा इन्द्रदेव ! आपने दस्युओं के विनाश के उद्देश्य से नृमर के पुत्र सहसवसु को बलशाली वज्र के वार से मारा तथा अन्नादि प्राप्त किया, अत: आप प्रशंसा के योग्य हैं ॥८ ॥

२१४०. शतं वा यस्य दश साकमाद्य एकस्य श्रुष्टौ यद्ध चोदमाविथ ।
अरज्जौ दस्यून्त्समुनब्दभीतये सुप्राव्यो अभवः सास्युक्थ्यः ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने दानशील यजमान के सुख के लिए संरक्षण प्रदान किया, आपके रथ को दस सौ (हजारों) अश्व खींचते हैं । आपने रस्सी से बाँधे बिना दभीति ऋषि के दस्युओं को नष्ट किया और उनके श्रेष्ठ मित्र बने । आप प्रशंसा के योग्य हैं ॥९ ॥



२१४१. विश्वेदनु रोधना अस्य पौंस्यं ददुरस्मै दधिरे कृत्नवे धनम्।

षळस्तभ्ना विष्टिरः पञ्च सन्दृशः परि परो अभवः सास्युक्थ्यः ॥१० ॥

इन्द्रदेव के पराक्रम के अनुकूल सारी नदियाँ (धाराएँ) प्रवाहित होती हैं। उनके लिए सभी धन एकत्रित करते हैं तथा यजमान हविष्यान्न देते हैं। हे इन्द्रदेव ! आपने पंचजनों के पालन के लिए छः विशाल पदार्थों को धारण किया है, अतः आप प्रशंसा के योग्य हैं ॥१० ॥

[पाँच इन्द्रियों के लिए छः ऋतुओं या षट् रसों का भाव यहाँ लिया जा सकता है।]

२१४२. सुप्रवाचनं तव वीर वीर्यं१ यदेकेन क्रतुना विन्दसे वसु।

जातूष्ठिरस्य प्र वयः सहस्वतो या चकर्थ सेन्द्र विश्वास्युक्थ्यः ॥११ ॥

हे इन्द्रदेव !आप एक बार के प्रयास से ही इच्छित ऐश्वर्य प्राप्त कर लेते हैं, आपका यह पराक्रम प्रशंसनीय है। आप उत्पन्न प्राणियों को अन्न देने वाले एवं महान् कार्यों के कर्त्ता हैं, इसी कारण आप प्रशंसा के योग्य हैं ॥११ ॥

२१४३. अरमयः सरपसस्तराय कं तुर्वीतये च वय्याय च स्रुतिम्।

नीचा सन्तमुदनयः परावृजं प्रान्धं श्रोणं श्रवयन्त्सास्युक्थ्यः ॥१२ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने तुर्वीति तथा वय्य को प्रवाहित जल से सुख पूर्वक पार जाने का मार्ग प्रशस्त किया। अंधे एवं पंगु परावृक ऋषि को आपने गहरे जल से निकालकर आँख तथा पैर प्रदान करके अपनी कीर्ति बढ़ाई। आप प्रशंसा के योग्य हैं ॥१२ ॥

२१४४. अस्मभ्यं तद्वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम्।

इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून्बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप महान् ऐश्वर्यशाली हैं। श्रेष्ठ कार्यों के निमित्त आप हमें धन प्रदान करें। हम सदैव आपके धन को प्राप्त करने की कामना करते हैं। हम यज्ञ में पुत्र-पौत्रों सहित स्तोत्रों का गायन करके आपकी स्तुति करें ॥१३ ॥

[सूक्त - १४]

[**ऋषि-** गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक। **देवता-** इन्द्र। **छन्द -** त्रिष्टुप्।]

२१४५. अध्वर्यवो भरतेन्द्राय सोममामत्रेभिः सिञ्चता मद्यमन्धः।

कामी हि वीरः सदमस्य पीतिं जुहोत वृष्णे तदिदेष वष्टि ॥१ ॥

हे अध्वर्युगणो ! सदैव सोम-पान की कामना वाले वीर इन्द्रदेव को भरपूर मात्रा में सोमरस तथा पात्रों में हर्षदायक अन्न प्रदान करें। इन्द्रदेव की कामना के अनुसार सुखवर्षक सोम की आहुतियाँ उन्हें प्रदान करें ॥१ ॥

२१४६. अध्वर्यवो यो अपो वव्रिवांसं वृत्रं जघानाशन्येव वृक्षम्।

तस्मा एतं भरत तद्वशायँ एष इन्द्रो अर्हति पीतिमस्य ॥२ ॥

हे अध्वर्युगणो ! जिस तरह बिजली वृक्ष को धराशायी कर देती है, उसी तरह जिन इन्द्रदेव ने जल को रोककर रखने वाले वृत्र को धराशायी किया था, वे इन्द्रदेव इस सोमरस पान के योग्य हैं, अतः उनकी कामनानुसार सोम रस प्रदान करो ॥२ ॥

२१४७. अध्वर्यवो यो दृभीकं जघान यो गा उदाजदप हि वलं वः।

तस्मा एतमन्तरिक्षे न वातमिन्द्रं सोमैरोर्णुत जूर्न वस्त्रैः ॥३ ॥



हे अध्वर्युगणो ! जिन इन्द्रदेव ने दृभीक राक्षस का हनन किया, जिनने बल-पूर्वक रोकी गई गौओं (किरणों) को मुक्त कराया । उन इन्द्रदेव के निमित्त, आकाश में व्याप्त वायु की तरह यह सोम स्थापित करो । शरीर को वस्त्रों से आच्छादित करने की भाँति इन्द्रदेव को सोम से आच्छादित करो ॥३ ॥

२१४८. अध्वर्यवो य उरणं जघान नव चख्वांसं नवतिं च बाहून् ।

यो अर्बुदमव नीचा बबाधे तमिन्द्रं सोमस्य भृथे हिनोत ॥४ ॥

हे अध्वर्युगणो ! जिन इन्द्रदेव ने उरण नामक राक्षस की निन्यानबे भुजाओं को काटा और उसे मारा तथा अर्बुद राक्षस को अधोमुख करके उसे पीड़ित किया, उन इन्द्रदेव को सोम यज्ञ में आने के लिए प्रेरित करो ॥४ ॥

२१४९. अध्वर्यवो यः स्वश्नं जघान यः शुष्णमशुषं यो व्यंसम् ।

यः पिप्रुं नमुचिं यो रुधिक्रां तस्मा इन्द्रायान्धसो जुहोत ॥५ ॥

जिन इन्द्रदेव ने अश्न, प्रजाशोषक शुष्ण, बाहुरहित अहि, पिप्रु, नमुचि तथा रुधिक्रा नामक राक्षसों का वध किया, उन इन्द्रदेव को विभिन्न हविष्यान्नों की आहुतियाँ समर्पित करो ॥५ ॥

२१५०. अध्वर्यवो यः शतं शम्बरस्य पुरो बिभेदाश्मनेव पूर्वीः ।

यो वर्चिनः शतमिन्द्रः सहस्रमपावपद्भरता सोममस्मै ॥६ ॥

हे अध्वर्युगणो ! जिन इन्द्रदेव ने शम्बर राक्षस के सौ पुराने नगरों का अपने शक्तिशाली वज्र से ध्वंस किया, जिनने वर्चीक के सौ हजार पुत्रों को धराशायी किया, उन इन्द्रदेव के निमित्त सोम प्रदान करो ॥६ ॥

२१५१. अध्वर्यवो यः शतमा सहस्रं भूम्या उपस्थेऽवपज्जघन्वान् ।

कुत्सस्यायोरतिथिग्वस्य वीरान्न्यावृणग्भरता सोममस्मै ॥७ ॥

हे अध्वर्युगणो ! जिन शत्रुनाशक इन्द्र देव ने हजारों असुरों को मारकर सैकड़ों बार भूमि पर बिछा दिया । जिनने कुत्स, आयु तथा अतिथिग्व के द्वेषियों का वध किया, उन इन्द्रदेव के निमित्त सोम एकत्रित करो ॥७ ॥

२१५२. अध्वर्यवो यन्नरः कामयाध्वे श्रुष्टी वहन्तो नशथा तदिन्द्रे ।

गभस्तिपूतं भरत श्रुतायेन्द्राय सोमं यज्यवो जुहोत ॥८ ॥

हे अध्वर्युगणो ! नेता इन्द्रदेव को हविष्यान्न प्रदान करके अपनी कामनानुसार वाञ्छित वस्तुएँ प्राप्त करो । अंगुलियों से शोधित सोम को यशस्वी इन्द्रदेव के निमित्त प्रदान करते हुए आहुतियाँ दें ॥८ ॥

२१५३. अध्वर्यवः कर्तना श्रुष्टिमस्मै वने निपूतं वन उन्नयध्वम् ।

जुषाणो हस्त्यमभि वावशे व इन्द्राय सोमं मदिरं जुहोत ॥९ ॥

हे अध्वर्युगणो !काष्ठपात्र में शोधित सोमरस को रखकर इन्द्रदेव के समीप पहुँचाओ ।वे सोमपायी तुम्हारे हाथ में शोधित सोमरस की इच्छा करते हैं ।अतः इन्द्रदेव को हर्षित करने वाले सोम की आहुतियाँ समर्पित करो ॥९ ॥

२१५४. अध्वर्यवः पयसोधर्यथा गोः सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।

वेदाहमस्य निभृतं म एतद्दित्सन्तं भूयो यजतश्चिकेत ॥१० ॥

हे अध्वर्युगणो ! जिस तरह गाय के थन दूध से भरे रहते हैं, उसी तरह भोज्य पदार्थ प्रदान करने वाले इन्द्रदेव को सोम के द्वारा पूर्ण करो । इससे पूज्य इन्द्रदेव दाता यजमान को और अधिक ऐश्वर्य प्रदान करते हैं । इस गोपनीय रहस्य को हम भली-भाँति जानते हैं ॥१० ॥



[गाय के थनों में जितना अधिक दूध भरेगा, उतना ही पालने वाले का लाभ होगा, यज्ञ द्वारा देवशक्तियों के पुष्ट होने से प्रजा का हित होता है ।]

२१५५. अध्वर्यवो यो दिव्यस्य वस्वो यः पार्थिवस्य क्षम्यस्य राजा ।

तमूर्दरं न पृणता यवेनेन्द्रं सोमेभिस्तदपो वो अस्तु ॥११ ॥

हे अध्वर्युगणो ! इन्द्रदेव द्युलोक , पृथ्वीलोक तथा अन्तरिक्ष में उत्पन्न समस्त ऐश्वर्य के स्वामी हैं । जिस प्रकार से जौ आदि अन्न से कोठे भरे जाते हैं उसी प्रकार उन इन्द्रदेव को सोमरस के द्वारा सदैव पूर्ण करते रहो ॥११ ॥

२१५६. अस्मभ्यं तद्वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम् ।

इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून्बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१२ ॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आप महान् ऐश्वर्यशाली हैं, अतः श्रेष्ठ कार्यों के निमित्त हमें धन प्रदान करें । हम सदैव आपके धन को प्राप्त करने की कामना करते हैं । हम इस यज्ञ में पुत्र-पौत्रों सहित उत्तम स्तोत्रों का गायन करके आपकी स्तुतियाँ करें ॥१२ ॥

[सूक्त - १५]

[**ऋषि**- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । **देवता**- इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

२१५७. प्र घा न्वस्य महतो महानि सत्या सत्यस्य करणानि वोचम् ।

त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्यास्य मदे अहिमिन्द्रो जघान ॥१ ॥

उन महान् सत्य संकल्प धारी इन्द्रदेव के यथार्थ तथा महान् कर्मों का हम यशोगान करते हैं । इन्द्रदेव ने तीनों लोकों में व्याप्त सोम का पान करके इस सोम से आनन्दित होकर अहि राक्षस का वध किया ॥१ ॥

२१५८. अवंशे द्यामस्तभायद् बृहन्तमा रोदसी अपृणदन्तरिक्षम् ।

स धारयत्पृथिवीं पप्रथच्च सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥२ ॥

सोमरस के पान से उत्साहित होकर इन्द्रदेव ने बिना स्तम्भों के द्युलोक तथा अन्तरिक्ष को स्थिर किया ।इन दोनों लोकों को अपनी सत्ता से अनुप्राणित किया तथा पृथ्वी लोक को धारण करके उसका विस्तार किया ॥२ ॥

२१५९. सद्मेव प्राचो वि मिमाय मानैर्वज्रेण खान्यतृणन्नदीनाम् ।

वृथासृजत्पथिभिर्दीर्घयाथैः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥३ ॥

सोमरस के पान से उत्साहित होकर इन्द्रदेव ने समस्त संसार को माप करके पूर्वाभिमुख बनाया । अपने वज्र के प्रहार से दीर्घकाल तक सहज प्रवाहित होने योग्य नदियों का मार्ग बनाया ॥३ ॥

२१६०. स प्रवोळ्हन्परिगत्या दभीतेर्विश्वमधागायुधमिद्धे अग्नौ ।

सं गोभिरश्वैरसृजद्रथेभिः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥४ ॥

सोमरस के पान से आनन्दित होकर इन्द्रदेव ने 'दभीति' ऋषि को अपहृत करके ले जा रहे सारे असुरों को मार्ग में ही रोक कर, आयुधों से प्रदीप्त हुई अग्नि से जलाकर मारा, उन 'दभीति' ऋषि को गौओं, घोड़ों तथा रथों से विभूषित किया ॥४ ॥

२१६१. स ईं महीं धुनिमेतोररम्णात्सो अस्नातॄनपारयत्स्वस्ति ।

त उत्स्नाय रयिमभि प्र तस्थुः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥५ ॥

सोमरस के पान से उत्साहित होकर इन्द्रदेव ने पार जाने में असमर्थों को पार जाने के लिए विशाल नदी के प्रवाह को धीमा किया । उस नदी से पार निकल कर ऋषिगण ऐश्वर्य को लक्ष्य करके आगे बढ़ते हैं ॥५ ॥

२१६२. सोदञ्चं सिन्धुमरिणान्महित्वा वज्रेणान उषसः सं पिपेष ।

अजवसो जविनीभिर्विवृश्चन्त्सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥६ ॥

सोमरस के पान से आनन्दित होकर इन्द्रदेव ने अपने पराक्रम से नदी का प्रवाह उत्तराभिमुख किया । उनने अपनी द्रुतगामी सेनाओं के द्वारा उषा की निर्बल सेनाओं को नष्ट करते हुए उसके रथ को छिन्न-भिन्न किया था ॥६ ॥

२१६३. स विद्वाँ अपगोहं कनीनामाविर्भवन्नुदतिष्ठत्परावृक् ।

प्रति श्रोणः स्थाद्व्य१नगचष्ट सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥७ ॥

पंगु तथा चक्षुहीन ऋषि परावृक् अपने ब्याह के लिए लाई हुई कन्याओं को भागते हुए देखकर उनके पीछे दौड़ पड़े थे, स्तुति से प्रसन्न इन्द्रदेव ने उन्हें पैर तथा आँखें प्रदान कीं । यह कार्य इन्द्रदेव ने सोम रस के पान से आनन्दित होकर किया ॥७ ॥

२१६४. भिनद्वलमङ्गिरोभिर्गृणानो वि पर्वतस्य दृंहितान्यैरत् ।

रिणग्रोधांसि कृत्रिमाण्येषां सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥८ ॥

अंगिरा आदि स्तोताओं की स्तुतियों से प्रसन्न होकर तथा सोमरस के पान से उत्साहित होकर इन्द्रदेव ने पर्वत के सुदृढ़ द्वारों को खोलकर असुरों की रची हुई बाधाओं को हटाते हुए 'वल' नामक असुर को विदीर्ण किया था ॥८ ॥

२१६५. स्वप्नेनाभ्युप्या चुमुरिं धुनिं च जघन्थ दस्युं प्र दभीतिमावः ।

रम्भी चिदत्र विविदे हिरण्यं सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपने सोमरस के पान से उत्साहित होकर 'दभीति' की रक्षा के लिए दुष्ट राक्षस 'चमुरि' तथा 'धुनि' को दीर्घ निद्रा में सुलाते हुए मारा था । इस अवसर पर दण्डधारियों (द्वारपालों) ने धन प्राप्त किया ॥९ ॥

२१६६. नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।

शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१० ॥

हे इन्द्रदेव !आपकी ऐश्वर्ययुक्त दक्षिणा स्तोताओं के लिए वरदायक होती है । उसे हमें भी प्रदान करें ।आप हमें न त्यागें, हमें भी ऐश्वर्य से युक्त करें । हम यज्ञ में पुत्र-पौत्रों सहित महान् स्तोत्रों से आपकी स्तुतियाँ करें ॥१० ॥

[सूक्त - १६]

[**ऋषि**- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । **देवता**- इन्द्र । **छन्द** - जगती, ९ त्रिष्टुप् ।]

२१६७. प्र वः सतां ज्येष्ठतमाय सुष्टुतिमग्नाविव समिधाने हविर्भरे ।

इन्द्रमजुर्यं जरयन्तमुक्षितं सनाद्युवानमवसे हवामहे ॥१ ॥

हम देवों में सर्वश्रेष्ठ इन्द्रदेव के निमित्त अत्यन्त दीप्तिमान् अग्नि में सुन्दर स्तुतियों के साथ आहुतियाँ समर्पित करते हैं । उन सनातन शक्ति सम्पन्न, कभी भी नष्ट न होने वाले, शत्रुनाशक तथा सोम से तृप्त इन्द्रदेव का तुम्हारे संरक्षण के लिए आवाहन करते हैं ॥१ ॥

२१६८. यस्मादिन्द्राद् बृहतः किं चनेमृते विश्वान्यस्मिन्त्सम्भृताधि वीर्या ।

जठरे सोमं तन्वी३ सहो महो हस्ते वज्रं भरति शीर्षणि क्रतुम् ॥२ ॥



इस विराट् संसार में इन्द्रदेव ही सबसे महान् हैं। वे पराक्रम से युक्त इन्द्रदेव उदर में सोमरस, शरीर में तेजस्वी बल, हाथ में वज्र तथा शिर में महान् ज्ञान धारण किए हुए हैं ॥२ ॥

२१६९. न क्षोणीभ्यां परिभ्वे त इन्द्रियं न समुद्रैः पर्वतैरिन्द्र ते रथः।
न ते वज्रमन्वश्नोति कश्चन यदाशुभिः पतसि योजना पुरु ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप जब अपने द्रुतगामी अश्वों के द्वारा अनेक योजन पार करते हैं, उस समय आपकी शक्ति को द्यावा-पृथिवी भी नहीं नाप सकती। हे इन्द्रदेव ! आपके रथ को पर्वत तथा समुद्र भी नहीं रोक सकते तथा कोई भी शक्तिशाली वीर आपके वज्र को नहीं रोक सकता ॥३ ॥

२१७०. विश्वे ह्यस्मै यजताय धृष्णवे क्रतुं भरन्ति वृषभाय सश्चते।
वृषा यजस्व हविषा विदुष्टरः पिबेन्द्र सोमं वृषभेण भानुना ॥४ ॥

शत्रुनाशक, पूज्य, बलशाली तथा स्तुत्य इन्द्रदेव के निमित्त सभी लोग यज्ञ करते हैं। हे यजमान ! तुम देवगणों को सोम रस प्रदान करने वाले तथा मेधावान् हो, अत: हविष्यान्न की आहुतियों सहित इन्द्रदेव की स्तुति करो। हे इन्द्रदेव ! आप बलशाली एवं तेजस्वी रूप में सोम रस का पान करें ॥४ ॥

२१७१. वृष्णः कोशः पवते मध्व ऊर्मिर्वृषभान्नाय वृषभाय पातवे।
वृषणाध्वर्यू वृषभासो अद्रयो वृषणं सोमं वृषभाय सुष्वति ॥५ ॥

तृप्तिकारक, बलवर्धक, अन्नयुक्त मधुर सोमरस की धारा बलशाली इन्द्रदेव के पान के लिए स्रवित होती है।अध्वर्युगण बलशाली इन्द्रदेव की तृप्ति के लिए सुदृढ़ पत्थरों में (पीसकर) पुष्टिकारक सोमरस तैयार करते हैं ॥५ ॥

२१७२. वृषा ते वज्र उत ते वृषा रथो वृषणा हरी वृषभाण्यायुधा।
वृष्णो मदस्य वृषभ त्वमीशिष इन्द्र सोमस्य वृषभस्य तृष्णुहि ॥६ ॥

हे शक्तिशाली इन्द्रदेव ! आपका वज्र, आपका रथ, आपके अश्व तथा आपके आयुध सभी शक्ति से भरपूर हैं। आप बलशाली आनन्द का स्वामित्व करते हैं, अत: बलयुक्त सोमरस का पान करके आप तृप्त हों ॥६ ॥

२१७३. प्र ते नावं न समने वचस्युवं ब्रह्मणा यामि सवनेषु दाधृषिः।
कुविन्नो अस्य वचसो निबोधिषदिन्द्रमुत्सं न वसुनः सिचामहे ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप शत्रुनाशक हैं। नाव के समान आप युद्ध में स्तोताओं का उद्धार करते हैं। यज्ञ स्थल में आपके स्तोत्रों का उच्चारण करते हुए हम जाते हैं। हे ऐश्वर्य के भण्डार इन्द्रदेव ! कुँए के समान हम सोमरस से आपको सींचते हैं। आप हमारी प्रार्थना को स्वीकारें ॥७ ॥

२१७४. पुरा सम्बाधादभ्या ववृत्स्व नो धेनुर्न वत्सं यवसस्य पिप्युषी ।
सकृत्सु ते सुमतिभिः शतक्रतो सं पत्नीभिर्न वृषणो नसीमहि ॥८ ॥

हे शतकर्मा इन्द्रदेव ! जिस प्रकार गाय घास खाने के बाद संतुष्ट होकर बछड़े को दूध पिलाने हेतु पहुँच जाती है, उसी प्रकार आप विपत्तियाँ आने से पूर्व ही हमारे पास पहुँचें। हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार पत्नियाँ पतियों को हर्षित करती हैं, उसी प्रकार हम उत्तम स्तोत्रों के द्वारा आपको प्रसन्न करेंगे ॥८ ॥

२१७५. नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! यज्ञ के समय आपके द्वारा स्तोताओं के लिए दी गयी ऐश्वर्ययुक्त दक्षिणा निश्चित ही उत्तम धन

प्राप्त कराती है । स्तोताओं के साथ हमें भी वह ऐश्वर्य युक्त दक्षिणा प्रदान करें । हम यज्ञ में महान् पराक्रम प्रदान करने वाले स्तोत्रों का उच्चारण करें ॥९ ॥

[सूक्त - १७]

[**ऋषि**- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । **देवता**- इन्द्र । **छन्द** - जगती , ८-९ त्रिष्टुप् ।]

२१७६. तदस्मै नव्यमङ्गिरस्वदर्चत शुष्मा यदस्य प्रत्नथोदीरते ।
विश्वा यद्गोत्रा सहसा परीवृता मदे सोमस्य दृंहितान्यैरयत् ॥१ ॥

इन इन्द्रदेव का पराक्रम आदि काल की तरह ही बढ़ रहा है । इन्द्रदेव ने सोमरस के पान से उत्साहित होकर शत्रुओं के सम्पूर्ण सुदृढ़ गढ़ों को अपने बल से ध्वस्त कर दिया था । हे स्तोताओ ! अंगिराओं की तरह उत्तम स्तुतियों द्वारा इन्द्रदेव की उपासना करो ॥१ ॥

२१७७. स भूतु यो ह प्रथमाय धायस ओजो मिमानो महिमानमातिरत् ।
शूरो यो युत्सु तन्वं परिव्यत शीर्षणि द्यां महिना प्रत्यमुञ्चत ॥२ ॥

जिन इन्द्रदेव ने सर्वप्रथम अपने बल को बढ़ाने के लिए सोम रस का पान किया था, उनका वह बल सदैव बना रहे । शत्रुनाशक इन्द्रदेव ने संग्राम में अपने शरीर पर कवच धारण किया और अपनी महानता से द्युलोक को अपने मस्तक पर धारण किया ॥२ ॥

२१७८. अधाकृणोः प्रथमं वीर्यं महद्यदस्याग्रे ब्रह्मणा शुष्ममैरयः ।
रथेष्ठेन हर्यश्वेन विच्युताः प्र जीरयः सिस्रते सध्र्यक् पृथक् ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! स्तोताओं की स्तुतियों से प्रसन्न होकर, शत्रुनाशक बल दिखाकर आपने महान् पराक्रम प्रकट किया । समर्थ घोड़ों वाले रथ में आरूढ़ आपके शत्रुनाशक स्वरूप को देखकर असुरों का समूह अलग-अलग होकर भाग गया ॥३ ॥

२१७९. अधा यो विश्वा भुवनाभि मज्मनेशानकृत्प्रवया अभ्यवर्धत ।
आद्रोदसी ज्योतिषा वह्निरातनोत्सीव्यन्तमांसि दुधिता समव्ययत् ॥४ ॥

सबसे उत्कृष्ट बलशाली होकर इन्द्रदेव ने अपने महान् पराक्रम से सभी भुवनों का विस्तार किया और सभी के अधिपति हुए । इसके बाद द्यावा-पृथिवी को अपने तेज से संव्याप्त किया तथा दूर-दूर तक फैले हुए अन्धकार को सूर्य की भाँति नष्ट किया ॥४ ॥

२१८०. स प्राचीनान्पर्वतान्दृंहदोजसाधराचीनमकृणोदपामपः ।
अधारयत्पृथिवीं विश्वधायसमस्तभ्नान्मायया द्यामवस्रसः ॥५ ॥

उन महान् इन्द्रदेव ने अपनी सामर्थ्य के द्वारा सभी को आश्रय प्रदान करने वाली पृथिवी को धारण किया तथा द्युलोक नीचे न गिरने पाये, इसके लिए थामे रखा । हिलने वाले पर्वतों को अपनी शक्ति से स्थिर किया तथा जल के प्रवाह को नीचे की ओर प्रवाहित किया ॥५ ॥

२१८१. सास्मा अरं बाहुभ्यां यं पिताकृणोद्विश्वस्मादा जनुषो वेदसस्परि ।
येना पृथिव्यां नि क्रिविं शयध्यै वज्रेण हत्व्यवृणक्तुविष्वणिः ॥६ ॥

सभी जन्मधारी जीवों के पालनकर्त्ता इन्द्रदेव ने अपने वज्र को सब प्रकार से समर्थ किया । विद्युत् के समान गर्जना करने वाले वज्र से इन्द्रदेव ने 'क्रिवि' नामक राक्षस को मारकर पृथ्वी पर सुला दिया । वह वज्र इन्द्रदेव की भुजाओं को सामर्थ्यवान् बनाये ॥६ ॥



२१८२. अमाजूरिव पित्रोः सचा सती समानादा सदसस्त्वामिये भगम्।
कृधि प्रकेतमुप मास्या भर दद्धि भागं तन्वो३येन मामहः ॥७॥

जिस प्रकार माता-पिता के साथ रहने वाली पुत्री अपने माता-पिता से ही आजीविका की याचना करती है, उसी प्रकार हे देव ! हम आप से ऐश्वर्य की याचना करते हैं। आप जिस ऐश्वर्य से स्तोताओं को महान् बनाते हैं, हमारे लिए वह उपयोगी अन्न तथा श्रेष्ठ धन प्रदान करें ॥७॥

२१८३. भोजं त्वामिन्द्र वयं हुवेम ददिष्ट्वमिन्द्रापांसि वाजान् ।
अविड्ढीन्द्र चित्रया न ऊती कृधि वृषन्निन्द्र वस्यसो नः ॥ ८ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप श्रेष्ठ कर्मा तथा अन्न के दाता हैं। हम लोग पालक के रूप में बार-बार आपका आवाहन करते हैं। आप रक्षा साधनों से युक्त होकर हमें संरक्षण प्रदान करें। हे कामनाओं की पूर्ति करने वाले इन्द्रदेव ! आप हमें ऐश्वर्यवान् बनायें ॥८॥

२१८४. नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥९॥

हे इन्द्रदेव ! यज्ञ के समय आपके द्वारा स्तोताओं के निमित्त दी गयी ऐश्वर्य युक्त दक्षिणा निश्चित रूप से धन प्रदान कराती है, अतः स्तोताओं के साथ हमें भी वह ऐश्वर्य युक्त दक्षिणा प्रदान करें, जिससे हम यज्ञ में महान् पराक्रम प्रदान करने वाले स्तोत्रों से स्तुतियाँ करें ॥९॥

[सूक्त - १८]

[ऋषि- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक। देवता- इन्द्र। छन्द - त्रिष्टुप्।]

२१८५. प्राता रथो नवो योजि सस्निश्चतुर्युगस्त्रिकशः सप्तरश्मिः।
दशारित्रो मनुष्यः स्वर्षाः स इष्टिभिर्मतिभी रंह्यो भूत् ॥१॥

प्रातः काल यह नया रथ (यज्ञ) नियोजित किया गया है। इसमें चार युग, तीन कोड़े, सात रश्मियाँ तथा दस चक्र हैं। यह इष्ट प्रयोजनों के लिए मति के अनुरूप गतिमान हो। यह मनुष्यों को स्वर्ग तक पहुँचाने वाला है ॥१॥

[यज्ञ (अग्नि) हव्य वहन करता है, इसलिए उसे रथ की संज्ञा भी दी जाती है। युग का अर्थ चारों युग भी हैं तथा अश्व जोड़ने वाले जुए भी। चार पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) इससे जुड़ते हैं। कोड़े की आवाज से अश्व चलते हैं, मंत्र ध्वनि से यज्ञ बढ़ता है। उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित तीन स्वरों से मंत्र कहे जाते हैं। रश्मियाँ किरणों को भी कहते हैं और अश्वनियंत्रक रस्सियों (लगामों) को भी। सात छन्दों को यज्ञ नियंत्रक रश्मि कहा जा सकता है। यज्ञ का चक्र दसों दिशाओं में गतिमान् रहता है। यह अद्भुत रथ स्वर्ग तक ले जाने की क्षमता रखता है।]

२१८६. सास्मा अरं प्रथमं स द्वितीयमुतो तृतीयं मनुषः स होता।
अन्यस्या गर्भमन्य ऊ जनन्त सो अन्येभिः सचते जेन्यो वृषा ॥२॥

यह रथ इन्द्रदेव को प्रथम, द्वितीय और तृतीय (अर्थात् प्रातः, सायं और मध्याह्न) तीनों सवनों में -यज्ञों में पहुँचाने में समर्थ है। यह रथ मनुष्यों की कामनाओं को पूरा करने वाला है। स्तोतागण एक दूसरे के साथ मिलकर ब्रह्माण्डव्यापी, बलशाली तथा अजेय उन इन्द्रदेव के अनुग्रह को प्राप्त करते हैं ॥२॥

२१८७. हरी नु कं रथ इन्द्रस्य योजमायै सूक्तेन वचसा नवेन।
मो षु त्वामत्र बहवो हि विप्रा नि रीरमन्यजमानासो अन्ये ॥३॥

इन्द्रदेव के सुखपूर्वक आवागमन के लिए उत्तम स्तुतियों के माध्यम से उनके रथ में दोनों घोड़ों को नियोजित किया गया है। हे इन्द्रदेव ! हमारे अतिरिक्त अन्य कोई भी मेधावी स्तोता आपको भली-भाँति तृप्त नहीं कर सकता ॥३ ॥

२१८८. आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र याह्या चतुर्भिरा षड्भिर्हूयमानः ।
आष्टाभिर्दशभिः सोमपेयमयं सुतः सुमख मा मृधस्कः ॥४ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमारे द्वारा आवाहित आप सोम-पान करने के लिए दो, चार, छः, आठ, दस घोड़ों से आयें। यह सोम रस आपके लिए शोधित किया गया है। आप इसका पान करें, इसके लिए युद्ध न करें ॥४ ॥

२१८९. आ विंशत्या त्रिंशता याह्यर्वाङा चत्वारिंशता हरिभिर्युजानः ।
आ पञ्चाशता सुरथेभिरिन्द्रा षष्ट्या सप्तत्या सोमपेयम् ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव आप सोमरस का पान करने के लिए रथ के योग्य बीस, तीस, चालीस, पचास, साठ तथा सत्तर घोड़ों को नियोजित करके हमारे पास आयें ॥५ ॥

२१९०. आशीत्या नवत्या याह्यर्वाङा शतेन हरिभिरुह्यमानः ।
अयं हि ते शुनहोत्रेषु सोम इन्द्र त्वाया परिषिक्तो मदाय ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपको आनन्दित करने के लिए सोमरस को सुन्दर पात्रों में रखा गया है, अतः आप अस्सी, नब्बे और सौ घोड़ों को अपने रथ में नियोजित करके हमारे पास आयें ॥६ ॥

२१९१. मम ब्रह्मेन्द्र याह्यच्छा विश्वा हरी धुरि धिष्वा रथस्य ।
पुरुत्रा हि विहव्यो बभूथास्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप बहुतों के द्वारा आमन्त्रित किये गये हैं, अतः हमारे स्तोत्रों को स्वीकार करके अपने रथ में सभी घोड़ों को नियोजित करके हमारे इस यज्ञ में आकर आनन्दित हों ॥७ ॥

['वीर्यं वा अश्वः' के अनुसार अश्व पराक्रम का पर्याय है। प्रार्थना की गयी है कि सोमपान से इन्द्र अपना पराक्रम सतत बढ़ाते हुए हमारे पास आयें। यह ऋचा अंक विद्या से भी जोड़ी जाती है।]

२१९२. न म इन्द्रेण सख्यं वि योषदस्मभ्यमस्य दक्षिणा दुहीत ।
उप ज्येष्ठे वरूथे गभस्तौ प्रायेप्राये जिगीवांसः स्याम ॥८ ॥

इन्द्रदेव के साथ हमारी मैत्री अटूट रहे। हम उनके उत्तम दाहिने हाथ के समीप रहें। इन्द्रदेव के द्वारा हमें सदैव दान मिलता रहे। इनके संरक्षण में हम प्रत्येक युद्ध में विजय प्राप्त करें ॥८ ॥

२१९३. नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! यज्ञ के समय आपके द्वारा स्तोताओं के निमित्त दी गयी ऐश्वर्य युक्त दक्षिणा निश्चित रूप से धन प्रदान कराती है, अतः स्तोताओं के साथ हमें भी वह ऐश्वर्य युक्त दक्षिणा प्रदान करें, जिससे हम यज्ञ में महान् पराक्रम प्रदान करने वाले स्तोत्रों से स्तुतियाँ करें ॥९ ॥

[सूक्त - १९]

[**ऋषि**- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक। **देवता**- इन्द्र। **छन्द** - त्रिष्टुप्।]

२१९४. अपाय्यस्यान्धसो मदाय मनीषिणः सुवानस्य प्रयसः ।
यस्मिन्निन्द्रः प्रदिवि वावृधान ओको दधे ब्रह्मण्यन्तश्च नरः ॥१ ॥



सोमरस को परिष्कृत करने वाले ज्ञानी यजमान के द्वारा आनन्द प्रदान करने के लिए दिये गये अन्न (आहार) को इन्द्रदेव ग्रहण करें, वे इन्द्रदेव तथा ज्ञानी यजमान उत्तम स्थान प्राप्त करें ॥१ ॥

२१९५. अस्य मन्दानो मध्वो वज्रहस्तोऽहिमिन्द्रो अर्णोवृतं वि वृश्चत्।
प्र यद्वयो न स्वसराण्यच्छा प्रयांसि च नदीनां चक्रमन्त ॥२ ॥

जिस प्रकार पक्षी अपने घोंसलों में जाते हैं, उसी प्रकार नदियों की धारायें प्रवाहित होती हैं ।ऐसे प्रवाहित सोमपान से आनन्दित इन्द्रदेव ने हाथ में वज्र धारण करके जल को रोकने वाले अहि नामक राक्षस को मारा था ॥२ ॥

२१९६. स माहिन इन्द्रो अर्णो अपां प्रैरयदहिहाच्छा समुद्रम्।
अजनयत्सूर्यं विदद्गा अक्तुनाह्नां वयुनानि साधत् ॥३ ॥

अहि नामक राक्षस को मारने वाले इन्द्रदेव ने अन्तरिक्ष के जल को सीधे समुद्र की ओर प्रवाहित किया, उन्हीं ने सूर्य तथा सूर्यरश्मियों को प्रकट किया, जिसके प्रकाश से दिन में होने वाले सभी कार्यों को हम करते हैं ॥३ ॥

२१९७. सो अप्रतीनि मनवे पुरूणीन्द्रो दाशद्दाशुषे हन्ति वृत्रम्।
सद्यो यो नृभ्यो अतसाय्यो भूत्पस्पृधानेभ्यः सूर्यस्य सातौ ॥४ ॥

जो इन्द्रदेव सूर्य के समान तेजस्वी स्वरूप प्राप्त करने के लिए सब दिन समान रूप से स्पर्धा करते हैं, वे इन्द्रदेव दानशील मनुष्यों के लिए श्रेष्ठ धनों के प्रदाता हैं। वे ही वृत्र राक्षस को मारते हैं ॥४ ॥

२१९८. स सुन्वत इन्द्रः सूर्यमा देवो रिणङ्मर्त्याय स्तवान्।
आ यद्रयिं गुहदवद्यमस्मै भरदंशं नैतशो दशस्यन् ॥५ ॥

जिस प्रकार पुत्र को पिता अपने धन का एक अंश देता है, उसी प्रकार जब इन्द्रदेव को दान दाता 'एतश' ने यज्ञ के समय अमूल्य तथा उत्तम धन प्रदान किया, तब पूज्य तथा तेजस्वी इन्द्रदेव ने यज्ञ की कामना वाले मनुष्यों के लिए सूर्य को प्रकाशित किया ॥५ ॥

२१९९. स रन्धयत्सदिवः सारथये शुष्णमशुषं कुयवं कुत्साय।
दिवोदासाय नवतिं च नवेन्द्रः पुरो व्यैरच्छम्बरस्य ॥६ ॥

उन तेजस्वी इन्द्रदेव ने सारथि कुत्स (कुत्साओं से समाज की रक्षा करने वालों) के निमित्त शुष्ण (शोषक), अशुष (निष्ठुर) कुयव (कुधान्य) नामक आसुरों का संहार किया तथा दिवोदास के निमित्त शम्बरासुर (अशान्ति पैदा करने वालों) के निन्यानवे नगरों को ध्वस्त किया ॥६ ॥

२२००. एवा त इन्द्रोचथमहेम श्रवस्या न त्मना वाजयन्तः।
अश्याम तत्साप्तमाशुषाणा ननमो वधरदेवस्य पीयोः ॥७ ॥

हे इन्द्रदेव ! हम अन्न और बल की कामना से आपकी स्तुतियाँ करते हैं। आपने देवों की अवमानना करने वाले तथा हिंसक दुष्टों के हिंसाकारी कृत्यों को नष्ट किया। हम आपसे परम मैत्री भाव बनाये रखें ॥७ ॥

२२०१. एवा ते गृत्समदाः शूर मन्मावस्यवो न वयुनानि तक्षुः।
ब्रह्मण्यन्त इन्द्र ते नवीय इषमूर्जं सुक्षितिं सुम्नमश्युः ॥८ ॥

हे शूरवीर इन्द्रदेव ! गृत्समदगण अपने उत्तम संरक्षण की कामना से आपकी उत्तम एवं मनोरम स्तोत्रों के

द्वारा स्तुतियाँ करते हैं ; उसी प्रकार नये ब्रह्मज्ञानी स्तोताजन भी उत्तम आश्रय, अन्न, बल और सुख की प्राप्ति के लिए स्तुतियाँ करते हैं ॥८ ॥

२२०२. नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! यज्ञ काल में आपके द्वारा दी गयी ऐश्वर्य युक्त दक्षिणा निश्चय ही स्तोताओं को धन प्राप्त कराती है, अतः हमें भी स्तोताओं के साथ वह ऐश्वर्य युक्त दक्षिणा दें, जिससे हम यज्ञ में महान् पराक्रम प्रदान करने वाले स्तोत्रों से आपकी स्तुतियाँ करें ॥९ ॥

[सूक्त - २०]

[**ऋषि**- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । **देवता**- इन्द्र । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

२२०३. वयं ते वय इन्द्र विद्धि षु णः प्र भरामहे वाजयुर्न रथम्।
विपन्यवो दीध्यतो मनीषा सुम्नमियक्षन्तस्त्वावतो नॄन् ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार अन्न की कामना वाले अपने रथ को अन्न से भरते हैं, उसी प्रकार हम स्तोताजन बुद्धि से तेजस्वी होते हुए आपसे सुख की कामना करते हुए आपके लिए हवि प्रदान करते हैं। हमारे इस कार्य को आप भली-भाँति जानें ॥१ ॥

२२०४. त्वं न इन्द्र त्वाभिरूती त्वायतो अभिष्टिपासि जनान्।
त्वमिनो दाशुषो वरूतेत्थाधीरभि यो नक्षति त्वा ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! जो आपको ही अपना इष्ट मानता है, उस दानशील मनुष्य के समीप आने पर आप हर प्रकार से उसकी रक्षा करते हैं। आप विपत्तियों से बचाने वाले तथा सत्यकर्मा, न्यायशील हैं, अतः आप अपने रक्षण साधनों से हमें संरक्षण प्रदान करें ॥२ ॥

२२०५. स नो युवेन्द्रो जोहूत्रः सखा शिवो नरामस्तु पाता।
यः शंसन्तं यः शशमानमूती पचन्तं च स्तुवन्तं च प्रणेषत् ॥३ ॥

स्तोत्रों का उच्चारण करने वाले, उत्तम निर्देश देने वाले, हविष्यान्न को तैयार करने वाले तथा स्तोता यजमानों को, जो अपने संरक्षण के द्वारा विपत्तियों से मुक्ति दिलाते हैं, ऐसे नित्य तरुण, मित्रवत् सदैव पास बुलाने योग्य तथा सुखस्वरूप इन्द्रदेव समस्त प्रजा सहित हमें संरक्षण प्रदान करें ॥३ ॥

२२०६. तमु स्तुष इन्द्रं तं गृणीषे यस्मिन्पुरा वावृधुः शाशदुश्च।
स वस्वः कामं पीपरदियानो ब्रह्मण्यतो नूतनस्यायोः ॥४ ॥

जिन इन्द्रदेव के आश्रय में स्तोतागण वृद्धि पाते रहे हैं और शत्रुओं का संहार करते रहें हैं, उन इन्द्रदेव का यशोगान हम स्तुतियों से करते हैं। वे स्तुत्य इन्द्रदेव नये यजमानों की धन की कामना को पूर्ण करते हैं ॥४ ॥

२२०७. सो अङ्गिरसामुचथा जुजुष्वान्ब्रह्मा तूतोदिन्द्रो गातुमिष्णन्।
मुष्णन्नुषसः सूर्येण स्तवानश्नस्य चिच्छिश्नथत्पूर्व्याणि ॥५ ॥

अंगिराओं की स्तुतियों को स्वीकारते हुए वे इन्द्रदेव श्रेष्ठ मार्गदर्शक के रूप में उनके ज्ञान में वृद्धि करते हैं। ये स्तुत्य इन्द्रदेव सूर्य को उदित करके उषा को हरते हुए 'अश्नासुर' (बहुत खाने वाले असुर अन्धकार या आलस्य) को नष्ट कर देते हैं ॥५ ॥



२२०८. स ह श्रुत इन्द्रो नाम देव ऊर्ध्वो भुवन्मनुषे दस्मतमः ।

अव प्रियमर्शसानस्य साह्वाञ्छिरो भरद्दासस्य स्वधावान् ॥६ ॥

तेजवान्, कीर्तिवान्, ख्यातिप्राप्त, अत्यन्त दर्शनीय तथा प्रिय इन्द्रदेव ज्ञानवान् स्तोताओं के संरक्षण के लिए सदैव तत्पर रहते हैं । शत्रुनाशक इन्द्रदेव ने संसार के अनिष्टकर्ता दास नामक असुर का सिर काटा ॥६ ॥

२२०९. स वृत्रहेन्द्रः कृष्णयोनीः पुरन्दरो दासी रैरयद्वि ।

अजनयन्मनवे क्षामपश्च सत्रा शंसं यजमानस्य तूतोत् ॥७ ॥

वृत्रहन्ता, शत्रुओं के दुर्गों को ढहाने वाले इन्द्रदेव ने कृष्ण दासों की (निकृष्ट) सेना का संहार किया । मनुष्य के लिए पृथिवी तथा जल को उत्पन्न किया । ऐसे महान् इन्द्रदेव यजमान की श्रेष्ठ कामनाओं को पूरा करें ॥७ ॥

२२१०. तस्मै तवस्य१ मनु दायि सत्रेन्द्राय देवेभिरर्णसातौ ।

प्रति यदस्य वज्रं बाह्वोर्धुर्हत्वी दस्यून्पुर आयसीर्नि तारीत् ॥८ ॥

उन इन्द्रदेव को देवताओं ने युद्ध में संगठित होकर निरन्तर बल प्रदान किया । इन्द्रदेव ने अपनी बलशाली भुजाओं में वज्र को धारण करके दुष्टों का संहार किया तथा उनके दुर्गम नगरों को भी ध्वस्त किया ॥८ ॥

२२११. नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।

शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥९ ॥

हे इन्द्रदेव ! आपके द्वारा यज्ञ काल में दी गयी ऐश्वर्ययुक्त दक्षिणा स्तोताओं को निश्चय ही धन प्राप्त कराती है । अतः हमें भी स्तोताओं के साथ वह ऐश्वर्य युक्त दक्षिणा दें, जिससे हम यज्ञ में महान् पराक्रम प्रदान करने वाले स्तोत्रों से आपकी स्तुतियाँ करें ॥९ ॥

[सूक्त - २१]

[**ऋषि-** गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । **देवता-** इन्द्र । **छन्द** - जगती, ६- त्रिष्टुप् ।]

२२१२. विश्वजिते धनजिते स्वर्जिते सत्राजिते नृजित उर्वराजिते ।

अश्वजिते गोजिते अब्जिते भरेन्द्राय सोमं यजताय हर्यतम् ॥१ ॥

हे याजको ! समस्त विश्व को जीतने वाले, धन की विजय करने वाले, संगठित रूप में विजय प्राप्त करने वाले, मनुष्यों को जीतने वाले, उर्वर भूमि को जीतने वाले, घोड़े तथा गौओं को जीतने वाले तथा जल तत्त्व को अपने वश में करने वाले पूज्य इन्द्रदेव के निमित्त तेजस्वी सोम प्रदान करो ॥१ ॥

२२१३. अभिभुवेऽभिभङ्गाय वन्वतेऽषाळ्हाय सहमानाय वेधसे ।

तुविग्रये वह्नये दुष्टरीतवे सत्रासाहे नम इन्द्राय वोचत ॥२ ॥

हे याजको ! सर्वव्यापक, प्रलयंकारी, ऐश्वर्य का यथोचित विभाजन करने वाले, अजेय शत्रुओं के आक्रमण को स्वयं झेलने वाले, विश्व के विधाता, पुष्टग्रीव, सम्पूर्ण जगत् को धारण करने वाले, अपार सामर्थ्य वाले तथा संगठित रूप से युद्ध करने वाले इन्द्रदेव का सदैव यशोगान करो ॥२ ॥

२२१४. सत्रासाहो जनभक्षो जनंसहश्च्यवनो युध्मो अनु जोषमुक्षितः ।

वृतंचयः सहुरिर्विक्ष्वारित इन्द्रस्य वोचं प्र कृतानि वीर्या ॥३ ॥

हे याजको ! मनुष्यों के हित के लिए संगठित रूप से लड़ने वाले, बलवानों के विजेता, शत्रु निवारक योद्धा,



प्रीतिपूर्वक सोमरस का पान करने वाले, शत्रुहन्ता तथा प्रजा पालक तेजस्वी इन्द्रदेव द्वारा किये गये महान् पराक्रमों का यशोगान करो ॥३ ॥

२२१५. **अनानुदो वृषभो दोधतो वधो गम्भीर ऋष्वो असमष्टकाव्यः ।**
रध्रचोदः श्नथनो वीळितस्पृथुरिन्द्रः सुयज्ञ उषसः स्वर्जनत् ॥४ ॥

हे याजको ! महादानी, बलशाली, दुर्धर्ष शत्रुओं के हन्ता, गम्भीर, सर्वज्ञाता, असाधारण कार्य कुशल, उत्तम कर्मों के प्रेरक, शत्रुओं की शक्ति को क्षीण करने वाले, परिपुष्ट अंगों वाले, श्रेष्ठकर्मा, महान् इन्द्रदेव ने अपनी सामर्थ्य से उषाओं तथा सूर्य को प्रकट किया है ॥४ ॥

२२१६. **यज्ञेन गातुमप्तुरो विविद्रिरे धियो हिन्वाना उशिजो मनीषिणः ।**
अभिस्वरा निषदा गा अवस्यव इन्द्रे हिन्वाना द्रविणान्याशत ॥५ ॥

शीघ्रता से कार्य करने वाले ज्ञानीजन, समृद्धि की कामना से श्रेष्ठ यज्ञीय कर्मों में स्तुतियाँ करते हुए योग्य मार्ग पा जाते हैं, और अपने संरक्षण की कामना से इन्द्रदेव की स्तुतियाँ करते हुए उनके समीप रहकर धन प्राप्त करते हैं ॥५ ॥

२२१७. **इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे ।**
पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव ! हमें श्रेष्ठ धन प्रदान करें । हमें चेतना युक्त सामर्थ्य तथा उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करें । हमें निरोग बनाते हुए ऐश्वर्य की वृद्धि करें । हमारी वाणी को मधुर तथा प्रत्येक दिन को उत्तम बनायें ॥६ ॥

[सूक्त - २२]

[**ऋषि**- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । **देवता**- इन्द्र । **छन्द** -१ अष्टि, २-३ अतिशक्वरी, ४- अष्टि अथवा अतिशक्वरी ।]

२२१८. **त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृपत्सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशत् ।**
स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥१॥

अत्यन्त बली पूजनीय इन्द्रदेव ने तीनों लोकों में व्याप्त, तृप्तिदायक, दिव्य सोम को जौ के सार भाग के साथ मिलाकर विष्णुदेव के साथ इच्छानुसार पान किया । उस (सोम) ने महान् इन्द्रदेव को श्रेष्ठ कार्य करने के लिये प्रेरित किया । उत्तम दिव्य गुणों से युक्त उस दिव्य सोमरस ने इन्द्रदेव को प्रसन्न किया ॥१ ॥

२२१९. **अध त्विषीमाँ अभ्योजसा क्रिविं युधाभवदा रोदसी अपृणदस्य मज्मना प्रवावृधे ।**
अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! अपनी सामर्थ्य से क्रिवि नामक असुर को आपने जीता और आकाश एवं पृथ्वी को तेज से परिपूर्ण कर दिया । आपने सोम के एक भाग को अपने उदर में धारण किया और दूसरा भाग देवों को दिया । सत्यस्वरूप दीप्तिमान् दिव्य सोम सत्यस्वरूप तेजस्वी इन्द्रदेव को पुष्ट करता है ॥२ ॥

२२२०. **साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ साकं वृद्धो वीर्यैः सासहिर्मृधो**
विचर्षणिः । दाता राधः स्तुवते काम्यं वसु सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप यज्ञ के साथ प्रकट हुए हैं । अपनी सामर्थ्य से विश्व का भार उठाने को लालायित रहते



हैं। हे ज्ञानी श्रेष्ठ इन्द्रदेव ! महान् पराक्रमी, शत्रु संहारक, विशिष्ट ज्ञानी आप स्तोताओं को अभीष्ट ऐश्वर्य देते हैं। सत्यस्वरूप दीप्तिमान् दिव्य सोम सत्य के ज्ञाता इन्द्रदेव को प्राप्त होता है ॥३ ॥

२२२१. तव त्यन्नर्यं नृतोऽप इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं दिवि प्रवाच्यं कृतम्।
यद्देवस्य शवसा प्रारिणा असुं रिणन्नपः।
भुवद्विश्वमभ्यादेवमोजसा विदादूर्जं शतक्रतुर्विदादिषम् ॥४ ॥

सभी को अपने अनुशासन में चलाने वाले हे इन्द्रदेव ! मानव मात्र के हितकारी, सबसे पहले किये गये आपके सबसे उत्कृष्ट कर्म स्वर्ग लोक में प्रशंसित हैं। अपनी शक्ति से आपने राक्षसों का संहार किया, असुरों को हराया तथा जल प्रवाहित किया। शतकर्मा (शतक्रत) इन्द्रदेव ने अन्न एवं बल प्राप्त किया ॥४ ॥

[सूक्त - २३]

[**ऋषि-** गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक। **देवता-** बृहस्पति; १-५, ९,११,१७,१९-ब्रह्मणस्पति। **छन्द** - जगती, १५,१९- त्रिष्टुप्।]

२२२२. गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ॥१ ॥

हे ब्रह्मणस्पतिदेव ! आप गणों के भी गणपति तथा कवियों में भी श्रेष्ठ कवि हैं। आप अनुपमेय, श्रेष्ठ तथा तेजस्वी मंत्रों के स्वामी हैं, अत: हम आपका आवाहन करते हैं। हमारी प्रार्थना को स्वीकार कर रक्षण साधनों सहित हमें संरक्षण प्रदान करें ॥१ ॥

२२२३. देवाश्चित्ते असुर्य प्रचेतसो बृहस्पते यज्ञियं भागमानशुः।
उस्राइव सूर्यो ज्योतिषा महो विश्वेषामिज्जनिता ब्रह्मणामसि ॥२ ॥

हे महाबली बृहस्पतिदेव ! सर्वोत्कृष्ट देवताओं ने आपके यज्ञीय भाग को प्राप्त किया था। जिस तरह महान् सूर्य तेजस्वी किरणों को पैदा करते हैं, उसी प्रकार आप सम्पूर्ण ज्ञान के प्रकाशक हैं ॥२ ॥

२२२४. आ विबाध्या परिरापस्तमांसि च ज्योतिष्मन्तं रथमृतस्य तिष्ठसि।
बृहस्पते भीममित्रदम्भनं रक्षोहणं गोत्रभिदं स्वर्विदम् ॥३ ॥

हे बृहस्पतिदेव ! पाप पूर्णकर्म करने वालों को तथा अज्ञानमय अन्धकार को विविध उपायों से नष्ट करके, दुष्ट पुरुषों को भय देने वाले, शत्रुओं के नाशक, राक्षसों का वध करने वाले, सुदृढ़ किलों को ध्वस्त करने वाले तथा यज्ञ के प्रकाशक और सुखदायी आप रथ में विराजमान होते हैं ॥३ ॥

२२२५. सुनीतिभिर्नयसि त्रायसे जनं यस्तुभ्यं दाशान्न तमंहो अश्नवत्।
ब्रह्मद्विषस्तपनो मन्युमीरसि बृहस्पते महि तत्ते महित्वनम् ॥४ ॥

हे बृहस्पतिदेव ! जो आपको हविष्यान्न समर्पित करता है, उसके श्रेष्ठ पथ प्रदर्शक बनकर आप उसे संरक्षण प्रदान करते हैं, उसे कभी पाप नहीं व्यापता। आप ज्ञान द्वेषियों को पीड़ित करने वाले तथा अभिमानियों के नाशक हैं। आपकी महान् महिमा अवर्णनीय है ॥४ ॥

२२२६. न तमंहो न दुरितं कुतश्चन नारातयस्तितिरुर्न द्वयाविनः।
विश्वा इदस्माद्ध्वरसो वि बाधसे यं सुगोपा रक्षसि ब्रह्मणस्पते ॥५ ॥

हे ब्रह्मणस्पतिदेव ! आप जिसे संरक्षण प्रदान करते हैं, उसे सम्पूर्ण हिंसक शक्तियों से बचाते हैं। उसके लिए पाप कर्म दु:खदायी नहीं होते, शत्रु भी उसे कष्ट नहीं पहुँचाते तथा कोई ठग भी उसे भ्रमित नहीं कर सकता ॥५ ॥



२२२७. त्वं नो गोपाः पथिकृद्विचक्षणस्तव व्रताय मतिभिर्जरामहे।
बृहस्पते यो नो अभि ह्वरो दधे स्वा तं मर्मर्तु दुच्छुना हरस्वती ॥६॥

हे बृहस्पतिदेव ! आप हमारे संरक्षक तथा मार्गदर्शक हैं । हे सर्वज्ञाता ! आपके नियमानुसार अनुगमन करने के लिए हम मन्त्रों सहित आपकी स्तुति करते हैं । हमारे प्रति जो भी कुटिलता का व्यवहार करे, उसे उसकी ही दुर्बुद्धि नष्ट कर दे ॥६॥

२२२८. उत वा यो नो मर्चयादनागसोऽरातीवा मर्तः सानुको वृकः।
बृहस्पते अप तं वर्तया पथः सुगं नो अस्यै देववीतये कृधि ॥७॥

हे बृहस्पतिदेव ! शत्रुवत् आचरण करने वाले तथा भेड़िये के समान हिंसक मनुष्य यदि हमें पीड़ित करें तो उन्हें हमारे मार्ग से हटा दें । देवत्व की प्राप्ति के लिए हमारे मार्ग को अपराध रहित बनाते हुए उसे सुगम करें ॥७॥

२२२९. त्रातारं त्वा तनूनां हवामहेऽवस्पर्तरधिवक्तारमस्मयुम्।
बृहस्पते देवनिदो नि बर्हय मा दुरेवा उत्तरं सुम्नमुन्नशन् ॥८॥

हे बृहस्पतिदेव ! आप शत्रुनाशक बल को विपत्तियों से पार करने वाले हैं । हम आपको अपने शरीरों के पालक मानते हैं, प्रिय गृहपति के रूप में स्वीकार करते हैं, अतः आपका आवाहन करते हैं । आप देवताओं की निन्दा करने वालों को नष्ट करें । दुष्ट आचरण वालों को सुख की प्राप्ति न हो, उनका नाश करें ॥८॥

२२३०. त्वया वयं सुवृधा ब्रह्मणस्पते स्पार्हा वसु मनुष्या ददीमहि।
या नो दूरे तळितो या अरातयोऽभि सन्ति जम्भया ता अनप्नसः ॥९॥

हे ब्रह्मणस्पतिदेव ! हम याजकगण आप से मनुष्यों के लिए हितकारी तथा चाहने योग्य उत्तम वृद्धिकारक धन की याचना करते हैं । हमारे पास, दूर तथा चारों ओर जो भी शत्रुरूप आघात करने वाले कर्महीन मनुष्य हैं, उन्हें नष्ट करें ॥९॥

२२३१. त्वया वयमुत्तमं धीमहे वयो बृहस्पते पप्रिणा सस्निना युजा।
मा नो दुःशंसो अभिदिप्सुरीशत प्र सुशंसा मतिभिस्तारिषीमहि ॥१०॥

हे वाणी के स्वामी बृहस्पतिदेव ! आप पवित्र आचारवान् तथा सभी ऐश्वर्यों से पूर्ण करने वाले हैं, हम आप से जुड़कर आयुष्य प्राप्त करें । दुराचारी तथा ठगने वाला हमारा अधिपति न हो । उत्तम बुद्धि के सहारे प्रशंसनीय रहते हुए हम संकटों को पार करें ॥१०॥

२२३२. अनानुदो वृषभो जग्मिराहवं निष्टप्ता शत्रुं पृतनासु सासहिः।
असि सत्य ऋणया ब्रह्मणस्पत उग्रस्य चिद्दमिता वीळुहर्षिणः ॥११॥

हे ब्रह्मणस्पतिदेव ! आपके समान दानदाता दूसरा कोई नहीं है । आप बलशाली, युद्ध में जाने वाले (योद्धा), शत्रुओं को पीड़ित करने वाले, युद्ध में शत्रुओं को पराजित करने वाले, ऋण मुक्त करने वाले, पराक्रम से युक्त, शत्रुओं का दमन करने वाले तथा न्यायशील हैं ॥११॥

२२३३. अदेवेन मनसा यो रिषण्यति शासामुग्रो मन्यमानो जिघांसति।
बृहस्पते मा प्रणक्तस्य नो वधो नि कर्म मन्युं दुरेवस्य शर्धतः ॥१२॥

हे बृहस्पतिदेव ! जो आसुरी वृत्ति के कारण हमारे लिए दुःख दायी है, निर्दयी है, अत्यन्त अहंकारी रूप में स्तोताओं का हनन करना चाहता है, उसके हथियार हमें स्पर्श न करें । कुमार्गगामी बलवान् व्यक्ति के क्रोध को हम नष्ट करें ॥१२॥



२२३४. भरेषु हव्यो नमसोपसद्यो गन्ता वाजेषु सनिता धनंधनम् ।

विश्वा इदर्यो अभिदिप्स्वो३ मृधो बृहस्पतिर्वि ववर्हा रथाँइव ॥१३ ॥

युद्ध में सहायता के लिए आदर-पूर्वक बुलाने योग्य बृहस्पतिदेव सभी प्रकार का ऐश्वर्य प्रदान करते हैं, वे स्तुत्य हैं । शत्रु सेनाओं को नष्ट करने की कामना वाले बृहस्पतिदेव शत्रु के रथों के समान ही हिंसक शत्रुओं का संहार करें ॥१३ ॥

२२३५. तेजिष्ठया तपनी रक्षसस्तप ये त्वा निदे दधिरे दृष्टवीर्यम् ।

आविस्तत्कृष्व यदसत्त उक्थ्यं१ बृहस्पते वि परिरापो अर्दय ॥१४ ॥

हे बृहस्पतिदेव ! आपके दृष्टिगोचर होने वाले पराक्रम की जो निन्दा करते हैं, आप उन दुष्ट प्रकृति वालों को अपने तेजस्वी ताप से पीड़ित करें । आपका पराक्रम सराहनीय है, उसे प्रकट करके चारों ओर व्याप्त शत्रुओं का संहार करें ॥१४ ॥

२२३६. बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद्द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु ।

यद्दीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ॥१५ ॥

हे ख्याति प्राप्त धर्मज्ञ बृहस्पति देव ! ज्ञानी जनों द्वारा सम्माननीय, मनुष्यों में तेजस्वी कर्म के रूप में प्रतिफलित होने वाले, देदीप्यमान सर्वोत्तम तथा अलौकिक ऐश्वर्य हमें प्रदान करें ॥१५ ॥

२२३७. मा नः स्तेनेभ्यो ये अभि द्रुहस्पदे निरामिणो रिपवोऽन्नेषु जागृधुः ।

आ देवानामोहते वि व्रयो हृदि बृहस्पते न परः साम्नो विदुः ॥१६ ॥

हे बृहस्पतिदेव ! जो द्रोही शत्रु आक्रमण करके अन्नादि पदार्थों की कामना करते हैं, देवगणों के प्रति द्वेष भाव रखते हैं तथा श्रेष्ठ सुखकारी वचन भी नहीं जानते, ऐसे चोर पुरुषों से हमें भय न हो ॥१६ ॥

२२३८. विश्वेभ्यो हि त्वा भुवनेभ्यस्परि त्वष्टाजनत्साम्नःसाम्नः कविः ।

स ऋणचिदृणया ब्रह्मणस्पतिर्द्रुहो हन्ता मह ऋतस्य धर्तरि ॥१७ ॥

हे ब्रह्मणस्पतिदेव ! प्रजापति ने आपको सम्पूर्ण भुवनों में सर्वश्रेष्ठ बनाया है, अत: आप प्रत्येक साम के ज्ञाता हैं । महान् यज्ञ के धारण कर्त्ता स्तोताओं को ऋण से मुक्ति दिलाकर, द्रोहकारियों का विनाश करते हैं ॥१७ ॥

२२३९. तव श्रिये व्यजिहीत पर्वतो गवां गोत्रमुदसृजो यदङ्गिरः ।

इन्द्रेण युजा तमसा परीवृतं बृहस्पते निरपामौब्जो अर्णवम् ॥१८ ॥

हे अंगिरावंशी बृहस्पतिदेव ! जब गौओं को पर्वतों ने छिपाया था और आपने उन गौओं को बाहर निकालकर आश्रय प्रदान किया था, तब इन्द्रदेव की मदद से वृत्र द्वारा रोके गये जल को बरसने के लिए आपने प्रेरित किया ॥१८ ॥

२२४०. ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व ।

विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१९ ॥

हे ब्रह्मणस्पतिदेव ! आप सम्पूर्ण जगत् के नियन्ता हैं । आप इस सूक्त के ज्ञाता हैं । देवगणों का संरक्षण जिन्हें प्राप्त होता है, उनका सब प्रकार से कल्याण होता है । आप हमारी सन्तति को परिपुष्ट बनायें, जिससे हम यज्ञ में सुसन्तति सहित आपकी महिमा का गायन कर सकें ॥१९ ॥



[सूक्त - २४]

[ऋषि- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक। देवता- ब्रह्मणस्पति; १, १० बृहस्पति; १२- इन्द्राब्रह्मणस्पती। छन्द - जगती; १२, १६ त्रिष्टुप्।]

२२४१. सेमामविड्डि प्रभृतिं य ईशिषेऽया विधेम नवया महा गिरा।
यथा नो मीढ्वान्त्स्तवते सखा तव बृहस्पते सीषधः सोत नो मतिम् ॥१॥

हे बृहस्पतिदेव ! आप सम्पूर्ण विश्व के स्वामी हैं, हम महान् स्तुतियों के द्वारा आपका यशोगान करते हैं, उन्हें ग्रहण करें। जो स्तोता आपकी मित्र भाव से स्तुतियाँ करते हैं, वे हमें सद्बुद्धि प्रदान करें ॥१॥

२२४२. यो नन्त्वान्यनमन्न्योजसोतादर्दर्मन्युना शम्बराणि वि।
प्राच्यावयदच्युता ब्रह्मणस्पतिरा चाविशद्वसुमन्तं वि पर्वतम् ॥२॥

ब्रह्मणस्पतिदेव ने अपनी सामर्थ्य से दण्डित करने योग्य शत्रुओं को दबाया, मन्यु के द्वारा शम्बर को विदीर्ण किया, न गिरने वाले (जल) को गिराया तथा जहाँ गौएँ छिपी थीं, उस पर्वत में प्रवेश किया ॥२॥

२२४३. तद्देवानां देवतमाय कर्त्वमश्रथ्नन्दृळ्हाव्रदन्त वीळिता।
उद्गा आजदभिनद्ब्रह्मणा वलमगूहत्तमो व्यचक्षयत्स्वः ॥३॥

देवों में सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मणस्पतिदेव के कर्तृत्व से सुदृढ़ किले भी शिथिल हो जाते हैं तथा बलशाली भी नम्र होकर झुक जाते हैं। ब्रह्मणस्पतिदेव ने मंत्र शक्ति के द्वारा बलासुर को मारकर गौओं को मुक्त कराया। सूर्यदेव को प्रकट करके अन्धकार को नष्ट किया ॥३॥

२२४४. अश्मास्यमवतं ब्रह्मणस्पतिर्मधुधारमभि यमोजसातृणत्।
तमेव विश्वे पपिरे स्वर्दृशो बहु साकं सिसिचुरुत्समुद्रिणम् ॥४॥

ब्रह्मणस्पतिदेव ने पत्थर जैसे दृढ़ मुखवाले मधुर धाराओं से युक्त मेघ को बल प्रयोग द्वारा बरसने के लिए प्रेरित किया। वृष्टि के जल का पान सूर्य रश्मियों ने किया तथा प्रचुर जलधारा के रूप में (धरती पर) बरसाया ॥ ४ ॥

२२४५. सना ता का चिद्भुवना भवीत्वा माद्भिः शरद्भिर्दुरो वरन्त वः।
अयतन्ता चरतो अन्यदन्यदिद्या चकार वयुना ब्रह्मणस्पतिः ॥५॥

हे ऋत्विजो ! ब्रह्मणस्पतिदेव ने तुम्हारे लिए ही अनादि काल से प्रत्येक माह और प्रत्येक वर्ष, वर्षा के लिए मेघों को प्रेरित किया। इस प्रकार द्यावा-पृथिवी दोनों परस्पर जल का उपभोग करते हैं ॥५॥

२२४६. अभिनक्षन्तो अभि ये तमानशुर्निधिं पणीनां परमं गुहा हितम्।
ते विद्वांसः प्रतिचक्ष्यानृता पुनर्यत उ आयन्तदुदीयुराविशम् ॥६॥

'पणियों' के द्वारा गुहा में छिपाये गये श्रेष्ठ धन को चारों ओर खोज कर देवगणों ने प्राप्त किया। यज्ञीय कार्य में विघ्न पैदा करने वाले राक्षस उस दिव्य ऐश्वर्य को देखकर, जिस स्थान से आये थे, वापस लौट गये ॥६॥

२२४७. ऋतावानः प्रतिचक्ष्यानृता पुनरात आ तस्थुः कवयो महस्पथः।
ते बाहुभ्यां धमितमग्निमश्मनि नकिः षो अस्त्यरणो जहुर्हि तम् ॥७॥

सर्वज्ञाता तथा सत्यवादियों ने माया की शक्तियों को देखा। वे वहाँ से हटकर विवेक पूर्वक महान् कार्यों के पथ पर चल पड़े। यज्ञीय कार्य के निमित्त उत्पन्न की गयी अग्नि को वहीं (पर्वत में ही) छोड़ दिया ॥७॥



२२४८. ऋतज्येन क्षिप्रेण ब्रह्मणस्पतिर्यत्र वष्टि प्र तदश्नोति धन्वना ।
तस्य साध्वीरिषवो याभिरस्यति नृचक्षसो दृशये कर्णयोनय: ॥८ ॥

ब्रह्मणस्पतिदेव के पास सुगमता से खिंचने वाली डोरी वाला (बुद्धि रूपी) एक उत्तम धनुष है, जिससे वे (ज्ञानरूपी) बाणों को जहाँ (बुद्धिमान जनों के कानों तक) वे चाहते हैं, पहुँचा देते हैं । इससे वे मनुष्यों के सभी संकटों और दुष्ट भावों को उखाड़ फेंकते हैं ॥८ ॥

२२४९. स संनय: स विनय: पुरोहित: स सुष्टुत: स युधि ब्रह्मणस्पति: ।
चाक्ष्मो यद्वाजं भरते मती धनादित्सूर्यस्तपति तप्यतुर्वृथा ॥९ ॥

वे स्तुत्य ब्रह्मणस्पतिदेव युद्ध में अग्रणी होकर संगठित रूप से आक्रमण करते हैं । सर्वदर्शी ब्रह्मणस्पतिदेव जब अन्न और धन को धारण करते हैं, तब स्वाभाविक रूप से सूर्य उदित हो जाता है ॥९ ॥

२२५०. विभु प्रभु प्रथमं मेहनावतो बृहस्पते: सुविदत्राणि राध्या ।
इमा सातानि वेन्यस्य वाजिनो येन जना उभये भुञ्जते विश: ॥१० ॥

व्यापक सामर्थ्य प्रदान करने वाला, सब प्रकार सुखदायी, सिद्धिदायी यह धन महाबलशाली बृहस्पतिदेव ने सबके द्वारा चाहे जाने पर बरसाया है । जिसका भोग दोनों प्रकार की (ज्ञानी और अज्ञानी) प्रजायें करती हैं ॥१० ॥

२२५१. योऽवरे वृजने विश्वथा विभुर्महामु रण्व: शवसा ववक्षिथ ।
स देवो देवान्प्रति पप्रथे पृथु विश्वेदु ता परिभूर्ब्रह्मणस्पति: ॥११ ॥

सर्वव्यापी, आनन्ददायी ब्रह्मणस्पतिदेव प्रत्येक युद्ध में अपनी सामर्थ्य से अपनी महत्ता को प्रकट करते हैं । सभी देवों से श्रेष्ठ ब्रह्मणस्पतिदेव समस्त विश्व में संव्याप्त रहते हैं ॥११ ॥

२२५२. विश्वं सत्यं मघवाना युवोरिदापश्चन प्र मिनन्ति व्रतं वाम् ।
अच्छेन्द्राब्रह्मणस्पती हविर्नोऽन्नं युजेव वाजिना जिगातम् ॥१२ ॥

हे ऐश्वर्यसम्पन्न इन्द्रदेव और हे ब्रह्मणस्पतिदेव !आप दोनों सत्यव्रत धारी हैं । आप दोनों के कर्तव्य और नियम अडिग हैं ।जुए में जुड़े अश्वों के समान आप दोनों हमारे हविष्यान्न को ग्रहण करने के लिए (यज्ञ स्थल में) आयें ॥१२ ॥

२२५३. उताशिष्ठा अनु शृण्वन्ति वह्नय: सभेयो विप्रो भरते मती धना ।
वीळुद्वेषा अनु वश ऋणमाददि: स ह वाजी समिथे ब्रह्मणस्पति: ॥१३ ॥

युद्ध में बलशाली ब्रह्मणस्पतिदेव सभ्य ज्ञानी जनों के उत्तम धन को ही स्वीकार करते हैं और बलशाली शत्रुओं से द्वेष करते हैं । द्रुतगति से जाने वाले अश्व भी (उनकी बात) सुनते हैं । वे ऋण से उऋण करते हैं ॥१३ ॥

२२५४. ब्रह्मणस्पतेरभवद्यथावशं सत्यो मन्युर्महि कर्मा करिष्यत: ।
यो गा उदाजत्स दिवे वि चाभजन्महीव रीति: शवसासरत्पृथक् ॥१४ ॥

महान् कार्य में निरत ब्रह्मणस्पतिदेव का कार्य उनकी अभिलाषा के अनुसार सफल होता है । ब्रह्मणस्पतिदेव ने गौओं को बाहर निकाल कर विजय प्राप्त की । सतत प्रवाहित नदियों की भाँति ये गौएँ स्वतंत्र रूप से चली गयीं ॥१४ ॥

२२५५. ब्रह्मणस्पते सुयमस्य विश्वहा राय: स्याम रथ्यो३ वयस्वत: ।
वीरेषु वीराँ उप पृङ्धि नस्त्वं यदीशानो ब्रह्मणा वेषि मे हवम् ॥१५ ॥

हे ब्रह्मणस्पतिदेव ! हम सभी व्रतों के पालक तथा अन्न युक्त धन के सदैव अधिपति रहें । आप सभी के नियन्ता हैं, अतः ज्ञान पूर्वक की गयी हमारी स्तुतियों को स्वीकार करके हमें पराक्रमी सन्तति प्रदान करें ॥१५ ॥

२२५६. ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व ।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१६ ॥

हे संसार के नियन्ता ब्रह्मणस्पतिदेव ! देवगण जिसे अपना संरक्षण प्रदान करते हैं, उसका हर प्रकार से कल्याण होता है; अतः आप हमारे सूक्त को जानकर हमारे पुत्रों को परिपुष्ट बनायें, ताकि उत्तम सन्तति से युक्त होकर हम यज्ञ में आपकी महिमा का गान कर सकें ॥१६ ॥

[सूक्त - २५]

[**ऋषि**- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । **देवता**- ब्रह्मणस्पती । **छन्द** - जगती ।]

२२५७. इन्धानो अग्निं वनवद्वनुष्यतः कृतब्रह्मा शूशुवद्रातहव्य इत् ।
जातेन जातमति स प्र सर्सृते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥१ ॥

जिसे ब्रह्मणस्पतिदेव सखा बना लेते हैं, वह अग्नि को प्रज्वलित करके शत्रुओं का संहार करने में समर्थ होता है तथा ज्ञानवान् बनकर हवि प्रदान करके समृद्धि प्राप्त करता है । पुत्र- पौत्रों, से उसकी वृद्धि होती है ॥१ ॥

२२५८. वीरेभिर्वीरान्वनवद्वनुष्यतो गोभी रयिं पप्रथद्बोधति त्मना ।
तोकं च तस्य तनयं च वर्धते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥२ ॥

जिस यजमान को ब्रह्मणस्पतिदेव अपने सखा रूप में स्वीकार कर लेते हैं, वह अपने बलशाली पुत्रों के द्वारा हिंसक शत्रु के वीर पुत्रों को मारता है । वह गोधन से समृद्ध होता हुआ ज्ञानवान् बनता है । ब्रह्मणस्पतिदेव उसे पुत्र-पौत्रों से समृद्ध बनाते हैं ॥२ ॥

२२५९. सिन्धुर्न क्षोदः शिमीवाँ ऋघायतो वृषेव वध्रीँरभि वष्ट्योजसा ।
अग्नेरिव प्रसितिर्नाह वर्तवे यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥३ ॥

जिस यजमान को ब्रह्मणस्पतिदेव अपने सखा रूप में स्वीकार कर लेते हैं, वह जिस प्रकार नदी तटबन्ध को तोड़ती है, साँड, बैल को पराजित करता है, उसी तरह अपनी सामर्थ्य से हिंसक शत्रुओं को पराजित करता है । ऐसा यजमान अग्नि की ज्वालाओं के समान किसी से रोका नहीं जा सकता ॥३ ॥

२२६०. तस्मा अर्षन्ति दिव्या असश्चतः स सत्वभिः प्रथमो गोषु गच्छति ।
अनिभृष्टतविषिर्हन्त्योजसा यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥४ ॥

जिस यजमान को ब्रह्मणस्पतिदेव अपने सखा के रूप में स्वीकार कर लेते हैं, उसे दैवी सामर्थ्य सतत मिलती रहती है । वह सत्यनिष्ठ व्यक्तियों के साथ सबसे पहले गोधन प्राप्त करता है । युद्ध में शत्रुओं का संहार करते हुए सदैव अजेय रहता है ॥४ ॥

२२६१. तस्मा इद्विश्वे धुनयन्त सिन्धवोऽच्छिद्रा शर्म दधिरे पुरूणि ।
देवानां सुम्ने सुभगः स एधते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥५ ॥

जिस यजमान को ब्रह्मणस्पतिदेव अपने सखा के रूप में स्वीकार कर लेते हैं, सारी नदियों का प्रवाह उसके



अनुकूल होता है । वह सतत अनेकानेक सुखों का भोग करता है । वह सौभाग्यशाली यजमान देवों के द्वारा प्रदत्त सुख तथा समृद्धि प्राप्त करता है ॥५ ॥

[सूक्त - २६]

[**ऋषि-** गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । **देवता-** ब्रह्मणस्पती । **छन्द** - जगती ।]

२२६२. ऋजुरिच्छंसो वनवद्वनुष्यतो देवयन्निददेवयन्तमभ्यसत् ।
सुप्रावीरिद्वनवत्पृत्सु दुष्टरं यज्वेदयज्योर्वि भजाति भोजनम् ॥१ ॥

ब्रह्मणस्पतिदेव की स्तुति करने वाले सज्जन स्तोता ही देवगणों का पूजन करते हैं तथा देवगणों को न मानने वालों एवं हिंसकों का संहार करते हैं । उत्तम संरक्षण प्रदान करने वाले वे ब्रह्मणस्पतिदेव युद्ध में दुर्धर्ष शत्रुओं को मारते हैं । याज्ञिक (श्रेष्ठ कार्य करने वाले) ही यज्ञ न करने वाले (कुसंगी) व्यक्तियों के ऐश्वर्य का उपभोग करते हैं ॥१ ॥

२२६३. यजस्व वीर प्र विहि मनायतो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये ।
हविष्कृणुष्व सुभगो यथाससि ब्रह्मणस्पतेरव आ वृणीमहे ॥२ ॥

हे मनुष्यो ! यज्ञ के द्वारा अहंकारी शत्रुओं का विनाश करो । विघ्नों को नष्ट करने के लिए मंगलमय विचारों से जुड़कर ब्रह्मणस्पतिदेव के संरक्षण की कामना से हविष्यान्न तैयार करो, जिससे सौभाग्यशाली बन सको ॥२ ॥

२२६४. स इज्जनेन स विशा स जन्मना स पुत्रैर्वाजं भरते धना नृभिः ।
देवानां यः पितरमाविवासति श्रद्धामना हविषा ब्रह्मणस्पतिम् ॥३ ॥

जो याजक श्रद्धाभावना से देवों के पालनकर्त्ता ब्रह्मणस्पतिदेव को हव्य समर्पित करता है, वह व्यक्तियों द्वारा, समाज द्वारा तथा सन्तति द्वारा ऐश्वर्य की प्राप्ति करता है और मनुष्य मात्र का सहयोग पाता है ॥३ ॥

२२६५. यो अस्मै हव्यैर्घृतवद्भिरविधत्प्र तं प्राचा नयति ब्रह्मणस्पतिः ।
उरुष्यतीमंहसो रक्षती रिषोंऽहोश्चिदस्मा उरुचक्रिरद्भुतः ॥४ ॥

जो याजक यज्ञ में ब्रह्मणस्पतिदेव के निमित्त घृत युक्त हव्य से आहुतियाँ समर्पित करता है, उसे ब्रह्मणस्पतिदेव उत्तम संरक्षण प्रदान करते हैं, पाप से बचाते हैं, दारिद्र्य आदि कष्ट से रक्षा करते हैं और देवत्व के मार्ग में बढ़ाते हुए अद्‌भुत महान् बना देते हैं ॥४ ॥

[सूक्त - २७]

[**ऋषि-** कूर्म गार्त्समद अथवा गृत्समद । **देवता-** आदित्यगण । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

२२६६. इमा गिर आदित्येभ्यो घृतस्नूः सनाद्राजभ्यो जुह्वा जुहोमि ।
शृणोतु मित्रो अर्यमा भगो नस्तुविजातो वरुणो दक्षो अंशः ॥१ ॥

तेजस्वी आदित्यगण के लिए जुहू पात्र द्वारा घृत का सिंचन करते हुए हम स्तुतियाँ करते हैं । मित्रदेव, अर्यमादेव, भगदेव, सर्वव्यापी वरुणदेव, दक्ष तथा अंश आदि देवगण हमारी स्तुतियों को ग्रहण करें ॥१ ॥

२२६७. इमं स्तोमं सक्रतवो मे अद्य मित्रो अर्यमा वरुणो जुषन्त ।
आदित्यासः शुचयो धारपूता अवृजिना अनवद्या अरिष्टाः ॥२ ॥

कुटिलता से रहित, अनिन्दित आचार वाले, हिंसा न करने वाले व हिंसित न होने वाले यशस्वी आदित्यगण तथा मित्र, वरुण और अर्यमा देवगण हमारे स्नेह युक्त स्तोत्रों को आज श्रवण करें ॥२ ॥

२२६८. त आदित्यास उरवो गभीरा अदब्धासो दिप्सन्तो भूर्यक्षाः ।
अन्तः पश्यन्ति वृजिनोत साधु सर्वं राजभ्यः परमा चिदन्ति ॥३ ॥

महान् गंभीर, दमन करने में समर्थ, दुष्टों को दण्ड देने वाले, हजारों आँखों वाले, आदित्य देव समस्त प्राणियों के अन्तःकरण की कुटिलता व सज्जनता को देखते हैं । इनके लिए दूर में स्थित पदार्थ भी निकट ही हैं ॥३ ॥

२२६९. धारयन्त आदित्यासो जगत्स्था देवा विश्वस्य भुवनस्य गोपाः ।
दीर्घाधियो रक्षमाणा असुर्यमृतावानश्चयमाना ऋणानि ॥४ ॥

स्थावर-जंगम सभी को धारण करते हुए ये आदित्यगण सम्पूर्ण संसार की रक्षा करते हैं ।विशाल बुद्धि वाले ये देवगण सत्य मार्ग पर चलने वाले स्तोताओं के ऋणों को दूर करते तथा अन्न, जल और धन की रक्षा करते हैं ॥४ ॥

२२७०. विद्यामादित्या अवसो वो अस्य यदर्यमन्भय आ चिन्मयोभु ।
युष्माकं मित्रावरुणा प्रणीतौ परि श्वभ्रेव दुरितानि वृज्याम् ॥५ ॥

हे आदित्यगण ! किसी भी प्रकार का संकट आने पर हम आपका सुखदायी संरक्षण प्राप्त करें । हे अर्यमा, मित्र तथा वरुणदेवो ! गड्ढे वाली उबड़-खाबड़ जमीन की भाँति हम पाप कर्मों को छोड़ दें ॥५ ॥

२२७१. सुगो हि वो अर्यमन्मित्र पन्था अनृक्षरो वरुण साधुरस्ति ।
तेनादित्या अधि वोचता नो यच्छता नो दुष्परिहन्तु शर्म ॥६ ॥

हे अर्यमादेव, मित्रदेव तथा वरुण देव ! आप हमें विघ्नों से रहित, सरल तथा सुगमता से जाने योग्य मार्ग से ले चलें । हे आदित्यगण ! आप हमें सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हुए कभी नष्ट न होने वाला सुख प्रदान करें ॥६ ॥

२२७२. पिपर्तु नो अदिती राजपुत्राति द्वेषांस्यर्यमा सुगेभिः ।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य शर्मोप स्याम पुरुवीरा अरिष्टाः ॥७ ॥

हे तेजस्वी पुत्रों वाली (देवों की माता) अदिति तथा अर्यमादेव ! हमें द्वेषकारी शत्रुओं को लाँघकर जाने का सुगम मार्ग दिखायें । हम मित्रदेव तथा वरुणदेव के संरक्षण में शत्रुओं से पीड़ित न होते हुए सुसन्तति सहित महान् सुख की प्राप्ति करें ॥७ ॥

२२७३. तिस्रो भूमीर्धारयन् त्रीँरुत द्यून्त्रीणि व्रता विदथे अन्तरेषाम् ।
ऋतेनादित्या महि वो महित्वं तदर्यमन्वरुण मित्र चारु ॥८ ॥

ये आदित्यगण तीन भूमियों (द्युलोक, पृथिवी लोक तथा अन्तरिक्ष लोक) को तीन प्रकाशों (अग्नि, विद्युत् और सूर्य) सहित धारण करते हैं । ये सभी यज्ञीय व्रतों (अनुशासनों) के पालक हैं । हे आदित्यगण ! आप लोगों की महान् सामर्थ्य यज्ञ पर ही आधारित है । हे मित्र, वरुण और अर्यमा देवो ! आपकी महानता सर्वश्रेष्ठ है ॥८ ॥

२२७४. त्री रोचना दिव्या धारयन्त हिरण्ययाः शुचयो धारपूताः ।
अस्वप्नजो अनिमिषा अदब्धा उरुशंसा ऋजवे मर्त्याय ॥९ ॥

सुवर्णालंकारों से अलंकृत, तेजवान्, परम पवित्र, निद्रारहित, आँख न झपकने वाले, यशस्वी, हिंसा रहित तथा मनुष्यों के हितकारी आदित्यगण तीनों दिव्य (अग्नि, वायु तथा सूर्य) शक्तियों को, धर्म मार्ग पर चलने वाले मनुष्यों के लिए धारण करते हैं ॥९ ॥



२२७५. त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा ये च देवा असुर ये च मर्ताः ।
शतं नो रास्व शरदो विचक्षेऽश्यामायूंषि सुधितानि पूर्वा ॥१० ॥

हे मादक पदार्थों से रहित वरुण देव ! आप देवता तथा मनुष्य सभी के राजा हैं । हमें इस संसार को भली-भाँति देखने के लिए सौ वर्ष की आयु प्रदान करें ॥१० ॥

२२७६. न दक्षिणा वि चिकिते न सव्या न प्राचीनमादित्या नोत पश्चा ।
पाक्या चिद्वसवो धीर्या चिद्युष्मानीतो अभयं ज्योतिरश्याम् ॥११ ॥

हे आदित्यगण ! हम आगे, पीछे, बायें, दायें क्या है, यह नहीं जानते ? सबके आश्रयदाता आदित्यगण ! हम परिपक्व बुद्धि तथा धैर्यवान् होकर आपके द्वारा दिखाये गये पथ में चलते हुए भय रहित ज्योति प्राप्त कर सकें ॥११ ॥

२२७७. यो राजभ्य ऋतनिभ्यो ददाश यं वर्धयन्ति पुष्टयश्च नित्याः ।
स रेवान्याति प्रथमो रथेन वसुदावा विदथेषु प्रशस्तः ॥१२ ॥

जो तेजस्वी याजकों को धन प्रदान करता है, जो सदैव समृद्धिशाली रूप में वृद्धि पाता है, वह स्तुत्य, धन प्रदाता धनिक रथ में प्रतिष्ठित रथी के समान श्रेष्ठ कार्यों में सदैव अग्रणी रहता है ॥१२ ॥

२२७८. शुचिरपः सूयवसा अदब्ध उप क्षेति वृद्धवयाः सुवीरः ।
नकिष्टं घ्नन्त्यन्तितो न दूराद्य आदित्यानां भवति प्रणीतौ ॥१३ ॥

जो आदित्यगणों का पथानुगामी होता है, वह दीप्तिमान्, हिंसा रहित, उत्तम संतति से युक्त, दीर्घायु, पोषक अन्न तथा श्रेष्ठ कर्मों को प्राप्त करता है । उसका समीप से या दूर से कोई शत्रु वध नहीं कर सकता ॥१३ ॥

२२७९. अदिते मित्र वरुणोत मृळ यद्वो वयं चकृमा कच्चिदागः ।
उर्वश्यामभयं ज्योतिरिन्द्र मा नो दीर्घा अभि नशन्तमिस्राः ॥१४ ॥

हे अदिति, मित्र तथा वरुण देवो ! यदि हमसे कोई अपराध भी बन पड़े तो भी आप हमें क्षमा करें । हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! दीर्घ अन्धकार हमें न व्याप्त करे, अतः विस्तीर्ण तथा अभय ज्योति हमें प्रदान करें ॥१४ ॥

२२८०. उभे अस्मै पीपयतः समीची दिवो वृष्टिं सुभगो नाम पुष्यन् ।
उभा क्षयावाजयन्याति पृत्सूभावर्धौ भवतः साधू अस्मै ॥१५ ॥

(जो व्यक्ति आदित्यगणों का अनुगमन करता है ।) उसे द्युलोक तथा पृथिवी लोक दोनों परिपुष्ट बनाते हैं । द्युलोक से हुई ऐश्वर्य वृष्टि को वह सौभाग्यशाली प्राप्त करता है । वह युद्ध में शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता हुआ दोनों लोकों में जाता है तथा दोनों लोक उसके लिए मंगलदायी होते हैं ॥१५ ॥

२२८१. या वो माया अभिद्रुहे यजत्राः पाशा आदित्या रिपवे विचृत्ताः ।
अश्वीव ताँ अति येषं रथेनारिष्टा उरावा शर्मन्त्स्याम ॥१६ ॥

हे आदित्यगण ! जिस तरह घुड़सवार कठिन रास्ते को सुगमता से पार करता है, उसी तरह शत्रुओं के लिए आपके द्वारा बनाये गये पाशों को हम सरलता से लाँघ जायें । हम निर्विघ्न सुखमय विशाल गृह में निवास करें ॥१६ ॥

२२८२. माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः ।
मा रायो राजन्त्सुयमादव स्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१७ ॥



हे वरुणदेव ! सबको सन्तुष्ट करने वाले ऐश्वर्यवान् दानदाता की सुख-समृद्धि से कभी ईर्ष्या न करें, उसे बन्धुवत् मानें । हे वरुण देव ! आवश्यक धन प्राप्त होने पर हम अहंकारी न बनें, श्रेष्ठ सन्तति सहित यज्ञ में देवों की स्तुतियाँ करें ॥१७ ॥

[सूक्त - २८]

[**ऋषि**- कूर्म गार्त्समद अथवा गृत्समद । **देवता**- वरुण (१० दु:स्वप्ननाशिनी) । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

२२८३. इदं कवेरादित्यस्य स्वराजो विश्वानि सान्त्यभ्यस्तु मह्ना ।
अति यो मन्द्रो यजथाय देवः सुकीर्तिं भिक्षे वरुणस्य भूरेः ॥१ ॥

स्वयं प्रकाशित होने वाले आदित्यगण अपनी सामर्थ्य से सभी विनाशकारी शक्तियों को दूर करें, ये स्तोत्र उन दूरदर्शी आदित्यगण के लिए हैं । याज्ञिकों के लिए अत्यन्त सुखदायी, पोषणकारी वरुणदेव की स्तुतियों के द्वारा हम प्रार्थना करते हैं ॥१ ॥

२२८४. तव व्रते सुभगासः स्याम स्वाध्यो वरुण तुष्टुवांसः ।
उपायन उषसां गोमतीनामग्नयो न जरमाणा अनु द्यून् ॥२ ॥

हे वरुणदेव ! आपका अनुगमन करते हुए हम सौभाग्यशाली बनें । किरण युक्त उषा के समय प्रतिदिन आपकी स्तुतियाँ करते हुए हम स्तोताजन श्रेष्ठ बुद्धि से युक्त होकर अग्नि के समान तेजस्वी बनें ॥२ ॥

२२८५. तव स्याम पुरुवीरस्य शर्मन्नुरुशंसस्य वरुण प्रणेतः ।
यूयं नः पुत्रा अदितेरदब्धा अभि क्षमध्वं युज्याय देवाः ॥३ ॥

हे श्रेष्ठनायक वरुणदेव ! आप बहुतों के द्वारा प्रशंसित हैं । हम वीर सन्तति से युक्त होकर आपके आश्रय में रहें । हे अबध्य पुत्रो ! हम आपसे मित्र भाव की कामना करते हुए अपने अपराधों तथा पापों के लिए क्षमा याचना करते हैं ॥३ ॥

२२८६. प्र सीमादित्यो असृजद्विधर्ताँ ऋतं सिन्धवो वरुणस्य यन्ति ।
न श्राम्यन्ति न वि मुचन्त्येते वयो न पप्तू रघुया परिज्मन् ॥४ ॥

समस्त विश्व को धारण करने वाले अदिति पुत्र वरुणदेव ने जल को वृष्टि रूप में उत्पन्न करके अपनी सामर्थ्य से नदियों को प्रवाहित किया, जो पक्षी की भाँति अविरल गति से पृथ्वी पर विचरण कर रही हैं ॥४ ॥

२२८७. वि मच्छ्रथाय रशनामिवाग ऋध्याम ते वरुण खामृतस्य ।
मा तन्तुश्छेदि वयतो धियं मे मा मात्रा शार्यपसः पुर ऋतोः ॥५ ॥

हे वरुणदेव ! हमारे पापों ने हमें रस्सी की भाँति जकड़ रखा है, उनसे हमें छुड़ायें, ताकि श्रेष्ठ मार्ग में गमनशील आपकी सामर्थ्य को हम धारण कर सकें । जिस तरह बुनाई करने वाले का तागा नहीं टूटना चाहिए, उसी प्रकार श्रेष्ठ कार्यों के नियोजन के समय आपकी शक्ति अविरल गति से प्राप्त होती रहे । कार्य की समाप्ति के पूर्व ही हमारी शक्ति क्षीण न हो ॥५ ॥

२२८८. अपो सु म्यक्ष वरुण भियसं मत्सम्राळृतावोऽनु मा गृभाय ।
दामेव वत्साद्वि मुमुग्ध्यंहो नहि त्वदारे निमिषश्चनेशे ॥६ ॥

हे सत्यरक्षक, तेजस्वी वरुणदेव !हमारे ऊपर कृपा बनाये रखकर, भय से हमें दूर करें ।जिस प्रकार रस्सी



से बछड़े को मुक्त करते हैं, उसी प्रकार हमें पापों से मुक्त करें; क्योंकि आपके अभाव में हमारा कोई अस्तित्व नहीं है ॥६ ॥

२२८९. मा नो वधैर्वरुण ये त इष्टावेनः कृण्वन्तमसुर भ्रीणन्ति ।
मा ज्योतिषः प्रवसथानि गन्म वि षू मृधः शिश्रथो जीवसे नः ॥७ ॥

हे प्राणों के रक्षक वरुणदेव ! दुष्टों को नष्ट करने वाले आयुधों का हम पर कोई प्रभाव न हो । हमारे जीवन को सुखमय बनाने के लिए हिंसक शत्रुओं को नष्ट करें तथा हम लोग प्रकाश से दूर न जायें ॥७ ॥

२२९०. नमः पुरा ते वरुणोत नूनमुतापरं तुविजात ब्रवाम ।
त्वे हि कं पर्वते न श्रितान्यप्रच्युतानि दूळभ व्रतानि ॥८ ॥

हे अनेक दुर्लभ शक्तियों से सम्पन्न वरुणदेव ! आपके अटूट नियम पर्वत के समान अचल तथा दृढ़ता से स्थिर रहते हैं । हम भूतकाल में आपको नमन करते रहे हैं, इस समय भी नमन करते हैं तथा भविष्य में भी नमन करते रहेंगे ॥८ ॥

२२९१. पर ऋणा सावीरध मत्कृतानि माहं राजन्नन्यकृतेन भोजम् ।
अव्युष्टा इन्नु भूयसीरुषास आ नो जीवान्वरुण तासु शाधि ॥९ ॥

हे वरुणदेव ! हमें ऋण मुक्त करें । दूसरों के द्वारा अर्जित की गयी सम्पत्ति का हम उपभोग न करें ।बहुत सी उषाएँ (जीवन में प्रकाश देने वाली धाराएँ) जो प्रकाशित हो सकीं, उनसे हमारे जीवन को सुखमय बनायें ॥९ ॥

२२९२. यो मे राजन्युज्यो वा सखा वा स्वप्ने भयं भीरवे मह्यमाह ।
स्तेनो वा यो दिप्सति नो वृको वा त्वं तस्माद्वरुण पाह्यस्मान् ॥१० ॥

हे तेजस्वी वरुणदेव ! जो हमारे बन्धु स्वप्न में हमें भयभीत करते हैं या भेड़िये के समान हमें नष्ट करना चाहते हैं, उनसे हमारी रक्षा करें ॥१० ॥

२२९३. माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः ।
मा रायो राजन्त्सुयमादव स्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥११ ॥

हे वरुणदेव ! सबको सन्तुष्ट करने वाले, ऐश्वर्यशाली दानदाता की सुख-समृद्धि से हम कभी ईर्ष्या न करें, उन्हें बन्धुवत् मानें । हे वरुणदेव ! आवश्यक धन प्राप्त होने पर हम अहंकारी न बनें, श्रेष्ठ सन्तति सहित यज्ञ में देवों की स्तुतियाँ करें ॥११ ॥

[सूक्त - २९]

[**ऋषि**- कूर्म गार्त्समद अथवा गृत्समद । **देवता**- विश्वेदेवा । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

२२९४. धृतव्रता आदित्या इषिरा आरे मत्कर्त रहसूरिवागः ।
शृण्वतो वो वरुण मित्र देवा भद्रस्य विद्वाँ अवसे हुवे वः ॥१ ॥

हे व्रतधारी, सर्वत्र गमनशील आदित्यगण ! गुप्त रहस्य की भाँति हमारे पापों को हमसे दूर करें । हे मित्र एवं वरुणदेवो ! आपके मंगलकारी कार्यों को जानकर हम संरक्षण के लिए आपका आवाहन करते हैं, आप हमारी प्रार्थना को स्वीकार करें ॥१ ॥

२२९५. यूयं देवाः प्रमतिर्यूयमोजो यूयं द्वेषांसि सनुतर्युयोत ।
अभिक्षत्तारो अभि च क्षमध्वमद्या च नो मृळयतापरं च ॥२ ॥

हे देवगण ! आप श्रेष्ठ बुद्धि वाले हैं, तेजस्वी हैं तथा द्वेषियों के छल को प्रकट करने वाले हैं । आप शत्रुनाशक हैं; अत: शत्रुओं का संहार करें तथा हमारा वर्तमान और भविष्य सुखमय बनायें ॥२ ॥

२२९६. किमू नु व: कृणवामापरेण किं सनेन वसव आप्येन ।
यूयं नो मित्रावरुणादिते च स्वस्तिमिन्द्रामरुतो दधात ॥३ ॥

हे आश्रयदाता देवगण ! पूर्व में किये गये अपने कर्मों से हम आपका किस प्रकार आदर सत्कार करें, हे मित्र, वरुण, अदिति, इन्द्र तथा मरुद्‌गणो ! आप सभी देवगण हमारा कल्याण करें ॥३ ॥

२२९७. हये देवा यूयमिदापय: स्थ ते मृळत नाधमानाय मह्यम् ।
मा वो रथो मध्यमवाळृते भून्मा युष्मावत्स्वापिषु श्रमिष्म ॥४ ॥

हे देवगणो ! आप ही हमारे हितैषी सखा हैं; अत: हम आपकी स्तुति करते हैं, आप हमें सुखी बनायें । हमारे यज्ञ में आपका रथ तीव्र गति से आये । हम आपके समान सखा पाकर सदैव स्तुतियाँ करते रहें, थकें नहीं ॥४ ॥

२२९८. प्र व एको मिमय भूर्यागो यन्मा पितेव कितवं शशास ।
आरे पाशा आरे अघानि देवा मा माधि पुत्रे विमिव ग्रभीष्ट ॥५ ॥

हे देवो ! आपने हमें पिता की भाँति उपदेश दिया है; अत: हमने अपने अनेकों पापों को नष्ट कर दिया है । हे देवो ! पाप तथा पाश हमसे दूर रहें । व्याध द्वारा पक्षी की तरह पुत्र के सामने (निर्दयतापूर्वक) हमें न पकड़ें ॥५ ॥

२२९९. अर्वाञ्चो अद्या भवता यजत्रा आ वो हार्दि भयमानो व्ययेयम् ।
त्राध्वं नो देवा निजुरो वृकस्य त्राध्वं कर्तादवपदो यजत्रा: ॥६ ॥

हे पूज्य देवगणो ! आप आज हमारे सामने प्रकट हों, भयभीत होकर हम आपके हृदय के समान प्रिय आश्रय को प्राप्त करें । हे पूज्य देवगणो ! कष्टदायी दुष्ट शत्रुओं से आपत्ति काल में हमारी हर प्रकार से रक्षा करें ॥६ ॥

२३००. माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापे: ।
मा रायो राजन्त्सुयमादव स्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीरा: ॥७ ॥

हे वरुणदेव ! सबको सन्तुष्ट करने वाले ऐश्वर्यशाली दानदाता की सुख-समृद्धि से हम कभी ईर्ष्या न करें, उन्हें बन्धुवत् मानें । हे वरुणदेव ! आवश्यक धन प्राप्त होने पर हम अहंकारी न बनें, श्रेष्ठ सन्तति सहित यज्ञ में देवों की स्तुतियाँ करें ॥७ ॥

[सूक्त - ३०]

[ऋषि- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । देवता- इन्द्र , ६ - इन्द्रासोम, ८- पूर्वार्द्ध की सरस्वती, ९- बृहस्पति, ११- मरुद्‌गण । छन्द - त्रिष्टुप्; ११-जगती ।]

२३०१. ऋतं देवाय कृण्वते सवित्र इन्द्रायाहिघ्ने न रमन्त आप: ।
अहरहर्यात्यक्तुरपां कियात्या प्रथम: सर्ग आसाम् ॥१ ॥

जल प्रेरक, तेजस्वी तथा सर्व प्रेरक वृत्रहन्ता, इन्द्रदेव के निमित्त यज्ञादिकर्म कभी भी नहीं रुकते । जब से यज्ञादि कर्म प्रचलित हुए, तब से याजकगण सदैव यज्ञ कर्म करते हैं ॥१ ॥

२३०२. यो वृत्राय सिनमत्राभरिष्यत्प्र तं जनित्री विदुष उवाच ।
पथो रदन्तीरनु जोषमस्मै दिवेदिवे धुनयो यन्त्यर्थम् ॥२ ॥



जो (इन्द्रदेव के शत्रु) वृत्र के लिए अन्न प्रदान करता है, उसकी बात इन्द्रदेव से उनकी माता अदिति कह देती हैं । नदियाँ इन्द्रदेव की कामनानुसार अपना मार्ग बनाती हुई निरन्तर समुद्र की तरफ प्रवाहित होती हैं ॥२ ॥

२३०३. ऊर्ध्वो ह्यस्थादध्यन्तरिक्षेऽधा वृत्राय प्र वधं जभार ।

मिहं वसान उप हीमदुद्रोत्तिग्मायुधो अजयच्छत्रुमिन्द्रः ॥३ ॥

चूँकि अन्तरिक्ष में बहुत ऊँचे स्थित होकर मेघ से आच्छादित वृत्र ने इन्द्रदेव पर आक्रमण किया था, इसलिए इन्द्रदेव ने अपने वज्र को वृत्र के ऊपर फेंका और तीक्ष्ण आयुधधारी इन्द्रदेव ने वृत्र पर विजय प्राप्त किया ॥३ ॥

२३०४. बृहस्पते तपुषाश्नेव विध्य वृकद्वरसो असुरस्य वीरान् ।

यथा जघन्थ धृषता पुरा चिदेवा जहि शत्रुमस्माकमिन्द्र ॥४ ॥

हे बृहस्पतिदेव ! असुर पुत्रों को अपने विद्युत् के समान ताप देने वाले वज्र से छिन्न-भिन्न करें, प्रताड़ित करें । हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार प्राचीनकाल में आपने वज्र के द्वारा शत्रुओं पर विजय प्राप्त की थी, उसी तरह हमारे शत्रुओं को भी आज नष्ट करें ॥४ ॥

२३०५. अव क्षिप दिवो अश्मानमुच्चा येन शत्रुं मन्दसानो निजूर्वाः ।

तोकस्य सातौ तनयस्य भूरेरस्माँ अर्धं कृणुतादिन्द्र गोनाम् ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! स्तोताओं की स्तुतियों से प्रसन्न होकर आपने जिस वज्र से शत्रु का विनाश किया था, उसी वज्र को द्युलोक से हमारे शत्रुओं के ऊपर फेंकें । हमें भरण-पोषण के योग्य साधन तथा गोधन से समृद्ध बनायें, ताकि हम संतति का पालन-पोषण कर सकें ॥५ ॥

२३०६. प्र हि क्रतुं वृहथो यं वनुथो रध्रस्य स्थो यजमानस्य चोदौ ।

इन्द्रासोमा युवमस्माँ अविष्टमस्मिन्भयस्थे कृणुतमु लोकम् ॥६ ॥

हे इन्द्रदेव तथा सोमदेव ! आप दोनों स्तोता-यजमानों को चाहते हैं तथा उन्हें यज्ञ के विस्तार की प्रेरणा देते हैं । आप दोनों भययुक्त इस संसार में हम लोगों की रक्षा करें तथा हमारे जीवन को प्रकाशित करें ॥६ ॥

२३०७. न मा तमन्न श्रमन्नोत तन्द्रन्न वोचाम मा सुनोतेति सोमम् ।

यो मे पृणाद्यो ददद्यो निबोधाद्यो मा सुन्वन्तमुप गोभिरायत् ॥७ ॥

जो इन्द्रदेव हमें उत्तम ज्ञान तथा श्रेष्ठ धन प्रदान करके हमारी कामनाओं को पूरा करते हैं, जो सोम रस को शोधित करते समय हमारे पास गौओं सहित आते हैं; वे इन्द्रदेव हमें कष्ट न दें, श्रमशक्ति प्रदान करें तथा हमें आलसी न बनायें । हम भी कभी किसी से यह न कहें कि इन्द्रदेव के लिए सोमरस तैयार न करो ॥७ ॥

२३०८. सरस्वति त्वमस्माँ अविड्ढि मरुत्वती धृषती जेषि शत्रून् ।

त्यं चिच्छर्धन्तं तविषीयमाणमिन्द्रो हन्ति वृषभं शण्डिकानाम् ॥८ ॥

हे माँ सरस्वति ! मरुतों के साथ संयुक्त होकर दृढ़तापूर्वक हमारे शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके आप हमारी रक्षा करें । अहंकारी तथा अत्यधिक बलशाली शाण्डवंशी शण्डामर्क राक्षस को इन्द्रदेव ने मारा था ॥८ ॥

२३०९. यो नः सनुत्य उत वा जिघत्नुरभिख्याय तं तिगितेन विध्य ।

बृहस्पत आयुधैर्जेषि शत्रून्द्रुहे रीषन्तं परि धेहि राजन् ॥९ ॥

हे बृहस्पतिदेव ! हमारे बीच में जो छुपा हुआ हिंसक शत्रु हो, उसे खोजकर तीक्ष्ण शस्त्रों से छेदें । हमारे शत्रुओं पर शस्त्रास्त्रों से विजय प्राप्त करें । हे राजा बृहस्पतिदेव ! हिंसक अस्त्र द्रोहकारियों के ऊपर फेंकें ॥९ ॥

२३१०. अस्माकेभिः सत्वभिः शूर शूरैर्वीर्या कृधि यानि ते कर्त्वानि ।
ज्योगभूवन्ननुधूपितासो हत्वी तेषामा भरा नो वसूनि ॥१० ॥

हे शूरवीर इन्द्रदेव ! हमारे बलशाली वीरों का सहयोग लेकर, करने योग्य पराक्रमी कार्यों को करें । अहंकारी शत्रुओं को मारें तथा उनका धन हमें प्रदान करें ॥१० ॥

२३११. तं वः शर्धं मारुतं सुम्नयुर्गिरोप ब्रुवे नमसा दैव्यं जनम् ।
यथा रयिं सर्ववीरं नशामहा अपत्यसाचं श्रुत्यं दिवेदिवे ॥ ११ ॥

हे मरुद्‌गण ! सुख की कामना से हम आपके तेजस्वी पराक्रम की स्तुति करते हैं । आपकी नमनपूर्वक प्रशंसा करते हैं । हमें पराक्रमी संतति से युक्त यशस्वी धन सदैव प्रदान करें ॥११ ॥

[सूक्त - ३१]

[**ऋषि**- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । **देवता**- विश्वेदेवा । **छन्द** - जगती; ६- त्रिष्टुप् ।]

२३१२. अस्माकं मित्रावरुणावतं रथमादित्यै रुद्रैर्वसुभिः सचाभुवा ।
प्र यद्वयो न पप्तन्वस्मनस्परि श्रवस्यवो हृषीवन्तो वनर्षदः ॥१ ॥

हे मित्र तथा वरुणदेवो !जब वनों में रहने वाले पक्षियों की तरह हमारा रथ अन्न की कामना से एक स्थान से दूसरे स्थान को जाता है, तब आदित्य, रुद्र तथा वसुओं के साथ संयुक्त रूप से हमारे रथ की रक्षा करें ॥१ ॥

२३१३. अध स्मा न उदवता सजोषसो रथं देवासो अभि विक्षु वाजयुम् ।
यदाशवः पद्याभिस्तित्रतो रजः पृथिव्याः सानौ जङ्घनन्त पाणिभिः ॥२ ॥

इस रथ में जुते हुए द्रुतगामी घोड़े अपने मार्ग को तय करते हुए अपने पैरों से पृथ्वी के पृष्ठ भाग को आघात करते हुए चलते हैं । हे समान प्रीति वाले देवगणो ! इस समय अन्नाभिलाषी हमारे रथ को प्रजा की ओर जाने के लिए प्रेरित करें ॥२ ॥

२३१४. उत स्य न इन्द्रो विश्वचर्षणिर्दिवः शर्धेन मारुतेन सुक्रतुः ।
अनु नु स्थात्यवृकाभिरूतिभी रथं महे सनये वाजसातये ॥३ ॥

सर्वद्रष्टा, उत्तम कर्मा इन्द्रदेव आप मरुतों के पराक्रम से युक्त होकर द्युलोक से आकर हमारे रथ में विराजमान हों तथा हमें धन-धान्य से सम्पन्न बनाते हुए श्रेष्ठ संरक्षण प्रदान करें ॥३ ॥

२३१५. उत स्य देवो भुवनस्य सक्षणिस्त्वष्टा ग्नाभिः सजोषा जूजुवद्रथम् ।
इळा भगो बृहद्दिवोत रोदसी पूषा पुरन्धिरश्विनावधा पती ॥४ ॥

यशस्वी और समान रूप से सभी से प्रेम करने वाले सृष्टिकर्त्ता त्वष्टादेव अपनी तेजस्वी शक्तियों से हमारे रथ को चलायें । इडा, अत्यन्त कान्तिवान् भगदेव, ब्रह्माण्ड की व्यवस्था करने वाले पूषादेव, सबके पोषक दोनों अश्विनीकुमार तथा द्यावा-पृथिवी हमारे रथ को चलायें ॥४ ॥

२३१६. उत त्ये देवी सुभगे मिथूदृशोषासानक्ता जगतामपीजुवा ।
स्तुषे यद्वां पृथिवि नव्यसा वचः स्थातुश्च वयस्त्रिवया उपस्तिरे ॥५ ॥

परम तेजस्वी, ऐश्वर्य सुख से युक्त, एक दूसरे के प्रति स्नेह रखने वाली दिन और रात्रि जंगम तथा स्थावर को प्रेरणा देने वाली हैं । हे द्यावा-पृथिवी ! आप दोनों की हम नवीन स्तोत्रों से (मानसिक, कायिक तथा वाचिक) तीनों प्रकार से स्तुतियाँ करते हुए हविष्यान्न समर्पित करते हैं ॥५ ॥



२३१७. उत वः शंसमुशिजामिव श्मस्यहिर्बुध्न्यो३ज एकपादुत।
त्रित ऋभुक्षाः सविता चनो दधेऽपां नपादाशुहेमा धिया शमि ॥६ ॥

हे देवगणो ! सज्जनों की भाँति हम आपकी स्तुति करना चाहते हैं, सर्वव्यापी अहिर्बुध्न्य, अज एकपात, तीनों लोकों में व्याप्त सविता देव, प्राणियों के पालक अग्निदेव, हमारी स्तुतियों से हर्षित होकर भरपूरअन्न प्रदान करें ॥६ ॥

२३१८. एता वो वश्म्युद्यता यजत्रा अतक्षन्नायवो नव्यसे सम् ।
श्रवस्यवो वाजं चकानाः सप्तिर्न रथ्यो अह धीतिमश्याः ॥७ ॥

हे पूज्य देवगणो ! आप सभी के द्वारा स्तुत्य हैं, अतः हम आपकी स्तुति करने की कामना करते हैं । अन्न और बल की कामना से यशस्वी मनुष्यों ने आपके लिए स्तुतियाँ बनायी हैं । रथ में जुड़े हुए घोड़ों की भाँति हम सदैव कार्य करते रहें ॥७ ॥

[सूक्त - ३२]

[**ऋषि-** गृत्सगद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । **देवता -** १ द्यावा-पृथिवी; २-३ इन्द्र अथवा त्वष्टा; ४-५ राका; ६-७ सिनीवाली, ८- लिङ्गोक्त । **छन्द -** जगती; ६-८ अनुष्टुप् ।]

२३१९. अस्य मे द्यावापृथिवी ऋतायतो भूतमवित्री वचसः सिषासतः ।
ययोरायुः प्रतरं ते इदं पुर उपस्तुते वसूयुर्वां महो दधे ॥१ ॥

हे द्यावा-पृथिवि ! आपको प्रसन्न करने की कामना करने वाले स्तोताओं के आप आश्रयदाता हैं । आप दोनों की हम स्तुति करते हैं । आप हमें उत्तम बल तथा धन प्रदान करें ॥१ ॥

२३२०. मा नो गुह्या रिप आयोरहन्दभन्मा न आभ्यो रीरधो दुच्छुनाभ्यः ।
मा नो वि यौः सख्या विद्धि तस्य नः सुम्नायता मनसा तत्त्वेमहे ॥२ ॥

हे इन्द्रदेव ! शत्रुओं की गुप्त माया दिन या रात में हमें न मारने पाये । इन दुःखदायी विपत्तियों से हमें पीड़ित न करें ।हम आपकी मित्रता की कामना करते हैं; अतः सुख की कामनावाले भाव को जानकर उन्हें टूटने न दें ॥२ ॥

२३२१. अहेळता मनसा श्रुष्टिमावह दुहानां धेनुं पिप्युषीमसश्चतम् ।
पद्याभिराशुं वचसा च वाजिनं त्वां हिनोमि पुरुहूत विश्वहा ॥३ ॥

हे इन्द्रदेव ! आप द्रुतगामी तथा मृदुभाषी हैं । आप हमें प्रसन्नतापूर्वक सुखकारी, दुधारू तथा परिपुष्ट गौएँ प्रदान करें । हम आपकी दिन-रात स्तुति करते हैं ॥३ ॥

२३२२. राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना ।
सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ॥४ ॥

हम उत्तम स्तोत्रों के द्वारा आवाहन के योग्य 'राका' एवं 'पूर्णिमा' देवियों का आवाहन करते हैं । ये ऐश्वर्यशालिनी देवियाँ हमारी प्रार्थना को स्वीकार करके कभी न टूटने वाले संकल्प रूपी कर्मों को सुदृढ़ बनायें तथा प्रशंसनीय धन तथा वीर संतति प्रदान करें ॥४ ॥

२३२३. यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि ।
ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा ॥५ ॥

हे ऐश्वर्यशालिनि राका देवि ! आप जिन उत्तम बुद्धियों से याज्ञिकों को श्रेष्ठ धन प्रदान करती हैं, आज उन्हीं श्रेष्ठ बुद्धियों से युक्त होकर अनेक प्रकार के श्रेष्ठ धन तथा पौष्टिक अन्न सहित हमारे पास पधारें ॥५ ॥

२३२४. सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा ।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥६ ॥

हे विराट् स्वरूपा सिनीवाली देवि ! आप देवताओं की बहिन हैं । हे देवि ! अग्नि में समर्पित की गयी आहुतियों को ग्रहण करके हमें उत्तम सन्तति प्रदान करें ॥६ ॥

२३२५. या सुबाहुः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुसूवरी ।
तस्यै विश्पत्न्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन ॥७ ॥

हे याजको ! जो सिनीवाली देवी उत्तम भुजाओं तथा सुन्दर अँगुलियों वाली, श्रेष्ठ पदार्थों तथा उत्तम प्रजाओं की जनक हैं, उन प्रजापालक सिनीवाली देवी के लिए हविष्यान्न प्रदान करें ॥७ ॥

२३२६. या गुङ्गूर्या सिनीवाली या राका या सरस्वती ।
इन्द्राणीमह्व ऊतये वरुणानीं स्वस्तये ॥८ ॥

जो गुंगू , जो सिनीवाली, जो राका, जो सरस्वती आदि देवियाँ हैं, उन्हें हम अपने संरक्षण की कामना से आवाहित करते हैं । इन्द्राणी तथा वरुणानी देवियों को भी अपने कल्याण की कामना से आवाहित करते हैं ॥८ ॥

[सूक्त - ३३]

[**ऋषि**- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । **देवता**- रुद्र । **छन्द** - त्रिष्टुप् ।]

२३२७. आ ते पितर्मरुतां सुम्नमेतु मा नः सूर्यस्य सन्दृशो युयोथाः ।
अभि नो वीरो अर्वति क्षमेत प्र जायेमहि रुद्र प्रजाभिः ॥१ ॥

हे मरुतों के पिता रुद्रदेव ! आपका सुख हमें प्राप्त हो । हमें सूर्य के उत्तम प्रकाश से कभी भी दूर न करें । हमारी वीर सन्तति संग्राम में शत्रुओं को पराजित करे । हम उत्तम सन्तति से प्रसिद्धि प्राप्त करें ॥१ ॥

२३२८. त्वादत्तेभी रुद्र शन्तमेभिः शतं हिमा अशीय भेषजेभिः ।
व्य१स्मद्द्वेषो वितरं व्यंहो व्यमीवाश्चातयस्वा विषूचीः ॥२ ॥

हे रुद्रदेव ! हम आपके द्वारा प्रदान की गयी सुखदायी ओषधियों के सेवन से सौ वर्ष तक जीवित रहें । आप हमारे द्वेष भावों तथा पापों को दूर करके हमारे शरीर में व्याप्त समस्त रोगों को नष्ट करें ॥२ ॥

२३२९. श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियासि तवस्तमस्तवसां वज्रबाहो ।
पर्षि णः पारमंहसः स्वस्ति विश्वा अभीती रपसो युयोधि ॥३ ॥

हे रुद्रदेव ! आप सबसे श्रेष्ठ ऐश्वर्यशाली हैं । हे आयुधधारी रुद्रदेव ! आप बलवानों में सबसे अधिक बलवान् हैं । हमें पापों से मुक्त करके, उनके कारण आने वाली विपत्तियों को हमसे दूर करें ॥३ ॥

२३३०. मा त्वा रुद्र चुक्रुधामा नमोभिर्मा दुष्टुती वृषभ मा सहूती ।
उन्नो वीराँ अर्पय भेषजेभिर्भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि ॥४ ॥

हे रुद्रदेव ! वैद्यों से भी उत्तम वैद्य के रूप में आप जाने जाते हैं; अतः ओषधियों के द्वारा हमारी सन्तति को



बलशाली बनायें । हम झूठी तथा निन्दित स्तुतियों के द्वारा आपको क्रोधित न करें । साधारण लोगों के समान बुलाकर भी हम आपको क्रोधित न करें ॥४ ॥

२३३१. हवीमभिर्हवते यो हविर्भिरव स्तोमेभी रुद्रं दिषीय।

ऋदूदरः सुहवो मा नो अस्यै बभ्रुः सुशिप्रो रीरधन्मनायै ॥५ ॥

जिन रुद्रदेव को हविष्यान्न समर्पित करके स्तुतियों के द्वारा आवाहित किया जाता है, उन्हें हम स्तोत्रों के द्वारा शान्त भी करें । कोमल हृदय वाले तेजस्वी हँसमुख स्वभाववाले तथा उत्तम प्रकार से बुलाये जाने योग्य रुद्रदेव ईर्ष्यालुओं के द्वारा हमारी हिंसा न करायें ॥५ ॥

२३३२. उन्मा ममन्द वृषभो मरुत्वान्त्वक्षीयसा वयसा नाधमानम्।

घृणीव च्छायामरपा अशीया विवासेयं रुद्रस्य सुम्नम् ॥६ ॥

कामनाओं की पूर्ति करने वाले मरुतों से युक्त हे रुद्रदेव ! हम ऐश्वर्य की कामना वालों को तेजस्वी अन्न से संतुष्ट करें । जिस प्रकार धूप से पीड़ित व्यक्ति छाया की शरण में जाता है, उसी प्रकार हम भी पाप रहित होकर रुद्रदेव की सेवा करते हुए उनके सुख को प्राप्त करें ॥६ ॥

२३३३. क्व१स्य ते रुद्र मृळयाकुर्हस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः।

अपभर्ता रपसो दैव्यस्याभी नु मा वृषभ चक्षमीथाः ॥७ ॥

हे रुद्रदेव ! जिस हाथ से आप ओषधियाँ प्रदान करके सुखी बनाते हैं, वह आपका सुखदायी हाथ कहाँ है ? हे बलशाली रुद्रदेव ! आप दैवी आपत्तियों को दूर करने वाले हैं ; अत: हमारे अपराधों को क्षमा करें ॥७ ॥

२३३४. प्र बभ्रवे वृषभाय श्वितीचे महो महीं सुष्टुतिमीरयामि।

नमस्या कल्मलीकिनं नमोभिर्गृणीमसि त्वेषं रुद्रस्य नाम ॥८ ॥

ऐश्वर्य प्रदाता, सबके पालक तथा श्वेत आभायुक्त रुद्रदेव की हम महान् स्तुतियाँ गाते हैं । हे स्तोताओ ! हम रुद्रदेव के उज्ज्वल नाम का संकीर्तन करते हैं, आप लोग भी तेजस्वी रुद्रदेव की स्तुतियों के द्वारा पूजा करो ॥८ ॥

२३३५. स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रो बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः।

ईशानादस्य भुवनस्य भूरेर्न वा उ योषद्रुद्रादसुर्यम् ॥९ ॥

सबके पालक, दृढ़ अंगों वाले, अनेक रूपों के स्वामी, तेजस्वी रुद्रदेव स्वर्णाभूषणों से सुशोभित होते हैं ।ये समस्त भुवनों के स्वामी तथा भरण-पोषण करने वाले हैं । असुर संहारक शक्ति इनसे कभी भी अलग नहीं होती

२३३६. अर्हन्बिभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम्।

अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति ॥१० ॥

हे रुद्रदेव ! आप धनुष-बाण धारण करने के योग्य हैं । स्वर्णाभूषणों से युक्त अनेकों रूपों वाले आप पूजा के योग्य हैं । हे देव ! आपसे तेजस्वी और कोई नहीं है । आप ही विशाल विश्व का संरक्षण करते हैं ॥१० ॥

२३३७. स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रम्।

मृळा जरित्रे रुद्र स्तवानोऽन्यं ते अस्मन्नि वपन्तु सेनाः ॥११ ॥

हे स्तोताओ ! यशस्वी रथ में विराजमान तरुण, सिंह के समान भय उत्पन्न करने वाले, शत्रु संहारक, बलशाली रुद्रदेव की स्तुति करो । हे रुद्रदेव ! आप स्तोताओं को सुखी बनायें तथा आपकी सेना शत्रुओं का संहार करे ॥११ ॥

२३३८. कुमारश्चित्पितरं वन्दमानं प्रति नानाम रुद्रोपयन्तम् ।
भूरेर्दातारं सत्पतिं गृणीषे स्तुतस्त्वं भेषजा रास्यस्मे ॥१२ ॥

हे रुद्रदेव ! जिस प्रकार पुत्र अपने पूज्य पिता को प्रणाम करता है, उसी तरह आपके समीप आने पर हम आपको प्रणाम करते हैं । हे सज्जनों के स्वामी दानदाता रुद्रदेव ! हम आपकी स्तुति करते हैं । स्तुति करने पर आप हमें ओषधियाँ प्रदान करें ॥१२ ॥

२३३९. या वो भेषजा मरुतः शुचीनि या शन्तमा वृषणो या मयोभु ।
यानि मनुरवृणीता पिता नस्ता शं च योश्च रुद्रस्य वश्मि ॥१३ ॥

हे बलशाली मरुतो ! आपकी जो कल्याणकारी, पवित्र तथा सुखदायी ओषधियाँ हैं, जिनका चयन हमारे पिता मनु ने किया था, उन कल्याणकारी रोग निवारक ओषधियों की हम इच्छा करते हैं ॥१३ ॥

२३४०. परि णो हेती रुद्रस्य वृज्याः परि त्वेषस्य दुर्मतिर्मही गात् ।
अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृळ ॥१४ ॥

रुद्रदेव के महान् आयुध, पीड़ादायी तीक्ष्ण शस्त्र तथा दुर्बुद्धि हमसे परे ही रहें । हे सुखदायी रुद्रदेव ! ऐश्वर्यशाली याजकों के प्रति अपने दृढ़ धनुष की प्रत्यंचा को शिथिल करें तथा हमारी सन्तति को सुखी बनायें ॥१४ ॥

२३४१. एवा बभ्रो वृषभ चेकितान यथा देव न हृणीषे न हंसि ।
हवनश्रुन्नो रुद्रेह बोधि बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१५ ॥

हे तेजस्वी, सुखकारी, सर्वज्ञ तथा प्रार्थना को स्वीकार करने वाले रुद्रदेव ! आप हमें ऐसा मार्गदर्शन दें, कि हमारे कारण आप कभी क्रुद्ध न हों, आप हमें नष्ट न करें । हम उत्तम सन्तति सहित यज्ञ में आपकी उत्तम स्तुतियाँ करें ॥१५ ॥

[सूक्त - ३४]

[**ऋषि**- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । **देवता**- मरुद्गण । **छन्द** - जगती, १५ त्रिष्टुप् ।]

२३४२. धारावरा मरुतो धृष्ण्वोजसो मृगा न भीमास्तविषीभिरर्चिनः ।
अग्नयो न शुशुचाना ऋजीषिणोभृमिं धमन्तो अप गा अवृण्वत ॥१ ॥

मेघ की जलधारा को आवृत्त करने वाले, शत्रुओं के संहारक बल से युक्त, सिंह की भाँति भय उत्पन्न करने वाले, अग्नि जैसे तेजस्वी, सन्मार्गगामी, गति पैदा करने वाले पूज्य मरुद्गण सूर्य-रश्मियों को प्रकट करते हैं ॥१ ॥

२३४३. द्यावो न स्तृभिश्चितयन्त खादिनो व्य १ भ्रिया न द्युतयन्त वृष्टयः ।
रुद्रो यद्वो मरुतो रुक्मवक्षसो वृषाजनि पृश्न्याः शुक्र ऊधनि ॥२ ॥

हे सुवर्ण आभूषणों से अलंकृत मरुतो ! जिस प्रकार द्युलोक, नक्षत्रों से सुशोभित होता है, उसी प्रकार आप मेघ में विद्यमान विद्युत् से शोभायमान हों । आपको रुद्रदेव ने पृथिवी के पवित्र उदर से उत्पन्न किया है, आप ही शत्रुभक्षक तथा जल की वृष्टि करने वाले हैं ॥२ ॥

२३४४. उक्षन्ते अश्वाँ अत्याँ इवाजिषु नदस्य कर्णैस्तुरयन्त आशुभिः ।
हिरण्यशिप्रा मरुतो दविध्वतः पृक्षं याथ पृषतीभिः समन्यवः ॥३ ॥



मरुद्‌गण अपने घोड़ों को घुड़दौड़ के घोड़ों के समान बलवान् बनाते हैं । ये शब्द करने वाले द्रुतगामी घोड़े युद्ध में वेग से जाते हैं । हे सुवर्णाभूषणों से अलंकृत मरुद्‌गण ! आप शत्रुओं को कम्पित करने वाले हैं । आप अन्न आदि (पोषक पदार्थों) के समीप वर्षण करने वाली मेघ मालाओं के माध्यम से जाते हैं ॥३ ॥

२३४५. पृक्षे ता विश्वा भुवना ववक्षिरे मित्राय वा सदमा जीरदानवः ।
पृषदश्वासो अनवभ्रराधस ऋजिप्यासो न वयुनेषु धूर्षदः ॥४ ॥

ये मरुद्‌गण मित्र के समान सभी भुवनों को आश्रय प्रदान करते हैं । धब्बे वाले घोड़ों से युक्त, अक्षय अन्न प्रदान करने वाले ये दानशील मरुद्‌गण धर्मानुकूल मार्ग पर चलने वाले याजकों को उन्नति पथ पर ले जाते हैं ॥४ ॥

२३४६. इन्धन्वभिर्धेनुभी रप्शदूधभिरध्वस्मभिः पथिभिर्भ्राजदृष्टयः ।
आ हंसासो न स्वसराणि गन्तन मधोर्मदाय मरुतः समन्यवः ॥५ ॥

हे दीप्तिमान् आयुध वाले मन्युयुक्त मरुद्‌गण ! जिस तरह हंस अपने निवास स्थान की ओर जाते हैं, उसी प्रकार आप बरसने वाले मेघों के साथ धेनु युक्त होकर विघ्न रहित मार्ग से सोम रस का पान करने और आनन्दित होने के लिए यज्ञ में आयें ॥५ ॥

२३४७. आ नो ब्रह्माणि मरुतः समन्यवो नरां न शंसः सवनानि गन्तन ।
अश्वामिव पिप्यत धेनुमूधनि कर्ता धियं जरित्रे वाजपेशसम् ॥६ ॥

हे मन्यु युक्त मरुतो ! जिस प्रकार शूरवीर आते हैं, उसी प्रकार आप हमारे शोधित सोम के पास आयें । हमारी गौओं के अधोभाग को घोड़ी की तरह पुष्ट बनायें तथा याजकों के यज्ञ को अन्न युक्त करें ॥६ ॥

२३४८. तं नो दात मरुतो वाजिनं रथ आपानं ब्रह्म चितयद्दिवेदिवे ।
इषं स्तोतृभ्यो वृजनेषु कारवे सनिं मेधामरिष्टं दुष्टरं सहः ॥७ ॥

हे वीर मरुद्‌गण ! आप हमें अन्न युक्त सन्तति प्रदान करें । वह सन्तति आपके आगमन के समय आपका यशोगान करे । आप स्तोताओं को अन्न प्रदान करें । युद्ध के समय पराक्रमी स्तोताओं को दानवृत्ति, युद्ध - कौशल, सद्‌बुद्धि और अभय तथा अजेय सहनशीलता प्रदान करें ॥७ ॥

२३४९. यद्युञ्जते मरुतो रुक्मवक्षसोऽश्वान्रथेषु भग आ सुदानवः ।
धेनुर्न शिश्वे स्वसरेषु पिन्वते जनाय रातहविषे महीमिषम् ॥८ ॥

ऐश्वर्यशाली, दानशील मरुद्‌गणों के वक्षस्थल में सुवर्णाभूषण सुशोभित हैं । जिस प्रकार गाय बछड़े को दूध देती है, उसी प्रकार मरुद्‌गण घोड़ों को रथ में जोतते हुए, हवि प्रदान करने वाले याजक के घर में भरपूर मात्रा में अन्न प्रदान करते हैं ॥८ ॥

२३५०. यो नो मरुतो वृकताति मर्त्यो रिपुर्दधे वसवो रक्षता रिषः ।
वर्तयत तपुषा चक्रियाभि तमव रुद्रा अशसो हन्तना वधः ॥९ ॥

हे आश्रय प्रदाता मरुद्‌गण ! जो मनुष्य भेड़िये की तरह हमसे शत्रुता करता है, उस हिंसक मनुष्य से हमारी रक्षा करें । उसे संताप जनक चक्र द्वारा चारों ओर से हरायें । हे रुद्रदेव ! आप शत्रुओं के आयुधों को दूर करके उन्हें नष्ट करें ॥९ ॥

२३५१. चित्रं तद्वो मरुतो याम चेकिते पृश्न्या यदूधरप्यापयो दुहुः ।
यद्वा निदे नवमानस्य रुद्रियास्त्रितं जराय जुरतामदाभ्याः ॥१० ॥



हे मरुद्गणो ! आप गाय के दुग्धाशय का दोहन करके दूध पीते और सबके प्रति मित्रभाव रखते हैं । आपने स्तोताओं के निन्दकों की हत्या की थी तथा त्रित नामक ऋषि के शत्रुओं का संहार किया था । आपका यह आश्चर्यजनक पराक्रम सर्वविदित है ॥१० ॥

२३५२. तान्वो महो मरुत एवयाव्नो विष्णोरेषस्य प्रभृथे हवामहे ।

हिरण्यवर्णान्ककुहान्यतस्रुचो ब्रह्मण्यन्तः शंस्यं राध ईमहे ॥११ ॥

हे द्रुतगामी मरुद्गणो !आपको हम अपने व्यापक हितों की पूर्ति की कामना से आवाहित करते हैं । हे सुवर्ण के समान तेजस्वी मरुद्गणो !पुण्य कार्य में निरत हम याजकगण आपसे प्रशंसनीय धन की याचना करते हैं ॥११ ॥

२३५३. ते दशग्वाः प्रथमा यज्ञमूहिरे ते नो हिन्वन्तूषसो व्युष्टिषु ।

उषा न रामीररुणैरपोर्णुते महो ज्योतिषा शुचता गोअर्णसा ॥१२ ॥

दसों इन्द्रियों को अपने वश में करने वाले अद्वितीय वीरों (मरुतों) ने पहले यज्ञ किया । उषाकाल आरंभ होते ही वे हमें प्रेरित करें । जिस प्रकार उषा की अरुणाभ किरणें अंधेरी रात्रि को हटाती हैं, उसी तरह मरुद्गण अपनी तेजस्वी किरणों से सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करते हैं ॥१२ ॥

२३५४. ते क्षोणीभिररुणेभिर्नाञ्जिभी रुद्रा ऋतस्य सदनेषु वावृधुः ।

निमेघमाना अत्येन पाजसा सुश्चन्द्रं वर्णं दधिरे सुपेशसम् ॥१३ ॥

रुद्रपुत्र ये मरुद्गण अरुणाभ वस्त्रालंकारों से अलंकृत होकर जल के निवास स्थल मेघ में विस्तार पाते हैं । ये मरुद्गण परस्पर मिलकर वेगयुक्त बल से जल लाते समय हर्षदायक तथा मनोहर सौन्दर्य धारण करते हैं ॥१३ ॥

२३५५. ताँ इयानो महि वरूथमूतय उप घेदेना नमसा गृणीमसि ।

त्रितो न यान्पञ्च होतृनभिष्टय आववर्तदवराञ्चक्रियावसे ॥१४ ॥

हम याजकगण उन मरुद्गणों से प्रशंसनीय धन की याचना करते हुए अपने संरक्षण के लिए स्तोत्रों के द्वारा उनकी स्तुतियाँ करते हैं । इन अत्यन्त श्रेष्ठ मरुद्गणों ने पाँच (पाँचों वर्ण) याजकों को चक्र रूपी हथियार से संरक्षण प्रदान करने के लिए त्रित नामक ऋषि को बुलाया था ॥१४ ॥

२३५६. यया रध्रं पारयथात्यंहो यया निदो मुञ्चथ वन्दितारम् ।

अर्वाची सा मरुतो या व ऊतिरो षु वाश्रेव सुमतिर्जिगातु ॥१५ ॥

हे मरुद्गणो ! आप जिस समर्थ संरक्षण से याजक को पाप से बचाते हैं; जिस संरक्षण से स्तोताओं को निन्दा करने वालों से मुक्त करते हैं; वही समर्थ संरक्षण हमें भी प्रदान करें ॥१५ ॥

[सूक्त - ३५]

[**ऋषि-** गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । **देवता-** अपांनपात् । **छन्द**-त्रिष्टुप् ।]

२३५७. उपेमसृक्षि वाजयुर्वचस्यां चनो दधीत नाद्यो गिरो मे ।

अपां नपादाशुहेमा कुवित्स सुपेशसस्करति जोषिषद्धि ॥१ ॥

अन्न और बल की कामना से हम इन स्तुतियों का उच्चारण करते हैं । द्रुतगामी अपांनपात् (अग्नि) देव हमारी स्तुतियों को स्वीकार करते हुए अन्नादि को पुष्ट बनायें और हमें उत्तम रूप प्रदान करें ॥१ ॥



२३५८. इमं स्वस्मै हृद आ सुतष्टं मन्त्रं वोचेम कुविदस्य वेदत्।
अपां नपादसुर्यस्य मह्ना विश्वान्यर्यो भुवना जजान ॥२ ॥

इन अपांनपात् देव के लिए हम हृदय से रचित मंत्रों का गान करें, जिन्हें वे स्वीकार करें । इन अपांनपात् देव ने अपनी असुर संहारक शक्ति की महिमा से समस्त लोकों को उत्पन्न किया है । ।२ ॥

२३५९. समन्या यन्त्युप यन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यः पृणन्ति।
तमू शुचिं शुचयो दीदिवांसमपां नपातं परि तस्थुरापः ॥३ ॥

कुछ जल प्रवाह पास आते हैं, अन्य प्रवाह दूर जाते हैं । नदियाँ संयुक्त होकर सागर में पहुँचती हैं । वहाँ वह जल अपांनपात् देव को चारों ओर से घेर लेता है ॥३ ॥

२३६०. तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परि यन्त्यापः।
स शुक्रेभिः शिक्वभी रेवदस्मे दीदायानिध्मो घृतनिर्णिगप्सु ॥४ ॥

जिस प्रकार अहंकार रहित स्त्री अपने युवा पति को अलंकृत करती है, उसी प्रकार दीप्तियुक्त स्वरूप वाले ये अपांनपात् देव जलमय प्रकृति में बिना ईंधन के ही (बड़वाग्नि रूप में) चमकते हैं । ये अपांनपात् देव हमें अपने तेजस्वी स्वरूप में धन प्रदान करें ॥४ ॥

२३६१. अस्मै तिस्रो अव्यथ्याय नारीर्देवाय देवीर्दिधिषन्त्यन्नम्।
कृता इवोप हि प्रसर्स्रे अप्सु स पीयूषं धयति पूर्वसूनाम् ॥५ ॥

तीन देवियाँ (इळा, सरस्वती तथा भारती) दुःख रहित अपांनपात् देव के लिए अन्न धारण करती हैं । जिस प्रकार जल के प्रवाह में कोई पदार्थ सुगमता से आगे बढ़ता है, उसी प्रकार ये तीनों देवियाँ आगे बढ़ती हैं । अपांनपात् देव जल में उत्पन्न अमृत का सर्व प्रथम पान करते हैं ॥५ ॥

२३६२. अश्वस्यात्र जनिमास्य च स्वर्द्रुहो रिषः सम्पृचः पाहि सूरीन्।
आमासु पूर्षु परो अप्रमृष्यं नारातयो वि नशन्नानृतानि ॥६ ॥

इन अपांनपात्देव के द्वारा ही अश्व (उच्चैःश्रवा नामक) का जन्म होता है । यह अश्व उत्तम सुखदायी है । हे अपांनपात् देव ! आप हिंसकों तथा द्रोहियों से स्तोताओं की रक्षा करें । अपरिपक्व बुद्धि वाले, असत्याचरण वाले तथा अदानी व्यक्ति इन अहिंसनीय अपांनपात् देव को नहीं प्राप्त कर सकते ॥६ । ।

२३६३. स्व आ दमे सुदुघा यस्य धेनुः स्वधां पीपाय सुभ्वन्नमत्ति।
सो अपां नपादूर्जयन्नप्स्व१न्तर्वसुदेयाय विधते वि भाति ॥७ ॥

अपने आवास में रहने वाले अपांनपात् देव की गौएँ सहज ही दुही जा सकती हैं । ये अपांनपात् देव अन्न की वृद्धि करते हुए उत्तम अन्न को स्वीकार करते हैं । ये देव जल के मध्य प्रबल होकर याजकों को धन देने की कामना से दीप्तिवान् होते हैं ॥७ ॥

२३६४. यो अप्स्वा शुचिना दैव्येन ऋतावाजस्र उर्विया विभाति।
वया इदन्या भुवनान्यस्य प्र जायन्ते वीरुधश्च प्रजाभिः ॥८ ॥

जल में रहने वाले, सत्ययुक्त, अनश्वर, अत्यन्त विशाल, अपांनपात् देव चारों ओर से प्रकाशित होते हैं । अन्य दूसरे भुवन इनकी शाखाओं के रूप में हैं । इन्हीं अपांनपात् देव से फल-फूल तथा अन्यान्य वनौषधियाँ समस्त प्रजा को प्राप्त होती हैं ॥८ ॥

२३६५. अपां नपादा ह्यस्थादुपस्थं जिह्मानामूर्ध्वो विद्युतं वसानः ।

तस्य ज्येष्ठं महिमानं वहन्तीर्हिरण्यवर्णाः परि यन्ति यह्वीः ॥९ ॥

ये अपांनपात् देव कुटिल गति से चलने वाले मेघों के ऊपर विद्युत् से आच्छादित होकर अन्तरिक्ष में रहते हैं । जब ये देव जल वृष्टि करते हैं, तब बड़ी-बड़ी नदियाँ चारों ओर से प्रवाहित होती हुई इन देव की महिमा का गान करती हैं ॥९ ॥

२३६६. हिरण्यरूपः स हिरण्यसन्दृगपां नपात्सेदु हिरण्यवर्णः ।

हिरण्ययात्परि योनेर्निषद्या हिरण्यदा ददत्यन्नमस्मै ॥१० ॥

ये अपांनपात् देव सुवर्ण के समान स्वरूप वाले,सुवर्ण के समान आँखों वाले,सुवर्ण के समान वर्णवाले हैं ।ये देव सुवर्णमय स्थल में विराजमान होकर सुशोभित होते हैं ।सुवर्ण प्रदान करने वाले याजक उन्हें अन्न देते हैं ॥१०॥

२३६७. तदस्यानीकमुत चारु नामापीच्यं वर्धते नप्तुरपाम् ।

यमिन्धते युवतयः समित्था हिरण्यवर्णं घृतमन्नमस्य ॥११ ॥

सुन्दर नाम वाले अपांनपात् देव की किरणें मेघों में रहकर विस्तार पाती हैं । सुवर्ण के समान तेजस्वी स्वरूप वाले अपांनपात् देव को अँगुलियाँ जल समर्पित करके विस्तृत करती हैं ॥११ ॥

२३६८. अस्मै बहूनामवमाय सख्ये यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।

सं सानु मार्ज्मि दिधिषामि बिल्मैर्दधाम्यन्नैः परि वन्द ऋग्भिः ॥१२ ॥

बहुतों में श्रेष्ठ, समान रूप से सबके मित्र इन अपांनपात् देव की (हम) आहुतियों एवं स्तुतियों द्वारा सेवा करते हैं । हम गिरि शिखरों की भाँति उनके स्वरूप को अलंकृत करते हैं । समिधाओं को प्रदीप्त करके अन्न की आहुतियाँ समर्पित करते हुए ऋचाओं के द्वारा हम अपांनपात् देव की वन्दना करते हैं ॥१२ ॥

२३६९. स ईं वृषाजनयत्तासु गर्भं स ईं शिशुर्धयति तं रिहन्ति ।

सो अपां नपादनभिम्लातवर्णोऽन्यस्येवेह तन्वा विवेष ॥१३ ॥

वृष्टि करने में समर्थ अपांनपात्देव जल से पूर्ण वायुमण्डल को उत्पन्न करते हैं । ये अपांनपात् देव छोटे शिशु की भाँति समुद्र से जल ग्रहण करके समस्त दिशाओं में जल को पहुँचाते हैं । ये अपांनपात् देव तेजस्वी होकर इस लोक में अन्य रूप में रहते हैं ॥१३ ॥

२३७०. अस्मिन्पदे परमे तस्थिवांसमध्वस्मभिर्विश्वहा दीदिवांसम् ।

आपो नप्त्रे घृतमन्नं वहन्तीः स्वयमत्कैः परि दीयन्ति यह्वीः ॥१४ ॥

ये अपांनपात् देव सर्वोत्कृष्ट स्थान में विराजमान रहते हैं । सतत प्रवाहशील महान् जल समूह उन अविनाशी तेजस्वी देव के निमित्त पोषक रस पहुँचाते हुए उन्हें घेरे रहते हैं ।

२३७१. अयांसमग्ने सुक्षितिं जनायायांसमु मघवद्भ्यः सुवृक्तिम् ।

विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१५ ॥

हे अग्निदेव ! आप उत्तम प्रकार से आश्रय प्रदान करते हैं, अतः सन्तति लाभ के निमित्त हम आपके पास आये हैं । देवगणों का कल्याणकारी संरक्षण हमें मिले तथा आपकी अनुकम्पा से ऐश्वर्यशाली भी हमसे श्रेष्ठ व्यवहार करें । हम श्रेष्ठ सन्तति सहित यज्ञ में देवगणों का यशोगान करें ॥१५ ॥



[सूक्त - ३६]

[**ऋषि**- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । **देवता**- ऋतुदेवता- १ इन्द्र एवं मधु, २ मरुत् एवं माधव, ३ त्वष्टा एवं शुक्र, ४ अग्नि एवं शुचि, ५ इन्द्र एवं नभ, ६ मित्रावरुण एवं नभस्य । **छन्द**- जगती]

२३७२. **तुभ्यं हिन्वानो वसिष्ट गा अपोऽधुक्षन्त्सीमविभिरद्रिभिर्नरः ।**

पिबेन्द्र स्वाहा प्रहुतं वषट्कृतं होत्रादा सोमं प्रथमो य ईशिषे ॥१ ॥

हे इन्द्रदेव ! इस सोम रस में गौ दुग्ध तथा जल मिश्रित है । याज्ञिकों द्वारा पत्थर से कूटकर निकाले गये इस सोम रस को ऊन की छननी से शोधित किया जाता है । हे इन्द्रदेव ! आप समस्त संसार के शासक हैं, अत: याजकों द्वारा वषट्कार पूर्वक स्वाहा के साथ समर्पित किये गये सोम को यज्ञ में आकर सबसे पहले आप पान करें ॥१ ॥

२३७३. **यज्ञैः सम्मिश्लाः पृषतीभिर्ऋष्टिभिर्यामञ्छुभ्रासो अञ्जिषु प्रिया उत ।**

आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः पोत्रादा सोमं पिबता दिवो नरः ॥२ ॥

यज्ञीय कार्य में सहायक, भूमि को सिंचित करने वाले,शस्त्रों से सुशोभित,आभूषण प्रेमी,भरण-पोषण में समर्थ, देवपुत्र तथा नेतृत्व प्रदान करने वाले हे मरुद्गणो !आप यज्ञ में विराजमान होकर पवित्र सोमरस का पान करें ॥२ ॥

२३७४. **अमेव नः सुहवा आ हि गन्तन नि बर्हिषि सदतना रणिष्टन ।**

अथा मन्दस्व जुजुषाणो अन्धसस्त्वष्टर्देवेभिर्जनिभिः सुमद्गणः ॥३ ॥

हे यशस्वी मरुतो ! आप हमारे पास आयें और कुश-आसन में विराजमान होकर सुशोभित हों । हे त्वष्टा देव ! आप देवगणों तथा दैवी शक्तियों के सोमरस का पान करके हर्षित हों ॥३ ॥

२३७५. **आ वक्षि देवाँ इह विप्र यक्षि चोशन्होतर्नि षदा योनिषु त्रिषु ।**

प्रति वीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिबाग्नीध्रात्तव भागस्य तृप्णुहि ॥४ ॥

हे मेधावी अग्निदेव ! हमारे इस यज्ञ में देवगणों को सत्कार पूर्वक बुलायें । हे होता अग्निदेव ! हमारे यज्ञ की कामना से आप तीनों लोकों में प्रतिष्ठित हों । शोधित सोमरस को स्वीकार करके इस यज्ञ में सोमपान करें, समर्पित किये गये भाग से आप तृप्त हों ॥४ ॥

२३७६. **एष स्य ते तन्वो नृम्णवर्धनः सह ओजः प्रदिवि बाह्वोर्हितः ।**

तुभ्यं सुतो मघवन्तुभ्यमाभृतस्त्वमस्य ब्राह्मणादा तृपत्पिब ॥५ ॥

हे इन्द्रदेव ! यह सोमरस आपके शरीर में शक्ति की वृद्धि करने वाला है । इसी सोम से आपकी भुजायें बलशाली हैं तथा आप तेजस्वी एवं ओजस्वी हैं । हे इन्द्रदेव ! आप के निमित्त ही यह सोमरस लाया गया है तथा शोधित किया गया है । ज्ञानी जनों द्वारा प्रदान किये गये सोमरस का पान करके आप तृप्त हों ॥५ ॥

२३७७. **जुषेथां यज्ञं बोधतं हवस्य मे सत्तो होता निविदः पूर्व्या अनु ।**

अच्छा राजाना नम एत्यावृतं प्रशास्त्रादा पिबतं सोम्यं मधु ॥६ ॥

हे मित्रावरुण ! आप हमारे यज्ञ में आयें । होतागण उत्तम स्तोत्रों से स्तुति करते हैं, अत: हमारे आवाहन को सुनकर यज्ञ में बैठकर सुशोभित हों । हे देवो ! याजकों द्वारा शोधित यह सोमरस दुग्ध मिश्रित है, अत: हमारे इस यज्ञ में आकर इस सोमरस का पान करें ॥६ ॥

[सूक्त - ३७]

[ऋषि- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । देवता- सविता । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

२३७८. मन्दस्व होत्रादनु जोषमन्धसोऽध्वर्यवः स पूर्णां वष्ट्यासिचम् ।
तस्मा एतं भरत तद्वशो ददिर्होत्रात्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥१ ॥

हे धन प्रदाता अग्निदेव ! होताओं के द्वारा समर्पित किये गये सोमरस का प्रसन्नतापूर्वक पान करके हर्षित हों । हे अध्वर्युगण ! अग्निदव पूर्णाहुति की कामना करते हैं, अत: उनके लिए सोमरस प्रदान करें । सोम की कामना वाले ये अग्निदेव तुम्हें धन प्रदान करेंगे । हे अग्निदेव ! यज्ञ में होताओं के द्वारा समर्पित किये गये इस सोमरस का ऋतु के अनुरूप पान करें ॥१ ॥

२३७९. यमु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो ददिर्यो नाम पत्यते ।
अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधु पोत्रात्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥२ ॥

जिन अग्निदेव को हमने पहले भी बुलाया था, उन्हें अब भी आवाहित करते हैं । ये अग्निदेव निश्चित ही याजकों को धन प्रदान करने वाले तथा सभी के स्वामी हैं, आवाहन के योग्य हैं । इन देव के लिए याजकों द्वारा सोमरस शोधित किया गया है । हे अग्निदेव ! इस पवित्र यज्ञ में ऋतु के अनुरूप सोमरस का पान करें ॥२ ॥

२३८०. मेद्यन्तु ते वह्नयो येभिरीयसेऽरिषण्यन्वीळयस्वा वनस्पते ।
आयूया धृष्णो अभिगूर्या त्वं नेष्ट्रात्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥३ ॥

हे द्रविणोदादेव ! आप जिस अश्व पर आरूढ़ होते हैं, वह तृप्त हो । हे वनस्पतिदेव ! आप हमें हिंसित न करके शक्तिशाली बनायें । हे शत्रुनाशक देव ! आप यज्ञ में पधार कर याज्ञिकों द्वारा समर्पित किये गये सोमरस का पान ऋतु के अनुरूप करें ॥३ ॥

२३८१. अपाद्धोत्रादुत पोत्रादमत्तोत नेष्ट्रादजुषत प्रयो हितम् ।
तुरीयं पात्रममृक्तममर्त्यं द्रविणोदाः पिबतु द्राविणोदसः ॥४ ॥

जो द्रविणोदादेव नेष्ट्रा के यज्ञ में पवित्र सोमरस का पान करके आनन्दित हुए, वे धन प्रदाता देव भली-भाँति शोधित किये गये, अमरत्व प्रदान करने वाले सोमरस का पान करें ॥४ ॥

२३८२. अर्वाञ्चमद्य यय्यं नृवाहणं रथं युञ्जाथामिह वां विमोचनम् ।
पृङ्क्तं हवींषि मधुना हि कं गतमथा सोमं पिबतं वाजिनीवसू ॥५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप अपने अभीष्ट स्थान पर ले जाने वाले द्रुतगामी रथ को हमारे यज्ञ स्थल में आने के लिए नियोजित करें । हमारे यज्ञ में आकर हमारे हविष्यान्न को सुस्वादु बनायें । हे आश्रय प्रदाता अश्विनीकुमारो ! आप दोनों सोम रस का पान करें ॥५ ॥

२३८३. जोष्यग्ने समिधं जोष्याहुतिं जोषि ब्रह्म जन्यं जोषि सुष्टुतिम् ।
विश्वेभिर्विश्वाँ ऋतुना वसो मह उशन्देवाँ उशतः पायया हविः ॥६ ॥

हे अग्निदेव ! आप हमारी समिधाओं से प्रदीप्त होकर आहुतियों को ग्रहण कर याजकों द्वारा की गयी सुन्दर स्तुतियों को स्वीकार करें । सोमपान की अभिलाषा वाले हे अग्निदेव ! आप सभी के आश्रय दाता हैं । आप सभी देवों, ऋभुओं और विश्वेदेवों के साथ सोमरस का पान करें ॥६ ॥



[सूक्त - ३८]

[ऋषि- गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । देवता- सविता । छन्द- त्रिष्टुप् ।]

२३८४. उदु ष्य देवः सविता सवाय शश्वत्तमं तदपा वह्निरस्थात् ।
नूनं देवेभ्यो वि हि धाति रत्नमथाभजद्वीतिहोत्रं स्वस्तौ ॥१ ॥

सम्पूर्ण जगत् को धारण करने वाले, प्रकाशक तथा तेजस्वी सवितादेव सभी (प्राणियों) को कर्म की प्रेरणा देते हुए प्रतिदिन उदित होते हैं । देवत्व धारियों (स्तोताओं) के लिए ये सवितादेव रत्न धारण करते हैं । अंत: वे स्तोता अपने मंगल की कामना से यज्ञ करें ॥१ ॥

२३८५. विश्वस्य हि श्रुष्टये देव ऊर्ध्वः प्र बाहवा पृथुपाणिः सिसर्ति ।
आपश्चिदस्य व्रत आ निमृग्रा अयं चिद्वातो रमते परिज्मन् ॥२ ॥

ये तेजस्वी सवितादेव उदित होकर सम्पूर्ण विश्व के सुख के लिए अपनी विशाल (किरणों रूपी) भुजाओं को फैलाते हैं । सवितादेव के अनुशासन में ही अत्यन्त पवित्र जल प्रवाहित होता है तथा उन्हीं के नियमों में आबद्ध वायु भी प्रवाहित होते हुए आनन्दित होती है ॥२ ॥

२३८६. आशुभिश्चिद्यान्वि मुचाति नूनमरीरमदतमानं चिदेतोः ।
अह्यर्षूणां चिन्न्ययाँ अविष्यामनु व्रतं सवितुर्मोक्यागात् ॥३ ॥

अस्त होते हुए सवितादेव अपनी द्रुतगामी रश्मियों को समेट कर चलते हुए यात्रियों को रोक देते हैं । शत्रुओं पर आक्रमण करने वाले वीरों को रोक देते हैं ।उनके इस कर्म की समाप्ति के बाद ही रात्रि का आगमन होता है ॥३ ॥

२३८७. पुनः समव्यद्विततं वयन्ती मध्या कर्तोर्न्यधाच्छक्म धीरः ।
उत्संहायास्थाद्व्यृ१ तूँरदर्धररमतिः सविता देव आगात् ॥४ ॥

अन्धकार रूपी रात्रि वस्त्र बुनने की तरह सम्पूर्ण प्रकाश को आबद्ध कर लेती है । ज्ञानीजन (ऐसी स्थिति में) करने योग्य कार्यों को बीच में ही रोक देते हैं तथा कभी न रुकने वाले ऋतु विभाग कर्त्ता सवितादेव के उदित होते ही सम्पूर्ण जगत् निद्रा को त्याग देता है ॥४ ॥

२३८८. नानौकांसि दुर्यो विश्वमायुर्वि तिष्ठते प्रभवः शोको अग्नेः ।
ज्येष्ठं माता सूनवे भागमाधादन्वस्य केतमिषितं सवित्रा ॥५ ॥

जिस प्रकार अग्नि का तेज घरों तथा समस्त जीवन में व्याप्त है, उसी प्रकार सवितादेव का तेज सम्पूर्ण लोकों में व्याप्त है । उषा माता सवितादेव द्वारा प्रदत्त यज्ञ के श्रेष्ठ भाग को अपने पुत्र अग्नि के लिए धारण करती हैं ॥५ ॥

२३८९. समाववर्ति विष्ठितो जिगीषुर्विश्वेषां कामश्चरताममाभूत् ।
शश्वाँ अपो विकृतं हित्व्यागादनु व्रतं सवितुर्दैव्यस्य ॥६ ॥

सवितादेव के अस्त हो जाने पर विजयाकांक्षी वीर योद्धा आक्रमण को बीच में ही रोक देता है । गतिमान् प्राणी घर जाने की इच्छा करते हैं तथा सतत कार्य करने वाले भी अधूरे काम को रोककर घर लौट आते हैं ॥६ ॥

२३९०. त्वया हितमप्यमप्सु भागं धन्वान्वा मृगयसो वि तस्थुः ।
वनानि विभ्यो नकिरस्य तानि व्रता देवस्य सवितुर्मिनन्ति ॥७ ॥

हे सवितादेव ! अन्तरिक्ष में आपने जो जल भाग स्थापित किया है, उसे प्राणी मरुप्रदेशों में भी प्राप्त करते

हैं । आपने ही पक्षियों के (आश्रय) के लिए जंगल प्रदान किये हैं । ऐसे तेजस्वी सविता देव के कर्म को कोई नष्ट नहीं कर सकता ॥७ ॥

२३९१. याद्राध्यं१ वरुणो योनिमप्यमनिशितं निमिषि जर्भुराणः ।
विश्वो मार्ताण्डो व्रजमा पशुर्गात्स्थशो जन्मानि सविता व्याकः ॥८ ॥

सविता देव के अस्त हो जाने पर सतत गमनशील वरुण देव सभी को सुखकारी तथा वांछनीय आश्रय प्रदान करते हैं । इस प्रकार सवितादेव के अस्त होते ही पक्षी तथा जानवर अपने-अपने स्थान पर पहुँचकर अलग-अलग हो जाते हैं ॥८ ॥

२३९२. न यस्येन्द्रो वरुणो न मित्रो व्रतमर्यमा न मिनन्ति रुद्रः ।
नारातयस्तमिदं स्वस्ति हुवे देवं सवितारं नमोभिः ॥९ ॥

जिन सवितादेव के अनुशासन को इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा तथा रुद्रदेव भी नहीं तोड़ सकते हैं और न ही शत्रु तोड़ सकते हैं-- ऐसे तेजस्वी सवितादेव को हम अपने मंगल की कामना से नमस्कार पूर्वक आवाहित करते हैं ॥९ ॥

२३९३. भगं धियं वाजयन्तः पुरन्धिं नराशंसो ग्नास्पतिर्नो अव्याः ।
आये वामस्य सङ्गथे रयीणां प्रिया देवस्य सवितुः स्याम ॥१० ॥

समस्त जगत् को धारण करने वाले, सुखदाता, स्तुत्य, भजनीय, ज्ञानदाता तथा प्रजा पालक सविता देव हमारी रक्षा करें ।उत्तम ऐश्वर्य तथा पशु आदि सम्पदाओं के प्राप्त होने पर भी हम सवितादेव के प्रिय होकर रहें ॥१० ॥

२३९४. अस्मभ्यं तद्दिवो अद्भ्यः पृथिव्यास्त्वया दत्तं काम्यं राध आ गात् ।
शं यत्स्तोतृभ्य आपये भवात्युरुशंसाय सवितर्जरित्रे ॥११ ॥

हे सवितादेव ! आपके द्वारा प्रदत्त ऐश्वर्य स्तोताओं तथा उनके वंशजों के लिए कल्याणकारी हैं, अतः द्युलोक, भूलोक तथा अन्तरिक्षलोक का कान्तियुक्त ऐश्वर्य हमें प्रदान करें । हम आपकी स्तुति करते हैं ॥११ ॥

[सूक्त - ३९]

[**ऋषि** - गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । **देवता**- अश्विनीकुमार । **छन्द**- त्रिष्टुप् ।]

२३९५. ग्रावाणेव तदिदर्थं जरेथे गृध्रेव वृक्षं निधिमन्तमच्छ ।
ब्रह्माणेव विदथ उक्थशासा दूतेव हव्या जन्या पुरुत्रा ॥१ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिस प्रकार पक्षी फल से लदे वृक्ष की ओर जाते हैं, वैसे ही आप यजमानों के पास पहुँचें । दो शिलाखण्डों से उत्पन्न ध्वनि की तरह (शब्दनाद करते हुए) शत्रुओं को बाधा पहुँचायें ।यज्ञ में ब्रह्मा नामक ऋत्विक् तथा जनता के हितकारी दूतों की तरह आप बहुतों के द्वारा सम्मान पूर्वक बुलाने योग्य हैं ॥१ ॥

२३९६. प्रातर्यावाणा रथ्येव वीराजेव यमा वरमा सचेथे ।
मेने इव तन्वा३ शुम्भमाने दम्पतीव क्रतुविदा जनेषु ॥२ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप प्रभात वेला में यात्रा करने वाले दो रथियों की तरह महारथी वीर हैं, दो जुड़वा भाई जैसे हैं । दो स्त्रियों की तरह सुन्दर शरीर वाले हैं । पति-पत्नी के समान परस्पर सम्बद्ध रहकर कार्य करने वाले हैं । आप अपने श्रेष्ठ भक्तों के पास जाते हैं ॥२ ॥

२३९७. शृङ्गेव नः प्रथमा गन्तमर्वाक् छफाविव जर्भुराणा तरोभिः ।
चक्रवाकेव प्रति वस्तोरुस्रार्वाञ्चा यातं रथ्येव शक्रा ॥३ ॥



हे अश्विनीकुमारो ! सींगों के समान अग्रणी एवं खुरों के समान गतिमान् होकर आप हमारे पास आयें ।अपने कर्म में समर्थ, शत्रुहन्ता हे अश्विनीकुमारो ! जिस तरह चक्रवाक् दम्पती अथवा दो महारथी आते हैं, उसी तरह आप दोनों हमारे पास आयें ॥३ ॥

२३९८. नावेव नः पारयतं युगेव नभ्येव न उपधीव प्रधीव ।
श्वानेव नो अरिषण्या तनूनां खृगलेव विस्रसः पातमस्मान् ॥४ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! नौका की तरह, रथ में जुड़े अश्वों के समान, रथचक्र के केन्द्र में लगे दण्डों के समान, रथ में लगे बगल के दो दण्डों के समान, रथ में लगे पहियों के दो हालों (लोहे के चक्रों) के समान हमें संकटों से पार करें । दायें-बायें चलने वाले दो कुत्तों तथा कवचों के समान रक्षक होकर हमारे शरीरों की रक्षा करते हुए हमें नाश से बचायें ॥४ ॥

२३९९. वातेवाजुर्या नद्येव रीतिरक्षी इव चक्षुषा यातमर्वाक् ।
हस्ताविव तन्वे३शम्भविष्ठा पादेव नो नयतं वस्यो अच्छ ॥५ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! जीर्ण न होने वाले वायु प्रवाह के समान सदैव गतिमान्, नदियों की भाँति तथा दो आँखों के समान दर्शन शक्ति से युक्त होकर आप दोनों हमारे पास आयें । आप दोनों शरीर के लिए सुखदायी हाथों, पैरों के समान हैं । आप हमें पाँवों के समान श्रेष्ठ मार्ग में ले चलें ॥५ ॥

२४००. ओष्ठाविव मध्वास्ने वदन्ता स्तनाविव पिप्यतं जीवसे नः ।
नासेव नस्तन्वो रक्षितारा कर्णाविव सुश्रुता भूतमस्मे ॥६ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! मुख के ओंठों के समान मधुर वचन कहते हुए आप दोनों जिस तरह स्तनों (के पान) से बच्चे पुष्ट होते हैं, उसी प्रकार हमारे जीवन वृद्धि के लिए हमें पुष्ट बनायें । आप दोनों नाकों के समान शरीर के संरक्षक तथा दोनों कानों के समान उत्तम रीति से श्रवण करने वाले बनें ॥६ ॥

२४०१. हस्तेव शक्तिमभि सन्ददी नः क्षामेव नः समजतं रजांसि ।
इमा गिरो अश्विना युष्मयन्तीः क्ष्णोत्रेणेव स्वधितिं सं शिशीतम् ॥७ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों हाथों की तरह हमें शक्ति-सामर्थ्य प्रदान करें । द्युलोक तथा पृथिवी लोक की तरह भली-भाँति आश्रय प्रदान करें । हे अश्विनीकुमारो ! जिस तरह से तलवार को शान चढ़ाकर तीक्ष्ण बनाते हैं, उसी प्रकार हमारी स्तुतियों को भली-भाँति प्रभावशाली बनायें ॥७ ॥

२४०२. एतानि वामश्विना वर्धनानि ब्रह्म स्तोमं गृत्समदासो अक्रन् ।
तानि नरा जुजुषाणोप यातं बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ।८ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! आपकी कीर्ति के विस्तार के लिए गृत्समद ऋषि ने ज्ञानदायी स्तोत्र बनाये हैं । आप नेतृत्व प्रदान करने वाले हैं; अतः उन (स्तोत्रों) को स्वीकार करते हुए आप दोनों हमारे पास आयें । हम यज्ञ में सुसन्तति युक्त होकर आपका यशोगान करें ॥८ ॥

[सूक्त - ४०]

[**ऋषि** - गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गवशौनक । **देवता**- सोमापूषा, ६ अन्तिम आधी ऋचा का अदिति । **छन्द**-त्रिष्टुप् ।]

२४०३. सोमापूषणा जनना रयीणां जनना दिवो जनना पृथिव्याः ।
जातौ विश्वस्य भुवनस्य गोपौ देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ॥१ ॥

हे सोमदेव तथा पूषादेव ! आप दोनों द्युलोक तथा पृथ्वीलोक के ऐश्वर्य उत्पादक हैं । जन्म लेते ही आप दोनों समस्त संसार के संरक्षक हुए हैं । देवों ने आपको अमृत का केन्द्र बनाया है ॥१ ॥

२४०४. इमौ देवौ जायमानौ जुषन्तेमौ तमांसि गूहतामजुष्टा ।
आभ्यामिन्द्रः पक्वमामास्वन्तः सोमापूषभ्यां जनदुस्त्रियासु ॥२ ॥

सोमदेव तथा पूषादेव के जन्म लेते ही सभी देवगण इन दोनों की सेवा करने लगे । ये दोनों देव अप्रिय अन्धकार को नष्ट करते हैं । इन्द्रदेव ने इन सोम तथा पूषादेवों की मदद से तरुणी धेनुओं में पक्व दुग्ध उत्पन्न किया ॥२ ॥

२४०५. सोमापूषणा रजसो विमानं सप्तचक्रं रथमविश्वमिन्वम् ।
विषूवृतं मनसा युज्यमानं तं जिन्वथो वृषणा पञ्चरश्मिम् ॥३ ॥

हे सोम तथा पूषादेवो ! आप समस्त लोकों के उत्पन्न करने वाले, सर्वव्यापी, समस्त संसार के रक्षक, सात ऋतु रूप (मलमास सहित) चक्रों से युक्त, इच्छा से संचालित होने वाले, पाँच लगामों वाले रथ को हमारी ओर प्रेरित करें ॥३ ॥

२४०६. दिव्य १ न्यः सदनं चक्र उच्चा पृथिव्यामन्यो अध्यन्तरिक्षे ।
तावस्मभ्यं पुरुवारं पुरुक्षुं रायस्पोषं वि ष्यतां नाभिमस्मे ॥४ ॥

आप में से एक ऊँचे द्युलोक में रहते हैं तथा दूसरे अन्तरिक्ष और पृथिवी में रहते हैं । वे दोनों देव हमारे लिए स्वीकार करने योग्य, बहुत प्रकार के, अन्नादि से पूर्ण, पुष्टिकारक ऐश्वर्य प्रदान करें तथा पशु धन भी दें ॥४ ॥

२४०७. विश्वान्यन्यो भुवना जजान विश्वमन्यो अभिचक्षाण एति ।
सोमापूषणाववतं धियं मे युवाभ्यां विश्वाः पृतना जयेम ॥५ ॥

हे सोम तथा पूषा देवो ! आप में से एक ने समस्त संसार को उत्पन्न किया है तथा दूसरे देव सम्पूर्ण संसार का पर्यवेक्षण करते हुए जाते हैं । हे सोम तथा पूषा देवो ! आप हमें सद्‌बुद्धि प्रदान करते हुए हमारे कर्मों की रक्षा करें । आपकी मदद से हम शत्रु सेना पर विजय प्राप्त करें ॥५ ॥

२४०८. धियं पूषा जिन्वतु विश्वमिन्वो रयिं सोमो रयिपतिर्दधातु ।
अवतु देव्यदितिरनर्वा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥६ ॥

समस्त विश्व को तृप्त करने वाले पूषादेव हमारी बुद्धियों को सन्मार्गगामी बनायें । ऐश्वर्यपति सोमदेव हमें धन प्रदान करें । अनुकूल व्यवहार करने वाली (देवों की माता) अदिति हमारी रक्षा करें । हम सुसन्तति युक्त होकर यज्ञ में आपका यशोगान करें ॥६ ॥

[सूक्त - ४१]

[**ऋषि** - गृत्समद् (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । **देवता**- १-२ वायु, ३ इन्द्रवायू , ४-६ मित्रावरुण, ७-९ अश्विनीकुमार, १०-१२ इन्द्र, १३-१५ विश्वेदवा, १६-१८ सरस्वती, १९-२१ द्यावा-पृथिवी अथवा हविर्धान, १९ के तृतीय पाद का विकल्प से अग्नि । **छन्द**- गायत्री, ८, १६-१७ अनुष्टुप्, १८ बृहती ।]

२४०९. वायो ये ते सहस्त्रिणो रथासस्तेभिरा गहि । नियुत्वान्त्सोमपीतये ॥१ ॥

हे वायुदेव ! आप अपने घोड़ों से युक्त हजारों रथों से सोम पान करने के लिए आयें ॥१ ॥

२४१०. नियुत्वान्वायवा गह्ययं शुक्रो अयामि ते । गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥२ ॥

याज्ञिकों के पास नियुत (रथ) में सवार होकर पहुँचने वाले हे वायुदेव ! आपके निमित्त यह देदीप्यमान सोमरस तैयार किया गया है । इस हेतु हम आपका आवाहन करते हैं ॥२ ॥



२४११. शुक्रस्याद्य गवाशिर इन्द्रवायू नियुत्वतः । आ यातं पिबतं नरा ॥३ ॥

हे नेतृत्व प्रदान करने वाले इन्द्र और वायुदेवो ! आप आज घोड़ों से युक्त होकर गौ का दूध मिला हुआ तेजस्वी सोमरस पीने के लिए आयें और पान करें ॥३ ॥

२४१२. अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा । ममेदिह श्रुतं हवम् ॥४ ॥

यज्ञ को बढ़ाने वाले हे मित्र और वरुणदेवो ! उत्तम रीति से तैयार एवं शुद्ध किया गया यह सोमरस आपके निमित्त प्रस्तुत है । हमारी यह प्रार्थना सुनें ॥४ ॥

२४१३. राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे । सहस्रस्थूण आसाते ॥५ ॥

आपस में कभी द्रोह न करने वाले हे तेजस्वी मित्र और वरुण देवो ! हजार स्तम्भों पर स्थिर, सशक्त, श्रेष्ठ यज्ञ मण्डप में आप विराजें ॥५ ॥

२४१४. ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती । सचेते अनवह्वरम् ॥६ ॥

सम्राट् रूप, घृताहुति स्वीकार करने वाले, दानशील अदिति पुत्र मित्र और वरुणदेव, कुटिलता से रहित (सरल हृदय वाले) , साधकों (याजकों) की ही सहायता करते हैं ॥६ ॥

२४१५. गोमदू षु नासत्याश्वावद्यातमश्विना । वर्ती रुद्रा नृपाय्यम् ॥७ ॥

हे अश्विनीकुमारो ! हे सत्य सेवी रुद्रदेवो ! जिस सोमरस का पान यज्ञ में नेतृत्व प्रदान करने वाले लोग करेंगे, उस सोमरस को गौओं तथा अश्वों से युक्त रथ में आप भली-भाँति लायें ॥७ ॥

२४१६. न यत्परोनान्तर आदधर्षद्वृषण्वसू । दुःशंसो मर्त्यो रिपुः ॥८ ॥

हे धनवर्षक अश्विनीकुमारो ! समीप में रहनेवाले या दूर रहने वाले कटुभाषी शत्रु जिस धन को नहीं चुरा सकते, उसे हमें प्रदान करें ॥८ ॥

२४१७. ता न आ वोळ्हमश्विना रयिं पिशङ्गसन्दृशम् । धिष्ण्या वरिवोविदम् ॥९ ॥

हे उत्तम स्तुति के योग्य अश्विनीकुमारो ! आपके पास जो सुवर्णयुक्त नाना प्रकार का ऐश्वर्य है, वह धन हमारे लिए ले आये ॥९ ॥

२४१८. इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभी षदप चुच्यवत् । स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥१० ॥

युद्ध में स्थिर रहने वाले विश्वद्रष्टा इन्द्रदेव महान् पराभवकारी भय को शीघ्र ही दूर करते हैं ॥१० ॥

२४१९. इन्द्रश्च मृळयाति नो न नः पश्चादघं नशत् । भद्रं भवाति नः पुरः ॥११ ॥

यदि इन्द्रदेव हमें सुखप्रदान करेंगे, तो हमें पाप नष्ट नहीं कर सकता, वे हर प्रकार से हमारा कल्याण ही करेंगे ॥११ ॥

२४२०. इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् । जेता शत्रून्विचर्षणिः ॥१२ ॥

शत्रुविजेता, प्रज्ञावान् इन्द्रदेव सभी दिशाओं से हमें निर्भय बनायें ॥१२ ॥

२४२१. विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमं हवम् । एदं बर्हिर्नि षीदत ॥१३ ॥

हे सम्पूर्ण देवगणो ! आप इस यज्ञ में आकर कुश के आसन पर विराजमान हों तथा हमारी इस प्रार्थना को स्वीकार करें ॥१३ ॥

२४२२. तीव्रो वो मधुमाँ अयं शुनहोत्रेषु मत्सरः । एतं पिबत काम्यम् ॥१४ ॥

हे सम्पूर्ण देवगणो ! पवित्रता प्रदान करने वाले इस यज्ञ में आनन्ददायी, तीक्ष्ण तथा मधुर सोमरस आपके निमित्त तैयार किया गया है, आप सभी आयें तथा इच्छानुसार इस सोमरस का पान करें ॥१४ ॥

२४२३. इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः। विश्वे मम श्रुता हवम् ॥१५ ॥

जिन मरुद्गणों में सर्वश्रेष्ठ इन्द्रदेव हैं, जिन्हें पोषण देने वाले पूषादेव हैं, वे मरुद्गण हमारी प्रार्थना को स्वीकार करें ॥१५ ॥

२४२४. अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति।
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि ॥१६ ॥

हे नदियों, मातृगणों, देवों में सर्वश्रेष्ठ माता सरस्वती ! हम मूर्ख बालकों के समान हैं; अतः हमें उत्तम ज्ञान प्रदान करें ॥१६ ॥

२४२५. त्वे विश्वा सरस्वति श्रितायूंषि देव्याम्।
शुनहोत्रेषु मत्स्व प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥१७ ॥

हे माता सरस्वती ! आपके तेजस्वी आश्रय में ही सम्पूर्ण जीवन-सुख आश्रित है, अतः हे माता ! आप पवित्र करने वाले यज्ञ में आनन्दित होकर हमें उत्तम सन्तति प्रदान करें ॥१७ ॥

२४२६. इमा ब्रह्म सरस्वति जुषस्व वाजिनीवति।
या ते मन्म गृत्समदा ऋतावरि प्रिया देवषु जुह्वति ॥१८ ॥

हे माता सरस्वती ! आप अन्न तथा बल प्रदान करके सत्य मार्ग पर चलाने वाली हैं; अतः देवों को प्रिय लगने वाले गृत्समद ऋषि द्वारा बनाये गये उत्तम स्तोत्र हम आपको सुनाते हैं; आप इन स्तोत्रों को स्वीकार करें ॥१८ ॥

२४२७. प्रेतां यज्ञस्य शम्भुवा युवामिदा वृणीमहे। अग्निं च हव्यवाहनम् ॥१९ ॥

हे मंगलकारी द्यावा - पृथिवि ! हव्यवाहक अग्निदेव के साथ आप दोनों का हम वरण करते हैं। आप हमारी प्रार्थना को स्वीकार करके यज्ञ में आयें ॥१९ ॥

२४२८. द्यावा नः पृथिवी इमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम्। यज्ञं देवेषु यच्छताम् ॥२० ॥

हे द्यावा - पृथिवि ! सुख के साधक तथा आकाश तक हमारी हवि को स्पर्श कराने वाले यज्ञ को आज आप दोनों देवों तक ले जायें ॥२० ॥

२४२९. आ वामुपस्थमद्रुहा देवाः सीदन्तु यज्ञियाः। इहाद्य सोमपीतये ॥२१ ॥

परस्पर सम्बद्ध रहने वाली (द्रोह न करने वाली) हे द्यावा-पृथिवी देवियो ! आज इस यज्ञ में देवगण सोमपान के निमित्त आपके पास बैठें ॥२१ ॥

[सूक्त - ४२]

[ऋषि - गृत्समद (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गवशौनक।
देवता-शकुन्त (कपिञ्जल रूपी इन्द्र)। छन्द- त्रिष्टुप्।]

२४३०. कनिक्रदज्जनुषं प्रब्रुवाण इयर्ति वाचमरितेव नावम्।
सुमङ्गलश्च शकुने भवासि मा त्वा का चिदभिभा विश्व्या विदत् ॥१ ॥

जिस प्रकार मल्लाह नाव को चलाता है, उसी प्रकार उपदेश देने वाला शकुनि बार-बार उत्तम वाणी द्वारा प्रेरित करता है। हे शकुनि ! आप सबके कल्याण करने वाले हों। आपको कोई आक्रमणकारी शत्रु किसी भी प्रकार का कष्ट न दे ॥१ ॥



२४३१. मा त्वा श्येन उद्वधीन्मा सुपर्णो मा त्वा विददिषुमान्वीरो अस्ता ।
पित्र्यामनु प्रदिशं कनिक्रदत्सुमङ्गलो भद्रवादी वदेह ॥२ ॥

हे शकुनि (उपदेशक) ! आपको श्येन (दुष्ट व्यक्ति) न मारे और न ही गरुड़ पक्षी (बलशाली) तुम्हें मारे । कोई शस्त्रास्त्रधारी आपको न प्राप्त कर सके । दक्षिण दिशा (विपरीत परिस्थितियों) में भी कल्याणकारी वचनों का ही यहाँ उच्चारण करें ॥२ ॥

२४३२. अव क्रन्द दक्षिणतो गृहाणां सुमङ्गलो भद्रवादी शकुन्ते ।
मा नः स्तेन ईशत माघशंसो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥३ ॥

हे शकुनि ! आप मंगलमय शब्दों को बोलने वाले हैं; अत: घर की दक्षिण दिशा में बैठकर भी कल्याणकारी प्रिय वचन बोलें । चोर तथा दुष्ट व्यक्ति हमारे ऊपर अधिकार न करें । सुसंतति युक्त होकर हम इस यज्ञ में आप का यशोगान करें ॥३ ॥

[सूक्त - ४३]

[**ऋषि** - गृत्समद् (आङ्गिरस शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । **देवता**-शकुन्त (कपिञ्जल रूपी इन्द्र) **छन्द**- जगती; २ अतिशक्वरी अथवा अष्टि ।]

२४३३. प्रदक्षिणिदभि गृणन्ति कारवो वयो वदन्त ऋतुथा शकुन्तयः ।
उभे वाचौ वदति सामगा इव गायत्रं च त्रैष्टुभं चानु राजति ॥१ ॥

स्तोताओं के समान समय-समय पर अन्न की खोज करने वालों की तरह शकुनिगण दायीं ओर (सम्मानपूर्वक) बैठकर उपदेश दें । जिस तरह साम गायक गायत्री और त्रिष्टुप् छन्द से युक्त दोनों वाणियों का उच्चारण करता है, उसी तरह यह शकुनि उत्तम वाणी बोलते हुए सुशोभित होता है ॥१ ॥

२४३४. उद्गातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि ।
वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या सर्वतो नः शकुने भद्रमा
वद विश्वतो नः शकुने पुण्यमा वद ॥२ ॥

हे शकुनि ! आप उद्गाता की तरह सामगान करते हैं तथा यज्ञ में ऋत्विक् की भाँति स्तोत्रों का उच्चारण करते हैं । जिस प्रकार बलशाली अश्व घोड़ी के पास जाकर शब्दनाद करता है, उसी प्रकार हे शकुनि ! आप चारों ओर से हमारे लिए कल्याणकारक तथा पुण्यकारक वचन ही बोलें ॥२ ॥

२४३५. आवदंस्त्वं शकुने भद्रमा वद तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धि नः ।
यदुत्पतन्वदसि कर्करिर्यथा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥३ ॥

हे शकुनि ! जिस समय आप बोलते हैं, उस समय हमारे कल्याण का संकेत करते हैं । जिस समय शान्त बैठते हैं, उस समय हमारी बुद्धि को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करते हैं । उड़ते समय कर्करी बाजे (वाद्ययंत्र) के समान मधुर ध्वनि करते हैं । हम सुसन्तति युक्त होकर इस यज्ञ में आपका यशोगान करें । ।३ ॥

॥ इति द्वितीयं मण्डलम् ॥





परिशिष्ट - १

ऋग्वेद भाग-१ के ऋषियों का संक्षिप्त परिचय

१. **अगस्त्य मैत्रावरुणि (१.१६५.१३-१५)** *-- अगस्त्य मैत्रावरुणि का ऋषित्व प्रायः चारों वेदों में दृष्टिगोचर होता है। इन्हें मैत्रावरुणि (मित्रावरुण के पुत्र) के रूप में उल्लिखित किया गया है। ऋग्वेद १.१८९.८ में इन्हें मान्य (मान के पुत्र) के रूप में भी उपन्यस्त किया गया है। विश्पला की टाँग की चिकित्सा में इन्होंने अश्विनीकुमारों की सहायता की थी। सप्तऋषियों में इनका नाम भी प्रतिष्ठित है। अगस्त्य और वसिष्ठ दोनों को मित्रावरुण एवं उर्वशी से उत्पन्न माना जाता है(बृह० ५.१५०)। अगस्त्य ऋषि की पत्नी के रूप में लोपामुद्रा का नाम प्रसिद्ध है। आचार्य सायण ने ऋग्वेद-भाष्य में इनके ऋषित्व का स्पष्ट विवेचन किया है- **'मरुतां वाक्यमन्त्यस्तृचो ऽगस्त्यस्य'** (ऋ० १.१६५ सा० भा०) ।

२. **अगस्त्य शिष्यगण (ब्रह्मचारी) (१.१७९.५-६)** -- ऋग्वेद के एक सूक्त १.१७९ का ऋषित्व अगस्त्य, लोपामुद्रा और उनके शिष्यगणों को प्राप्त हुआ है। इस सूक्त की छः ऋचाओं में प्रत्येक द्वारा दो-दो ऋचाएँ दृष्ट हैं। अगस्त्य शिष्यों का ऋषित्व वैदिक संहिता में अन्यत्र अनुपलब्ध है। ऋग्वेद अनुक्रमणीकार ने इन ब्रह्मचारी शिष्यों का नामोल्लेख **'अन्त्ये बृहत्यादी'** किया है- **'पूर्वीः षड्जायापत्योर्लोपामुद्राया अगस्त्यस्य च द्वृचाभ्यां रत्यर्थं संवादं श्रुत्वान्तेवासी ब्रह्मचार्यन्त्ये बृहत्यादी अपश्यत्'** (ऋ० १.१७९ सा० भा०)।

३. **इन्द्र (१.१६५. १,२,४,६,८, १०- १२)** -- वैदिक संहिताओं में अनेक स्थानों पर देवों का भी ऋषित्व दृष्टिगोचर होता है। संभव है ऋषि ने जिस देव की स्तुति अथवा दर्शन से प्रसिद्धि प्राप्त की, उसी देवनाम से वे विख्यात हुए हों। 'इन्द्र' का ऋषित्व ऋग्वेद और यजुर्वेद के अनेक स्थानों पर मिलता है। अनुक्रमणीकार ने 'इन्द्र' के ऋषित्व को प्रमाणित किया है- **'शिष्टा इन्द्रस्यैकादशी च मरुत्वांस्त्विन्द्रो देवता'** । आचार्य सायण ने ऋग्वेद भाष्य में इनके ऋषित्व को प्रमाणित किया है -**'शिष्टा युज आद्या च एकादशी च इन्द्रस्य वाक्यम्'** (ऋ० १.१६५ सा० भा०)।

४. **ऋज्राश्व, अम्बरीष, सहदेव, भयमान, सुराधस् वार्षागिर (१.१००)** -- ऋज्राश्व, अम्बरीष, सहदेव, भयमान और सुराधस् वार्षागिर इन पाँचों का सम्मिलित ऋषित्व सूक्त १.१०० में दृष्टिगोचर होता है, जो वृषागिर् के पुत्र माने जाते हैं। इसी सूक्त के १७वें मंत्र में इन ऋषि भाइयों के द्वारा इन्द्रदेव की स्तुति करने का उल्लेख भी मिलता है। ऋज्राश्व और अम्बरीष का स्वतंत्र ऋषित्व तथा इनका उल्लेख अन्यत्र भी मिलता है, परन्तु अन्य भाइयों का नहीं मिलता। आचार्य सायण ने इन पाँचों ऋषि भ्राताओं को वृषागिर् के पुत्रों के रूप में ही निरूपित किया है- **अत्रानुक्रम्यते- 'स यो वृषैकोना वार्षागिरा ऋज्राश्वाम्बरीषसहदेवभयमानसुराधसः' इति। वृषागिरो महाराजस्य पुत्रभूताः ऋज्राश्वादयः पञ्च राजर्षयः सह इदं सूक्तं ददृशुः** (ऋ० १.१०० सा० भा०)।

५. **कक्षीवान् दैर्घतमस (औशिज) (१.११६-१२५)** -- कक्षीवान् ऋषि का उल्लेख ऋग्वेद में अनेक स्थानों में आता है। ऋ० १.१८.१ में औशिज के रूप में और ऋ० ८.९.१० में दीर्घतमस् के साथ ये उल्लिखित हुए हैं। बृहद्देवता ४.२४-२५ के अनुसार दीर्घतमस् ने अंगराज की दासी उशिज् से कक्षीवान् को उत्पन्न किया। उशिज् एवं दीर्घतमस् से उत्पन्न होने के कारण ही इन्हें औशिज (ऋ० १.११२.११) और दैर्घतमस कहा गया है। अथर्ववेद ४.२९.५में इन्हें कण्व, भरद्वाज आदि ऋषियों के साथ उल्लिखित किया गया है। ऐत० ब्रा० १.२१ में इनके द्वारा परम लोक जीतने का उल्लेख आया है। आचार्य सायण ने ऋग्वेद भाष्य में ऋषि विषयक उल्लेख में उक्त तथ्यों की पुष्टि की है- **उशिक्संज्ञायामङ्गराजस्य महिष्या दास्यां दीर्घतमसोत्पादितः कक्षीवान् अस्य सूक्तस्य ऋषिः ..... तथा चानुक्रान्तं - 'नासत्याभ्यां पञ्चाधिका कक्षीवान्दैर्घतमस उशिक्प्रसूत आश्विनं वै'** (ऋ० १.११६ सा० भा०) । निरुक्त में भी **'उशिजः पुत्रः - औशिजः'** के रूप में इनका विवेचन किया गया है- **कक्षीवान् कक्ष्यावानौशिज उशिजः पुत्रः** (नि० ६.३.१०) । ऋ० १.११६.७ में इन्हें 'पज्रिय' (पज्र- वंशीय) भी कहा गया है।

---

* ऋग्वेद के मण्डल , सूक्त तथा मन्त्रों की संख्या



६. **कण्व घौर (१.३६- ४३)** -- कण्व घौर का ऋषित्व अथर्ववेद के अतिरिक्त तीनों वेदों में दृष्टिगोचर होता है। ऋग्वेद के प्रथम सात मण्डलों के सात प्रमुख ऋषियों में 'कण्व घौर' का नाम प्रयुक्त हुआ है। आठवें मण्डल की ऋचाओं की रचना भी कण्व परिवार की ही है। वैदिक संहिताओं एवं परवर्त्ती साहित्य में इनका उल्लेख अनेक स्थानों पर हुआ है।'कण्व' के गोत्रज 'काण्वों' अथवा 'काण्वायनों' का उल्लेख और ऋषित्व भी अनेक स्थानों पर मिलता है। बृहद्देवताकार ने कण्व और प्रगाथ को घोर के दो पुत्रों के रूप में विवेचित किया है- **कण्वश्चैव प्रगाथश्च घोरपुत्रौ बभूवतुः** (बृह० ६.३५) । आचार्य सायण ने भी इन्हें घोर-पुत्र के रूप में अङ्गीकृत किया है- **घोरपुत्रः कण्व ऋषिः** (ऋ०१.३६सा० भा०)।

७. **कश्यप मारीच (१.९९)** -- ये सप्तऋषियों में से एक माने जाते हैं। ऋग्वेद के अनेक सूक्तों और सामवेद के अनेक मंत्रों के द्रष्टा रूप में निर्दिष्ट हैं। ये ऋग्वेद १.११४.२ में स्तुतिकर्त्ता ऋषि रूप में उल्लिखित हुए हैं। शतपथ ब्राह्मण (१३.७.१. १५) के अनुसार इन्होंने विश्वकर्मन् भौवन राजा का सर्वमेधयज्ञ कराया था। बृहदारण्यक उपनिषद् २.२.४ में सप्तऋषियों में इनका उल्लेख मिलता है। आचार्य सायण ने ऋषि विषयक उल्लेख में इन्हें 'मरीचि का पुत्र' कहा है- **'जातवेदसे' इति एकर्चं षष्ठं सूक्तं मरीचिपुत्रस्य कश्यपस्यार्षं त्रैष्टुभम्'** (ऋ० १.९९ सा० भा०)। 'बृहद्देवता' ग्रन्थ में (५.१४३-१४५) प्रजापति के वंशज एवं दक्षपुत्रियों अदिति आदि के पति के रूप में कश्यप मारीच का उल्लेख मिलता है।

८. **कुत्स आङ्गिरस (१.९४)** -- कुत्स आङ्गिरस का ऋषित्व प्रायः चारों वेदों में मिलता है; परन्तु यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में प्रायः अपत्यार्थक पद 'आङ्गिरस' (अंगिरस्-गोत्रीय) अनुल्लिखित है। अष्टाध्यायी (पाणिनि) के सूत्रों में जिन पूर्वाचार्यों के नाम विवेचित हैं, उनमें कुत्स का नाम भी है। बृहद्देवता ३.१२६ में ऋ० १.९४ सूक्त के द्रष्टा रूप में इनका नाम उल्लिखित है। आचार्य सायण ने ऋग्वेद भाष्य के ऋषि विषयक उल्लेख में इनके ऋषित्व को स्पष्टतः उपन्यस्त किया है- **'आङ्गिरसस्य कुत्सस्यार्षम्'** (ऋ० १.९४ सा० भा०)। ऋषि के रूप में नि० ३.२.११ में भी इनका उल्लेख मिलता है।

९. **कूर्म गार्त्समद (२.२७)** -- कूर्म गार्त्समद का ऋषित्व ऋग्वेद एवं यजुर्वेद में दृष्टिगोचर होता है, अन्य संहिताओं में नहीं मिलता। इन्हें 'गार्त्समद' पद 'गृत्समद के पुत्र' होने के कारण दिया गया है। ऋ० २.२७-२९ के ऋषि विषयक उल्लेख में वैकल्पिक रूप से 'कूर्म गार्त्समद अथवा गृत्समद' नाम उल्लिखित है - **गृत्समदपुत्रस्य कूर्मस्य आर्षं गृत्समदस्यैव वा.......** । **तथा चानुक्रान्तम् - 'इमा गिरस्त्र्यूना कूर्मो गार्त्समदो हि वादित्यम्' इति** (ऋ० २.२७ सा० भा०)।

१०. **गृत्समद भार्गव शौनक (२.१)** -- गृत्समद भार्गव का ऋषित्व ऋग्वेद एवं सामवेद में दृष्टिगोचर होता है। इन्हें सर्वानुक्रमणी के अनुसार द्वितीय मण्डल का ऋषि कहा गया है। कौषीतकि ब्राह्मण २२.४ में इन्हें अपत्यार्थक पद भार्गव (भृगु-वंशीय) से ही संयुक्त किया गया है; परन्तु ऋ० २.१८.६ आदि में इन्हें शुनहोत्र के वंशज के रूप में स्वीकार किया गया है। बृहद्देवताकार ने भी इन्हें शुनहोत्र के पुत्र के रूप में विवेचित किया है-**तस्माद्गृत्समदो नाम शौनहोत्रो भविष्यसि** (बृह० ४.७८) । आचार्य सायण ने अपने ऋग्वेद भाष्य में इसी तथ्य को प्रतिपादित किया है-**मण्डलद्रष्टा गृत्समद ऋषिः । स च पूर्वम् आङ्गिरसकुले शुनहोत्रस्य पुत्रः सन् यज्ञ काले ऽसुरैर्गृहीत इन्द्रेण मोचितः । पश्चात् तद्वचनेनैव भृगुकुले शुनकपुत्रो गृत्समदनामा अभूत्** (ऋ० २.१सा० भा०)। स्तुतिकर्त्ता ऋषि के रूप में इनका उल्लेख नि० ९.१.४ में भी मिलता है।

११. **गोतम राहूगण (१.७४-९३)** -- गोतम राहूगण का ऋषित्व प्रायः चारों वेदों में दृष्टिगोचर होता है, परन्तु यजु० एवं अथर्व० में अपत्यार्थक पद राहूगण अनुल्लिखित है। ऋ०१.६२.१३,१.७८.२ आदि में गोतम नाम आया है। ऋ० १.७८. ५ 'रहूगणाः' पद उल्लिखित है, जिसका आशय रहूगण वंशज अर्थात् राहूगणों से है। गोतम के वंशज 'गौतमों' का उल्लेख भी ऋ० १.७८.१; १.६०.५; १.६१.१६; १.८८.४ में मिलता है, जिनमें वामदेव और नोधा गौतम आदि प्रमुख हैं। सप्तऋषियों में 'गोतम राहूगण' का नाम भी उल्लिखित है। आचार्य सायण ने ऋषि विषयक उल्लेख में इन्हें 'रहूगण-पुत्र' के रूप में उपन्यस्त किया है- **रहूगणनामा कश्चिदृषिः । तस्य पुत्रो गोतमोऽस्य सूक्तस्य ऋषिः** (ऋ० १.७४ सा० भा०)।

१२. **जेता माधुच्छन्दस (१.११)** -- जेता माधुच्छन्दस का ऋषित्व ऋ० १.११, यजु० १२.५६; १५.६१; १७.६१ तथा साम० ३४३, ३५९, ८२७-२९ एवं १२५०-५२ में ही मिलता है। मधुच्छन्दस् के पुत्र होने के कारण इन्हें माधुच्छन्दस कहा गया है। आचार्य सायण ने अपने ऋग्वेद भाष्य में ऋषि विषयक उल्लेख में इसी तथ्य की पुष्टि की है-**'इन्द्रं विश्वा' इत्यष्टर्चस्य सूक्तस्य मधुच्छन्दसः पुत्रो जेतृनामक ऋषिः । तथा चानुक्रान्तम्-इन्द्रमष्टौ जेता माधुच्छन्दसः'** इति (ऋ० १.११ सा० भा०)।



१३.त्रित आप्त्य (१.१०५) -- त्रित आप्त्य का ऋषित्व ऋ० १.१०५; ८.४७; ९.३३-३४; ९.१०२;१० .१-७; यजु० ३३. ९० तथा साम० के अनेक स्थानों में मिलता है। त्रित, द्वित एवं एकत ऋषियों को जल से उत्पन्न माना गया है, इसीलिए इन्हें आप्य कहा गया। कालान्तर में तकार आगम से आप्त्य पद प्रसिद्ध हुआ। इन्हें निरुक्त भाष्यकार यास्क ने तीन भाई माना है- **त्रयो हि ते भ्रातरः** (नि० दु० ४.१.७)। ऋग्वेद में इनके कूप पतन का उल्लेख मिलता है--- **अपां पुत्रस्य त्रितस्य कूपे पतितस्य कुत्सस्य वार्षं** (ऋ० १.१०५ सा० भा०)।

१४.दीर्घतमा औचथ्य (१.१४०-१६४) --दीर्घतमा ऋषि का ऋषित्व ऋ०१.१४०-६४; साम० ९७, १७५८-६०, १७७४-७६ तथा यजुर्वेद के अनेक स्थानों में दृष्टिगोचर होता है, परन्तु ऋग्वेद में इनके नाम के साथ 'औचथ्य' पद संयुक्त हुआ है; जबकि यजुर्वेद में 'औतथ्य' उल्लिखित है। संभव है, यजुर्वेद में प्रमादवश यह त्रुटि उत्पन्न हुई हो। ऋग्वेद भाष्य में आचार्य सायण ने इन्हें उचथ्य का पुत्र होने के कारण 'औचथ्य' स्वीकार किया है-**औचथ्यः उचथ्यस्य पुत्रो दीर्घतमाः** (ऋ० १.१५८.१ सा० भा०)। ममता का पुत्र होने से उन्हें मामतेय भी कहा गया है-**दीर्घतमाः एतन्नामा महर्षिः स च मामतेयः ममतायाः पुत्रः** (ऋ० १.१५८.६ सा० भा०)। बृहद्देवता (४.११) में उचथ्य और बृहस्पति नामक दो ऋषियों का उल्लेख है। उचथ्य की ममता नामक पत्नी (भार्गवी-भृगुवंशी) थी। दीर्घतमा की कथा (बृह० ४.२४-२५) में इस प्रकार वर्णित है कि दीर्घतमा ने अङ्ग देश में राजा अङ्ग राज की दासी उशिज् की भक्ति देखकर पुत्र प्राप्ति की कामना वाली उस दासी से कक्षीवन्त को उत्पन्न किया। दीर्घतमा के पुत्र होने से कक्षीवान् दैर्घतमस कहलाए।

१५.देवरात वैश्वामित्र (१.२४-३०) --देवरात को वैश्वामित्र (विश्वामित्र-वंशज) माना गया है। इनके द्वारा दृष्ट सात सूक्त ऋ०१.२४-३० में संकलित हैं। ऐतरेय ब्राह्मण ७.१७ में उल्लिखित है कि विश्वामित्र ने शुनःशेप को पुत्र रूप में अङ्गीकृत करके देवरात नाम से प्रतिष्ठित किया था- **'देवा वा इमं मह्यमरासतेति, स ह देवरातो वैश्वामित्र आस'** (ऐत० ब्रा० ७.१७)। यहाँ देवरात का शाब्दिक अर्थ 'देवों द्वारा प्रदत्त' प्रयुक्त हुआ है। शुनःशेप को प्रारंभ में आजीगर्ति (अजीगर्त-पुत्र) पद द्वारा उपन्यस्त किया गया है। आचार्य सायण ने इनके ऋषि विषयक उल्लेख में इसी तथ्य की पुष्टि की है- **तथा च अनुक्रान्तं 'कस्य पञ्चोनाजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातो** .....(ऋ० १.२४ सा० भा०)।

१६.नोधा गौतम (१.५८-६४) -- नोधा गौतम का ऋषित्व, ऋ० १.५८-६४, ८.८८, ९.९३ में दृष्टिगोचर होता है। यजु०, साम० और अथर्व० में भी इनका ऋषित्व मिलता है, किन्तु यजु० और अथर्व० में अपत्यार्थक पद गौतम अनुल्लिखित है। इनका उल्लेख ऋग्वेद में अनेक स्थानों १.६१.१४, १.६२.१३, १.६४.१ आदि में आया है। बृह० ३.१२८ में भरद्वाज, गृत्समद आदि ऋषियों के बीच इनका उल्लेख मिलता है। आचार्य सायण ने ऋषि - विषयक उल्लेख में इन्हें गौतम (गोतम-वंशज) ऋषि के रूप में विवेचित किया है- **गौतमस्य नोधस आर्षमाग्नेयम्** (ऋ० १.५८ सा० भा०) । नवीन स्तोत्रों के द्रष्टा रूप में नोधा ऋषि का उल्लेख नि० ४.२.१६ में भी मिलता है।

१७.पराशर शाक्त्य (१.६५-७३) -- पराशर शाक्त्य का ऋषित्व ऋ० १.६५-७३; ९.९७.३१-४४; यजु० ३३.११ तथा सामवेद के अनेक स्थानों में मिलता है। ऋ० ७.१८.२१ में पराशर ऋषि का उल्लेख शतयातु और वसिष्ठ के साथ मिलता है- **प्र ये गृहादममदुस्त्वाया पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः** (ऋ० ७.१८.२१)। पराशर ऋषि को शक्ति का पुत्र और वसिष्ठ का पौत्र कहा गया है- **'वसिष्ठस्य सुतः शक्तिः शक्तेः पुत्रः पराशरः' इति** (ऋ० १.६५ सा० भा०)। इसी तथ्य की पुष्टि निरुक्त भाष्यकार दुर्गाचार्य ने की है- **पराशरः ऋषिर्वसिष्ठस्य नप्ता शक्तेः पुत्र एव** (नि० दु० ६.६.३०)।

१८.परुच्छेप दैवोदासि (१.१२७) -- परुच्छेप ऋषि का ऋषित्व प्रायः चारों वेदों में मिलता है, परन्तु यजु० और अथर्व० में इनके साथ अपत्यार्थक पद दैवोदासि संयुक्त नहीं है, जिसका आशय 'दिवोदास के वंशज' से है। ऋग्वेद में १.१२७-१३९ सूक्त इन्हीं के द्वारा दृष्ट हैं। ऐत० ब्रा० ५.१२-१३ में इनके द्वारा दृष्ट सूक्तों का उल्लेख मिलता है। बृहद्देवता २.१२९; ३.५६ इत्यादि में भी इनके द्रष्टा होने का प्रमाण मिलता है। आचार्य सायण ने भी इनके ऋषि विषयक उल्लेख में इन्हें 'दिवोदास - पुत्र' कहकर निरूपित किया है- **दिवोदासपुत्रस्य परुच्छेपस्यार्षमाग्नेयमात्यष्टम्** (ऋ० १.१२७ सा० भा०)। इनके मन्त्रद्रष्टा होने का प्रमाण निरुक्त में भी मिलता है- **तत्परुच्छेपस्य शीलम्। परुच्छेप ऋषिः** (नि० १०.४.४२)।



१९.प्रस्कण्व काण्व (१.४४-५०) -- प्रस्कण्व ऋषि द्वारा दृष्ट मंत्र चारों वेदों में संगृहीत हैं, किन्तु यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में प्राय: ऋषियों के नाम अपत्यार्थक पद से रिक्त हैं, जबकि ऋग्वेद एवं सामवेद में इनके नाम के साथ काण्व (कण्व-गोत्रीय) पद संयुक्त है। ऋ० १.४४-५०; ८.४९;९.९५ सूक्तों के द्रष्टा ऋषि प्रस्कण्व काण्व हैं। बृहद्देवता ६.८५ में प्रस्कण्व द्वारा पृषध्र को धन देने का तथ्य प्रतिपादित किया गया है। आचार्य सायण ने इन्हें कण्वपुत्र कहकर निरूपित किया है— **'अग्ने षळूना प्रस्कण्व: काण्व आग्नेयं तु प्रागाथमाद्यो द्वृचो ऽ श्व्युषसां च' इति। कण्वपुत्र: प्रस्कण्व ऋषि:** (ऋ० १.४४ सा० भा०), इसी तथ्य की पुष्टि निरुक्त से भी होती है- **प्रस्कण्व: कण्वस्य पुत्र:** (नि० ३.३.१७)।

२०.मधुच्छन्दा वैश्वामित्र (१.१) -- ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के एक से दस सूक्तों के प्रख्यात ऋषि 'मधुच्छन्दा वैश्वामित्र' हैं। विश्वामित्र गोत्रीय अथवा पुत्र होने से इन्हें 'वैश्वामित्र' पद से संयुक्त माना गया है। ऐत० ब्रा० ७.१८ में मधुच्छन्दा के पचास छोटे और पचास बड़े भाइयों का उल्लेख है। इसी में मधुच्छन्दा और शुन: शेप का संवाद विवेचित है। शुन: शेप बाद में 'कृत्रिम देवरात' के रूप में मधुच्छन्दा के भाई बने। कौषी० ब्रा० २८.२ एवं ऐत० आ० १.१.३ में इन्हें एक ऋषि के रूप में उपन्यस्त किया गया है। आचार्य सायण ने इन्हें विश्वामित्र-पुत्र के रूप में प्रमाणित किया है- **विश्वामित्र पुत्रो मधुच्छन्दो नामकस्तस्य सूक्तस्य द्रष्टृत्वात् तदीय ऋषि:** (ऋ० १.१ सा० भा०)।

२१. मरुद्गण (१.१६५.३,५,७,९) -- इन्द्र, मरुद्गण आदि देवगणों का भी ऋषित्व यदा-कदा दृष्टिगोचर होता है। मरुद्गणों का ऋषित्व ऋग्वेद १.१६५.३,५,७,९ में मिलता है, अन्यत्र इनका ऋषित्व दृष्टिगोचर नहीं होता। मन्त्र द्रष्टा रूप में इनका उल्लेख आचार्य सायण ने ऋग्वेद भाष्य में किया है-- **तत्र तृतीयापञ्चमीसप्तमी नवमीनां मरुद्वाक्यरूपत्वात् ते एव ऋषय:** (ऋ० १.१६५ सा० भा०)।

२२.मेधातिथि काण्व (१.१२) -- चारों वेदों में मेधातिथि द्रष्टा रूप में निरूपित हैं। ऋग्वेद और सामवेद में कण्व वंशीय होने से काण्व पद भी उल्लिखित है। ऋग्वेद में इनके द्वारा दृष्ट सूक्त १.१२-२३;८.१.३-२९; ८.२;८.३२;९.२ मिलते हैं। ऋग्वेद संहिता में प्राय: मेध्यातिथि नाम का उल्लेख मिलता है, किन्तु मेधातिथि का नाम उल्लेख कहीं नहीं मिलता। ऋग्वेद के इन सूक्तों के द्रष्टा होने का प्रमाण बृह० २.१५५,१५७ आदि में भी मिलता है। आचार्य सायण ने इन्हें 'कण्व गोत्रीय' के रूप में निरूपित किया है- **मेधातिथिमेध्यातिथि नामानौ द्वावृषी तौ च कण्वगोत्रौ** (ऋ० ८.१ सा० भा०)।

२३.रोमशा (१.१२६.७) -- 'रोमशा' का शाब्दिक अर्थ होता है- 'रोमों वाली'। ये ऋग्वेद की एक ऋचा १.१२६.७ एवं सामवेद के अनेक मंत्रो की द्रष्टी हैं। बृहद्देवताकार ने इन्हें राजा भावयव्य की पत्नी और बृहस्पति की पुत्री- रूप में उल्लिखित किया है- **प्रादात्सुतां रोमशां नाम नाम्ना बृहस्पतिर्भावयव्याय राज्ञे** (बृह० ३.१५६)। मंत्र द्रष्टी के रूप में बृहद्देवता (२.७७,८३) में ये सरमा, उर्वशी आदि के साथ भी उल्लिखित हैं। आचार्य सायण ने इन्हें 'ब्रह्मवादिनी' कहकर इनका ऋषित्व उल्लिखित किया है- **आदित: पञ्चानां कक्षीवानृषि: षष्ठ्या: भावयव्य: सप्तम्या: रोमशा नाम ब्रह्मवादिनी** (ऋ० १.१२६ सा० भा०)।

२४.लोपामुद्रा (१.१७९.१-२) -- मंत्रद्रष्टी ऋषिकाओं में लोपामुद्रा का महत्वपूर्ण स्थान है। यह ऋषि अगस्त्य की पत्नी थीं, जिन्होंने मंत्र द्रष्टी ऋषिका के रूप में नारियों के गौरव को प्रवर्धित किया। ऋ० १.१७९ सूक्त की प्रथम दो ऋचाओं तथा यजु० १७.११;३६.२० कण्डिकाओं का ऋषित्व इन्हें प्राप्त है। अगस्त्य ऋषि द्वारा दृष्ट ऋचा ऋ० १.१७९.४ में 'लोपामुद्रा' उल्लिखित हुई हैं। अगस्त्य ऋषि, ऋषि पत्नी लोपामुद्रा और उनके शिष्यगणों द्वारा दृष्ट इस सूक्त के दर्शन का उल्लेख बृहद्देवताकार ने ४.५७-५९ में किया है। आचार्य सायण ने भी इनके ऋषित्व को प्रमाणित किया है- **अत्र त्रयाणां द्वृ चानां लोपामुद्रागस्त्य- तच्छिष्यैर्दृष्टत्वात्त एवर्षय:** (ऋ० १.१७९ सा० भा०)।

२५.शुन:शेप आजीगर्ति (१.२४- ३०) -- शुन:शेप का ऋषित्व चारों वेदों में मिलता है। ऋग्वेद एवं सामवेद में इनके नाम के साथ अपत्यार्थक नाम आजीगर्ति (अजीगर्त- पुत्र) संयुक्त है। ऐतरेय ब्राह्मण में इनका उल्लेख विश्वामित्र के दत्तक पुत्र के रूप में विवेचित है, जो बाद में देवरात वैश्वामित्र कहलाये। इनके पिता अजीगर्त के तीन पुत्रों का उल्लेख इसी में मिलता है, जिसमें से मध्यम पुत्र शुन:शेप थे- **तस्य ह त्रय: पुत्रा आसु:, शुन: पुच्छ: शुन:शेप:शुनोलाङ्गूल इति** (ऐत० ब्रा० ७.१५)। बृहद्देवता (३.१०३) में इन्द्रदेव द्वारा शुन:शेप को स्वर्णमय रथ प्रदान करने का उल्लेख है- आचार्य सायण ने इन्हें अजीगर्त का पुत्र कहकर निरूपित किया है- **अजीगर्तपुत्रस्य शुन:शेपस्य आर्षं त्रैष्टुभम्** ।....... **तथा च अनुक्रान्तं - कस्य पञ्चोनाजीगर्ति: शुन:शेप: स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातो** (ऋ० १.२४ सा० भा०)।

२६.स्वनय भावयव्य (१.१२६.६) -- इनके द्वारा दृष्ट मात्र एक ही ऋचा (ऋ० १.१२६.६) मिलती है। वैदिक संहिताओं में अन्यत्र इनका ऋषित्व दृष्टिगोचर नहीं होता। ऋग्वेद १.१२६ सूक्त की प्रथम व तृतीय ऋचाओं में इनका उल्लेख सिन्धु तट वासी एक राजा के रूप में हुआ है,जिन्होंने कक्षीवान् को प्रचुर दान दिया था। कक्षीवान् ऋषि ने इसी सूक्त की पाँचों ऋचाओं में भावयव्य का ही गायन किया है। बृहद्देवताकार ने इनके इसी प्रसंग को सुस्पष्टत: उल्लिखित किया है- **स्वनयाद्भावयव्याद्यः कक्षीवान्प्रत्यपद्यत** (बृह० ३.१५०)। इसी में आगे (३.१५६) इन्हें बृहस्पति की पुत्री रोमशा के पति के रूप में व्यक्त किया गया है। आचार्य सायण ने उक्त सूक्त के ऋषि विषयक उल्लेख में इनके ऋषित्व को प्रमाणित किया है- **आदितः पञ्चानां कक्षीवानृषिः षष्ठ्याः भावयव्यः** (ऋ० १.१२६ सा० भा०)। शां० श्रौ० १६.११.५ में भी **'स्वनय भाव्य'** के रूप में इन्हें उपन्यस्त किया गया है

२७.सव्य आङ्गिरस (१.५१-५७) -- सव्य आङ्गिरस द्वारा दृष्ट मंत्र ऋ० १.५१-५७ और साम० ३७३,३७६-७७ में संगृहीत हैं। इन्हें आङ्गिरस (अंगिरस्-गोत्रीय) कहा गया है; परन्तु बृहद्देवताकार ने इन्हें ऐन्द्र (इन्द्र रूप) कहकर निरूपित किया है- **ऐन्द्रः सव्यः शतर्चिषु** (बृह० ३.११४) । इसके आगे उल्लिखित है कि इन्द्र ही सव्य का रूप धारण करके अंगिरस् के पुत्र बने। आचार्य सायण ने इनके ऋषित्व को इन शब्दों में उल्लिखित किया है- **स सव्य आङ्गिरसोऽस्य सूक्तस्य ऋषिः।** ......**'अभि त्यं पञ्चोना सव्यो द्विस्त्रिष्टुबन्तमङ्गिरा इन्द्रतुल्यं पुत्रम्**......' (ऋ० १.५१ सा० भा०)।

२८.सोमाहुति भार्गव (२.४-७) -- सोमाहुति भार्गव का ऋषित्व ऋ० २.४-७, यजु० ११.७०, १२.४३; साम० ९४ में दृष्टिगोचर होता है,किन्तु यजुर्वेद में इनका अपत्यार्थक पद 'भार्गव' अनुल्लिखित है। भृगु वंशीय होने से ऋग्वेद में इन्हें 'भार्गव' कहा गया है। संभवत: सोम- आहुति (सोम-याग) आदि से विशेष सम्बद्ध होने के कारण इनका नाम सोमाहुति प्रचलित हो गया हो। आचार्य सायण ने अपने भाष्य में इनके ऋषित्व को प्रमाणित किया है- **'भार्गवः सोमाहुति नामक ऋषिः'** (ऋ० २.४ सा० भा०)।

२९. हिरण्यस्तूप आङ्गिरस (१.३१-३५) -- हिरण्यस्तूप आङ्गिरस का ऋषित्व ऋक्, यजु, साम तीनों वेदों में दृष्टिगोचर होता है। ऋग्वेद में इनके द्वारा दृष्ट सूक्त १.३१-३५; ९.४; ९.६९ हैं। ऐत० ब्रा० ३.२४ में हिरण्यस्तूप आङ्गिरस द्वारा इन्द्र धाम प्राप्त होने का उल्लेख किया गया है। नि० १०.३.३२ में ऋषि रूप में इनका उल्लेख किया गया है। बृहद्देवता में इनके द्वारा इन्द्र की मित्रता का गान करते हुए उल्लेख किया गया है- **हिरण्यस्तूपतां प्राप्य सख्यं चेन्द्रेण शाश्वतम्** (बृह० ३.१०६)। आचार्य सायण ने इनके ऋषित्व को प्रमाणित किया है- **आङ्गिरसो हिरण्यस्तूप ऋषिः** (ऋ० १.३१ सा० भा०)।





परिशिष्ट - २

ऋग्वेद भाग-१ के देवताओं का संक्षिप्त परिचय

१. **अग्नि** (१.१; .१२)-- सर्वप्रथम उत्पन्न होने के कारण अग्निदेव को 'अग्नि' कहा गया है - **स यदस्य सर्वस्याग्रमसृज्यत तस्मादग्रिर्ह वैतमग्निरित्याचक्षते परोऽक्षम्** (शत० ब्रा० ६.१.१.११)। पृथ्वी स्थानीय देवों में अग्निदेव प्रमुख हैं। वैदिक देवों में इन्द्रदेव के बाद इन्हीं को प्रतिष्ठा प्राप्त है। ऋग्वेद में प्रायः २०० से अधिक सूक्तों में ये स्तुत हुए हैं। इन्हें ऋग्वेद में **घृत-पृष्ठ** (ऋ० ५.४.३) ; **घृत-प्रतीक** (ऋ० ३.१.१८); **सुजिह्व** (ऋ० १.१४.७); **घृतकेश** (ऋ० ८.६०.२); **हरिकेश** (ऋ० ३.२.१३); **हिरण्यदन्त** (ऋ० ५.२.३) आदि विशेषणों से उपन्यस्त किया गया है। इनकी समानता द्युलोकस्थ सूर्य से करते हुए इन्हें त्रिलोक में **शिरोमणि, सप्तरश्मि** (ऋ० १.१४६.१) तथा **सप्तजिह्व** (ऋ० ३.६.२) भी कहा गया है। इनकी ज्वालाएँ चंचल होने से इनकी उपमा अश्व (अर्वन्) से भी दी गयी है- **स त्वं नो अर्वन् निदाया विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिधानः** (ऋ० ६.१२.६)। अपनी ज्वालाओं से वे द्युलोक को घेर लेते हैं - **परि द्यां जिह्वयातनत्** (ऋ० ८.७२.१८)। अग्निदेव की दो माताएँ (ऊर्ध्व और अधो अरणियाँ) कही गयी हैं - **द्विमाता शयुः कतिधा चिदायवे** (ऋ० १.३१.२)। देवों को हव्य द्वारा पोषण प्रदान करने से इन्हें देवों का पिता कहा गया है- **भुवो देवानां पिता पुत्रः सन्** (ऋ० १.६९.१)। घर्षण बल (अरणि मंथन) से उत्पन्न होने के कारण उन्हें '**सहसः पुत्रः**' भी कहा गया है। देवों के दूत रूप में इनकी प्रमुखतया प्रतिष्ठा है- **दूतो देवानां रजसी समीयसे** (ऋ० ६.१५.९)। विश्ववेदस्, कवि, कविक्रतु, जातवेदस, वैश्वानर, तनूनपात्, मातरिश्वा, नराशंस आदि विशेषण ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर अग्नि के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं। अग्नि को ही 'तनूनपात्' बताते हुए बृहद्देवताकार ने लिखा है- **अयं तनूनपादग्नि** (२.२६) अर्थात् यह पार्थिव अग्नि 'तनूनपात्' है। '**तनूनपादयं त्वेव**' इन्हीं (अग्नि) का नाम 'तनूनपात्' भी है (बृह० ३.१)। 'नराशंस' भी अग्नि के लिए प्रयुक्त हुआ है- **एतमेवाहुरन्येऽग्निं नराशंसोऽध्वरे ह्ययम्** (बृह० ३.३)। निरुक्तकार ने भी यही तथ्य प्रतिपादित किया है-'**अग्निरिति शाकपूणिः। नरैः प्रशस्यो भवति।** आचार्य शाकपूणि के मतानुसार यह अग्नि नराशंस है, क्योंकि यज्ञीय परिप्रेक्ष्य में यह 'अग्नि' ही लोगों (याजकों) द्वारा प्रशंसनीय होती है (नि० ८.६)।

२. **अग्नीषोम** (अग्नि - सोम)(१.९३)-- अग्नि और सोमदेव के युग्म का देवत्व 'अग्नीषोम' नाम से निरूपित किया गया है। ऋग्वेद में अग्नीषोम द्वारा प्रकाश प्राप्त करने का उल्लेख मिलता है। जल-प्रवाहों को मुक्त करने तथा आकाश में नक्षत्रों को विस्तीर्ण करने का विवेचन भी प्राप्त होता है - **युवं सिन्धूँरभि शस्तेरवद्यादग्नीषोमावमुञ्चतं गृभीतान्** (ऋ० १.९३.५)। इनमें से एक को मातरिश्वा आकाश से यहाँ लाये और दूसरे को श्येन पक्षी पर्वत शिखर (अद्रि) से यहाँ लाये (ऋ० १.९३.६)। ऋग्वेद एवं अथर्ववेद में अनेक स्थानों पर इनसे धन, पशु, प्रजा और स्वर्ण आदि ऐश्वर्य की प्रार्थना की गयी है - **अग्नीषोमा वृषणा वाजसातये पुरुप्रशस्ता वृषणा उप ब्रुवे** (ऋ० १०.६६.७)। मैत्रायणी संहिता में उन्हें 'दो नेत्र' कहा गया है - **चक्षुषी वा अग्नीषोमौ** (मैत्रा० सं० ३.७.१)। शतपथ ब्राह्मण में इन्हें दो भ्राता कहा गया है - **अग्नीषोमौ भ्रातरावब्रवीत्** (शत० ब्रा० ११.१.६.१९)। अग्नि का सम्बन्ध सूर्य से और सोम का सम्बन्ध चन्द्र से बताया गया है - **सूर्य एवाग्नेयश्चन्द्रमाः सौम्यः** (शत० ब्रा० १.६.३.२४)।

३. **अदिति** (१.८९.१०; २.४०.६)-- **अदिति अष्ट** आदित्यगणों की माता कही गयी हैं - **अष्टयोनिरदितिरष्ट पुत्रा** (अथर्व० ८.९.२१)। वे मित्र, वरुण एवं अर्यमा की माता भी कही गयी हैं - **माता मित्रस्य रेवतोऽर्यम्णो वरुणस्य चा** (ऋ० ८.४७.९)। निरुक्त में अदिति को देवमाता के रूप में उपन्यस्त किया गया है-'**अदितिर् अदीना देवमाता**' (नि० ४.२२)। सम्पूर्ण पृथिवी की देवी अदिति को विश्वदेवी के रूप में भी प्रतिष्ठा प्राप्त है-**इयं (पृथिवी) वा अदितिर्देवी विश्वदेव्यवती** (मैत्रा० ३.१.८)। सम्पूर्ण विश्व का भरण-पोषण इनके द्वारा ही सम्पन्न होता है-**विश्वस्य धर्त्री जगतः प्रतिष्ठा** (तैत्ति० सं० ३.१.१.४)।

४. **अपांनपात्** (२.३५)-- ऋग्वेद में २.३५ सूक्त के देवता अपांनपात् कहे गये हैं तथा १०.३० सूक्त में आपः देवता के साथ भी इनका विकल्प मिलता है। 'अपांनपात्' मेघों में छिपे अग्नि और जलों के पुत्र के रूप में उल्लिखित हुए हैं। इसीलिए वे रूप, दर्शन और वर्ण में स्वर्णिम कहे गये हैं - **हिरण्यरूपः स हिरण्यसंदृगपांनपात्सेदु हिरण्यवर्णः** (ऋ० २.३५.१०)। यह जलों से उत्पन्न होकर, जलों में प्रवर्धित होते हुए दीप्तिमान् होते हैं - **सो अपां नपादूर्जं यन्नप्स्व१न्तर्वसुदेयाय विधते विभाति** (ऋ० २.३५.७)। अपांनपात् की तुलना सूर्य और सविता से भी की गयी है - **अपांनपादसुर्यस्य मह्ना** (ऋ० २.३५.२)।



५. **अप्तृणसूर्य (विषघ्नोपनिषद् १.१९१)** -- ऋग्वेद में अप्तृण सूर्य को एक सूक्त समर्पित है। अप् ,तृण और सूर्य यह तीनों अलग-अलग देवता माने गये हैं। अप् शब्द जल अर्थ में तथा तृण तिनका या जड़ी-बूटी अर्थ में प्रयुक्त होता है। आचार्य सायण ने अपने ऋग्वेद भाष्य में लिखा है कि एक बार ऋषि अगस्त्य को किसी प्रकरण में विष की शंका हो गई, तब उन्होंने उसके निवारणार्थ अप्तृणसूर्य के मंत्रों को देखा। यह विष निवारण विधा रहस्यमयी होने से इसे विषघ्नोपनिषद् नाम दिया गया है - '**कङ्कतः षोळशोपनिषदानुष्टुभमप्तृणसौर्यं विषशङ्कावानगस्त्यः प्राब्रवीद्दशम्याद्याश्च तिस्रो महापङ्क्तयो महाबृहती च इति**' (ऋ० १.१९१ सा० भा०)। शौनक ऋषि ने कहा है कि विष निवारण के लिए (जब सर्प,कीड़ा,मकड़ी, बिच्छू आदि ने डस लिया हो) इस सूक्त के मंत्रों के जप से विष आगे नहीं बढ़ता- **अत्र शौनकः - कङ्कतो नेति सूक्तं तु विषार्तः प्रयतो जपेत्। विषं न क्रमते चास्य सर्पादद्दृष्टिविषादपि** (ऋ० १.१९१ सा० भा०)।

६. **अर्यमा (१.४१.१- ३; ७ -९)** -- अर्यमादेव को आदित्यगणों के अन्तर्गत माना गया है - **असौ वा आदित्योऽर्यमा** (तैत्ति० सं० २.३.४.१)। अनेक स्थानों पर ये मित्र और वरुण देवों के साथ उल्लिखित हुए हैं- **आ नो बर्हीं रिशादसो वरुणो मित्रो अर्यमा** (ऋ०१.२६.४)। अर्यमादेव को सप्त होताओं का भी होता कहा गया है - **अर्यमा सप्तहोतृणा होता** (तैत्ति० ब्रा० २.३.५.६)। अर्यमादेव को फाल्गुनी नक्षत्र से सम्बद्ध माना गया है - **अर्यम्णो वा एतन्नक्षत्रं यत्पूर्वे फल्गुनी** (काठ० सं० ८.१)। अर्यमादेव को दान देने के कारण प्रतिष्ठा प्राप्त है - **एष वा अर्यमा यो ददाति** (काठ० सं० ११.४)। इसीलिए अर्यमा को यज्ञ की उपमा भी दी गयी है - **यज्ञो वा अर्यमा** (मैत्रा० सं० ४.२.१०)।

७. **अश्विनीकुमार (१.३४; १.४६)** -- अश्विनीकुमारों को वैदिक संहिताओं में अति महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इनके निमित्त ऋग्वेद में ५० से अधिक सूक्त कहे हैं। प्रायः इन दो भ्राताओं का उल्लेख संयुक्त रूप से ही हुआ है। निरुक्तकार यास्क ने एक को रात्रि- पुत्र तथा दूसरे को उषा-पुत्र कहा है- **वासात्यो अन्य उच्यते। उषः पुत्रस्तवान्यः** (निरु० १२.२)। इनका रथ तीन बन्धुर, तीन वृत्र और तीन चक्र वाला होता है - **त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेन त्रिचक्रेण सुवृता यातमर्वाक्।** (ऋ०१.११८.२)। इनका रथ एक ही दिन में द्युलोक और पृथिवी का चक्कर लगा लेता है - **रथो ह वामृतजा अद्रिजूतः परि द्यावा पृथिवी याति सद्यः** (ऋ० ३.५८.८)। इन्हें 'दिवो - नपाता' अथवा द्युलोक का पुत्र कहा गया है - **दिवो नपाता सुकृते शुचिव्रता** (ऋ० १. १८२.१)। इन्हें विवस्वान् तथा त्वष्टा पुत्री सरण्यू के यमल पुत्र भी कहा गया है - **उताश्विनावभरद् यत्तदासीदजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः** (ऋ० १०.१७.२)। इसीलिए उनके नाम के साथ वैवस्वत पद भी संयुक्त हुआ है। अश्विनीकुमारों को देवों के भिषक् के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है - **उत त्या दैव्या भिषजा शं नः करतो अश्विना** (ऋ० ८.१८.८)। **यौ देवानां भिषजौ हव्यवाहौ** (तैत्ति० ब्रा० - ३.१.२.११)।

८. **आदित्यगण (१.४१.४-६; २.२७)** -- आदित्यगणों की संख्या कहीं छः ,कहीं सात,कहीं आठ और कहीं बारह बताई गयी है। अथर्ववेद में ये अदिति के पुत्र कहे गये हैं - **अष्टयोनिरदितिरष्टपुत्रा** (अथर्व० ८.९.२१)। तैत्तिरीय ब्राह्मण (१.१. ९.१) में इन आठ आदित्यों के नाम इस प्रकार उल्लिखित हुए हैं - मित्र,वरुण,अर्यमन्,अंश,भग,धाता,इन्द्र और विवस्वान्। शतपथ ब्राह्मण में इनकी संख्या बारह कही गयी है - **ते द्वादशादित्या असृज्यन्त** (शत० ब्रा० ६.१.२.८)। आदित्यगण सम्पूर्ण जगत् को धारण करते हैं - **धारयन्त आदित्यासो जगत्स्था** (ऋ० २.२७.४)। आदित्यगणों को प्रजाओं का सिर (मूर्धा - शिरोमणि) तथा चक्षु (द्रष्टा) भी कहा गया है - **असावादित्यः शिरः प्रजानाम्।** (तैत्ति० ब्रा० १.२.३.३)। **अथ यत्तच्चक्षुरासीत् स आदित्योऽभवत्** (जैमि० उ० २.१.२.३)।

९. **आपो देवता (१.२३.१६ - २२)** -- आपो देवता के ऋग्वेद में चार पूर्ण सूक्त ७.४७,७.४९,१०.९ तथा १०.१४ आये हैं। मुख्यतः ये जल प्रवाहों ,मेघों और नदियों के लिए प्रयुक्त हुए हैं। दुरित (अनिष्ट) आदि के निवारणार्थ इनका आवाहन किया गया है - **इदमापः प्र वहत यत्किं च दुरितं मयि** (ऋ० १.२३.२२)। वे भिषज् के रूप में भी माने गये हैं - **यूयं हिष्ठा भिषजो मातृतमा** (ऋ० ६.५०.७)। आपः को पवित्र (कारक) भी माना गया है - **आपो वै पवित्रम्** (काठ० सं० ८.८)। आपः को प्राण रूप भी कहा गया है - **आपो वै प्राणाः** (शत० ब्रा० ३.८.२.४)। इस लोक के अमृत को आपः कहा गया है - **अमृतं वा एतदस्मिन् लोके यदापः** (ऐत० ब्रा० ८.२०)। अतएव इन्हें सम्पूर्ण जगत् का आधार कहा गया है - **आपो वा ऽ अस्य सर्वस्य प्रतिष्ठा** (शत० ब्रा० ४.५.२.१४)।

१०. **इन्दु (१.१२९.६)** -- इन्दु देवता प्रायः सोम के अर्थ में ही प्रयुक्त हुए हैं - **सोमो वा इन्दुः** (शत० ब्रा० २.२.३.२३)। निघण्टु १.१२ में उदक के अर्थ में और ३.१७ में यज्ञ के अर्थ में भी इसे प्रयुक्त किया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण में इन्दु का अर्थ 'सोम राजा' किया गया है - **सोमो वै राजेन्दुः** (ऐत० ब्रा० १.२९) आचार्य सायण ने इनके देवत्व का उल्लेख करते हुए लिखा है-'**प्र तद्वोचेयम्' इति षष्ठी इन्दुदेवत्या** (ऋ० १.१२९ सा० भा०)।



१. **इन्द्र (१.४ - ५; ५१- ५७)** -- इन्द्र वैदिक सभ्यता के अत्यन्त लोकप्रिय देवता हैं। इनकी महत्ता का गान ऋग्वेद के प्राय: २५० सूक्तों में हुआ है। इन्द्र 'संगठक शक्ति' के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। ये अन्तरिक्ष स्थानीय (मध्य लोक) देवता के रूप में माने गये हैं। तीनों लोकों के तीन मूर्धन्य देवों - अग्नि, वायु और सूर्य में वायु के प्रतिनिधि हैं। ये अतिशय सोमप्रिय हैं। सोमपान के समय इनके उदर की तुलना ह्रद से की गई है - **ह्रदा इव कुक्षय: सोमधाना:** (ऋ० ३.३६.८)। इन्हें 'हिरण्यवर्ण' और 'हिरण्यबाहु' विशेषणों से भी जोड़ा गया है - **इन्द्रो वज्री हिरण्यय:** (ऋ० १.७.२)। **इन्द्रो न वज्री हिरण्यबाहु:** (ऋ० ७.३४.४)। ये मन की गति से संचालित रथ पर विचरण करते हैं - **यस्ते रथो मनसो जवीयानेन्द्र तेन सोमपेयाय याहि** (ऋ० १०.११२.२)। इनके रथ को दो 'हरी' संज्ञक (हरित वर्ण) अश्व वहन करते हैं - **आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र याह्या** (ऋ० २.१८.४)। वे अपनी गति से सूर्य चक्र को भी गति देने वाले हैं- **सूर २ चक्रं प्र वृहज्जात ओजसा** (ऋ० १.१३०.९)। ये 'द्यौस्' (द्यावा) के पुत्र माने गये हैं - **सुवीरस्ते जनिता मन्यत द्यौरिन्द्रस्य** (ऋ० ४.१७.४)। अग्नि और इन्द्रदेव विराट् पुरुष के मुख से उत्पन्न माने गये हैं- **मुखादिन्द्र श्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत** (ऋ० १०.९०.१३)। उनकी महिमा द्युलोक और पृथिवी से बढ़कर है - **प्र मज्मना दिव इन्द्र: पृथिव्या:** (ऋ० ३.४६.३)। इन्द्रदेव अपने वज्र से वृत्र का हनन करते हैं और जल प्रवाहों को मुक्त करते हैं - **अहन्वृत्रं वृत्रतरं व्यंसमिन्द्रो वज्रेण महता वधेन** (ऋ० १.३२.५)। **वज्रेण हत्वा निरप: ससर्ज** (ऋ० १.१०३.२)। अपने पराक्रम के कारण वे वाजिन्, वज्रिन्, वृत्रहन् कहलाते हैं। मरुत्वान् उनका प्रधान विशेषण है। प्रधान सहायक के रूप में मरुत् देवता सदैव उनके साथ विद्यमान रहते हैं। इसीलिए 'इन्द्र' को 'मरुत्वान् इन्द्र' की संज्ञा भी प्रदान की गई है।

१२. **इन्द्रवायू (१.२.४-६; १३५.४-८)** -- इन्द्रवायू का आवाहन सोमपान के निमित्त किया गया है-**उभा देवा दिविस्पृशेन्द्रवायू हवामहे। अस्य सोमस्य पीतये** (ऋ० १.२३.२)। वे अपने हिरण्यवन्धुर रथ में बैठकर यज्ञ में आगमन करते हैं - **रथं हिरण्यवन्धुर मिन्द्रवायू स्वध्वरम्** (ऋ० ४.४६.४)। इन्हें शवसस्पति और धियस्पति जैसे विशेषणों से जोड़ा गया है- **वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथं शवसस्पती** (ऋ० ४.४७.३)। **सहस्राक्षा धियस्पती** (ऋ० १.२३.३)। ऋग्वेद १.२३.२-३ के देवता 'इन्द्रवायू' होने का प्रमाण सायणभाष्य में इस प्रकार मिलता है- **ततो द्वे ऋचौ इन्द्रवायुदेवताके।**

१३. **इन्द्राग्नी (१.२१, १.१०८)** -- ऋग्वेद में ग्यारह सम्पूर्ण सूक्तों के देवता के रूप में इन्द्राग्नी उपन्यस्त किये गये हैं। वज्रधारी इन्द्राग्नी का आवाहन सोमपान के लिए किया जाता है - **इन्द्रान्व१ग्नी अवसेह वज्रिणा वयं देवा हवामहे** (ऋ० ६५९३)। **इमामु षु सोमसुति मुप न एन्द्राग्नी** (ऋ० ७.९३.६)। उनके द्वारा 'दास' असुर के ९९ दुर्गों को तोड़ने का उल्लेख भी मिलता है - **इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम्** (ऋ० ३.१२.६)। इन दोनों देवों को यमल भ्राता माना गया है - **जनिता भ्रातरा युवं यमाविहेह- मातरा** (ऋ० ६.५९.२)। शतपथ ब्राह्मण में इन दोनों की तुलना प्राणोदान से की गयी है - **इन्द्राग्नी हि प्राणोदानौ** (शत० ब्रा० ४.३.१.२२)। इनकी महत्ता सम्पूर्ण देवों से बढ़कर मानी गयी है - **इन्द्राग्नी वै सर्वे देवा:** (शत० ब्रा० ६.१.२.२८)। इनका देवता के रूप में उल्लेख बृहद्देवता (३.१३१) में किया गया है।

१४. इन्द्राणी, वरुणानी, अग्नायी (१.२२.१२)-- देव-पत्नीभूत देवियों को ऋग्वेद में गौण स्थान प्राप्त है। उनका निजी व्यक्तित्व प्रकाशित नहीं होता। वे सम्बद्ध देवता की पत्नी के रूप में ही जानी जाती हैं। यथा इन्द्रदेव की पत्नी के रूप में इन्द्राणी, वरुणदेव की पत्नी के रूप में वरुणानी तथा अग्निदेव की पत्नी स्वरूप अग्नायी प्रख्यात हुई हैं। ऋग्वेद १.२२.१२ में इसी प्रकार का उल्लेख है - **इहेन्द्राणीमुपह्वये वरुणानीं स्वस्तये। अग्नायीं सोम पीतये** (ऋ० १.२२.१२)। उक्त ऋचा में इन्द्राणी आदि देवियों को सुरक्षा एवं सोमपान के लिए आमन्त्रित किया गया है। इन सभी को अपने उपासकों की रक्षार्थ तथा सभी यज्ञों में पधारने वाली बताया गया है। इन तीनों देवियों (इन्द्राणी, वरुणानी और अग्नायी) की स्तुति के प्रसङ्ग की पुष्टि बृहद्देवता ३.९२ से भी होती है - **इन्द्राणी वरुणानी च अग्नायी च पृथक् स्तुता:।**

१५ **इन्द्रापर्वत (१.१३२.६ पूर्वा०)** -- वैदिक देवयुग्मों में इन्द्रापर्वत का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं है। मात्र कुछ मंत्र ही इन्हें समर्पित हुए हैं। इन्हें शत्रु विनाशक कहा गया है। शत्रु संहार और आत्म-कल्याण की कामना करते हुए ऋषि कहते हैं - **युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा ये न: पृतन्यादपतं तमिद्धतं** (ऋ० १.१३२.६)। इसमें इन्द्र को तो सर्वप्रचलित अर्थ में ही स्वीकार किया गया है, किन्तु पर्वत का अर्थ घुमड़ते हुए बादलों से लिया गया है - **इन्द्र: प्रसिद्ध:। पर्वत: पर्ववान्मेघ:। तदभिमानी देव:** (ऋ० १.१३२.६ सा० भा०)।

१६. **इन्द्रावरुण (१.१७)** -- देव युग्मों में इन्द्रावरुण उच्च स्थान पर विराजे हैं। इनके निमित्त ऋग्वेद में आठ सम्पूर्ण सूक्त समर्पित हैं। ये मनुष्यों को धारण करने वाले हैं - **धर्तारा चर्षणीनाम्** (ऋ० १.१७.२)। इन्हें सरिताओं का पथ खोदने वाला तथा सूर्यदेव को द्युलोक में गतिमान् बनाने वाला बताया गया है - **इन्द्रावरुणयोरहं सम्राजोरव आ वृणे। ता नो मृळात ईदृशे** (ऋ० १.१७.१)। इन्हें इन्द्र का सहायक वृत्र को पछाड़ने वाला भी बताया गया है - **ऋतेन वृत्रतुरा सर्वसेना** (ऋ० ६.६८.२)।



इन्हें अपने उपासकों को विजय प्रदान करने की ख्याति प्राप्त है- **इन्द्रावरुण वामहं हुवे चित्राय राधसे । अस्मान्त्सुजिग्युषस्कृतम्** (ऋ० १.१७.७)। बृहद्देवता में भी इन्द्रावरुण की स्तुति को निम्न शब्दों में प्रमाणित किया है- **दशाश्विनानीमानीति इन्द्रावरुणयो स्तुतिः** (बृह० ३.११९) ।

१७. इन्द्राविष्णू (१.१५५.१- ३) -- ऋग्वेद के देवता युग्मों में इन्द्राविष्णू का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। ऋ० १.१५५ की १ से ३ ऋचाओं में इन्द्र-विष्णु की सहस्तुति है। इसमें इन दोनों देवों को अग्नि के तेज को तीव्र करने वाला कहा गया है। सोमयज्ञ करने वाले मनुष्य यज्ञ से इन्द्र और विष्णु के तेज को बढ़ाते हैं - **त्वेषमित्था समरणं शिमीवतो रिन्द्राविष्णू सुतपा वामुरुष्यति** (ऋ० १.१५५.२) । बृहद्देवताकार ने इस देवयुग्म की सहस्तुति प्रकरण को इन शब्दों में प्रमाणित किया है - **प्रवक्ष्य तिसृभिर्ऋग्भिर् इन्द्राविष्णू सहस्तुतौ** (बृहद्देवता ४.२०)।

१८.इन्द्रासोम (२.३०.६) -- यह देवयुग्म (इन्द्रासोम) भी ऋग्वेद में उच्चस्तरीय प्रतिष्ठा लब्ध है। इन दोनों दयालु देवताओं के सहज कर्म थे, शत्रुओं को परास्त करना और पहाड़ों में छिपी वस्तुओं को प्रकट करना। इनके अन्य प्रमुख कर्म सूर्य को तेजस्वी बनाकर (मेघों को सामने से हटाकर) अन्धकार को दूर भगाना तथा द्युलोक को स्थिर करके पृथिवी को विस्तृत (उसके गुणों, गम्भीरता, क्षमा, ममता आदि को बढ़ाना) करना है - **इन्द्रासोमा महि तद्वां महित्वं युवं महानि प्रथमानि चक्रथुः । युवं सूर्यं विविदथुर्युवं स्व१र्विश्वा तमांस्यहतं निदश्च** (ऋ० ६.७२.१) । सायणाचार्य ने इन्हें इन शब्दों में देवत्व की प्रतिष्ठा दी है- **प्र हि क्रतुम् इत्येषा इन्द्रासोम देवताका**।

१९.इळ (१.१३.४ १.४२.४) -- वैदिक कोश में इळ को अन्न के अर्थ में लिया गया है। बृहद्देवता(१.१०७) में इळ को नराशंस, बर्हि, एवं दिव्य द्वार के साथ सम्बद्ध माना गया है तथा इन सभी को अग्नि में निहित स्वीकार किया गया है- **नराशंस श्रितश्चैनम् एनमेवाश्रितस्त्विळ । बर्हिर्द्वारश्च देव्योऽग्निम् एनमेव तु संश्रिताः** । ऋग्वेद में इळ को अग्नि से सम्बद्ध मानकर इनकी स्तुति इन शब्दों में की गई है- **ईळितो अग्न आ वहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम् । इयं हि त्वा मतिर्ममाच्छा सुजिह्व वच्यते** (ऋ० १.१४२.४) । आचार्य सायण ने अपने ऋग्वेद भाष्य में इळ के देवत्व को इन शब्दों में स्वीकार किया है- **द्वितीयादीनां तनूनपान्नराशंस इळो- बर्हिर्देवीर्द्वार उषासानक्ता दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यस्त्वष्टा वनस्पतिः स्वाहाकृतिरित्येताः क्रमेण देवताः** (ऋ० १.१४२ सा० भा०)।

२०.इळा (१.१३.९) -- इळा देवी का नामोल्लेख ऋग्वेद में लगभग बारह बार हुआ है। इन्हें गौ से प्राप्त सम्पत्ति -दुग्ध और घृत का प्रतिरूप माना जाता है। ब्राह्मणों में गौ के साथ इनका घनिष्ठ सम्बन्ध वर्णित है। हविष् की प्रतिरूप होने से इन्हें घृत हस्ता और घृतपाद बताया गया है- **येषामिळा घृतहस्ता दुरोण आँ अपि प्राता निषीदति** (ऋ०७.१६.८) । **मनुष्वद्यज्ञं सुधिता हवींषीळा देवी घृतपदी जुषन्त** (ऋ० १०.७०.८)। इळा को मही, सरस्वती या भारती देवियों से भी सम्बद्ध बताया गया है- **सरस्वती साधयन्ती धियं न इळा देवी भारती विश्वतूर्तिः** (ऋ० २.३.८)।

२१. उषस् (१.४८-४९) -- प्रातः काल की अधिष्ठात्री देवी उषा हैं। इनके निमित्त ऋग्वेद में २० सूक्त समर्पित हुए हैं। इनके नाम का उल्लेख प्रायः ३०० बार हुआ है। उषा को भगदेवता की बहिन तथा द्युलोक से उत्पन्न कहा गया है- **भगस्य स्वसा वरुणस्य जामिरुषः सूनृते प्रथमा जरस्व** (ऋ० १.१२३.५) । उषस् की रचना वैदिक काल की सबसे मनोरम कल्पना है और संसार के किसी भी साहित्य में उषा से अधिक आकर्षक चरित्र प्राप्त नहीं होता । अनुपम सौन्दर्य से सम्पन्न उषा झिलमिलाती हुई उदित होकर सौन्दर्य प्रदर्शन करती हुई अन्धकार को दूर भगाती और प्रकाश के साथ अवतरित होती हैं- **अप द्वेषो बाधमाना तमांस्युषा दिवो दुहिता ज्योतिषागात्** (ऋ०५.८०.५)। उषा सोते हुओं को जगाती और सभी प्राणियों, द्विपादों एवं चतुष्पादों को गति के लिए प्रेरित करती हैं- **प्रबोधयन्तीरुषसः ससन्तं द्विपाच्चतुष्पाच्चरथाय जीवम्** (ऋ०४.५१.५)। उषा को देवताओं पर भी उपकार करने वाली बताया गया है, वे सभी उपासकों को प्रबुद्ध करके और यज्ञाग्नि को प्रदीप्त करा कर देवताओं का भरसक उपकार करती हैं- **उषो यदग्निं समिधे चकर्थ वि यदावश्चक्षसा सूर्यस्य । यन्मानुषान्यक्ष्यमाणाँ अजीगस्तद्देवेषु चकृषे भद्रमप्नः** (ऋ० १.११३.९)। उषा का सूर्य के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। उन्होंने सूर्य के पथ को उनकी यात्रा के लिए खोला है- **आरैक्पन्थां यातवे सूर्याय** (ऋ०१.११३.१६)। उषा को रात्रि की बहिन भी कहा गया है। उनका उद्‌गम स्थल आकाश है, इसी कारण उन्हें 'दिवः दुहिता' कहा गया है। उषा का सम्बन्ध अश्विनों, चन्द्रमा, इन्द्र तथा बृहस्पति आदि देवों के साथ भी वर्णित है।

२२.उषासानक्ता (१.१३.७, १.१४२.७) --ऋग्वेद में उषा और रात्रि को युग्म रूप में उषासानक्ता नाम से आहूत किया गया है। ये दोनों देवियाँ द्युलोक की पुत्री (दिवो दुहिता)) के रूप में प्रतिष्ठित है- **उत योषणे दिव्ये मही न उषासानक्ता सुदुघेव धेनुः** (ऋ०७.२.६)। इन्हें धन सम्पदा युक्त दिव्य युवती भी कहा गया है- **उत त्ये देवी सुभगे मिथूदृशोषासानक्ता जगतामपीजुवा** (ऋ० २.३१.५)। इन दोनों को दो बहिनों के रूप में चित्रित किया गया है, जिनका रंग तो अलग-अलग है,



पर मन एक है, जिनका पथ एक है, साथ ही अनन्त भी है, जो देवताओं द्वारा प्रेरित होकर बारी-बारी से भ्रमण करती हैं, पर कभी भी आपस में टकराती नहीं और न ही ठहरती हैं- **समानो अध्वा स्वस्त्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे । न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे** (ऋ० १.११३.३)। इन्हें ऋत की दीप्तियुक्त मातायें भी कहा गया है- **आभन्दमाने उपाके नक्तोषासा सुपेशसा यह्वी ऋतस्य मातरा सीदतां बर्हिरासुमत्** (ऋ० १.१४२.७)।

२३. ऋभु गण (१.२०;१.११०) -- वैदिक देवों में कुछ देव ऐसे भी हैं, जिनके दिव्य गुण विकसित नहीं हो पाये हैं । इनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण 'ऋभु' हैं । ऋग्वेद में प्राय: ११ सूक्तों में इनकी स्तुति की गई है और इनके नाम का उल्लेख शताधिक बार हुआ है । इनका प्रचलित नाम ऋभु है, किन्तु इनके अन्य तीन और भी नाम - ऋभुक्षन्, वाज और विभ्वन् हैं । इन तीनों नामों का अनेकशः उल्लेख आया है- **तद्वो वाजा ऋभवः सुप्रवाचनं देवेषु विभ्वो अभवन्महित्वनम्** (ऋ० ४.३६.३) । कभी-कभी यह गुण कुछ धुँधला सा बनकर दिखाई देता है, क्योंकि ऋभुओं के साथ ऋभु और विभुओं के साथ विभ्वन् का आवाहन भी मिलता है- **ऋभुर्ऋभुभिरभि वः स्याम विभ्वो विभुभिः शवसा शवांसि** (ऋ० ७.४८.२) इन्द्रदेव के साथ इनका सम्बन्ध घनिष्ठतापूर्वक वर्णित है । उन्हें अभिनव इन्द्र के समान भी बताया गया है- **ऋभुर्न इन्द्रः शवसा नवीयान्** (ऋ० १.११०.७)। इनका सम्बन्ध मरुतों, आदित्य, सविता, पर्वत और सरिताओं के साथ भी वर्णित है ।

२४. 'क' (प्रजापति - १.२४.१) -- प्रजापति का एक अपर नाम 'क' भी मिलता है । सायण आदि आचार्यों ने 'क' का अर्थ सुख से लिया है । सुखमय होने से प्रजापति ही 'क' वर्ण से वाच्य हैं । अतएव 'कस्मै' से प्रजापति के लिए अर्थ लिया जाता है । वेदों में वर्णित देवों में प्रजापति को आदि देव के रूप में स्वीकार किया गया है । सम्पूर्ण जगत् में उनका ही जन्म सर्वप्रथम हुआ है । वे संसार के स्वामी हैं तथा उन्होंने ही पृथ्वी और आकाश को धारण कर रखा है (ऋ० १०.१२१ हिरण्यगर्भ सूक्त)। उन्हें हिरण्यगर्भ के प्रतिरूप ही माना गया है- **हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्** (ऋ० १०.१२१.१)। ब्राह्मण ग्रन्थों में उन्हें सर्वत्र प्रमुख देव मानकर उनकी अभ्यर्थना की गई है । आदि काल में वे एकाकी थे- **प्रजापतिर्ह वा इदमग्र ऽएक एवाऽस** (शत० ब्रा० २.२.४.१)। वे प्रथम यज्ञ कर्त्ता थे- **प्रजापतिर्ह वा एतेनाग्रे यज्ञेनेजे** (शत० ब्रा० २.४.४.१)। आश्वलायन गृह्यसूत्र में प्रजापति को ही ब्रह्मा कहा गया है-प्रजापति ब्रह्मा (आ० गृह्य० ३.४)। प्रजापति को देवलोकों के स्वामी के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है-**प्रजापतिर्वै भुवनस्य पतिः** (तैत्ति० सं० ३.४.८.६)।

२५. काल संवत्सर आत्मा (१.१६४.४८) -- वैदिक देवताओं में काल संवत्सर (समय चक्र) को भी मान्यता प्राप्त हुई है । समय देव (काल देवता) के विभाजन को इस ऋचा में व्यक्त किया गया है- **द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत । तस्मिन् त्साकं त्रिशता न शङ्कवो ऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः** (ऋ० १.१६४.४८)। अर्थात् एक चक्र बारह अरों से आवृत है, वह चक्र तीन नाभियों से युक्त है तथा उस चक्र में तीव्रगति वाली तीन सौ साठ खूँटियाँ लगी हुई हैं; इसे कोई विद्वान् ही समझता है । बृहद्देवताकार ने भी संवत्सर को काल चक्र के रूप में स्वीकार किया है - **पञ्चधा च त्रिधा चैव षोढा द्वादशधैव च । संवत्सरं चक्रवच्च पराभिः कीर्तयत्यृषिः** (बृह० ४.३५) ।

२६ केशिन (अग्नि, सूर्य, वायु) (१.१६४.४४) -- ऋग्वेद में तीन किरणों वाले पदार्थ को 'केशिन' संज्ञा से विभूषित किया गया है । इन तीन किरणों में अग्नि, सूर्य और वायु की स्थिति का वर्णन इस ऋचा में मिलता है - **त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम्** (ऋ० १.१६४.४४)।अर्थात् तीन किरणों वाले पदार्थ ऋतुओं के अनुसार दिखाई देते हैं । इनमें से एक (सूर्य) संस्कार का वपन करता है । एक (अग्नि) अपनी शक्तियों से विश्व को प्रकाशित करता है । तीसरे (वायु) का रूप प्रत्यक्ष नहीं दीखता । आचार्य सायण ने इनके देवत्व को इन शब्दों में स्वीकार किया है- **त्रयः केशिन इत्यग्निः सूर्यो वायुश्च.....** (ऋ० १.१६४ सा० भा०)

२७. गर्भ स्राविण्युपनिषद् (१.१०१.१) -- ऋग्वैदिक देवताओं में इन्द्र को गर्भस्राविण्युपनिषद् के रूप में भी आवाहित किया गया है । वृत्र की (कृष्णगर्भा) अंधेरे में छिपी नगरियों को नष्ट करने वाला तथा असुरों का वंश आगे न बढ़े, इस दृष्टि से उनकी गर्भवती स्त्रियों का नाश करने वाला कहकर इन्द्रदेव से सुरक्षा के लिए आने की प्रार्थना की गई है । ऋग्वेद में उपरोक्त भाव से युक्त यह ऋचा द्रष्टव्य है- **प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना । अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे** (ऋ० १.१०१.१)। आचार्य सायण इनके देवत्व के सम्बन्ध में लिखते हैं - **इन्द्रो देवता । तथा चानुक्रान्तं-प्रमन्दिन एकादश कुत्स आद्या गर्भस्राविण्युपनिषच्चतुस्त्रिष्टुबन्तम्' इति ।**

२८. तनूनपात् (१.१३.२ ;१४२.२) -- द्र० -- **अग्नि**

२९. त्वष्टा (१.१३.१०;१५.३) -- वैदिक देवों में त्वष्टा देवता को शिल्पी के रूप में ख्याति मिली है । ऋग्वेद में प्राय: ६५ बार इनका नाम आया है । विविध प्रकार के निर्माण करने की कला में वे प्रवीण हैं- **त्वष्टा रूपाणि विकरोति** (तैत्ति०



ब्रा० २.७.२.१), **त्वष्टा वै रूपाणामीशे** (तैत्ति० ब्रा० १.४.७.१)। वे देवताओं के लिए वज्र, आयस, परशु, भोज्य तथा पानक वस्तुओं को रखने के निमित्त पात्र बनाते हैं। उनके द्वारा निर्मित एक पात्र 'चमस' का उल्लेख ऋग्वेद में आया है- **उतत्यं चमसं नवं त्वष्टुर्देवस्य निष्कृतम्। अकर्त चतुरः पुनः** (ऋ०१.२०.६)। निर्माण कार्यों में हाथ की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है,इस दृष्टि से इन्हें ऋग्वेद के ऋषि ने सुपाणि कहा है- **सुकृत् सुपाणिः स्ववाँ ऋतावा देवस्त्वष्टावसे तानि नो धात्** (ऋ०३.५४.१२)।

३०.दिव्य होतागण प्रचेतस् (१.१३.८; २.३.७) -- वैदिक देवों में दिव्य होतागण प्रचेतस को भी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। यज्ञ-कृत्य को सुव्यवस्थित रीति से मधुर वाणी द्वारा सम्पन्न कराने के लिए इनका आवाहन किया जाता है - **ता सुजिह्वा उपह्वये होतारा दैव्या कवी। यज्ञं नो यक्षता मिमम्** (ऋ० १.१३.८)। बृहद्देवता में वर्णन मिलता है कि दो दिव्य होता अग्नि के पार्थिव तथा मध्यम रूप हैं। अतःइनका जन्म दिव्य अग्नि से हुआ था,ये दिव्य जन्मा हैं- **"दैव्याविति तु होताराव् अग्नी पार्थिवमध्यमौ। दिव्यादग्नेर्हि जज्ञाते दैव्यौ तेनेह जन्मना** (बृह० ३.११)" इनके देवत्व के सम्बन्ध में आचार्य सायण ने लिखा है - **'देवता उदाहृता सुसमिद्ध.... दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ..... इति प्रत्यृचं देवता एतदाप्रीसूक्तम्** (ऋ० १.१३ सा० भा०)।'

३१.दुःस्वप्ननाशन (१.१२०.१२) -- ऋग्वेद में दुःस्वप्ननाशन देव को गौण स्थान प्राप्त हुआ है। ऋ० १.१२० में अन्य सभी ऋचायें तो अश्विनीकुमारों को समर्पित हैं; पर एक अन्तिम ऋचा इन्हें समर्पित है। बृहद्देवता के अनुसार दुःस्वप्ननाशन कोई अलग से देवता नहीं हैं,वरन् इस (ऋ० १.१२०.१२) ऋचा को दुःस्वप्ननाशिनी कहा गया है - **'नासत्याभ्यामिति त्वन्त्ये अन्त्या दुःस्वप्ननाशिनी** (बृह० ३.१३९)। आचार्य सायण इनके देवत्व के विषय में लिखते हैं - **अत्रानुक्रम्यते - 'का राधद् द्वादशन्त्या दुःस्वप्ननाशन्याद्या गायत्री** (ऋ० १.१२० सा० भा०)।

३२.देवगण (१.२७.१३) -- ऋग्वेद में एक ऋचा में बालक,तरुण,वृद्ध सभी को देव मानकर नमन किया गया है। इनके लिए देवाः (देवगण) शब्द आया है- **नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः। यजाम देवान् यदि शक्नवाम मा ज्यायसः शंसमा वृक्षि देवाः** (ऋ० १.२७.१३) अर्थात् बड़ों,छोटों,युवकों और वृद्धों को हम नमस्कार करते हैं। सामर्थ्य के अनुसार हम (इन) देवों का यजन करें। बृहद्देवताकार ने इस देव समुदाय को 'विश्वेदेवा' नाम दिया है - **जराबोधेति विज्ञेया वैश्वदेव्युत्तमा नमः** (बृह० ३.९९)। आचार्य सायण ने भी इस देव समुदाय का विश्वेदेवा नाम स्वीकार किया है-**त्रयोदश्याः नमो महद्भ्यः इत्यस्याः त्रिष्टुप् छन्दः।विश्वेदेवा देवता** (ऋ० १.२७ सायण भा०)।

३३. देवियाँ (१.२२.११) वैदिक आस्था और उपासना में देवियों का स्थान अपेक्षाकृत गौण है। कहीं-कहीं यज्ञ में देवपत्नियों (देवियों) का भी यज्ञ सुरक्षार्थ आवाहन किया गया है - **अभि नो देवीरवसा महः शर्मणा नृपत्नीः। अच्छिन्न पत्राः सचन्ताम्** (ऋ० १.२२.११)। बृहद्देवता में भी देवियों की स्तुति का संकेत मिलता है - **एकाग्नेर्द्वे तु देवीनां द्वादश्यां देवपत्नयः** (बृह० ३.९२)।

३४.द्यावा-पृथिवी (१.२२.१३-१४;१५९-१६०) -- वैदिक देवयुग्मों में द्यावा -पृथिवी का स्थान भी महत्त्वपूर्ण है। इन्हें आकाश और पृथिवी कहते हैं। आदिम चिन्तन में पृथिवी और आकाश इतने अधिक संवलित रूप में एक दूसरे से सम्बद्ध थे कि उनके पति-पत्नी भाव की कथाएँ आदिम जनों में प्रायः सर्वत्र उभर कर आई थीं। इसी कारण इन्हें सभी माता-पिता के रूप में मानते हैं- **उत मन्ये पितुरद्रुहो मनो मातुर्महि स्वतवस्तद्धवीमभिः** (ऋ०१.१५९.२)। इन्हें आदि माता-पिता के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है- **प्र पूर्वजे पितरा नव्य सीभिर्गीर्भिः कृणुध्वं सदने ऋतस्य। आनो द्यावापृथिवी दैव्येन जनेन यातं महि वां वरूथम्** (ऋ०७.५३.२)। ऋग्वेद में ६ सूक्तों में इनका आवाहन हुआ है,अकेले द्यौस् को एक भी सूक्त नहीं मिला है,पृथिवी को अकेले तीन मंत्रों का एक सूक्त समर्पित हुआ है। पृथिवी की स्तुति भी इस रूप में हुई है कि वे द्यौस् द्वारा प्रदत्त वृष्टि को अपने बादलों से भेजने वाली बताई गई हैं- **दृळ्हा चिद् या वनस्पतीन् क्ष्मयाद् धर्ष्योजसा। यत्ते अभ्रस्य विद्युतो दिवो वर्षन्ति वृष्टयः** (ऋ०५.८४.३)।

३५. द्यौ (१.९४.१६ उत्त०) -- ऋग्वेद में द्यौ शब्द का प्रयोग प्रायः ५०० बार हुआ है। यह 'स्थूल आकाश' के अर्थ में अधिकांशतः प्रयुक्त हुआ है। कई बार 'दिन' के अर्थ में भी यह शब्द प्रयुक्त हुआ है। द्युलोक के देवता के रूप में इनका नाम प्रायः पृथिवी के साथ 'द्यावा-पृथिवी' के रूप में आया है। इनका स्वतंत्र रूप में केवल ८ बार ही नाम आया है। शेष में तो इनका सम्बन्ध किसी न किसी देवता के साथ वर्णित है। पृथिवी को मातृ स्वरूप मानने के कारण इन्हें पिता माना गया है- **मधु द्यौरस्तु नः पिता** (ऋ०१.९०.७)। इन्हें वृष या लोहित वृष भी माना गया है- **वृषा त्वा वृषणं वर्धतु द्यौर्वृषा वृषभ्यां वहसे हरिभ्याम्** (ऋ० ५.३६.५)। ऋग्वेद में द्यौ के मानवीकरण का प्रमुख उद्देश्य उनका पितृत्व है। इसी कारण पृथिवी माता के साथ उनका पितृत्व प्रायः १५ बार पाया जाता है- **द्यौ ३ष्पितः पृथिविमातरध्रुक्......** (ऋ० ६.५१.५)।



३६.नभ एवं नभस्य (२.३६.५-६) -- नभ और नभस्य नामक दो देवता इन्द्रदेव के साथ ऋग्वेद - २.३६.५ और २.३६.६ में आये हैं, किन्तु इनका नाम स्पष्टतः दृष्टिगत नहीं होता। लगता है इन्द्रदेव के ही किन्हीं विशेषणों के कारण इन्हें देवता मान लिया गया होगा। आचार्य सायण ने इनके देवत्व को इन शब्दों में स्वीकार किया है - **पञ्चम्या इन्द्रो न भश्च। षष्ठ्या मित्रावरुणौ नभस्यश्च** (ऋ० २.३६ सा० भा०)। कोश ग्रन्थ वाचस्पत्यम् में नभ शब्द का अर्थ हिंसा, श्रावण मास, चाक्षुषमन्वन्तर के सप्तऋषियों में एक 'नभ' नामक ऋषि, गगन आदि लिया गया है, परन्तु ऋग्वेद में इन्हें देवता रूप में स्वीकार किया गया है।

३७. नराशंस (१.१३.३; २. ३. २) -- द्र० - अग्नि

३८.पर्जन्य (१.१६४.५१) -- वैदिक देवताओं में पर्जन्य का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। ऋग्वेद के देवता तीन भागों में विभक्त किये गये हैं - (१) पार्थिव (२) वायवीय (३) स्वर्गीय। पर्जन्य देव की गणना वायवीय देवताओं में की जाती है; ये जल बरसाने वाले देवता हैं। जल के साथ ये प्राणतत्त्व का वर्षण भी करते हैं, जिससे भूमि उर्वर बनती है, वनस्पतियाँ पोषित होती हैं तथा प्राण शक्ति सम्पन्न बनती हैं-**समुत्पतन्तु प्रदिशो नभस्वतीः समभ्राणि वातजूतानि यन्तु** (अथर्व० ४.१५.१)। पर्जन्य देव द्वारा पृथ्वी को उपजाऊ बनाने तथा अग्निदेव द्वारा द्युलोक को उर्वर बनाने के सन्दर्भ में ऋग्वेद के ऋषि कहते हैं - **भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वन्त्यग्नयः** (ऋ० १.१६४.५१)। पर्जन्य देव का सम्बन्ध वात, मरुत्, अग्नि और इन्द्र के साथ भी वर्णित है- **वाचं सु मित्रा वरुणा विरावतीं पर्जन्यश्चित्रां वदति त्विषीमतीम्। अभ्रा वसत मरुतः सु मायया द्यां वर्षयतमरुणामरेपसम्** (ऋ० ५.६३.६)। ऋग्वेद में पर्जन्य शब्द 'मेघ' का विशेषण है और साथ ही मानवीकृत देव का भी बोधक है।

३९.पूषा (१.२३.१३.१५) -- ऋग्वेद में पूषा देवता को प्रमुख देव के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है। पूषन् शब्द पुष् धातु से बना है, जिसका अर्थ है - पोषक, पुष्ट करने वाला। ऋग्वेद में पूषा देवता सूर्य की कल्याणकारी एवं मानवों को पुष्टि प्रदान करने वाली शक्ति के प्रतीक रूप में वर्णित हैं। सूर्य देव की भाँति वे सभी को स्पष्ट रूप से देखते हैं तथा विश्व का अवलोकन करते हैं - **विश्व मन्यो अभिचक्षाण एति** (ऋ० २.४०.५)। वे सविता देवता की प्रेरणा से ही विचरण करते हैं- **तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वान्** (यजु० १७.५८)। उनसे दीर्घायु एवं वर्चस् की अभिवृद्धि हेतु प्रार्थना की गई है- **पूष्णः पोषेण मह्यं दीर्घायुत्वाय शत शारदाय शतं शरद्भ्यः आयुषे वर्चसे** (तैत्ति० ब्रा० १.२.१.१९)। पूषादेव से मार्ग के विघ्नों, वृकों, दस्युओं आदि से रक्षा करने की प्रार्थना की गई है- **यो नः पूषन्नघो वृको दुःशेव आदिदेशति। अप स्म तं पथो जहि** (ऋ० १.४२.२)। पूषा के दन्तहीन होने तथा करम्भ (पुआ) का भोजन करने का वर्णन भी कौषीतकि ब्राह्मण में मिलता है- **तस्य दन्तान्परोवाप तस्मादाहुरदन्तकः पूषा करम्भ भाग इति** (कौषी० ब्रा० ६.१३)। ऋग्वेद में पूषन् का उल्लेख १२० बार तथा अथर्ववेद में ३० बार हुआ है।

४०.पृथिवी (१.२२.१५) -- वैदिक ग्रन्थों में पृथिवी को माता के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है। इनका द्यावा के साथ अधिक वर्णन आया है। पृथिवी और आकाश को जगत् का माता-पिता माना गया है। अकेली पृथिवी के लिए ऋग्वेद में एक तथा अथर्ववेद में भी एक सूक्त समर्पित है। वह पर्वतों के भार को धारण करने वाली, वन्य ओषधियों की धर्त्री, भूमि को उर्वरता प्रदान करने वाली तथा जल बरसाने वाली हैं - **बळित्था पर्वतानां खिद्रं बिभर्षि पृथिवि। प्र या भूमिं प्रवत्वति मह्ना जिनोषि महिनि।** (ऋ० ५.८४.१)। पृथिवी का अर्थ है- विस्तृत आकार वाली। ऋग्वेद में एक स्थान पर उल्लेख आता है कि देवराज इन्द्र ने पृथिवी का प्रथन किया, (पप्रथत्) वहाँ इस शब्द की व्युत्पत्ति का संकेत है। प्रथ् का अर्थ फैलना (विस्तार होना) है। इससे भी पृथिवी के अर्थ की ठीक-ठीक संगति बैठती है-**'स धारयत् पृथिवीं पप्रथच्च सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार'** (ऋ० २.१५.२)। तैत्तिरीय संहिता में भी पृथिवी के प्रथ् शब्द से उत्पत्ति के विषय में इस पंक्ति से स्पष्ट विदित होता है- **साऽप्रथत, सा पृथिव्यभवत्तत्पृथिव्यै पृथिवित्वम्** (तैत्ति० सं० ७.१.५.१)। अथर्ववेद के ऋषि ने स्नेहसिक्त शब्दों में पृथिवी के प्रति मातृभाव दर्शाया है। उनने कहा है-भूमि मेरी माता है, मैं उनका पुत्र हूँ- **माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः** (अथर्व० १२.१.१२)। ऋग्वेद के ऋषि ने भी उन्हें एक उदारमना माता के रूप में ही स्वीकार किया है जो प्रत्येक प्राणी की जन्मदात्री, पालयित्री तथा अन्ततः उसे अपनी कोमल गोद में समेट लेने वाली हैं - **उप सर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम्** (ऋ० १०.१८.१०)।

४१.बृहस्पति (१. १३९.१०; १.१९०) -- बृहस्पति को प्रमुख वैदिक देवता के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है। इन्हें प्रार्थना या उपासनाओं का स्वामी कहा गया है। इन्हें सर्वोच्च कवि की उपाधि से भी विभूषित किया गया है- **कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्** (ऋ० २.२३.१)। इन्हें प्रज्ञा तथा वाणी का देवता और देवताओं का पुरोहित भी माना जाता है- **वाग् वै बृहती तस्या एष पतिस्तस्माद् बृहस्पतिः** (शत० ब्रा० १४.४.१.२२)। **बृहस्पतिर्वै देवानां ब्रह्मा** (शत० ब्रा० १.७.४.२१)



निघण्टु में बृहस्पति की पृथ्वी-स्थानीय देवों में गणना की गई है। बृहस्पति के स्वरूप में अग्नि की अनेक विशेषतायें वर्णित हैं। अग्नि की भाँति इन्हें भी बलपुत्र-सहसः पुत्रः कहा गया है (निघ० ८.२)। अग्नि की भाँति इनके भी तीन निवास स्थान है- **बृहस्पतिस्त्रिषधस्थः** (ऋ०४.५०.१)। अग्नि की भाँति वे राक्षसों को जला डालते हैं- **तेजिष्ठया तपनी रक्षस्तप** (ऋ० २.२३.१४)।

४२.ब्रह्मणस्पति (१.१८.१-३;१.४०) -- बृहस्पति और ब्रह्मणस्पति का तादात्म्य माना गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में स्पष्टतः उल्लेख मिलता है-"**बृहस्पतिर्ब्रह्म ब्रह्मपतिः**" (तैत्ति० ब्रा० ३.११.४.२)। प्रार्थना या स्तुति के अधिष्ठातृ देव को ब्रह्मणस्पति की संज्ञा से विभूषित किया गया है- **ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्** (ऋ० २.२३.१) ब्रह्मणस्पति को अग्नि और मित्र के समान सौन्दर्यवान् मानकर इनका आवाहन किया गया है- **अच्छा वदा तना गिरा जरायै ब्रह्मणस्पतिम्। अग्निं मित्रं न दर्शतम्** (ऋ० १.३८.१३)। इन्हें ऋत के रथ पर आरूढ़ होकर स्तुति करते एवं देवताओं के शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते बताया गया है - **आ विबाध्यापरिरापस्तमांसि च ज्योतिष्मन्तं रथमृतस्य तिष्ठसि** (ऋ० २.२३.३)। ब्रह्मणस्पति अपने उपासकों को संकटों, उत्पातों, शापों और दुश्मनों से बचाकर श्रीवर्षा करते हैं।

४३.भग (१.२४.५) -- बारह आदित्यों में एक आदित्य 'भग' को भी माना गया है। ऋग्वेद के अति प्राचीन मंत्र में इनके छः होने का प्रमाण मिलता है, जिनमें भग का नाम भी है। इनके यज्ञ स्वरूप होने का वर्णन भी कहीं-कहीं मिलता है- **यज्ञोभगः** (शत० ब्रा० ६.३.१.१९)। इनके विषय में नेत्रहीन होने की परिकल्पना की गई है। गोपथ ब्राह्मण में लिखा है - **तस्य (भगस्य) चक्षुः परापतत् तस्माद्‌ा हुरन्धो वै भग इति** (गो० ब्रा० २.१.२)। ऋग्वेद में आचार्य सायण ने इनका देवत्व इन शब्दों में प्रतिपादित किया है- **'भग भक्तस्य' इत्येषा भग देवताका वा** (ऋ० १.२४ सा० भा०)।

४४.मधु (२.३६.१) -- ऋग्वेद में मधु को भी देवता के रूप में प्रतिष्ठा मिली है। ऋ० २.३६.१ में इन्द्रदेव के साथ सोमपान के लिए इन्हें भी आमंत्रित किया गया है; परन्तु इस ऋचा में इनके नाम का अलग से उल्लेख नहीं हुआ है। सम्भवतः यह इन्द्रदेव का ही कोई विशेषण हो अथवा सोम को ही मधु माना गया हो। आचार्य सायण ने इनके देवत्व को इन शब्दों में व्यक्त किया है- **प्रथमाया इन्द्रो मधुश्चदेवता** (ऋ० २.३६ सा० भा०)।

४५.मरुद्गण (१.३७- ३९) -- ऋग्वेद में मरुत् देव को उच्च प्रतिष्ठा प्राप्त है। इन्हें गणदेव के रूप में अनेक जगह वर्णित किया गया है। ये पृश्नि के पुत्र हैं - **रुद्रो यद्वो मरुतो रुक्म वक्षसो वृषाजनि पृश्न्याः शुक्र ऊधनि** (ऋ० २.३४.२)। इन्हें रुद्र का पुत्र भी बताया गया है, इसी कारण इन्हें कई बार 'रुद्राः' अथवा 'रुद्रियाः' कहकर सम्बोधित किया गया है। इनकी तुलना अग्नि से की गई है- **ये अग्नयो न शोशुचन्निधाना द्विर्यत् त्रिर्मरुतो वावृधन्त** (ऋ० ६.६६.२) मरुत् देव को वायु एवं आँधी के देवों के रूप में भी मान्यता प्राप्त है। इनका सम्बन्ध सरस्वती एवं रोदसी के साथ है। देवसेना में मरुद्गण सदैव अग्रगामी रहते हैं- देवसेनानामभिभञ्जतीनां **जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रे** (तैत्ति० सं० ४.६.४.३)।

४६.मरुत्वान् इन्द्र (१.१६५, १७१) -- द्र० - इन्द्र

४७.माधव (२.३६.२) -- वैदिक देवताओं में माधव देव को अधिक प्रतिष्ठा नहीं मिली है। इनका आवाहन ऋग्वेद की मात्र एक ऋचा २.३६.२ में मरुत् देव के साथ सोमपान के निमित्त हुआ है; किन्तु अलग से इनका नाम उसमें उल्लिखित न होने से लगता है कि मरुत् देव के किसी विशेषण के कारण इन्हें भी देव मान लिया गया होगा। आचार्य सायण ने इनके देवत्व के सम्बन्ध में लिखा है - **द्वितीयाया मरुतो माधवश्च** (ऋ० २.३६ सा० भा०)।

४८.मित्र (१.१५१.१) -- मित्र देव द्युलोक एवं पृथिवी लोक को धारण करने वाले हैं। इन्हें शान्ति के देवता के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है- **मित्रो वै यज्ञस्य शान्तिः** (काठ० सं० ३५.१९)। ये समस्त जीवधारियों को अपनी वाणी से अभिप्रेरित करते हैं। इन्हें सविता देवता के समतुल्य माना गया है - **य इमा विश्वा जातान्याश्रावयतिश्लोकेन। प्र च सुवाति सविता** (ऋ० ५.८२.९)। दिन से सम्बन्धित देवता को मित्र तथा रात्रि से सम्बन्धित देवता को वरुण कहा गया है- **वरुणेन समुब्जितां मित्रः प्रातर्व्युब्जतु** (अथर्व० ९.३.१८)। मित्र देव के नियमों से ही विष्णुदेव अपने तीन पगों द्वारा परिक्रमा करते हैं- **यस्मै विष्णुस्त्रीणि पदा विचक्रम उप मित्रस्य धर्मभिः** (बाल खिल्य ४.३)।

४९.मित्रावरुण (१.१३७; १५२) -- वेदों में बहुत से देवताओं की स्तुति युग्म रूप में की गयी है। मित्रावरुण शब्द में मित्र को प्रथम और वरुण को द्वितीय स्थान मिला है, जिससे मित्र की विशिष्ट महत्ता द्योतित होती है- **मित्रश्च वरुणश्च मित्रावरुणौ** (ऋ० १.१५.६ सा० भा०)। इनको धृतव्रत कहा गया है- **धृतव्रत मित्रावरुण** (ऋ० १.१५.६)। इन देवताओं को नित्य युवा के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है- **मित्रः सम्राजो वरुणो युवान** (ऋ० ३.५४.१०)। अनेक देवों की तरह इन्हें चन्द्र, शुचि, स्वर्दृश, रुद्र (लाल) और भीम बताया गया है। इस शक्तिशाली देवता युग्म को सहायतार्थ आहूत किया जाता है।



५०.रति (१.१७९) -- वैदिक देवों में रति देवता को गौण स्थान प्राप्त हुआ है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में एक सौ उन्यासीवाँ सूक्त इन्हें समर्पित है, जिसमें ऋषि अगस्त्य और उनकी धर्मपत्नी लोपामुद्रा के प्रणय प्रसङ्ग वर्णित हैं। वैसे पौराणिक आख्यानों में रति को कामदेव की पत्नी के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त है। रति का हिन्दी अर्थ प्रेम है। आचार्य सायण ने अपने ऋग्वेद भाष्य में इनके देवत्व को इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है- **सूक्त प्रतिपाद्योऽर्थो रतिर्देवता** (ऋ० १.१७९ सा० भा०)।

५१.राका (२.३२.४-५) -- ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल में दो ऋचाएँ राका देवता को समर्पित की गई हैं। इनमें राका को पूर्णिमा की अधिष्ठात्री देवी माना गया है। ये उत्तम ऐश्वर्य प्रदान करती हैं, पुष्टिकारक अन्न तथा श्रेष्ठ सन्तति प्रदात्री है- **राका महं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतुत्मना। सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम्** (ऋ० २.३२.४)। बृहद्देवता में भी इनके देवत्व को स्वीकार किया गया है- **द्वे द्वे राका सिनीवाल्योः** (बृह० ४.८७)। राका देवी के निमित्त समर्पित दो ऋचाओं में इनके देवत्व का वर्णन आचार्य सायण ने भी इन शब्दों में किया है- **ततो द्वे राका देवत्ये** (ऋ० २.३२ सा० भा०)। पूर्णमासी की अधिष्ठात्री के रूप में भी आचार्य सायण ने इनके विषय में लिखा है- **संपूर्णचन्द्रा पौर्णमासी राका** (ऋ० २.३२.४ सा० भा०)।

५२.रात्रि (१.३५.१) -- वेदों में रात्रि को भी देवी के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है। इन्हें नक्षत्र रूप नेत्रों से समस्त संसार को देखने वाली तथा सब प्रकार के सौन्दर्य को धारण करने वाली बताया गया है- **रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्य१क्षभिः। विश्वा अधिश्रियोऽधित** (ऋ० १०.१२७.१)। आचार्य सायण ने इनके देवत्व को इन शब्दों में प्रमाणित किया है- **गायत्रं रात्रि देवताकम्** (ऋ० १०.१२७.१.सा० भा०)। रात्रि को उषा की बहिन माना गया है- **निरुस्वसारमस्कृतोषसं देव्यायती** (ऋ० १०.१२७.३)। इन्हें दिवो दुहिता (सूर्य कन्या) कहा गया है- **उप ते गा इवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिवः** (ऋ० १०.१२७.८)। वह प्रकाश के द्वारा अंधकार को दूर करती है। उनके आ पहुँचने पर मनुष्य अपने घरों को तथा पक्षी अपने घोंसलों की ओर लौटते तथा विश्रान्ति प्राप्त करते हैं। उषा के साथ अनेक मंत्रों में वे देवता युग्म के रूप में आहूत हुई हैं।

५३.रुद्रगण (१.४३.१) -- वैदिक देवताओं में रुद्र उच्च प्रतिष्ठा प्राप्त हैं। रुद्र को मरुत् देव का पिता माना गया है- **आ ते पितर्मरुतां सुम्नमेतु ।....प्रजायेमहि रुद्र प्रजाभिः** (ऋ० २.३३.१)। ये विभिन्न वेशों वाले तथा अनेक कार्यों को सम्पादित करने वाले कहे जाते हैं। इसीलिए रुद्र एवं उनके गणों की अभ्यर्थना की जाती है- **नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो** (यजु० १६.२५)। कण्डिकाओं में अनेक स्थानों पर बहुवचन शब्द रुद्राः प्रयुक्त हुआ है, जो प्रायः ग्यारह रुद्रों की संख्या को द्योतित करता है- **एकादश रुद्रा एकादशाक्षरा त्रिष्टुप्** (तैत्ति० सं० ३.४.९.७), इसी में अन्य स्थलों पर इनकी तैंतीस संख्या भी वर्णित है- **त्रिंशत्त्रयश्च गणिनो रुजन्तो दिवं रुद्राः पृथिवीं च सचन्ते** (तैत्ति० सं० १.४.११.१)। रुद्र का सम्बन्ध अग्नि से बताया गया है- **यो वै रुद्रः सोऽग्निः** (शत० ब्रा० ५.२.४.१३)। पशुओं के स्वामी संरक्षक के रूप में भी ये अग्नि के साथ निर्दिष्ट हैं।

५४.रोमशा (१.१२६.७) -- ऋग्वेद में रोमशा को मात्र एक ऋचा समर्पित है। ये राजा भावयव्य की धर्मपत्नी तथा बृहस्पति की पुत्री हैं- **प्रादात्सुतां रोमशां नाम नाम्ना बृहस्पतिर्भावयव्याय राज्ञे** (बृह० ३.१५६)। वैदिक कोश से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। उसमें यह सम्भावना भी व्यक्त की गई है कि रोमशा शब्द उक्त (१.१२६.७) ऋचा में 'रोमों वाली' अर्थ में विशेषण भी हो सकता है। उक्त ऋचा की देवता और द्रष्ट्री रोमशा ही हैं, क्योंकि इन्होंने अपने ही विषय में भावयव्य से संवाद करते समय बताया है। आचार्य सायण ने इनके देवत्व को निम्न शब्दों में व्यक्त किया है- **षष्ठ्याः भावयव्यः सप्तम्याः रोमशा** (ऋ० १.१२६ सा० भा०)। उक्त ऋचा में राजाभावयव्य और रोमशा का संवाद है।

५५.लिङ्गोक्त (१.१३६.६-७) -- वेदों में ऐसे अनेक सूक्त हैं, जिनमें एक ही देवता को अनेक रूपों में दर्शाया गया है और उन्हीं के द्वारा विभिन्न कार्यों को सम्पन्न करते हुए वर्णित किया गया है। ऐसे देवता को लिङ्गोक्त देवता माना गया है। लिङ्गोक्त पद की दूसरी अवधारणा यह है कि विभिन्न सूक्तों अथवा मंत्रों में प्रतीक लक्षणों के आधार पर उनमें निहित देवता को प्रमुख देवता के रूप में प्रतिष्ठित किया जाता है। इनमें सामूहिक देवों की भी गणना होती है। लिंग का अर्थ प्रतीक होता है- **येन लिंगेन यो देशः युक्तः समुपलक्ष्यते। तेनैव नाम्ना तं देशं वाच्यमाहुः मनीषिणः** (श० क०)।

५६.वरुण (१.२५; २.२८) -- वरुणदेव देवताओं के राजा माने जाते हैं - **क्षत्रस्य राजा वरुणोधिराजः** (तैत्ति० सं० ३.१.२.७) वरुणदेव सम्पूर्ण भुवनों के अधिपति माने जाते हैं - **तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा** (ऋ० ५.८५.३)। द्यावा और पृथिवी इन्हीं के धर्म के आश्रय में हैं - **द्यावा पृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते** (ऋ० ६.७०.१)। इनका उल्लेख प्रायः मित्र देवता के साथ आया है। मित्र को दिन का तथा वरुण को रात्रि का देवता माना जाता है। वरुण देव जल को समावृत कर लेते हैं; इस कारण इन्हें जल का देवता भी माना जाता है-**'यच्च (आपः) वृत्वाऽतिष्ठंस्तद्वरणोऽभवत्तं वा एतं वरणं सन्तं वरुण इति'** (गो० ब्रा० १.१.७)।



५७.वाक् (१.१६४.४५) -- वाक् अन्तरिक्षस्थानीय देवी के रूप में प्रख्यात हैं। निरुक्त में वर्णन आता है- **तस्मान्माध्यमिकां वाचं मन्यन्ते** (नि० ११.२७)। ऋग्वेद में वाक् सूक्त प्रसिद्ध है, इसकी द्रष्टी वागाम्भृणी हैं, जो अम्भृण ऋषि की सुपुत्री हैं। वाणी का सम्बन्ध बृहस्पति से है, वाक् सूक्त में आत्म कथन किया गया है- **बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः** (ऋ० १०.७१.१)। वाक् देवी राष्ट्री और दिव्या मानी जाती है- **अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्** (ऋ० १०.१२५.३)।

५८.वायु (१.२.१-३; १.१३४) -- वायु को समस्त देवताओं की आत्मा माना जाता है- **सर्वेषामु हैष देवानामात्मा यद्वायुः** (शत० ब्रा० ९.१.२.३८)। प्रजापति के प्राण से वायु तत्त्व की उत्पत्ति हुई है- **प्राणाद्वायुरजायत** (ऋ० १०.९०.१३)। ये दीर्घायुष्य प्रदाता हैं। अमरता प्रदान करने की अक्षय शक्ति वायु देवता में विद्यमान है- **यददो वात ते गृहे३ऽमृतस्य निधिर्हितः। ततो नो देहि जीवसे** (ऋ० १०.१८६.३)। ये अन्तरिक्षीय देवता हैं- **वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्षस्थानः** (नि० ७.५)। वायु का प्रवाह तिर्यक् गति वाला (तिरछा) होता है- **अयं वायु रस्मिन्नन्तरिक्षे तिर्यङ् पवते** (जैमि० ब्रा० ३.३.१०)। वायु देव समस्त देवों में तीव्र गति वाले हैं- **वायुर्वै देवानामाशुः सारसारितमः** (तैत्ति० सं० ३.८.७.१)। इन्द्र के साथ वायु युग्म देव के रूप में भी प्रतिष्ठित हैं।

५९.विश्वेदेवा (१.१४; २.२९) -- देवताओं के समष्टिगत विवरण में इन्हें विश्वेदेवाः के नाम से जाना जाता है। सम्पूर्ण देवों के प्रतिनिधि स्वरूप इन्हें यज्ञ मण्डप में आवाहित किया जाता है। ये तीन से लेकर तैंतीस करोड़ तक की संख्या में माने जाते हैं। विश्वेदेवा के समूह में समस्त देवता समाहित हो जाते हैं, कोई अवशिष्ट नहीं रहते। कौषीतकि ब्राह्मण में उल्लेख आता है- **एते वै सर्वे देवा यद्विश्वेदेवाः** (कौषी० ब्रा० ४.१४५.२)। सम्पूर्ण देव मण्डल में ये सर्वाधिक प्रख्यात हैं- **विश्वे वै देवा देवानां यशस्वितमाः** (शत० ब्रा० १३.१.२८)। ऋग्वेद में आचार्य सायण ने इनके देवत्व का इस प्रकार उल्लेख किया है- **तथा चानुक्रान्तं 'धृतव्रताः सप्त वैश्वदेवम्' इति** (ऋ० २.२९ सा० भा०)। इन्हें अनन्त की संख्या भी दी जाती है-**अनन्ता विश्वेदेवा** (शत० ब्रा० १४.६.१.११)।

६०.विष्णु (१.१५४-१५६) -- वैदिक देवताओं में विष्णु उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित हैं। विष्णु शब्द "विष्लृ" धातु से व्युत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ सर्वत्र फैलना अथवा व्यापक होना है। महाभारत (५।७०;१३-१४) में विष्णु देवता का सर्वत्र व्याप्त होना उल्लिखित है। इनकी गणना द्युलोकीय देवताओं में होती है। विष्णुदेव उरुगाय और उरुक्रम विशेषणों से विभूषित हैं। ऋग्वेद में वर्णित है- **उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः** (ऋ० १.१५४.५)। विष्णु देवता के तीन पाद वर्णित हैं, जो समस्त प्राणियों के आश्रय प्रदाता हैं। इनके गमन मार्ग पर चलने के लिए सभी को उत्सुकता रहती है- **तदस्य प्रियमभि पाथो अश्याम्......**(ऋ० १.१५४.५)। विष्णुदेव द्वारा ही यज्ञ वेदिका की परिकल्पना की गई थी- **यन्त्वेवात्र विष्णुमन्वविन्दंस्तस्माद्वेदिर्नाम** (शत० ब्रा० १.२.५.१०)। इन्हें यज्ञ का स्वरूप मानते हैं- **यज्ञो वै विष्णुः** (शत० ब्रा० १.१.२.१३)।

६१.शुक्र (२.३६.३) -- वैदिक देवताओं में शुक्रदेव को अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हुई है। इन्हें ऋग्वेद के दूसरे मंडल के ३६ वें सूक्त की तीसरी ऋचा में त्वष्टादेव के साथ सोमपान के लिए आवाहित किया गया है। आचार्य सायण ने इनके देवत्व को इन शब्दों में व्यक्त किया है- **तृतीयायास्त्वष्टा शुक्रश्च** (ऋ० २.३६ सा० भा०)। वैदिक कोश (पृ० ५१९) के अनुसार शुक्र शब्द से आकाशीय ग्रह अभिप्रेत है। शब्द कल्पद्रुम (पृ० ११५) के अनुसार इस शब्द का निर्माण शुचोरन् से हुआ है, जिसका अर्थ भी ग्रह विशेष है। इन्हें (शुक्र को) दैत्यों के गुरु के रूप में भी प्रतिष्ठा प्राप्त है।

६२.सदसस्पति (१.१८.६-८) – यज्ञगृह के देवता को सदसस्पति के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है। यजुर्वेद में उल्लेख है- **सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्। सनिं मेधामयासिष ठ स्वाहा** (यजु० ३२.१३)। यज्ञगृह को सदस् या सदा कहा जाता है। यज्ञ का आधार होने के कारण इन्हें यज्ञ का उदर भी माना जाता है- **उदरं वा एतद् यज्ञस्य यत् सदः** (काठ० सं० २८.१)। प्रजापति के आठ नामों में एक नाम सदसस्पति भी प्रख्यात है। आचार्य सायण ने सदसस्पति के साथ देवता रूप में विकल्पतः नराशंस नाम का भी उल्लेख किया है- **इत्येतस्या नवम्याः सदसस्पतिर्नराशंसो वा विकल्प्यते** (ऋ० १.१८ सा० भा०)। ऋग्वेद की तीन ऋचायें (१.१८.६-८) इन्हीं को समर्पित हैं।

६३.सरस्वती (१.१६४.४९) -- सरस्वती को वाणी की देवी के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है। ये विद्या और कला की अधिष्ठात्री देवी भी मानी जाती हैं। ऐतरेय ब्राह्मण में इनका उल्लेख वाणी की उत्प्रेरिका देवी के रूप में हुआ है- **अथ यत्स्फूर्जयन् वाचमिव वदन्दहति तदस्य सारस्वतं रूपम्** (ऐत० ब्रा० ३.४)। सरस्वती से सम्पूर्ण वेदों की उत्पत्ति हुई है- **सरस्वत्याः सर्वं**



वेदाः अभवन् (गा० र० ४.५.९-१०)। ऋग्वेद में देवी सरस्वती का सम्बन्ध पूषा, मरुत्, इन्द्र, इड़ा और भारती से होना बताया गया है। इनके देवत्व का उल्लेख करते हुए आचार्य सायण ने लिखा है- **यस्ते सरस्वत्यै ......** (ऋ० १.१६४ सा० भा०)।

६४. सरस्वान् (१.१६४.५२) -- ऋग्वेद में सरस्वान् देव को गौण स्थान मिला है। इन्हें सूर्य के पर्याय के रूप में माना गया है। बृहद्देवता के अनुसार ऋ० १.१६४ की अन्तिम ऋचा ५२ के वैकल्पिक रूप से सूर्य को सम्बोधित किया गया है- **इन्द्रं मित्रमिमे सौर्यौ सौरी वान्त्या सरस्वते** (बृह० ४.४२)। सरस्वान् को प्राणस्वरूप भी माना गया है (क्योंकि सूर्य भी प्राणस्वरूप है)- **सरस्वन्तमिति प्राणो वाचं......** (बृह० ४.३९)। सरस्वान् को सूर्य का पर्याय मानते हुए उनके देवत्व को इन शब्दों में स्वीकार किया है-**'दिव्यं सुपर्णं ' इत्यस्याः सरस्वान् सूर्यो वा देवता** (ऋ० १.१६४ सा० भा०)। सरस्वान् को मन भी कहा गया है-**मनो वै सरस्वान्** (शत० ब्रा० ७.५.१.३१)। मन (सरस्वान्) को आनन्ददायक माना गया है, इसीलिए इसकी उपमा स्वर्ग लोक से दी गई है- **स्वर्गो लोकः सरस्वान्** (ता० म० १६.५.१५)।

६५. सविता (१.२४.३-४) -- सविता दिव्य प्रेरणायें देने वाले देवता हैं। आचार्य सायण के अनुसार उदय होने के पूर्व सूर्य को ही सविता कहते हैं- **उदयात् पूर्व भावी सविता** (ऋ० ५.८१.४ सा० भा०)। ये द्युलोक एवं पृथिवी लोक के बीच भ्रमण करते हैं। इन्हें देवताओं का जनक स्वीकार किया गया है- **सविता वै देवानां प्रसविता** (शत० ब्रा० १.१.२.१७)। वरुण और सविता राष्ट्राध्यक्ष के रूप में भी प्रख्यात हैं, क्योंकि ये भुवन के आश्रयदाता हैं- **सविता राष्ट्रं राष्ट्रपतिः** (शत० ब्रा० ११.४.३.१४)। आदित्यों में भी इनकी गणना होती है। गायत्री अथवा सावित्री मंत्र का वाचन इन्हीं को सम्बोधित करके किया जाता है- **भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्** (यजु० ३६.३)। ऋग्वेद के ११ सूक्तों में सविता की आराधना की गयी है।

६६. साध्यगण (१.१६४.५०) -- वैदिक देवताओं में साध्यगण एक देव समूह के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त हैं। निरुक्त में वर्णित है- **"साध्यन्ते आराध्यन्त इति साध्याः" इति क्षीरस्वामी** (नि० १२.४.४१ दुर्ग वृत्ति) अर्थात् जो असाध्य कार्यों को आराधना आदि के द्वारा सिद्ध कर देते हैं, ऐसे देवगण। इसे इन शब्दों में और स्पष्ट किया है- **ते हि सर्वमिदं साधयन्ति यदन्येन सर्वकर्मभिरसाधितं तत्साधयन्तीति साध्या उच्यन्ते** (नि० १२.४.४१ दुर्ग वृत्ति)। साध्यों की संख्या बारह कही गई है- **साध्या द्वादश विख्याता रुद्रा एकादश स्मृताः** (नि० १२.४.४१ दुर्गवृत्ति)। ऋग्वेद में साध्यगणों की अभिव्यक्ति इस ऋचा में की गयी है- **"यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्। ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः** (ऋ० १.१६४.५०)।

६७. सिनीवाली (२.३२.६-७) -- ऋग्वैदिक देवताओं में सिनीवाली का मानवीकरण करके उन्हें प्रतिष्ठा मिली है। राका और सिनीवाली को परवर्ती ग्रन्थों में चन्द्रमा की कलाओं से सम्बन्धित बताया गया है। पूर्णचन्द्र के दिन को राका तथा प्रथम अभिनव चन्द्रदिवस को सिनीवाली कहा गया है। वैदिक कोश के अनुसार सिनीवाली शब्द अमावस्या के नव-चन्द्र दिन एवं उसकी अधिष्ठात्री देवी का बोधक है, जो उर्वरता की प्रतीक है- **या पूर्वाऽमावास्या सा सिनीवाली** (ऐत० ब्रा० ७.११)। ऋग्वेद में सिनीवाली गुंगू, राका तथा सरस्वती के साथ आहूत हुई हैं- **या गुङ्गूर्या सिनीवाली या राका या सरस्वती** (ऋ० २.३२.८)। इन्हें देवताओं की बहिन तथा विष्णु की पत्नी बताया गया है- **सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा** (ऋ० २.३२.६)। सिनीवाली को धन तथा सन्तति प्रदान करने वाली देवी के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त है। देवियों का वर्णन करते हुए बृहद्देवताकार ने सिनीवाली का भी उल्लेख किया है- **भवत्यप्रया सिनीवाली राका चानुमतिः कुहूः** (बृहद्देवता २.७७)। सिनीवाली को प्रकाश की देवी बताते हुए आचार्य सायण लिखते हैं- **दृष्टचन्द्रा अमावास्या सिनीवाली** (ऋ० २.३२.६ सा० भा०)।

६८. सिन्धु (१.९४.१६ उत्त०) -- वैदिक देवताओं में सिन्धु को गौण स्थान प्राप्त हुआ है। इस शब्द को प्रायः नदी अर्थ में लिया गया है। ऋग्वेद १.९४.६ (उत्त०) में नदी अर्थ में और ऋ० १०.९ में सिन्धु द्वीप के रूप में इनका वर्णन आया है। आचार्य सायण ने सिन्धु को स्पन्दनशील उदक (जल) की आत्मा कहकर विवेचित किया है- **सिन्धुः स्यन्दनशीलोदकात्मा देवता** (ऋ० १.९४.१६ सा० भा०)। सिन्धुदेव के सम्बन्ध में बृहद्देवताकार लिखते हैं- **तमभ्यसिञ्चत्सूक्तेन ऋषिराप इति स्वयम्। सिन्धु द्वीपोऽपनुत्त्यर्थंतस्याश्लीलस्य पाप्मनः** (बृह० ६.१५३)। इनका सम्बन्ध अग्नि, मित्र, वरुण, अदिति, पृथिवी, द्यौ के साथ वर्णित है- **तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता मदितिः सिंधुः पृथिवी उत द्यौः** (ऋ० १.९४.१६ उत्त०)।

६९. सूर्य (१.५०) -- ऋग्वेद में सूर्य को प्रमुख देवता के रूप में मान्यता प्राप्त है। सूर्य देवता, अग्नि एवं मित्रावरुण से विशेष रूप से सम्बद्ध हैं। ऋग्वेद में १.११५.१ में इसकी पुष्टि इस अंश से होती है- **'चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः**। इनके जनक के रूप में विष्णु, इन्द्र, वरुण तथा सोम आदि का नाम प्रमुखतया आता है- **यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपांनेता स जनास इन्द्रः** (ऋ० २.१२.७)। समस्त जीवों के कर्म देखने वाले सूर्य देव ही हैं- **सूरायविश्वचक्षसे** (ऋ० १.५०.२)। सूर्य



को सभी की आत्मा कहा गया है- **'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'** (ऋ० १.११५.१)। शतपथ ब्राह्मण में भी इन्हें सभी देवों की आत्मा स्वीकारा गया है- **सूर्यो वै सर्वेषां देवानामात्मा** (शत० ब्रा० १४.३.२.९)। सूर्यदेव वस्तुतः अग्नि तत्त्व के ही आकाशीय रूप हैं, वे ही स्वयं विश्व के विधान के संरक्षण कर्त्ता हैं। उनका चक्र नियमित, अटल एवं सार्वभौमिक नियमों का अनुसरण करता है।

७०. सोम (१.४३.७-९; १.९१) -- सोमदेव ऋग्वेद के सबसे महान् देवताओं में से एक हैं। ऋग्वेद में इनका नाम सैकड़ों बार आया है। प्रयोगाधिक्य की दृष्टि से ऋग्वेद के देवों में इन्हें तृतीय स्थान मिला है। सोम का मानवीकरण इन्द्र और वरुण की अपेक्षा कम विकसित हुआ है, क्योंकि कवियों के समक्ष उनका वनस्पति रूप सदैव उभरा रहता था। इनका उद्गम पार्थिव सोमलता से माना जाता है और इस (सोमलता) से निकले मादक स्राव को सोम कहा गया है। इन्हें पृथिवी स्थानीय देवता के रूप में मान्यता प्राप्त हुई है। द्रवरूप में सोम की आहुति अग्नि में भी दी जाती है- **तत् ते भद्रं यत् समिद्धः स्वे दमे सोमाहुतो जरसे मृळयत्तमः** (ऋ० १.९४.१४)। सोम को अमृत भी कहा गया है- **सोमो राजाऽमृत U सुत** (यजु० १९.७२)। सोम ओषधियों में सर्वश्रेष्ठ है, इसीलिए उन्हें वनस्पतियों का राजा माना गया है- **सोमं नमस्य राजानं यो जज्ञे वीरुधां पतिः** (ऋ० ९.११४.२)। देवताओं के नामों की गणना में बृहद्देवताकार ने सोम को भी प्रमुखता दी है- **यैस्त्वग्निरिन्द्रः सोमश्च वायुः सूर्यो बृहस्पतिः** (बृह० १.८२)। सोम को दिशाओं का अधिपति तथा द्यावा-पृथिवी का उत्पादक भी माना गया है, साथ ही इन्हें ज्योति (प्रकाश) प्रदायक भी माना गया है।

७१. सोमापूषन् (२.४०) -- सोमापूषन् प्रकाश के देवता हैं। वे अन्धकार को दूर भगाते हैं। इन्हें धन प्रदाता तथा द्यावा-पृथिवी के जनक और जगत् के तष्टा (सुगढ़ बनाने वाले) के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है। उन्हें देवताओं द्वारा अमृत का केन्द्र बिन्दु बनाया गया है- **सोमा पूषणा जननारयीणां ..... अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम्** (ऋ० २.४०.१)। सोमा-पूषन् को समर्पित ऋचाओं का वर्णन करते हुए बृहद्देवताकार ने इनके देवत्व को इन शब्दों में स्वीकार किया है- **सोमः पूषादितिश्चैव सोमपौष्णेऽन्त्यया स्तुताः** (बृह० ४.९१)। आचार्य सायण ने इनके देवत्व को इस प्रकार विवेचित किया है- **'सोमापूषणा' इति षड्चमष्टमं सूक्तं गार्त्समदं त्रैष्टुभं सोमापूषदेवताकम्** (ऋ० २.४० सा० भा०)।

७२. स्वनय- भावयव्य (१.१२५-१२६.१-५) -- स्वनय भावयव्य सिन्धु देशवासी एक राजा का नाम है। स्वनय, राजा भावयव्य के सुपुत्र थे, इसलिए इन्हें स्वनय भावयव्य कहा गया है। बृह० ३.१४-१४४ में स्वनय भावयव्य और ऋषि कक्षीवान् की कथा का विस्तृत वर्णन मिलता है। इस प्रकार यों तो स्वनय भावयव्य पृथिवी स्थानीय राजा ही हैं, किन्तु देवताओं के निर्धारण के सम्बन्ध में ऋग्वेद के प्रसिद्ध सूत्र 'या तेनोच्यते सा देवता' के अनुसार कक्षीवान् द्वारा स्वनय भावयव्य के दान की चर्चा होने के कारण इन्हें उक्त सूक्त का देवता माना गया है। आचार्य सायण ने भी इनके देवत्व की विवेचना इन शब्दों में की है- **आदितः पञ्चानां भावयव्यस्य स्तुतिरूपत्वात् स एव देवता 'या तेनोच्यते' (अनु० २.५) इति न्यायात्** (ऋ० १.१२६ सा० भा०)।

७३. हरिश्चन्द्र प्रजापति (१.२८.९) -- वैदिक देवताओं में हरिश्चन्द्र प्रजापति का स्थान गौण है। ऋग्वेद (१.२८.९) में मात्र इन्हें एक ऋचा समर्पित हुई है। आचार्य सायण ने इनके देवत्व को इन शब्दों में स्वीकार किया है- **अन्त्यायाः 'उच्छिष्टम्' इत्यस्याः हरिश्चन्द्राधिषवणचर्म सोमानामन्यतमो देवता** (ऋ० १.२८ सा० भा०)। ऐतरेय ब्राह्मण में हरिश्चन्द्र की लम्बी कथा वर्णित है, परन्तु प्रजापति के रूप में इनके देवत्व को स्वीकारने का वर्णन उसमें नहीं मिलता।

अन्यदेवसमूह--वैदिक ऋषि और देवताओं के निर्धारण के सम्बन्ध में आचार्य सायण का यह सूत्र प्रसिद्ध है- **यस्य वाक्यं स ऋषिः। या तेनोच्यते सा देवता** (ऋ० १०.१० सा० भा०)। यों तो ऋग्वेद के प्रचलित देव, अग्नि, इन्द्र, पृथिवी, वरुण, सूर्य आदि हैं, किन्तु इनसे भिन्न अचेतन और अमूर्त (भावात्मक) पात्र, उपकरण, पशु, हवि आदि को भी देवता की संज्ञा प्रदान की गयी है। जैसे- **अधिषवण चर्म** (उपकरण), **अन्न** (हवि), **अश्व** (पशु), **इध्म या समिद्ध अग्नि** (हवि), **उलूखल** (पात्र), **ऋतुएँ**, **मुसल** (उपकरण), **बर्हि** (उपकरण), **रोगघ्न उपनिषद्** (अमूर्त देवता), **वनस्पति** (हवि), **समित्** (हवि), **स्वाहाकृति** (अमूर्त देवता), **हविर्धान** (हवि) आदि। इन देवताओं की स्तुति भी ऋग्वेद में की गयी है, इसीलिए इन्हें देवताओं की श्रेणी में परिगणित किया गया है।





परिशिष्ट - ३

ऋग्वेद- भाग १ में प्रयुक्त छन्दों का विवरण

क्रमाङ्क	छन्द - नाम	पाद - विवरण	कुलवर्ण	उदाहरण (ऋ०-सं०)
१.	अतिधृति	१२ +१२ +८ + ८ +८ + १२ + ८ +८	७६	१.१२७.६
२.	अतिशक्वरी	१६ +१६ +१२ + ८ + ८	६०	१.२९.८-९
३.	अत्यष्टि	१२+ १२+८+ ८+ ८+ १२+ ८	६८	१.१२७.१-५
४.	अनुष्टुप्	८+८+८+८	३२	१.१०.१-१२,१.१७५
क.	काविराट् अनुष्टुप्	९+ १२+ ९	३०	१.१२०.३
ख.	कृति अनुष्टुप्	११ +११ +७	२९	१.१२०.९
ग.	नष्टरूपी अनुष्टुप्	९ +१० +१३	३२	१.१२०.४
घ.	विराट् अनुष्टुप्	१० +१० +१०	३०	१.१२०.९,१.१४९.१-५
५.	अष्टि	१६+ १६+ १६+ ८+ ८	६४	१.१२९.११
६.	उष्णिक्[१]	८+८+ १२	२८	१.७९.४-६
क.	अनुष्टुप् गर्भा उष्णिक्	५+ ८+ ८+ ८	२९	१.१८७.१
ख.	ककुप् उष्णिक्	८+ १२+ ८	२८	१.१२०.२
ग.	तनुशिरा उष्णिक्	११ +११ + ६	२८	१.१२०.५
घ.	पुर उष्णिक्	१२+ ८+ ८	२८	१.२३.१९
७.	गायत्री	८ +८+ ८	२४	१.१.१-९ २.६.१-८
क.	द्विपदा विराट् गायत्री[२]	१२ +८	२०	१.६५.१-५
ख.	पाद निचृत् गायत्री[३]	७+ ७+ ७	२१	१.१७.४ -५
ग.	प्रतिष्ठा गायत्री	८+ ७+ ६	२१	१.२३.२१

१. उष्णिक् छन्द का एक भेद परोष्णिक् का भी यही लक्षण है।

२. गायत्री आदि छन्दों के एक पाद में जितने वर्ण होते हैं, उतने ही वर्णों के दो पाद वाले छन्द को द्विपद विराट् या द्विपाद् विराट् कहते हैं।

३. किसी भी छन्द में जब १ वर्ण न्यून होता है, तो निचृत् कहलाता है। पाद निचृत् का तात्पर्य प्रति चरण में निर्धारित वर्णों से १ वर्ण कम होना, यथा-गायत्री छन्द में ८-८ वर्ण के ३ पाद होते हैं, अत: पादनिचृत् में ७-७ वर्ण के तीन चरणों में कुल २१ वर्ण होते हैं।



क्रमाङ्क	छन्द - नाम	पाद - विवरण	कुलवर्ण	उदाहरण (ऋ०-सं०)
८.	जगती	८ + ८ + ८ + ८ + ८ + ८	४८	१.३१.१-७,१. ३४.१-८
क.	महापंक्ति जगती	८ + ८ + ७ + ६ + १० + ९	४८	१.१९१.१०-१२
९.	त्रिष्टुप्	११ + ११ + ११ + ११	४४	१.२४.१-२,१.३२.१-१५
क.	महाबृहती त्रिष्टुप्	१२ + ८ + ८ + ८ + ८	४४	१.१९१.१३
ख.	यवमध्या महाबृहती त्रि०	८ + ८ + १२ + ८ + ८	४४	१.१०५.८
ग.	विराट्स्थाना त्रिष्टुप्	९ + ९ + १० + ११	३९	१.१८९.६
घ.	विराड्रूपा त्रिष्टुप्	११ + ११ + ११ + ८	४१	१.८८.५
१०.	धृति	१२ + १२ + ८ + ८ + ८ + १६ + ८		७२१.१३३.६
११.	पंक्ति [१]	८ + ८ + ८ + ८ + ८	४०	१.२९.१-७; १.८०.-१६
क.	चतुष्पदा विराट् पंक्ति	१० + १० + १० + १०	४०	१.१६९.२
ख.	प्रस्तार पंक्ति	१२ + १२ + ८ + ८	४०	१.८८.१,१६४.४२
१२.	प्रगाथ (बार्हत- विषमा बृ०, समासतो बृहती)	९ + ८ + ११ + ८ + १२ + १२ + १२		७२१.३६.१-२०; १.३९.१-१०
१३.	बृहती	८ + ८ + १२ + ८	३६	१.१३९, १.७०.१
क.	विष्टार बृहती बृहती	८ + १० + १० + ८	३६	१.१२०.७
ख.	स्कन्धोग्रीवी बृहती [२]	८ + १२ + ८ + ८	३६	१.१७५.१

१. यदा-कदा पंचपदा पंक्ति छन्द भी प्राप्त होते हैं।

२. इस छन्द के अपरनाम उरोबृहती तथा न्यंकुसारिणी भी है। यह बृहती छन्द का एक उपभेद है।





स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः
स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः
स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

* * *

अति यशस्वी इन्द्रदेव हमारा कल्याण करने वाले हों।
सर्वज्ञाता पूषादेव हमारा मंगल करें।
अप्रतिहतगति वाले गरुड़ हमारे हितकारक हों।
ज्ञान के अधीश्वर बृहस्पति देव हमारा कल्याण करें ॥६ ॥

— ऋ० १.८९.६



परिशिष्ट-४

ऋग्वेदसंहितायाः प्रथमभागस्य वर्णानुक्रम-सूची

अकारि त इन्द्र गोतमेभिः१,६३,९
अक्षन्नमीमदन्त ह्यव १,८२,२
अक्षितोति सनेदिमं १,५,९
अगच्छतं कृपमाणं परावति १,११९,८
अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः १,१७९,६
अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिः १,१,२
अग्निं विश्वा अभि पृक्षः १,७१,७
अग्निं होतारमीळते वसुधितिं १,१२८,८
अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं १,१२७,१
अग्निनाग्निः समिध्यते १,१२,६
अग्निना तुर्वशं यदुं १,३६,१८
अग्निना रयिमश्नवत् १,१,३
अग्निं दूतं प्रति यदब्रवीतन १,१६१,३
अग्निं दूतं वृणीमहे १,१२,१
अग्निं देवासो मानुषीषु विक्षु २,४,३
अग्निमग्निं हवीमभिः १,१२, २
अग्निमीळे पुरोहितं १,१,१
अग्निर्वव्ने सुवीर्यमग्निः १,३६,१७
अग्निर्होता कविक्रतुः १,१,५
अग्नीषोमा चेति तद् १,९३,४
अग्नीषोमा पिपृतं १,९३,१२
अग्नीषोमा य आहुतिं १,९३,३
अग्नीषोमा यो अद्य वां १,९३,२
अग्नीषोमावनेन वां १,९३,१०
अग्नीषोमाविमं सु मे १,९३,१
अग्नीषोमाविमानि नो १,९३,११
अग्नीषोमा सवेदसा १,९३,९
अग्ने जुषस्व प्रति हर्य तद्वचः १,१४४,७
अग्ने तव त्यदुक्थ्यं १,१०५,१३
अग्ने त्वं पारया नव्यः १,१८९,२
अग्ने त्वमस्मद्युयोधि १,१८९,३
अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानः १,१२,३
अग्ने देवाँ इहा वह सादया १,१५,४
अग्ने नय सुपथा राये १,१८९,१
अग्ने पत्नीरिहा वह १,२२,९
अग्ने पूर्वा अनूषसो १,४४,१०
अग्ने यं यज्ञमध्वरं १,१,४
अग्ने यजस्व हविषा २,९,४

अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य २,८,६
अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां १,२४,२
अग्ने वाजस्य गोमतः १,७९,४
अग्ने विवस्वदुषसः १,४४,१
अग्ने शुक्रेण शोचिषा १,१२,१२
अग्ने सुखतमे रथे १,१३,४
अचिकित्वाञ्चिकितुषः १,१६४,६
अचेति दस्रा व्यु १,१३९,४
अच्छा वदा तना गिरा १,३८,१३
अच्छिद्रा सूनो सहसो नो १,५८,८
अजा वृत्त इन्द्र शूरपत्नीः १,१७४,३
अजो न क्षां दाधार पृथिवीं १,६७,३
अजोहवीदश्विना तौग्र्यो १,११७,१५
अजोहवीदश्विना वर्तिका १,११७,१६
अजोहवीन्नासत्या करा वां १,११६,१३
अतः परिज्मन्ना गहि १,६,९
अतप्यमाने अवसावन्ती १,१८५,४
अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति
१,१८३,६,१८४,६
अतारिष्म तमसस्पारमस्योषा १,९२,६
अति नः सश्चतो नय १,४२,७
अति वायो ससतो याहि १,१३५,७
अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां १,३२,१०
अतो देवा अवन्तु नः १,२२,१६
अतो वयमन्तमेभिर्युजानाः १,१६५,५
अतो विश्वान्यद्भुता १,२५,११
अत्रा ते रूपमुत्तमं १,१६३,७
अत्राह गोरमन्वत १,८४,१५
अत्राह तद्वहेथे मध्व आहुतिं १,१३५,८
अत्रिमनु स्वराज्यं २,८,५
अथा ते अङ्गिरस्तमा १,७५,२
अथा ते अन्तमानां १,४,३
अथा न उभयेषां १,२६,९
अददा अर्भा महते वचस्यवे १,५१,१३
अदर्शि गातुरुवे वरीयसी १,१३६,२
अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षं १,८९,१०
अदिते मित्र वरुणोत २,२७,१४
अदृश्रमस्य केतवः १,५०,३

अदृष्टान् हन्त्यायती १,१९१,२
अदेवेन मनसा २,२३,१२
अद्या दूतं वृणीमहे १,४४,३
अद्या देवा उदिता सूर्यस्य १,११५,६
अध ग्मन्ता नहुषो हवं सूरेः १,१२२,११
अध ते विश्वमनु हासदिष्टये १,५७,२
अध त्विषीमाँ अभ्योजसा २,२२,२
अध प्र जज्ञे तरणिर्ममत्तु १,१२१,६
अध स्मा न उदवता २,३१,२
अध स्वनादुत बिभ्युः १,९४,११
अध स्वनान्मरुतां १,३८,१०
अध स्वप्नस्य निर्विदे १,१२०,१२
अधाकृणोः पृथिवीं २,१३,५
अधाकृणोः प्रथमं वीर्यं २,१७,३
अधा नो विश्वसौभग १,४२,६
अधा मन्ये श्रत्ते अस्मा १,१०४,७
अधा यो विश्वा भुवनाभि २,१७,४
अधारयन्त वह्नयः १,२०,८
अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं वचः १,८३,३
अधि पेशांसि वपते नृतुरिव १,९२,४
अधि श्रियं नि दधुश्चारु १,७२,१०
अधि सानौ नि जिघ्नते १,८०,६
अधीवासं परि मातु १,१४०,९
अधेनुं दस्रा स्तर्यं विषक्ताम् १,११७,२०
अध्वर्यवः कर्तना २,१४,९
अध्वर्यवः पयसोधर्यथा २,१४,१०
अध्वर्यवो भरतेन्द्राय २,१४,१
अध्वर्यवो य उरणं २,१४,४
अध्वर्यवो यः शतं शंबरस्य २,१४,६
अध्वर्यवो यः शतमा २,१४,७
अध्वर्यवो यः स्वश्नं २,१४,५
अध्वर्यवो यन्नरः २,१४,८
अध्वर्यवो यो अपो वव्रिवांसं २,१४,२
अध्वर्यवो यो दिव्यस्य २,१४,११
अध्वर्यवो यो दृभीकम् २,१४,३
अनच्छये तुरगातु जीवम् १,१६४,३०
अनर्वाणं वृषभं मन्द्रजिह्वं १,१९०,१
अनवद्यैरभि द्युभिः १,६,८































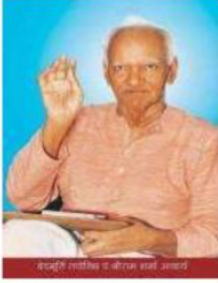






मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा

: युगऋषि पं. श्रीराम शर्मा आचार्य- संक्षिप्त परिचय :



ज्यादा जानकारी यहाँ से प्राप्त करें :
http://hindi.awgp.org/about_us

- **विचारक्रान्ति अभियान के प्रणेता :** विचारों को परिस्कृत और ऊँचा उठाने मे समर्थ 3000 से भी अधिक पुस्तकों के लेखन के माध्यम से विश्वव्यापी विचार क्रान्ति अभियान की शरुआत की ।
- **वेद, पुराण, उपनिषद के प्रसिद्ध भाष्यकार :** जिन्हों ने चारों वेद, 108 उपनिषद, षड दर्शन, 20 स्मृतियाँ एवं 18 पुराणों का युगानुकूल भाष्य किया, साथ ही 19 वाँ प्रज्ञा पुराण की रचना भी की ।
- **3000 से अधिक पुस्तकों के लेखक :** मनुष्य को देवता समान, घर-परिवार को स्वर्ग, समाज को सभ्य और समग्र विश्वराष्ट्र को श्रेष्ठ बनाने मे समर्थ हजारों पुस्तकें लिखकर समयानुकूल समर्थ मार्गदर्शन प्रदान किया ।
- **युग-निर्माण योजना के सूत्रधार :** जिन्होंने शतसूत्री युग निर्माण योजना बनाकर नये युग की आधार शिला रखी ।
- **वैज्ञानिक-अध्यात्मवाद के प्रणेता** : जिन्हों ने धर्म और विज्ञान के समन्वय की प्रथम प्रयोगशाला 'ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान' स्थापित कर सिद्ध किया कि "धर्म और विज्ञान विरोधी नहीं, पुरक है "।
- **'२१ वीं सदी : उज्जवल भविष्य' के उद्दघोषक** : जिन्हों ने '२१ वीं सदी : उज्जवल भविष्य' का नारा दिया तथा युग विभीषिकाओं से भयग्रस्त मनुष्यता को नये युग के आगमन का संदेश दिया ।
- **स्वतंत्रता संग्राम के कर्मठ सैनानी** : जिन्हों ने महात्मा गाँधी, मदन मोहन मालवीय, गुरुवर रविन्द्रनाथ टैगोर के साथ राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए संघर्ष किया एवं स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी "श्रीराम मत्त" के रुप में प्रख्यात हुए ।
- **गायत्री के सिद्ध साधक** : जिन्हों ने गायत्री और यज्ञ को रुढियों और पाखण्ड से मुक्त कर जन-जन की उपासना का आधार तथा सद्बुद्धि एवं सतकर्म जागरण का माध्यम बनाया ।
- **तपस्वी** : जिन्होंने गायत्री की कठोरतम साधना कर २४-२४ लाख के २४ महापुरश्चरण २४ वर्षो में सम्पन्न किया । प्रकृति प्रकोप को शांत कर अनिष्टों को टाला, सृजन सम्भावनाओं को साकार किया ।
- **अखिल विश्व गायत्री परिवार के जनक** : जिन्हों ने अपने जीवनकाल में ही अपने साथ करोडों लोगों को आत्मियता के सूत्र में बाँधकर विश्व व्यापी 'युग निर्माण परिवार' - 'गायत्री परिवार' का गठन किया ।
- **समाज सुधारक** : जिन्हों ने नारी जागरण, व्यसन मुक्ति, आदर्श विवाह, जाति-पाँति प्रथा तथा परंपरागत रुढियों की समाप्ति हेतु अद्भूत प्रयास किए एवं एक आदर्श स्वरुप समाज में प्रस्तुत किया ।
- **ऋषि परम्परा के उद्धारक** : जिन्हों ने इस युग में महान ऋषियों की महान परंपराओं की पुनर्स्थापना की । लुप्तप्राय संस्कार परंपरा को पुनर्जीवित कर जन-जन को अवगत कराया ।
- **अवतारी चेतना** : जिन्होंने "धरती पर स्वर्ग के अवतरण और मनुष्य में देवत्व के जागरण" की अवतारी घोषणा को अपना जीवन लक्ष्य बनाया और चेतना का ऎसा प्रवाह चलाया कि करोंडों व्यक्ति उस ओर चल पड़े ।

गायत्री परिवार जीवन जीने कि कला के, संस्कृति के आदर्श सिद्धांतों के आधार पर परिवार,समाज,राष्ट्र युग निर्माण करने वाले व्यक्तियों का संघ है। **वसुधैवकुटुम्बकम्** की मान्यता के आदर्श का अनुकरण करते हुये हमारी प्राचीन ऋषि परम्परा का विस्तार करने वाला समूह है गायत्री परिवार। एक संत, सुधारक, लेखक, दार्शनिक, आध्यात्मिक मार्गदर्शक और दूरदर्शी युगऋषि पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी द्वारा स्थापित यह मिशन युग के परिवर्तन के लिए एक जन आंदोलन के रूप में उभरा है।